परमात्म प्रकाश
प्रवचन भाग-३

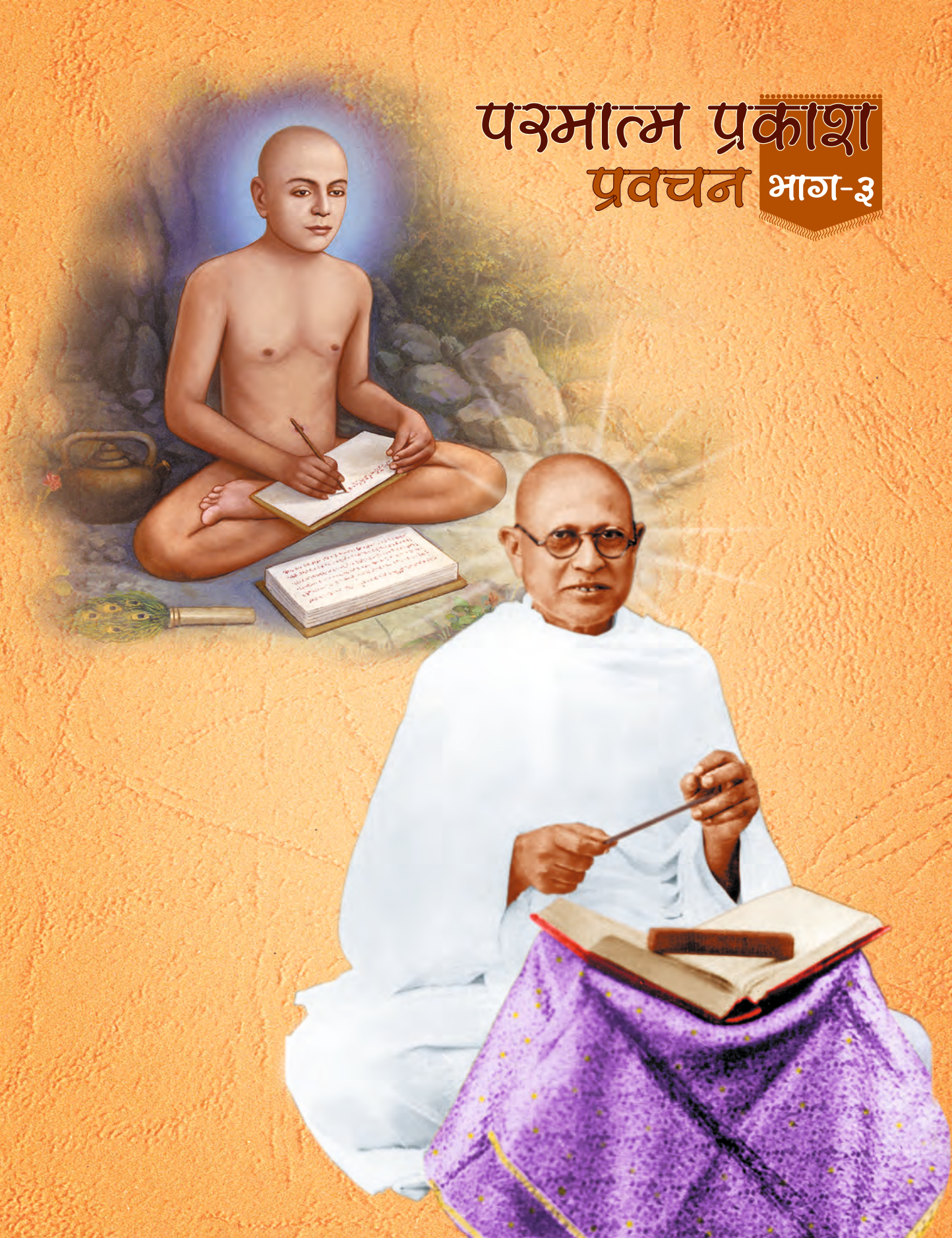

ॐ

श्री सिद्ध परमात्मने नमः
श्री सीमंधरदेवाय नमः
श्री सद्गुरुदेवाय नमः
श्री निजशुद्धात्मने नमः

परमात्मप्रकाश प्रवचन

भाग-3

परमपूज्य योगीन्द्रदेव कृत परमात्मप्रकाश ग्रन्थ पर
अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
के शब्दशः प्रवचन (प्रथम अधिकार)
गाथा 79 से 123, प्रवचन क्रमांक 61 से 94

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2078	2548	2022

—: प्रकाशन :—

आषाढ़ माह **अष्टाह्निका महापर्व** एवं
वीरशासन जयन्ती के उपलक्ष्य में
दिनांक 14 जुलाई 2022

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं।।

शासननायक अन्तिम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री महावीरस्वामी द्वारा प्रवर्तमान जिनशासन अखण्ड मोक्षमार्ग से आज भी सुशोभित है। वीर प्रभु की दिव्यध्वनि में प्रकाशित मोक्षमार्ग, तत्पश्चात् हुए अनेक आचार्यों तथा सन्तों द्वारा अखण्डरूप से प्रकाशित हो रहा है। आचार्यों की परम्परा का इतिहास दृष्टिगोचर किया जाये तो श्री योगीन्द्रदेव ई.स. छठवीं शताब्दी में हुए है। आपश्री ने स्वयं की सातिशय अनुभवलेखनी द्वारा अनेक महान परमागमों की रचना की है। आपने स्वानुभवदर्पण, परमात्मप्रकाश, योगसार, दोहापाहुड़ इत्यादि अनेक वीतरागी ग्रन्थों की रचना की है। परमात्मप्रकाश ग्रन्थ आपश्री की ही कृति है। इस ग्रन्थ में आप की स्वरूप-भावना तथा उसके आश्रय से उत्पन्न हुए स्वसंवेदनज्ञान, वीतरागी अतीन्द्रिय सुख का रस प्रत्येक गाथा में नितरता है। भव्य जीवों के हितार्थ हुई ग्रन्थरचना पाठकवर्ग को भी अत्यन्त रस उत्पन्न होने का निमित्त होती है। आपकी लेखनी में द्रव्यदृष्टि का जोर दर्शाती हुई अनेक गाथायें इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होती हैं।

परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के टीकाकार श्री ब्रह्मदेवजी भी अध्यात्मरसिक महान आचार्य थे। उनका मूल नाम 'देव' और बालब्रह्मचारी होने से ब्रह्मचर्य का बहुत रंग होने के कारण 'ब्रह्म' उनकी उपाधि हो जाने से 'ब्रह्मदेव' नाम पड़ा था। वे ई.स. 1070 से 1110 के दौरान हुए हैं, ऐसा माना जाता है। पण्डित दौलतरामजी ने संस्कृत टीका का आधार लेकर अन्वयार्थ तथा उनके समय की प्रचलित देशभाषा ढूंढारी में सुबोध टीका रची है। ग्रन्थ दो महाअधिकारों में विभाजित है। आत्मा-परमात्मा किस प्रकार हो, इसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होता है।

प्रथम अधिकार में भेद विविक्षा से आत्मा—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ऐसे तीन भेद बतलाये गये हैं। प्रत्येक संसारी जीव को भेदज्ञान निरन्तर भाना चाहिए, इसका विस्तार से वर्णन करके परमात्मा होने की भावना बतलायी है। द्वितीय अधिकार में प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल की रुचि होने के लिये सर्व प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल का स्वरूप बतलाया है।

प्रवर्तमान जिनशासन में हम सबके परम तारणहार भावितीर्थाधिनाथ शासन दिवाकर अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने लुप्तप्राय: अखण्ड मोक्षमार्ग को पुन: जागृत करके भरतक्षेत्र के जीवों पर अविस्मरणीय अनन्त उपकार किया है। जन्म-मरण से मुक्त होना और सादि-अनन्त स्वरूपसुख में विराजमान होने का मार्ग पूज्य गुरुदेवश्री ने स्वयंबुद्धत्व योग प्रगट कर

प्रकाशित किया है। उनका इस काल में उदय वह एक ऐसी अपूर्व घटना है, जैसे सूर्य प्रकाशित होने पर कमल खिल उठते हैं, उसी प्रकार भव्य जीवों का आत्मा रसविभोर होकर पुलकित होकर खिल उठता है। अनेक जीव मोक्षमार्ग प्राप्त करने के प्रति प्रयत्नशील बने हैं। और पंचम काल के अन्त तक गुरुदेवश्री द्वारा प्रस्थापित मोक्षमार्ग अखण्डरूप से प्रवर्तमान रहेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक अध्यात्म शास्त्रों पर अनुभवरस झरते प्रवचन प्रदान किये हैं। उनमें से यह एक ग्रन्थ है—परमात्मप्रकाश। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रवचन डी.वी.डी. में आज मौजूद है, उन्हें सुनते हुए गुरुदेवश्री की अमीरस झरती वाणी के दर्शन होते हैं। गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन में अनेक पहलुओं से आत्मस्वरूप को प्रकाशित करता हुआ तत्त्व प्रकाशमान होता है। आपश्री की उग्र अध्यात्मपरिणति के दर्शन वाणी द्वारा हो सकते हैं। पूर्वापर अविरोध वाणी, अनुभवशीलता, आत्मा को सतत् जागृत करनेवाली वाणी का लाभ जिन्होंने प्रत्यक्ष प्राप्त किया है, वे धन्य हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री ने किसी भी प्रकार के संस्कृत, व्याकरण के अभ्यास बिना आचार्यों के हृदय खोलकर जो अनुपम भाव उन्होंने जगत के समक्ष प्रकाशित किये हैं, वह अलौकिक है! स्वलक्ष्य से स्वयं के भावों के साथ मिलान करके उन्हें समझा जाये तो वह एक अपूर्व कल्याण का कारण है। पूज्य गुरुदेवश्री के लिये या उनकी वाणी के लिये कुछ भी कहना, लिखना अथवा बोलना वह सूर्य को दीपक बतलाने के समान है। तथापि गुरुदेवश्री का अमाप उपकार हृदयगत होने पर शब्द अपने आप ही भक्तिभाव से निकल पड़ते हैं। आपश्री के उपकार का बदला तो किसी भी प्रकार से चुकाया जा सके, ऐसा नहीं है मात्र उनके द्वारा प्रकाशित पन्थ पर शुद्ध भावना से प्रयाण करें, यही भावना है।

पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा स्थापित अनेक जिनमन्दिरों में आज उनके प्रवचन नियमितरूप से सुने जा रहे हैं। अनेक मुमुक्षु उनका लाभ लेकर मोक्षमार्ग में आरूढ़ होने के लिये प्रयत्नशील हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी सबकी भावना होने से पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचनों को शब्दशः ग्रन्थारूढ़ करने के निर्णय के फलस्वरूप परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के प्रवचनों का प्रस्तुत प्रथम भाग प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। ऐसा सौभाग्य प्राप्त होने का श्रेय भी पूज्य गुरुदेवश्री को ही जाता है।

गुरुदेवश्री की सातिशय वाणी नित्य श्रवण करना अपूर्व सौभाग्य है। आज अनेक जिनमन्दिरों में पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन सुनते समय मुमुक्षु उनके अक्षरशः प्रवचनों को सुनने का लाभ ले रहे हैं। अनेक मुमुक्षु जीवों की भावना होने से परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के प्रवचन प्रकाशित करने का निर्णय हमारे ट्रस्ट ने लिया। पूज्य गुरुदेवश्री के इस ग्रन्थ पर दो बार के प्रवचन सी.डी. में उपलब्ध हैं। उनमें से ई.स. 1976-1977 में हुए कुल 245 प्रवचनों को आठ भागों में प्रकाशित

करने की योजना है। जिसमें से यह तृतीय भाग प्रकाशित किया जा रहा है। प्रकाशन हेतु प्रवचनों को सुनकर कम्प्यूटर में टाईप कर लिया जाता है। तत्पश्चात् उन्हें सुनकर वाक्य पूर्ण करने की आवश्यकता हो, वहाँ कोष्ठक में वाक्य रचना पूर्ण की जाती है। जिस गाथा के प्रवचन उपलब्ध न हों अथवा कम हो उन्हें इससे पूर्व हुए प्रवचनों में से लिया जाता है। तत्पश्चात् प्रवचनों को सुनकर व्यवस्थित करके प्रकाशन हेतु प्रेस में दिया जाता है। पूज्य गुरुदेवश्री के भावन यथावत् बने रहें इसकी विशेष सावधानी रखने का प्रयत्न किया गया है तथापि प्रमादवश कहीं चूक रह गयी हो तो वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र के प्रति शुद्ध अन्तःकरण से क्षमायाचना करते हैं। यदि पाठकवर्ग को भी कहीं कोई क्षति दृष्टिगोचर हो तो कृपया हमें सूचित करें, जिससे आवश्यक संशोधन किया जा सके।

प्रस्तुत अक्षरशः प्रवचन डी.वी.डी. से सुनकर गुजराती में कम्प्यूटराईज्ड करने का काम श्री निलेशभाई जैन, भावनगर तथा समग्र प्रवचनों को चैक करने का कार्य जागृतिबेन वोरा, मुम्बई तथा श्री मणीभाई गाला, देवलाली और स्व. श्री चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत भावना प्रधान अध्यात्मरस भरपूर प्रवचनों का लाभ हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी प्राप्त करे, इस भावना से इन प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। साथ ही सी.डी. से मिलानकर प्रत्येक प्रवचन की यथासम्भव शुद्धता का ध्यान रखा गया है। हम अपने सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में जिनेन्द्र परमात्मा, सर्व आचार्य भगवन्तों, ज्ञानी सद्गुरु परमपुरुष के उपकार को हृदयगत करके, उनके चरणों में बारम्बार वन्दना करके नतमस्तक होते हैं। सभी जीव पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी को पढ़कर, सुनकर आत्मकल्याण के मार्ग में अनुगमन कर शाश्वत् सादि-अनन्त समाधिसुख को प्राप्त करें, यही भावना है।

प्रस्तुत ग्रन्थ vitragvani.com वेबसाइट एवं vitragvani app पर भी उपलब्ध है।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विलेपार्ला, मुम्बई

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने

से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से

मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में

कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त

नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖❖❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	गाथा	दिनांक	पृष्ठ क्रमांक
६१	७९	१३-०८-१९७६	००१
६२	८०, ८१	१४-०८-१९७६	०१८
६३	८२	१५-०८-१९७६	०३६
६४	८३, ८४	१६-०८-१९७६	०५२
६५	८४ से ८६	१७-०८-१९७६	०७२
६६	८६ से ८८	१८-०८-१९७६	०८९
६७	८८, ८९	२०-०८-१९७६	११०
६८	९०, ९१	२१-०८-१९७६	१२७
६९	९२	२२-०८-१९७६	१४५
७०	९३	२३-०८-१९७६	१६३
७१	९३, ९४	२४-०८-१९७६	१८१
७२	९५	२५-०८-१९७६	१९८
७३	९६	२६-०८-१९७६	२१६
७४	९६, ९७	२७-०८-१९७६	२३१
७५	९७ से ९९	२८-०८-१९७६	२४७
७६	९९	२९-०८-१९७६	२६६
७७	९९, १००	३१-०८-१९७६	२८२
७८	१००, १०१	०१-०९-१९७६	२९८
७९	१०१, १०२	०२-०९-१९७६	३१६
८०	१०२, १०३	०३-०९-१९७६	३३४
८१	१०४, १०५	०४-०९-१९७६	३५३
८२	१०५, १०६	०५-०९-१९७६	३७४
८३	१०७	०६-०९-१९७६	३९२
८४	१०७, १०८	०७-०९-१९७६	४१२
८५	१०८, १०९	०९-०९-१९७६	४३०
८६	१०९ से १११	१०-०९-१९७६	४४९
८७	११२, ११३	११-०९-१९७६	४६८
८८	११४, ११५	१२-०९-१९७६	४८७
८९	११५, ११६	१३-०९-१९७६	५०५
९०	११७, ११८	१४-०९-१९७६	५२३
९१	११९, १२०	१५-०९-१९७६	५४२
९२	१२१, १२२	१७-०९-१९७६	५६३
९३	१२३	१८-०९-१९७६	५८४
९४	१२३, १	०३-१०-१९७६	६०३

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

श्रीमद्योगीन्दुदेवविरचितः

परमात्मप्रकाश प्रवचन

(भाग - 3)

गाथा - ७९

अथ मिथ्यापरिणत्या जीवो विपरीतं तत्त्वं जानातीति निरूपयति –

७९) जिउ मिच्छत्तें परिणमिउ विवरिउ तच्चु मुणेई।
कम्म-विणिम्मिय भावडा ते अप्पाणु भणेइ।।७९।।

जीवः मिथ्यात्वेन परिणतः विपरीतं तत्त्वं मनुते।
कर्मविनिर्मितान् भावान् तान् आत्मानं भणति।।७९।।

जिउ मिच्छत्तें परिणमिउ विवरिउ तच्चु मुणेइ जीवो मिथ्यात्वेन परिणतः सन् विपरीतं तत्त्वं जानाति, शुद्धात्मानुभूतिरुचिविलक्षणेन मिथ्यात्वेन परिणतः सन् जीवः परमात्मादितत्त्वं च यथावद् वस्तुस्वरूपमपि विपरीतं मिथ्यात्वरागादिपरिणतं जानाति। ततश्च किं करोति। कम्मविणिम्मिय भावडा ते अप्पाणु भणेइ कर्मविनिर्मितान् भावान् तानात्मानं भणति, विशिष्ट-भेदज्ञानाभावाद्गौरस्थूलकृशादिकर्मजनितदेहधर्मानं जानातीत्यर्थः। अत्र तेभ्यः कर्मजनितभावेभ्यो भिन्नो रागादिनिवृत्तिकाले स्वशुद्धात्मैवोपादेय इति तात्पर्यार्थः।।७९।।

आगे मिथ्यात्व परिणति से यह जीव तत्त्व को यथार्थ नहीं जानता, विपरीत जानता है, ऐसा कहते हैं –

मिथ्याभावरूप परिणत यह जीव तत्त्व विपरीत लखे।
कर्मजन्य भावों को ही वह अपना ही स्वरूप माने।।७९।।

अन्वयार्थ :– [जीवः] यह जीव [मिथ्यात्वेन परिणतः] अतत्त्वश्रद्धानरूप परिणत हुआ, [तत्त्वं] आत्मा को आदि लेकर तत्त्वों के स्वरूप को [विपरीतं] अन्य का अन्य [मनुते] श्रद्धान करता है, यथार्थ नहीं जानता। वस्तु का स्वरूप तो जैसा है वैसा ही है, तो भी वह मिथ्यात्वी जीव वस्तु के स्वरूप को विपरीत जानता है, अपना जो शुद्ध ज्ञानादि सहित स्वरूप है, उसको मिथ्यात्व रागादिरूप जानता है। उससे क्या करता है? [कर्मविनिर्मितान् भावान्] कर्मोंकर रचे गये शरीरादि परभाव हैं [तान्] उनको [आत्मानं] अपने [भणति] कहता है, अर्थात् भेदविज्ञान के अभाव से गोरा, श्याम, स्थूल, कृश, इत्यादि कर्मजनित देह के स्वरूप को अपना जानता है, इसी से संसार में भ्रमण करता है। यहाँ पर कर्मों से उपार्जन किये भावों से भिन्न जो शुद्ध आत्मा है, उससे जिस समय रागादि दूर होते हैं, उस समय उपादेय है, क्योंकि तभी शुद्ध आत्मा का ज्ञान होता है।।७९।।

वीर संवत् २५०२, श्रावण कृष्ण-४, शुक्रवार
दिनांक-१३-०८-१९७६, गाथा-७९, प्रवचन-६१

परमात्मप्रकाश, ७९ गाथा। **आगे मिथ्यात्व परिणति से यह जीव तत्त्व को यथार्थ नहीं जानता, विपरीत जानता है, ऐसा कहते हैं।**

७९) जिउ मिच्छत्तें परिणमिउ विवरिउ तच्चु मुणेई।
कम्म-विणिम्मिय भावडा ते अप्पाणु भणेइ॥७९॥

अन्वयार्थ :- यह जीव... 'मिथ्यात्वेन परिणतः' अतत्त्वश्रद्धानरूप परिणत हुआ.... अर्थात् शुद्धात्मानुभूति रुचि। टीका में ऐसा है। '**शुद्धात्मानुभूतिरुचिविलक्षणेन मिथ्यात्वेन**' क्या कहते हैं? अपना आत्मा शुद्ध चैतन्य त्रिलोकनाथ पूर्णानन्द की अनुभूति, उसके सन्मुख होकर आश्रय लेने पर जो अनुभूति होती है, वह शुद्धात्मानुभूति है। उसकी रुचि, शुद्धात्मानुभूति में रुचि, वह सम्यग्दर्शन।

मुमुक्षु : पर्याय में रुचि?

पूज्य गुरुदेवश्री : साथ में शुद्धात्मानुभूति की रुचि है न! यह लिया है न? संस्कृत टीका में लिया है, देखो! '**शुद्धात्मानुभूतिरुचि**' यह शुद्धात्मानुभूति रुचि।

पूर्णानन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, उसमें उसे अनुसरकर जो अनुभूति अर्थात् आनन्द का स्वाद आना, उसमें रुचि होना कि यह आत्मा, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! इस सम्यग्दर्शन से विपरीत, ऐसा लेना है न? '**शुद्धात्मानुभूतिरुचि-विलक्षणेन**' मिथ्यात्व परिणत। शुद्धात्मानुभूति परिणत वह सम्यक् परिणत। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायक आनन्दस्वरूप प्रभु की अनुभूति—अनुभव करके, उसमें रुचि करना। रुचि तो स्वभाव की, परन्तु अनुभूति में रुचि। अकेली रुचि नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध चिद्घन, ज्ञान का घन है, वह तो ज्ञान का पिण्ड है और आनन्द का भी सागर है। उस आनन्द को अनुसरकर स्वसन्मुख होकर जो अनुभूति होना, उसमें रुचि होना, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! धर्म की पहली सीढ़ी। आहाहा! इसके बिना ज्ञान, चारित्र (व्यर्थ है)। यह छहढाला में आता है। सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान और चारित्र सब निरर्थक है। आहाहा! ऐसा सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति की रुचि से विलक्षण-विपरीत लक्षण, वह मिथ्यात्व। समझ में आया? आहाहा! है? अतत्त्वश्रद्धान कहा है, परन्तु इसका अर्थ संस्कृत में ऐसा लिया है। शुद्धात्मतत्त्व का अर्थ ही यह है। शुद्धात्मतत्त्व से विपरीत मिथ्यादर्शन का परिणमन, वह शुद्धात्मतत्त्व की रुचि से विपरीत लक्षण है। आहाहा! समझ में आया? यह मिथ्यात्व से परिणत हुआ।

आत्मा को आदि लेकर तत्त्वों के स्वरूप को अन्य का... क्या कहते हैं? आत्मा ज्ञायकभाव है तो उसे रागरूप मानता है। राग बन्धरूप है तो उसे संवर का कारण मानता है। राग आस्रव है तो, यह मोक्षमार्ग राग से होता है, ऐसा मानता है। शुभराग है, वह संवर और निर्जरा का कारण है—ऐसा मानता है। शुभराग है, वह निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान जो शान्ति का यह कारण है। वह बन्ध का कारण है, ऐसा नहीं मानकर उसे अंश का (शुद्धता का) कारण है, ऐसा मानता है। समझ में आया? शुभराग-शुभोपयोग, वह बन्ध का कारण है, आस्रव है, अशुचि है, जड़ है, दुःखरूप है। उसे आत्मा का साधन माने, वह तत्त्व की विपरीत दृष्टि है। आहाहा! कहा न?

'**तत्त्वं**' **आत्मा को आदि लेकर...** नव तत्त्व **तत्त्वों के स्वरूप को अन्य का अन्य...** आहाहा! शुभराग, वह धर्म का साधन है, धर्म का कारण है, जिसे आस्रव कहा। 'तत्त्वार्थसूत्र में। पुण्य-पाप दोनों को—महाव्रत आदि को आस्रव कहा। उसे संवर

मानकर, चारित्र मानकर धर्मरूप मानता है, यह मिथ्यादर्शन है। मिथ्याश्रद्धा में परिणमित हुआ है।

मुमुक्षु : व्रत पाले और मिथ्यादृष्टि?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्रत पाले उसे नहीं, व्रत के परिणाम को धर्म माने, उसे (मिथ्यादृष्टि कहते हैं)। व्रत का पालन, वह आस्रव है; आस्रव को धर्म माने, वह मिथ्यात्व है। व्रत के परिणाम, वे मिथ्यात्व नहीं। समझ में आया? परन्तु उस परिणाम को संवर माने, चारित्र माने... आहाहा! उसका नाम मिथ्यात्व परिणमन है। **आत्मा को आदि लेकर...** नव तत्त्व। उसमें सब आया है न? सातवें अधिकार में सब आया है। जीव-अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष। विपरीत तत्त्व की बात चली है न? आहाहा!

आत्मा जो ज्ञायकस्वरूप है... यह नीचे कहेंगे। उसे मिथ्यात्व, रागादिरूप जानता है। जो ज्ञायकरूप आनन्दरूप प्रभु है, उसे विपरीत मान्यता और रागरूप जानता है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म विषय है भाई! लोगों को व्यवहार और निमित्त की इतनी पकड़ है कि उससे रहित आत्मा का ज्ञान, आनन्द, उससे रहित है, ऐसी मान्यता करना, उसे बहुत कठिन लगता है। आहाहा!

यथार्थ नहीं जानता... है? **'मनुते' आत्मा को आदि लेकर तत्त्वों के स्वरूप को...** जीव का स्वरूप, अजीव का स्वरूप, पुण्य का स्वरूप, पाप का स्वरूप, आस्रव-बन्ध का स्वरूप, संवर-निर्जरा का स्वरूप और मोक्ष का स्वरूप। सब तत्त्वों को विपरीत मानता है। मोक्ष में भी लिया है न? मोक्ष कैसा है? कि इन्द्र के सुख से अनन्त गुणा। आता है न? मोक्षसुख कैसा है? कि इन्द्रों को जो इन्द्रिय का सुख है, उससे अनन्त गुणा सुख है, तो वह तो एक जाति हुई। समझ में आया? इन्द्रिय का सुख तो दुःखरूप है, आकुलता है, इन्द्रों को इन्द्रासन में इन्द्राणी के साथ विषय की वासना भी दुःखरूप है। आहाहा! उस दुःखरूप से अनन्त गुणा सिद्ध का सुख? तो वह मोक्षतत्त्व को नहीं जानता। आहाहा! समझ में आया?

और जीव की रक्षा करना, यह उसमें आया न? संवर अधिकार (तत्त्व की भूल) में आता है। सातवें अधिकार में। जीव की रक्षा करना, वह संवर है, ऐसा मानता है।

जीव की रक्षा तो जीव कर नहीं सकता। भाव आता है तो वह शुभ है। उसे संवर मानना, यह विपरीत तत्त्व की दृष्टि है। मिथ्यात्वरूप परिणमित है। आहाहा! मिथ्यात्वरूप परिणमित वह आत्मा है। आहाहा! स्व अनुभूति-परिणति से विलक्षण मिथ्यात्व का परिणमन है। उसमें तो बहुत लिया है। बन्ध अधिकार-समयसार में लिया है। जैसे हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना जैसे पापास्रव है, वैसे ही अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, वह पुण्यास्रव है। आया है? धन्नालालजी! जैसे हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, वह पापास्रव है; उसी प्रकार अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह भाव, वह पुण्यास्रव है। तो पुण्यास्रव ठीक है और पापास्रव ठीक नहीं, यह तो दृष्टि मिथ्यात्व है। आहाहा!

प्रवचनसार में तो यहाँ तक कहा, जो कोई पुण्य और पाप के भाव में विशेष—अन्तर मानता है, वह 'हिण्डति घोर संसार' में भटकेगा। '**तीर्थकृतां पुण्यविपाकोऽकिंचित्कर**' पुण्य का फल भगवान तीर्थंकर को कुछ नहीं करता। इसका अर्थ ऐसा करे कि पुण्यफला अरहंता। पुण्य के फल में अरिहन्त पद प्राप्त होता है। ऊपर (शीर्षक) लिखा है, उसे तो पढ़ते नहीं। समझ में आया? '**अथैवं सति तीर्थकृतां पुण्यविपाकोऽकिंचित्कर एवेत्यवधारयति**' ऐसा कहते हैं। अरे प्रभु! तीर्थंकरों को पुण्य का विपाक अकिंचित्कर है। कुछ नहीं करता, स्वभाव का किंचित् घात नहीं करता। स्वभाव को लाभ नहीं करता परन्तु स्वभाव का किंचित् घात नहीं करता। वह तो पुण्य का फल-अतिशय है। वह तो बाहर का अतिशय हुआ, बाहर की चीज़ हुई। वह पुण्य का फल है। पुण्य का फल अरिहन्त पद नहीं है। अतिशय आदि होते हैं, वह पुण्य का फल है। आहाहा! इसमें से सब यह निकालते हैं, पुण्यफला अरिहन्ता। देखो! यहाँ कहते हैं....

मुमुक्षु : गाथा की पंक्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पंक्ति यह है, देखो! क्या है? तीर्थंकरों का पुण्य का विपाक अकिंचित्कर है, वही अरिहन्त भगवान पुण्य के फलवाले, उनकी क्रिया उदय की है। घाता है या नहीं उदयभाव। बोलना, वह पुण्य का फल है। उसमें आत्मा में क्या आया? समझ में आया? और यह (प्रवचनसार) ७७ में है....

ऐसा न माने, पुण्य और पाप में अविशेष है—एक सरीखे हैं... उसमें अन्तर है।

पुण्य की अपेक्षा पाप में अन्तर है, ऐसा माननेवाला 'हिण्डति बोरवं अपारं संसारम्' यह कुन्दकुन्दाचार्य का वचन है। पुण्य और पाप में अन्तर नहीं, भेद नहीं, ऐसा नहीं मानते, वे मोह से आच्छादित वर्तते हुए। मिथ्यात्व परिणमन में रहते हुए घोर अपार संसार में हिण्डति। कहो, बण्डीजी! यहाँ ऐसा तो कहते हैं।

मुमुक्षु : यही तो झगड़ा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पाठ तो ऐसा है। ललितपुर में ऐसा झगड़ा हुआ, अब भोपाल में करनेवाले हैं। यहाँ तो यह कहते हैं। परन्तु देखो! ७७ दो सात। आहाहा! पुण्य और पाप में अन्तर नहीं, ऐसा जो नहीं मानता, अन्तर नहीं—ऐसा जो नहीं मानता (वह घोर संसार में भटकता है)। हिन्दी में क्या है? (अन्तर)। यह तो प्रवचनसार है। हिन्दी नहीं। अन्तर मानता है, दोनों में अन्तर नहीं और अन्तर मानता है कि दोनों में अन्तर है, वह मिथ्यादृष्टि है। दोनों में जरा भी अन्तर नहीं। कहो, सेठ! ऐसे के ऐसे झगड़े। तुम्हारे सेठ को... निर्णय कभी किया नहीं और ऊपर पण्डित के, ऐसा मानना। जय नारायण!

मुमुक्षु : पुण्य और पाप दोनों को एक कैसे कहते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ आचार्य महाराज एक कहते हैं, कुन्दकुन्दाचार्य महाराज। पुण्य-पाप को एक प्रकार से न माने और अन्तर माने, (अर्थात्) पुण्य ठीक है और पाप अठीक है, वह घोर संसार में हिण्डन्ति। पाठ देखो! यह ज्ञानतत्त्व का अधिकार है। पहले ज्ञानतत्त्व का अधिकार है। जो ज्ञान में ऐसा माने कि पुण्यभाव ठीक है और पापभाव अठीक है, इस प्रकार दोनों में अन्तर माने, भेद माने, अन्तर माने, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : लोगों को ऐसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्यमत को तो कहाँ भान है? अन्यमत में तो है ही कहाँ? यह तो जैनमत में भी ठिकाना नहीं। अन्यमत में तो ठिकाना ही कहाँ है? यह तो श्वेताम्बर को भी यहाँ तो अन्यमत कहा है। वेदान्त, वैष्णव आदि तो अन्यमत है ही।

मुमुक्षु : सातवें गुणस्थान की बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे गुणस्थान की बात है और विरोध में पहले गुणस्थान की बात है। पुण्य-पाप में अन्तर माने, वह मिथ्यादृष्टि है। देखो! है न?

ऐसा जो नहीं मानता, दोनों में अन्तर नहीं, दोनों एक सरीखे बन्ध के कारण हैं, ऐसा नहीं मानता, वह मोह से (आच्छादित वर्तता हुआ) घोर (संसार में भटकता है)। आहाहा! घोर अपार संसार। निगोद संसार में वह जायेगा। समझ में आया? ऐसा कहते हैं। जैसे वस्त्र, राग का टुकड़ा रखकर मुनिपना मानता है, हम मुनि हैं, दूसरे उसे मुनि मानते हैं तो वे सब निगोद में जानेवाले हैं। यह सूत्र-गाथा है। सूत्रपाहुड़, १८वीं (गाथा)। समझ में आया? ऐसे यहाँ कहा। आहाहा! मार्ग दूसरा है, भाई! छगनलालजी! यह तो सेठियाओं को दरकार नहीं थी। ऐसे के ऐसे जो वाड़ा में पड़े हैं वे पड़े हैं, जाओ! सिर पर पण्डित कहे (उसे जय नारायण)। हमारे शोभालालजी सेठ कहते हैं, सिर पर पण्डित कहे ऐसा मानते हैं, हमारे दूसरा क्या? आहाहा! पण्डित कहे परन्तु क्या कहते हैं, उसका निर्णय-विचार तो करना है या नहीं? कोई ऐसा कहे, पूर्व भव में मेरे पिता ने तुम्हारे पिता को पाँच लाख दिये हैं, लाओ। तो मानते हो? सेठ! तुम्हारे पिता को हमारे पिता ने पूर्व भव में पाँच लाख दिये हैं और बहुत समय हो गया है तो ब्याज भी बहुत चढ़ गया है। हाँ करोगे? सेठ!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात मानते नहीं और यह महा खोटवाली मिथ्यात्व की बात मानते हैं। पुण्य में अन्तर है, पुण्य अच्छा है, शुभ अच्छा है। वह तो पुण्य-पाप की दो के बीच पुण्य ठीक है....

मुमुक्षु : पुण्य परम्परा धर्म का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बिल्कुल कुछ ही नहीं। पुण्य का आस्रव, वह परम्परा अनर्थ का कारण है। परम्परा मोक्ष का कारण नहीं। वह तो आरोप से समकिती के पुण्य को (व्यवहार से कारण कहा है)। सम्यग्दर्शन है, अनुभूति है, पुण्य और पाप में अन्तर नहीं मानता, उसे जो पुण्यभाव आता है, उसमें अशुभ टलता है और शुभकर्म भी टालेगा, इस अपेक्षा से व्यवहारनय से ऐसा कहा है। वह तो सम्यग्दृष्टि पहले मानता था

कि राग से धर्म नहीं, उसकी बात है। परन्तु जो राग से धर्म मानता है, ऐसे मिथ्यादृष्टि को तो उसके लिये तो परम्परा अनर्थ का कारण है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म मार्ग है, भाई! देखो! (प्रवचनसार, गाथा ७७)।

शुभाशुभ उपयोग के द्वैत की भाँति और सुख-दुःख के द्वैत की भाँति, परमार्थ से पुण्य-पाप का द्वैत नहीं टिकता-नहीं रहता,... जैसे सुख-दुःख एक ही चीज़ है—संसार का दुःख। समझ में आया? इसी प्रकार शुभाशुभ उपयोग में द्वैत नहीं, दोनों एक ही है। आहाहा! **परमार्थ से पुण्य-पाप का द्वैत नहीं टिकता-नहीं रहता,...** पुण्य और पाप में दोपना टिकता नहीं, दोनों एक प्रकार के हैं। आहाहा! **क्योंकि दोनों में अनात्मधर्मत्व अविशेष अर्थात् समान है।** आहाहा! पापभाव में और पुण्यभाव में अनात्मधर्मपना, अनात्मधर्मपना (समान है)। अनात्मधर्म कहने से अधर्मपना। अनात्मधर्मपना अविशेष—समान है। शुभ और अशुभ दोनों अनात्मधर्मरूप से समान हैं। समझ में आया? तो इन दो के बीच अन्तर करना हो तो शुभ में राग मन्द है, अशुभ में तीव्र है, इतना। परन्तु आत्मा के लाभ की अपेक्षा से तो दोनों नुकसानकारक हैं। समझ में आया? आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग है। वीतरागमार्ग में राग से लाभ हो, वह वीतरागमार्ग है? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चढ़ जायेगा, इसकी कहाँ यहाँ बात है? यह शुभभाव की रुचि छोड़ दो, यह बात है। शुभभाव छूटेंगे नहीं। शुभ तो जब शुद्ध उपयोग होगा, तब छूटेगा। परन्तु शुभ में धर्म है, ऐसी रुचि छोड़ दो। समझ में आया? शुभभाव तो सर्वथा कब छूटे? कि जब शुद्धोपयोग की धारा चलेगी, तब शुभ छूटेगा। क्षायिक समकिती मुनि हो, क्षायिक समकिती मुनि हो छठवें गुणस्थान में हो, उन्हें भी व्रतादिक का शुभभाव तो आता है। आओ, परन्तु उसकी रुचि छोड़ दो कि वह धर्म है। आस्रव है, (उसमें) वह संवर है—ऐसी दृष्टि छोड़ दो। समझ में आया? बात भारी कठिन भाई!

देखो न! यह प्रवचनसार में ऐसा यह ज्ञेय, ज्ञान अधिकार। **(परमार्थ से जैसे शुभोपयोग और अशुभोपयोगरूप द्वैत विद्यमान नहीं है....)** वास्तव में शुभ और अशुभ की दो प्रकार की विद्यमानता ही नहीं है। **(जैसे सुख और दुःखरूप द्वैत विद्यमान नहीं**

है...) संसार के स्वर्ग के सुख और नरक के दुःख, ऐसे दो हैं ही नहीं। दोनों दुःखरूप हैं। समझ में आया? पैसेवाले सुखी हैं, इस सेठ को सब ऐसा कहते हैं, यह सुखी है। (दुःखी है), धूल में भी सुखी नहीं। आहाहा! सेठ! दोनों को... बादशाह कहते हैं। दुःखी, दुःखी हैं। पैसे मेरे, यह मान्यता दुःखी है। मैं दूसरे को पैसे देता हूँ, ऐसी मान्यता दुःख की बात है। आहाहा! यह मिथ्यात्वभाव है।

मुमुक्षु : जिसे कर न सके, उसे मानता है कि मैं करता हूँ, यही मिथ्यात्व है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो कर सकता है, वह राग भी दुःखी है। मैंने पाँच लाख दिये, वह मेरी चीज़ थी, यह मान्यता मिथ्यात्व है। वे पाँच लाख तो अजीव हैं और देने का भाव हुआ, वह तो शुभ है। मैंने लक्ष्मी दी और मेरा नाम रहे हमारा... क्या कहलाता है? तख्ती। तस्दी (मेहनत) लेकर तख्ती लगावे। पत्थर... पत्थर की। 'भगवानदास शोभालाल सेठ'। तीन लाख इसमें दिये।

मुमुक्षु : जो दे उसका नाम लिखा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दे कौन? वह तो उसके कारण से लक्ष्मी जाती है। लक्ष्मी उसके कारण से जाती है, आत्मा दे सकता नहीं। आत्मा ले सकता नहीं, आत्मा दे सकता नहीं, आत्मा कमा सकता नहीं। आहाहा! राजेन्द्रभाई! आहाहा! उनके पिताजी बहुत पैसे देते हैं। लक्ष्मीचन्द सेठ। उसमें राग मन्द हो तो पुण्य है, इतनी बात है। बाकी मैंने लक्ष्मी दी और मेरा नाम लिखो, (यह मिथ्यात्व है) नाम भी कहाँ है? भगवान! आत्मा को नाम क्या? वह तो आत्मा है। नाम भगवानदास है, वह आत्मा का नाम है? वह तो जड़ की पहचान है। दूसरे से भिन्न करने को यह नाम है। नाम कैसा? आत्मा, ऐसा आत्मा में नाम कैसा?

आत्मा अर्थात् अतति गच्छति इति आत्मा। अपना आनन्द का नाथ प्रभु अपनी शान्ति में परिणमन करे। अपने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो शुद्धात्मानुभूति, उसरूप परिणमन अर्थात् पर्याय में उसरूप हो... आहाहा! उसका नाम आत्मा कहते हैं। समझ में आया? क्योंकि आत्मा तो ज्ञायकरूप से आत्मा है ही, परन्तु जब अनुभूति में लक्ष्य में आया, तब उसे आत्मा कहा गया है। वह अभी आयेगा। समझे? यह तो प्रवचनसार है।

स्वर्ण की और लोहखण्ड की बेड़ी की भाँति—अहंकारिक अन्तर मानता हुआ... नहीं। सोने की बेड़ी और लोहे की बेड़ी दोनों नुकसानकारक हैं। इसी प्रकार पुण्य और पाप दोनों आत्मा को नुकसानकारक है। आहाहा! **अहमिन्द्र पदादि सम्पदाओं के कारणभूत धर्मानुराग को अति निर्भररूप से (गाढ़रूप से) अवलम्बन करता है। वह जीव वास्तव में, जिसकी चित्तभूमि उपरक्त होने के कारण (-चित्तरूपीभूमि अथवा दीवार कर्मोपाधि के निमित्त से रंगी हुई-मलिन-विकृत होने के कारण)....** आहाहा! उसकी चित्तभूमि—ज्ञानभूमि मैली है। वह पुण्य-पाप में अन्तर मानता है। कितनी स्पष्ट बात करते हैं। ऐसी बात दिगम्बर सन्त के अतिरिक्त कहीं नहीं है। दिगम्बर मुनि को पड़ी नहीं कि मैं सत्य प्रसिद्ध करता हूँ, दुनिया को जँचे, न जँचे, समाज उसमें हाँ करे, न करे, समाज की संख्या बढ़े या न बढ़े, उसकी दरकार मुनि को नहीं है। समझ में आया? मार्ग यह है। आहाहा! देखो!

जिसने शुद्धोपयोग शक्ति का तिरस्कार किया है... आहाहा! देखो! शुभोपयोगी या अशुभोपयोगी, जिसने भगवान आत्मा के शुद्धोपयोग का तिरस्कार किया है और अपनी गद्दी रखी है। हम हैं। क्या है तुझे? दुःख है। आहाहा! **ऐसा वर्तता हुआ संसारपर्यन्त...** आहाहा! क्या अर्थ किया है? जब तक संसार का अस्तित्व है, तब तक भटकेगा। आहाहा! पोपटभाई! टीका देखो! संसारपर्यन्त। पाठ में है सही न? '**हिण्डदि घोरमपारं संसारं।**' जहाँ तक संसार का—भटकने का अस्तित्व है। आहाहा! (वहाँ तक भटकेगा)। आहाहा! प्रभु... प्रभु... प्रभु! कुन्दकुन्दाचार्य के '**हिण्डदि**' घोर संसार शब्द है न? '**घोरमपारं संसारं।**' संसार का पार नहीं। जहाँ तक संसार का अस्तित्व रहेगा, तब तक पुण्य को भला माननेवाला भटकेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा निश्चय मार्ग।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा मार्ग ही है। सुना नहीं और कूदाकूद करे। यह वाँचन, पठन और पाठन, भक्ति और स्तुति में धर्म है। धर्म धूल भी नहीं, सुन न! वह शुभभाव है, परन्तु शुभभाव भी जिसे सम्यग्दर्शन हुआ कि शुभभाव बन्ध का कारण है। नुकसान (कारक), उसके शुभभाव को शुभ कहते हैं। अज्ञानी के शुभभाव को तो अशुभ कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : बाहर की अपेक्षा बाद में?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस पुण्य की अपेक्षा से दोनों अशुभ। यह कहा नहीं? (समयसार) पुण्य-पाप अधिकार में। शुभाशुभभाव। शुभ मोक्षमार्ग है, अशुभ बन्धमार्ग है। अर्थात् जो आत्मा की पुण्य और पाप से रहित स्वरूप के श्रद्धा-ज्ञान चारित्र की वीतरागी पर्याय, वह शुभ है। वह शुभ है। पुण्य शुभ नहीं। शुभ-अशुभभाव को तो अशुभ कहा है। लो! कहा न? आहाहा! शुभ-अशुभभाव दोनों भाव को अशुभ कहा। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन त्रिलोक पिण्ड प्रभु, त्रिलोकनाथ। त्रिलोक पिण्ड का अर्थ सब आनन्द आदि का पिण्ड त्रिलोक वस्तु है। त्रिलोक ऐसी चीज़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : श्रद्धा की चीज़ को चारित्र में मिलाते हैं, यही भूल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गड़बड़ कर डालते हैं। चारित्र है कहाँ? श्रद्धा बिना चारित्र कैसा? यह व्रत लिये और त्याग किया, वह चारित्र है। वह चारित्र है? व्रत तो आस्रव है और जिसने व्रत लिये, उसे समकित तो है ही, ऐसा। अथवा निश्चय समकित की खबर नहीं पड़ती। बस, चलो। अब यह गड़बड़ उठाई। निश्चय समकित की खबर नहीं पड़ती, यही मिथ्यात्व है। आहाहा! अन्ध है? अपने में आनन्द का स्वाद आया, उसका इसे ख्याल न आवे? अनादिकाल का जहर के स्वाद का अनुभव है... आहाहा! इन्द्राणी के भोग, विषय-वासना का भाव सब जहर का अनुभव था। जहर का अनुभव था। जहर के भोग थे। जिसे सम्यग्दर्शन हुआ... आहाहा! त्रिलोकीनाथ परमात्मा का शरण लिया, वहाँ तो आनन्द का स्वाद आया, वह आनन्द का स्वाद आया, उसकी खबर न पड़े? समझ में आया? और खबर पड़ती नहीं तो उसे आनन्द का स्वाद आया नहीं। मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? आहाहा! कोई राग आता है, अशुभ भी आत्मा है, उसे दुःखदायक मानता है। शुभभाव भी आता है, उसे भी दुःखदायक मानता है। सुख का दातार नहीं, दुःख का दातार मानता है। आहाहा! शुभ-अशुभभाव को (दुःखदायक मानता है)।

नरक का समकिती, सातवें नरक का नारकी हो, अहो! मिथ्यात्व लेकर गया था। पूर्व में सन्तों से सुना था, प्रभु! तू शुद्ध चैतन्य है न, नाथ! पर्याय में राग हो, वह तेरी

चीज़ नहीं, तू राग नहीं। ऐसी बात सुनी थी, परन्तु प्रत्यक्ष नहीं की थी और नरक का आयुष्य बँध गया। मिथ्यादृष्टि लेकर सातवें नरक में गया। फिर अन्दर में भान हुआ अन्दर से। आहाहा! रौवरौव नरक में। अपरिठाणा नारकी। पाँच पांसड़ा है। अपरिठाणा। रौवरौव नरक। तैंतीस सागर की स्थिति। रौवरौव नरक। जैसे कीड़े पड़े हों, वैसा दुःख है। दुःख के कीड़े। अकेला दुःख... दुःख... दुःख। उस दशा में समकित प्राप्त करता है। समझ में आया? ऐसा कहते हैं कि खाने-पीने की सुविधा हो, सब हो तो धर्म करना ठीक पड़े। धूल भी नहीं, सुन न! ऐसा कहते हैं, खाने-पीने के लिये पैसे हों, आजीविका हो, लड़के हुए, कमाते हों तो निवृत्ति लेने का समय मिले। अरे! धूल भी नहीं, सुन न!

सातवें नरक में इतनी प्रतिकूलता है कि जिसमें एक चावल का कण भी नहीं मिलता, पानी की बूँद नहीं मिलती और इतनी शीत अवस्था, शीत वेदना कि एक शीत का कण यहाँ आवे तो दस योजन के मनुष्य सर्दी में मर जाये। ऐसी सर्दी में तैंतीस सागर निकाले, प्रभु! देखो, बात तो देखो। बात बातरूप से नहीं लेना, भाव में उसका (भासन होना चाहिए)। आहाहा! उसका शीत का एक कण यहाँ लावे तो दस योजन के मनुष्य उस शीत की सर्दी में मर जायें। आहाहा! जैसे सर्दी में... क्या कहलाता है? जाड़े के दिन में। हिम पड़े न? हिम। वह शीतल है। रिंगडा के वृक्ष हों, रिंगड़ा। बैंगन का सूख जाये। हिम... हिम। आहाहा! उस हिम से अनन्तगुणा हिम सातवें नरक में है। भाई! यह शब्द नहीं धारना, भाव को लक्ष्य में लेना। वेदना प्रभु! किसे कहें, भाई! आहाहा!

ग्रीष्म ऋतु.... यह कहा था न? 'गढडा' जाना था। ... उसमें हिम... हिम पड़ा, हिम। छोटा गाँव। कहा था, भूल गये? (संवत्) १९८५, १९८५ के वर्ष। बीछिया से एक गाँव है। एक गाँव में आ गये। वहाँ घर थोड़े। हम तो हमारे लिये भोजन बनाया हो और ख्याल आवे तो लेते नहीं थे। ऐसी कड़क क्रिया थी न! बहुत कड़क थी। उस गाँव में दूसरे दिन तो रहा नहीं जा सकता। वहाँ से निकले, छह कोस जाना, छह कोस। बारह मील और रास्ते में हम दो व्यक्ति। हिम (गिरा)। आहाहा! गाँव के नजदीक निकले तो लोग कहें, अरे! यह तो महाराज हैं। भाई! हम गाँव में हैं। वहाँ दूसरे दिन रह नहीं सकते। हमारे लिये भोजन बनावे तो हम लेते नहीं। हिम, हों! सख्त हिम। पंथ तो बारह मील। उस हिम से भी अनन्तगुना हिम सातवें नरक में है, ऐसा कहते हैं। हिम इतना

पड़ा था कि पानी बर्फ हो गया। नदी में गड्ढा होते हैं न? विरडा समझते हो? विरडा को क्या कहते हैं? पानी था, वह बर्फ हो गया। इतना हिम—बर्फ। आहाहा! हम चलते थे, तब तो जवान अवस्था थी। १९८५ अर्थात् १५ + ३२ = ४७ वर्ष पहले। शरीर की जवान अवस्था है, आत्मा को क्या है? यह तो छह कोस हिम की स्थिति में चले। क्योंकि छोटे गाँव में हम रह नहीं सकते। एक दिन मुश्किल से निर्दोष आहार मिले। उसके घर में तैयार हो तब एकदम जायें। हम, हमारे जाने के बाद बनावे तो हमें नहीं जाए। पहले बनाया हो तो दो रोटी, दाल, भात थोड़ा लें। हमारे लिये बनाया हो तो पानी की एक बूँद भी न लें। सम्प्रदाय में भी हमारी सख्त किया थी।

उस समय इतना हिम गिरा कि लोगों को त्रास हो गया। हमको देखकर.... जवान शरीर, रूपवान शरीर। अरे! महाराज! अभी यहाँ कहाँ? भाई! हम तो गाँव में थे। हिम गिरा। गाँव में दूसरे दिन रहा नहीं जा सकता। इसलिए हम गढडा जाते हैं, उस हिम से अनन्तगुना हिम है। सातवें नरक। उसमें सम्यग्दर्शन पाता है, अरे! मैं आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु हूँ। मैं राग नहीं हूँ, शरीर नहीं, वेदना, वह कुछ पर मुझमें नहीं है। ताँबें का तार होता है, यह ताँबा। बिजली गिरी तो ताँबा में उतर जाती है न? वह ताँबा होता है न? मानस्तम्भ में रखा है न! कोई बिजली पड़े तो उतर जाये।

इसी प्रकार भगवान आत्मा अन्तर की धारा से अन्दर उतर जाता है। उस वेदना में पानी नहीं, तैंतीस सागर में चावल का एक कण नहीं। अनाज का कण नहीं। पानी की बूँद नहीं। स्वयंभूरमण समुद्र का सब पानी दे, तो भी सूख जाये इतनी तो तृषा। अरे! भगवान! यह बात क्या है? भाई! उसकी तृषा के लिये स्वयंभूरमण समुद्र का पानी दे तो जैसे एक तवा होता है न? लोहे के गर्म तवे पर पानी की बूँद डाले तो चूस जाये, इतनी तो तृषा। उस वेदना में तू अनन्त बार आ गया। भूल गया।

यहाँ तो दूसरा कहना है, वहाँ भी आत्मा पुण्य-पाप से भिन्न होकर, आहाहा! शुभाशुभभाव की रुचि छोड़कर, शुभभाव नहीं छूटे परन्तु उसकी रुचि छोड़कर, आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ में प्रवेश किया, उस ओर झुक गया। क्या बात है यह? अरे भाई! इसका भाव लक्ष्य में ले तो खबर पड़े। वहाँ स्वानुभूति हो जाती है। सातवें नरक का नारकी कौन, तैंतीस सागर की स्थिति। आहाहा! समझ में आया?

प्रभु की महासत्ता, अन्दर आनन्द की सत्ता भगवान आत्मा की, उसकी अन्तर अनुभूति हो जाती है। आहाहा! यहाँ कहे, हमारे सुविधा हो तो निवृत्ति लें। धूल भी नहीं, सुन न, अनन्त असुविधा में भी समकित पाता है तो वहाँ सुविधा की आवश्यकता कहाँ है? आहाहा! समझ में आया? यहाँ यह कहा, हों! जब तक संसार का अस्तित्व रहेगा, सदा शारीरिक दुःख को अनुभव करेगा। शारीरिक दुःख को अनुभव करेगा। आहाहा!

(कुन्दकुन्दाचार्य) भगवान के पास गये थे, आठ दिन रहे थे। वह आकर जगत के समक्ष कहते हैं। दुनिया मानो, न मानो। हमको पागल कहो, न कहो, तुम्हारी मर्जी। हम तो भगवान का मार्ग ऐसा है, ऐसा ढ़िंढ़ोरा पीटकर प्रसिद्ध करते हैं। यह कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं। हम तो ढ़िंढ़ोरा पीटकर जगत को कहते हैं, मानो, न मानो तुम्हारी बात है। हम तो नगाड़ा पीटकर कहते हैं। शुभभाव में धर्म माननेवाला घोर संसार, जब तक संसार रहेगा, तब तक शारीरिक दुःख भोगेगा। आहाहा! दरबार! कहाँ है वहाँ तुम्हारे जमीदार-बमीदार में।

एक बार बारात निकली थी। लींबड़ी। जांबु है, जांबु। बहुत वर्ष हो गये। ६०-७० वर्ष हो गये। एक जमीदार को बारात में साथ में लिया। सुनते थे कि एक गाँव से दूसरे गाँव जायें, तब बीच में लुटेरे मिलेंगे। लुटारा कहते हैं न? डाकू होते हैं। बारात है, साथ में गहने हो, जेबरात पहने हों। तो एक जमीदार को साथ में लिया। वहाँ वह डाकू आये... हम क्षत्रिय हैं। हमारी उपस्थिति में यदि कुछ होगा तो तुम्हारी मृत्यु होगी। जांबु है, जांबु, लींबडी के नजदीक। जमीदार को साथ में लिया। जमीदार खड़ा हो गया। गाड़ी में मैं जमीदार हूँ, बनिया नहीं। यह बनिये की बारात है, मैं बनिया नहीं। पहले मर जाओगे यदि यहाँ लूटने आये तो। भाग गये। डाकू चले गये, हों!

तीर्थंकर क्षत्रिय है। आहाहा! हम जो यह बात करते हैं, वहाँ यदि मिथ्यात्व की बात करोगे तो तुम्हारा नाश हो जायेगा। तुम भटकोगे। समझ में आया? कहा न? हमारे मार्ग की जो बात है, उसे नहीं मानते और विपरीत मानते हैं, याद रखो! शुभभाव को करनेवाला मिथ्यादृष्टि उसे हेय नहीं मानकर, उपादेय मानता है, वह संसार की जहाँ तक स्थिति है, वहाँ तक शारीरिक दुःख भोगेगा।

शुद्धात्मानुभूति से विपरीत। आहाहा! आत्मा आदि तत्त्वों के स्वरूप को अन्यथा अन्य अन्यथा अन्य श्रद्धा करता है। (यथार्थ) नहीं जानता, वस्तु का स्वरूप तो जैसा है, वैसा ही है। पुण्य है तो पुण्य है, पाप है तो पाप है, भगवान आत्मा है तो आत्मा है, वह तो है, वैसा है। एक तत्त्व दूसरे तत्त्वरूप कभी होता नहीं। नौ तत्त्व कैसे हुए हैं? आस्रवतत्त्व है, वही जीवतत्त्व है? पुण्यतत्त्व है, वह जीवतत्त्व है? पुण्यतत्त्व से जीवतत्त्व की प्राप्ति होती है? तब तो तत्त्व एक हो जाते हैं। समझ में आया? पर्याय का राग में रुकना... मुक्तत्त्व है? राग से रहित तत्त्व है। बन्धतत्त्व है? मोक्ष में भी राग है? उस राग से पुण्य भी बँधता है और उस राग से मोक्ष का मार्ग भी होता है, ऐसे दो हैं? श्वेताम्बर के अधिकार में लिया है। पाँचवें अधिकार में। अब यहाँ दिगम्बर में बात घुस गयी। समझ में आया?

कहते हैं कि एक तत्त्व को दूसरे तत्त्वरूप विपरीत मानता है। आहाहा! **अपना जो शुद्ध ज्ञानादि सहित स्वरूप है,...** देखो! भगवान तो ज्ञान, आनन्द, शान्तिस्वरूप प्रभु है। अपना जो शुद्ध ज्ञान, शुद्ध दर्शन, शुद्ध शान्ति, शुद्ध आनन्द, शुद्ध स्वच्छता आदि सहित भगवान का स्वरूप है। आहाहा! है? **उनको मिथ्यात्व रागादिरूप जानता है।** विपरीत मान्यता हुई तो रागसहित आत्मा को मानता है। वह विपरीत मान्यता है। आहाहा! शुद्ध ज्ञान, आनन्दसहित है, उसे रागसहित, मिथ्यात्वसहित मानता है। क्या कहा? भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञान, दर्शन, आनन्दसहित है, उसे रागसहित मानता है। मिथ्यात्वसहित मानता है। आहाहा! मैं एक ही आत्मा हूँ, मैं सर्वव्यापक हूँ। अरे! शुद्ध ज्ञानादि स्वरूप भगवान, उसमें यह लप कहाँ? (रागसहित) मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

उससे क्या करता है? 'कर्म विनिर्मितान् भावान्' 'भावडा' कर्मोंकर रचे गये... शरीर, वाणी, मन, पैसा, लक्ष्मी **परभाव हैं, उनको अपने कहता है,...** अपने मानता है। शरीर मेरा, पुत्र मेरा, देश मेरा, सागर गाँव मेरा, लो! यहाँ आचार्य परमात्मप्रकाश (कहते हैं)। दिगम्बर सन्तों की वाणी तो देखो! मुर्दे खड़े हों, ऐसी वाणी है। समझ में आया? प्रभु! परन्तु तुझे यह क्या है? तू तो शुद्ध ज्ञानादिसहित तेरा स्वरूप है न! उसे अपना नहीं मानकर, कर्म से जो मिला (उसे अपना मानता है)। अज्ञान से बँधे हुए कर्म

और कर्म से यह शरीर, लक्ष्मी आदि सामग्री मिली, वह मेरे हैं, ऐसा मानता है, यह क्या है ? तेरा है, उसे तूने माना नहीं और तेरे नहीं, उसे तेरा माना है। तू मिथ्यादृष्टि है।

अपने को नहीं जानकर **भेदविज्ञान के अभाव से...** आहाहा! **शरीरादि परभाव हैं, उनको अपने कहता है,...** उसका थोड़ा स्पष्टीकरण किया है। आगे गाथायें आयेंगी। मैं गोरा हूँ, रूपवान, श्वेत रूपवान मैं हूँ। वह तो जड़ की दशा है। वह तेरी कहाँ से हुई ? समझ में आया ? शरीर निर्बल है, मैं निर्बल हूँ, मेरे शरीर की काठी पतली है। वह तो शरीर की है। मैं स्थूल हूँ। वह तो जड़ स्थूल है, तू कहाँ से स्थूल हो गया ? मेरा शरीर स्थूल है, मेरा शरीर स्थूल है, मैं स्थूल हूँ, ऐसा भी कह दे। मैं श्याम हूँ। एकदम काला। यह शरीर की चमड़ी होती है न ? मैं काला हूँ। काला तो जड़ है, शरीर है, तू कहाँ काला है ? स्थूल हूँ। यह स्थूल शरीर होता है न ? स्थूल। कृश हो। शरीर कृश—पतला हो। ऐसा पतला। वह तो शरीर की काठी—बन्धन हो।

इत्यादि कर्मजनित देह के... देखो! यह कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुए **देह के स्वरूप को अपना जानता है, इसी से संसार में भ्रमण करता है।** आहाहा! शरीरादि तू नहीं, उसे अपने में मानना और अपने स्वरूप को भूल जाना, वही परिभ्रमण का कारण है। समझ में आया ? शरीर रूपवान हो, सुन्दर हो, कान्तिमान-तेजदार हो तो हमारा शरीर तेजदार है, मैं तेजदार हूँ। यह तो शरीर मिट्टी है। आहाहा! वह तो श्मशान में मिट्टी-राख हो जायेगी। कण छूते हैं। भड़का होगा। समझ में आया ? मुम्बई और मुम्बई। मुम्बई थे न ? जंगल जाते थे। झाड़ू तेरा क्षण-क्षण में जल रहा है। आहाहा! उसे तू अपना मानता है। आहाहा! **इसी से संसार में भ्रमण करता है।**

यहाँ पर कर्मों से उपार्जन किये भावों से भिन्न जो शुद्ध आत्मा है,... राग, शरीर, मन, वचन से भिन्न भगवान आत्मा है। **उससे जिस समय रागादि दूर होते हैं,...** आहाहा! राग से, शरीर से भिन्न, कर्म से भिन्न भगवान किस समय उपादेय होता है ? किस क्षण में वह आदरणीय होता है, यह कहते हैं। **कर्मों से उपार्जन किये भावों से भिन्न जो शुद्ध आत्मा है, उससे जिस समय रागादि दूर होते हैं,...** राग से दूर होकर अपनी दृष्टि स्वरूप में लगायी, तब आत्मा उपादेय होता है। तब आदरणीय आत्मा का उसने आदर किया। बोलने में और धारणा से कह दिया कि ऐसा आत्मा है, ऐसा नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ

में आया? आत्मा राग से भिन्न है, शरीर से भिन्न है, यह तो धारणा में लिया, ज्ञान में लक्ष्य में लिया। वह कहीं (उपादेय) नहीं हुआ।

जिस समय रागादि दूर होते हैं,... जिस काल में राग से भिन्न होता है, आहाहा! **उस समय उपादेय है,...** उस क्षण भगवान उपादेय है। जिस क्षण में, जिस समय में पुण्य के-पाप के विकल्प से भिन्न हुआ, उसी समय भगवान आत्मा उपादेय उसी क्षण में हुआ।... साथ में रहे और आत्मा उपादेय हो जाये, ऐसा है नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन के काल में रागादि से दूर हुआ। सम्यग्दर्शन के काल में आत्मा उपादेय है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? राग का, पुण्यभाव का उपादेयपना है, उसी समय उसे आत्मा हेय है। भगवान आत्मा हेय है। जिस समय राग का उपादेयपना है, उसी समय आत्मा हेय है। जिस समय राग का उपादेयपना छोड़कर सम्यग्दर्शन में राग से दूर होकर अन्दर भगवान का आदर किया, उस समय उपादेय है। समझ में आया? आहाहा! है?

कर्मों से उपार्जन किये भावों से... राग, शरीरादि। उनसे भिन्न—राग, शरीर से भिन्न **जो शुद्ध आत्मा है, उससे जिस समय रागादि दूर होते हैं,...** राग से लक्ष्य उठाकर, स्वभाव में दृष्टि (करे, तब आत्मा उपादेय होता है)।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ८०

अथानन्तरं १तत्पूर्वोक्तकर्मजनितभावान् येन मिथ्यापरिणामेन कृत्वा बहिरात्मा आत्मनि योजयति तं परिणामं सूत्रपञ्चकेन विवृणोति –

८०) हउँ गोरउ हउँ सामलउ हउँ जि विभिण्णउ वण्णु।
हउँ तणु-अंगउँ थूलु हउँ एहउँ मूढउ मण्णु।।८०।।

अहं गौरः अहं श्यामः अहमेव विभिन्नः वर्णः।
अहं तन्वङ्गः स्थूलः अहं एतं मूढं मन्यस्व।।८०।।

अहं गौरो गौरवर्णः, अहं श्यामः श्यामवर्णः, अहमेव भिन्नौ नानावर्णः मिश्रवर्णः। क्व। वर्णविषये रूपविषये। पुनश्च कथंभूतोऽहम्। तन्वङ्गः कृशाङ्गः। पुनश्च कथंभूतोऽहम्। स्थूलः स्थूलशरीरः। इत्थंभूतं मूढात्मानं मन्यस्व। एवं पूर्वोक्तमिथ्यापरिणामपरिणतं जीवं मूढात्मानं जानाहीति। अयमत्र भावार्थः। निश्चयनयेनात्मनो भिन्नान् कर्मजनितान् गौरस्थूलादिभावान् सर्वथा हेयभूतानपि सर्वप्रकारोपादेयभूते वीतरागनित्यानन्दैकस्वभावे शुद्धजीवे यो योजयति स विषयकषायाधीनतया स्वशुद्धात्मानुभूतेश्च्युतः सन् मूढात्मा भवतीति।।८०।।

इसके बाद उन पूर्व कथित कर्मजनित भावों को जिस मिथ्यात्व परिणाम से बहिरात्मा अपने मानता है, और वे अपने हैं नहीं, ऐसे परिणामों को पाँच दोहा-सूत्रों में कहते हैं –

मैं गोरा हूँ मैं काला हूँ विविध वर्णमय ही मैं हूँ।
मैं दुबला हूँ मैं मोटा हूँ मूढ़ जीव ऐसा माने।।८०।।

अन्वयार्थ :- [अहं] मैं [श्यामः] काला हूँ, [अहमेव] मैं ही [विभिन्नः वर्णः] अनेक वर्णवाला हूँ, [अहं] मैं [तन्वंगः] कृश (पतले) शरीरवाला हूँ, [अहं] मैं [स्थूलः] मोटा हूँ, [एतं] इस प्रकार मिथ्यात्व परिणामकर परिणत मिथ्यादृष्टि जीव को तू [मूढं] मूढ [मन्यस्व] मान।

भावार्थ :- निश्चयनय से आत्मा से भिन्न जो कर्मजनित गौर स्थूलादि भाव हैं, वे सर्वथा त्याज्य हैं, और सर्व प्रकार आराधने योग्य वीतराग नित्यानंद स्वभाव जो शुद्धजीव है, वह इनसे भिन्न है, तो भी पुरुष विषय कषायों के आधीन होकर शरीर के भावों को अपने जानता है, वह अपनी स्वात्मानुभूति से रहित हुआ मूढात्मा है।।८०।।

वीर संवत् २५०२, श्रावण कृष्ण ५, शनिवार
दिनांक-१४-०८-१९७६, गाथा-८०, ८१, प्रवचन-६२

८० गाथा है न? ८० गाथा में ऐसा कहते हैं, **इसके बाद उन पूर्व कथित कर्मजनित भावों को...** जो कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुए। शरीरादि की अवस्था। **मिथ्यात्व परिणाम से बहिरात्मा...** मिथ्याश्रद्धा से अज्ञानी आत्मा **अपने मानता है और वे अपने हैं नहीं, ऐसे परिणामों को पाँच दोहा-सूत्रों में कहते हैं।** ८०।

८०) हउँ गोरउ हउँ सामलउ हउँ जि विभिण्णउ वण्णु।
हउँ तणु-अंगउँ थूलु हउँ एहउँ मूढउ मण्णु॥८०॥

मैं गोरा हूँ। गोरा कहते हैं न? अभेद। मैं गोरा हूँ। शरीर गोरा है। मैं गोरा हूँ, यह मान्यता मिथ्यात्व की है। मिथ्यात्व-परिणत आत्मा, कर्मजनित भाव जो अपने से भिन्न है, उन्हें अपने मानता है। रागादि तो पहले आ गये। राग भी कर्म के निमित्त के संग से उत्पन्न होता है। दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव मेरे हैं, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। समझ में आया? शुभभाव या अशुभभाव दोनों आस्रवभाव, उपाधिभाव, मैलभाव, जड़भाव हैं। शुभ-अशुभभाव जड़भाव हैं। उन्हें अपना माने, अपना वह कर्तव्य है, ऐसा माने, वह मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। अर्थात् जो आत्मा के स्वभाव में नहीं, ऐसी बाह्य चीज़ को अपनी माने, वह बहिरात्मा है। चाहे तो साधु होकर पंच महाव्रत आदि पालता हो, परन्तु वह विकल्प है, वह मेरा है, मैं धर्म करता हूँ, ऐसा मानता है तो वह भी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐसी बात है। मैं गोरा हूँ।

मैं काला हूँ,... शरीर का रंग काला हो तो मानता है कि मैं काला हूँ। अरे! भगवान! वह तो जड़ की अवस्था है। **मैं ही अनेक वर्णवाला हूँ,....** फिर संक्षिप्त में ले लिया। लाल वर्ण आदि होते हैं न? हरा वर्ण। **मैं कृश शरीरवाला हूँ,...** मेरे शरीर की अवस्था बहुत कृश है। पतला हूँ, मैं पतला हूँ। शरीर पतला तो मैं पतला हूँ। समझ में आया? **मैं मोटा हूँ,...** मोटा शरीरवाला। माँस और चर्बी से मोटा शरीर हो तो (माने कि) मैं स्थूल हूँ। वह तो शरीर स्थूल है। उसे अपना मानना, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! मैं कृश-पतला हूँ, स्थूल हूँ। **इस प्रकार मिथ्यात्व परिणामकर परिणत...** विपरीत

श्रद्धा से परिणत हुआ। परिणाम का करता हुआ। **मिथ्यादृष्टि जीव को तू मूढ मान।** (जान) आचार्य कहते हैं कि ऐसा कोई प्राणी हो तो उसे मूढ़ जान। समझ में आया?

भावार्थ :- निश्चयनय से आत्मा से भिन्न जो कर्मजनित गौर स्थूलादि भाव हैं, वे सर्वथा त्याज्य हैं... सर्वथा त्याज्य है। कथंचित् त्याज्य और कथंचित् त्याज्य नहीं, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन हटाता है? बाहर में है ही। बाहर में है, अन्तर में है नहीं। हटाना है किसे? उसकी दृष्टि हटानी है। समझ में आया?

सर्व प्रकार आराधनेयोग्य... आहाहा! अब तात्पर्य आया। वह तो सर्वथा त्याज्य है परन्तु धर्म की दृष्टिवन्त को क्या आराधने योग्य है? सर्व प्रकार से आराधने योग्य। देखो! ओहोहो! **वीतराग नित्यानन्द (एक) स्वभाव...** वहाँ एक स्वभाव लिया है? क्या कहते हैं? वीतराग नित्यानन्द, पश्चात् क्या लिया है? वीतराग नित्यानन्द के बाद क्या लिया है? एक देखिये, एक स्वभाव लिया है। ध्यान कहाँ है? प्रत्येक जगह वहाँ एक लेना। संस्कृत में एक (शब्द) है। वीतराग नित्यानन्द एक स्वभाव।

यह तो वीतराग आत्मा कैसा है? कि वीतराग नित्यानन्द स्वभाव जिसका है। आहाहा! समझ में आया? वीतराग नित्यानन्द एक स्वभाव जिसका है, ऐसा वापस। वह तो 'एक' रह गया, वह तो ठीक परन्तु वीतराग परमानन्द शब्द जीव का-आत्मा का विशेषण है। आत्मा अभी कैसा है? वीतराग नित्यानन्द सहजानन्द परमानन्द एक स्वभाव है। यह नित्यानन्द लिया है, अब सहजानन्द लेंगे, परमानन्द लेंगे। आहाहा! सम्यग्दृष्टि अपने स्वभाव को—आत्मा को ऐसा मानता है, ऐसा अनुभव करता है, ऐसी परिणति में उसे ऐसा भास होता है कि मैं तो वीतराग हूँ। अभी, हों! नित्यानन्द—नित्य अतीन्द्रिय आनन्द एक स्वभाव स्वरूप मैं हूँ। आहाहा! वह शुद्धात्मा। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि का विषय यह है। धर्मी की दृष्टि यहाँ है। धर्मी की दृष्टि ऐसे आत्मा को स्वीकार करती है, उपादेय मानती है। बाकी सर्वथा सब हेय है। रागादि, दया, दान, विकल्प आदि, शरीर की अवस्था आदि सब कर्मजनित भाव हेय है। आहाहा!

सर्वथा त्याज्य हैं,... ऐसा कहा न? **और सर्व प्रकार आराधनेयोग्य...** सर्व प्रकार।

सेवनयोग्य, सेवनयोग्य, दृष्टि में लेनेयोग्य। आहाहा! आत्मा से भिन्न, कर्मजनित भावों से भिन्न, वीतराग नित्यानन्द एक स्वभाव **जो शुद्धजीव है,....** आहाहा! दृष्टि में कैसा (आत्मा) लेना, ऐसा कहते हैं! कितना पुरुषार्थ है! समझ में आया? अपनी दृष्टि में सम्यग्दर्शन प्राप्त करने को वीतराग नित्यानन्द एक स्वभाव, वह उपादेय है, उस ओर दृष्टि करना, उसका स्वीकार करना। आहाहा! दिशा बदल जाती है। दिशा अर्थात् पर-सन्मुख जो दिशा थी, वह स्वसन्मुख दिशा होने से दशा बदल जाती है। समझ में आया? मुद्दे की रकम यह है। चाहे तो लाख, करोड़ बात करे। यह तो आता है न? छहढाला में (आता है)। लाख बात की बात, करोड़ बात की बात, अनन्त बात की बात। करोड़, लाख बात की बात... फिर क्या आया? 'एक निश्चय उर आणो।' 'एक निश्चय उर आणो, छोड़ी जगत द्वंद्व फंद' द्वैतपना भी छोड़कर। विकल्प—दया, दान, व्रत आदि के विकल्प को भी दृष्टि में से छोड़कर। आहाहा! 'निज आतम उर ध्यावो।' निज आत्मा ऐसा। 'निज आतम उर ध्यावो।'

कैसा है आत्मा? वह तो वीतराग नित्यानन्द एक स्वभाव शुद्ध जीव है। आहाहा! यह आश्रय की बात है। समझ में आया? पर्याय में नित्यानन्द एक स्वभाव वीतरागस्वरूप ही प्रभु है। वीतरागस्वभाव न हो हो तो वीतरागी पर्याय कहाँ से आयेगी और नित्यानन्द स्वभाव न हो तो आनन्द की दशा, पर्याय में अनुभव कहाँ से आयेगा? समझ में आया? एक स्वभाव। वापस एकरूप—भेद नहीं। पर्याय का भेद, वह भेद शुद्धात्मा में नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पर्याय तो व्यवहारनय का विषय है। यह भगवान आत्मा नित्यानन्द वीतराग नित्यानन्द (स्वभाव है)। अरे! कैसे जँचे इसे? आहाहा!

एक समय में वर्तमान वीतराग नित्यानन्द एक स्वभाव शुद्धात्मा है, वह दृष्टि का विषय है। ऐसी दृष्टि हो तो सम्यग्दर्शन होता है। कहो, सेठ! पैसा-फैसा तो तुम्हारा कहीं रह गया। सागर में है न! यहाँ कहाँ आता है? यहाँ ममता है न! आहाहा! ममता के परिणाम भी मेरे नहीं। वह कर्मजन्य उपाधि आत्मा से भिन्न है। रागपरिणाम अपने नहीं, वह कर्मजन्य उपाधि आत्मा से भिन्न है। शरीर का सफेद, काला वर्ण वह कर्मजन्य उपाधि आत्मा से भिन्न है। तो आत्मा है कैसा? आहाहा! भिन्न है तो उससे भिन्न है कौन? समझ में आया? आहाहा! भेदज्ञान कराते हैं, भाई!

तू पूर्णानन्द वीतरागस्वरूप अभी है, हों! आहाहा! पर्याय में राग होने पर पर्याय से भी भिन्न ऐसा भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप है। आहाहा! और दुःखरूप राग की दशा होने पर भी उससे भिन्न नित्यानन्द है। पर्याय में अनेकता होने पर भी स्वभाव एकरूप है। समझ में आया? उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो अभी देव-गुरु-शास्त्र का ठिकाना नहीं और व्रत-ब्रत ले लिये, हो गया चारित्र, हो गयी प्रतिमा। धूल में भी नहीं। प्रतिमा ही नहीं। स्वभाव में नहीं जाने की प्रतिज्ञा है। समझ में आया? नहीं समझे? राग से लाभ माननेवाले, व्रतादि राग को उपादेय माननेवाले को प्रतिज्ञा है कि आत्मा की दृष्टि नहीं करना। समझ में आया? ऋषभजी! आहाहा! यह अपने आया था न? ३६ गाथा में। जिसे राग और पुण्य-पाप के विकल्प उपादेय है, उसे भगवान हेय है। यह आ गया है। समझ में आया? आहाहा! उसे प्रतिज्ञा ही ऐसी हुई है कि यह आत्मा नहीं। मैं तो यह राग और क्रिया वह मैं हूँ। आहाहा! प्रतिज्ञा हुई, अपने आत्मा को हेय करने की। राग को उपादेय करने की प्रतिज्ञा हुई। आहा! यह ३६ गाथा में आ गया है। है न ३६?

'**सदैव परमात्मा वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरतानामुपादेयो**' क्या कहते हैं? जिसने राग से रहित, दया, दान के विकल्प से रहित निर्विकल्प समाधि अर्थात् शान्ति... आहाहा! सम्यग्दर्शन अर्थात् निर्विकल्प समाधि, निर्विकल्प शान्ति। आहाहा! निर्विकल्प शान्ति '**समाधिरतानाम**' निर्विकल्प शान्ति में लीन है। आहाहा! उसे उपादेय है। माणेकचन्दभाई! क्या कहते हैं? भगवान वीतराग नित्यानन्द एक स्वभाव किसे उपादेय है? उसे कौन मानता है? कि जो निर्विकल्प शान्ति में लीन है। आहाहा! समझ में आया? तो कोई ऐसा कहे कि निर्विकल्प शान्ति में लीन है तो तुम उपदेश करने का विकल्प क्यों करते हो? तुमने ऐसा क्यों लिखा? भाई! सुन तो सही। समझ में आया?

राग विकल्प से रहित है, यह सिद्धान्त सिद्ध करते हैं। समझ में आया? और ज्ञानी तो विकल्प आया तो भी निर्विकल्प दृष्टि में निर्विकल्प आत्मा ही उपादेय है। समझ में आया? निरन्तर वह एक उपादेय है। ज्ञानी को राग का उपादेयपना कदापि कभी नहीं होता। आहाहा! और जिसे... यहाँ यह कहा न? देखो! '**सदैव परमात्मा वीतराग-निर्विकल्पसमाधिरतानामुपादेयो भवत्यन्येषांहेय**' आहाहा! अन्तर में जो समाधि

में—शान्ति में आत्मा आया, उसे उपादेय है और उसके अतिरिक्त के को राग में आये और राग को उपादेय माना, उसे आत्मा हेय है। वीतराग नित्यानन्द एकस्वभाव उसे उपादेय नहीं, हेय है। आहाहा! वीतरागमार्ग... समझ में आया? यह व्यवहारवाले लोग चिल्लाहट करते हैं। व्यवहार से निश्चय होता है।

रात्रि में कहा था न? प्रवचनसार। पाँच इन्द्रिय के विषय अपने को सुख-दुःख की कल्पना कराने में अकिंचित्कर हैं। समझ में आया? प्रवचनसार में है। प्रवचनसार में गाथा की टीका में है। अभी कहाँ सब आधार दें। समझ में आया? कौन सी गाथा है, खबर है? सबको कहीं याद होगा? यहाँ तो भाव ख्याल में होता है। निकालो, प्रवचनसार। उसे दो, उसे। हिम्मतभाई को। इतनो क्षयोपशम... समुद्र पड़ा है। भाव याद रहे। कहीं गाथा (याद न हो)। आहाहा! अकिंचित्कर, ऐसा शब्द है। पाँच इन्द्रिय के विषय अपने में सुख-दुःख की कल्पना कराने में अकिंचित्कर है। पाँच इन्द्रिय के विषय किंचित् आत्मा को कुछ करते नहीं। राग कराते नहीं। आहाहा! तो व्यवहार भी, निमित्त भी पर में अकिंचित्कर है। वे निमित्त हुए न? पाँच इन्द्रिय के विषय निमित्त हुए न? परन्तु विषय को अकिंचित्कर कहा। तो निमित्त वह पर में अकिंचित्कर कहा। तो व्यवहार निश्चय में अकिंचित्कर है। आहाहा! गजब बात, भाई! इन्द्रिय का विषय तो इतने में ही आया था। ७६-७७। सुख-दुःख। इन्द्रिय के विषय का सुख। लाओ। ६७? आहाहा! देखो! उपोद्घात।

आत्मा स्वयमेव सुखपरिणाम की शक्तिवाला होने से.... क्या कहते हैं? विषय के समय, पाँच इन्द्रिय के विषय के काल में सुखपरिणाम की शक्ति, सुख अर्थात् यह संसार के सुख, **होने से विषयों का अकिंचित्करपना प्रकाशित करते हैं।** विषय उसे सुख-दुःख की कल्पना में अकिंचित्कर है। देखो! टीका है, हों! है न? ६७ न? पाठ है, देखो! '**अथात्मनः स्वयमेव सुखपरिणामशक्तियोगित्वा**' सुख अर्थात् संसार का सुख, हों! विषय के समय कल्पना होती है कि मुझे यह ठीक पड़ता है, वह सुखपरिणाम अपनी योग्यता से होता है, विषय से नहीं। आहाहा! देखो! '**सुखपरिणामशक्तियोगित्वा**' उसकी योग्यता है। आहाहा! विषय उसे सुखपरिणाम नहीं कराते। क्या कहा? सेठ! यह पैसा-बैसा देखकर हर्ष होता है, वह पैसा नहीं कराते, ऐसा कहते हैं। यह दोनों

सेठिया बैठे। यह तीसरे रहे। यह सब सेठिया ही हैं न! पैसे के-धूल के धनी। यहाँ क्या कहते हैं? आहाहा!

मुमुक्षु : धूल भी उपयोगी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी उपयोगी नहीं होती। दुःख में निमित्त है। निमित्त है, हों! वह दुःख कराता नहीं। निमित्त कहना, वह दूसरी बात है और उससे होता है, वह दूसरी बात है। यहाँ यह आया, देखो! आहाहा!

६७, देखो! पाठ ऐसा है, **विषयों का व्यर्थ अध्यास (-आश्रय) करता है तथापि संसार में या मुक्ति में स्वयमेव सुखरूप परिणमते इस आत्मा को विषय क्या करते हैं?** आहाहा! मुक्ति में स्वयमेव सुखरूप परिणमता है, ऐसा लिया है। परन्तु अभी भी सुख की कल्पना के समय भी। आहाहा! दोनों की बात ली है। **अज्ञानी 'विषय सुख के साधन हैं' ऐसी बुद्धि द्वारा विषयों का व्यर्थ अध्यास (-आश्रय) करते हैं, तथापि संसार में या मुक्ति में...** दोनों को। संसार में कल्पना होती है कि स्त्री के विषय में, इज्जत के लक्ष्य में, सामने खाने की अच्छी चीज़ हो, उसमें लक्ष्य जाये तो वह चीज़, उसे सुख-दुःख की कल्पना कराने में उसे अकिंचित्कर है। आहाहा! ज्ञानतत्त्व अधिकार है। है? **संसार में या मुक्ति में स्वयमेव सुखरूप से परिणमते इस आत्मा को विषय क्या करते हैं?** अथवा विषय अकिंचित्कर हैं, ऐसा लिया है। समझ में आया? यहाँ तो निमित्त पर को कुछ करता नहीं, ऐसा लिया है। हैं? तो निमित्त कहलाता है।

शरीर के भोग, खाने के भोग, आँखों से देखने के भोग, वह सब पाँच इन्द्रिय के भोग का राग है न! तो कहते हैं, पाँच इन्द्रिय के विषय, उनके भोग की वृत्ति में अकिंचित्कर है। आहाहा! कहो, पोपटभाई! यह छह लड़कों के, करोड़ रुपये और यह सुनने से राग होता है, तो कहते हैं कि वे नहीं कराते। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : कौन कराता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : करे स्वयं। समझ में आया? बात तो ऐसी है न, आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही यहाँ कहते हैं कि विषयों की उपस्थिति—हाजिरी होने

पर भी, निमित्त की हाजिरी होने पर भी, अपने विकल्प में सुख-दुःख की कल्पना करता है, उसे यह विषय अकिंचित्कर है, कुछ करते नहीं। आहाहा! कितना स्पष्ट है! अमृतचन्द्राचार्य!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात ही नहीं, खोटी बात है। यह तो यहाँ कहते हैं। निमित्त विकार में अकिंचित्कर है। विकार विषय की वासना में... यहाँ तक बात ली है कि खाने-पीने की चीज़ में अन्दर राग होता है, तो वह खाने-पीने की वस्तु विषय है, वह राग कराने में अकिंचित्कर है। आहाहा! अपने कारण से रागरूप परिणमता है और आनन्द में मोक्ष में सुखरूप परिणमता है, वह स्वयं से (परिणमता है)। उसे व्यवहार क्या करे? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो एकान्त हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकान्त ही है। सेठ अधिक स्पष्ट कराते हैं। यह सम्यक् एकान्त है। अमरचन्दभाई! आहाहा! देखो! कैसी गाथा है! पाठ में ऐसा है न? पाठ में ऐसा है, हों!

तिमिरहरा जइ दिट्ठी जणस्स दीवेण णत्थि कायव्वं।
तह सोक्खं सयमादा विसया किं तत्थ कुव्वंति॥६७॥

पाठ में ऐसा है। कुन्दकुन्दाचार्य क्या कहते हैं? **जिस प्राणी की दृष्टि तिमिरनाशक हो....** यह चोर लोगों को रात्रि के अन्धकार में भी दिखता है, उन्हें दीपक की आवश्यकता नहीं। उस घुवड़ को... वह क्या कहलाता है? घुवड़ तो सही, उल्लू को यह छोटे-छोटे... रात्रि में उड़ते हैं न? क्या कहलाते हैं वे? उन्हें रात्रि में प्रकाश की आवश्यकता नहीं। आहाहा! तिमिरहरा अर्थात् निशाचर। देखो! यहाँ है। रात्रि में घूमनेवाले उल्लू, सर्प और भूत। और कानकडिया होते हैं। कानकडिया कहते हैं, क्या कहते हैं? कानकडिया (एक पक्षी तीव्र रफ्तार से उड़नेवाला) कहते हैं। उसे तिमिरहरा दृष्टि है। उसे अन्धकार में कुछ न दिखाई दे, ऐसा नहीं है। आहाहा! **निशाचरों के नेत्र स्वयमेव अन्धकार को नष्ट करने की शक्तिवाले होने से, अन्धकार को दूर करने के स्वभाववाले**

दीपक—प्रकाशादिक से कुछ प्रयोजन नहीं है (अर्थात् दीपक इत्यादि का प्रकाश कुछ नहीं करता), उसी प्रकार यद्यपि अज्ञानी, 'विषय सुख का साधन है' ऐसी बुद्धि द्वारा (विषयों का) व्यर्थ अध्यास (-आश्रय) करते हैं तो भी—संसार में या मुक्ति में स्वयमेव सुखरूप परिणमते इस आत्मा को विषय क्या करते हैं ? आहाहा! समझ में आया?

इसमें मुझे तो यह कहना है कि यहाँ विषय निमित्त हैं, उन्हें अकिंचित्कर कहा। निमित्त अकिंचित्कर कहा। आहाहा! समझ में आया? निमित्त हो, परन्तु निमित्त अकिंचित्कर है। पर में कार्य करता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! इतनी स्पष्टता करते हैं, लो! समझ में आया? आहाहा! उसी प्रकार देव-गुरु-शास्त्र निमित्त हो, परन्तु उनकी श्रद्धा करने में वह निमित्त अकिंचित्कर है। इसी प्रकार व्यवहार हो... समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि का निमित्त हो, परन्तु वह निमित्त निश्चय सम्यग्दर्शन प्राप्त करने में अकिंचित्कर है। लो, हमारे चन्दुभाई वहाँ अहमदाबाद में व्याख्यान वाँचते हैं न!

मुमुक्षु : यह प्रवचनसार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रवचनसार... प्रवचनसार (अर्थात्) दिव्यध्वनि का सार।

मुमुक्षु : गोम्मटसार....

पूज्य गुरुदेवश्री : गोम्मटसार में भी यह है। सबमें (है)। आहाहा! गाथा भाई को बराबर याद आयी, हों! चन्दुभाई वहाँ वाँचते हैं। ७६ गाथा में नहीं परन्तु इस ओर ६७ में निकला। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि आत्मा का अपने आनन्दरूप परिणमना या संसारी सुख-दुःख की कल्पनारूप परिणमना, उसमें विषय क्या करे? यह तो पाठ है। परविषय निमित्त उसमें क्या करते हैं? आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहकर यह भी कहा कि आत्मा अपना आनन्दमूर्ति प्रभु नित्यानन्द वीतराग एकस्वभाव अपनेरूप परिणमता है, आनन्दरूप परिणमता है, वहाँ व्यवहार अकिंचित्कर है। व्यवहार उसे क्या करता है? आहाहा! समझ में आया? आचार्य इतना स्पष्ट (कहते हैं)। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य

दिगम्बर सन्त थे, भावलिंगी मुनि थे। परमेश्वर की यात्रा की। जीवन्त भगवान की यात्रा (की)। जीवन्त भगवान की। जीवन्त भगवान है न? उन्हें 'जीवन्तस्वामी' कहते हैं, जीवन्तस्वामी कहते हैं। है न यह? बयाना में जीवन्तस्वामी की प्रतिमा है।

हम बयाना गया थे। सीमन्धर भगवान की प्रतिमा का नाम जीवन्तस्वामी है। वह भी भूल गये थे। फिर अपने यहाँ मन्दिर स्थापित किया। उसमें सीमन्धरस्वामी हैं। उसने कहा, सीमन्धर भगवान को स्थापित किया? तो क्या है? 'जीवन्तस्वामी' नाम था न? प्रतिमा निकली। जीवन्तस्वामी। यह जीवन्तस्वामी कौन? जीवता स्वामी सीमन्धर भगवान। बयाना में है। तुम थे वहाँ? वहाँ कहा था। आहाहा! समझ में आया? जीवन्तस्वामी भगवान के पास गये थे। वे कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि विषय क्या करे? आहाहा! प्रभु! बाह्य के अनुकूल विषय और अन्दर अनुकूल निमित्त व्यवहाररत्नत्रय और बाह्य में दूसरे अनुकूल निमित्त, वे तेरी परिणति में क्या करे? आहाहा! कहो, ज्ञानचन्दजी! यहाँ तो ऐसा कहते हैं। आहाहा! निमित्त हो, परन्तु निमित्त पर में करे क्या?

मुमुक्षु : प्रभाव डाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रभाव की कौन सी पर्याय उसमें जाये? कौन सी पर्याय उसमें जाकर प्रभाव डाले? पर्याय का तो उसमें अभाव है। पर की पर्याय का तो उसमें अभाव है। प्रभाव किसका पड़े? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, अपने तो यहाँ आया, **सर्व प्रकार आराधनेयोग्य...** आहाहा! व्यवहार आराधनेयोग्य है, ऐसा नहीं कहा। पर्याय आराधनेयोग्य है, (ऐसा) भी नहीं कहा। आहाहा! समझ में आया? **सर्व प्रकार आराधनेयोग्य वीतराग नित्यानन्द एक स्वभाव जो शुद्धजीव है,...** वह आराधनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय आराधनेयोग्य नहीं, एक समय की पर्याय आराधनेयोग्य नहीं। आराधनेयोग्य पर्याय को आराधनेयोग्य शुद्ध जीव त्रिकाल है। आहाहा! कितना स्पष्ट करते हैं! आहाहा! समझ में आया? **सर्व प्रकार आराधनेयोग्य...** सर्व प्रकार से सेवनयोग्य, सर्व प्रकार से उपादेय करनेयोग्य। **वीतराग नित्यानन्द एक स्वभाव जो शुद्धजीव है,...** आहाहा! बाकी सब त्याज्य है। अज्ञानी को राग उपादेय है, इसलिए ऐसा आत्मा उपादेय है, वह (उसका)

त्याज्य है। आहाहा! यह आया न? ३६ गाथा में। अशेष को हेय है—आत्मा हेय है। गजब बात है! आहाहा! उस ओर की सन्मुख निर्विकल्प समाधि का जिसे अभाव है और विकल्प का जिसे भाव है... आहाहा! उसे निर्विकल्प भगवान आत्मा हेय है। भले क्रियाकाण्ड करके माने कि हम धर्मी हैं, उसे आत्मा हेय है। ....भाई! आहाहा! आचार्यों की शैली तो देखो! दिगम्बर सन्तो...

ज्ञानी को राग हेय है, व्यवहाररत्नत्रय हेय है। अज्ञानी को आत्मा हेय है। आहाहा! जो दया, दान, व्रत के परिणाम को उपादेय मानता है। आहाहा! उसे शुद्ध वीतराग चिदानन्द भगवान हेय है। उसे अनादर है। आहाहा! और जिसे वीतराग नित्यानन्द स्वभाव, एकस्वभाव आराधनेयोग्य है, उसे व्यवहाररत्नत्रय आदि सब हेय है। ऐसी स्पष्ट बात है। आहाहा! और यह डाले ऐसा कि यह पंथ भ्रष्ट है। अरे! उसने डाला। वह तो धर्मदास क्षुल्लक ने लिखा है। पण्डितों को इतनी खबर नहीं कि यह दिगम्बर ग्रन्थ है या सोनगढ़ का ग्रन्थ है? यह तो दिगम्बर का ग्रन्थ है। धर्मदास क्षुल्लक (संवत्) १९४८ में हुए। उन्होंने बनाया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कल स्त्री का नहीं आया था? ऐई! धर्मदास क्षुल्लक संवत् १९४८ में (हुए)। उन्होंने बनाया, वह दिगम्बर ग्रन्थ है। दिगम्बर ग्रन्थ लिखा है, वह सोनगढ़ का है, ऐसा लिखा है। यहाँ भावनगर से प्रकाशित हुआ है न! अरे! परन्तु... अरे! भगवान! इतनी खबर नहीं, प्रभु! ग्रन्थ किसका है, उसकी खबर नहीं।

मुमुक्षु : सोनगढ़ ही दिगम्बर है, बाकी सब अन्यमत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो चीज़ ही यह है न! आहाहा! वह तो उन्होंने दृष्टान्त दिया है। दृष्टान्त दिया है, वापस सिद्धान्त नहीं रखा। सिद्धान्त क्या है? जिसे आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु अनुभव में आया, जिसे आनन्द का स्वाद आया, उसे कदाचित् राग आया तो उसका कोई विशेष बन्ध नहीं होगा और उस राग की प्रसिद्धि बाहर में नहीं होती, आनन्द की प्रसिद्धि होगी, ऐसा कहते हैं। यह तो दृष्टान्त, सिद्धान्त सिद्ध करने के लिये है। उसके बदले अकेले दृष्टान्त दिया और (लिखा), भोपाल में उसका क्लेश

चलता है। और सोनगढ़ स्त्री को भ्रष्ट करने का पंथ चला है। अरर! प्रभु... प्रभु... प्रभु! तुझे यह शोभा नहीं देता, प्रभु! आहाहा! समझ में आया?

हमारी तो सम्प्रदाय में भी स्त्री के सन्दर्भ में बहुत कड़काई थी। हमारे गुरुभाई थे, वे जरा स्त्री के साथ वाँचते थे। वहाँ तो हमारा चातुर्मास था और हमारी प्रसिद्धि बहुत थी न छोटी उम्र से। सुन्दर शरीर। मंजिल के नीचे सीढ़ियाँ होती हैं न? क्या कहते हैं? कहा, चद्दर लगाओ। ऊपर कोई स्त्री आ नहीं सकती। हमारे गुरुभाई ने विरोध किया। स्थानकवासी में तो साधु का आधार है और तुम ऐसा करते हो। कहा, हमको नहीं चलता। स्त्री का संग ऊपर आवे, यह नहीं चलता। एक जवान कन्या थी। चन्दुभाई! वह गुणवन्त, गुणवन्त नहीं? अहमदाबाद। गुणवन्त की माँ कस्तूर। अब तो वृद्ध हो गयी होगी। बहुत वर्ष हो गये। उसे ८०-८२ होंगे। हमारे गुरुभाई थे, उन्होंने कहा, कानजी! इसे एक गाथा दो। सामने बैठे थे। (कहा) महाराज! तुम्हारे हमको कहना नहीं। मैं किसी कन्या को गाथा दूँ, यह मेरी चीज़ नहीं, मेरा काम नहीं। स्त्री के संग में गाथा दो और सिखलाओ, यह मेरा काम नहीं। मुझे किसी दिन कहना नहीं। यह (संवत्) १९८० की बात है। १९८०-८०। ५२ वर्ष हुए। एक गुणवन्त नहीं, वह पतला? उसकी माँ। है, अभी जीवित है। स्त्री के संग में बैठना और उसके साथ बात करना, यह हमारा काम नहीं। समझ में आया? सिखलाओ। सिखलाने का काम हमारा नहीं, तुम जानो, कहा। और यह इतना आरोप डाले। गजब करते हैं, अरे... प्रभु! क्या करता है? भाई! आहाहा! अपनी बात सत्य साबित करने के लिये सामनेवाले को कैसे झूठा करना, भाई! यह नहीं होता, भाई! प्रभु! शोभा नहीं देता। जैनशासन में मुश्किल से सत्य बात बाहर आयी, उसमें इस प्रकार से भ्रष्ट सिद्ध करना, सुनते नहीं, इस प्रकार से अनादर करना, ऐसा नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चले, चले। भाई! क्या हो? यह तो सब... संसार किसे कहे? आहाहा! देखो न! कल वह लड़का गुजर गया। परसों, नहीं? परसों तो गुजर गया, कल तो जलाया। गुजर गया परसों। ... यह तो खबर है न। परसों रात्रि में गये न। यहाँ आया, पुस्तक ली, कहते हैं। कहो, अब उसे कहाँ.... गरीब व्यक्ति होगा। उलझ गया। रेल के

नीचे पड़ गया और टुकड़े... यह चीज़ ऐसी। बापू! अनन्त बार हुई। आहाहा! ऐसे समय में बाहर में रुकना और अन्तर दृष्टि न करना, बड़ा नुकसान है। समझ में आया? जन्म-मरण का अन्त लाने के लिये यह भव है। अनन्त भव का अभाव करने का प्रभु! यह भव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कितने विशेषण दिये हैं! **सर्व प्रकार आराधनेयोग्य...** आहाहा! **वीतराग नित्यानन्द एक स्वभाव जो शुद्ध जीव है, वह इनसे भिन्न है,...** विकार, गोरापन आदि से भिन्न भगवान है और भगवान से गोरा आदि की शरीर की अवस्था भिन्न है। **तो भी जो पुरुष विषय कषायों के आधीन होकर...** आहाहा! **शरीर के भावों को अपने जानता है,...** हमारा शरीर सुन्दर है, कोमल है, विषय लेने में दूसरा जीव प्रसन्न होगा। अरे! प्रभु! क्या मानता है? आहा! यह कोमल शरीर आदि तो माँस के हड्डियों की चीज़ है। आहाहा! और सुन्दर दिखता है, वह तो जरा चाम है। गन्ने में छिलका होता है न? छाल। ऊपर की छाल निकाले तो गन्ना मीठा लगे। इसी प्रकार यहाँ छाल निकाले तो थूकने जैसे यह चीज़ (शरीर) नहीं। यह चमड़ी की मिट्टी है। गार समझते हो? लींपण... लींपण। हड्डियों के ऊपर, माँस के ऊपर चमड़ी लींपण है। अरे! भगवान! समझ में आया? ऐसे शरीर से मैं भोग लेता हूँ और मुझे मजा आता है, प्रभु! महा मिथ्यात्व दशा है। समझ में आया? आहाहा! यह मिथ्यात्व परिणत कहते हैं। यह मिथ्यात्व परिणत हुआ। आहाहा! वह विषयों का स्वाद राग का हुआ, उसे मजा लगा, वह तो मिथ्यात्व का परिणमन है। आहाहा! आनन्द के नाथ के सन्मुख देखने से आनन्द है। विषय सन्मुख देखने में तो दुःख है। उसमें तू आनन्द मानता है। वह मिथ्यात्व का परिणमन है। समझ में आया? आहाहा!

उस अकिंचित्कर में पाँचों विषय लिये हैं, हों! शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श, पाँचों। कान में जो निन्दा के शब्द पड़ते हैं, वे तुझे द्वेष उत्पन्न करने में अकिंचित्कर है। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार आँख से स्त्री का सुन्दर रूप देखे, तो वह स्त्री का सुन्दर रूप तुझे राग उत्पन्न करावे, वह अकिंचित्कर है। आहाहा! गुलाब का फूल हो। अन्दर राग हुआ। वह फूल अन्दर राग उत्पन्न कराने में अकिंचित्कर है। आहाहा! इसी प्रकार मेसुख हो। मोहनथाल... मोहनथाल कहते हैं? मोहनथाल को खाते हैं। बर्फी जैसा होता है। सफेद बर्फी होती है, हमारे मोहनथाल कहते हैं। उसे खाते हैं। क्या है? वह

विषय तुझे राग उत्पन्न कराता है? इसी प्रकार मेसुख और मोहनथाल तुझे राग उत्पन्न कराता है? भगवान तो इनकार करते हैं। अकिंचित्कर है। आहाहा! ....गजब बात है!

निमित्त होने पर भी निमित्त पर का कार्य करने में अकिंचित्कर है। आहाहा! निमित्त होना और पर का कार्य करना, दोनों में पूर्व-पश्चिम जितना अन्तर है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ पर की सुन्दरता देखकर अपने में राग, हर्ष, उत्साह हो जाये तो कहते हैं कि उत्साह में पर की सुन्दरता अंकिचित्कर है। तेरे उत्साह में राग के उत्साह में वह कुछ कर नहीं सकता। आहाहा! ऐसा परमानन्द का नाथ अपने शुद्ध परिणमन में व्यवहाररत्नत्रय निमित्त होने पर भी, वह अकिंचित्कर है। उसे कर नहीं सकता। आहाहा! कहो, समझ में आया? बात तो यह है। जब बैठे तब यह बात बैठेगी, तब इसे धर्म होगा। आहाहा!

विषय कषायों के आधीन होकर शरीर के भावों को अपने जानता है, वह अपनी शुद्धात्मानुभूति से रहित हुआ... आहाहा! क्या कहते हैं? देखो! पर में राग की मिठास करके अपनी शुद्धात्मानुभूति से रहित हुआ। मूढ़ात्मा है। आहाहा! यह ८० हुई। ८१।

समकिती को विषयभोग का राग होता है, परन्तु सुखबुद्धि नहीं, दुःखबुद्धि है। आहाहा! भरत चक्रवर्ती को ९६ हजार रानियाँ, वे भी क्षत्रियाणी। आहाहा! ९६ हजार। आसक्ति की कल्पना होती है, उसमें सुखबुद्धि नहीं। दुःखबुद्धि लगती है। काला नाग देखे, वैसे राग में दुःख दिखता है। आहाहा! धर्मी को राग में दुःख दिखता है। आहाहा! अज्ञानी को उसमें मजा लगता है। इतना अन्तर है। समझ में आया? आहाहा! **शुद्धात्मानुभूति से रहित हुआ...** आहाहा! विषयों के, कषाय के **आधीन होकर...** आहाहा! (उन) **भावों को अपने जानता है, वह अपनी शुद्धात्मानुभूति...** सम्यग्दर्शन से **रहित हुआ मूढ़ात्मा है।** आहाहा!

गाथा - ८१

अथ –

८१) हउँ वरु बंभणु वइसु हउँ हउँ खत्तिउ हउँ सेसु।
पुरिसु णउँसर इत्थि हउँ मण्णइ मूढु विसेसु।।८१।।

अहं वरः ब्राह्मणः वैश्यः अहं अहं क्षत्रियः अहं शेषः।
पुरुषः नपुंसकः स्त्री अहं मन्यते मूढः विशेषम्।।८१।।

हउं वरु बंभणु वइसु हउं हउं खत्तिउ हउं सेसु अहं वरो विशिष्टो ब्राह्मणः अहं वैश्यो वणिग् अहं क्षत्रियोऽहं शेषः शूद्रादि। पुनश्च कथंभूतः। पुरिसु णउं सउ इत्थि हउं मण्णइ मूढु विसेसु पुरुषो नपुंसकः स्त्रीलिङ्गोऽहं मन्यते मूढो विशेषं ब्राह्मणादिविशेषमिति। इदमत्र तात्पर्यम्। यतिश्चयनयेन परमात्मनो भिन्नानपि कर्मजनितान् ब्राह्मणादिभेदान् सर्वप्रकारेण हेयभूतानपि निश्चयनयेनोपादेयभूते वीतरागसदानन्दैकस्वभावे स्वशुद्धात्मनि योजयति संबद्धान् करोति। कोऽसौ कथंभूतः। अज्ञानपरिणतः स्वशुद्धात्मतत्त्वभावनारहितो मूढात्मेति।।८१।।

आगे फिर मिथ्यादृष्टि के लक्षण कहते हैं –

मैं हूँ ब्राह्मण श्रेष्ठ तथा मैं क्षत्रिय वैश शूद्र हूँ मैं।
मैं हूँ पुरुष नपुंसक स्त्री मूढ़ जीव ऐसा माने।।८१।।

अन्वयार्थ :– [मूढः] मिथ्यादृष्टि अपने को [विशेषम् मनुते] ऐसा विशेष मानता है, कि [अहं] मैं [वरः ब्राह्मणः] सबमें श्रेष्ठ ब्राह्मण हूँ, [अहं] मैं [वैश्यः] वणिक् हूँ, [अहं] मैं [क्षत्रियः] क्षत्री हूँ, [अहं] मैं [शेषः] इनके सिवाय शूद्र हूँ, [अहं] मैं [पुरुषः नपुंसकः स्त्री] पुरुष हूँ, और स्त्री हूँ। इस प्रकार शरीर के भावों को मूर्ख अपने मानता है। सो ये सब शरीर के हैं, आत्मा के नहीं हैं।

भावार्थ :– यहाँ पर ऐसा है कि निश्चयनय से ये ब्राह्मणादि भेद कर्मजनित हैं, परमात्मा के नहीं हैं, इसलिये सब तरह आत्मज्ञानी के त्याज्यरूप हैं तो भी जो निश्चयनयकर आराधने योग्य वीतराग सदा आनंदस्वभाव निज शुद्धात्मा में इन भेदों को लगाता हैं, अर्थात् अपने को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र मानता है; स्त्री, पुरुष, नपुंसक, मानता है, वह कर्मों का बंध करता है, वही अज्ञान से परिणत हुआ निज शुद्धात्म तत्त्व की भावना से रहित हुआ मूढात्मा हैं, ज्ञानवान् नहीं है ।।८१।।

गाथा-८१ पर प्रवचन

८१ (गाथा)। **आगे फिर मिथ्यादृष्टि के लक्षण कहते हैं :-**

८१) हउँ वरु बंभणु वइसु हउँ हउँ खत्तिउ हउँ सेसु।
पुरिसु णउँसर इत्थि हउँ मूढु विसेसु॥८१॥

अन्वयार्थः—मिथ्यादृष्टि अपने को ऐसा विशेष जानता है,... आहाहा! '**विशेषम् मनुते**' है न? **मैं सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मण हूँ,...** आहाहा! मैं ब्राह्मण हूँ, ऐसा मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है, कहते हैं। आत्मा में ब्राह्मण क्या? वह तो शरीर की दशा है। **मैं वैश्य हूँ, मैं वणिक हूँ...** मैं बनिया हूँ। बनिया शब्द से (आशय) व्यापार करनेवाला। सब व्यापार। वणिक फिर खोजा हो तो भी वह वणिक कहलाता है। व्यापारी अर्थात् वणिक है। **मैं क्षत्री हूँ....** मिथ्यादृष्टि है, कहते हैं। आहाहा! क्षत्रिय तो शरीर की जाति है, आत्मा क्षत्रिय कहाँ से हुआ? मैं गरासिया हूँ, मैं काठी हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ। आहाहा!

मुमुक्षु : तुकारो नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होता। उसे तुकारे नहीं बुलाया जाता, आहाहा! ऐसा कहे। उसे दो नाम से बुलाया जाता है। तब चैन आवे उसे। मूढ़ है।

मैं इनके सिवाय शूद्र हूँ,... शूद्र होते हैं न? आत्मा कहाँ शूद्र है? वह तो शरीर की दशा है, भगवान! तू तो उस दशा से भिन्न है। आहाहा! **मैं पुरुष हूँ,...** लो! मैं आदमी हूँ। तू तो आत्मा है न! वीतरागी... आहाहा! नित्यानन्दस्वभाव भगवान तू तो है न! उसमें पुरुष कहाँ से आया? मैं पुरुष हूँ, मैं नपुंसक हूँ। यह हिजड़ा... हिजड़ा होते हैं न? पावैया। **और स्त्री हूँ।** मैं तो स्त्री हूँ, भाई! मैं पराधीन स्त्री हूँ। अरे! भगवान! तू स्त्री कैसा? वह स्त्री तो शरीर की जाति है। भगवान अन्दर वीतराग नित्यानन्द स्वभावी एकस्वभावी विराजता है। यह वह मैं, यह वह मैं। आहाहा! यह नहीं... यह नहीं। भाई! आहाहा! समझ में आया? आहाहा! नपुंसक, स्त्री। **इस प्रकार शरीर के भावों को मूर्ख अपने मानता है। सो ये सब शरीर के हैं, आत्मा के नहीं हैं।**

भावार्थः—यहाँ पर ऐसा है कि निश्चयनय से ये ब्राह्मणादि भेद कर्मजनित

हैं,.. कर्म के कारण से उपाधि आयी है। अपना स्वभाव—आत्मा नहीं। **परमात्मा के नहीं है,...** परमात्मा कौन? अपना। यह परमात्मप्रकाश है न! भगवान परमात्मस्वरूप है। वीतराग निजानन्द परमानन्द लक्षण एकस्वभावी प्रभु, उसे ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि है नहीं। आहाहा! वह तो बाहर की कर्मजनित उपाधि है। उसमें मैं क्षत्रिय हूँ और वैश्य हूँ और शूद्र हूँ। अरे! मैं चण्डाल हूँ। भाई! तू चण्डाल नहीं, वह तो शरीर की स्थिति है, भगवान! तू तो वीतराग नित्यानन्दस्वभाव एकस्वभावी प्रभु है न! तुझमें पर्याय के भेद भी नहीं। शरीर की अवस्था तो नहीं, परन्तु मैं तो त्रिकाली वीतराग नित्यानन्द सहजानन्द -स्वभाव एक हूँ। आहाहा! उसे दृष्टि में लेना, बापू! यह कुछ बात है! पुरुषार्थ चाहिए। पहले सम्यग्दर्शन करना, उसमें अनन्त पुरुषार्थ है। वह कहीं साधारण बात नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! है?

यहाँ पर ऐसा है कि निश्चयनय से ये ब्राह्मणादि भेद कर्मजनित हैं, परमात्मा के नहीं हैं, इसलिए सब तरह आत्मज्ञानी के त्याज्यरूप हैं... आत्मज्ञानी को, मैं क्षत्रिय हूँ, आदि त्याज्य है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को मैं क्षत्रिय हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, मैं वैश्य हूँ, वह त्याज्य है। वह मैं नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। परमात्मप्रकाश अभी और दोपहर को समयसार। वह भी परमात्मप्रकाश है न! आहाहा!

तो भी जो निश्चयनयकर आराधने योग्य... देखो! **वीतराग सदा आनन्दस्वभाव...** पहले में वीतराग नित्यानन्द लिया था। यहाँ वीतराग सहजानन्द लिया है। पाठ में है। अन्दर देखो! '**वीतरागसदानन्दैकस्वभावे**' ऐसा है। है न? पहले में वीतराग नित्यानन्द लिया था, यहाँ वीतराग सदानन्द एकस्वभाव है। सदानन्द एकस्वभाव। भगवान तो सदा आनन्द, वीतराग एक आनन्दस्वभावी है। आहाहा! **आराधने योग्य वीतराग सदा आनन्द एक स्वभाव...** वहाँ एक लेना। एक-एक स्वभाव। ८१। एक है? अन्दर नहीं। खबर नहीं। हिन्दी में नहीं। ८१, यह तो ८० में गया। यह तो ८१ की बात है। है? **वीतराग सदा आनन्द एक स्वभाव,...** आहाहा! **निज शुद्धात्मा...** देखो! अपना निज शुद्धात्मा ऐसा। पर नहीं, परमात्मा पद सिद्ध आदि तो उनके हैं। यह तो निज शुद्धात्मा, ऐसा है न? स्वशुद्धात्मा पाठ है न? '**वीतरागसदानन्दैकस्वभावे स्वशुद्धात्मनि योजयति संबद्धान् करोति।**' आहाहा! देखो!

भेदों को लगाता है.... मैं क्षत्रिय हूँ और मैं ब्राह्मण हूँ, ऐसे भेद को वीतराग सहजानन्द में जोड़ता है, वह मिथ्यादृष्टि है, मूढ़ है। आहाहा! मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ। अरे! प्रभु! पुरुष कौन? वह तो जड़ की दशा है। उसका जिसे अभिमान है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। वीतराग सहजानन्द एकस्वभाव से विपरीत वह चीज़ है, भिन्न है और उस चीज़ से तेरी चीज भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? **शुद्धात्मा में इन भेदों को लगाता है...** देखो! मैं पुरुष हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ। **अर्थात् अपने को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र मानता है। स्त्री, पुरुष, नपुंसक मानता है, वह कर्मों का बन्ध करता है,...** मिथ्यादृष्टि नये कर्मों का बन्ध करता है। आहाहा!

वही अज्ञान से परिणत हुआ... अज्ञान से परिणत हुआ। आहाहा! **निज शुद्धात्म तत्त्व की भावना से रहित हुआ...** निज शुद्धात्मतत्त्व। है? आहाहा! '**स्वशुद्धात्मतत्त्व-भावनारहितो**' संस्कृत है। **मूढ़ात्मा है,....** आहाहा! चाहे तो साधु नाम धराता हो, परन्तु मैं पुरुष हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ। त्यागी आर्यिका हो तो मैं स्त्री हूँ, मानते हैं तो सब मूढ़ात्मा मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! **ज्ञानवान नहीं है।** उसे ज्ञानी नहीं कहते। वह मिथ्यादृष्टि है। दो गाथायें हुईं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ८२

अथ –

८२) तरुणउ बूढउ रूयडउ सूरउ पंडिउ दिव्वु।
खवणउ वंदउ सेवडउ मूढउ मण्णइ सव्वु।।८२।।

तरुणः वृद्धः रूपवान् शूरः पण्डितः दिव्यः।
क्षपणकः वन्दकः श्वेतपटः मूढः मन्यते सर्वम्।।८२।।

तरुणउ बूढउ रूयडउ सूरउ पंडिउ दिव्वु। तरुणो यौवनस्थोऽहं वृद्धोऽहं रूपस्व्यहं शूरः सुभटोऽहं पण्डितोऽहं दिव्योऽहम्। पुनश्च किंविशिष्टः। खवणउ वंदउ सेवडउ। क्षपणको दिगम्बरोऽहं बन्दको बौद्धोऽहं श्वेतपटादिलिङ्गधारकोऽहमिति मूढात्मा सर्वं मन्यत इति। अयमत्र तात्पर्यार्थः। यद्यपि व्यवहारेणाभिन्नान् तथापि निश्चयेन वीतरागसहजानन्दैकस्वभावा–त्परमात्मनः भिन्नान् कर्मोदयोत्पन्नान् तरुणवृद्धादिविभावपर्यायान् हेयानपि साक्षादुपादेयभूते स्वशुद्धात्मतत्त्वे योजयति। कोऽसौ। ख्यातिपूजालाभादिविभावपरिणामाधीनतया परमात्मभावनाच्युतः सन् मूढात्मेति।८२।

आगे फिर मूढ़ के लक्षण कहते हैं –

मैं हूँ तरुण सुरूपी दिव्य वृद्ध मैं पण्डित शूर रु बौद्ध।
तथा दिगम्बर श्वेताम्बर इत्यादि रूप जो माने मूढ़।।८२।।

अन्वयार्थ :– [तरुणः] मैं जवान हूँ, [वृद्धः] बुड्ढा हूँ, [रूपस्वी] रूपवान हूँ, [शूरः] शूरवीर हूँ, [पण्डितः] पंडित हूँ [दिव्यः] सबमें श्रेष्ठ हूँ [क्षपणकः] दिगंबर हूँ, [वन्दकः] बोद्धमत का आचार्य हूँ [श्वेतपटः] और मैं श्वेताम्बर हूँ, इत्यादि [सर्वम्] सब शरीर के भेदों को [मूढ़ः] मूर्ख [मन्यते] अपना मानता है। ये भेद जीव के नहीं हैं।

भावार्थ :– यहाँ पर यह है कि, यद्यपि व्यवहारनयकर ये सब तरुण वृद्धादि शरीर के भेद आत्मा के कहे जाते हैं, तो भी निश्चयनयकर वीतराग सहजानंद एक स्वभाव जो परमात्मा उससे भिन्न हैं। ये तरुणादि विभावपर्याय कर्म के उदयकर उत्पन्न हुए हैं, इसलिये त्यागने योग्य हैं, तो भी उनको साक्षात् उपादेयरूप निज शुद्धात्म तत्त्व में जो जो लगाता है, अर्थात् मानता है, वह अज्ञानी जीव बड़ाई, प्रतिष्ठा, धन का लाभ

इत्यादि विभाव परिणामों के आधीन होकर परमात्मा की भावना से रहित हुआ मूढात्मा हैं, वह जीव के ही भाव मानता है।।८२।।

वीर संवत् २५०२, श्रावण कृष्ण ६, रविवार
दिनांक - १५-०८-१९७६, गाथा-८२, प्रवचन-६३

.... पुस्तक किसकी है, इसकी खबर नहीं। यह तो दिगम्बर पुस्तक है। यहाँ बहुत पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, उसमें से यह पुस्तक है। समझ में आया? पहली पुस्तक (संवत्) १९४६ में प्रकाशित हुई। दूसरी बार पुस्तक ४० वर्ष बाद प्रकाशित हुई। ६३ वर्ष पहले। अभी भावनगर से प्रकाशित हुई है। तीन बार प्रकाशित हुआ है। समझ में आया? यह तो दृष्टान्तरूप से इन्होंने दिया है। जैसे व्यभिचारी स्त्री हो, घर में कामकाज करती हो परन्तु उसका लक्ष्य तो परपुरुष के ऊपर है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव का लक्ष्य अपने आत्मा के ऊपर है। वह कामकाज आदि करता है, ऐसा दिखता है, तो भी अपना लक्ष्य छोड़ता नहीं। अन्तर्दृष्टि तो मैं ज्ञायकस्वरूप हूँ, ऐसी दृष्टि है। वह दृष्टान्त देकर फिर यह दृष्टान्त दिया कि कोई स्त्री, स्यात्, ऐसा शब्द है। कदाचित्, ऐसा शब्द है। समझ में आया? पति की विद्यमानता में परपुरुष के साथ कुछ हो जाये तो उसे दोष बाहर नहीं आता। इसी प्रकार जिसके ऊपर सम्यग्दर्शन—आत्मा का आनन्द परमब्रह्म परमात्मा जिसकी दृष्टि में आया है, आहाहा! शुद्ध निरंजन नित्यानन्द प्रभु सहजानन्द भगवान आत्मा जिसे दृष्टि में आया है, जिसकी पर्याय का स्वामी सहजानन्द भगवान निज स्वरूप है, उसे कदाचित् कोई कर्म के निमित्त के संग में कोई रागादि आ जाये और दोष लगे तो उस दोष की कोई कीमत नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह दृष्टान्त देकर सिद्धान्त यह सिद्ध करना है। वह तो दृष्टान्त अकेला दिया है।

मुमुक्षु : छहढाला में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छहढाला में आता है। नगरनारी को प्यार... आता है। क्या हो? परन्तु भगवान! जैनशासन में बहुत नुकसान होता है। मुश्किल से यह सत्य बात आयी, उसमें ऐसा नहीं करना चाहिए। उसका विचार करके क्या है, किसका ग्रन्थ है, किसने लिखा है (यह विचारना चाहिए)। आहाहा! अरे! यह तो भाई पण्डितजी कल

जानेवाले हैं न, इन्होंने प्रश्न किया था कि मुझे सम्यग्ज्ञान दीपिका का आधार देखना है। वहाँ बारामति में कोई पूछे न। यह तो सबको समझने का है। (संवत्) १९४६ के वर्ष में (प्रकाशित हुआ है)। धर्मदास क्षुल्लक १९४८ में गुजर गये। (संवत्) १९४८। उनकी १९४६ की उपस्थिति में उन्होंने स्वयं ज्ञानसागर मुम्बई प्रकाशित किया है। वह पुस्तक मैंने पहले (संवत्) १९७८ में देखी थी। यह तो अभी नये प्रकाशित हुए। ४० वर्ष हुए। मुझे देखे हुए तो ५६ वर्ष हुए। पहले यही पुस्तक थी, हों! देखो! यही पुस्तक थी—जूना—पुराना। एक लाईन की है। १९७८ में मैं जंगल में जाकर वाँचता था। हमारी तो लीनता अन्दर में थी न! शास्त्र देखते थे, हम तो बहुत देखते थे। क्या कहते हैं यह? यह पुस्तक थी, लो! यह पुस्तक यहाँ आयी, भाई को बताने को। इसके ९३ पृष्ठ पर है, पुरानी पुस्तक में। नयी पुस्तक में ८० पृष्ठ पर है। अपने इस पुस्तक में... यह भी प्रकाशित हुई है न? इसमें ११५ पर है। यह अभी नयी प्रकाशित हुई है। ११५ पर है। हिन्दी है? फूलचन्दजी ने प्रचलित भाषा में बनायी है। यह शब्द और शास्त्र तो दिगम्बर क्षुल्लक का है। अभी प्रचलित भाषा में (अनुवाद करके प्रकाशित हुई है)।

उसमें यह लिखा है, देखो! जैसे... यह शब्द इन्हें मिले हैं। जिस स्त्री के सिर पर अपना पति है.... स्यात् शब्द है न? कदाचित्। यहाँ तो कदाचित् की बात है। स्त्री, परपुरुष के निमित्त से गर्भ भी धारण करे तो भी उसे दोष लगता नहीं अर्थात् बाहर प्रसिद्ध नहीं होता, ऐसा। इसी प्रकार किसी पुरुष के सिर पर—स्वरूप मस्तक पर स्व सम्यग्ज्ञानरूपी परमब्रह्म परमात्मा है। आहाहा! जिसकी दृष्टि में, उसे परमात्मा ही तैरता है अन्दर। शुद्ध चिदानन्द, यहाँ कहा न? नित्यानन्द शुद्ध चिदानन्दस्वभाव। ऐसी जिसे दृष्टि हुई है, उसे कदाचित् कोई रागादि हो और उससे दोष हो, परन्तु सिर पर धनी—स्वामी है न, इसलिए उस दोष की कोई कीमत नहीं है, ऐसा कहते हैं।

इसी प्रकार निर्जरा अधिकार में कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा, अमृतचन्द्राचार्य ने लिखा, ज्ञानी के भोग निर्जरा के हेतु हैं। वहाँ भोग निर्जरा का हेतु है, ऐसा उन्हें कहना है? समझ में आया? वह तो कुन्दकुन्दाचार्यदेव का कथन है। ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु है। इसका अर्थ ऐसा करे कि देखो! ज्ञानी भी भोग करता है, और उसे निर्जरा होती है, ऐसा उसका अर्थ है? ऐसा नहीं है। यहाँ तो ज्ञानी की आत्मा के आनन्दस्वभाव पर

दृष्टि है। परमानन्द के नाथ का अन्तर में अनुभव है, उसे कोई रागादि आ जाये, चारित्रदोष हो... दर्शनपाहुड़ में कहा न ? '**दंसणभट्ठा ण सिज्झंति, सिज्झंति चरियभट्ठा**' चारित्र का दोषवाला है, तो उसे ख्याल में है कि मुझमें यह दोष है। तो वह तो चारित्रदोष टालकर मोक्ष में जायेगा, परन्तु '**दंसणभट्ठा ण सिज्झंति।**' जिसकी श्रद्धा मिथ्यात्व है, राग से धर्म होता है, पुण्य से धर्म होता है, निमित्त से मुझमें लाभ होता है—ऐसा मिथ्यादृष्टि दर्शनभ्रष्ट है। वह भले पंच महाव्रत पालता हो तो भी वह दर्शनभ्रष्ट, ज्ञानभ्रष्ट और चारित्रभ्रष्ट (तीनों से भ्रष्ट) है। ऐसा दर्शनपाहुड़ में (तीसरी गाथा में) आया है। समझे ?

धर्मदास का इरादा तो उस वस्तु को बतलाने का है। जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट नहीं, उसे कोई चारित्रदोष हो जाये तो उसकी कोई विशेष कीमत नहीं है, ऐसा कहते हैं। और चारित्रभ्रष्ट हो, परन्तु दर्शनभ्रष्ट नहीं तो वह चारित्र प्राप्त करके मोक्ष में जायेगा। परन्तु दर्शनभ्रष्ट है, जिसकी श्रद्धा ही विपरीत है। त्रिलोक का नाथ सहजानन्द प्रभु... समझ में आया ? कल आया था न ? वीतराग नित्यानन्द एकस्वभाव। है ? ८० गाथा। सर्व प्रकार से उपादेयभूत वीतराग नित्यानन्द एकस्वभाव ऐसे शुद्ध जीव की दृष्टि हुई। समझ में आया ? और ८१ में यह आया। ८१ में आया न ? '**निश्चयनयेनोपादेयभूते**' निश्चयनय यथार्थदृष्टि में आदरणीय है। '**वीतरागसदानन्दैकस्वभावे स्वशुद्धात्मा**' आहाहा ! त्रिकाली अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान शुद्धात्मा, वही सम्यग्दृष्टि को उपादेय है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी स्पष्ट चीज़, अरे ! न जँचे तो भी सत्य का विरोध किसलिए करना चाहिए ? दृष्टि न रुचे कदाचित्, दृष्टि न हो परन्तु वस्तु का—सत्य का विरोध करने में उसके आत्मा का नुकसान है। लोक में विरोध हो जाये, बहुत विरोध होता है। आहाहा !

यहाँ ८२ (गाथा)। यह तो तीनों का आधार दिया। (संवत्) १९७८ के वर्ष में हमने तो कितने ही दिन व्याख्यान बन्द कर दिये थे। समझ में आया ? हमको अन्दर से ध्वनि आयी थी। ॐ ध्वनि जब आयी तो बोटाद में मैंने कितने ही दिन व्याख्यान बन्द कर दिये। बोटाद में एक वादी गाँव है न ? वहाँ हम १५-२० दिन व्याख्यान नहीं पढ़ा था और एकान्त में शास्त्र वाँचते थे। समझे ? उसमें यह धर्मदास क्षुल्लक का आया था। ओहो ! बात तो यथार्थ करते हैं। आहाहा ! जिसकी दृष्टि तत्त्वज्ञान हुआ, उसे कदाचित्

चारित्र का दोष हो तो भी उसे भ्रष्ट नहीं कहा जाता। चारित्र से भ्रष्ट है, दर्शन से भ्रष्ट नहीं कहा जाता। समझ में आया? और कोई व्रतादि, पंच महाव्रतादि पालता हो परन्तु दर्शनभ्रष्ट है, इस व्रत से धर्म होता है, ऐसा मानता है, वह तो दर्शनभ्रष्ट, ज्ञानभ्रष्ट और चारित्रभ्रष्ट है। तीनों से भ्रष्ट है। और शीतलप्रसाद ने तो लिखा है, नहीं? शीतलप्रसाद। बहुत वाँचना, सम्यग्ज्ञान दीपिका जैसी, ऐसा कहीं लिखा है। कहीं आता है, है अवश्य। किसी पुस्तक में होगा। है? आहाहा!

दिगम्बर शास्त्र का पुस्तक है। ब्रह्मचारी क्षुल्लक धर्मदास। जिसने उसमें ऐसा लिखा है, जो समयसार की ४९ गाथा है, उसमें लिया है कि भगवान आत्मा के अतिरिक्त जो छह द्रव्य व्यक्त हैं, ज्ञेय हैं, उनसे आत्मा भिन्न अव्यक्त है। ४९ गाथा के अव्यक्त के छह बोल। उसमें पहला बोल ऐसा है। समझ में आया? जो ज्ञेय है और व्यक्त है। इसका अर्थ कैसा लिखा है, वह बतलाना है। अपनी स्वतन्त्र (शैली से) लिखा है। छह द्रव्यस्वरूप लोक जो ज्ञेय है, व्यक्त है, उससे जीव अन्य है, इसलिए अव्यक्त है। इसका अर्थ उन्होंने ऐसा किया है, छह द्रव्य से भिन्न होता है तो भगवान आत्मा सप्तम (द्रव्य) हो जाता है। समझ में आया? उसमें से लिया है। पाठ ऐसा है न? छह द्रव्यस्वरूप लोक। छह द्रव्यस्वरूप लोक जो ज्ञेय है, जो व्यक्त है। छह द्रव्यस्वरूप लोक से जीव भिन्न है। भगवान आत्मा उससे भिन्न है। छह द्रव्यस्वरूप लोक से जीव भिन्न है। उसका इन्होंने स्पष्टीकरण किया है कि आत्मा सप्तम (द्रव्य) हो जाता है। समझ में आया? यह नया अर्थ किया है। यह इसमें है, उसका अर्थ किया है। ऐसा अर्थ कोई दूसरे ने किया नहीं। समझ में आया?

छह द्रव्यस्वरूप लोक। भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ ने छह द्रव्यस्वरूप लोक देखा है। अब वह ज्ञेय है और आत्मा उससे भिन्न ज्ञायक है। भिन्न है तो सप्तम हो गया। समझ में आया? है तो छह द्रव्य में। बण्डीजी! आहाहा! लो, ऐसा अर्थ किया है। जब हमने पहली बार देखा तो सप्तम हो जाता है, वह यहाँ से निकाला है। इस बोल में से निकाला है। समझ में आया? इतनी तो उनकी गम्भीर विचारणा। सप्तम हो जाता है, ऐसा कौन कहे? समझ में आया? और पाठ ऐसा है, छह द्रव्यस्वरूप लोक जो ज्ञेय, उससे भिन्न भगवान ज्ञायक सप्तम हो जाता है, छह द्रव्य से भिन्न। छह द्रव्य का तो एक

समय की पर्याय में जिसे ज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म है, भगवान! जैनदर्शन बहुत सूक्ष्म है, भाई! आहाहा!

ज्ञान की एक समय की पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञान (होता है)। छह द्रव्य में अनन्त सिद्ध, केवली सबका ज्ञान हो जाता है। ज्ञान की एक समय की पर्याय में इतनी सामर्थ्य है। स्वप्रकाशक में (निज) द्रव्य, परप्रकाशक में छह द्रव्य (ज्ञात होते हैं)। समझ में आया? आहाहा! ज्ञान की एक समय की पर्याय में... यह कहा न? १७-१८ गाथा। ज्ञान की एक समय की पर्याय में भगवान आत्मा अनुभव में आता है। सदा सर्व जीवों को। आहाहा! गजब काम किया है न! भाई! इसे खबर नहीं। द्रव्यस्वभाव जो त्रिकाली है, वह ज्ञान की एक समय की पर्याय में वही ज्ञात होता है। क्योंकि स्वप्रकाशक है न! वह ज्ञानपर्याय स्वप्रकाशक है न? आहाहा! तो ज्ञान की एक समय की पर्याय में छह द्रव्य, आत्मद्रव्य पर्याय में अनुभव में आता है। सदा सर्व जीव को। परन्तु जीव की दृष्टि वहाँ नहीं, इसलिए उसे ख्याल नहीं आता। दृष्टि पर्याय के ऊपर और राग के ऊपर है, इसलिए आत्मा पर्याय में जानने में आता है, ऐसी दृष्टि वह नहीं करता। समझ में आया?

अब यहाँ तो मुझे दूसरा कहना है, कि एक समय में ज्ञान की पर्याय में पूरा आत्मा ही अनुभव में आता है तो एक समय में ज्ञान की स्वपरप्रकाशक सामर्थ्य है तो स्व पूरा आता है, ऐसी एक समय की पर्याय में पर छह द्रव्य भी एक समय की पर्याय में परप्रकाशक में जानने में आते ही हैं। आहाहा! समझ में आया? परन्तु अल्प प्रकाश पर के प्रकाश में पर्याय रुक गयी है तो उसकी दृष्टि इतना ही जानती है, ऐसी रुक गयी है। समझ में आया? यह क्या कहते हैं? भाई! यह तो सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ का मार्ग है, प्रभु!

ज्ञान की एक समय की पर्याय में, यहाँ कहते हैं कि छह द्रव्य (ज्ञात) होते हैं। परज्ञेय है न? तो एक समय की पर्याय में ज्ञात होते हैं और उनसे भिन्न है। एक समय की पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञान होता है। उन छह द्रव्य से भगवान आत्मा भिन्न है, ऐसा कहा। आत्मा उनसे भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? यह तो अन्तर की बातें हैं, भगवान! आहा! यह कहीं वाद-विवाद से मिल जाये, ऐसी चीज़ नहीं है। कोई शास्त्र पढ़ लेने से यह चीज़ मिलती नहीं, ऐसी चीज़ है।

दिव्यध्वनि से भी नहीं मिलती, ऐसा आया न? परमात्मप्रकाश में। आहाहा! दिव्यध्वनि से भी जो आत्मा प्राप्त नहीं होता। मुनि गणधर आदि की शास्त्र रचना से भी आत्मा प्राप्त नहीं होता। आहाहा! वह तो अपनी पर्याय में स्वसन्मुख होकर पर्याय में द्रव्य तो जानने में आता है परन्तु सन्मुखता नहीं; इसलिए दृष्टि में 'यह आत्मा अनुभव में आता है', ऐसा ख्याल नहीं आता। और एक समय की पर्याय में स्वपरप्रकाशक के कारण स्व तो अनुभव में आता है परन्तु दूसरे अनन्त द्रव्य हैं, वे भी पर्याय में जानने में आते हैं, ऐसी उनकी सामर्थ्य है। समझ में आया? पूरा लोकालोक जानने में आवे, ऐसी सामर्थ्य है, परन्तु दृष्टिसंकोच के कारण दृष्टि स्वसन्मुख नहीं और पर्याय की रुचि में दृष्टि है, वह पर्याय में पूरा लोकालोक जानता है, ऐसी ताकत की प्रतीति इसे नहीं आती। पर्याय के ऊपर दृष्टि है और पर्याय की इतनी ताकत है, उसकी तो इसे खबर नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहा कि सप्तम हो जाता है। यहाँ यह कहना है कि एक समय की पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञान होता है परन्तु उस पर्याय ने द्रव्य का ज्ञान किया तो वह ज्ञेय और व्यक्त छह द्रव्य से तो भगवान भिन्न हो गया। आहाहा! छह द्रव्य के ऊपर अकेला आत्मा रह गया। ज्ञानचन्दजी! मार्ग ऐसा है, भगवान! आहाहा! ओहोहो! ज्ञानी को कोई रागादि हुआ और राग को जाने, ऐसी पर्याय प्रगट हुई। राग को जाने, ऐसी पर्याय प्रगट हुई। क्योंकि स्व का भान हुआ, स्वप्रकाशक का भान हुआ तो राग का ज्ञान होता है, वहाँ ऐसा राग भी प्रगट हुआ। राग तो क्या है कि वह तो अल्प दशा की बात है। परन्तु पूरा लोकालोक उसमें जानने में आता है, ऐसी उसकी सामर्थ्य है। एक समय की पर्याय में स्वपरप्रकाशक इतनी सामर्थ्य है, तथापि वह एक समय की पर्याय... कहाँ गये? प्रवीणभाई आये हैं या नहीं? यहाँ बैठे हैं। लो! यह ठण्डे व्यक्ति हैं। क्या कहा, समझ में आया? आहाहा!

एक समय की ज्ञान की पर्याय द्रव्य में मिलती नहीं, छह (द्रव्यस्वरूप) लोकालोक में पर्याय मिलती नहीं, तथापि एक समय की पर्याय में पर्याय रहकर द्रव्य को जानती है। द्रव्य पर्याय में आता नहीं, परन्तु पर्याय द्रव्य को जानती है और वह पर्याय लोकालोक में जाती नहीं और लोकालोक पर्याय में आता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : इतनी अधिक सामर्थ्य!

पूज्य गुरुदेवश्री : इतनी अधिक सामर्थ्य है, इससे अनन्तगुणी सामर्थ्य है। इतना लोकालोक है, उससे अनन्तगुणा लोकालोक और अनन्तगुणा काल होता (तो उसे भी जान ले)। यह आया न? परमात्मप्रकाश में दृष्टान्त आ गया है कि मण्डप हो, वहाँ तक बेल चढ़ती है। बेल... बेल। जहाँ तक मण्डप हो, वहाँ तक चढ़ती है। परन्तु बेल में आगे जाने की सामर्थ्य ऐसी है। (परन्तु आगे) मण्डप नहीं। इसी प्रकार लोकालोक का मण्डप है, इतना तो जाना है, परन्तु इससे अनन्तगुना होता तो ज्ञान जानता, इतनी उसकी सामर्थ्य है। आहाहा! समझ में आया?

मुझे तो थोड़ा ऐसा कहना था कि इन्होंने सप्तम हो जाता है, ऐसा लिखा है। भाई! सप्तम हो जाता है, यह इन्होंने लिखा है। पहले जब वाँचा था, तब लगा, ओहो! स्वतन्त्र ध्वनि तो यहाँ यह है। छह द्रव्यस्वरूप लोक। छह द्रव्य में तो अनन्त सिद्ध आ गये। अनन्त सिद्ध, अनन्त केवली आ गये और लाखों केवली भगवान के निकट विराजते हैं, वे भी आ गये। और तीर्थंकर हो गये... आहाहा! छह द्रव्यस्वरूप लोक, वह तो ज्ञेय है—परज्ञेय है। आहाहा! भगवान स्वज्ञेय है, वह परज्ञेय से भिन्न है। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, प्रभु! आहाहा! लो, आज सोलहवाँ दिन है, तुम्हारा। सेठ आज जानेवाले हैं। ऐसा मार्ग है, प्रभु! उसमें कोई टीका-टिप्पणी करे तो कुछ चले, ऐसा नहीं है, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन देते थे? यहाँ किसी का देते नहीं। यहाँ के लेख लिखे हों, तो भी छापते नहीं और निन्दा लिखे तो भी छापते नहीं। उसे जो ठीक लगे, ऐसा कहे। 'जामे जितनी बुद्धि है, उतनो दिये बताय।' आहाहा! उसकी अन्दर की योग्यता न हो, वहाँ तक... पर उसे समझा सकता है? आहाहा! ....

अपना गुरु आत्मा है। क्योंकि पर्याय द्रव्य का आदर करती है तो अपना आत्मा ही गुरु है। परगुरु तो फिर निमित्त से, व्यवहार से कहने में आते हैं। आहाहा! अपनी पर्याय अपने स्वसन्मुख झुकती है तो वह गुरु हुई। समझ में आया? उससे जानने में

आया। देव भी अपना आत्मा है। दिव्यशक्ति का धारक, कलश में आता है न? अपना देव। देव नहीं आता? सूर्य जैसे देव है और प्रकाशित करता है। आता है न? कलश में आता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा स्वयं देव और प्रकाश है। आहाहा! चैतन्यप्रभु अपना स्वरूप देव है। दिव्यशक्ति का धारक प्रभु। ओहोहो! वह देव है।

मुमुक्षु : देव तो वहाँ देवालय में है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह देव यहाँ है। वे तो परदेव हैं। साक्षात् भगवान हो तो भी परदेव है। यह तो स्थापना निक्षेप है। परन्तु भावनिक्षेपवाले भगवान हो तो भी यहाँ परदेव है। छह द्रव्य में ज्ञेय में जाते हैं। आहाहा! बण्डीजी! मार्ग ऐसा है, भगवान! यह तो भगवान के पास से, मानो भगवान देते हों, बोलते हों, ऐसा यहाँ तो लगता है। भगवान कहते हैं कि ऐसा है, भाई! आहाहा! समझ में आया?

छह द्रव्यस्वरूप लोक ज्ञेय है। पश्चात् व्यक्त अर्थात् बाह्य, ऐसा। तब भगवान आत्मा उस ज्ञेय से भिन्न, व्यक्त से भिन्न, उसको अव्यक्त कहा। आहाहा! समझ में आया? पूर्णानन्द का नाथ भगवान जिसकी पर्याय में पूरा द्रव्य जानने में आया और उस पर्याय में वह लोकालोक जानने में आया, ऐसा भगवान जो द्रव्य है, अकेली पर्याय नहीं... आहाहा! एक पर्याय स्वद्रव्य को जाना और लोकालोक को जाना, वह अकेली पर्याय नहीं, पर्याय तो यहाँ व्यक्त है तो उससे द्रव्य अव्यक्त है। आहाहा! समझ में आया? ओहो! सन्तों ने तो गजब काम किया है! दिगम्बर मुनियों ने... आहाहा! केवली का विरह भुलावे, ऐसी उनकी वाणी है। आहा! अन्दर में चोट लग जाये। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो पुस्तक में सप्तम कहा है, उस पुस्तक का दृष्टान्त दिया। ऐसा मुझे कहना है। भाई! यह सप्तम हो जाता है, उसका स्पष्टीकरण किया है, उन्होंने यह दृष्टान्त दिया है। अब तुम्हारे कितनी निन्दा, किसकी करनी है? बण्डीजी! समझे? यहाँ तो नाम आया है न, इसमें... यह पुस्तक प्रकाशित हुई, उसमें नाम आया है। नाम आया परन्तु पुस्तक किसकी है? यह उसमें आया है, इसलिए जरा (विरोध किया है)। समझे न? पहले पृष्ठ पर आया न? पूज्यश्री कानजीस्वामी ग्रन्थमाला, पुष्प-१। इसलिए मानो यहाँ की पुस्तक है। भावनगरवालों ने ८०००० निकाले हैं न? हीरालाल आये हैं? नहीं

आये? यह बैठे। यह हीरालालजी हैं। उद्घाटन के समय ८०००० इन्होंने दिये हैं। सत्साहित्य और दूसरे लगभग डेढ़ लाख होंगे और अभी एक लाख आये हैं। शान्तिभाई है या नहीं? कहाँ गये? चले गये? वह शान्तिभाई झवेरी है। उन्होंने अभी एक लाख दिये। अस्सी हजार इन्होंने, एक लाख दूसरे, ऐसा करके ढाई लाख हो गये। साहित्य सस्ता करना। हीरालालजी है न? हीरालालजी मौन हैं, गूँगे जैसे हैं। बहुत उदार हैं और रुचि भी है। यहाँ नाम आया न? पूज्यश्री कानजीस्वामी ग्रन्थमाला पुष्प-१। मानो यहाँ की पुस्तक है। परन्तु यह तो पुस्तक छापने में पहली है। यहाँ की पुस्तक कहाँ है? यह नाम आया न, परन्तु ऊपर लिखा है—'श्री क्षुल्लक धर्मदासजी विरचित'। यह तो वापस भूल गये।

मुमुक्षु : कषाय काम करती है, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो करती है। भगवान! ऐसा आरोप करने में नुकसान है, भाई! आहाहा! क्षुल्लक धर्मदासजी विरचित, उसमें लिखा है। ऊपर लिखा है। छापने में ऊपर लिखा है। भाई ने भावनगर की ओर से पहला प्रकाशित किया है। यह मूल तो हीरालालजी की ओर से है। 'श्री क्षुल्लक धर्मदासजी विरचित'। 'श्री कानजीस्वामी विरचित' है? आहाहा! अरे! भगवान! शरीर का नाम है कानजीस्वामी, आत्मा कहाँ है कानजीस्वामी? आहाहा! यहाँ तो इतना बताना था कि यह सप्तम हो जाता है, इनका कहा हुआ दृष्टान्त है, इनकी तुम्हारे कितनी निन्दा करनी है? भाई! छह द्रव्यस्वरूप लोक... आहाहा! लोकालोक। छह द्रव्य में लोकालोक, अनन्त सिद्ध, लाखों केवली, वर्तमान तीर्थंकर सब ज्ञेय में आते हैं। वह ज्ञान में व्यक्त है, उससे भिन्न ज्ञायक आत्मा अकेला है। वे परज्ञेयरूप से है, स्वज्ञेयरूप से ज्ञायक भिन्न है। आहाहा! देखी है पुस्तक? देखी नहीं? देखी है? (संवत्) १९७८ में यह वाँचा था। बोटाद में, नदी के पास अकेले जाते थे। १९७८ में वाँचा था। ५४ वर्ष हुए। कितनों की तो जिन्दगी नहीं होगी। अरे! भगवान! यह तो पूर्व के संस्कार थे और अन्दर भूल हो गयी और यहाँ आ गये। अन्दर में यह बात आयी। बात तो ऐसी है, भाई! क्या करें? आहाहा!

यहाँ तो यह बताना है, छह द्रव्यस्वरूप, क्या कहते हैं यह? अनन्त सिद्ध, अनन्त निगोद के जीव, केवली, तीर्थंकर, वे तो इस ज्ञायकभाव के परज्ञेयरूप से है। आहाहा!

स्वज्ञेय तो ज्ञायक भिन्न रहा। इसलिए कहा न? ज्ञेय, वह व्यक्त है। व्यक्त अर्थात् वह बाह्य चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? कितनी गम्भीरता अमृतचन्द्राचार्य की, कितनी गम्भीरता कुन्दकुन्दाचार्य की! उसमें से इन्होंने सप्तम निकाला। इन्होंने दृष्टान्त दिया, उसमें चिपटे और यह दृष्टान्त फिर यहाँ कहा। अरे! भगवान! बापू! तू ऐसा न कर, भाई! आहाहा!

छह द्रव्यस्वरूप लोक ज्ञेय है, व्यक्त अर्थात् दूसरी चीज़ है। उससे भिन्न है, ऐसा लेना है न? व्यक्त अर्थात् छह द्रव्यस्वरूप लोक भिन्न दूसरी चीज़ है। आहाहा! और उससे जीव अन्य है। वह दूसरी चीज़ छह द्रव्य से (अन्य है)। वह सब दूसरी चीज़ है। केवली, सिद्ध आदि दूसरी चीज़ें हैं। आहाहा! समझ में आया? यह वाँचनेवालों ने लिख लेना और ध्यान में रखना। पुस्तक में है। (संवत्) १९४६ में प्रकाशित हुआ है। उनकी उपस्थिति में उन्होंने प्रकाशित किया है। नाम-ठाम सब अन्दर है। उन्होंने अपनी उपस्थिति में प्रकाशित किया है। १९४८ में देह छूट गयी।

मुमुक्षु : अपने-अपने मन्दिरों के शास्त्रभण्डार में खोजे तो मिल जाये, ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब जगह है। यह तो सब जगह है। पुरानी प्रति है, यह नयी भी बहुत है। यह ४० वर्ष पहले नयी आयी न! वह भी बहुत भण्डारों में है। आहाहा! अरे! प्रभु! यह क्या करता है?

एक बाई को लोहे के चूरा रखकर लोहे के। परदेश की थी तो इस देश की वह थी। उसके माँ-बाप परदेश के थे। इसलिए यह परदेश की है, ऐसा करके लगाओ। लोहे का ढ़ेर करके अग्नि लगाओ। बाई कहते हैं, अरे... प्रभु! यह क्या करता है, इसकी इसे खबर नहीं। प्रभु! इसकी दया करना। आहाहा! यह दृष्टान्त आता है। बड़ी बाई कोई है। नाम-ठाम कुछ सब याद रहे नहीं। याद है? हिम्मतभाई! एक बाई है, गुजर गयी। थी देश की परन्तु उस बाई का पीहर परदेश में। इसलिए यह लोग मानो कि उसके गाँव की है और अपने देश की विरोधी है। ऐसा करके जलायी। लोहे का चूरा करके भड़-भड़ (अग्नि सुलगायी)। इतना बोली, प्रभु! यह क्या करता है, इसकी इसे खबर नहीं। प्रभु! इसकी दया करना। आहाहा! यह आत्मा है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में नहीं आया? न्याय नहीं आया। एक महिला थी। परदेश की बड़ी थी। नाम भूल गये। देशसेवा करनेवाली महिला। बाई नहीं समझते? देश की सेवा करनेवाली थी, परन्तु देश के लोगों ने उसे ऐसा माना कि इसके पीहर की थी तो, उसी देश की है, इसलिए अपने देश की विरोधी है। लोहे का चूरा करके केरोसीन छिड़ककर सुलगायी। ऊपर बैठाकर। बाई को ऊपर बैठा दिया। बाई इतना बोली, प्रभु! यह क्या करते हैं? हमारे अभिप्राय की इन्हें खबर नहीं। प्रभु! इनकी दया करना। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो यह कहते हैं, इन्होंने सप्तम लिया, इन्होंने दृष्टान्त दिया उसे यहाँ का मानकर पंथ भ्रष्ट है, इस भ्रष्ट पंथ को खंजर से काट डालो, ऐसा आया है न? पत्रिका में आया है। अरे! भगवान! इस दृष्टान्त में सिद्धान्त सिद्ध करना था। समझ में आया? दृष्टान्त है, वैसा करो, यह बात ही नहीं है। समझ में आया? आहा! पहले बोल का अर्थ किया।

(यहाँ) ८२ गाथा। आगे फिर मूढ़ के लक्षण कहते हैं :—

८२) तरुणउ बूढउ रूयडउ सूरउ पंडिउ दिव्वु।
खवणउ वंदउ सेवडउ मूढउ मण्णइ सव्वु॥८२॥

अन्वयार्थ :- मैं जवान हूँ, बुड्ढा हूँ,... अरे! वृद्ध तो शरीर है, भगवान! तू वृद्ध है? तू तो आनन्दकन्द है। आहाहा! नित्यानन्द सहजानन्द प्रभु तू है न! आहाहा! सहजानन्द की मूर्ति प्रभु है। तू ऐसा मानता है कि मैं वृद्ध हूँ। **रूपवान हूँ,...** है न? रूपवान हूँ। मेरा रूप अच्छा है। भगवान! यह तो शरीर जड़ है, उसे रूपवान तू क्या कहता है? आहाहा! तेरा रूप तो आनन्द का है न! यह रूपवान तुझे कहाँ से आया? **शूरवीर हूँ,....** मैं बड़ा क्षत्रिय हूँ, शूरवीर हूँ। कहाँ से आया? भगवान! तुझे ऐसी मूढ़ता कहाँ से हुई? मैं शूरवीर हूँ। **पण्डित हूँ,...** लो! पढ़ने से मैं पण्डित हो गया। पण्डित तो पर्याय में सब ज्ञात हुआ, तेरा द्रव्य कहाँ ऐसा है? समझ में आया? क्षयोपशम से कोई जानने की पर्याय हुई, वह तो पर्याय में हुआ, तेरा द्रव्य कहाँ उसमें आया है? द्रव्य ऐसा कहाँ है? आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत पढ़ा, इसलिए तो पण्डित हुआ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत पढ़ा। पण्डित (कहलाता है), वह पर्यायबुद्धि है, ऐसा

कहते हैं। पण्डित है, वह पर्यायबुद्धि है। उसे द्रव्यबुद्धि का अभाव है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो दोनों लेंगे।

पण्डित हूँ, सबमें श्रेष्ठ हूँ,... प्रमुख हूँ, राजा हूँ, सबसे श्रेष्ठ हूँ। मेरे जैसी पुण्य की सम्पत्ति दूसरे को नहीं है। अरे! प्रभु! पुण्य, वह तेरी चीज़ नहीं तो तू सर्वश्रेष्ठ कहाँ से हो गया? मैं **दिगम्बर हूँ....**

मुमुक्षु : यह बात तो सच्ची है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिगम्बर अर्थात् सम्प्रदाय वह दिगम्बर आत्मा है? दिगम्बर में जन्मा, इसलिए मैं दिगम्बर हूँ, मिथ्या अभिमान है। है? लिखा है या नहीं? आहाहा!

मुमुक्षु : दिगम्बर नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं दिगम्बर हूँ। आत्मा दिगम्बर है? शरीर से भिन्न है। दिगम्बर कुल में जन्मा, इसलिए दिगम्बर हो गया? यह दिगम्बर है? दिगम्बर तो भगवान आत्मा, जिसमें विकल्प की वृत्ति नहीं, इच्छा की वृत्ति का अभाव है, ऐसा भाव दिगम्बर तो चैतन्यद्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? यह तो श्वेताम्बर, दिगम्बर सम्प्रदाय का अभिमान हुआ। मैं दिगम्बर हूँ। क्या दिगम्बर? आत्मा दिगम्बर कैसा?

पश्चात् **'वन्दकः' बौद्धमत का आचार्य हूँ,...** सब लिया है। **और मैं श्वेताम्बर हूँ,...** लो, यह आया है। योगीन्द्रदेव के समय श्वेताम्बर थे न! **मैं श्वेताम्बर इत्यादि सब शरीर के भेदों को...** यह तो शरीर के भेद हैं। आहाहा! इन्द्रलालजी कहते थे न, दिगम्बर में जन्मे, वे तो सब भेदज्ञानी ही हैं। आहाहा! ठीक! अब इसे व्रत-चारित्र लेना। अरे! भगवान! प्रभु! यह सम्प्रदाय में जन्म लिया, इसलिए हो जाता है? आहा! ऐसे सच्चे धर्म में, कुल में अवतार (जन्म) भी अनन्त बार लिया है और भगवान के समवसरण में भगवान को देव मानकर पूजा भी अनन्त बार की है। आहाहा! उससे क्या धर्म हुआ? उसरूप आतमा हुआ? आहाहा! यह कहेंगे।

मैं श्वेताम्बर इत्यादि सब शरीर के भेदों को मूर्ख अपना मानता है। आहाहा! **ये भेद जीव के नहीं हैं।** देखो! दिगम्बर और श्वेताम्बर और बौद्ध, यह सब जीव के भेद नहीं, यह बाहर के भेद हैं, जीव का स्वरूप नहीं। जीव तो इनसे भिन्न ज्ञायकतत्त्व है, यह कहेंगे।

भावार्थ :- यहाँ पर यह है कि यद्यपि व्यवहारनयकर ये सब तरुण... जवान **वृद्धादि शरीर के भेद आत्मा के कहे जाते हैं,...** बोलने में आता है। **तो भी निश्चयनयकर...** यथार्थ दृष्टि से वस्तु को देखें तो **वीतराग सहजानन्द एक स्वभाव...** लो, आया। देखो! यह तो लिखा है। पाठ में एक है, वह यहाँ लिखा है, पहले में नहीं लिखा था। दो जगह नहीं लिखा, यहाँ लिखा है। यहाँ तो लिखा है। **निश्चयनयकर वीतराग सहजानन्द...** पहले नित्यानन्द आया था, पश्चात् सदा आनन्द आया था, अब सहजानन्द आया। भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु है। आहाहा! सदानन्द है, सदा आनन्दस्वरूप प्रभु भगवान तो है। आहाहा! यहाँ सहजानन्द (आया)। उन स्वामीनारायण के सहजानन्द वे होंगे यह? वहाँ सहजानन्द का उसे स्वयं को भान कब था? बेचारा ब्रह्मचारीरूप से था। आहाहा!

यहाँ तो निज निश्चय वीतराग सहजानन्द। सहज आनन्द। स्वाभाविक आनन्द, ऐसा कहना है। भगवान आत्मा स्वाभाविक आनन्द, सहजानन्द, नित्यानन्द, परमानन्द, वह आत्मा का स्वरूप है। आहाहा! एक क्षणिक पर्याय का आनन्द भी नहीं, यहाँ तो त्रिकाली आनन्द लेना है। समझ में आया? आहाहा! वीतराग सहजानन्द एक स्वभाव जो परमात्मा। कौन? अपना आत्मा, हों! परमात्मा अर्थात् दूसरे परमात्मा नहीं। आहाहा! अरे! बाह्य के सुन्दर (रूपादि के) आकर्षण में अपने को भूल जाता है। परन्तु अन्दर कौन चीज़ है? समझ में आया? उसे भूलकर राग के प्रेम में सुन्दरता में खिंच जाता है। भ्रम है अज्ञानी का। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञानी भी विषय सेवन करता है न? अरे! सुन तो सही, प्रभु! वह राग आता है और किसी अपेक्षा से वह छूटता नहीं तो उसे दुःखरूप जानकर उसमें जुड़ जाता है। समझ में आया? दुःख है, दुःख है, दूसरा कोई उपाय रहा नहीं तो वह छूटता नहीं तो राग में आ जाता है। रुचि नहीं। उसमें सुखबुद्धि नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह दृष्टान्त दिया है न? पाँच-सात सखियाँ सिर पर पानी का घड़ा लेकर चलती हों, बात करती हों परन्तु उनकी दृष्टि वहाँ है। गिर न जाये। हाथ नहीं लगाती। हाथ ऐसे खुल्ले रखकर बातचीत करे, परन्तु नजर वहाँ है। इसी प्रकार ज्ञानी की नजर, चाहे राग में आवे परन्तु नजर तो ज्ञायक के ऊपर है। आहाहा! समझ में आया?

निश्चयनयकर वीतराग सहजानन्द एक स्वभाव जो परमात्मा उससे भिन्न हैं।

क्या चीज़ ? तरुण और वृद्ध, मूर्ख और पण्डित, दिगम्बर और श्वेताम्बर, यह सब शरीर के भेद हैं। आहाहा! समझ में आया? **ये तरुणादि विभावपर्याय कर्म के उदयकर उत्पन्न हुए हैं,...** देखो! **इसलिए त्यागने योग्य है,...** आहाहा! यह पण्डिताई-बण्डिताई का अभिमान छोड़ना। आहाहा! परलक्ष्यी ज्ञान जो हुआ, उसका अभिमान, वह तो मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह मूर्खाई है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? थोड़े पाँच-पचास शास्त्र आ गये, कण्ठस्थ कर लिये, पाँच-दस हजार, पच्चीस हजार श्लोक कण्ठस्थ कर लिये... वह क्या है? वह कहीं आत्मा की चीज़ है? आहाहा! वह तो परलक्ष्यी क्षयोपशम है। वह मैं हूँ, ऐसा माननेवाला मूर्ख है, ऐसा यहाँ कहते हैं। पण्डित में लिया न? पण्डित में। यह पण्डित। आहाहा!

मुमुक्षु : पचास शास्त्र थोड़े कहलाते हैं, दो हजार शास्त्र....

पूज्य गुरुदेवश्री : दो हजार शास्त्र हो तो भी क्या हुआ? लाख शास्त्र (पढ़े)। करोड़पूर्व का आयुष्य हो तो लाख शास्त्र पढ़े, उसमें क्या? ग्यारह अंग नौ पूर्व भी पढ़ा। वह तो परलक्ष्यी है, वह ज्ञान नहीं, वह तो अज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

त्यागने योग्य है तो भी उनको साक्षात् उपादेयरूप निज शुद्धात्मतत्त्व में जो लगाता है,... आहाहा! यह त्याग करके अपना शुद्ध उपादेयरूप निजात्मा है, उसमें तत्त्व की दृष्टि अपनी लगाता है अर्थात् आत्मा के मानता है। आहाहा! सबको छोड़कर अपनी दृष्टि भगवान त्रिलोकनाथ को मानता है अर्थात् मान्यता के काल में वह त्रिलोकनाथ उपादेय हुआ, वह आत्मा आदरणीय है। आहाहा! समझ में आया? **साक्षात् उपादेयरूप निज शुद्धात्मतत्त्व में जो लगाता है,...** क्या कहते हैं? आत्मा में अन्दर दृष्टि लगाता है। सबको त्यागकर। परन्तु त्यागकर कब हुआ? यह पर के अभिमान का त्याग हुआ तो क्या हुआ? कि अपनी दृष्टि भगवान आत्मा में लगा दी। धारणा में रहा, इतना नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आत्मा शुद्ध है और अभेद है और वीतराग है, ऐसा नहीं। ऐसा कहते हैं। दृष्टि लगा देना। आहाहा! वस्तु की दृष्टि, वह दृष्टि वहाँ द्रव्य पर लगा देना। ध्रुव पर दृष्टि को लगा देना। तब उन रागादि का त्याग कहा जाता है। आहाहा! यहाँ ग्रहण हुआ तो पर का त्याग हुआ, ऐसा कहने में आता है। पर का यथार्थ त्याग कब होता है? कि स्व का ग्रहण (हो तब)। त्रिलोकनाथ परमात्मा निज स्वरूप... आहाहा!

परमात्मस्वरूप पर दृष्टि लगावे, तब वह उपादेय हुआ, तब रागादि का त्याग हुआ। समझ में आया? आहाहा! क्या कहते हैं? यह पण्डिताई और तरुण का अभिमान कब छूटे? कब त्याज्य हो? कि ग्रहण करने की चीज़ में दृष्टि लगा दी हो, दृष्टि लगा दी। त्रिलोकनाथ स्वभाव का आश्रय ले लिया। सन्मुख होकर उपादेय माना, तब पर का त्याग यथार्थ कहा जाता है। राग आदि का त्याग। आहाहा!

वह अज्ञानी जीव बड़ाई, प्रतिष्ठा... अपनी बड़ाई जहाँ-तहाँ फैंके कि मैंने ऐसा किया और ऐसा किया और ऐसा किया। अपनी प्रतिष्ठा हुई। बड़ाई की बात बाहर में करे। **धन का लाभ....** पैसे का लाभ हो। पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़ हो तो ओहोहो! धूल में भी है नहीं। अज्ञानी **इत्यादि विभाव परिणामों के आधीन होकर...** आहाहा! **परमात्मा की भावना से रहित हुआ मूढात्मा है,...** आहाहा! परमात्मा की भावना अर्थात् अन्तर एकाग्रता। उससे **रहित हुआ मूढात्मा है, वह जीव के ही भाव मानता है।** वह जीव के भाव हैं, ऐसा मानता है। कौन से भाव? यह पण्डिताई और तरुणाई और पैसे का लाभ। वह सब जीव को लाभ हुआ, ऐसा मूढ़ आत्मा मानता है। समझ में आया? हम गरीब थे, माँ-पिता ने कुछ छोड़ दिया नहीं और हमने बाहुबल से कमाया। हमारे बल से कमाया। अखबार में बहुत आता है। अमुक ने ऐसा किया और फिर उद्योगपति हुए और फिर ऐसा हुआ और वैसा हुआ। धूल भी नहीं। ऐसी बड़ाई को छोड़कर, वह जीव में नहीं है, ऐसा मानता है। जीव के भाव नहीं है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ८३

अथ –

८३) जणणी जणणु वि कंत घरु पत्तु वि मित्तु वि दव्वु।
माया-जालु वि अप्पणउ मूढउ मण्णइ सव्वु।।८३।।

जननी जननः अपि कान्ता गृहं पुत्रोऽपि मित्रमपि द्रव्यम्।
मायाजालमपि आत्मीयं मूढः मन्यते सर्वम्।।८३।।

जणणी जणणु वि कंत घरु पुत्तु वि मित्तु वि दव्वु जननी माता जननः पितापि कान्ता भार्या गृहं पुत्रोऽपि मित्रमपि द्रव्यं सुवर्णादि यत्तत्सर्वं मायाजालु वि अप्पणउ मूढउ मण्णइ सव्वु मायाजालमप्यसत्यमपि कृत्रिममपि आत्मीयं स्वकीयं मन्यते। कोऽसौ। मूढो मूढात्मा। कतिसंख्योपेतमपि। सर्वमपीति। अयमत्र भावार्थः। जनन्यादिकं परस्वरूपमपि शुद्धात्मनो भिन्नमपि हेयस्याशेषनारकादिदुःखस्य कारणत्वाद्धेयमपि साक्षादुपादेयभूतानाकुलत्वलक्षण-पारमार्थिक-सौख्यादभिन्ने वीतरागपरमानन्दैकस्वभावे शुद्धात्मतत्त्वे योजयति। स कः। मनोवचनकायव्यापारपरिणतः स्वशुद्धात्मद्रव्यभावनाशून्यो मूढात्मेति।।८३।।

आगे फिर भी कहते हैं –

माता पिता और पति सुत घर मित्र आदि पर-द्रव्य सभी।
माया जाल समान कहे पर मूढ़ मानता अपना ही।।८३।।

अन्वयार्थ :- [जननी] माता, [जननः] पिता [अपि] और [कान्ता] स्त्री [गृहं] घर [पुत्रः अपि] और बेटा, बेटी [मित्रमपि] मित्र वगैरह सब कुटुम्बीजन बहिन, भानजी, नाना, मामा, भाई, बंधु और [द्रव्यं] रत्न, माणिक, मोती, सुवर्ण, चांदी, धन, धान्य, द्विपदवांदी धाय, नौकर, चौपाये-गाय, बैल, घोड़ी, ऊँट, हाथी, रथ, पालकी, बहली, ये [सर्व] सर्व [मायाजालमपि] असत्य हैं, कर्मजनित हैं, तो भी [मूढ़ः] अज्ञानी जीव [आत्मीयं] अपने [मन्यते] मानता है।

भावार्थ :- ये माता पिता आदि सब कुटुम्बीजन परस्वरूप भी हैं, सब स्वार्थ के हैं, शुद्धात्मा से भिन्न भी हैं शरीर संबंधी हैं, हेयरूप संसारीक नारकादि दुःखों के कारण होने से त्याज्य भी हैं, उनको जो जीव साक्षात् उपादेयरूप अनाकुलतास्वरूप परमार्थिक

सुख से अभिन्न वीतराग परमानंदरूप एकस्वभाववाले शुद्धात्मद्रव्य में लगाता है, अर्थात अपने मानता है, वह मन, वचन, कायरूप परिणत हुआ शुद्ध अपने आत्मद्रव्य की भावना से शून्य (रहित) मूढात्मा है, ऐसा जानो, अर्थात् अतीन्द्रियसुखरूप आत्मा में परवस्तु का क्या प्रयोजन है। जो परवस्तु को अपना मानता है, वही मूर्ख हैं।।८३।।

वीर संवत् २५०२, श्रावण कृष्ण ७, सोमवार
दिनांक-१६-०८-१९७६, गाथा-८३, ८४, प्रवचन-६४

'**मूढउ मण्णइ**' स्वयं मानता है कि यह मेरे पिता हैं। पिता कैसे? यह तो मायाजाल है। भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, अपने से भिन्न कर्मजन्य... कहेंगे, पाँच बोल कहेंगे। **पिता और.... 'कान्ता'** यह मेरी स्त्री है। आहाहा! बतावे तो ऐसे स्त्री प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। मूढ़ है। स्त्री किसकी? आहाहा! अर्धांगना है। आधा अंग मेरा और आधा अंग इसका। इस मायाजाल को अपने आत्मा के साथ योजता है—जोड़ता है, मानता है, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। समझ में आया? यह मेरी स्त्री है। यह मेरा **घर...** यह मेरा मकान है, मेरा मकान है। एक गली में सौ मकान हों, गली में जाये तो सौ ही मकान वास्तव में तो देखने-जाननेयोग्य है, ज्ञान का विषय है, परन्तु जहाँ घर आया, यह मेरा। यह कहाँ से आया?

मुमुक्षु : नाम लिखा हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम लिखा हो तो भी क्या? मान भी कहाँ अपना है? आहाहा! कहो, समझ में आया? यह घर मेरा। सौ घर गली में हैं तो सौ ही घर जाननेयोग्य हैं, उसमें यह मेरा, कहाँ से आया? पचास लड़के खड़े हों, वे पचास लड़के जाननेयोग्य हैं कि यह है, उसमें यह मेरा पुत्र, ऐसा कहाँ से आया? इसी प्रकार पचास स्त्रियाँ ऐसे लगातार हो, ज्ञात हो कि यह है, उसमें यह मेरी स्त्री है, ऐसा कहाँ से आया? समझ में आया? सेठ! छह-छह लाख के मकान। सेठ रहते हैं, वह छह लाख का मकान है। अभी सागर गये, तब वहाँ उतरे थे न! यह मकान (मेरा)। और सब सामग्री... बीड़ी के साधन.... क्या सब? सूँघने के और फलाना, ढिंकना सब पड़े हों। नहीं? अरे.. अरे...! यह मायाजाल। श्मशान में हड्डियाँ हो न? उन हड्डियों में से

फासफूस (चमक) होती है। क्या कहलाता है? फोसफरस। इसी प्रकार यह सब श्मशान की हड्डियों की चमक है। आहाहा! भगवान! तेरी चीज़ में वह कहाँ है? कहेंगे, पाँच बोल कहेंगे।

और बेटा, बेटी.... यह मेरा पुत्र है। बहुत कमाये न, दो लाख, पाँच लाख, दस लाख। कमाऊ लड़का जगा है, कर्मी जगा है। कर्मी हुआ है। कर्म को करनेवाला पापी। कर्मी हुआ मेरा बेटा। यह मेरी बेटी है। अच्छे घर में विवाही, ठिकाने लगायी। विवाह में दो लाख दहेज... क्या कहलाता है वह? दहेज में दो लाख दिये। पैसे कहाँ तेरे हैं? कन्या कहाँ तेरी है? वह सब जगत की चीज़ है। ऐसी बात है, भगवान! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु के साथ यह वस्तु नहीं, उसे जोड़े, योजे, वह बहिरात्मा है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि के लक्षण देखो न कैसे हैं!

मित्र.... यह मेरा मित्र है। हमारे कुटुम्बीजन हैं। हमारी जाति के। क्या कहते हैं? जाति। यह हमारी जाति के, नात के हैं। दरबार! यह हमारे जमींदार हैं सब। मूढ़ है। कहाँ से लाया? यह चीज़ तुझमें कहाँ है? वह तो जगत की चीज़ है। जगत की मायाजाल है। मायाजाल तेरी कहाँ से हो गयी? आहाहा! उसमें पाँच, पचास लाख की आमदनी हो। आमदनी, हों! पूँजी पाँच-पचास लाख तो साधारण है। आमदनी हो, पचास लाख, करोड़, दो करोड़। आहाहा! यह पैसे मेरे, यह व्यवस्था करनेवाला मैं, पिताजी के पास तो कुछ नहीं था, हमने बाहुबल से यह सब होशियारी से पैदा किया। मूढ़ है। समझ में आया? ऐ... पोपटभाई! वहाँ वढवाण में यह सब था कुछ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए तो यह कहा जाता है, भगवान! भगवान ऐसा कहते हैं, भगवान! यह तो तेरी चीज़ नहीं और तू यह क्या मानता है? और क्या करता है? परचीज़ मेरी मानकर चोर होता है। समझ में आया? आहाहा! इसका बहुत विस्तार करेंगे।

कुटुम्बीजन, बहिन,... यह मेरी बहिन है और दीवान में विवाही है, राजपरिवार में विवाही है। विवाही कहते हैं न? विवाह... विवाह। विवाह किया है। अरे! क्या है? भगवान! किसकी बहिन? क्या है? **भानजी....** अन्दर लिया न? हमारे बहिन की पुत्री

है, भानेज है और अच्छे घर में (विवाही है, वहाँ) पाँच करोड़, दस करोड़ रुपये हैं। परन्तु क्या है? रुपये तो धूल है, जड़ है।

मुमुक्षु : यहाँ तो हाँ करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो हाँ करते हैं, बाहर... ऐसा कहते हैं, यहाँ हाँ करते हैं, बाहर (जाये, तब मेरा-मेरा करते हैं)। समझ में आया? आहाहा! अरे! भगवान!

यहाँ लो न, गुरु कहे कि मेरा शिष्य है। भगवान! पर शिष्य कहाँ से आया? तेरा कहाँ से आया? समझ में आया? हमने बहुत चेला-चेली बनाये। चेला-चेली तेरे कहाँ से हुए? वे तो परचीज़ हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : गुरु को तो गुरु मानना ही पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह गुरु मेरे मानना, वह यथार्थ नहीं। परचीज़ है, तेरी कहाँ से हुई? व्यवहार से कहने में आता है। वह तो निमित्त का कथन है। आहाहा! तीन लोक के नाथ भी इस आत्मा के नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! यह तो दिगम्बर धर्म है। नागा बादशाह से आघा। ओहोहो! प्रभु! तू कौन है? तू कौन है और कैसा है, इसकी तुझे खबर नहीं। जो तुझमें नहीं, पर है, उसे अपना मानकर मूढ़ हो गया। भाई! तेरी दृष्टि विपरीत है। तेरे आत्मा का तूने बिगाड़ किया। आहाहा! समझ में आया?

भानजी, नाना,.... माता के पिता। माता के पिता को नाना कहते हैं न? ये मेरे नाना हैं। मेरे माँ के पिताजी हैं। कौन तेरी माँ और पिता कौन है? मायाजाल है। **मामा,....** है। यह मेरे मामा हैं। प्रसन्न हो। पैसेवाला हो न, गरीब-बरीब हो तो मामा कहने में शर्म आवे। साधारण घर हो और स्वयं कुछ ठीक हो, परिवार ठीक हो, मामा गरीब हो जाये तो मामा कहने में शर्म आवे। पैसावाला हो तो कहे, यह मेरे मामा हैं। क्या है परन्तु अब? मामा कैसे? गरीब कैसे और धनवान कैसे? वह चीज़ ही कहाँ है आत्मा की? यह मेरा **भाई,...** है। लो, यह मेरा भाई है, **बन्धु...** है। यह मेरे **रत्न, माणिक,...** है। **रत्न, माणिक, मोती....** है। लो, अँगूठी में नहीं करते? अभी वह हीरा आया था न? मैंने कहा, यह हीरा कहाँ डालते होंगे? एक व्यक्ति ने बताया कि यह अँगूठी में डालते हैं। यह अँगूठी बनायी। बहिन (बहिनश्री) का सम्मान किया, उसमें

बारीक हीरे नहीं थे ? नीचे कोई महिला खड़ी थी। बारीक, बारीक, नहीं ? ग्यारह हजार के थे न ? ग्यारह हजार के हीरा। आहाहा! कहाँ अँगूठी, कहाँ जड़, कहाँ हीरा। प्रभु!

मुमुक्षु : अँगूठी पहनी हो तो रूपवान कैसा लगे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : रूपवान कौन ? यह तो मुर्दा है। आहाहा! शास्त्र में आया है न ? नहीं ? ठाठडी... ठाठडी समझे ? अर्थी कहते हैं न ? अर्थी पर शृंगार करने जैसा है। यह तो अर्थी है। यह मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। समझ में आया ? अर्थी कहते हैं ? अर्थी... अर्थी। उठावे न ? अर्थी। उसे फूल और गहने, हीरे डालो। क्या है ? इसी प्रकार यह अर्थी है। मुर्दा जड़ है।

मुमुक्षु : उस समय तो निकाल ले।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुरन्त निकाल ले। परन्तु यह तो जरा शोभा करे न! यह करे। एक तो सेठ थे। पेट बड़ा था। बड़ा पेट। बड़े सेठ थे, दामनगर के जेठालाल सेठ। पेट बड़ा था तो पेट में ऐसे वळ थे, वळ। उसमें अँगूठी घुस गयी अन्दर, निकले नहीं। पेट समझे न ? पेट में वळ, अन्दर अँगूठी घुस गयी। दूसरे को खबर नहीं, मर जाने के बाद खींचकर निकाल ली। चोर ने। चोर अर्थात् दूसरा कोई अनजाना। आहाहा! कहाँ अँगूठी, कहाँ शरीर ? भगवान! तू कहाँ ? तू कहाँ रुक गया ? रास्ते चलते जो चीज़ दिखाई दी, वह मेरी। आहाहा! रास्ते चलते-चलते जो मिला, वह मेरा, यह मेरा, यह मेरी। ऐसे गति करते-करते चलता जाता है, उसमें यह मेरा, यह मेरा कहाँ से आया तुझे ? आहाहा! समझ में आया ?

यह **माणिक, मोती, सुवर्ण...** लो, सोना... सोना। **चाँदी, धन, धान्य,....** हमारे पास इतनी लक्ष्मी है, इतना धान कोठार में पड़ा है। गेहूँ के, बाजरी के पचास-सौ कोठा भरे हैं। यह तम्बाकू के गोदाम भरे हैं। सेठ को गोदाम हैं। समझ में आया ? क्या कहा ? **धान्य, द्विपदवांदी....** दो पैरवाले मनुष्य होते हैं न ? नौकर... नौकर। हमारे इतने नौकर हैं। ५०० नौकरों से कारखाने में काम चलाते हैं। पाँच लाख का खर्च है और आमदनी दस लाख की है। अच्छा! यह हमारे है न ? कहाँ गये मलूकचन्दभाई ? बैठे हैं न! इनका पुत्र है न ? वहाँ पाँच करोड़ रुपये। मुम्बई.. मुम्बई। मुम्बई में मलूकचन्दभाई का बिचला

पुत्र है। बड़ा स्वीट्जरलैण्ड में है। एक पुत्री है, विवाह कर दिया है। चार करोड़ रुपये, परन्तु ममता का पार नहीं, धन्धा छोड़ता नहीं। क्या है कुछ खबर पड़ती नहीं।

मुमुक्षु : आपको तो खबर पड़ गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरर्र! उसके पास पाँच करोड़ और वह होता है, क्या कहलाता है? ब्लडप्रेशर। पाँच करोड़ रुपये। क्या कहलाता है? चश्मा का? कारखाना। घड़ी का। भूल जाते हैं भाई! घड़ी का कारखाना। अन्दर ले गये तो कितने ही नौकर और कितनी घड़ियाँ! कितने सोना के चढ़ते हैं। घड़ी के ऊपर सोने का गिलेट। कितने तौला? कुछ कहा। इतना सोना चढ़ता है। एक व्यक्ति (रखा था)। स्वयं जाये अन्दर से। ऐसा चले। वे सब देखते हैं कि सेठ साहब आये, सेठ साहब आये। किसके सेठ? क्या है यह वह? भ्रमणा मायाजाल भूतावल में कहाँ प्रविष्ट हो गया?

मुमुक्षु : वह तो पैसे का स्वाद जिसने लिया हो, उसे खबर पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा था उसने। एक बार अहमदाबाद में कहा था। मेरे पिताजी ने कहाँ पैसे का स्वाद देखा है। यह मलूकचन्दभाई उसके पिताजी। हमने पैसे का स्वाद देखा है, हमको खबर है पैसे में क्या है! धूल भी नहीं। मर जानेवाले हैं, कहीं चले जानेवाले हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : चले जाये, तब तक तो सुख भोग लें।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! कहाँ भोगे? किसे भोगे? यह भोगता है राग को। पर को भोगता है? पर को भोग सकता है? आहाहा! यह तो दुःख को भोगता है। राग को भोगता है, राग तो दुःख है। आहाहा!

द्विपदबांदी,.... बांदी? क्या कहते हैं? दासी। बांदी, दासी। यह मेरी दासी है। हमारे सौ दासियाँ हैं। **धाय,....** धायमाता। सेठिया धायमाता रखे न? यह हमारी धायमाता है। **नौकर, चौपाये,....** हाथी, घोड़ा। हमारे इतनी गाये हैं, इतनी भैंस है। हाथी, घोड़े हैं। आहाहा! इतनी गाय है। **बैल,....** हमारे बैल हैं। यह बैल हमारे हैं। यह हमारा घोड़ा है। **घोड़ी, ऊँट....** हमारे हैं। **हाथी, रथ, पालकी, बहली,....** बहली अर्थात्? बैलगाड़ी? बैलगाड़ी। **पालकी, बहली, ये सर्व मायाजाल (असत्य) हैं,....** देखो, भाषा! मायाजाल

का अर्थ क्या किया? **ये सर्व असत्य हैं...** तेरी चीज़ नहीं। तेरा सत् नहीं। आहाहा! **कर्मजनित हैं,...** यह तो कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुई जंजाल है, यह तेरी चीज़ कहाँ है? आहाहा! **तो भी.... 'मूढ़:' अज्ञानी जीव अपने मानता है।** आहाहा! अब पाँच बोल लेंगे।

भावार्थ :- ये माता-पिता आदि कुटुम्बी पैसा, लक्ष्मी, घर-मकान, कुटुम्बीजन परस्वरूप भी हैं,... जितने बोल कहे, वे परस्वरूप तो है ही। एक बात। **सब स्वार्थ के हैं,...**

मुमुक्षु : मुद्दे की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मुद्दे की बात है। वह सब ठगों की टोली मिली है। नियमसार में ऐसा लिखा है। माता, पिता, कुटुम्ब एक-दूसरे को... परस्पर आजीविका के लिये पेटभरा... पेटभरा स्वार्थ की टोली मिली है। नियमसार में है, नियमसार कलश में है। आहाहा! सब स्वार्थी हैं। एक तो सब बात की, वह परस्वरूप है, दूसरा, सब स्वार्थी हैं। आहाहा! छह महीने या बारह महीने (रोग लम्बाया हो)। जवान लड़का हो। एक जवान था। मुम्बई का पानी लगा था। जवान विवाहित। उनके पुत्र का पुत्र था। उसकी बहू छोटी। फिर तो रोग बहुत चला और रात्रि में जागना पड़े न! कब मर गया खबर न हो तो बाहर में क्या कहना? खिंचा विशेष। महीने, दो महीने रात्रि में जागना पड़ा। मरते... मरते... मरते... यहाँ आकर कहे, महाराज! वह बेचारा बहुत दु:खी होता है। बहुत दु:खी है, इसका अर्थ वह अब छूट जाये तो ठीक। हम छूटें। निश्चित तो हो गया कि यह बचनेवाला तो नहीं। बचने का नहीं निश्चित हो गया हो। अब आज-कल, आज-कल, आज-कल करते-करते चौबीस-चौबीस घण्टे वहाँ उपस्थित रहना पड़े और यदि उपस्थित न रहे तो (और मर जाये तो लोग कहे), मरते समय उपस्थिति नहीं थी तुम्हारी? तुमने कुछ ध्यान ही नहीं रखा। हाय... हाय..! दरबार! ऐसा दुनिया कहे। आहाहा! फिर तो बेचारा मर गया। उसकी पत्नी फिर अन्यत्र चली गयी। बनिया।

यहाँ कहते हैं, एक तो सब परस्वरूप है। लक्ष्मी, माता, पिता, स्त्री, मकान, सोना, पालकी, रथ, हाथी इत्यादि स्वार्थ के सगे हैं। **शुद्धात्मा से भिन्न हैं,...** तीन बोल आये। कौन से तीन? एक तो भगवान आत्मा से वह चीज़ भिन्न है, परस्वरूप है और

सब स्वार्थ के सगे हैं। आहाहा! और तीसरा, शुद्धात्मा से भिन्न है। **शरीर सम्बन्धी हैं,...** आत्मा सम्बन्धी कोई चीज़ नहीं। वह तो शरीर सम्बन्धी है। शरीर को पहिचानते हैं। आत्मा को देखा कहाँ है इसने? यह मेरा पुत्र, यह मेरा पिता, यह मेरी स्त्री, वह तो शरीर को ही कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? तीन बोल आये। सब परस्वरूप है, सब स्वार्थी है, शुद्धात्मा से भिन्न है और शरीर सम्बन्धी है—चार बोल आये। आहाहा! अब पाँचवाँ बोल।

वे सब **हेयरूप सांसारिक नारकादि दुःखों के कारण होने से...** नरक और पशु गति के वे सब कारण हैं। आहाहा! समझ में आया? बात तो देखो न आचार्य (कहते हैं)! परमात्मप्रकाश आत्मा है न! वह परमात्मा तो पर्याय से भी भिन्न चिदानन्द अखण्ड आनन्दकन्द है। ऐसा अनुभव में सम्यग्दर्शन में आना चाहिए, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? इसके अतिरिक्त कोई भी चीज़ मेरी है, ऐसा लगा दे, आत्मा के साथ जोड़ दे तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। चाहे तो साधु हो, दिगम्बर नाम धराता हो, परन्तु वह राग और शरीर की क्रिया मेरी है और उसके सम्बन्धी मेरे हैं, वह सब मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! और **दुःखों के कारण होने से त्याज्य भी हैं,...** लो, पाँचवाँ बोल आया। त्याज्य है—सब छोड़नेयोग्य है। अपनी चीज़ नहीं। आहाहा!

उनको जो जीव साक्षात्... अब कहते हैं, **साक्षात् उपादेयरूप अनाकुलतास्वरूप पारमार्थिक सुख से अभिन्न वीतराग परमानन्दरूप एक स्वभाववाला शुद्धात्मद्रव्य...** आहाहा! भगवान आत्मा कैसा है? **साक्षात् उपादेयरूप....** प्रत्यक्ष आदर करनेयोग्य। आहाहा! और **अनाकुलतास्वरूप....** आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा है। आहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप **पारमार्थिक सुख से अभिन्न...** भगवान आत्मा। वास्तव में तो सुख से परमात्मा स्वयं से अभिन्न है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द से अभिन्न है। आहाहा! यह भिन्न है तो अतीन्द्रिय आनन्द से प्रभु अभिन्न है। आहाहा!

वीतराग परमानन्दरूप.... कैसा है भगवान आत्मा? कितने विशेषण दिये? साक्षात् उपादेयरूप, अनाकुलतास्वरूप, पारमार्थिक सुख से अभिन्न, वीतराग परमानन्दरूप एक स्वभाववाला। एक स्वभाव त्रिकाल ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... शुद्धता की सदृशता के स्वभाव का पिण्ड प्रभु। सदृश,

हों! है... है... है... पर्याय भी नहीं यहाँ तो। आहाहा! समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द के मक्खन का पिण्ड प्रभु तो है। आहाहा! अरे! उसका प्रेम छोड़कर जगत की चीज़ में प्रेम करता है, प्रभु कहते हैं, मूढ़ है, भाई! आहाहा! समझ में आया?

कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को माने तो मिथ्यात्व। यह तो पर को अपना मानना, वह मिथ्यात्व है। आहा! समझ में आया? शरीर की इन्द्रियाँ सुन्दर, कोमलताई हो तो वह तो जड़ की पर्याय है, प्रभु! आहा! वह तो परमाणु की दशा है, मिट्टी की दशा है। वह तो तुझसे तो भिन्न है। तो मैं रूपवान हूँ और सुन्दर हूँ, प्रभु! यह कहाँ से लाया? आहाहा! तेरा रूप तो वीतराग परमानन्द है न! आहाहा! कहो, शिखरचन्दजी! ऐसी बातें हैं, भगवान! आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा जाना न हो तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर कहाँ है लोगों को? ऐसे के ऐसे अनादि से मूढ़रूप से चलते जाते हैं। साधु होकर भी यह शरीर की क्रिया मैंने की, यह दया के भाव मैंने किये, पर की दया मैंने पालन की। कल एक लेख आया है, भाई! अमरचन्दजी का। कल पढ़ा था। भगवान ने जगतहिताय, जग के सुख के लिये सब बात की है। जगत को सुख दो। जगत का हित करो। अरे! कौन करे? अकेला व्यवहार डाला है, भाई! बड़ा लेख है, जैनप्रकाश में। उनका—अमरचन्दजी बड़ा कवि कहलाता है। आगरा... आगरा। ऐई! अमरचन्दजी को पहिचानते हो? स्थानकवासी। तुम नहीं पहिचानते हो। आगरा नहीं तुम्हारा? विदिशा। आगरा में कौन है? पद्मचन्दजी। आगरावाला कोई नहीं? वह आगरा के वहाँ हैं। स्थानकवासी के अमरचन्दजी वहाँ रहते हैं। अभी विरायतन राजगृही में पच्चीस-पचास लाख खर्च कर (रहते हैं)। उनका लेख कल जैनप्रकाश में आया है। परन्तु अकेला पर को सुख देना और पर का हित करना, यही मनुष्य का कर्तव्य है। अरे! धूल भी कर नहीं सकता, प्रभु! यह तू क्या करता है? कौन पर को सुख दे? सुख तो उसके पास है। वह पास में है, वहाँ जाये तो सुख मिले। तू सुख दे सकता है? और बाहर के संयोग दे सकता है? कि जिससे वे सुखी हों? सुखी, वह तो कल्पना का सुख है। वह तो दुःख है। आहाहा! बहुत लेख पूरा, ऐसा जहर जैसा लेख है। और उनका बड़े में बड़ा कहलाये अमरचन्दजी। उनके गुरु बीमार थे तो रेल में बैठकर गये थे।

मुँहपत्ती सहित। अरे! साधु को यह? रेल में बैठना और यह। आहाहा! साधु तो पैदल चलते हैं। ऐसी चीज़ है, भाई! आहाहा! वस्त्र का टुकड़ा नहीं होता। माता से जन्मा हो, वैसा होता है। ऐसा शास्त्र में पाठ है। जहाजया—जन्मे प्रमाण रूप कहा। पाठ में है। प्रवचनसार। तीन लोक के नाथ ने मुनि को जन्मे प्रमाण रूप कहा है। जैसा अकेला खाली जन्मा था, वैसा उनका शरीर होता है। आहाहा! धन्य अवतार! चारित्रदशा! वह अलौकिक रमणता, उसकी दशा... आहाहा! अकेली नग्न (दशा) नहीं, हों! अन्दर विकल्प से रहित निर्विकल्पानन्द आनन्द के नाथ का अनुभव करके अतीन्द्रिय आनन्द में लवलीन रहते हैं। मुनि की दशा नग्न हो जाती है। करते नहीं, हो जाती है। आहाहा! धन्य चारित्र आराधन! भाई! आहाहा! उन मुनि के दर्शन भी कहाँ हैं? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा एक स्वभाववाला शुद्धात्मद्रव्य है। उसमें यह स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी, सोना आदि लगाते हैं, जोड़ते हैं, यह हमारा है, हमारा है, हमारा है। समझ में आया? **अर्थात् अपने मानता है,....** पाठ में है न, अर्थात् मानता है लिया। टीका में योजती है। योजती—जोड़ता है। अपने में जो चीज़ नहीं, उसे जोड़े। मेरी है,... मेरी है... मेरी है। आहाहा! यह मिथ्यादृष्टि के लक्षण। भले जैन हो, सम्प्रदाय में जन्मा हो। आहाहा! समझ में आया?

तीन लोक का नाथ शुद्धानन्द चिदानन्द प्रभु से वह चीज़ भिन्न है, स्वार्थ से सहित है, परस्वरूप है, शरीरसम्बन्धी है, दुःख के कारण हैं, निमित्त। आहाहा! उन्हें अपने स्वरूप में लगाता है। **वह मन, वचन, कायरूप परिणत हुआ...** आहाहा! मन, वचन और कायारूप परिणित होता हुआ। मेरा... मेरा... मेरा... मेरा... मेरा... क्षेत्र मेरा, पादर मेरा, मेरी उपज पाँच लाख की है। आहाहा! अपने बड़े हैं न, खुरई (में) ऋषभकुमार कृषिपण्डित है। सरकार की ओर से। करोड़ों रुपये। कृषि, वह कितनी जमीन... ओहोहो! अपने बनिया हैं। यहाँ आ गये हैं। उनकी पत्नी तो महीनों-महीनों रह गयी है। अपने को कुछ खबर नहीं होती।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : खुरई, ठीक। ऋषभकुमार। वहाँ उनके घर में उतरे थे। फिर वहाँ बाहर एक मकान (था)। मकान बड़े बादशाह जैसा। कितने ही मकान, कितनी ही

खेती। दस-दस लाख रुपये की तो एक-एक उपज। गेहूँ के दस लाख, अमुक के दस लाख। बड़ा किसान। सरकार ने उसे कृषि पण्डित की उपमा दी है। कृषि—किसान का पण्डित। खेत का पण्डित। मेरे... मेरे... मेरे... बड़े मकान। घर का मन्दिर बनाया है। बड़ा दो लाख, पाँच लाख का। घर में मन्दिर। गृहस्थ व्यक्ति। आहाहा! बापू! वह कुछ नहीं, भाई! वह तेरी चीज़ कहाँ है। आहाहा! लोगों को भी उसमें रस—पावर चढ़ जाता है। हमारी इतनी उपज है। पचास लाख की, करोड़ की। अरे! बापू! तू कौन? भाई! तेरी आमदनी अन्तर में होती है या बाहर में? आहाहा! या विकार की आमदनी होती है अथवा निर्मलदशा की आमदनी होती है। इसके अतिरिक्त कोई चीज़ तुझमें है नहीं। आहाहा! मिथ्यादृष्टि को मिथ्यात्व और राग-द्वेष की आमदनी होती है। सम्यग्दृष्टि को आनन्द और शान्ति की आमदनी होती है। पैदाश कहते हैं? कमाई। आहाहा!

तीन लोक का नाथ आनन्द का कन्द प्रभु है न! उसमें जा न, वहाँ जा न! आहाहा! उसके समीप वहाँ जा न। वह मेरा है, ऐसी समीपता छोड़ दे न! समझ में आया? नजदीक चीज़ आवे तो कहे, मेरी है। परन्तु यह नजदीक है तू, वह मेरी है, उसे कैसे छोड़ दिया? बाहर क्षेत्र से नजदीक आयी तो कहे, मेरी है। और अन्दर में भाव तो तुझमें नजदीक पड़ा है। आहाहा!

यह शरीर नजदीक है, माया का पिण्ड। वास्तव में तो यह रजकण है, वह एक बार बिच्छू के डंकरूप से थे। बिच्छू का डंक। उसरूप यह परमाणु थे। वे परमाणु आज यहाँ आये हैं। है क्या? आहाहा! क्या समझे? यह शरीर के रजकण हैं, वे एकबार बिच्छू के डंकरूप से परिणमे थे। वे परमाणु अभी इस शरीररूप आये हैं। अनन्त बार वे परमाणु बिच्छू के डंकरूप हो गये हैं। आहाहा! सर्प के जहररूप यह परमाणु अनन्त बार हो गये हैं। यह अभी यहाँ इस पर्याय में आये हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! वहाँ घर है न? कितने सौ घर हैं? खुरई। अधिक होंगे। ४००? सभा बड़ी थी। बाहर में बड़ी सभा भराती थी। सेठ साथ में आते थे। स्वयं बैठते बाहर व्याख्यान में। बड़ी सभा भरती थी। उनकी स्त्री को बहुत प्रेम है। उनकी स्त्री है न बहिन को। वह तो है, परन्तु सेठाई में। पुत्र नहीं, छोटे भाई का पुत्र लिया है, दत्तक लिया है। खबर है न। सब आये थे। आहाहा! अरे! किसका पुत्र और किसका दत्तक? प्रभु! तेरी वस्तु तो

तेरे पास तेरी गोद में है न! आहाहा! तेरे भण्डार में प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द भरा है, वहाँ शोध न! आहाहा! जहाँ तू नहीं, वहाँ क्यों खोजता है? सोने की खान हो, उसे छोड़कर धूल की खान खोदे। यहाँ तो सोने की खान पड़ी है न, प्रभु! आहाहा! तू तो आनन्दकन्द प्रभु शान्ति के रस (स्वरूप हो)। उसमें एक बार रुचि तो कर। समझ में आया?

अपनी चीज़ के अतिरिक्त सर्व चीज़ों की एक बार रुचि छोड़। आहाहा! ऐसा नहीं करके, यह मेरी चीज़ है, इस प्रकार **मन-वचन-कायारूप परिणत हुआ शुद्ध अपने आत्मद्रव्य की भावना से शून्य...** आहाहा! भगवान वीतरागस्वरूप आनन्दमूर्ति की भावना अर्थात् सन्मुख की एकाग्रता होनी चाहिए, उसे छोड़कर इस भावना से शून्य और इस भावना से सहित। आहाहा! अपने आनन्दस्वभाव की भावना से शून्य और जो अपनी चीज़ नहीं, उसकी भावना से भरपूर। आहाहा! भावना कर सके। वह चीज़ कहाँ इसके पास आती है। आहाहा! समझ में आया? लो, चिमनभाई! यह तुम्हारे कारखाना-फारखाना और यह सब... यह मेरा कारखाना, लो! जोरावरनगर में लोहे का बड़ा कारखाना है।

मुमुक्षु : कहलाये तो सही न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहलाये। किसका था? धूल का? आहाहा! लोहे का है, नहीं? वहाँ गये थे। स्टील-स्टील, वहाँ गये थे। स्टील का क्या... कुछ। प्याला या कुछ कहा था। ले जाओ, हमारे यहाँ काम नहीं। आहाहा!

यहाँ प्रभु! तू कहाँ है? वहाँ की भावना से शून्य होकर, जो चीज़ तेरी नहीं, उस चीज़ की भावना से भरपूर हो गया? आहा! यहाँ से खाली, यहाँ से भरपूर। आहाहा! धर्मात्मा पर की भावना से शून्य होकर अपने ज्ञाता-दृष्टा की भावना से भरपूर है। आहाहा! देखो! यह वीतराग का मार्ग, भाई! आहाहा!

मूढ़ात्मा है, ऐसा जानो, अर्थात् अतीन्द्रियसुखरूप आत्मा में परवस्तु का क्या प्रयोजन है? आहाहा! क्या कहते हैं? भगवान अतीन्द्रिय सुखस्वरूप आत्मा। उस आत्मा के सुख की प्राप्ति में परवस्तु का क्या प्रयोजन है? शरीर, वाणी, मन, देव, गुरु, शास्त्र किसी परवस्तु का उसमें प्रयोजन क्या है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में

आया ? देखो न ! टीकाकार ने भी टीका कैसी की है ! अतीन्द्रियसुखरूप आत्मा। आहाहा ! अस्ति उसकी अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर भगवान स्थित है। आहाहा ! वह तेरा निधान है, वह तेरी चीज़, वह तू है। आहाहा ! ऐसा आत्मा में **परवस्तु का क्या प्रयोजन है ?** आहाहा ! क्या कहते हैं ? कहते हैं कि वह भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु है, उसे व्यवहाररत्नत्रय का भी क्या प्रयोजन है, ऐसा कहते हैं। वह भी परवस्तु है। आहाहा ! स्त्री हो तो शरीर को नंगा-भूखा न रखे। स्त्री हो तो खुल्ला हो तो वस्त्र से ढँके, भूख लगी हो तो आहार दे। तो स्त्री काम तो करे। कौन करे ? धूल भी नहीं। सुन न ! ... ! भिखारीपने ऐसी भावना करता है। पुत्र उसे कहते हैं कि पवित्रता करे। धूल भी करे नहीं। शास्त्र में पुत्र का लेख आता है। पुत्र उसे कहते हैं, व्यवहार से लोग ऐसा कहते हैं, पुत्र उसे कहते हैं कि पिता को पवित्र करे। पवित्र करता होगा वह ? आहाहा ! समझ में आया ? लौकिक ऐसा मानते हैं, शास्त्र में ऐसा है। आहाहा ! धूल भी करता नहीं। यह श्राद्ध-बाद्ध डालते हैं न ! क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु : नरक में से बचाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बचाया। कौआ होकर उसका बाप आता होगा वहाँ ? श्राद्ध डालते हैं तो उसका बाप कौआ हुआ होगा ? तेरे बाप को तूने कौआ सिद्ध किया। यह श्राद्ध डाले न ! खीर और पूड़ी और... हें !

मुमुक्षु : समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में नहीं आया ? यह श्राद्ध नहीं डालते ? खबर नहीं ? भाषा तो वह की वह है तुम्हारी। श्राद्ध के दिन उसके पिता को रोटी डालते हैं न ? खीर, पूड़ी। उसका पिता कौआ होकर आया है तो डालते हैं ? मूढ़ को (खबर नहीं कुछ)। कौआ हुआ है तेरा पिता को सिद्ध करता है ? आहाहा ! कौआ... कौआ... कहते हैं न ? आहाहा !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बनिया भी करते हैं, मूढ़ जैसे। हमारे वहाँ कणबीवाड में रहते तो सब करते। छोटी उम्र में देखते। हमारे मामा और सब पैसेवाले थे न ! और पुत्र नहीं

था। पैसे बहुत, मकान बहुत। घर के मकान, दुकान, बड़े गृहस्थ थे। पुत्र नहीं था तो कुछ-कुछ तूफान करे। श्राद्ध डाले और अमुक डाले और यह करे और वह करे, डोरा-धागा (पहने)। सात मामा थे। एक भी लड़का नहीं होता, लड़की भी नहीं होती। पूरा वंश सब समाप्त हो गया। पैसेवाले थे। बहुत मकान, बहुत दुकानें। वह सब गौशाला में दे दिया, महाजन को दे दिया। निर्वंश थे न, उसे कौन रखे दूसरा? इसलिए सब गौशाला को (दे दिया)। बड़ा घर। आहाहा! परन्तु वह सब भ्रमणा... भ्रमणा... भ्रमणा... ऐसा करें तो होगा, यह करें तो होगा। आहाहा! दुनिया की भ्रमणा में भगवान भूल गया। भगवान को याद करना चाहिए, उसके बदले भ्रमणा को याद किया। आहाहा! तीन लोक का नाथ ज्ञाता-दृष्टा जहाँ क्षण में-पल में अन्दर खड़ा है। आहाहा! वह ज्ञाता-दृष्टा प्रभु तू है न! राग भी तेरी वस्तु नहीं तो यह चीज़ तेरी कहाँ से हो गयी? राग भी क्षण-क्षण में पलटता है और तू तो ध्रुव रहता है। समझ में आया? आहाहा! आत्मा अनन्त सुख का धनी प्रभु (विराजता है)। भाव में समझना चाहिए, हों! भाषा (नहीं)। भाषा तो भाषा से होती है, वह तो जड़ की है। आहाहा!

क्या प्रयोजन है? जो परवस्तु को अपना मानता है, वही मूर्ख है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पदवी। समकिती की पदवी, वह भी एक पदवी है और यह मूर्ख भी एक पदवी है। पदवी गिनता है। सम्यग्दर्शन एक पद—पदवी है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि पण्डित और पदवी। सम्यक् की पदवी है। वही पण्डित है। बाहर के पण्डित... पण्डित... पाण्डे छिलके कूटता है। राग से धर्म माना और पुण्य से धर्म माना, वह पण्डित सब छिलके (समान हैं)। फोतरा समझे? छिलका... छिलका। आहाहा! ऐसा है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में पहले अधिकार में है। पाण्डे... पाण्डे... पाण्डे... छिलके कूटता है। छिलके। मोक्षमार्गप्रकाशक में है।

गाथा - ८४

अथ –

८४) दुक्खहँ कारणि जे विसय ते सुह-हेउ रमेइ।
मिच्छाइट्ठिउ जीवडउ इत्थु ण काइँ करेइ।।८४।।

दुःखस्य कारणं ये विषयाः तान् सुखहेतून् रमते।
मिथ्यादृष्टिः जीवः अत्र न किं करोति।।८४।।

दुक्खहं कारणि जे विषय ते सुहहेउ रमेइ दुःखस्य कारणं ये विषयास्तान् विषयान् सुखहेतून् मत्वा रमते। स कः। मिच्छाइट्ठिउ जीवडउ मिथ्यादृष्टिर्जीवः। इत्थु ण काइं करेइ अत्र जगति योऽसौ दुःखरूपविषयान् निश्चयनयेन सुखरूपान् मन्यते स मिथ्यादृष्टिः किमकृत्यं पापं न करोति, अपि तु सर्वं करोत्येवेति। अत्र तात्पर्यम्। मिथ्यादृष्टिर्जीवो वीतरागनिर्विकल्प-समाधिसमुत्पन्नपरमानन्दपरमसमरसीभावरूपसुखरसापेक्षया निश्चयेन दुःखरूपानपि विषयान् सुखहेतून् मत्वा अनुभवतीत्यर्थः।।८४।। एवं त्रिविधात्मप्रतिपादकप्रथममहाधिकारमध्ये 'पज्जयरत्तउ जीवडउ' इत्यादिसूत्राष्टकेन मिथ्यादृष्टिपरिणतिव्याख्यानस्थलं समाप्तम्।।

अब और भी मूढ़ का लक्षण कहते हैं –

दुख के कारण को सुखकारण मान विषय में रमता है-
मूढ़ न जाने क्या क्या करता सुख पाने को भ्रमता है।।८४।।

अन्वयार्थ :- [दुःखस्य] दुःख के [कारणं] कारण [ये] जो [विषयाः] पाँच इन्द्रियों के विषय हैं, [तान्] उनको [सुखहेतुन्] सुख के कारण जानकर [रमते] रमण करता है, वह [मिथ्यादृष्टिः जीवः] मिथ्यादृष्टि जीव [अत्र] इस संसार में [किं न करोति] क्या पाप नहीं करता? सभी पाप करता है, अर्थात् जीवों की हिंसा करता है, झूठ बोलता है, दूसरे का धन हरता है, दूसरे की स्त्री सेवन करता है, अति तृष्णा करता है, बहुत आरंभ करता है, खेती करता है, खोटे-खोटे व्यसन करता है, जो न करने के काम हैं उनको भी करता है।

भावार्थ :- मिथ्यादृष्टि जीव वीतराग निर्विकल्प परमसमाधि से उत्पन्न परमानंद परमसमरसीभावरूप सुख से पराङ्मुख हुआ निश्चयकर महा दुःखरूप विषयों को सुख के कारण समझकर सेवन करता है, सो इनमें सुख नहीं हैं।।८४।।

गाथा-८४ पर प्रवचन

अब और भी मूढ़ का लक्षण कहते हैं :- विशेष कहते हैं। ८४ (गाथा)।

८४) दुक्खहँ कारणि जे विसय ते सुह-हेउ रमेइ।
मिच्छाइट्ठिउ जीवडउ इत्थु ण काइँ करेइ॥८४॥

आहाहा! **अन्वयार्थ :- दुःख के कारण जो पाँच इन्द्रियों के विषय हैं, उनको सुख के कारण जानकर रमण करता है,...** आहाहा! विषय दुःख के कारण हैं। पाँचों इन्द्रिय के विषय, हों! आहाहा! कीर्ति सुने, स्त्री के विषय में रमे, रूप को देखे, वेश्या आदि को और सुगन्ध-फूल के वृक्ष के निकट बैठा हो, वे सब विषय दुःख के कारण हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : निमित्तकारण हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त ही है न वह तो। वह कहाँ कराते हैं? यह तो परसों आया न? विषयो किं करोति? विषय तो अकिंचित्कर है। तुझे दुःख की दशा उत्पन्न होती है, उसमें विषय अकिंचित्कर है। दुःख तू उत्पन्न करता है। समझ में आया? प्रवचनसार में यह अधिकार तो बहुत सरस (आया है)। समझ में आया? ज्ञान अधिकार है न यह? आहाहा! शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, वह परवस्तु है। वह तुझे क्या करे? वह अकिंचित्कर है। तेरी सुख-दुःख की कल्पना में वह चीज़ तो अकिंचित्कर है। वह विषय तुझे कुछ करते नहीं। आहाहा! यहाँ तक लिया न, स्वर्ग का देह भी सुख का निमित्त नहीं। निमित्त कहा जाता है, परन्तु सुख का कारण नहीं। आहाहा! स्वर्ग का देह—सुन्दर शरीर, जिसे हजारों वर्ष में कण्ठ में से अमृत झरे। उसे यह कवलाहार नहीं। आहाहा! वह देह भी तुझे सुख में निमित्त नहीं, दुःख में निमित्त है। वह भी दुःख कराता नहीं, देह सुख कराती नहीं। सुख की कल्पना—यह ठीक है, ऐसी सुख की कल्पना देह कराती नहीं। आहाहा! देव के शरीर तो सुन्दर है न! सूर्य के तेज जैसे शरीर हों। आहाहा! चाँदडा पड़े अन्दर प्रकाश... प्रकाश... प्रकाश। व्यन्तर देव हो तो भी उसका सुन्दर शरीर होता है। उसके रहने के स्थान, व्यन्तर के-भूतड़ा के स्थान भी ऐसे ऊँचे होते हैं।

व्यन्तर के (रहने के स्थान) बहुत ऊँचे होते हैं। तब यह स्वामी नारायण के कितने ही कहते हैं न कि हमारे देव कहाँ हैं? बैकुंठ में। बैकुंठ क्या, उसमें से आये होंगे। वापस वहाँ गये हों। उसे खबर क्या कि देव किसे कहा जाता है। बैकुंठ जो व्यन्तर के अन्दर स्थान हीरा-माणेक से जड़ित हैं। शाश्वत् वस्तु। उसमें वह व्यन्तर रहते हों। इसलिए दूसरे अज्ञानी को तो ऐसा लगे कि आहाहा! यह तो परमेश्वर का बैकुंठ स्थान होगा, वहाँ से आये। और वहाँ जाये तो ऐसा माने कि बैकुंठ में गये। भूतड़ा में—व्यंतर में गये हैं। खबर है न, सब खबर है। नीचे व्यन्तर के स्थान हैं। कितने, ९२ लाख या कितने हैं? व्यन्तर के स्थान इतने सुन्दर... सुन्दर... सुन्दर... इन्द्रमणि जैसी शाश्वत् वस्तु (होती है)। अज्ञानी को भान नहीं होता तो ऐसा मानो कि आहा! यह तो बैकुंठ है। बैकुंठ नहीं, धूल भी नहीं। समझ में आया? बैकुंठ में से आये और बैकुंठ में गये। अर्थात् भूत में से आये और भूतड़ा में गये, इसका अर्थ यह है। सूक्ष्म बात है। बात तो ऐसी है, हों! यह तो थोड़ी बाहर आयी। बात तो ऐसी है। आहाहा!

यहाँ तो... मोक्ष में से कोई आत्मा आता है? और फिर वापस मोक्ष में जाता है, ऐसा है? एक बार चना सिंक गया, वह फिर से उगेगा? उगेगा नहीं। एकबार मोक्ष हो गया, पूरा हो गया। अज्ञान का नाश करके ज्ञानानन्द की दशा जहाँ पूर्णानन्द मोक्ष आनन्द प्रगट हुआ, उसे फिर अवतार नहीं होता। दुनिया को दुःखी देखकर, भक्तों को दुःखी देखकर अवतार धारण करे, ऐसा है नहीं। आहाहा! लोगों की कल्पना के सब गप्प हैं। भक्तों के कष्ट मिटाने के लिये भगवान अवतार धारण करे और राक्षसों को मारने (आवे)। कौन भगवान, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! भगवान तो अतीन्द्रिय आनन्द के सुख में आनन्द में है। लोकालोक को देखते हैं, इसलिए आनन्द है, ऐसा नहीं, हों!

अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द जो अपनी शक्तिरूप था, स्वभावरूप था, वह पर्यायरूप अतीन्द्रिय आनन्द हो गया, बस! यह परमात्मा। उसे दुःख नहीं, अवतार नहीं, जन्म नहीं, जरा नहीं, शिष्य नहीं, कोई नहीं उसे। आहाहा! उसे परमात्मा कहते हैं और वह परमात्मा होने के बाद फिर से संसार में अवतरित नहीं होते। आहाहा! दुःख के कण तो विषय—यह पाँच इन्द्रिय के विषय। अनुकूल **सुख के कारण जानकर रमण करता है,...** आहाहा! ज्ञानी भी विषय में तो आता है। छियानवें हजार स्त्रियाँ हैं, परन्तु वह सुख का

कारण नहीं जानता। अन्दर राग आता है, उसका समाधान दूसरे प्रकार से नहीं होता, इसलिए अन्दर राग में जुड़ जाता है। मानता है कि यह दुःख है। अज्ञानी तो विषयों में सुख मानकर रमणता करता है, ऐसा कहना है। समझ में आया? छियानवें हजार स्त्रियाँ, भरत चक्रवर्ती क्षायिक समकिती, उसी भव में मोक्ष जानेवाले, उन्हें निश्चित खबर है। समझ में आया? ऋषभदेव भगवान जब अष्टापद पर्वत से मोक्ष पधारे, तो भरत गये। वहाँ गये। आहाहा! प्रभु का भरत में विरह पड़ा। शकेन्द्र आये ऊपर से। भगवान मोक्ष पधारे हैं। भरत रोते हैं। क्षायिक समकिती है। इन्द्र कहता है, अरे! भरतजी! यह क्या? मुझे तो खबर है, हम भी इसी भव में मोक्ष जायेंगे। परन्तु प्रभु के विरह में मुझे दुःख होता है। इतना अभी मुझे राग है। मैं अभी वीतराग हुआ नहीं। अमरचन्दभाई!

इन्द्र कहता है, अरे! भरत! रोते किसलिए हो? तुम क्षायिक समकिती ज्ञानी हो न! तुम तो मोक्ष जाओगे, हमारे तो अभी एक मनुष्य का भव धारण करना पड़ेगा। पश्चात मोक्ष में जायेंगे। तुम्हारे तो यह देह छूटेगी तो मोक्ष है। सब खबर है, सब खबर है। परन्तु राग का भाव आता है तो ऐसा रुदन हो जाता है। इसी प्रकार विषय में भी राग आया, उसे दुःख मानता है। काला नाग जैसे देखे, वैसे राग को देखता है। सुखबुद्धि नहीं। अज्ञानी को विषय में सुखबुद्धि है, इतना अन्तर है। आहाहा! समझ में आया? क्रिया तो दोनों की एकसरीखी दिखती हैं। समकिती और मिथ्यादृष्टि की।

मुमुक्षु : मान्यता में अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर दृष्टि में अन्तर है। अज्ञानी सुख मानता है, ज्ञानी दुःख मानता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग वीतराग का। आहाहा! थोड़ा लिखा बहुत करके जानना, ऐसा नहीं कहते? इसी प्रकार थोड़ी बात में सन्त बहुत बात करते हैं। एक-एक गाथा में....

दुःख के कारण हैं, उन्हें सुख का कारण जानकर रमण करता है। आहाहा! **मिथ्यादृष्टि जीव इस संसार में क्या-क्या पाप नहीं करता?** ऐसा है, देखो! '**मिथ्यादृष्टिः किमकृत्यं पापं न करोति।**' आहाहा! मिथ्याश्रद्धा क्या नहीं करे? कुछ में कुछ (मानेगा)। माँस खाये, मदिरा पीये और मजा मानता है। महा मिथ्यादृष्टि। स्त्री सेवन करे और मजा

मानता है। आहार-पानी अनुकूल खाकर मजा मानता है। क्या नहीं करे, कहते हैं। आहाहा! अच्छी रेशम की शैय्या सोने को मिले तो आहाहा! क्या धूल है? वह तो रेशम और श्मशान दोनों एक समान हैं। समझ में आया? रेशम के रेशमी गद्दे आते हैं न? बिस्तर। एक-एक में कितने जीव मर जाये। रेशम के!....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर है। रेशमी कपड़ा होता है न? उसमें बहुत जीव मरते हैं। रेशम के कपड़े नहीं पहने जाते। बहुत पाप है। आहा! एक इतने में सैंकड़ों जीव मर जाते हैं। कीड़े को मारकर गर्म पानी में डालते हैं। वह कपड़े आर्य मनुष्य को प्रयोग करनेयोग्य नहीं हैं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **मिथ्यादृष्टि जीव इस संसार में क्या-क्या नहीं करता?** आहाहा! **सभी पाप करता है, अर्थात् जीवों की हिंसा करता है, झूठ बोलता है,...** झूठ बोलने में भी ठिकाना नहीं। आहाहा! **दूसरे का धन हरता है,...** चोरी (करे)। **दूसरे की स्त्री सेवन करता है, अति तृष्णा करता है,...** आहाहा! कितना पाप लगता है कि कहाँ जायेगा, इसकी कुछ खबर नहीं। इतनी तृष्णा... तृष्णा... तृष्णा... अरे! परन्तु तुझे कहाँ जाना है? यहाँ तो पच्चीस-पचास वर्ष की अवधि है, सौ वर्ष की अवधि लो न! आत्मा तो भविष्य में अनन्त काल रहेगा। अनन्त काल कैसे रहेगा? पाप करे और उसमें रहे आत्मा? वह तो दुर्गति है। आहाहा! यह तो पच्चीस, पचास, सौ वर्ष देह में रहने का है। भविष्य में तो भगवान अनादि-अनन्त रहनेवाला है। तो अनन्त काल कहाँ रहेगा? ऐसे पाप करने में तो पापबुद्धि में—मिथ्यात्व में रहेगा। आहाहा! समझ में आया? देह छूटकर जाता है तो क्या आत्मा का नाश होता है? आहाहा! भविष्य में प्रभु! तुझे रहने का है न! तुझे कहाँ रहना है? भाई! किस प्रकार तुझे रहना है? पाप करके रहना है? वह तो दुःख है। समझ में आया? भविष्य में मिथ्यादृष्टिरूप से रहेगा तो तुझे दुःख में ही रहना है। आहा! आहाहा!

मिथ्यादृष्टि रहकर तुझे जाना है तो भविष्य में तुझे दुःख में जाना है। भविष्य (काल) तुझे दुःख में रहना है? समझ में आया? आहाहा! कितनी वैराग्य की बात

करते हैं, देखो! ओहोहो! .... तुझे खबर नहीं। नहीं है, उसके साथ सम्बन्ध करता है तो वह सम्बन्ध नहीं छोड़ेगा। चार गति के भव नहीं छूटेंगे। आहाहा! **बहुत आरम्भ करता है,....** यह जिन, प्रेस में कितने गर्म-गर्म पानी हौज में पड़े। कौवे, बिल्ली, मेंढ़क मर जाये। बनिया बड़े-बड़े करोड़पति होते हैं न? मिल बनावे न? मिल। आहाहा! **बहुत आरम्भ करता है, खेती करता है,...** खेती करे, खेती। खेती में नीचे सर्प होवे तो... क्या कहलाता है तुम्हारा? हल... हल। हल चले तो कट जाये वहाँ। आहाहा! **खेती करता है, खोटे-खोटे व्यसन करता है, जो न करने के काम हैं, उनको भी करता है।** आहाहा! झूठ, चोरी, ऐसा पाप करे, जिसे मिथ्यादृष्टिरूप से दरकार नहीं कि मेरा क्या होगा? ऐसा करे। इसका भावार्थ कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, श्रावण कृष्ण ७, मंगलवार
दिनांक-१७-०८-१९७६, गाथा-८४ से ८६, प्रवचन-६५

८४ गाथा का भावार्थ। **मिथ्यादृष्टि....** जिसकी दृष्टि विपरीत है, मिथ्यात्व है, वह जीव **वीतराग निर्विकल्प परमसमाधि से उत्पन्न परमानन्द परमसमरसीभावरूप सुख...** क्या कहते हैं? आहाहा! वीतराग—रागरहित, अन्तर में निर्विकल्प परमसमाधि-शान्ति। आत्मा में परमसमाधि से उत्पन्न हुआ सुख। परमानन्द परमसमरसीस्वभाव। परमसमरसी। वीतरागी आनन्द। भगवान आत्मा की अन्तर दृष्टि से जो वीतराग परमानन्द की दशा होती है, उससे **पराङ्मुख हुआ....** मिथ्यादृष्टि ऐसे सुख से उल्टा हुआ। क्या कहा? भगवान परमानन्द समरसीसुख ऐसा जो अपना स्वभाव, उसमें से जो आनन्द उत्पन्न होता है, उससे मिथ्यादृष्टि विमुख है। आहाहा! ऐसे सुख से विमुख—परान्मुख हुआ। **निश्चयकर महा दुःखरूप...** यह विषयसेवन अज्ञानी सुखरूप मानकर सेवन करता है, उसकी यह व्याख्या है। आहा! वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय में सुख है, ऐसी मान्यता से सेवन करता है, वह परमानन्दस्वरूप सुख है, उससे विपरीत वह दुःख है। आहाहा! कहो, सेठ! यह पैसा-फैसा की ओर के झुकाव में दुःख है, ऐसा कहते हैं। आ गया? आहाहा!

भगवान निर्विकल्प आनन्दस्वरूप प्रभु से उत्पन्न हुआ, परमसमरसी वीतरागी आनन्द, उससे विमुख... आहाहा! मिथ्यादृष्टि जीव परान्मुख—अपने सुख से परान्मुख होकर, उल्टा होकर निश्चयकर महा दुःखरूप है। आहाहा! स्त्री के सेवन का भाव है, वह दुःखरूप है। कीर्ति सुनकर जो राग होता है, वह दुःखरूप है। आहाहा! लक्ष्मी आदि पाँच, पचास करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ मिली, उसमें प्रसन्नता वर्तती है, वह दुःखरूप है। वह विषय दुःखरूप है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भाव दुःखरूप है। ऐसा कहना है न? वह भाव, अपने आनन्द-सुख से विपरीत है। पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर के झुकाववाले भाव, वे

दुःखरूप हैं। उसे अज्ञानी सुखरूप मानकर सेवन करता है। वह मिथ्यादृष्टि है, उसे जैन की खबर नहीं। आहाहा! उसे जैनधर्म क्या है, इसकी खबर नहीं। आहाहा!

जैन अर्थात् आत्मा वीतरागमूर्ति प्रभु, उसमें जो अतीन्द्रिय आनन्द है, उस अतीन्द्रिय आनन्द का, मिथ्याभ्रान्ति को छेदकर अतीन्द्रिय आनन्द उत्पन्न करना और उसका वेदन करना, वह जैनधर्म है। आहाहा! समझ में आया?

निश्चयकर महा दुःखरूप विषयों को सुख का कारण समझकर... यह शब्द है न? आहा! **सुख का कारण समझकर...** आहाहा! शब्द सुने, उसमें प्रसन्न होता है। अपनी प्रशंसा, इज्जत, पैसे के ऊपर लक्ष्य जाता है, विषयभोग में लक्ष्य जाता है, वह सब दुःखरूप दशा है। आहाहा! बाहर में ऐसा कहे, पैसा है, ठीक है, ... सुखी हैं। धूल में भी सुखी नहीं। अज्ञानी पागल मानता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दुनिया उसे पागल नहीं कहती।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया पागल है, तो पागल को पागल न कहे। उसे तो अच्छा कहे। पागल में बड़ा हो तो उसे बड़ा पागल कहे। ऐ... पोपटभाई! बड़ा पागल! उसके पास दो करोड़ रुपये हैं। बड़ा पागल होगा? आहाहा! यहाँ तो परमानन्द प्रभु अतीन्द्रिय सुखरस से भरपूर आत्मा, उसकी दृष्टि करके जो सुख उत्पन्न होना चाहिए, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना चाहिए। आहाहा! ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद से विपरीत, पाँच इन्द्रिय के विषय का स्वाद दुःखरूप है, उसे सुखरूप मानकर सेवन करता है। आहाहा! समझ में आया? वह जैन नहीं, उसे जैन की खबर नहीं। आहाहा! जैन कोई वाडा नहीं है। जैन कोई पक्ष नहीं। जैन आत्मा का स्वरूप है। आनन्दमूर्ति वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा है। सर्वज्ञ परमात्मा ने जैसा प्रगट किया, ऐसी चीज़ अन्दर पूर्ण पड़ी है। आहाहा! वह परमानन्द समरसी वीतरागी आनन्द, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह राग का सुख, यह वीतरागी आनन्द। यह समताभाव, वह विषमभाव। आहाहा! देखो! दृष्टिफेर से यह क्या मानता है? आहा! सम्यग्दृष्टि को विषयसेवन होता है। जहाँ तक वीतराग न हो, वहाँ तक आसक्ति आती है, परन्तु सुख मानकर सेवन नहीं करता। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! यह दिगम्बर मुनि होनेवाले थे। वैरागी व्यक्ति थे। गृहस्थ हैं। नीचे चटाई में सोते हैं। अभी तुझे दृष्टि की खबर नहीं, साधुपना आया कहाँ से? आहाहा!

भगवान! तुझमें तो अतीन्द्रिय आनन्द का रस भरचक छलाछल भरा है न! आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड आत्मा, अतीन्द्रिय सुख का सागर आत्मा, उसकी दृष्टि करने से सुख और आनन्द की दशा का झरना बहता है। जैसे पर्वत में से पानी का झरना बहता है पर्वत में से। आहाहा! इसी प्रकार भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, उस पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन में आनन्द की धारा (ज्वार) आती है। समझ में आया? अभी तो उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। समझ में आया? ऐसे सम्यग्दर्शन में... कुन्दकुन्दाचार्य ने पाँचवीं गाथा में कहा न? मैं मेरे वैभव से समयसार कहूँगा। मेरा वैभव क्या है? मेरे आनन्द का अनुभव, आनन्द जिसकी मोहरछाप है, अतीन्द्रिय आनन्द का मुझे अनुभव है, वह मेरी मोहरछाप मुनि की है। आहाहा! समझ में आया? 'एक सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन दुखिया रे, एक सुखिया जगत में रे सन्त... दुरिजन दुखिया रे...' जिसने अपना आनन्द का नाथ परमात्मस्वरूप का अन्तर में साक्षात्कार किया, वह सन्त समकिती जगत में सुखी है। 'दुरिजन दुखिया रे...' जिसने अपने आनन्द की रुचि छोड़कर, समरसी वीतराग परमानन्द के भाव से परान्मुख होकर, पाँच इन्द्रिय के विषय को सुखबुद्धि से सेवन करता है, वह मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है, पाखण्डी है, अज्ञानी है। जन्म-मरण के समुद्र में वह गोते खायेगा। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान! आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर अपने आनन्द का स्वाद लेने के लिये छह खण्ड का राज छोड़ दिया। आहाहा! समझ में आया? प्रवचनसार में आता है न? जब दीक्षा लेते हैं न? चारित्रदशा समकितसहित। माता, पिता, पत्नी, पुत्र के पास आज्ञा माँगता है। हे शरीर को रमानेवाली रमणी! तू आज्ञा दे। तू मुझे रमा नहीं सकती। मेरी अनुभूति, आनन्दस्वरूप भगवान अनुभूति, वह मेरी स्त्री है। अनुभूति भगवान आत्मा, हों! अपना स्वभाव। मैं अनुभूति आनन्द के पास जा रहा हूँ। हे शरीर को रमानेवाली! तू एक बार आज्ञा दे। आहाहा! मेरा आनन्दस्वरूप भगवान, वह मेरी अनुभूति है। आहाहा! उसमें मैं अनुभूति करने जाता हूँ। मैंने दीक्षा ली, इसलिए वन में जाता हूँ। मैं तो मेरे आनन्द की अनुभूति करने जाता हूँ। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! माता आज्ञा न दे तो माता को कहे, माता! तू शरीर की माता है। तूने आत्मा को प्रसव नहीं किया। तूने तो

शरीर को प्रसव किया है। मेरा आत्मा... माता! अनादि का है। जननी! शरीर को जन्म देनेवाली जननी! एक बार आज्ञा दे, माँ! मेरी आनन्द की अनुभूति माता के पास मैं जाता हूँ। आहाहा! देखो! सम्यग्दर्शन में यह विषयसुख की रुचि छूट गयी है। समझ में आया? उसे अन्दर मुनिपना आता है। उसे चारित्र में अतीन्द्रिय आनन्द की धारा बहती है। ऐसा का ऐसा मुनिपना मान लेना, व्रतधारी मान ले (ऐसा नहीं)। आहाहा! समझ में आया?

सम्प्रदाय में बहुत बार कहते थे। श्वेताम्बर में एक आता है। छह जीव को, उत्तराध्ययन में (आता था)। है तो कल्पित, परन्तु उस समय तो वह वाँचते न! माता को कहे, 'अजैव धम्मम पडिवज्जयामो, जंहि पु... पुनमभवामो।' उत्तराध्ययन श्वेताम्बर का है, उसकी गाथा है। छह हजार श्लोक कण्ठस्थ किये थे। छह हजार। उस समय तो... प्रतिष्ठा तो हमारी पहले से थी न! छोटी उम्र से। 'अजैव धम्मम पडिवज्जयामो, जहि पवन्नाम पुनमभवामो।' अर्थ करेंगे, हों! '...' हे माता! मुझे आज्ञा दे। मेरा आनन्द का नाथ, उसके भोग के लिये मैं वन में जाता हूँ। आहाहा! माता! एक बार रोना हो तो रो ले। परन्तु माता! मैं कोलकरार करता हूँ, मैं दूसरी माता-जननी नहीं करूँगा। आहाहा! 'अजैव धम्मम् पडिवज्जयामो' चारित्ररूपी धर्म अंगीकार करूँगा और माता! कोलकरार करते हैं, माता! 'जही पवन्नाम पुनम्भवामो।' हम आनन्द के नाथ को अन्दर विवाहने जाते हैं। आहाहा! और माता! कोलकरार करते हैं, फिर से हमारे भव नहीं। माता! अब फिर से माता बनानेवाले नहीं। आहाहा! यह तो माँ और पिता, धूल और धाणी... मर गया उसी और उसी में।

यहाँ यह कहते हैं, पाँच इन्द्रिय के विषय में सुखबुद्धि से सेवन करता है। आहाहा! हेमचन्दजी! यह ब्रह्मचारी है न। अभी कितना वेतन है? ८५०। नियम लिया था तब ६०० था न? आजीवन का ब्रह्मचर्य लिया है। मासिक ६०० वेतन था। आजीवन ब्रह्मचर्य लिया है। अब ८५० वेतन है। बालब्रह्मचारी है। अरे! ब्रह्म अर्थात् आनन्द, ब्रह्म आत्मा आनन्दस्वरूप है। वह अन्दर में रमना, इसका नाम ब्रह्मचारी है।

यहाँ यह कहते हैं, अरे! निश्चयकर विषय का सेवन महादुःखरूप है। जहर का प्याला पीता है और मानता है कि हम विषय भोगते हैं और हम सुखी हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! लड्डू और मैसुख और जलेबी खाये। अरे! भगवान! क्या

है ? प्रभु ! उस ओर का भाव होता है, वह तो राग है न, प्रभु ! वह तो दुःख का अनुभव है। आहाहा ! विषय सेवन में स्त्री का सुन्दर शरीर कोमल, नरम लगे तो सेवन में स्त्री का स्पर्शन है, उसमें तो राग का भाव दुःख है। भगवान ! तुझे खबर नहीं। तू सुखकर मानता है। आहाहा ! सन्तों की दया तो देखो ! प्रभु ! प्रभु वह मिथ्यादृष्टि है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! पाँच इन्द्रिय के विषय का सेवन छोड़ दिया हो, परन्तु अन्दर विषय का प्रेम जिसे अभी है, प्रेम लगे, सुखबुद्धि है... आहाहा ! समझ में आया ? वह मिथ्यादृष्टि है।

इसमें सुख नहीं है। आहाहा ! सुख भगवान आत्मा में है न, भाई ! सच्चिदानन्द प्रभु, सत् चिदानन्द। सत् अर्थात् शाश्वत्, चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द, वह तो अपने में भरे हैं। वह सुख वहाँ नहीं शोधकर बाहर में शोधता है, यह मूर्खाई है, कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! यह ८४ गाथा हुई।

अब ८५। एक बार दृष्टान्त दिया था। परसों दिया था।

गाथा - ८५

तदनन्तरं सम्यग्दृष्टिभावनाव्याख्यानमुख्यत्वेन 'कालु लहेविणु' इत्यादि सूत्राष्टकं कथ्यते। अथ –

८५) कालु लहेविणु जोइया जिमु जिमु मोहु गलेइ।
तिमु तिमु दंसणु लहइ जिउ णियमें अप्पु मुणेइ।।८५।।

कालं लब्ध्वा योगिन् यथा यथा मोहः गलति।
तथा तथा दर्शनं लभते जीवः नियमेन आत्मानं मनुते।।८५।।

कालु लहेविणु जोइया जिमु जिमु मोहु गलेइ कालं लब्ध्वा हे योगिन् यथा यथा मोहो विगलति तिमु तिमु दंसणु लहइ जिउ तथा तथा दर्शनं सम्यक्त्वं लभते जीवः। तदनन्तरं किं करोति। णियमें अप्पु मुणेइ नियमेनात्मानं मनुते जानातीत्यर्थः। तथाहि एकेन्द्रियविकलेन्द्रिय–पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तमनुष्यदेशकुलशुद्धात्मोपदेशादीनामुत्तरोत्तरदुर्लभक्रमेण दुःप्राप्ता काललब्धिः, कथंचित्काकतालीयन्यायेन तां लब्ध्वा परमागमकथितमार्गेण मिथ्यात्वादिभेदभिन्न–परमात्मोपलंभप्रतिपत्तेर्यथा यथा मोहो विगलति तथा तथा शुद्धात्मैवोपादेय इति रूचिरूपं सम्यक्त्वं लभते। शुद्धात्मकर्मणोर्भेदज्ञानेन शुद्धात्मतत्त्वं मनुते जानातीति। अत्र यस्यैवोपादेयभूतस्य शुद्धात्मनो रुचिपरिणामेन निश्चयसम्यग्दृष्टिर्ज्जातो जीवः, स एवोपादेय इति भावार्थः।।८५।।

इस प्रकार तीन तरह की आत्मा को कहनेवाले पहले महाधिकार में 'जिउ मिच्छतें इत्यादि आठ दोहों में से मिथ्यादृष्टि की परिणति का व्याख्यान समाप्त किया। इसके आगे सम्यग्दृष्टि की भावना के व्याख्यान की मुख्यता से 'काल लहेविणु' इत्यादि आठ दोहा–सूत्र कहते हैं –

काललब्धि पाकर के ज्यों ज्यों मोह गले त्यों त्यों होता।
सम्यग्दर्शन प्राप्त जीव को अपने को माने आत्मा।।८५।।

अन्वयार्थ :– [योगिन्] हे योगी, [कालं लब्धवा] काल पाकर [यथा यथा] जैसा जैसा [मोहः] मोह [गलति] गलता है–कम होता जाता है, [तथा तथा] तैसा तैसा [जीवः] यह जीव [दर्शनं] सम्यग्दर्शन को [लभते] पाता है, फिर [नियमेन] निश्चय से [आत्मानं] अपने स्वरूप को [मनुते] जानता है।

भावार्थ :- एकेन्द्री से विकलत्रय (दोइन्द्री, तेइन्द्री, चोइन्द्री) होना दुर्लभ है, विकलत्रय से पंचेन्द्री, पंचेन्द्री से सैनी पर्याप्त, उससे मनुष्य होना कठिन है। मनुष्य में भी आर्यक्षेत्र, उत्तमकुल, शुद्धात्मा का उपदेश आदि मिलना उत्तरोत्तर बहुत कठिन हैं, और किसी तरह 'काकतालीय न्याय से' काललब्धि को पाकर सब दुर्लभ सामग्री मिलने पर भी जैन-शास्त्रोक्त मार्ग से मिथ्यात्वादि के दूर हो जाने से आत्मस्वरूप की प्राप्ति होते हुए, जैसा जैसा मोह क्षीण होता जाता है, वैसा शुद्ध आत्मा ही उपादेय है, ऐसा रुचिरूप सम्यक्त्व होता है। शुद्ध आत्मा और कर्म को जुदे जुदे जानता है। जिस शुद्धात्मा की रुचिरूप परिणाम से यह जीव निश्चयसम्यग्दृष्टि होता है, वही उपादेय है, यह तात्पर्य हुआ।।८५।।

गाथा-८५ पर प्रवचन

८५) कालु लहेविणु जोइया जिमु जिमु मोहु गलेइ।
तिमु तिमु दंसणु लहइ जिउ णियमेँ अप्पु मुणेइ॥८५॥

अन्वयार्थ :- हे योगीन,.... प्रभाकर भट्ट को लक्ष्यकर बात है न! मुनि हैं। हे योगी! योगी अर्थात् यह अन्यमती के बाबा, वे नहीं। अपने आनन्दस्वरूप में जिसने परिणति जोड़ दी है, उसे योगी कहते हैं। योग—जुड़ान। आहाहा! भगवान आत्मा में परिणति निर्मल वीतरागीदशा जोड़ दी है, उसे योगी कहते हैं। सम्यग्दृष्टि भी जघन्य योगी है। समझ में आया? चौथे गुणस्थान में भी योगी स्वरूप में अपनी वृत्ति जोड़ दी है और अनन्तानुबन्धी का अभाव करके स्थिरता जोड़ दी है। आहाहा! तो चौथे में योगी, पाँचवें में भी योगी और मुनि भी योगी। यह योगी, हों! अन्यमती के बाबा, वे नहीं। अन्यमत में योगी नहीं होते। वह तो अज्ञानी है। आहाहा!

हे योगी! काल पाकर... भाषा ऐसी ली है। काल को पाकर, काललब्धि को पाकर। आहाहा! **जैसा जैसा मोह गलता है...** जैसे-जैसे स्वरूप-सन्मुख की सावधानी, रुचि बढ़ती है, वैसे-वैसे मिथ्यात्व मोह गलता है। आहाहा! **जैसा जैसा मोह गलता जाता है—कम होता जाता है, तैसा तैसा यह जीव सम्यग्दर्शन को पाता है,...** भगवान पूर्णानन्दस्वरूप सन्मुख की, उस ओर की रुचि बढ़ती है। समझ में आया? ....

देखो! करने की चीज़ यह है। बाकी लाख बात की बात निश्चय उर आणो। छहढाला में आता है न? 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो, छोड़ी जगत द्वंद्व फंद, निज आतम उर ध्यावो।' द्वंद अर्थात् द्वैतपना। यह आत्मा और यह पर्याय, ऐसा द्वैतपना भी लक्ष्य में से छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया? यह तो छहढाला में आता है।... भगवान आत्मा की ओर जैसे-जैसे अन्तर में निश्चय का पुरुषार्थ चलता है... आहाहा! वैसे-वैसे मिथ्यात्व का रस श्रद्धा में रस मन्द पड़ता है। श्रद्धा में, हों! बाहर में तो ठीक। आहाहा! और जैसे-जैसे स्वरूप सन्मुख का अनुभव होता है, तब आत्मा का स्वाद लेता है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन में आत्मा की प्राप्ति होती है। सम्यक् अर्थात् सत्य दर्शन। चौथे गुणस्थान में, हों! सम्यक् अर्थात् सत्यदर्शन। अर्थात् भगवान पूर्णानन्द सत्य स्वरूप प्रभु, पूर्ण सत्य स्वरूप की दृष्टि होना और उसमें आनन्द का वेदन आना... आहाहा! उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। समझ में आया? यहाँ यह कहते हैं, जैसे-जैसे दर्शनमोह गलता है, वैसे-वैसे सम्यग्दर्शन को पाता है। **फिर निश्चय से अपने स्वरूप को जानता है।** अन्तर में ज्ञान में स्वसंवेदन हो जाता है और बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञान भी हो जाता है। आहाहा! रुलते-भटकते चौरासी के अवतार विशेष कहते हैं, देखो!

भावार्थ :— पहले तो एकेन्द्रिय में था। अनादि से जीव निगोद में था। आहाहा! जैसे स्त्री का पीहर होता है। पहले पीहर में रहे। इसी प्रकार आत्मा पहले निगोद में था। आहाहा! पीहर कहते हैं? समझ में आया? मायका। इसी प्रकार आत्मा का पीहर का स्थान निगोद है। आहाहा! अनन्त जीव पड़े हैं, प्रभु! आहाहा! बहुत से तो उसमें से कभी त्रस हुए नहीं, ऐसे अनन्त जीव निगोद में पड़े हैं। आहाहा! यहाँ तो दुर्लभता वर्णन करते-करते सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त करना, वह बात की है। आहाहा!

भाई! तू पहले एकेन्द्रिय में था न! आहाहा! वहाँ से निकलकर विकलेन्द्रिय हुआ। दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय हुआ। यह **होना दुर्लभ है,....** एकेन्द्रिय में से निकला। आहाहा! हम मुम्बई थे न, मकान समुद्र के किनारे था। .... रमणीकभाई है न? आमादेवाले। दिगम्बर हैं। पाँच-छह करोड़ रुपये हैं। यहाँ प्रार्थना करने आये थे। महाराज! रहना। ठीक, कहा। सत्तर लाख का मकान। वहाँ रहते थे। समुद्र नजदीक देखा। समुद्र। ओहोहो! कहा, यह पानी। ऊपर-नीचे आगे एक-एक बिन्दु में असंख्य

जीव। बापू! यह वस्तु का स्वरूप है। न माने, इसलिए कहीं वस्तु बदल जाये? उस पानी की एक बिन्दु में असंख्य शरीर। एक शरीर में एक जीव। ऐसा-ऐसा पानी का दल चलता जाता है। नजर न पहुँचे। कहीं छोर नहीं। नीचे दल। आहाहा! उसमें से कब मनुष्य हो? और कब सत्य वचन कान में पड़े? कितनी दुर्लभता जीव को! जिसे मिला, उसे दरकार नहीं। आहाहा! समझ में आया? और वहाँ तो वे बगुले थे न? बगुले मछलियाँ खाने के लिये बहुत घूमते थे। बड़ा समुद्र। मैंने पूछा, यह बगुले कहाँ तक जाते होंगे? महाराज! बीस-बीस मील तक मछलियाँ लेने जाते हैं। आहा! बीस मील। समुद्र के ऊपर। वहाँ बैठने का स्थान तो कहीं है नहीं। बीस मील उड़ते... उड़ते... उड़ते... चले जायें। आहाहा! और वापस मरकर नरक में जाना। आहाहा! गजब बात, बापू! तुझे कब मिलेगा ऐसा? समझ में आया? ऐसी चीज़ दुर्लभ है। कहते हैं। एकेन्द्रिय में से दो इन्द्रिय होना दुर्लभ है।

विकलत्रय से पंचेन्द्रिय.... होना। पाँच इन्द्रिय की पूर्ण प्राप्ति होना दुर्लभ है। उसमें से भी **सैनी पर्याप्त,....** पंचेन्द्रिय हो परन्तु मन बिना के हों—असंज्ञी। संज्ञी पंचेन्द्रिय होना दुर्लभ है। आहाहा! **उससे मनुष्य होना कठिन है।** मनुष्य हुए हों, उन्हें कुछ दरकार नहीं होती। आहाहा! विषय भोग, कमाना, खाना, पीना, इसमें लवलीन। जाये मरकर पशु में जाये फिर। पशु... पशु (होते हैं)। समझ में आया? ऐई! **मनुष्य में भी आर्यक्षेत्र,....** मनुष्य आर्यक्षेत्र में उत्पन्न हो। आर्यक्षेत्र में उत्पन्न होना दुर्लभ है। आर्यक्षेत्र में भी **उत्तमकुल,....** में उत्पन्न होना दुर्लभ है। आहाहा! उसमें भी उत्तम कुल मिला।

शुद्धात्मा का उपदेश आदि मिलना उत्तरोत्तर बहुत कठिन है,... वस्तु का सत्य उपदेश मिलना अभी तो दुर्लभ हो गया। आहाहा! जहाँ-तहाँ दया, दान, व्रत, भक्ति करो, परम्परा धर्म होगा। ऐसी प्ररूपणा में सत्य धर्म सुनने को मिलना दुर्लभ हो गया। समझ में आया? है? शुद्धात्मा का उपदेश, हों! भगवान शुद्ध चिदानन्द भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु तू है। यह भूल है तो एक समय की पर्याय में भूल है। बाकी पूरा स्वरूप तेरा भगवान है। आहाहा! शुद्धात्मा अर्थात् परमात्मस्वरूप ही तेरा है। यहाँ परमात्मप्रकाश है न! आहाहा!

कैसे नजर में आवे? एक समय की पर्याय प्रगट है, उसके ऊपर अनादि की दृष्टि

है। पर्याय के पीछे भगवान पूरा अनन्त आनन्द का नाथ प्रभु स्थित है, उसकी खबर नहीं। दुनिया की सब खबर। यह ऐसा है और ऐसा है, धूल है। समझ में आया? आहाहा! भाषा कैसी ली है!

उत्तम कुल, शुद्धात्मा का उपदेश... समझे? यह महा दुर्लभ है। आहाहा! **उत्तरोत्तर बहुत कठिन है,...** एक के बाद एक कठिन है, भाई! आहाहा! **और किसी तरह काकतालीय न्याय से...** कौवे का बैठना और डाल का पड़ना। डाल होती है न? कौआ बैठे और डाल गिरे। वह कहीं कौवे के भार से नहीं गिरती। परन्तु मौके से ऐसा योग होता है कि कौआ बैठे और डाल गिरे। डाल गिर जाती है न? यह नीम की या.... इसी प्रकार काकतालीय न्याय। है न? काकतालीय न्याय से। काक अर्थात् कौआ और ताली अर्थात् डाली। उसका बैठना और डाली का गिरना। उसी प्रकार यह मनुष्यदेह मिला, स्वतत्त्व का उपदेश मिला।

काललब्धि को पाकर सब दुर्लभ सामग्री मिलने पर भी... आहाहा! **जैन शास्त्रोक्त मार्ग से...** देखो! वीतराग के कहे हुए शास्त्र का मार्ग। अन्यमति के कहे हुए मार्ग में तो मार्ग है नहीं। आहाहा! समझ में आया? जैन शास्त्रोक्त मार्ग। आहाहा! कठिन बात है। जैन शास्त्र तो दिगम्बर के शास्त्र, वे जैनशास्त्र हैं। इसके अतिरिक्त कोई शास्त्र सच्चे नहीं। समझ में आया? श्वेताम्बर के शास्त्र भी जैनशास्त्र नहीं। वे सब कल्पित बनाये हुए हैं। वह यहाँ कहते हैं।

जैन शास्त्रोक्त, जैन शास्त्रोक्त। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ के मुख से दिव्यध्वनि निकली, ऐसा जो मार्ग है... आहाहा! जिन **मार्ग से मिथ्यात्वादिक दूर हो...** जैन शास्त्रोक्त मार्ग में मिथ्यात्व दूर होता है। जैनशास्त्र ऐसा कहते हैं कि जैनशास्त्र का तात्पर्य यह है कि स्व का आश्रय ले और पर का आश्रय छोड़ दे। अथवा पर की उपेक्षा कर और स्व की अपेक्षा कर। त्रिलोकनाथ परमात्मा तेरा स्वरूप है, उसकी अपेक्षा कर और संयोग, राग, निमित्त और पर्याय की उपेक्षा कर। आहाहा! शास्त्र का तात्पर्य तो वीतरागता है। पंचास्तिकाय की १७२ गाथा है न? १७२ गाथा। शास्त्र का तात्पर्य तो वीतरागता है। इसका अर्थ क्या?

अपना भगवान पूर्णानन्द की ओर झुक जाना.... आहाहा! और संयोग, निमित्त,

राग और पर्याय की उपेक्षा करना। आहाहा! द्रव्य की अपेक्षा करना, पर की उपेक्षा करना। द्रव्य की अपेक्षा करना, पर की उपेक्षा करना—यह शास्त्र का तात्पर्य है। समझ में आया? लाख बात की बात और करोड़ बात करे परन्तु यह है। यह नहीं समझ में आवे, उसे कुछ समझ में नहीं आता। आहाहा!

जैन-शास्त्रोक्त, ऐसा है न? जैनशास्त्र ने कहा हुआ, जैनशास्त्र ने कहा हुआ मार्ग। वह वीतरागमार्ग परमात्मा ने कहा। वीतरागता उत्पन्न हो, वह किस प्रकार से उत्पन्न होती है? त्रिकाली भगवान आत्मा के आश्रय से वीतरागता उत्पन्न होती है। तो स्व का आश्रय करना और पर का आश्रय छोड़ना, यह शास्त्रोक्त मार्ग है।

मुमुक्षु : स्व में बस, पर से खस।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर से खस, अपने में बस, टुंकुं टच, इतना बस। पर से खस। खस, समझे? हटना। संयोग से, राग से खस। पूर्णानन्द के नाथ में बस। यह टुंकुं टच, इतना बस। वीतराग को यह कहना है।

मुमुक्षु : यही है जैनधर्म का कस।

पूज्य गुरुदेवश्री : कस यह है। जैनदर्शन का यह कस है। आहाहा! यह न समझे और लाख बात सब करे, जानपने की बातें और शास्त्र की और त्याग की बात करे। यह तो अनन्त बार किया। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **जैन शास्त्रोक्त मार्ग से मिथ्यात्वादिक से दूर हो जाने से...** ऐसा कहकर क्या कहा? सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो शास्त्र कहे, इसके अतिरिक्त दूसरे शास्त्र से मिथ्यात्व नाश नहीं होता। दूसरे शास्त्र से तो मिथ्यात्व की पुष्टि होती है क्योंकि वह कुशास्त्र है। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि को सन्तों ने लाकर यह बात की है। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य ने साक्षात् दिव्यध्वनि सुनी। वे तो सन्त थे, समकिती थे, मुनि थे। सच्चे भावलिंगी थे। तो भी भगवान के पास गये थे। भगवान सीमन्धर प्रभु वर्तमान में विराजते हैं। पाँच सौ धनुष का देह है। करोड़ पूर्व का आयुष्य है। संवत् ४९ में गये थे। अभी विराजते हैं, अभी अरबों वर्ष रहनेवाले हैं। आगामी चौबीसी में जब तेरहवें तीर्थंकर होंगे, तब मोक्ष होगा। अभी तो अरिहन्त पद में समवसरण में विराजते

हैं। आहाहा! वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे। आहाहा! वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाये। यह तो दिव्यध्वनि का सार है। समझ में आया? यह वाणी मिलना दुर्लभ है और वाणी में कहा हुआ मार्ग प्राप्त करना, वह तो दुर्लभ में दुर्लभ है। आहाहा! इसे करने का क्या है? आहाहा! सब जिनोक्त शास्त्र का मार्ग यह है। अमुक करना और यह करना और व्रत करना। वह तो विकल्प है। वह तो करने की आज्ञा नहीं। आहाहा!

चिदानन्द भगवान परमानन्द का रसकन्द, नित्यानन्द का नाथ प्रभु, उस ओर झुक जा, उस ओर दिशा ले, तो तेरी दशा बदल जायेगी। परसन्मुख की दिशा में तो तेरी दशा रागी है। परसन्मुख की दिशा में तेरी दशा में राग है। स्वसन्मुख दिशा ले जा तो तेरी दशा वीतरागी है। समझ में आया? आहाहा! अरेरे! जो करने का है, वह किया नहीं और बाहर से यह किया और आहार दिया, यह किया। आहाहा! व्रत पालन किये और वस्तु का त्याग किया।

भगवान प्रभु तो ऐसा कहते हैं, प्रभु! तुझमें एक शक्ति-गुण ऐसा है कि पर के त्याग-ग्रहण से तो तू शून्य है। त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति। तुझमें एक ऐसी शक्ति-गुण है कि पर का त्याग करना और पर का छोड़ना, वह तुझमें है ही नहीं। आहाहा! यह तो पर को छोड़ा तो मैं त्यागी हो गया, यह तो मिथ्यात्व है। समझ में आया? यह छोड़ा, स्त्री छोड़ी, परिवार छोड़ा, यह छोड़ा, धन्धा छोड़ा। क्या छोड़ा? था कब अन्दर तो छोड़े। अन्दर में मिथ्यात्व और राग-द्वेष है, उन्हें छोड़ना, यह भी व्यवहार की बात है। आहाहा! अन्दर भगवान चिदानन्द के नाथ के अनुभव में जाना, तब राग उत्पन्न नहीं होता, मिथ्यात्व उत्पन्न नहीं होता, उसे त्याग किया, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! पर का त्याग-ग्रहण है नहीं। यह तो जितना-जितना पर छूटा, उतना हमने त्याग किया। परन्तु किया क्या? ग्रहण कब था तुझमें? कभी ग्रहण किया नहीं तो त्याग कहाँ से आया? समझ में आया? अपने स्वरूप को छोड़कर मिथ्यात्व का ग्रहण किया था। आहाहा! वह अपने स्वरूप को ग्रहण करके मिथ्यात्व का त्याग किया। वह त्याग किया, यह भी व्यवहार का कथन है। आहाहा! वह तो अपने स्वरूप में गया और राग, मिथ्यात्व की उत्पत्ति नहीं हुई, उसका त्याग किया, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? शास्त्र में आता है न? इतने द्रव्य चलते हैं और इतने द्रव्य

नहीं चलते। यह तो सम्यग्दर्शन में राग घटाने में वह वस्तु आती है। राग मन्द करने में। समझ में आया? ग्रहण किसे करता था? जड़ को कौन ग्रहण करे? सूक्ष्म बात, भाई! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **मिथ्यात्वादि के दूर हो जाने से आत्मस्वरूप की प्राप्ति होते हुए,...** आहाहा! **जैसा जैसा मोह क्षीण होता जाता है...** फिर जैसे-जैसे अन्दर में विशेष एकाग्र होता है, वैसे मोह क्षीण होता है। **वैसा शुद्ध आत्मा...** क्या शब्द है? **आत्मा ही उपादेय है,...** यहाँ फट गया है। पुराना कागज है न, फट गया है। इतनी बात है। **शुद्ध आत्मा ही उपादेय है,...** आहाहा! **ऐसा रुचिरूप समकित होता है।** लो! यह निश्चय समकित, हों! आनन्द का नाथ पूर्णानन्द प्रभु की ओर झुक जाना, दृष्टि का पूरे द्रव्य में पसर जाना। आहाहा! अर्थात् उस दृष्टि की पर्याय में पूरी वस्तु की रुचि हो जाना। पूरी चीज़ दृष्टि की पर्याय में आ नहीं जाती, परन्तु उसकी रुचि हो जाना। पोषाण हो जाना। पूर्णानन्द के नाथ का पोषाण। बनिये को माल पोसाता है न! माल पोसावे वह लावे न? ढाई रुपये मण आता हो और यहाँ साढ़े तीन उपजते हों तो लावे। साढ़े तीन का लाता हो और यहाँ ढाई उपजते हों तो लावे माल? पोसायेगा? इसी प्रकार आत्मा अन्दर पोसाता है। आहाहा! राग की रुचि का पोषाण टल गया है। चाहे तो शुभराग हो तो भी ज्ञानी की रुचि छूट गयी। आहाहा! ऐसा मार्ग कठिन, इसलिए लोगों को ऐसा लगे। यह तो आचार्य कहते हैं, सन्त कहते हैं। और ऐसा कहते हैं, सोनगढ़ ने निश्चय मार्ग निकाला। अरे! भगवान! यह तो आचार्य कहते हैं। यह तो परमात्मप्रकाश है। समयसार तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा। आहाहा!

रूचिरूप सम्यक्त्व होता है। आहाहा! **तब शुद्ध आत्मा और कर्म को जुदे-जुदे जानता है। जिस शुद्धात्मा की रुचिरूप परिणाम से जीव निश्चयसम्यग्दृष्टि होता है,...** देखो! आहाहा! अभी तो कहते हैं, चौथे गुणस्थान में निश्चय सम्यग्दृष्टि नहीं होता, वहाँ सराग समकित होता है। यहाँ तो चौथे गुणस्थान में निश्चय सम्यग्दृष्टि कहते हैं। लोगों को ऐसा ढीला कर दिया है न! निश्चय सम्यग्दर्शन तो सातवें में होता है, आठवें में होता है। अरे! सुन! व्यवहार... निश्चय समकित स्वरूप अनुभव की दृष्टि, वह समकित है। आहाहा! समझ में आया? वह तो मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा न? अपने स्वरूप की

अनुभव दृष्टि रुचि हुई, वह निश्चय सम्यक्। साथ में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प उठता है, उस विकल्प में व्यवहार दर्शन का आरोप किया है। है तो राग। चारित्रदोष है। परन्तु उसे सहचर देखकर निश्चय स्वभाव की दृष्टि के काल में राग की मन्दता—देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, समकित नहीं, परन्तु राग है। निश्चय समकित का सहचर देखकर व्यवहार समकित का आरोप दिया है। है तो बन्ध का कारण। आहाहा! समझ में आया? यह निश्चय हो, उसकी बात है। जिसे निश्चय न हो, उसे व्यवहार होता ही नहीं। उसे व्यवहार कहते नहीं। समझाने के लिये कहते हैं। जरा थोड़ा।

बन्ध अधिकार में। नहीं तो यह तो व्यवहाराभास है परन्तु उसे इस जाति का... समझाना है न! व्यवहार तो.... शील, तप, त्याग आदि उत्कृष्ट करे, वे कहीं सम्यग्दर्शन नहीं, वे कहीं धर्म नहीं। व्यवहार को छुड़ाना है। व्यवहार से लाभ होता नहीं। वहाँ और ऐसा ले कि यह तो अभव्य की बात है, भव्य की नहीं। ले। यह तो अभव्य का तो दृष्टान्त दिया है। लागू तो सबको पड़ता है। नौवें ग्रैवेयक (गया है)। अनन्त पुद्गलपरावर्तन भव्य ने किये हैं। तो किस प्रकार करे? क्या कहा? पुद्गलपरावर्तन में एक भव, अनन्त भव... एक पुद्गलपरावर्तन में अनन्त भव होते हैं। ऐसे-ऐसे अनन्त-अनन्त पुद्गलपरावर्तन नौवें ग्रैवेयक के ३१ सागर के किये हैं। भव्य ने (किये हैं)। भव्य ने किये तो किस प्रकार किये? मिथ्यादृष्टिरूप से किये या समकितरूप से? मिथ्यादृष्टि था। अनन्त पुद्गलपरावर्तन समकिती को होते ही नहीं। आहाहा! इसलिए अभव्य की बात की तो कहे, यह तो अभव्य के लिये कहा है। परन्तु भव्य नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। उसका दृष्टान्त दिया है। अभव्य इतना व्यवहार करता है, तथापि मिथ्यादृष्टि है। उसे सम्यग्दर्शन की खबर नहीं। इतना त्याग, शील, संयम आदि सब शब्द लेते हैं। समझ में आया? बन्ध अधिकार में है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, शुद्धात्मा की रुचि। यह तो छहढाला में आता है न। 'आत्मरुचि भला है।' यह निश्चय सम्यग्दर्शन है। छहढाला में गागर में सागर भर दिया है। पहले के पण्डित सच्चे ज्ञानी थे न! भले गृहस्थ हों तो क्या हुआ? समकित में कहाँ अन्तर है? सिद्ध का समकित और तिर्यंच का समकित, समकित में कुछ अन्तर नहीं। चारित्र में अन्तर है। अस्थिरता है, वह अलग बात है। आहाहा! परन्तु वह चारित्र तो सम्यग्दर्शन

के बाद आता है या सम्यग्दर्शन बिना व्रत ले लिये, वह चारित्र हो गया? समझ में आया? पंचम गुणस्थान के व्रत लिये परन्तु अभी चौथे का ठिकाना नहीं तो पाँचवाँ कहाँ से आया? किसके व्रत थे? रस्सा थे व्रत के। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **शुद्धात्मा की रुचिरूप परिणाम से यह जीव निश्चयसम्यग्दृष्टि होता है,...** आहाहा! **वही (शुद्धात्मा) उपादेय है, यह तात्पर्य हुआ।** सब कहने का तात्पर्य तो शुद्ध भगवान पूर्णानन्द प्रभु सम्यग्दर्शन में उपादेय है और उस सम्यग्दर्शन के काल में उपादेय हुआ। समझ में आया? उपादेय है अर्थात् वह आदरणीय है, आदरणीय है, ऐसा नहीं। जब सम्यग्दर्शन हुआ, परिणमन हुआ, उसमें उपादेय हुआ। सम्यग्दर्शन के काल में सम्यग्दृष्टि को आत्मा जहाँ अनुभव में आया, तब उस सम्यग्दृष्टि के काल में उपादेय हुआ, तब आदरणीय हुआ। वस्तु का आदर हुआ नहीं और वस्तु उपादेय है, यह कहाँ से आया? वस्तु का ज्ञान हुआ और उपादेय आदरणीय हुआ, सम्यग्दर्शन के काल में। आहाहा! गजब बात है! यह परमात्मप्रकाश की बात सबसे भिन्न। आहाहा!

कहा न? सम्यग्दर्शन, स्वसन्मुख अनुभव दृष्टि (हुई), उस काल में आत्मा उपादेय हुआ। जिसे शुभराग दया, दान, व्रत आदि का राग उपादेय है, उसे आत्मा-शुद्धात्मा हेय है। भगवान आत्मा उसे हेय है। यह ३६ गाथा में आ गया है। ३६, ३६ में। ३६ गाथा। समझ में आया? जिसने भगवान पूर्णानन्द का नाथ उपादेय किया है, उसे रागादि हेय हो गये और जिसे रागादि, पुण्यादि, दया, दान, व्रतादि के परिणाम उपादेय हैं, उसे भगवान हेय हो गया। आहाहा! ऐसी बात कितनों ने जिन्दगी में सुनी न हो। ऐसा का ऐसा जीवन गंवाया। यह धन्धा करना और पैसा कमाना। उसमें पाँच, दस, पच्चीस लाख आये तो हो गया सुखी। धूल भी नहीं, सुन न! समझ में आया? सुखी हो तो यहाँ कैसे आवे? ऐसा नहीं कहते? पोपटभाई! ऐसा कहते हैं, वहाँ सुख हो तो हम यहाँ किसलिए आवे? समझ में आया? धूल में भी सुख नहीं। सुख कहाँ था? पाँच इन्द्रिय के विषयों में सुख नहीं तो पैसे में—धूल में कहाँ से आया? जहाँ सुख है, वहाँ नजर नहीं और जहाँ सुख नहीं, वहाँ तेरी नजर गयी है। आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय में सुख नहीं, वहाँ तेरी दृष्टि है, यह ठीक है, यह ठीक है, उसमें रुकता है। बस! जिन्दगी बितायी उसमें। मर गया। ऐ... पोपटभाई! यहाँ तो ऐसी बात है, भगवान! सेठ! पानी

उतार डाले ऐसा है। आहाहा! हमने पैसे कमाये और ऐसे कमाये... आहाहा! महीने के दस-दस लाख पैदा करे। उसमें क्या हुआ? धूल में। वह तो पूर्व का पुण्य हो तो आ जाये। परन्तु मैंने कमाया, वह भाव मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! जड़ प्राप्त किया। आहाहा! सेठ! ऐसी बात है, भगवान! इसका नाम भगवानदास है, लो! आहाहा!

तीन लोक का नाथ आत्मस्वरूप से विराजता है, उसका अनादर करके राग का आदर करे प्रभु! आनन्द के नाथ का अनादर करके लक्ष्मी में सुख है, तू उसका आदर करे, नाथ! तेरा आपघात होता है। वह आपघात होता है। धन्नालालजी! आपघात समझे? यहाँ बाहर से मरे, वह नहीं। अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु, उसका स्वीकार नहीं करता और राग का स्वीकार करता है, घात अर्थात् यह नहीं, ऐसा घात हो जाता है। आहाहा! दृष्टि में आपघात होता है, प्रभु! आहाहा! आत्मा की हिंसा होती है। राग में— पुण्यभाव में ठीक है, रुचि है, उसे आनन्द के नाथ का घात होता है। वह नहीं उसमें, ऐसी तेरी मान्यता हुई। उसे खबर नहीं कि यह क्या होता है और क्या मानता हूँ। आहाहा! समझ में आया? यह ८५ हुई। आहाहा!

इसके बाद पूर्व कथित रीति से सम्यग्दृष्टि होकर मिथ्यात्व की भावना से विपरीत जैसी भेदविज्ञान की भावना को करता है, वैसी भेदविज्ञान-भावना का स्वरूप क्रम से सात दोहा-सूत्रों में कहते हैं:—अब भेदविज्ञान कहते हैं। पर से भिन्न, स्वभाव से अभिन्न, पर से भिन्न। एकत्व-विभक्त। (समयसार) पाँचवीं (गाथा) में आया न? **'तं एयत्तंविहत्तं दाएहं'** पाँचवीं में। **'एयत्तंविहत्तं'** स्वभाव से एकत्व है और दया, दान के विकल्प विभाव से विभक्त है। समझ में आया? तीसरी में आता है न? **'एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे'** एकत्व निश्चयगत **'समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे'** भगवान आत्मा राग से भिन्न पड़कर, निज स्वभाव में एकत्व करे, वह चीज़ दुर्लभ है और वही समयसार और आत्मा है। समझ में आया?

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि॥३॥

(समयसार) तीसरी गाथा। आहाहा! भगवान आत्मा स्वरूप में-स्वभाव में एकत्व होना, राग से भिन्न होना, यह वस्तु की सुन्दर शोभा है। यह वस्तु की सुन्दरता

और शोभा उसमें है। राग में रहना, वह आत्मा की सुन्दरता नहीं। राग से विभक्त होकर स्वभाव में रहना, वह सुन्दरता है। आहाहा! स्वभाव को छोड़कर....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : 'आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान, गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान।' 'आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं' राग मेरा है, यह बड़ी भ्रान्ति है। इस आत्मभ्रान्ति जैसा कोई रोग नहीं, भाई! लोगों को बात कठिन लगे। बाहर की यह क्रिया करना और यह करना और यह करना, अपवास करना और यह नहीं खाना... अब यह तो अनन्त बार किया। वह तो विकल्प है। आहाहा!

भगवान आत्मा निर्विकल्पस्वरूप एकत्व निश्चयगत। आहाहा! '**बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि**' भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, भगवान अबद्धस्वरूप प्रभु स्व से एकत्व, पर से विभक्त है, उसे बन्धभाव कहना, विसंवाद खड़ा हुआ है, झगड़ा हुआ है, मिथ्यात्वभाव उत्पन्न हुआ है। समझ में आया? तीसरी गाथा में है। '**तं एयत्तंविहत्तं दाएहं**' यह पाँचवीं गाथा है। यह तो

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि॥३॥

भगवान तीन लोक का नाथ आनन्द का (कन्द) प्रभु! उसे राग के सम्बन्धवाला मानना.... आहाहा! वह विसंवाद मिथ्यात्व खड़ा हुआ है। पाठ तो ऐसा है, बन्धकथा। कथा नहीं परन्तु बन्धभाव। कथा तो शब्द है। आहाहा! अबन्धस्वभावी आत्मा में राग का सम्बन्ध-बन्ध मानना, वह विसंवाद खड़ा हुआ है, झगड़ा खड़ा हुआ है। यह भेदविज्ञान की बात विशेष आयेगी.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ८६

अत ऊर्ध्वं पूर्वोक्तन्यायेन सम्यग्दृष्टिर्भूत्वा मिथ्यादृष्टिभावनाया प्रतिपक्षभूतां यादृशीं भेदभावनां करोति तादृशीं क्रमेण सूत्रसप्तकेन विवृणोति –

८६) अप्पा गोरउ किण्हु ण वि अप्पा रत्तु ण होइ।
अप्पा सुहुमु वि थूलु ण वि णाणिउ जाणें जोइ।।८६।।

आत्मा गौरः कृष्णः नापि आत्मा रक्तः न भवति।
आत्मा सूक्ष्मोऽपि स्थूलः नापि ज्ञानी ज्ञानेन पश्यति।।८६।।

आत्मा गौरो न भवति रक्तो न भवति आत्मा सूक्ष्मोऽपि न भवति स्थूलोऽपि नैव। तर्हि किंविशिष्टः। ज्ञानी ज्ञानस्वरूपः ज्ञानेन करणभूतेन पश्यति। अथवा 'णाणिउ जाणइ जोइं' इति पाठान्तरं, ज्ञानी योऽसौ योगी स जानात्यात्मानम्। अथवा ज्ञानी ज्ञानस्वरूपेण आत्मा। कोऽसौ जानाति। योगीति। तथाहि–कृष्णगौरादिकधर्मान् व्यवहारेण जीवसंबद्धानपि तथापि शुद्धनिश्चयेन शुद्धात्मनो भिन्नान् कर्मजनितान् हेयान् वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी स्वशुद्धात्मतत्त्वे तान् न योजयति संबद्धान्न करोतीति भावार्थः।।८६।।

इसके बाद पूर्व कथित रीति से सम्यग्दृष्टि होकर मिथ्यात्व की भावना से विपरीत जैसी भेदविज्ञान की भावना को करता है, वैसी भेदविज्ञान–भावना का स्वरूप क्रम से सात दोहा–सूत्रों में कहते हैं –

नहीं आत्मा गोरा काला और लाल भी नहिं होता।
सूक्ष्म नहीं स्थूल भी नहीं–ऐसा ज्ञानी ज्ञान करे।।८६।।

अन्वयार्थ :– [आत्मा] आत्मा [गौरः कृष्णः नापि] सफेद नहीं है, काला नहीं है, [आत्मा] आत्मा [रक्तः] लाल [न भवति] नहीं है, [आत्मा] आत्मा [सूक्ष्मः अपि स्थूलः नैव] सूक्ष्म भी नहीं है, और स्थूल भी नहीं है, [ज्ञानी] ज्ञानस्वरूप है, [ज्ञानेन] ज्ञानदृष्टि से [पश्यति] देखा जाता है, अथवा ज्ञानी पुरुष योगी ही ज्ञानकर आत्मा को जानता है।

भावार्थ :– ये श्वेत काले आदि धर्म व्यवहारनयकर शरीर के सम्बन्ध से जीव के कहे जाते हैं, तो भी शुद्धनिश्चयनयकर शुद्धात्मा से जुदे हैं, कर्मजनित हैं, त्यागने योग्य

हैं। जो वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानी है, वह निज शुद्धात्मतत्त्व में इन धर्मों को नहीं लगाता, अर्थात् इनको अपने नहीं समझता है।।८६।।

वीर संवत् २५०२, श्रावण कृष्ण ८, बुधवार
दिनांक-१८-०८-१९७६, गाथा-८६ से ८८, प्रवचन-६६

परमात्मप्रकाश ८६ गाथा है न? **इसके बाद पूर्व कथित रीति से सम्यग्दृष्टि होकर...** अपना आत्मा का भान होकर **मिथ्यात्व की भावना से विपरीत...** पर मेरा और राग मेरा है, ऐसी विपरीत मान्यता से रहित। **जैसी भेदविज्ञान की भावना को करता है, वैसी भेदविज्ञान-भावना का स्वरूप क्रम से सात दोहा-सूत्रों में कहते हैं—** श्लोक तो बोला गया है।

अन्वयार्थ :- आत्मा सफेद नहीं है,... एक आर्यिका आयी थी, कहे, आत्मा कैसा है? पहले आत्मा पीला है, पश्चात् सफेद। ऐसा कहा। वस्तु की कुछ खबर नहीं और बाह्य त्याग से लोक में पूजवाने का भाव। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, **सफेद नहीं है, आत्मा काला नहीं है,...** आहाहा! **आत्मा लाल नहीं है,...** लाल नहीं। **आत्मा सूक्ष्म भी नहीं है, और स्थूल भी नहीं है, ज्ञानस्वरूप है,...** आहाहा! **ज्ञानदृष्टि से देखा जाता है,...** वह तो ज्ञानदृष्टि से देखा जाता है। भगवान आत्मा अपने स्वभाव से जानने में आता है, ऐसा कहते हैं। अलिंगग्रहण में छठवाँ बोल है। कल बात आयी थी न? किसी ने पूछा न? कैसा? उसमें यह है न? कल रात्रि में प्रश्न किया था न?

शुद्धत्व परिणमन सर्वथा द्रव्य के परिणमनरूप है। मोक्ष का जो मार्ग है, वह शुद्धत्व परिणमन है। द्रव्य त्रिकाली शुद्ध है तो उसके आश्रय से दृष्टि शुद्धत्व परिणमन होता है। शुद्ध द्रव्य है, वह त्रिकाल है और शुद्धत्व परिणमन है, वह वर्तमान पर्याय है। शुद्धात्म परिणमन सर्वथा द्रव्य के परिणमनरूप है, निर्विकल्परूप है। इससे वचन द्वारा कहने का सामर्थ्य नहीं। क्या कहे? रात्रि में चर्चा हुई थी न? पर्याय को अन्दर झुकाना, स्वसन्मुख होना। परन्तु वह सब कथनशैली है। दूसरी आवे कहाँ से? बात तो यह है।

देखो! अपने यहाँ आया न? यहाँ यह आया। वचन द्वारा (नहीं कहा जा सकता)।

इसलिए ऐसा कहने में आता है कि जीव के शुद्धस्वरूप का अनुभवरूप परिणमे वह ज्ञानगुण। यह कहना है। ज्ञानगुण जो स्वभाव, वह शुद्धरूप परिणमना, अनुभव होना, वह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? है? वचन द्वारा कहने का सामर्थ्य नहीं। ऐसे रूप से कहने में आता है कि जीव के शुद्धस्वरूप के अनुभवरूप से परिणमावे, वह ज्ञानगुण। वह मोक्ष का कारण। ऐसा कहने में आता है। अर्थात् यहाँ कहा न? भगवान आत्मा प्रधान मुख्य तो सर्वज्ञस्वभावी है। ज्ञानस्वभाव वस्तु त्रिकाल है। उस ज्ञानस्वभाव का ज्ञान द्वारा अनुभव करना, ऐसा कहने में आता है। करने का तो जो करे, उसे करने का है। समझ में आया? यहाँ यह कहा, देखो!

ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानदृष्टि से देखा जाता है,... 'ज्ञानं ज्ञानेनं परिक्षति' ऐसा कहा है। भगवान आत्मा विकल्प से भी ज्ञात नहीं होता। वह शुद्ध ज्ञान की परिणति से ज्ञाता, आनन्द ज्ञान जानने में आता है। आहाहा! समझ में आया? दूसरा क्या कहे? वस्तु निर्विकल्प है, ऐसा कहते हैं। **ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानदृष्टि से देखा जाता है, अथवा...** अब दूसरा अर्थ कहते हैं। **'ज्ञानेन पश्यति'** कहा न? इसका दूसरा अर्थ यह किया। **ज्ञानी पुरुष योगी ही ज्ञानकर आत्मा को जानता है।** आहाहा! ज्ञानी पुरुष धर्मात्मा योगी अर्थात् आत्मा के ज्ञानस्वरूप में जिसका जुड़ान हो गया है। आहाहा! विकल्प अर्थात् राग से रहित भगवान आनन्दस्वरूप को ज्ञान से आत्मा के साथ जोड़ दिया है। ऐसे **योगी ही ज्ञानकर आत्मा को जानता है।** बाह्य से विकल्प से और बाह्य के क्रियाकाण्ड से वह जानने में नहीं आता। आहाहा! यह बात है, भाई! समझ में आया? कल कहा था न? भाई! वचन से अगम्य है। भाई! प्रज्ञाछैनी। १८१ कलश है न? **'प्रज्ञाछेन्नी शितेयं कथमपि निपुणैः पातिता सावधानैः'** उसके कलश में यह है। आहाहा!

ज्ञानीपुरुष योगी ही ज्ञानकर... यह क्या कहते हैं? आहाहा! अपना आनन्द, ज्ञानस्वरूप प्रभु, पूर्णानन्द परमात्मा, वह ज्ञानकर अर्थात् वर्तमान ज्ञान की परिणति द्वारा जानने में आता है। वह जब सम्यग्दृष्टि से श्रद्धा में देखने में आता है, तो साथ में ज्ञान है, वह ज्ञान जानता है। सम्यग्दर्शन को भी ज्ञान जानता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन को नहीं जानता। सम्यग्दर्शन पूरे पूर्ण विषय को नहीं जानता। परन्तु उसकी ओर ढल गया, इसलिए पूर्णानन्द की प्रतीति हुई, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! बात सूक्ष्म, भाई!

यह तो सम्यग्दर्शन, अभी चौथे गुणस्थान की बात है। श्रावक तो कहीं रहे। मुनि तो कहीं रहे, भाई! यहाँ कहते हैं **ज्ञानकर आत्मा को जानता है।** आहाहा!

भावार्थ :- ये श्वेत, काले आदि धर्म व्यवहारनयकर शरीर के सम्बन्ध से जीव के कहे जाते हैं, तो भी शुद्धनिश्चयनयकर,... आहाहा! **शुद्धात्मा से जुदे हैं, कर्मजनित हैं, त्यागने योग्य हैं।** आहाहा! **जो वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानी हैं,...** आहाहा! रागरहित अन्तर की दृष्टि जिसे हुई है, चौथे गुणस्थान में, हों! **वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानी है...** आहा! **वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानी हैं,...** राग का लक्ष्य छोड़कर ज्ञायकभाव के लक्ष्य में वर्तमान ज्ञान की परिणति से **स्वसंवेदन ज्ञानी हैं, वह निज शुद्धात्मतत्त्व में इन धर्मों को नहीं लगाता,...** त्रिकाली भगवान आनन्द के नाथ में यह वर्ण, गन्ध, रस और क्षत्रिय आदि को नहीं जोड़ता। आहाहा! **अर्थात् उनको अपने नहीं समझता है।** आहाहा! यह ८६ हुई। ८७।

गाथा - ८७

अथ –

८७) अप्पा बंभणु वइसु ण वि ण वि खत्तिउ ण वि सेसु।
पुरिसु णउंसउ इत्थि ण वि णाणिउ मुणइ असेसु।।८७।।

आत्मा ब्राह्मणः वैश्यः नापि नापि क्षत्रियः नापि शेषः।
पुरुषः नपुंसकः स्त्री नापि ज्ञानी मनुते अशेषम्।।८७।।

अप्पा बंभणु वइसु ण वि ण वि खत्तिउ ण वि सेसु पुरिसु णउंसउ इत्थि ण वि आत्मा ब्राह्मणो न भवति वैश्योऽपि नैव नापि क्षत्रियो नापि शेषः शूद्रादिः पुरुषनपुंसकस्त्रीलिङ्गरूपोऽपि नैव। तर्हि किंविशिष्टः। णाणिउ मुणइ असेसु ज्ञानी ज्ञानस्वरूप आत्मा ज्ञानी सन्। किं करोति। मनुते जानाति। कम्। अशेषं वस्तुजातं वस्तुसमूहमिति। तद्यथा। यानेव ब्राह्मणादिवर्णभेदान् पुंल्लिङ्गादिलिङ्गभेदान् व्यवहारेण परमात्मपदार्थादभिन्नान् शुद्धनिश्चयेन भिन्नान् साक्षाद्धेयभूतान् वीतरागनिर्विकल्पसमाधिच्युतो बहिरात्मा स्वात्मनि योजयति तानेव तद्विपरीतभावनारतोऽन्तरात्मा १स्वशुद्धात्मस्वरूपेण योजयतीति तात्पर्यार्थः।।८७।।

आगे ब्राह्मणादि वर्ण आत्मा के नहीं हैं, ऐसा वर्णन करते हैं –

आत्मा ब्राह्मण क्षत्रिय नहिं है वैश्य और कुछ अन्य नहीं।
पुरुष नपुंसक नारी भी नहिं ये सब मुझसे भिन्न सही।।८७।।

अन्वयार्थ :– [आत्मा] आत्मा [ब्राह्मणः वैश्यः नापि] ब्राह्मण नहीं है, वैश्य नहीं है, [क्षत्रियः नापि] क्षत्री भी नहीं है, [शेषः] बाकी शुद्र भी [नापि] नहीं है, [पुरुषः नपुंसकः स्त्री नापि] पुरुष, नपुंसक, स्त्रीलिंगरूप भी नहीं है, [ज्ञानी] ज्ञानस्वरूप हुआ [अशेषम्] समस्त वस्तुओं को ज्ञान से [मनुते] जानता है।

भावार्थ :– जो ब्राह्मणादि वर्ण–भेद हैं, और पुरुष लिंगादि तीन लिंग हैं, वे यद्यपि व्यवहारनयकर देह के सम्बन्ध से जीव के कहे जाते हैं, तो भी शुद्धनिश्चयनयकर आत्मा से भिन्न हैं, और साक्षात् त्यागने योग्य हैं, उनको वीतरागनिर्विकल्पसमाधि से रहित मिथ्यादृष्टि जीव अपने जानता है, और उन्हीं को मिथ्यात्व से रहित सम्यग्दृष्टि जीव अपने नहीं समझता। आपको तो वह ज्ञानस्वभावरूप जानता है।।८७।।

गाथा-८७ पर प्रवचन

आगे ब्राह्मणादि वर्ण आत्मा के नहीं हैं, ऐसा वर्णन करते हैं :—

८७) अप्पा बंभणु वइसु ण वि ण वि खत्तिउ ण वि सेसु।
पुरिसु णउंसउ इत्थि ण वि णाणिउ मुणइ असेसु॥८७॥

अन्वयार्थः— भगवान आत्मा **ब्राह्मण नहीं है, वैश्य नहीं है,...** यह तो सब देह के धर्म हैं। आहाहा! **वैश्य नहीं है, क्षत्रिय भी नहीं है, बाकी शूद्र भी नहीं है, पुरुष, नपुंसक, स्त्रीलिंगरूप भी नहीं...** आहाहा! **ज्ञानस्वरूप हुआ समस्त वस्तुओं को ज्ञान से जानता है।** बस। आहाहा! यह उसका स्वरूप है। सबको जानता है। आहाहा!

भावार्थ :—जो ब्राह्मणादि वर्ण-भेद है, और पुरुष लिंगादि तीन लिंग हैं, वे यद्यपि व्यवहारनयकर देह के सम्बन्ध से जीव के कहे जाते हैं, तो भी शुद्धनिश्चयनयकर आत्मा से भिन्न हैं,... आहाहा! **और साक्षात् त्यागनेयोग्य है,...** देखो भाषा! संस्कृत टीका में है। वर्ण जाति मैं क्षत्रिय हूँ और ब्राह्मण हूँ और बनिया हूँ, यह साक्षात् त्यागनेयोग्य है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को अन्तर स्वरूप का आश्रय करके यह ब्राह्मण आदि की जाति को त्यागनेयोग्य है, सर्वथा त्यागनेयोग्य है। आहाहा! है? व्यवहारनय से कहे हैं। **शुद्धनिश्चयनयकर आत्मा से भिन्न हैं, और साक्षात् त्यागनेयोग्य है,...**

उनको वीतरागनिर्विकल्पसमाधि से रहित,... आहाहा! **मिथ्यादृष्टि जीव अपने जानता है,...** मिथ्यादृष्टि, जिसे वीतरागनिर्विकल्प सम्यग्दृष्टि नहीं, वह मैं ब्राह्मण हूँ और मैं क्षत्रिय हूँ, और मैं पुरुष हूँ और स्त्री हूँ, मैं नपुंसक हूँ—ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा! **और उन्हीं को मिथ्यात्व से रहित सम्यग्दृष्टि जीव अपने नहीं समझता। आपको तो वह ज्ञानस्वभावरूप जानता है।** आहाहा! धर्मी जीव तो अपने को ज्ञानस्वरूप ही जानता है, बस। राग से नहीं, वर्ण से नहीं, गन्ध से नहीं, वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय से नहीं। वह मेरी चीज़ ही नहीं न! वह तो जड़ की चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? अब जरा ८८ (गाथा) कठिन है।

गाथा - ८८

अथ –

८८) अप्पा वंदउ खवणु ण वि अप्पा गुरउ ण होइ।
अप्पा लिंगिउ एक्कु ण वि णाणिउ जाणइ जोइ।।८८।।

आत्मा वन्दकः क्षपणः नापि आत्मा गुरवः न भवति।
आत्मा लिङ्गी एकः नापि ज्ञानी जानाति योगी।।८८।।

आत्मा वन्दको बौद्धो न भवति, आत्मा क्षपणको दिगम्बरो न भवति, आत्मा गुरवशब्दवाच्यः श्वेताम्बरो न भवति। आत्मा एकदण्डित्रिदण्डिहंसपरमहंससंज्ञाः संन्यासी शिखी मुण्डी योगदण्डाक्षमालातिलककुलकघोषप्रभृतिवेषधारी नैकोऽपि कश्चिदपि लिङ्गी न भवति। तर्हि कथंभूतो भवति। ज्ञानी। तमात्मानं कोऽसौ जानाति योगी ध्यानीति। तथाहि–यद्यप्यात्मा व्यवहारेण वन्दकादिलिङ्गी भण्यते तथापि शुद्धनिश्चयनयेनैकोऽपि लिङ्गी न भवतीति। अयमत्र भावार्थः। देहाश्रितं १द्रव्यलिङ्गमुपचरितासद्भूतव्यवहारेण जीवस्वरूपं भण्यते, वीतराग–निर्विकल्पसमाधिरूपं भावलिङ्गं तु यद्यपि शुद्धात्मस्वरूपसाधकत्वादुपचारेण शुद्धजीवस्वरूपं भण्यते, तथापि सूक्ष्मशुद्धनिश्चयेन न भण्यत इति।।८८।।

आगे वंदक क्षपणकादि भेद भी जीव के नहीं हैं, ऐसा कहते हैं –

नहीं दिगम्बर श्वेताम्बर या बौद्धरूप आत्मा कभी।
अन्य विविध लिंगी भी नहिं है जान! एक बस ज्ञायक ही।।८८।।

अन्वयार्थ :– [आत्मा] आत्मा [वन्दकः क्षपणः नापि] बौद्ध का आचार्य नहीं है, दिगंबर भी नहीं है, [आत्मा] आत्मा [गुरवः न भवति] श्वेताम्बर भी नहीं है, [आत्मा] आत्मा [एकः अपि] कोई भी [लिंगी] वेश का धारी [न] नहीं है, अर्थात् एकदंडी, त्रिदंडी, हंस, परमहंस, सन्यासी, जटाधारी, मुंडित, रुद्राक्ष की माला, तिलक, कुलक, घोष वगैरेः भेषों में कोई भी भेषधारी नहीं है, एक [ज्ञानी] ज्ञानस्वरूप है, उस आत्मा को [योगी] ध्यानी [मुनि] ध्यानारूढ़ होकर [जानाति] जानता है, ध्यान करता है।

भावार्थ :– यद्यपि व्यवहारनयकर यह आत्मा वंदकादि अनेक भेषों को धरता है, तो भी शुद्धनिश्चयनयकर कोई भी भेष जीव के नहीं है, देह के है। यहाँ देह के आश्रय

से जो द्रव्यलिंग है, वह उपचरितासद्भूतव्यवहारनयकर जीव का स्वरूप कहा जाता है, तो भी निश्चयनयकर जीव का स्वरूप नहीं है। क्योंकि जब देह ही जीव की नहीं, तो भेष कैसे हो सकता है? इसलिये द्रव्यलिंग तो सर्वथा ही नहीं है, और वीतरागनिर्विकल्प-समाधिरूप भावलिंग यद्यपि शुद्धात्मस्वरूप का साधक है, इसलिये उपचारनयकर जीव का स्वरूप कहा जाता है, तो भी परमसूक्ष्म शुद्धनिश्चयनयकर भावलिंग भी जीव का नहीं है। भावलिंग साधनरूप है, वह भी परम अवस्था का साधक नहीं है ।।८८।।

गाथा-८८ पर प्रवचन

८८) अप्पा वंदउ खवणु ण वि अप्पा गुरउ ण होइ।
अप्पा लिंगिउ एक्कु ण वि णाणिउ जाणइ जोइ ॥८८॥

अन्वयार्थ :—आत्मा बौद्ध का आचार्य नहीं है,... आहाहा! **दिगम्बर गुरु भी आत्मा नहीं है,...** दिगम्बर के गुरु आचार्य। आहाहा! **आत्मा श्वेताम्बर भी नहीं है,...** गुरु शब्द पड़ा है न? आहा! **आत्मा कोई भी वेश का धारी नहीं है,...** भगवान ज्ञानस्वरूप आत्मा, जो सम्यग्दर्शन का विषय, उसमें यह कोई चीज़ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **एकदण्डी, त्रिदण्डी,...** अन्यमत में आता है न? **हंस, परमहंस, संन्यासी, जटाधारी, मुद्रित, रूद्राक्ष की माला, तिलक, कुलक, घोष वगैरे वेशों में कोई भी वेशधारी नहीं है,...** आहाहा! कोई भी वेश भगवान आत्मा का नहीं है। आहाहा! मैं नग्न दिगम्बर हूँ। वह तो जड़ की दशा है। नग्नदशा तो जड़ की है, शरीर की है, उसमें आत्मा कहाँ आया? आहाहा! समझ में आया? लो, श्वेताम्बर में तो यहाँ तक कहते हैं, देखो! भाई! यह गोछा। ओघा होते हैं न? यह ओघा, वह साधुपने का कारण है। ऐसा कहते हैं। ओघा नहीं? ऊन का होता है न इतना छूटा पुंजने के लिये। रजोहरण स्थानकवासी में होता है। लम्बी लकड़ी। और उसे छोटी लकड़ी। यह तीन कांख में रखे। उसे ओघा कहते हैं। स्थानकवासी में रजोहरण कहते हैं। छोटे ऊन के को गोछा कहते हैं। वह तो जड़ है। वास्तव में तो ऊन की वस्तु चलती नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, मैं मोरपिच्छी (धारक) हूँ, मेरी नग्नदशा है, वह मूढ़ है। आत्मा में वह चीज़ कहाँ से आयी? वह तो परचीज़ है। आहाहा! कोई भी वेशधारी

नहीं। आहाहा! **ज्ञानस्वरूप है, उस आत्मा को ध्यानी... 'मुनि'** आहाहा! क्या कहते हैं? वह तो अन्तर में राग से रहित होकर जब अन्दर ध्यान करता है, तब ख्याल में आता है, ऐसा कहते हैं। भगवान पूर्णानन्दस्वरूप परमात्मा सब देह में विराजता है। आहाहा! उसकी ओर ध्यान (करने से ज्ञात होता है)। ऐसा नहीं कहते कि ध्यान में तो ले, ध्यान रख, ध्यान रख, ऐसा नहीं कहते? इसका अर्थ पहले ध्यान रख का अर्थ ज्ञान में लक्ष्य दे। पश्चात् ध्यान रख का अर्थ अन्दर में ध्यान कर। समझ में आया? ध्यान में लक्ष्य में पहले ले कि आत्मा शरीर से, वर्ण से, गन्ध से, वेद से भिन्न है। ऐसा ज्ञान में ख्याल में ले। वह ध्यान रख। और फिर अन्दर में ध्यान कर। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : आँख मींचकर बैठे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : आँख मींचकर बैठे, उसमें भला क्या हुआ? अन्धा आँख मींचकर बैठता है, उसे आँखें नहीं हैं। आँख मींचकर बैठे तो अन्दर काला, सफेद लगता है। वह तो जड़ है। लालिमा दिखती है। आँख दबे न तो लाल दिखता है, वह तो जड़ है। आत्मा ऐसा नहीं है और किसी समय ऐसा सफेद-सफेद दिखता है। वह तो रंग है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा अपने ज्ञानस्वरूप से ज्ञात होता है। है? **ध्यानी... 'मुनि' ध्यानारूढ़ होकर जानता है,...** भाषा क्या करते हैं? यह परमात्मप्रकाश की शैली ऐसी है कि जब अपनी ज्ञानपरिणति को ज्ञायक के साथ जोड़ दिया तो उस समय ख्याल में आता है। आहाहा! कठिन बात, भाई! धर्म बहुत सूक्ष्म है। लोग बाहर से ऐसा मानकर बैठे, भक्ति, व्रत, तप, दान, पूजा और यात्रा... धूल भी धर्म नहीं। सुन तो सही। आहाहा! धर्म तो अन्दर में... धूल भी नहीं का अर्थ क्या? कि उसमें तो पुण्यानुबन्धी पुण्य भी नहीं है। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप चैतन्यबिम्ब चैतन्यसूर्य, चैतन्य के नूर के तेज का पूर है।

जैसे पानी का पूर आता है न? नदी में घोड़ापूर आता है। समझ में आया? हमारे जन्मस्थान में तो घोड़ापूर बहुत आता है। उमराला में कालुभार नदी है। विशाल नदी-समुद्र। पच्चीस कोस दूर से जल आता हो... हम तो छोटी उम्र में नदी में खेलते थे। वृद्ध व्यक्ति बाहर से पुकार करे, ऐ... घोड़ापूर आता है। घोड़ापूर का अर्थ समझे? पानी का पूर इतना-इतना। घोड़ा जितना ऊँचा। क्योंकि बीस-पच्चीस इंच वर्षा हुई हो, उसे सब

नहर, नदी का पानी इकट्ठा होकर पूर आता था। इतना दल, हों! इतना दल। एकदम आवे। लड़कों को पुकार करके कहे, निकल जाओ, घोड़ापूर आता है।

इसी प्रकार आत्मा तो आनन्द का पूर, घोड़ापूर आत्मा है। समझ में आया? ज्ञान के नूर का पूर प्रभु आत्मा। अरे! कहाँ इसने कभी सुना नहीं। धर्म क्या और धर्म करनेवाला कैसा है। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं, ज्ञानस्वरूप आत्मा को ध्यानी मुनि ध्यानारूढ़ होकर जानते हैं। आहाहा! जिसकी दृष्टि ध्याता के ऊपर गयी, पूर्णानन्द का नाथ प्रभु ध्रुव चीज़ है, अनादि-अनन्त है, अकृत्रिम—नहीं की हुई चीज़ है, नहीं परिणमति चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? परिणमति है, वह तो पर्याय-व्यवहार है। आहाहा! वह तो नहीं परिणमनेवाली कूटस्थ ध्रुव नित्य ध्रुव दल, आत्मदल है। आहाहा! उसके ध्येय के काल में ध्यान में लक्ष्य में आता है। ध्यान के काल में उसका अनुभव होता है। ध्यान के काल में वह क्या है, यह ज्ञात होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आहाहा! अभी तो थोड़ी सूक्ष्म बात करेंगे, हों! आहाहा!

ध्यान करता है। ध्यानारूढ़ होकर जानता है, ध्यान करता है। उसे ख्याल में आता है। आहाहा! जिसने ज्ञान की परिणति ज्ञानानन्दस्वभाव की ओर जोड़ दी है। आहाहा! अथवा ध्यान में लग गया, बाहर की सभी चीज़ भूल गया। विकल्प को भी भूल गया। आहाहा! मार्ग ऐसा है, भगवान! लोगों ने मार्ग को स्थूल कर दिया। यह भक्ति करना, व्रत करना, तपस्या करना और वह धर्म। धूल भी धर्म नहीं। वह तो अभव्य भी ऐसा तो करता है। समझ में आया? शास्त्र बनाना, शास्त्र का उपदेश करना, वह सब धर्म है। धूल भी धर्म नहीं। मन्दिर बनाना, पाँच-पाँच लाख, दस-दस लाख, पन्द्रह लाख का। यह बेंगलोर में अभी बारह लाख का बनाया है न? गत वर्ष हम गये थे न! बारह लाख का दिगम्बर मुन्दिर, हों!

मुमुक्षु : बारह लाख का हो तो भी धर्म तो नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस समय भी लोगों को कहा था, शुभभाव है। मन्दिर बनता है वह तो जड़ परमाणुओं से बनता है। वह मन्दिर आत्मा बना सके, यह तीन काल में नहीं है। आहाहा! दो सेठियाओं ने पैसे दिये थे। जुगराजजी ने चार लाख दिये थे। स्थानकवासी करोड़पति है। यहाँ का माननेवाला है और एक भभूतमल है, दोनों

करोड़पति हैं। उसने आठ लाख (दिये)। बारह लाख। कल कहा था न? बारह लाख। आठ लाख खर्च किये और सोलह दिन में चालीस लाख बढ़ गये। भाव बढ़ गया न? भाव। दो करोड़ की स्टील थी, उसमें भाव बढ़ गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें धूल में भी कुछ नहीं। कहा, यह बारह लाख का मन्दिर बनाया, इसलिए धर्म होगा और भगवान के दर्शन करनेवाले को धर्म होगा, ऐसा नहीं। ऐ... सेठ! बेंगलोर आये थे या नहीं? आहाहा! वह शुभभाव है। भाई! भगवान आत्मा तो अपने ज्ञानस्वभाव के ध्यान में प्राप्त होता है। वह ऐसी बाह्यक्रिया से प्राप्त नहीं होता। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को अन्तर स्वरूप के ध्यान के काल में पर्याय में वह पूर्णानन्द का नाथ अनुभव में आता है। वह ज्ञान से जानने में आता है। कोई शुभराग से या देवदर्शन से... आहाहा! बहुत शास्त्र बनाये, इसलिए उससे आत्मा के दर्शन होंगे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा कहते हैं न कि शास्त्र दो तो ज्ञानावरणी का क्षय होता है। वह तो शुभभाव है। इतना कदाचित् परलक्षी क्षयोपशम हो। निज स्वभाव, बापू! कठिन बात, नाथ! आहाहा!

तीन लोक का नाथ पूर्णानन्द प्रभु, तीन लोक का तिलक। आहाहा! ऐसा भगवान ध्यान में अर्थात् अन्तर्मुख होकर ध्यान में प्राप्त होता है। आहाहा! यह तो कहा न? द्रव्यसंग्रह की ४७ गाथा। ४ और ७। द्रव्यसंग्रह है, नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' आहाहा! वहाँ आनन्द की वीणा बजती है, कहते हैं। भगवान के ध्यान में और सम्यग्दर्शन के ध्येय में जब आत्मा को लिया, वहाँ पर्याय में आनन्द की वीणा बजती है। समझ में आया? उस आनन्द की दशा में आनन्द का नाथ ध्यान में आता है। '**दुविहं पि मोक्खहेउं**' दो प्रकार के मोक्ष के कारण ध्यान में प्राप्त होते हैं, ऐसा कहा है। द्रव्यसंग्रह। पण्डितजी! उसका तो लोगों को बहुत अभ्यास है। ४ और ७। यहाँ द्रव्यसंग्रह नहीं?

दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।
तह्मा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह॥४७॥

मुनि नियम से दोनों प्रकार के भी मोक्ष के कारणों को ध्यान से प्राप्त करते हैं।

यह द्रव्यसंग्रह साधारण सबको अभ्यास होता है। अमरचन्दभाई! पाठशाला में पढ़ाते हैं परन्तु खबर नहीं होती। आहाहा! दोनों मोक्ष का कारण इस प्रकार से है। निश्चय रत्नत्रय स्वरूप निश्चय मोक्ष का कारण निश्चयमोक्षमार्ग। निश्चयरत्नत्रयस्वरूप निश्चय मोक्ष कारण—निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहाररत्नत्रय व्यवहार मोक्ष हेतु, व्यवहारमोक्षमार्ग। दोनों को पहले साध्य साधक भाव से निश्चयमोक्षमार्ग साध्य है और व्यवहारमोक्षमार्ग साधक है, परन्तु वह सब ध्यान में आता है। समझ में आया? आहाहा! अन्तर में ध्यान करने से... यहाँ कहा न? ध्यानी को ध्यान में आत्मा (ज्ञात होता है)। आहाहा! देखो! यहाँ मौके से यह आया है। आहाहा! ताकड़े अर्थात् क्या कहते हैं? मौके पर। यह बराबर। समझ में आया? क्या कहते हैं? आहाहा!

८८ चलती है न? आहाहा! ध्यानी मुनि अथवा ध्यानी आत्मा। यह तो तीन रत्नत्रय साथ में लेना है, इसलिए मुनि लिये। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र निश्चयमोक्षमार्ग अथवा निश्चयरत्नत्रयरूप और व्यवहाररत्नत्रयरूप व्यवहारमोक्षमार्ग, दोनों ध्यान में प्राप्त होते हैं। आहाहा! जो अन्तर में आनन्द के नाथ की अनुभव दशा हुई, वह दशा तो निश्चयरत्नत्रय और साथ में अबुद्धिपूर्वक का राग रहा, उसे व्यवहार मोक्ष (मार्ग) का आरोप देकर व्यवहार मार्ग है, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? परन्तु '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि**' ऐसा उसमें है। आहाहा! यहाँ यह कहा न? ध्यानी मुनि **ध्यानारूढ़ होकर जानता है,...** आहाहा!

भावार्थः—यद्यपि व्यवहारनयकर यह आत्मा वन्दकादि अनेक वेशों को धारता है,... वन्दनादिक अर्थात् क्षपण दिगम्बर, श्वेताम्बर आदि। **तो भी शुद्ध निश्चयनयकर कोई भी वेश जीव के नहीं है,...** आहाहा! अलिंगग्रहण में तो ऐसा लिया है... समझ में आया? १७वाँ बोल। मुनि-यति का बाह्य लिंग स्वरूप में है नहीं। यति का बाह्य लिंग। बाह्य अर्थात् पंच महाव्रत और नग्नपना, वह स्वरूप में नहीं है। आहाहा! उसे अलिंगग्रहण कहते हैं। अब यहाँ तो उससे आगे विशेष लेंगे। समझ में आया? आहाहा! अब अभी आगे बढ़ेंगे।

व्यवहारनयकर यह आत्मा वन्दकादि... अर्थात् दिगम्बर आदि **वेशों को धारता है, तो भी शुद्ध निश्चयनयकर कोई भी वेश जीव के नहीं है, देह के हैं।** नग्नपना, वह

तो जड़ है। नग्नपना आत्मा हो गया? हम मुनि हैं, नग्न हैं। अरे! नग्नपना, वह तो जड़ की पर्याय, वह तो मिट्टी की-धूल की है। समझ में आया? आहाहा! देह के हैं, जीव के नहीं। **यहाँ देह के आश्रय से जो द्रव्यलिंग है, वह उपचरितसद्भूतव्यवहारनयकर जीव का स्वरूप कहा जाता है।** क्या कहते हैं? पंच महाव्रत के विकल्प और नग्नपना आदि उपचरितअसद्भूत व्यवहारनय (से कहे जाते हैं)। अर्थात् अपने में नहीं, परन्तु उपचार से, व्यवहार से कहने में आते हैं। आहाहा! **तो भी निश्चयनयकर जीव का स्वरूप...** नहीं है। आहाहा!

अलिंगग्रहण में १७वें बोल में यह लिया है। यति का बाह्य लिंग स्वरूप में नहीं है। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प, वह तो विकल्प है, आस्रव है और देह की अवस्था, वह तो अजीव जड़ की है। जड़ की अवस्था और आस्रव, स्वरूप में नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें वह कुछ वेश नहीं है। महाव्रत आदि के परिणाम भी उसमें नहीं है। आहाहा! अब थोड़ा विशेष लेते हैं। यह हो गया।

क्योंकि जब देह ही जीव की नहीं, तो वेश कैसे हो सकता है? आहाहा! **इसलिए द्रव्यलिंग तो सर्वथा ही नहीं है,...** पंच महाव्रत आदि के विकल्प, अट्ठाईस मूलगुण, वह तो सर्वथा भगवान में नहीं। वह तो विकल्प आस्रव और राग है। आहाहा! समझ में आया? अब सूक्ष्म लेते हैं। **और वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूप भावलिंग...** देखो! आहाहा! निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय स्वसंवेदनज्ञान, निश्चय स्वरूप की रमणता—चारित्र, वह वीतराग निर्विकल्प समाधि है। रागरहित शान्ति, आनन्द का वह रूप है। मोक्ष का मार्ग पर्याय में। आहाहा! **भावलिंग यद्यपि शुद्धात्मस्वरूप का साधक है,...** शुद्धात्मस्वरूप मोक्ष की प्राप्ति का वह भावलिंग साधक है। आहाहा! देखो! कितनी सिद्धि की! पूर्णानन्द की प्राप्तिरूपी मुक्ति, जिसमें अनन्त आनन्द का लाभ हो, ऐसी मुक्ति, जिसमें अनन्त शान्ति का लाभ हो, ऐसी मुक्ति, वह निर्विकल्प वीतरागी समाधि का साधक है। व्यवहार-फ्यवहार साधक नहीं, पहले ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूप.... अभेद शान्ति... शान्ति... शान्ति। क्योंकि शान्त,

निर्विकल्प शान्तस्वरूप भगवान आत्मा है। जैसी निर्विकल्प वीतरागी शान्ति साधक पर्याय, मोक्ष की साधक है परन्तु वस्तु ही निर्विकल्प शान्तरस से पूर्ण प्रभु है। आहाहा! अभेद अकषाय वीतरागस्वभाव से भरपूर प्रभु, उसके आश्रय से मोक्षमार्ग की पर्याय (प्रगट होती है), जिसमें शुद्ध भगवान समीप है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो निश्चय का मार्ग, जो मोक्ष की साधकदशा है, उस साधकदशा में भगवान पूर्णानन्द समीप है। राग में दूर था, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान में समीप आया। आहाहा! समझ में आया? व्यवहाररत्नत्रय, वह राग है। राग से तो भगवान दूर था। आहाहा! समझ में आया? अन्तर में रागरहित वीतराग शान्ति की परिणति—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, जो वास्तविक मोक्ष का साधक—उपाय, वह **शुद्धात्मस्वरूप का साधक है, इसलिए उपचारनयकर जीव का स्वरूप कहा जाता है,...** पर्याय है न? तो पर्याय, वह व्यवहार है। आहाहा! उपचार है। समझ में आया? देहादि तो नहीं, वाणी आदि नहीं और दया, दान व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प भी नहीं, वह तो साधक है ही नहीं, परन्तु त्रिलोकनाथ परमात्मा ज्ञान की पर्याय में जो भास—उसका अनुभव होता है, ऐसी जो ज्ञान की पर्याय, जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, निर्विकल्प शान्ति वीतरागरूप दशा, वह आत्मा की उपचार से कही जाती है। क्योंकि वह पर्याय है। पर्याय, वह व्यवहार है; त्रिकाली द्रव्य, वह निश्चय है। आहाहा! प्रभु! तेरी दृष्टि वहाँ स्थिर होना चाहिए, कहते हैं। वह दृष्टि अन्दर में स्थिर हो तो वह दृष्टि पर्याय है, वह भी व्यवहार है। आहाहा! उपचार से आत्मा की कही जाती है। वह पर्याय द्रव्य की है, ऐसा उपचार से कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : परिचय चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत परिचय चाहिए।

यह देह, वर्ण, जाति क्षत्रिय, वह तो नहीं, नहीं और नहीं ही। व्यवहाररत्नत्रय जो विकल्प आता है, वह भी नहीं, वह तो असद्भूतव्यवहारनय में जाता है। अब भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन पूर्ण आनन्दपिण्ड के समीप जाकर जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र निर्मल वीतरागी पर्याय मोक्ष की साधक पर्याय उत्पन्न हुई, वह साधक पर्याय जीव की है, परन्तु वह उपचार से है। आहाहा! तो फिर यह स्त्री, पुत्र, पैसा और धूलधमाका, वह तो बहुत दूर है। वहाँ जायेगा तो नजदीक होगा। बापूजी... बापूजी करेंगे, लो! आहाहा!

वह तो दूर ही है। वहाँ जाये तो भी दूर है और यहाँ हो तो भी दूर है। माने भले चाहे जिस प्रकार। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो ज्ञान की पराकाष्ठा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पराकष्ठा है। यह भेदज्ञान की गाथा है न। आहाहा!

कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही, प्रभु! ऐसा मनुष्यपना मिला और यह मनुष्य के देह में आत्मा का क्या करना? आहाहा! कहते हैं कि जो अपना शुद्ध चैतन्यघन द्रव्य सच्चिदानन्द प्रभु, सच्चिदानन्द प्रभु—सत्—शाश्वत्—चिद् और आनन्द का घन प्रभु, उसके ध्यान में जो पर्याय उत्पन्न होती है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अर्थात् वीतरागी शान्ति अथवा वीतरागी समाधि; समाधि कहो या शान्ति कहो, वह वीतराग समाधि मोक्ष की साधक है। पूर्णानन्द की प्राप्ति मोक्ष, उसकी वह साधक है। वह साधक पर्याय आत्मा की है, वह उपचार से कही जाती है। आहाहा! समझ में आया?

यह तो भाग्यवान को कान में पड़े, ऐसी बात है। आहाहा! अरे! कभी सुना नहीं और हम धर्म करते हैं। अरे! धूल भी नहीं। आहाहा! जिन्दगी चली जाती है, प्रभु! और जितना समय जाता है, उतना मृत्यु के समीप जाता है। आहाहा! यह मानो कि बड़े होते हैं। भगवान कहते हैं कि देह की स्थिति पूरी होने की निश्चित है। वह समय उस ओर जाता है। आहाहा! उसमें करने का तो यह है, नाथ! आहाहा! इन विषयों में सुख नहीं, लक्ष्मी में सुख नहीं, इज्जत में सुख नहीं, पाप में सुख नहीं, पुण्य में सुख नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम पुण्य में सुख नहीं, वह तो राग है। व्यवहाररत्नत्रय में सुख नहीं। आहाहा!

आनन्द का नाथ भगवान पूर्णानन्द प्रभु, उस ओर सन्मुख होकर जो सम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय प्रगट हुई, वह आत्मा की है—ऐसा कहना उपचार से है। वह पर्याय द्रव्य की है, ऐसा कहना उपचार से है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... शुद्ध आत्मव्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : सद्भूतव्यवहार है। उसमें लिया है न? प्रवचनसार में। मोक्ष का मार्ग जो निश्चय से है, वह आत्मव्यवहार है, आत्मव्यवहार है और रागादि का भाव

है, वह मनुष्यव्यवहार असद्भूत मनुष्यव्यवहार है। आहाहा! प्रवचनसार ९४ गाथा आती है। ओहोहो! गजब काम किया! दिगम्बर सन्तों ने जगत को निहाल कर दिया है। आहाहा! अरे! परन्तु इसे सुनने को मिलता नहीं और बाहर की बातों में भड़काकर बेचारे को मार डाला। आहाहा! यात्रा करो, भक्ति करो, पूजा करो, दान करो, मन्दिर बनाओ, रथयात्रा निकालो। धूल भी नहीं उसमें। वह करता हो तो शुभराग है। आहाहा! धमाधम चली ज्ञानमार्ग रहा दूर, कहते हैं न? क्या शब्द बोले? धामधूम से धमाधम चली, ज्ञानमार्ग रहा दूर। प्रभु! अन्दर का ज्ञान का मार्ग बहुत आगे—दूर रह गया। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं... आहाहा! भावलिंग। द्रव्यलिंग तो नहीं, विकल्प और देह का नग्नपना, वह तो नहीं, परन्तु भावलिंग जहाँ भगवान आनन्द का नाथ जागकर देखता है... आहाहा! वहाँ जिसके ब्रह्माण्ड में, जिसके निधान में अतीन्द्रिय आनन्द भरा है, उस आनन्द की दृष्टि से आनन्द का अनुभव करता है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि से आत्मा का अनुभव करता है। स्वसंवेदनज्ञान से आत्मा का अनुभव करता है, वह स्वसंवेदनज्ञान, दर्शन आदि जो निर्विकल्प शान्ति, वह पर्याय है। उसे द्रव्य की कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए उपचारनयकर जीव का स्वरूप कहा जाता है,...** गजब है! उसमें यह स्त्री मेरी, पुत्र मेरे, कहाँ फँस गया? सुन न! आहाहा! यह मेरे पुत्र और यह मेरे मकान। बड़ा मकान हो तो किराया उपजे। भाड़ा को क्या कहते हैं? किराया। ऐ... सेठ! मकान बड़ा हो तो उसका किराया उपजे। दूसरे में जाये, न जाये। मकान बनाओ। पैसा रहे, मकान रहे और किराया उपजे। अरे! वह तो कहाँ रह गया, प्रभु! वह चीज़ तेरी नहीं, तुझमें नहीं, उसमें तू नहीं। परन्तु राग का, व्यवहाररत्नत्रय तुझमें नहीं और व्यवहाररत्नत्रय में तू नहीं तथा निश्चयरत्नत्रय तुझमें नहीं और निश्चयरत्नत्रय में तू नहीं। आहाहा! समझ में आया?

परमात्मप्रकाश। भगवान परमात्मस्वरूप आनन्दकन्द वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा तो है। अभी, हों! वह वीतरागस्वरूपी ही भगवान आत्मा तो है। निर्विकल्प शान्त आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा है। उसकी सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की जो पर्याय है, सच्चे मोक्ष के साधकरूपी उपाय है, वह जीव का उपचार से कहा जाता है। वह द्रव्य की पर्याय, ऐसा उपचार से कहा जाता है। आहाहा! अब यह निर्विकल्प आनन्द की मोक्ष की साधक की

पर्याय, वह आत्मा की उपचार से (जहाँ कही जाती है) तो तुझे किस चीज़ को अपनी मानना है कि यह मेरी है? समझ में आया? हमने पुण्य किया, हमने व्यवहार किया, हमने दया, दान किये। आहाहा! अभिमान अन्दर से उतार डाले, ऐसा है। सेठ!

मुमुक्षु : किस परमात्मा की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परमात्मा। यह भगवान परमात्मा अन्दर विराजता है, उसकी व्याख्या चलती है। परम आत्मा, परम स्वरूप, परमपारिणामिकस्वभावभाव। परमपारिणामिकस्वभावभावरूप ध्रुव चीज़ जो है, उसे यहाँ परमात्मा कहते हैं। अप्पा सो परमअप्पा। यह आता है या नहीं? तारणस्वामी बहुत कहते हैं। अप्पा सो परमअप्पा, आत्मा स्वयं परमात्मा। पोते अर्थात् स्वयं। पोते हमारी गुजराती भाषा है। आत्मा स्वयं परमात्मा। आहाहा! उस परमात्मा का दल जो ध्रुव है, उसका जो मोक्ष का मार्ग है, उसकी साधक पर्याय, वह भी इस दल की—आत्मा की है, ऐसा कहना वह उपचार से है, कहते हैं। आहाहा! क्योंकि वह पर्याय द्रव्य में नहीं, उस पर्याय में द्रव्य आया नहीं।

द्रव्य जो त्रिकाली ज्ञायक की प्रतीति और ज्ञान हुआ। प्रतीति में पूरा द्रव्य प्रतीति में आया। परन्तु प्रतीति में द्रव्य आया नहीं। द्रव्य कितना कैसा है, यह प्रतीति में आया परन्तु उस प्रतीति में द्रव्य—वस्तु आयी नहीं। द्रव्य की ताकत कितनी है, वह प्रतीति में आया। आहाहा! ऐसे स्वसंवेदनज्ञान की पर्याय में वस्तु से उसका ज्ञान आया, वस्तु नहीं आयी। आहाहा! इसी प्रकार चारित्र की पर्याय में—अंश में आत्मा नहीं आया। आहाहा! आत्मा तो आत्मारूप रहकर श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र की परिणति खड़ी होती है। तो वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो सच्चा मोक्षमार्ग है, सच्चा मोक्ष का साधक है, मोक्ष के कार्य का सच्चा कारण है, उसे जीव का कहना, वह उपचार से है। है अन्दर या नहीं?

पहले नहीं था यहाँ यह परमात्मप्रकाश। वाँचते हैं और आये। रखे थे अगास... अगास। अगास है न? श्रीमद् का। वहाँ कहीं इतने खपते नहीं, इसलिए पहले यहाँ सौ मँगाये, बाद में ढाई सौ मँगाये, बाद में सौ मँगाये, फिर चार सौ मँगाये। वह भी समाप्त हो गये? वहाँ तो खपते नहीं। यहाँ वाँचन हो न इसलिए लोग आवें, वे ले जाते हैं। रखो तो सही। पैसा रखते हो इसकी अपेक्षा परमात्मप्रकाश (रखो न)। वाच्य का वाचक।

वाच्य परमात्मा, उसका वाचक यह शब्द है। शक्कर शब्द है, वह शक्कर का वाचक है। और शक्कर का वाचक शक्कर पदार्थ वाच्य है। इसी प्रकार परमात्म शब्द, वह वाचक है और परमात्मस्वरूप अन्दर वाच्य है। समझ में आया? अरे! यह बात कहाँ है? भगवान! आहाहा!

उपचारनयकर जीव का स्वरूप कहा जाता है,... आहाहा! **तो भी परमसूक्ष्म शुद्धनिश्चयनयकर भावलिंग भी जीव का नहीं है।** धर्मलालजी! लोगों को तत्त्व का अभ्यास नहीं और बाहर से मान ले। और ऐसी सच्ची बात आवे तो (चिल्लाहट मचाये), यह तो निश्चय... निश्चय... निश्चय। ऐसा कहते हैं न? भगवान! यह तो निश्चय की बात है। परन्तु निश्चय, वही सत्य है। यहाँ तो सच्चा मोक्ष का मार्ग है, वह भी उपचार है। आहाहा! प्रवीणभाई! ऐसा है। यह वाँचन हो गया है पहले। परमात्मप्रकाश तो पहले वाँचन हो गया है। यहाँ ४२ वर्ष हुए। व्याख्यान में चला था, पूरा हो गया है। एक या दो बार। खबर नहीं बराबर। समझ में आया? आहाहा!

तो भी.... पर्याय में वीतरागी आनन्द की पर्याय, मोक्ष का साधकरूप भाव भी व्यवहार है। त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से वह पर्याय व्यवहार है। वह आत्मव्यवहार है। आत्मा उसमें आया नहीं और वह पर्याय द्रव्य में गयी नहीं। आहाहा! पर्याय द्रव्य में गये बिना पर्याय में द्रव्य की श्रद्धा और ज्ञान आये। समझ में आया? मोक्षमार्ग की जो निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, उस निर्विकल्प श्रद्धा में आत्मा नहीं आया, परन्तु आत्मा वस्तु कितनी है, उसकी श्रद्धा आयी। समझ में आया? इसी प्रकार निर्विकल्प ज्ञान में भगवान आत्मा नहीं आया, परन्तु निर्विकल्प ज्ञान की पर्याय में आत्मा कैसा है, उसका ज्ञान आया। उस पर्याय में ज्ञान आया, श्रद्धा आयी, स्थिरता हुई, उसे भी आत्मद्रव्य के कहना, वह उपचार से है। आहाहा! ऐसा मार्ग कभी सुना नहीं। दिगम्बर में जन्म लिया, दिगम्बर क्या कहते हैं, उसकी खबर नहीं होती। ऐ... सेठ! उसमें है न, भगवान! देखो, क्या है? यह पुस्तक यहाँ का है? यहाँ का यह प्रकाशित नहीं, यह तो दूसरी जगह से प्रकाशित है। श्रीमद् राजचन्द्र में से प्रकाशित है। राजचन्द्र में से प्रकाशित है। यहाँ प्रकाशित नहीं। अभी पुस्तकें आयी न! सौ, ढाई सौ, सौ, चार सौ वहाँ से आयी हैं। यहाँ की नहीं। वहाँ बहुत रखी होंगी। वे लोग प्रकाशित करते हैं। परन्तु वहाँ श्रीमद् का बहुत

वाँचते हैं, इसलिए ऐसा नहीं वाँचे तो खपती नहीं। और अपने तो यहाँ सब वाँचते हैं। लोग कितने अधिक ले गये। कहाँ कीमत? आहाहा!

ईसाई लोग तो एक रुपये की पुस्तक चार पैसे, दो पैसे में देते हैं। इतना प्रचार करते हैं। हरिजन को बनाया। कैसा कहलाये? ईसाई। बहुतों को बनाया। यह तो भगवान की वाणी है, बापू! आहाहा! इसकी कीमत क्या? यहाँ तो कहा न, अल्प कीमत में जैसे देना हो, वैसा दो। अब पैसे चाँदी-बाँदी में नहीं डालना, ऐसा मैंने कहा था। सत्तर हजार का आया न? समवसरण आया। चाँदी का है न? दस और सात, सत्तर हजार का है। आया तो हमने तो सभा में कह दिया, यहाँ चाँदी का फिर से किसी को नहीं लाना। यहाँ चाँदी का क्या काम है? यहाँ तो सिद्धान्त शास्त्र वीतराग के हैं। इतने पैसे में अल्प खर्च करके दो। पाँच रुपये की पुस्तक दो रुपये में दो, एक रुपये में दो। ऐसा करो। यह क्या? चाँदी और सोने का ढ़ेर करना है? क्या करना है? समझ में आया? उस समय ही कह दिया था। सभा में कहा था, हों! अभी आया था न गत वर्ष? मगनभाई के पुत्र लाये थे। रजनी। यहाँ अब किसी को चाँदी का बनाकर लाना नहीं। यहाँ नहीं रखेंगे।

मुमुक्षु : चाँदी का नहीं लावे तो सोने का बनायेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी कहा, नहीं? भावनगर से एक पत्र आया है। यह जब बनाया न महाराज! मेरे पास पैंतीस तोला सोना है। आप समयसार का सोने का कवर बनाओ। नहीं, यहाँ सोना-फोना नहीं। अभी दो वर्ष पहले। भावनगर में है। रतिभाई, गुजर गये न। उनकी बहिन के पास पैंतीस तोला सोना। यहाँ पत्र आया। सोना का लेकर समयसार का सोने का कवर बनाओ। सोना-बोना यहाँ नहीं। यहाँ तो सिद्धान्त बनाओ। दिगम्बर शास्त्र, तत्त्व के, हों! उन्हें अल्प कीमत में दो, भाई! यह शास्त्र करो न! नये-नये रखकर, नये-नये बँगले—मकान बनाकर तुझे क्या काम है? समझ में आया? आहाहा! यह तो शास्त्र ... पश्चात् तो फूलचन्दजी ने कहा, एक भगवान की प्रतिमा यहाँ रखो तो पंच कल्याणकरूप से लोग आ सके। यह प्रतिमा है, यह है, कितना डाले। परन्तु यह तो बना था न पंच कल्याणक करना था। तो फूलचन्दजी ने कहा, प्रतिमा हो और पंच कल्याणक हो तो लोग आयेंगे। छब्बीस हजार लोग आये थे। छब्बीस हजार।

साठ हजार आनेवाले थे, परन्तु विवाद था न सरकार के साथ। बस की बस वापस गयी। वरना साठ हजार लोग आनेवाले थे। इतने लोग।

मुमुक्षु : क्या कहा महाराज? समझ में नहीं आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझे? साठ हजार लोग यहाँ आनेवाले थे। प्रतिष्ठा के समय छब्बीस हजार आये। विवाद था, इसलिए लोग नहीं आये। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि पैसे की क्या कीमत है। आहाहा! तीन लोक के नाथ के धर्म के समक्ष पैसे की क्या कीमत है। आहाहा! पैसा पुण्य की दासी है। आहाहा! वह स्तुति में आया है। पद्मनन्दि पंचविंशति है न? हे नाथ! आपको मानूँगा, आपको मानूँगा, आपकी भक्ति करूँगा... निश्चयसहित, हों! उसके पास तो लक्ष्मी दौड़ती आयेगी। पद्मनन्दि पंचविंशति में है। चक्रवर्ती का राज, तीर्थंकर का पद मिलेगा। उस वस्तु की कीमत क्या है। समझ में आया? तेरे भक्त को तो लक्ष्मी दासी है। कितना दे, क्या है? क्या है? जहाँ जाये वहाँ चरु (कलश) होगा, लक्ष्मी के ढ़ेर होंगे, अरबोंपति या तीर्थंकरपद होगा, चक्रवर्ती होगा। उसमें क्या है? सौ कलशी अनाज हो तो सौ गाड़ा घास साथ में होती ही है। खड समझे? घास। सौ कलशी अनाज हो तो सौ गाड़ा घास तो साथ में होती ही है। उसकी कीमत क्या? समझ में आया? जहाँ अपने श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र का धर्म प्रगट हुआ, वहाँ राग बाकी है, उसमें घासफूस तो आयेगी ही। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो आचार्य ने गजब काम किया है! ९४ में यही लिया न? मोक्षमार्ग की दशा, वह आत्मव्यवहार है। ऐसा लिया है। प्रवचनसार। और परमार्थ वचनिका में यह लिया है कि भगवान आत्मा जो नित्य ध्रुव है, वह निष्क्रिय है, और उसमें निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय साधना, वह व्यवहार है। परमार्थ वचनिका में है। निश्चयमोक्षमार्ग साधना, वह व्यवहार है, क्योंकि वह पर्याय है। द्रव्य निश्चय निष्क्रिय है। भगवान आत्मा परिणमन बिना की वस्तु है। मोक्षमार्ग की पर्याय परिणमन की वस्तु है। आहाहा! समझ में आया? जिसकी अवधि एक समय की है। निश्चयमोक्षमार्ग की अवधि एक समय की है। दूसरे समय में दूसरा, तीसरे समय में तीसरा और भगवान आत्मा तो अनादि-अनन्त। काल खा गया। ऐसा त्रिकाली दल पड़ा है। उसमें परिणमन नहीं, उसकी

अवधि नहीं। समझ में आया? कहो, हेमचन्दजी! ऐसा मार्ग है, भगवान! आहाहा!

मुमुक्षु : ठेठ पहुँचा दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग तो यह है, भाई! उसके ज्ञान में लक्ष्य तो करे कि यह चीज़ ऐसी है। लक्ष्य में, ध्यान में इतना ध्यान ऊपर लक्ष्य में तो ले। ओहोहो! फिर अन्तर्मुख दृष्टि करे, प्रयोग करे तो आत्मा हाथ आयेगा।

मुमुक्षु : प्रयोग करे तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, प्रयास करे तो। समझ में आया?

परमसूक्ष्म शुद्धनिश्चयनयकर भावलिंग भी जीव का नहीं है। भावलिंग तो साधनरूप है, वह भी परम अवस्था का साधक नहीं है। द्रव्य को सिद्ध करने की सामर्थ्य है, परन्तु वह द्रव्य नहीं। आहाहा! परम साधक अवस्था द्रव्य को सिद्ध करती है, परन्तु द्रव्यरूप हो जाये, ऐसी उसमें सामर्थ्य नहीं। उसे व्यवहार कहते हैं। निश्चयमोक्षमार्ग को व्यवहार कहते हैं, पर्याय है इसलिए। द्रव्य को निश्चय कहते हैं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, श्रावण कृष्ण १०, शुक्रवार
दिनांक-२०-०८-१९७६, गाथा-८८, ८९, प्रवचन-६७

परमात्मप्रकाश ८८ गाथा। भावार्थ फिर से। हमारे विमलचन्दजी ने प्रार्थना की है। विमलचन्दजी! (उन्होंने कहा कि) फिर से ८८ (गाथा) लेना। भावार्थ, हों! **यद्यपि व्यवहारनयकर यह आत्मा....** दिगम्बर, श्वेताम्बर, बौद्ध के आचार्य (आदि) **अनेक वेशों को धारता है,...** व्यवहार से वेश को धरता है, ऐसा कहने में आता है। **तो भी शुद्धनिश्चयनयकर कोई भी वेश जीव के नहीं है,...** यह अट्ठाईस मूलगुण रागादि या नग्न देह वह सब देह के धर्म हैं। आहाहा! **देह के हैं।** आहाहा!

यहाँ देह के आश्रय से जो द्रव्यलिंग है, वह उपचरित असद्भूतव्यवहारनयकर जीव का स्वरूप कहा जाता है,... उपचार से-झूठे व्यवहारनय से कहे जाते हैं। आहाहा! असद्भूत कहा न! आहाहा! उपचरित (कहा) क्योंकि बाह्य वेश है न! **असद्भूतव्यवहारनयकर जीव का स्वरूप कहा है, तो भी निश्चयनयकर जीव का स्वरूप नहीं है।** वह लिंग आदि जीव का स्वरूप ही नहीं। आहाहा! अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प है, वह भी जीव का स्वरूप नहीं। वह भी असद्भूतव्यवहारनय से है। आहाहा!

क्योंकि जब देह ही जीव की नहीं, तो वेश कैसे हो सकता है? देह ही आत्मा नहीं तो देह के वेश को आत्मा का वेश कहने में आवे? आहाहा! **इसलिए द्रव्यलिंग तो सर्वथा ही नहीं है,...** अब भावलिंग उपचार से कहना है न, (इसलिए यह) सर्वथा नहीं, ऐसा लिया है। आहाहा! नग्नपना या वेश है, वह सर्वथा आत्मा के नहीं। कथंचित् आत्मा का, कथंचित् (देह का) ऐसा नहीं है। आत्मा की पर्याय से वह तो सर्वथा भिन्न वस्तु है। **द्रव्यलिंग तो सर्वथा ही नहीं है और वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूप भावलिंग....** आहाहा! देखो! मोक्ष का मार्ग! जो जैनशासन... आहाहा! जो अपना अबद्धस्पृष्ट स्वरूप है, उसको देखनेवाला नय अथवा देखनेवाला भाव, वह जैनशासन भावलिंग है। आहाहा! समझ में आया? जो अपने को अबद्धस्पृष्ट जाने, माने, उस पर्याय को जिसे यहाँ जैनशासन कहते हैं, वह भावलिंग निर्विकल्पदशा है। आहाहा!

यद्यपि शुद्धात्मस्वरूप का साधक है,... क्या कहते हैं? वह शुद्ध पूर्णानन्द की

प्राप्ति में निश्चयमोक्षमार्ग निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, वह मोक्षमार्ग के साधक होने से **उपचारनयकर जीव का स्वरूप कहा जाता है,...** साधक है, इस अपेक्षा से। मोक्ष का साधक है... आहाहा! वह वीतरागी जैनशासन की पर्याय, वह भी मोक्ष की साधक होने से **उपचारनयकर जीव का स्वरूप कहा जाता है,...** आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो उसे व्यवहारनय के विकल्प और व्यवहार की क्रिया से मुझे धर्म होगा, (ऐसा मानते हैं)। आहाहा!

यहाँ तो वहाँ तक लगाते हैं कि निमित्त का लक्ष्य तो छोड़, राग का लक्ष्य छोड़ और पर्याय का लक्ष्य छोड़। समझ में आया? यह निर्विकल्प मोक्ष का मार्ग जो वीतरागी पर्याय, उसका भी लक्ष्य छोड़। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बहुत (सूक्ष्म है), भाई! यह लोग ऐसा कहते हैं न कि भक्ति से मुक्ति होती है। हें! भगवान की भक्ति से होती है। अरे! प्रभु! भगवान की भक्ति तो शुभराग है। '**परदव्वादो दुग्गइ**' ऐसा पाठ है। परद्रव्य के लक्ष्य से यह राग होता है, वह आत्मा की गति नहीं, वह तो दुर्गति है, चार गति का कारण है। भले स्वर्ग का कारण कहो। स्वर्ग और मनुष्य का कारण, वह तो दुर्गति है, आहाहा! दुःख है। आहाहा! भारी सूक्ष्म बात है, भाई! लोगों को स्थूल मिला, इसलिए लोगों को यह बात ऐसी लगे, एकान्त है। अरे! एकान्त ही है। सम्यक् एकान्त! अनेकान्त का नय है, वह सम्यक् एकान्त है। अनेकान्त में सम्यक् नय है, वह एकान्त है। आहाहा! समझ में आया? भाई! मार्ग बहुत सूक्ष्म है। आहाहा!

कहते हैं, **शुद्धस्वरूप का साधक है,...** कौन? निर्विकल्प निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, स्वसंवेदनज्ञान; शास्त्रज्ञान आदि नहीं। और स्वरूप की रमणता, वह भावलिंग शुद्धात्मस्वरूप है, पूर्ण मुक्ति की प्राप्ति, शुद्धात्मस्वरूप की, उसका साधक होने से, शुद्धात्मपर्याय की प्राप्ति—साधक होने से **उपचारनयकर जीव का स्वरूप कहा जाता है,...** आहाहा! उसे उपचार से कहते हैं। वह सिद्धान्त है, वह कहीं बराबर देखा नहीं। 'मुख्य अभाव अेसति' प्रयोजन है उपचार प्रवर्ते। यह कल रात्रि में याद आया था। आलापपद्धति में है। उपचार कब कहते हैं कि मुख्य का उसमें अभाव है। आहाहा! वस्तु जो मुख्य वस्तु है अखण्ड आनन्दकन्द प्रभु, उस मुख्य का पर्याय में अभाव है। निर्मल वीतरागी मोक्षमार्ग, हों! आहाहा! राग की तो बात ही यहाँ कहाँ है? वीतरागी

पर्याय जो मोक्ष का मार्ग, वीतरागस्वरूप भगवान, उसके आश्रय से पर्याय में उत्पन्न हुआ, निर्विकल्प आनन्द की दशा, वीतरागीदशा (प्रगट हुई)। वह वीतरागीदशा— भावलिंग मोक्ष की, शुद्धात्मस्वरूप की प्राप्ति अर्थात् मोक्ष शुद्धात्मस्वरूप, उसकी साधक होने से उपचार से जीव का स्वरूप कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! सूक्ष्म तो है, परन्तु क्या हो? लोग अभी बाहर से चिल्लाहट मचाते हैं कि व्यवहार करते-करते होगा। व्यवहार तो राग है। यह तो कहते हैं कि निर्विकल्पदशा शुद्धात्मस्वरूप की साधक होने से उपचार से जीव का स्वरूप कहा जाता है, व्यवहार से (कहा जाता है), क्योंकि वह पर्याय है। आहाहा! भगवान! अब अगली लाईन।

तो भी.... ऐसा कहते हैं तो भी **परमसूक्ष्म शुद्धनिश्चयनयकर भावलिंग भी जीव का नहीं है।** आहाहा! निश्चयमोक्षमार्ग जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, निश्चय वीतरागी पर्याय, जैनशासन, (वह भी जीव का स्वरूप नहीं)। आहाहा! (समयसार) १५वीं गाथा में कहा न? '**जो पस्सदि अप्पाणं**' आत्मा देखे, श्रद्धा करे, उस पर्याय को जैनशासन कहा जाता है। पर्याय को कहते हैं न? ध्रुव को कहाँ? आहाहा! जो भगवान को देखती है, अपना भगवान, हों! पर भगवान और गुरु को देखे तो वहाँ तो राग होगा। आहाहा! समझ में आया?

आचार्य तो ऐसा कहते हैं, भगवान ऐसा कहते हैं कि प्रभु! तू हमारे सन्मुख देखता है तो एक बार तेरे सन्मुख देख न! जहाँ तेरा निधान है, वहाँ देख न! तेरा निधान हमारे पास कहाँ है कि तू हमारे सामने देखता है? आहाहा! समझ में आया? तीन लोक के नाथ वीतराग की दिव्यध्वनि में ऐसा आता है... आहाहा! हमारे सन्मुख देखने से प्रभु! तुझे राग होगा। आहाहा! राग तो बन्ध का कारण है। आहाहा! तेरे सन्मुख देख। तेरा निधान अन्दर पड़ा है, नाथ! तू निर्विकल्प आनन्द का कन्द है न! जो पर्याय में आता नहीं और पर्याय वहाँ प्रविष्ट नहीं होती। समझ में आया? ऐसा मार्ग है। अरे! पिताजी कुछ निधान रख जाये तो उत्तराधिकार लेने के लिये तुरन्त खोजता है। प्रभु कहते हैं कि तेरे पास निधान पड़ा है न, भगवान! आहाहा! स्वसन्मुख देखने से जो पर्याय उत्पन्न होती है, वह भी जीव का व्यवहारस्वरूप है। आहाहा! वह वास्तविक जीव नहीं। आहाहा! वह उपचारिक जीव है। आहाहा! कहो, चन्दुभाई! शान्तिभाई कहाँ बैठे हैं? भावनगर। समझ में आया? इस बार रुके हैं। आहाहा!

प्रभु! तेरा मार्ग.... वीतराग तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ की वाणी में ऐसा आया, आहाहा! प्रभु! तू हमारे सामने, देव-गुरु-शास्त्र के सामने देखता है तो राग होगा। **'पस्सदि अप्पाणं'** आहाहा! तेरा नाथ तो तेरे पास अन्दर पड़ा है न! आहाहा! वहाँ निधान पर नजर करने से तुझे आनन्द आयेगा। हमारे ऊपर नजर करने से प्रभु! तुझे दुःख होगा। अमरचन्दभाई! ऐसा मार्ग सुनने को मिलता नहीं। ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाती है। धूल में और धूल में। यह पूजा, भक्ति और यात्रा की तो हो गया धर्म। आहाहा! भाई! वह तो राग है। वह तो धर्म नहीं और धर्म का कारण नहीं। परन्तु जो वीतरागी निर्विकल्प मोक्षमार्ग है, उसका व्यवहार कारण नहीं, परन्तु निश्चयमोक्षमार्ग है, उसका कारण द्रव्यस्वभाव है। समझ में आया? और वह द्रव्यस्वभाव जो त्रिकाली है, उसकी यह मोक्षमार्ग पर्याय है (-ऐसा) कहना। वह उपचार है। आहाहा! गजब बात है। समझ में आया? यह बात तो शास्त्र चलता हो, तब कही जाये। ऐसे के ऐसे कहें तो शीघ्र पकड़ में न आवे। यह तो अधिकार चलता है, सामने गाथा है। आहाहा! समझ में आया?

उपचारकर जीव का स्वरूप.... (कहा जाता है)। गजब बात, प्रभु! राग तो उसका स्वरूप नहीं, देह उसका स्वरूप नहीं, परद्रव्य उसका स्वरूप नहीं। आहाहा! परद्रव्य उसका स्वरूप नहीं, राग उसका स्वरूप नहीं, देह उसका स्वरूप नहीं परन्तु मोक्ष का मार्ग भी जीव का स्वरूप उपचार से है। आहाहा! गजब बात है। क्यों?—कि यह पर्याय है। यह द्रव्य की पर्याय उपचार से है। आहाहा! द्रव्य में पर्याय है नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग है। लोगों को ऐसा लगे, हों! यह बात टूट गयी थी न! आहाहा! (सुनने में कान में) नहीं पड़ी थी। फिर ऐसा कहे। कहो, बापू! भगवान! आहाहा! निश्चयाभासी एकान्ती है, ऐसा कहे। कहे, बापू! (उसे) खबर नहीं। परमात्मा तो ऐसा कहते हैं।

तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव गणधरों और एकावतारी इन्द्रों के बीच में यह कहते थे। वह सन्त कहते हैं। दिगम्बर सन्त, सर्वज्ञ कहते हैं, वह कहते हैं। समझ में आया? श्वेताम्बर की भाँति नहीं कि भगवान ने कहे हुए वे शास्त्र हम तुझे कहते हैं। यह तो हमारे वैभव से भगवान ने कहा है, वह कहते हैं। आहाहा! गजब बात है, भाई!

यह सत्य बात कान में पड़ने के लिये भाग्य चाहिए। यह पैसा-बैसा का भाग्य नहीं, हों! पोपटभाई! छह लड़के और दो करोड़ रुपये, ऐसा लोग कहते हैं। किसी का आँकड़ा अभी बाहर प्रसिद्ध करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि अभी सर्वत्र विरोध है न! यह तो अपेक्षा से कहते हैं। लोगों में बाहर में विरोध है। पैसे इतने हों तो ऐसा लाओ, ढींकणा लाओ, फलाना, ऐसा कहते हैं। हो वह ठीक। सरकार की ओर से (ऐसा कहते हैं)। सब खबर है न! बापू! आँकड़ा चाहे जो हो। आहाहा! प्रभु! वह तो जड़ के कंकड़ हैं। वह तो जड़ के कंकड़—परमाणु हैं। वे तेरे कहाँ से हुए? यहाँ तो (कहते हैं), राग तेरा नहीं और निर्विकल्प मोक्ष का मार्ग उपचार से तेरा है। गजब बात है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! लो, विमलचन्दजी! विमलचन्दजी ने कल कहा था कि कल फिर से थोड़ा लेना। अच्छी बात है। इसे रस-प्रेम है न। यह इनका लड़का है अरहंतप्रकाश। उसे डेढ़ वर्ष से तो रात्रि में आहार-पानी नहीं। रात्रि में आहार-पानी बिल्कुल नहीं। अभी इतनी उम्र से। दो वर्ष से तो अष्टमी-चतुर्दशी के एकासन करता है। उसे सुनने में रस है। उसका नाम अरहंतप्रकाश है। यह आत्मा अरहंतप्रकाश है। परमात्मप्रकाश कहो या अरहंतप्रकाश कहो। हुकमचन्दजी (के लड़के का नाम) परमात्मप्रकाश। हुकमचन्दजी के बड़े पुत्र का नाम परमात्मप्रकाश है। यह हुकमचन्दजी पण्डित, जयपुर। छोटे लड़के का नाम अध्यात्मप्रकाश है। घर में संस्कार... आहाहा!

यहाँ कहते हैं, गजब बात की है। यह तो कहते हैं, पूर्ण शुद्धात्मा का स्वरूप प्राप्त हो, उसका मोक्षमार्ग साधक होने से उपचार से जीव का (स्वरूप) है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो शुद्धात्मा की पर्याय प्राप्त हो, उसका साधक यहाँ सिद्ध करना है। वह शुद्धात्मा की पर्याय पूर्ण प्राप्त हो, उसका साधक होने से जीव का (स्वरूप) उपचार से है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह सब व्यवहार के झगड़े और निमित्त के और क्रमबद्ध के। ये तीनों झगड़े सोनगढ़ के नाम से (चलते हैं।)

क्रमबद्ध। एक के बाद एक क्रमबद्ध होती है। तो कहे, नहीं। अच्छा, भगवान! तो सर्वज्ञ ही रहे नहीं। सर्वज्ञ ने देखा है कि जिस समय में (जो पर्याय) होती है, वह सर्वज्ञ ने पहले से देखा है। समझ में आया? आहाहा! सोनगढ़ का है या भगवान के घर का है? आहाहा! अरे! वह वाणी 'सम्यग्ज्ञान दीपिका' ब्रह्मचारी क्षुल्लक की है। उसने

तो अमुक सिद्धान्त सिद्ध किया है। यह बात उनकी (खोटी) नहीं। अब वह सोनगढ़ के नाम से लगाकर कहे, ऐई! सोनगढ़वाले ऐसा कहते हैं। अरे! भगवान! भाई! नहीं होता, ऐसा नहीं चलता। यहाँ वीतराग का विरह पड़ा, उसमें ऐसा अन्याय नहीं चलता। समझ में आया? आहाहा! भाषा-वाणी तो देखो! ऐसी सुनने को मिलना मुश्किल है। जिन्दगी ऐसी की ऐसी अज्ञान में चली जाती है। आहाहा! योगफल चार गति में भटकना। आहाहा!

परिभ्रमण के अन्त लाने के लिये मोक्ष का मार्ग है। यह मोक्ष का मार्ग भी पर्याय है, इसलिए उपचार है। आहाहा! वास्तविक जीव स्वरूप में वह है नहीं। त्रिकाली भगवान आनन्द का नाथ प्रभु ध्रुव... ध्रुव स्वरूप... आहाहा! **परमसूक्ष्म शुद्धनिश्चयनयकर भावलिंग भी जीव का नहीं है।** द्रव्यलिंग तो नहीं। 'भी' शब्द पड़ा है न? द्रव्यलिंग तो नहीं, भावलिंग भी नहीं। प्रभु! तू तो साक्षात् परमात्मस्वरूप है न! आहाहा! वीतरागमूर्ति तेरी चीज़ है। अकषायरस तेरा स्वरूप है। अनन्त शक्ति का संग्रहालय, गुण का धाम गोदाम तू है। आहाहा! उसमें यह पर्याय है, वह उसमें नहीं। समझ में आया?

दृष्टि का विषय बताते हैं। दृष्टि का विषय, मोक्षमार्ग पर्याय भी दृष्टि का विषय नहीं। दृष्टि का विषय दृष्टि नहीं। गजब बात है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि का विषय सम्यग्दृष्टि नहीं। आहाहा! तो सम्यग्दर्शन का विषय व्यवहाररत्नत्रय तो कहीं रह गया। सम्यग्दर्शन का विषय मोक्ष का मार्ग नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है। आहाहा! देहादि तो नहीं, रागादि तो नहीं, व्यवहाररत्नत्रय तो जीव का स्वरूप नहीं। आहाहा! असद्भूतव्यवहारनय से कहो, झूठे नय से कहो। आहाहा! और यह मोक्ष का मार्ग जो निर्विकल्प भावलिंग, वह सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। सद्भूतव्यवहारनय का विषय है तो वह जीव का (स्वरूप) उपचार से कहने में आता है। आहाहा! यह मार्ग ऐसा है। क्या करे? पहले इसका पक्ष तो करना चाहिए। मार्ग ऐसा है। यह कोई घर की बात, पक्ष की बात नहीं। यह तो तीन लोक के नाथ के घर की बात है, प्रभु! आहाहा! परमेश्वर की पर्याय जितना तू नहीं। मोक्षमार्ग की पर्याय जितना नहीं, सिद्ध की पर्याय, परमात्मा की पर्याय जितना नहीं। परमात्मा—सिद्ध की पर्याय भी सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। केवलज्ञान! केवलज्ञान सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। निश्चय का विषय नहीं। समझ में आया? आहाहा! पर्याय है न? द्रव्य में से भेद

पड़ा न? भेद पड़ा और उसकी है, इसलिए सद्भूत। सद्भूतव्यवहारनय का विषय केवलज्ञान है। गजब बात है, प्रभु! आहाहा! तो उसका साधक है, वह तो उपचार से जीव का कहने में आता है। आहाहा!

ऐसी बात भी कहाँ है? प्रभु! आहाहा! जिन्दगी चली जाती है, समय-समय में मृत्यु के समीप जाता है। जो समय गया, वह फिर से नहीं आयेगा। आहाहा! जिन्दगी के अन्त आने की तैयारियाँ हैं। देह छूट जायेगी, भगवान! यदि आत्मा की शरण नहीं ली तो कुछ नहीं किया, तूने कुछ नहीं किया। आहाहा!

मुमुक्षु : वह समय याद आयेगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : याद किया हो तो आवे न! याद क्या आवे? याद आवे उसमें क्या है? याद आवे वह तो धारणा हुई। अन्तर में आत्मा की दृष्टि हुई हो तो मरण के समय वह दृष्टि आयेगी। समझ में आया? याद आवे, उसमें क्या हुआ! वह तो धारणा हुई। सूक्ष्म बात है, बापू! वीतराग का मार्ग ऐसा है। जन्म-मरण का अन्त लावे, ऐसी बात है। चौरासी का सिन्धु-समुद्र। आहाहा! शुद्ध चेतना सिन्धु हमारो रूप है! यह भवसिन्धु, वह हमारा रूप नहीं। भवसिन्धु का कारण राग, वह भी हमारा रूप नहीं। आहाहा! 'कहे विचिक्षण पुरुष सदा मैं एक हूँ, अपने रस सों भर्यो अनादि टेक हूँ।' अनादि मेरी चीज़ आनन्दकन्द शुद्ध चैतन्यघन निर्विकल्प आनन्द सामान्य ध्रुवस्वरूप मैं त्रिकाल हूँ। 'कहे विचिक्षण पुरुष सदा मैं एक हूँ, अपने रस सों भर्यो अनादि टेक हूँ, मोहकर्म मम नांहि, मोहकर्म मम नांहि, नांहि भ्रम कूप है।' वह भ्रम का कुँआ है। और शुद्ध चेतना सिन्धु हमारो रूप है, शुद्ध चेतना सिन्धु हमारो रूप है... आहाहा! जिसमें पर्याय भी नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा! हमारे विमलचन्दजी कहे, फिर से वाँचना। इसलिए फिर से लिया। इन्हें रस है न, प्रेम है न! अरे! भाई! यह वस्तु कहाँ है? बापू! यह धूल और धाणी, आबरू और पाणी सब शून्य लगाने जैसा है। भरपूर भगवान गुण का सागर तो प्रभु यहाँ अन्दर है। वह राग से खाली, पर्याय से खाली है। आहाहा! वह दृष्टि का विषय है। सम्यग्दर्शन का आधार-विषय वह है। यद्यपि निश्चय से मोक्षमार्ग की जो पर्याय है, वह पर्याय कर्ता, पर्याय कर्म, पर्याय का आधार पर्याय, पर्याय होकर पर्याय रखती है और पर्याय में से पर्याय आती है। आहाहा!

निश्चयमोक्षमार्ग जो है, वह भी पर्याय है और पर्याय के कर्ता-कर्म षट्कारक पर्याय में है। उसे आत्मा का कहना, वह उपचार से है, कहते हैं। आहाहा! जिस भगवान में कर्ता, कर्म, करण गुण त्रिकाल पड़े हैं। यह तो एक समय की पर्याय के कर्ता-कर्म हुए। समझ में आया? आहाहा! वस्तु में तो त्रिकाली कर्ता, त्रिकाली कर्म गुण-शक्ति, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, स्वच्छता, प्रभुता, जीवत्व आदि अनन्त शक्तियों का संग्रह, अनन्त शक्तियों का पिण्ड प्रभु है, जिसमें यह व्यवहार-उपचार से भावलिंग कहा, वह जीव का (स्वरूप) नहीं। अरे रे! स्त्री, पुत्र और पैसा कहाँ गया? पोपटभाई! यह मेरा हसमुख और यह मेरी यह, यह मेरे मकान और यह मेरी टाईल्स, मशीनें। आहाहा!

मुमुक्षु : आपने सब उड़ा दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : उड़ ही गया है, उसमें था कब? उसमें है कहाँ? आहाहा! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के ऊपर लोटता है। बहिर्लुटंती शब्द है, संस्कृत है। कलश है। एक द्रव्य ऊपर लोटता है। वे शंकरवाले नहीं आते? शंकर के बाबा। वे ऐसा घंटा रखते हैं। फिर पैसा देने में देरी लगे कि लकड़ी बाहर घुमावे (तो) अन्दर लोलक हिले। समझ में आया? यह ऊपर-ऊपर पूरा द्रव्य रहता है। बहिर्लुटंती, ऐसा शास्त्र में पाठ है। शरीर, कर्म, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार सब बहिर्लुटंती है। तुझे और उन्हें क्या सम्बन्ध है? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि तुझे तो राग के साथ भी सम्बन्ध नहीं। अरे! तुझमें निर्विकल्प पर्याय का सम्बन्ध कहना, वह व्यवहार से है। आहाहा! माणेकचन्दभाई! ऐसी बातें हैं, प्रभु! भाई ने फिर से वाँचने का कहा तो फिर से वाँचा। आहाहा! भगवान आत्मा है न? भाई! इस भगवान आत्मा में भावलिंग भी जीव का नहीं। आहाहा! क्योंकि पलटती दशा है। मोक्षमार्ग, वह तो एक समय की दशा है। भावलिंग है, वह एक समय की दशा है और वस्तु त्रिकाल है। समझ में आया? आहाहा! अब उसमें डालचन्दजी और माणेकचन्दजी कहीं रह गये! यह क्या कहते हैं? अन्दर में समझना, वह करना। आहाहा!

भगवान आत्मा वस्तु जो स्वरूप चिद्घन आनन्दकन्द नित्यानन्द है, उसमें तो

भावलिंग की परिणति भी नहीं। अथवा वह भावलिंग जीव का स्वरूप ही नहीं, आहाहा! वह तो पर्याय का स्वरूप है। समझ में आया? अब इतना स्पष्ट कथन है। यह परमात्मप्रकाश है न? तो कहते हैं कि भावलिंग है, वह परमात्मप्रकाश वस्तु में है नहीं। आहाहा! परमात्म पर्याय जो प्रगट हुई, वह परमात्मस्वभाव में है नहीं। आहाहा! परमात्म स्वभाव तो ध्रुव त्रिकाल आनन्दकन्द है। ऐसी परमात्म प्रकाश की अनन्त... अनन्त... अनन्त... पर्याय का पिण्ड वह तो है। आहाहा! समझ में आया? अरे! इसने आत्मा सुना नहीं... सुना नहीं। आहाहा!

पद्मनन्दि पंचविंशति में बारह-तेरह बोल लिखे हैं। आत्मा सुनना, आत्मा पूछना, आत्मा के प्रश्न करना, आत्मा के विचार करना, आत्मा का चिन्तन करना, उसका मनन करना, अनुप्रेक्षा करना (इत्यादि) ऐसे तेरह बोल लिये हैं। पद्मनन्दि पंचविंशति है न? पद्मनन्दि पंचविंशति है, उसमें यह लिया है। २६ अधिकार है परन्तु पच्चीसी नाम दिया है। अधिकार २६ है। पद्मनन्दि पंचविंशति। सब देखा है न! सब शास्त्र (देखे हैं)। उसमें २६ अधिकार हैं, परन्तु नाम पच्चीसी दिया है। पद्मनन्दि बनाया न? उसमें यह लेख है। प्रभु! तुझे आत्मा सुनना, आत्मा विचारना, चिन्तवन करना, पूछना। आत्मा कैसा है? यह पूछना। दूसरी बात छोड़ दे, तू यह कर। पद्मनन्दि पंचविंशति में तेरह बोल हैं। आहाहा! २६ तो अधिकार हैं, उसमें नाम दिया पंचविंशति। उसमें बीच में है। प्राय: निश्चय अधिकार में होगा। निश्चय अधिकार है न? निश्चय (पंचाशत) अधिकार है। है, सब वाँचन किया है, व्याख्यान में वाँचन किया है। वहाँ निश्चय (पंचाशत अधिकार में) होगा। व्याख्यान हो गये हैं। यह अधिकार वाँचा है। ४२वाँ चातुर्मास चलता है। यहाँ ४२वाँ चातुर्मास चलता है। आहाहा!

भावलिंग भी जीव का नहीं है। भावलिंग साधनरूप है,... वह तो पर्यायरूप साधन है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **यह भी परम अवस्था का साधक नहीं है।** अर्थात् द्रव्य को सिद्ध करने में वह पर्याय साधन है, परन्तु द्रव्य में वह पर्याय साधन नहीं। समझ में आया? पर्याय जो साधनरूप है, वह द्रव्य में नहीं। द्रव्य में यह है, उसे सिद्ध कर सकती नहीं। द्रव्य में यह है, ऐसा पर्याय सिद्ध नहीं कर सकती। द्रव्य तो द्रव्य है। आहाहा! ऐसा द्रव्य भगवान साक्षात् परमात्मस्वरूप है। ८८ (गाथा पूरी) हुई। दो अट्ठे हैं। आठ कर्म का अभाव। भावलिंग का अभाव। आहाहा!

गाथा - ८९

अथ –

८९) अप्पा गुरु णवि सिस्सु णवि णवि सामिउ णवि भिच्चु।
सूरउ कायरु होइ णवि णवि उत्तमु णवि णिच्चु।।८९।।

आत्मा गुरुः नैव शिष्यः नैव नैव स्वामी नैव भृत्यः।
शूरः कातरः भवति नैव नैव उत्तमः नैव नीचः।।८९।।

आत्मा गुरुर्नैव भवति शिष्योऽपि न भवति नैव स्वामी नैव भृत्यः शूरो न भवति कातरो हीनसत्त्वो नैव भवति नैवोत्तमः उत्तमकुलप्रसूतः नैव नीचो नीचकुलप्रसूत इत। तद्यथा। गुरुशिष्यादिसंबन्धान् यद्यपि व्यवहारेण जीवस्वरूपांस्तथापि शुद्धनिश्चयेन परमात्मद्रव्याद्भिन्नान् हेयभूतान् वीतरागपरमानन्दैकस्वशुद्धात्मोपलब्धेश्च्युतो बहिरात्मा स्वात्मसंबद्धान् करोति तानेव वीतरागनिर्विकल्पसमाधिस्थो अन्तरात्मा परस्वरूपान् जानातीति भावार्थः।।८९।।

आगे यह गुरु शिष्यादिक भी नहीं है –

आत्मा शिष्य नहीं गुरु भी नहिं सेवक या नहिं स्वामी भी।
शूरवीर अथवा कायर नहीं उत्तम अथवा नीच नहीं।।८९।।

अन्वयार्थ :– [आत्मा] आत्मा [गुरुः नैव] गुरु नहीं है, [शिष्य नैव] शिष्य भी नहीं है, [स्वामी नैव] स्वामी भी नहीं है, [भृत्यः नैव] नौकर नहीं है, [शूरः कातरः नैव] शूरवीर नहीं है, कायर नहीं है, [उत्तमः नैव] उच्चकुली नहीं है, [नीचः नैव भवति] और नीचकुली भी नहीं है।

भावार्थ :– ये सब गुरु, शिष्य, स्वामी, सेवकादि संबंध यद्यपि व्यवहारनय से जीव के स्वरूप हैं, तो भी शुद्धनिश्चयनय से शुद्ध आत्मा से जुदे हैं, आत्मा के नहीं हैं, त्यागने योग्य हैं, इन भेदों को वीतरागपरमानंद निज शुद्धात्मा की प्राप्ति से रहित बहिरात्मा मिथ्यादृष्टिजीव अपने समझता है, और इन्हीं भेदों को वीतराग निर्विकल्पसमाधि में रहता हुआ अंतरात्मा सम्यग्दृष्टिजीव पर रूप (दूसरे) जानता है।।८९।।

गाथा-८९ पर प्रवचन

आगे यह गुरु-शिष्यादि भी नहीं है:- देखो! यह गुरु मेरे और यह देव मेरे, ऐसा है नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! ८९।

८९) अप्पा गुरु णवि सिस्सु णवि णवि सामिउ णवि भिच्चु।
सूरउ कायरु होइ णवि णवि उत्तमु णवि णिच्चु॥८९॥

भगवान आत्मा गुरु नहीं। आहाहा! गुरु मेरे हैं, ऐसा नहीं, यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! शिष्य भी नहीं। स्वामी भी नहीं और भूत अर्थात् नौकर भी नहीं। गुरु नहीं, शिष्य नहीं, स्वामी नहीं, भूत अर्थात् सेवक नहीं। भूत अर्थात् सेवक / नौकर। '**शूरः कायरः नैव**' भगवान आत्मा शूरवीर नहीं। पर्याय का शूरवीर, हों! और परमात्मा कायर भी नहीं। आहाहा! यह शूरवीर और कायर तो पर्याय की बात है। समझ में आया? आहाहा! उत्तम और नीच नहीं। उच्च कुल नहीं। हम उच्च कुल में से हैं। नीच कुल भी नहीं, वह सब गुरु, शिष्य, स्वामी, सेवक आदि सम्बन्ध। देखो! सम्बन्ध। आत्मा को गुरु और शिष्य का सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! वह तो व्यवहार से कहा जाता है, इतना है, ऐसा कहते हैं। गुरु ऐसा कहते हैं कि हम तेरे नहीं, तेरे हम नहीं, तू हमारा शिष्य नहीं। आहाहा! सर्वत्र गड़बड़ है, खबर है न भाई! आहाहा!

यहाँ तो ८७ वर्ष शरीर को चलते हैं। यहाँ तो (संवत्) १९६५ के वर्ष से तो यह शास्त्र अभ्यास है। पालेज में पिताजी की दुकान (थी)। हम तो वहाँ शास्त्र वाँचते थे। पूर्व के संस्कार थे न, परन्तु श्वेताम्बर के। श्वेताम्बर थे न? एक कल्पद्रुम (ग्रन्थ) था। 'अध्यात्म कल्पद्रुम' श्वेताम्बर की पुस्तक है। पहले वह हाथ में आया था, लो! अध्यात्म कल्पद्रुम श्वेताम्बर का एक शास्त्र है। ग्रन्थ है, हों! वहाँ हमारे कुँवरजीभाई का मकान था, वह चुनीलाल मोतीलाल श्वेताम्बर का था। उसके पास था। परन्तु यह तो (संवत्) १९६५ के वर्ष की बात है। १९६५। ६७ वर्ष हुए। सब देखते थे। उस समय श्वेताम्बर के शास्त्र दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूयगडांग सब देखते थे। इनाम में कबीर की पुस्तक आती थी तो उसे देखते थे। हम जैन समाचारपत्र मँगाते थे।

वाडीलाल मोतीलाल (नाम से) स्थानकवासी के अहमदाबाद में थे। जैनसमाज के पत्रकार थे। उसे मँगाते थे, परन्तु मैं अकेला (वाँचता था), बाकी सब धन्धे में (रहते थे)। उसमें एक बार कबीर के पद (पुस्तक) भेंट में आयी। कबीर की पुस्तक भी पढ़ी थी परन्तु यह जैनदर्शन की बात कहीं है नहीं। वह कबीर सब बौद्ध मिथ्यादृष्टि। अब वह बौद्ध और महावीर दोनों मोक्ष पधारे, ऐसा कहता है। चिमनचकु स्थानकवासी का व्यक्ति है। कहो, यह वह कुछ गजब बात है! कहाँ बौद्ध गृहीत मिथ्यादृष्टि, कहाँ भगवान केवलज्ञानी! दोनों मोक्ष पधारे हैं, ऐसा कहता है। आहाहा! अभी यह अन्धता चलती है। स्थानकवासी में कोई ऐसा विचार करनेवाला भी नहीं कि तू यह क्या करता है? और तू किसका यह बोलता है? हें!

मुमुक्षु : गहरा उतरकर....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसमें गहरा कहाँ है? बौद्ध और परमात्मा कहाँ? सूक्ष्म बात अभी निश्चय-व्यवहार की हो तो सूक्ष्म (पड़े), परन्तु कहाँ बौद्ध और कहाँ भगवान तीन लोक के नाथ और कहाँ गृहीत मिथ्यादृष्टि क्षणिक माननेवाला। वैरागी था बेचारा राजा था न राजा! परन्तु क्षणिक को माननेवाला। दुःख से वैराग्य (आया) परन्तु वस्तु त्रिकाल क्या है? वह बौद्ध नित्य तो मानता ही नहीं था। आहाहा! श्रीमद् में भी पीछे लेख है। २७ प्रश्नोत्तर हैं, उसमें किसी ने प्रश्न किया है। बौद्ध है? बौद्ध उनके शास्त्र से देखें तो वह बौद्ध धर्म प्राप्त नहीं है, ऐसा लिखा है। श्रीमद् की तो दृष्टि निर्मल थी। एक यह श्वेताम्बर-दिगम्बर की भिन्नता स्पष्ट पहले नहीं हुई थी, बाद में की परन्तु अब वे लोग उनके भक्त मानते नहीं। बाद में स्पष्ट कर दिया है। सत्श्रुत सब दिगम्बर नाम से १९ दिये हैं। सत्श्रुत यह है। एक बीसवाँ ग्रन्थ हरिभद्रसूरि का बनाया हुआ है। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन दिया ही नहीं। लोगों को यह पकड़ हो, उससे छूटना (कठिन पड़ता है)। सम्प्रदाय का आग्रह (छूटता नहीं)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वस्तु उसमें है नहीं। मूल तो गृहीत मिथ्यादृष्टि होने के बाद शास्त्र रचे हैं। कहीं नहीं है। थोड़ा सा निकाला है वह अपना इसमें से लेकर। समयसार में से लेकर थोड़ा सा डाला है, अभी नया बनाया है। यह वस्तु, बापू! यह तो

सनातन सत्य है। आहाहा! सनातन सत्य का प्रवाह बहता है। ऐसा मार्ग है, बापू! यह भगवान का कहा हुआ है। आहाहा! चिमनलालजी!

मुमुक्षु : समयसार को भी मानते नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वे नहीं मानते। दिगम्बर का ग्रन्थ वह कैसे माने? समयसार को माने तो श्वेताम्बर धर्म पूरा खोटा हो जाये। उसे कहाँ से माने वे? उन्हें हो किसका? आहाहा!

यहाँ तो दूसरा लेना है कि गुरु और शिष्य भी व्यवहारनय से कहने में आते हैं। आहाहा! यह मेरे गुरु और यह मेरा शिष्य, यह तो व्यवहार से कथन है। गुरु-शिष्य कैसे? भगवान आत्मा में द्वैत कैसा? आहाहा! विकल्प का द्वैत जिसमें नहीं, अरे! निर्मल पर्याय का द्वैत जिसमें नहीं, उसे गुरु-शिष्य कहाँ से आये? आहाहा! अद्वैत भगवान अद्वैत अन्यमति कहते हैं, ऐसा नहीं, हों! अद्वैत कहते हैं न? वेदान्त... वेदान्त। वह नहीं। यह अद्वैत अर्थात् तो एकरूप वस्तु, जिसमें पर्याय की द्वैतता नहीं। यह पंच परमेष्ठी में आता है। मैं द्वैत भी नहीं, मैं अद्वैत भी नहीं। मैं तो जैसा हूँ, वैसा हूँ, ऐसा आता है। द्वैत अर्थात् द्रव्य-पर्याय। पद्मनन्दि पंचविंशति। यह उसमें श्लोक आता है। नियमसार में यह आधार आता है। आहाहा! द्रव्य और पर्याय, ऐसा द्वैत भी नहीं और मैं द्रव्य हूँ, ऐसा अद्वैत का विकल्प भी नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, प्रभु! सम्यग्दर्शन का विषय अलौकिक चीज़ है। लोग मान बैठे कि हम सम्यग्दृष्टि हैं और फिर प्रतिमा ले लो और व्रत ले लो। माने। अभी सम्यग्दर्शन कैसे हो, (उसकी खबर नहीं)। आहाहा!

अरे! सम्यग्दर्शन हुआ तो वस्तु है, वह मोक्षस्वरूप है। सम्यग्दर्शन में मोक्षस्वरूप का भान हुआ तो अन्दर मोक्ष हो गया। पर्याय में मोक्ष होनेवाला है, द्रव्य मोक्ष तो अन्दर आ गया। अबद्ध कहो या मोक्ष कहो। आहाहा! ऐसी चीज़ में गुरु, सेवकादि तो व्यवहार से है। आहाहा! ठीक! यहाँ तो (ऐसा कहे), हमारे गुरु को हम मानते हैं तो हमारा मोक्ष होगा। अब कहाँ रहा? गुरु को माने, वह तो विकल्प है। यह मार्ग तो वीतराग है... मुख के सामने ग्रास किसे न सुहावे? यह (वीतराग) तो इनकार करते हैं कि हमारे सामने देखेगा तो राग होगा। ऐई! यह वीतरागमार्ग है, भाई!

देखो! यहाँ कहते हैं, गुरु और शिष्य व्यवहार से है। **शुद्धनिश्चयनय से शुद्ध**

आत्मा से जुदे हैं,... गुरु कौन? उनका आत्मा भिन्न, तेरा आत्मा भिन्न। शिष्य का आत्मा भिन्न। तुझे ऐसा कैसे आता है? आहाहा! समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि गुरु की भक्ति करते-करते मोक्ष होगा, लो! रतिभाई! रतिभाई ने कल कहा था, वे लोग ऐसा कहते हैं कि गुरु की भक्ति करूँगा तो मुक्ति होगी। श्रीमद् में भी बहुतों को यह विपरीतता घुस गयी है। खबर है। हमारे वीरचन्दभाई के पिता थे। वे और वहाँ (संवत्) २०१० के वर्ष। वीरचन्द भूरा, शिवलालभाई! नहीं? २०१० के वर्ष में व्याख्यान चलता था। २२ वर्ष हुए। म्युनिसिपलटी में व्याख्यान सुना था। यहाँ बोटाद। मन्दिर नहीं बना था, अब मन्दिर हो गया है। तब व्याख्यान चलता था। उन्होंने प्रश्न किया, महाराज! देव, गुरु और शास्त्र तो शुद्ध है। वे परद्रव्य? यह श्रीमद् के वाँचनेवाले और वहाँ अगास में जानेवाले। यह तुम्हारे पिता को भी यह सब था। वे तो बेचारे बाद में... मानों गुरु की भक्ति करते हैं, बस! अपने को मुक्ति हो जायेगी। भाई! गुरु की भक्ति तो राग है। भगवान तो यहाँ तक कहते हैं... आगे आयेगा। आ गया है? 'भव भव में पूजियो तीर्थंकर को', ऐसा आता है... आ गया? अब आयेगा। कहीं है। अब आयेगा। उसमें क्या आया? राग है, शुभ है।

अनन्त बार समवसरण में जाकर साक्षात् तीन लोक के नाथ को हीरा के थाल, मणिरत्न के दीपक, कल्पवृक्ष के फूल से (पूजन की है)। मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है, सम्यग्ज्ञान दीपिका में भी आता है। सम्यग्ज्ञान दीपिका में विशेष आता है, स्पष्ट कर दिया है। अनन्त बार पूजा (की)। क्या हुआ? वह तो शुभभाव है। साक्षात् त्रिलोकनाथ समवसरण में (विराजते हैं)। सिद्ध की तो परोक्ष भक्ति करते हैं। वर्तमान नहीं न! तो परोक्ष भक्ति सिद्ध की करे। और यह भगवान तो समवसरण में प्रत्यक्ष है। सिद्ध की भक्ति परोक्ष है। यहाँ है नहीं न! अरिहन्त भगवान तो साक्षात् विराजते हैं। समवसरण में ऐसी भक्ति (की)। वह क्या है? वह तो राग है। उससे बन्ध होता है। यह गजब बात है, भाई! मोक्षपाहुड़ में यहाँ तक कहा है, '**परदव्वादो दुग्गइ**' १६वीं गाथा। परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग ही उत्पन्न होगा, तेरी गति चैतन्य की नहीं रहेगी। आहाहा! ऐसी बातें! दिगम्बर मुनि, नागा बादशाह से आघा। उन्हें जगत की कहाँ पड़ी है? कैसे माने, न माने, तुम जानो। मार्ग यह है। आहाहा!

समन्तभद्र में नहीं आता? समन्तभद्राचार्य की स्तुति। भगवान ने उपदेश कहा परन्तु उसका फल... वे तो केवली हैं। चौबीस में आता है। स्वयंभूस्तोत्र। भगवान ने मार्ग कह दिया। प्रायः करके धर्मनाथ का है। यह धर्मनाथ की स्तुति में है। चौबीस (तीर्थंकर की) स्तुति है न? समन्तभद्राचार्यदेव का स्वयंभूस्तोत्र। भगवान ने धर्म कह दिया, परन्तु उसका फल आया या नहीं, वह कौन देखे? वे तो केवलज्ञानी हैं। ऐसा कहते हैं। उसी प्रकार यहाँ धर्मात्मा मुनियों ने सत्य बात की है। किसे बैठी, न बैठी, उससे क्या काम है? आहाहा! समझ में आया?

यहाँ देखो न (कहते हैं), गुरु-शिष्य नहीं। गुरु का आत्मा भिन्न, तेरा आत्मा भिन्न। देव का आत्मा भिन्न, तेरा भिन्न। इस ओर कहीं आता है। भव-भव में पूजा है। *'भवि भवि जिण पुज्जिउ वंदिउ'* २२८ पृष्ठ इसमें है, गाथा १४३ है। दूसरे भाग की १४३, हों! दूसरे भाग की १४३ गाथा। देखो! बीच में है। *'भवि भवि जिण पुज्जिउ वंदिउ'* ऐसा शास्त्र का वचन है। अर्थात् भव-भव में इस जीव ने जिनवर को पूजा और गुरु को वन्दन किया। अनन्त बार गुरु को वन्दन किया और अनन्त बार जिनवर पूजे। १४३ गाथा है। सेठ! दूसरा भाग (अधिकार), हों! पहले भाग की नहीं। दो भाग हैं, दूसरा भाग, १४३ का भावार्थ है न? भावार्थ के बाद, ९-१० लाईन के बाद। भव-भव में जिन पूजियो। आहाहा! इन्होंने डाला है। **'जिणु सामिउ सम्मत्तु'** आहाहा! समकित बिना भावभक्ति के अभाव से जिनस्वामी नहीं पाये। जिनस्वामी भी नहीं पाये, कहते हैं। इसका अर्थ (यह कि) सम्यग्दर्शन बिना जिनस्वामी कहने में नहीं आते। आहाहा! बहुत अच्छा अर्थ किया है। १४३ है।

२७४) कालु अणाइ जिउ भव-सायरु वि अणंतु।
जीविं बिण्णि ण पताईं जिणु सामिउ सम्मतु॥१४३॥

दो नहीं प्राप्त हुए—जिनस्वामी और समकित। वे जिनस्वामी कब पाये कहलाये? —कि जो सम्यग्दर्शन पावे, उसे जिनस्वामी (पाये) कहलाये। आहाहा! परमात्मप्रकाश की गाथा बहुत अच्छी है। दूसरे भाग में। आहाहा!

शुद्धनिश्चय से गुरु और शिष्य भिन्न हैं। शूरवीर और स्वामी, आहाहा! कायर और नीचता—सब आत्मा से भिन्न है। **आत्मा के नहीं हैं, त्यागनेयोग्य हैं.... 'हेयभूतान्'**

संस्कृत में '**हेय**' है। वे गुरु आदि त्यागनेयोग्य हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! दृष्टि का विषय नहीं न! सूक्ष्म बातें हैं, बापू! जब तक पर के ऊपर लक्ष्य रहेगा, तब तक राग, विकल्प उठेंगे। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : झाड़ूँ-फाड़ूँ कब था? लींबड़ी में साधु की एक गद्दी है, नहीं? स्थानकवासी ने और गद्दी रखी। देखी है। आहाहा!

इन भेदों को वीतरागपरमानन्द निज शुद्धात्मा की प्राप्ति से रहित बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि जीव अपने समझता है,... भाषा देखो! यह मेरे गुरु और यह मेरे शिष्य, बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि अपने मानता है। ऐई! सेठ! देखा? ८९ गाथा। अब तो हिन्दी चले गये तो भी यह हिन्दी चलता है। यह तो हिन्दी पुस्तक है न? हिन्दी चलता है।

वीतरागपरमानन्द निज शुद्धात्मा की प्राप्ति... भाषा देखो! **वीतरागपरमानन्द निज शुद्धात्मा की प्राप्ति से रहित बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि जीव अपने समझता है,...** यह मेरे गुरु और यह मेरे शिष्य, ऐसा अन्तर में निश्चय से माने, वह तो बहिरात्मा है। आहाहा! परद्रव्य मेरे। तो फिर यह हसमुख और वह तो कहीं गया। यह मेरा हसमुख। भाई होशियार है न? वह यह लाया है न? यह मशीन वह लेकर आया है, हों! इनका पुत्र। साढ़े तीन लाख अक्षर (परमागम मन्दिर में उत्कीर्ण होने हैं)। इटली से यह ले आया है। उसे कहा कि देखो भाई! हमारे धर्म करना है। वहाँ कहीं कमाना नहीं। छपाना नहीं। ऐसा करके दिया। नहीं तो हिन्दुस्तान में पहला-बहला दिया है। यह हसमुख जो पहला-बहला लाया है। है न? मशीन पड़ी है। आहाहा! चारों ओर है। सूक्ष्म बात है। जिनवाणी माता सुधा धर्मसाधनी धर्मशाला, नहीं आया? सुधा धर्मसाधनी धर्मशाला... आहाहा! उसमें यह आता है। क्षुधा मोहताप की नाशनी... मोक्षदानी। आहाहा! जिनवाणी की बात, बहुमान तो आवे न! सर्वज्ञ की वाणी का बहुमान आता है। विकल्प है न? आवे। आहाहा! परन्तु उससे ऐसा मान ले कि उससे अपना कल्याण हो जायेगा (तो ऐसा नहीं है)। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि ऐसा समझता है, गजब है! गुरु मेरे और शिष्य मेरा, वह मिथ्यादृष्टि मानता है, कहते हैं। आहाहा! यह मेरे शिष्य हैं। किसके शिष्य? बापू! परवस्तु भिन्न है। तेरे पास आयी नहीं। तेरी परिणति जो शुद्ध है, वह भी

तेरी चीज़ में नहीं तो यह चीज़ कहाँ से अन्दर में आयी ? आहाहा !

और इन्हीं भेदों को वीतराग निर्विकल्पसमाधि में रहता हुआ अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टिजीव पर रूप (दूसरे) जानता है। परन्तु पररूप जानता है कब ? पररूप कब जानता है ? आहाहा ! वीतराग निर्विकल्प समाधि में रहता हुआ। आहाहा ! अन्तर में वीतरागी निर्विकल्प शुद्ध में रमता हुआ अन्तरात्मा कायम, वह पर को भिन्न जानता है, ऐसा कहते हैं। शुद्ध वीतरागी आनन्द प्रभु (हूँ), ऐसी दृष्टि करनेवाला अन्तरात्मा कायम, उस चीज़ को भिन्न जानता है। भिन्न हुआ है तो भिन्न जानता है, ऐसा कहते हैं। निर्विकल्प अनुभव में वह चीज़ भिन्न हुई है तो निर्विकल्प अनुभव में भिन्न जानता है। आहाहा ! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

गाथा - ९०

अथ –

९०) अप्पा माणुसु देउ ण वि अप्पा तिरिउ ण होइ।
अप्पा णारउ कहिं वि णवि णाणिउ जाणइ जोइ।।९०।।

आत्मा मनुष्यः देवः नापि आत्मा तिर्यग् न भवति।
आत्मा नारकः क्वापि नैव ज्ञानी जानाति योगी।।९०।।

अप्पा माणुसु देउ ण वि अप्पा तिरिउ ण होइ अप्पा णारउ कहिं वि णवि आत्मा मनुष्यो न भवति देवो नैव भवति आत्मा तिर्यग्योनिर्न भवति आत्मा नारकः क्वापि काले न भवति। तर्हि किंविशिष्टो भवति। णाणिउ जाणइ जोइ ज्ञानी ज्ञानरूपो भवति। तमात्मानं कोऽसो जानाति। योगी कोऽर्थः। त्रिगुप्तिनिर्विकल्पसमाधिस्थ इति। तथाहि। विशुद्धज्ञानदर्शन–स्वभावपरमात्मतत्त्वभावनाप्रतिपक्षभूतैः रागद्वेषादिविभावपरिणामजालैर्यान्युपार्जितानि कर्माणि तदुदयजनितान् मनुष्यादिविभावपर्यायान् भेदाभेदरत्नत्रयभावनाच्युतो बहिरात्मा स्वात्मतत्त्वे योजयति। तद्विपरीतोऽन्तरात्मशब्दवाच्यो ज्ञानी पृथक् जानातीत्यभिप्रायः।।९०।।

आगे आत्मा का स्वरूप कहते हैं –

नहिं मनुष्य है आत्मा, सुर भी नहीं और तिर्यञ्च नहीं।
आत्मा कभी न नारक होता – यह ज्ञानी जानें योगी।।९०।।

अन्वयार्थ :– [आत्मा] जीव पदार्थ [मनुष्यः देवः नापि] न तो मनुष्य है, न तो देव है, [आत्मा] आत्मा [तिर्यग् न भवति] तिर्यंच पशु भी नहीं है, [आत्मा] आत्मा [नारकः] नारकी भी [क्वापि नैव] कभी नहीं, अर्थात् किसी प्रकार भी पररूप नहीं है, परन्तु [ज्ञानी] ज्ञानस्वरूप है, उसको [योगी] मुनिराज तीन गुप्ति के धारक और निर्विकल्पसमाधि में लीन हुए [जानाति] जानते हैं।

भावार्थ :– निर्मल ज्ञान दर्शन स्वभाव जो परमात्मतत्त्व उसकी भावना से उलटे राग–द्वेषादि विभाव–परिणामों से उपार्जन किये जो शुभाशुभ कर्म हैं, उनके उदय से उत्पन्न हुए मनुष्यादि विभाव–पर्यायों को भेदाभेदस्वरूप रत्नत्रय की भावना से रहित हुआ मिथ्यादृष्टि जीव अपने जानता है, और इस अज्ञान से रहित सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव उन मनुष्यादि पर्यायों को अपने से जुदा जानता है।।९०।।

वीर संवत् २५०२, श्रावण कृष्ण ११, शनिवार
दिनांक-२१-०८-१९७६, गाथा-९०, ९१, प्रवचन-६८

परमात्मप्रकाश, ९० गाथा। **आगे आत्मा का स्वरूप कहते हैं :—**

९०) अप्पा माणुसु देउ ण वि अप्पा तिरिउ ण होइ।
अप्पा णारउ कहिँ वि णवि णाणिउ जाणइ जोइ॥९०॥

अन्वयार्थ—जीव.... भगवान आत्मा **न तो मनुष्य है,...** जो नहीं है, उससे धर्म नहीं होता, ऐसा कहते हैं। राग आत्मा नहीं तो राग से धर्म नहीं होता। आत्मा मनुष्य नहीं तो मनुष्यपने से धर्म नहीं होता। समझ में आया? इसी प्रकार आत्मा **न तो देव है,...** देव नहीं। वह तो सब कर्मजन्य उपाधि के प्रकार हैं। मुख्य भाव से था न? भाई! यह आज देखा। मुख्य भावे साति प्रयोजने निमित्ते... ये शब्द पड़े हैं। जो वस्तु स्वभाव नहीं, परन्तु प्रयोजन और निमित्त के वश उपचार किया जाता है। समझ में आया? यह मनुष्यपना अपना है, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। क्योंकि निमित्त है तो व्यवहार से कहने में आता है। परमाथ्र से वह आत्मा नहीं। समझ में आया? और ऐसा कहते हैं न कि मनुष्यपने से केवलज्ञान प्राप्त करता है? मनुष्यपने में चारित्र होता है। तो मनुष्यपने से चारित्र होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? जिस स्वरूप वह नहीं, उस स्वरूप से वह कैसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र पावे? मनुष्यपने में केवलज्ञान होता है। लो! तो मनुष्यपना केवलज्ञान में कारण है या नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुष्य होकर गये नहीं, आत्मा होकर गये हैं। मनुष्यपने को छोड़कर अपना निर्विकल्प आनन्दस्वरूप भगवान, निर्विकल्प पुण्य और पाप के विकल्प से भी रहित, व्यवहाररत्नत्रय से भी रहित... आहाहा! ऐसा निर्विकल्प आनन्दस्वरूप भगवान के अनुभव से मुक्ति में गये हैं। बात कठिन है, भाई! लोग ऐसा कहे, एक पण्डित आये थे, वे कहे, मनुष्यपने में केवलज्ञान होता है। इसलिए मनुष्यपना कारण है। परन्तु मनुष्यपना आत्मा ही नहीं, फिर कारण कहाँ से आया? समझ में आया?

आत्मा देव नहीं। **आत्मा तिर्यंच पशु भी नहीं है,...** तिर्यंच, वह तो नामकर्म के

कारण से मिली हुई उपाधि है। वह वस्तु कहाँ है, वस्तु में कहाँ है? आहाहा! **आत्मा नारकी भी कभी नहीं, अर्थात् किसी प्रकार भी पररूप नहीं है, परन्तु (ज्ञानी) ज्ञानस्वरूप है, उसको मुनिराज तीन गुप्ति के धारक और निर्विकल्पसमाधि में लीन हुए जानते हैं।** आहाहा! आत्मा को कब जानता है और पर को पररूप कब जानता है, ऐसा कहते हैं। यह मनुष्यादि नहीं, वह कब जानता है और मैं आत्मा मुझसे ज्ञात होता हूँ, यह कब ज्ञात होता है? आहाहा! यह तो जब राग से भिन्न पड़कर निर्विकल्प शान्ति में आत्मा ऐसा है, यह जानता है। निर्विकल्प शान्ति में मनुष्यादि पर, ऐसा जानता है। समझ में आया? तब मनुष्यादि पर हो गये, ऐसा। ऐसी बात व्यवहारवाले को तो ऐसे गले चिपकती है न!

व्यवहार तो एक उपचार से कहा। कहा न यह? भगवान परमार्थस्वरूप आत्मा, निर्विकल्प शान्ति आनन्द प्रभु, सहजानन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा, सहजात्मस्वरूप उसका, सहजानन्द की प्राप्ति, सहजात्मस्वभाव के आश्रय से प्राप्ति होती है। समझ में आया? तब रागादि है। उस समय नहीं। यह तो प्रश्न आया न? परमात्मप्रकाश में अपने लिखा है। तब नहीं? १४वीं गाथा का पृष्ठ प्रकाशित किया है। जब निश्चय होता है, तब व्यवहार तो होता नहीं। १४वीं गाथा। इसमें १४वीं गाथा है। दूसरे भाग की १४वीं है। उसमें व्यवहार से साधक कहा है न? तो फिर शिष्य को प्रश्न हुआ कि जब निश्चय है, आत्मा आनन्दस्वरूप को अनुभवता है, तब तो व्यवहार है नहीं। तो व्यवहार को साधक तुम कैसे कहते हो? भगवान आत्मा तो व्यवहार के विकल्प को छोड़कर चाहे तो दया, दान, भक्ति, यात्रा पूजा, आदि का भाव हो, उन सब विकल्प को छोड़कर, अपना निर्विकल्प आनन्द प्रभु शुद्ध चैतन्य परमात्मस्वरूप का जब अनुभव करता है, तब तो व्यवहार है नहीं। तो शिष्य ने प्रश्न किया कि तुम व्यवहार को साधक कैसे कहते हैं? पूर्व नैगमनय से हम कहते हैं। है न? अन्दर में है। समझ में आया? भूतनैगमनय है। संस्कृत है।

यह कथन सुनकर यहाँ शिष्य ने प्रश्न किया कि निश्चयमोक्षमार्ग तो निर्विकल्प है, उस समय (निर्विकल्प निश्चयमोक्षमार्ग के समय तो) सविकल्प मोक्षमार्ग तो होता नहीं। तो फिर व्यवहारमोक्षमार्ग साधक कैसे है? दूसरे भाग की १४वीं गाथा है। समाधान—**भूतनैगमनय से परम्परा से (साधक) है।** यहाँ जो विकल्परहित आनन्द का अनुभव हुआ... आहाहा! गजब भाई! वीतरागमूर्ति प्रभु विकल्प से हटकर वीतरागी

आनन्द के अनुभव में जब आया, तब तो व्यवहार नहीं, तो व्यवहार को साधक कैसे कहा? उसके पहले राग-विकल्प था, उसका अभाव होकर (अनुभव) हुआ तो व्यवहावर से हुआ, ऐसा भूतनैगमनय से कहते हैं। भूतनैगमनय से कहते हैं। समझ में आया? १४वीं गाथा, संस्कृत पाठ है, हों! तब सुधारा था। कल पूछते थे न? वह व्यवहार का आलापपद्धति का प्रश्न था परसों का, कल भूल गया। आज लाये हैं। मुख्य अभावे अर्थात् मुख्य का अभाव। जिसमें निश्चय का अभाव और जहाँ व्यवहार कहने में आता है, वह प्रयोजन और निमित्त के कारण से व्यवहार कहने में आता है। प्रयोजन यह कि उस समय सिद्ध करना है कि राग क्या है और वह निमित्त है। निमित्त है। निमित्त निश्चय को करता नहीं। जैसे मिट्टी का घड़ा। मिट्टी की पर्याय घड़ा होता है, (उसमें) कुम्हार कुछ करता नहीं।

मुमुक्षु : वकील करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : घड़ा करे मिट्टी। वकील भी करता नहीं और बेरिस्टर भी करता नहीं। ऐसा कहते हैं, कुम्हार करता नहीं। तो क्या वकील करे? उसमें आया है, मिट्टी अपने से, अपने के कारण से, अपने में, अपने आधार से घड़ा बनाती है। षट्कारक है। आहाहा! समझ में आया? मिट्टी अपने से अपने में स्वयं के कारण से अपने को देने के लिये अपने आधार से घड़ा बनाती है। आहाहा! इसी प्रकार आत्मा अपने से, अपने आधार से, अपने को देने के लिये मोक्षमार्ग करता है। समझ में आया? आहा! यह बात! लोगों को वह व्यवहार होता है न? व्यवहार। बहुत मूर्तिपूजावालों को यह कि मूर्तिपूजा से मानो समकित हो जायेगा। वह तो शुभभाव है। समझ में आया? व्यवहार आता है, परन्तु वह धर्म है और धर्म का कारण है, ऐसा नहीं है। व्यवहार बीच में आता है। जब तक वीतराग न हो, तब तक क्षायिक समकिती को भी व्यवहार तो आता है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा... समझ में आया? आगे बढ़कर व्रत, नियम का विकल्प भी आता है। परन्तु वह कोई साधन नहीं। समझ में आया? साधन नहीं, उसे साधन कहना, वह उपचार से कथन है। आहाहा! ऐसी कठिन बातें! जगत ऐसी भ्रमणा में घुस गया है न!

अन्दर में आत्मा निर्विकल्प आनन्द का नाथ प्रभु है। जिसमें कोई विकल्प

मददगार है ही नहीं। राग आत्मा की वीतरागी परिणति में मददगार होगा? ओहोहो! लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आती है? इसी प्रकार व्यवहार करते-करते निश्चय होता है? सूक्ष्म बात, भगवान! अभी तो बहुत विवाद (करते हैं)।

देखो! यह यहाँ कहते हैं, **'ज्ञानी' ज्ञानस्वरूप है, उसको मुनिराज...** आहाहा! मुनिराज **'योगी'** लिया है न? प्रभाकर भट्ट थे न? **तीन गुप्ति के धारक...** मन, वचन और काया के विकल्प से भी हटकर। आहाहा! **निर्विकल्प शान्ति में लीन हुए...** रागरहित वीतरागी पर्याय निर्विकल्प शान्ति, जिसमें राग की अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग! समझ में आया? निर्विकल्प समाधि-शान्ति। चौथे गुणस्थान में अकषाय की इतनी शान्ति चौथे में अनन्तानुबन्धी गयी, उतनी शान्ति। पाँचवें में अप्रत्याख्यानावरणी का अभाव हुआ, उतनी शान्ति। छठवें में प्रत्याख्यानावरणी के अभावरूप शान्ति। ऐसी तीन कषाय, दो कषाय या एक कषाय के अभावरूप निर्विकल्प समाधि। आहाहा! उस काल में आत्मा जानने में आता है, ऐसा कहते हैं। और उस काल में मैं मनुष्यादि नहीं, ऐसा परिणमन हो गया है। समझ में आया? ऐसी बात कठिन पड़े। लोगों को चढ़ा दिया है न उसमें, (कि) व्रत पालन करो और प्रतिमा ले लो, भक्ति करो, पूजा करो और मन्दिर बनाओ। उसमें धर्म है। ... वह शुभराग है, विकल्प है, धर्मी को आता है, परन्तु है बन्ध का कारण। समझ में आया? धर्मी को हेयबुद्धि से आता है। न आवे तो वीतराग हो जाये। वीतराग को व्यवहार नहीं, मिथ्यादृष्टि को व्यवहार नहीं। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को निश्चय है, वहाँ व्यवहार आता है, राग आता है। साधक है, वहाँ बाधकपना आता है। मिथ्यादृष्टि साधक ही नहीं तो व्यवहार भी नहीं। केवली साधक नहीं, पूर्ण हो गये, उन्हें व्यवहार नहीं। समझ में आया? जहाँ अपना निर्विकल्प वीतरागी सम्यग्दर्शन (हुआ)। वह सम्यग्दर्शन, वह निर्विकल्प सम्यग्दर्शन है। ऐसे का ऐसा देव-गुरु-शास्त्र को मानना और नौ तत्त्व की श्रद्धा, वह समकित नहीं। आहाहा! वस्तु के स्वरूप की अन्दर में (खबर नहीं होती)।

वैराग्य की बातें तो अन्य में भी आती हैं। परन्तु वह वैराग्य कब कहलाये? कि पर से हटकर स्व के अस्तित्व में जाये तो वह वैराग्य कहने में आता है। समझ में आया? अपना अस्तित्व पूर्णानन्द परमात्मस्वरूप निर्विकल्प शान्ति, आनन्दकन्द प्रभु के

अस्तित्व में पर से हटकर जाये तो वैराग्य कहा जाये। बाकी अकेला राग को मन्द करके अन्दर में न जाये तो वह वैराग्य ही नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वैराग्य तो अन्य में भी होता है। रात्रि में नहीं कहा था? भर्तृहरि का। हमने तो भर्तृहरि का नाटक देखा है न! भर्तृहरि, नरसिंह मेहता, एक अनुसूया का बड़ा नाटक (देखा है)। अनुसूया एक सती हो गयी है। बहुत देखे हैं। हमारे पालेज में दुकान (थी)। वहाँ (नाटक) आवे तो रात्रि में देखने जायें। परन्तु वैरागी, हों! उस समय। वैरागी। मीराबाई (का नाटक)। नाटक देखो तो धुन चढ़ा दे। आहाहा!

रात्रि में भर्तृहरि की बात नहीं की थी? भर्तृहरि को जब ऐसा लगा कि अरे! एक वैश्या थी न उसकी? उसे कोई अमरफल—ऊँचा फल दिया हुआ। उस वैश्या ने राजा भर्तृहरि को दिया। भर्तृहरि को प्रिय में प्रिय पिंगला। उसे खबर नहीं कि वह व्यभिचारिणी है। उसे दिया। उसने दिया अश्वपाल को। घोड़े का रक्षक। उस अश्वपाल ने वापस वैश्या को दिया। वैश्या ने वापस यहाँ दिया। भर्तृहरि को दिया। आहा! अरे! यह संसार! यह क्या? ९२ लाख मालवा का अधिपति। उसकी स्त्री अश्वपाल के साथ चले। 'देखा नहीं कुछ सार जगत में, देखा नहीं कुछ सार। वैराग्य ले लिया। आहा! मेरी प्यारी पिंगला अश्वपाल को प्यार करती है। मैं इतना बड़ा राजा! धिक्कार है संसार को। परन्तु वह वैराग्य बाहर का, अन्दर तत्त्व की दृष्टि नहीं। समझ में आया? वैराग्य तो ऐसा कि धुन चढ़ा दे। कितनी बार तो कितने ही भर्तृहरि का नाटक देखकर बाबा हो गये। ऐसी धुनी चढ़ावे।

उसके बाबा के पास दीक्षा लेता है। उस बाबा के पास। जमात है। उनका गुरु भी ऐसा होता है न? बड़ा पुण्यशाली। राजा का गुरु कैसा हो। बाबा, वह भी बड़ा पुण्यशाली। जमात जाती है, राजा को कहते हैं, जाओ! पिंगला के पास, आहार लेकर आओ। आहाहा! अरे! मैंने जिसे छोड़ा है (उसके पास आहार लेने जाऊँ)? आहाहा! फिर भर्तृहरि कहते हैं, 'भिक्षा रे दे न मैया पिंगला, माता मुझे भिक्षा दे, मेरी जमात चली जाती है।' मेरे गुरु ने मुझे आज्ञा की है। 'भिक्षा रे दे न मैया पिंगला।' जिसकी स्त्री, उसे माता कहता है। 'पिंगला' कहती है, राजन्! माता कहना रहने दो। आहाहा! उस समय नाटक में वैराग्य हो। अभी तो कुकर्म (करते हैं)। अभी क्या कहलाती है तुम्हारी?

फिल्म। एक स्त्री ऐसे देखे और... वह कहीं व्यवहार के आचरण हों? परस्त्री के साथ हाथ और ऐसे देखे और हाथ डाले... अरेरे! प्रभु! यह तो अनीति के आचरण सज्जन को नहीं होते। ऐसे दिखाव करे। उस समय तो वैराग्य प्रस्फुटित हो जाये अन्दर से। और मेरे जैसे को ऐसा सुनकर मैं ऐसा हो जाऊँ, ऐसा हो जाता है। ऐसी बातें, हों! उस समय। उस समय ऐसा होता था। आहाहा!

'भिक्षा रे दे न मैया पिंगला' माता! रानी के साथ अनेक वर्षों तक विषय लिया, रमणता की, उसे माता कहता है। अरे! राजन! मुझे माता कहना रहने दो। मैं तो यह शोक में हूँ। मैंने अनाज बनाया नहीं। आप आहार लेने आये, भोजन मेरे पास नहीं। 'क्षण में बनाऊँ खीर एक...' खीर नहीं कहते? दूसरा तो कहाँ से बने परन्तु राजा, इसलिए दूध और चावल तो तैयार हो। 'क्षीर रे बनाऊँ क्षण एक में, जीमते जाओ योगीराजजी।' आँख में से आँसू बहते जाते हैं। अरर! यह राजा योगी हुए। मैं व्यभिचारिणी, मेरे कारण यह हुआ। राजन्! योगीराज! मैं एक क्षण में खीर बनाऊँ। उसमें देरी नहीं लगती न। दूध गर्म करे और चावल (डाल दे)। दूसरा तो इस समय कहाँ से बने? मैं तो शोक में हूँ, मैंने कुछ पकाया नहीं। (भर्तृहरि कहते हैं) मेरी जमात चली जा रही है। जो हो वह दे, माता! नहीं तो मैं चला जाता हूँ। आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें निमित्त क्या हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त वह पिंगला का वैराग्य। सुना नहीं? अरे रे! मैं ९२ लाख मालवा का राजा भर्तृहरि। विक्रम का भाई, जिसके नाम से यह वर्ष चला न? विक्रम संवत्। उसकी रानी यह! अरर! गजब किया। रानी भी बेचारी बाद में तो 'धिक रे धिक तारी...' कुकर्म किये। ऐसे भर्तृहरि जैसे को योग लेना पड़ा। आहाहा! परन्तु फिर क्या हो? आहाहा! समझ में आया?

मुझे तो दूसरा कहना है, ऐसा वैराग्य दिखता है। परन्तु अस्तित्व वस्तु कैसी है, उसकी खबर नहीं है। समझ में आया? पर से हटकर जाना कहाँ? कहाँ जाना है? पूरी दुनिया से वैराग्य हो जाये, लो! परन्तु वह वैराग्य कब कहलाये? पर से हटकर अन्दर में एकाकार आनन्द में जाये तो वैराग्य कहा जाता है। अपने समयसार में निर्जरा अधिकार में नहीं आया? लिखा है, ज्ञानवैराग्यशक्ति। समयसार निर्जरा अधिकार में

आया है। ज्ञानी को ज्ञान और वैराग्य दो शक्ति साथ में होती हैं। आहाहा! स्पष्टीकरण वह स्पष्टीकरण समयसार के! निज अस्तित्व में रहना, वह ज्ञान है और राग से हटना, वह वैराग्य है। समझ में आया? राग से हटकर स्वरूप में बसना, ऐसी ज्ञान वैराग्य शक्ति समकिती को—धर्मी को सहज होती है। समझ में आया? पोपटभाई! आहाहा! ९२ लाख (मालवा का) साहेबा। भर्तृहरि को जब....

मुमुक्षु : .... और राग से हटना।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ से हटना। ऐसी ज्ञान, वैराग्य शक्ति दो। अस्तित्व में जाना और राग से नास्ति करना, वह वैराग्य। अकेला वैराग्य क्या करे? वह तो यह भाई भी कहते हैं न? क्या कहलाये? तुम्हारा रजनीश। इन सेठ का... वह तारणस्वामी में जन्मा था न! ऐई! तुम्हारा है वह रजनीश। रजनीश। वह तारणस्वामी (सम्प्रदाय में) जन्मा था।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। वह कहता है, विकल्प तोड़ डालो, विकल्प तोड़ डालो। निर्विकल्प हो जाओ। परन्तु निर्विकल्प कहाँ से हो? अस्ति वस्तु कितनी है, उस ओर झुके बिना विकल्प की नास्ति किस प्रकार होगी? पण्डितजी! आहाहा! वह तो अकेला नास्ति का धर्म। आहाहा! वह सबको (ऐसा ही कहे), विकल्प छोड़ दो, विकल्प छोड़कर... परन्तु विकल्प किस प्रकार छूटे? निर्विकल्प आनन्द के नाथ की जहाँ दृष्टि हो, वहाँ विकल्प एकता छूट जाती है। इसके बिना विकल्प छोड़ो, विकल्प छोड़ो। यह नास्ति हो गयी। आहाहा! बाबूभाई! आहाहा! यह तो सेठ के परिचित। ऐसा हो तो सेठ को भाषण में किसी समय बुलावे। दान दो। ऐसा सुना था। तारणस्वामी का दिन हो तो बुलावे। वह नास्तिक ठिकाने बिना का। वहाँ तुमको पहले बुलाता था। अब नहीं।

मुमुक्षु : पहले बुलाता था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह अस्ति तत्त्व है। महाप्रभु पूर्णानन्द का नाथ वीतराग चैतन्यदल। आहाहा! उस ओर की प्रतीति हुए बिना विकल्प की एकता कभी नहीं टूटती। समझ में आया? सीढ़ियाँ होती हैं न? सीढ़ियाँ कहते हैं न? क्या कहते हैं?

सीढ़ी। सीढ़ी में यहाँ पैर उठाना। परन्तु ऊपर रखे बिना यहाँ से उठे किस प्रकार? ऐसे के ऐसे रखे बिना उठाये तो नीचे गिरेगा। हेठे समझे? नीचे गिर जायेगा। पैर उठाओ, पैर उठाओ। परन्तु पैर उठाकर रखना कहाँ? रखने की खबर नहीं और पैर उठाओ, नीचे गिर जायेगा। समझ में आया?

निर्जरा अधिकार में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने पुकार किया है, धर्मी को दो शक्ति साथ में है—ज्ञान और वैराग्य। आहाहा! समझ में आया? पर से वैराग्य है, अपने स्वरूप अस्तित्व में जम गये हैं। आहाहा! सुजानमलजी! ऐसी बात है, भगवान! क्या करे? अरेरे! मुश्किल से सत्य बाहर आया और लोगों को... प्रभु! मार्ग तो ऐसा है, भाई! कोई चाहे जैसे दूसरे प्रकार से खतौनी कर डाले परन्तु हाथ नहीं आता। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, चार गति भी तेरी नहीं। गति के आश्रय से तुझे धर्म होगा, मनुष्य के आश्रय से तुझे समकित होगा और केवलज्ञान होगा, रहने दे, मर जायेगा। समझ में आया? आहाहा! इस अधिकार में जितना आत्मा से भिन्न-भिन्न वर्णन किया है, उसका कारण कि उससे धर्म नहीं होता, उससे आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए आत्मा से राग भिन्न, आत्मा से मनुष्यपना भिन्न, आत्मा से अमुक भिन्न, वृद्धावस्था भिन्न, युवावस्था भिन्न। वह सब भिन्न-भिन्न का अर्थ यह... समझ में आया? कि उससे धर्म नहीं होता और उसके आश्रय से धर्म नहीं होता। आहाहा!

यह तो परमात्मप्रकाश है। भगवान परमात्मस्वरूप ही विराजता है। ऐ... सेठ! तारणस्वामी नहीं कहते? अप्पा सो परमअप्पा। परन्तु तुमको कहाँ खबर थी? ऐ... सेठ! भाई तो कहते हैं, मुझे खबर नहीं थी। ऐसा कहते हैं। पहले खबर नहीं थी न, यह विचार नहीं था। आहाहा! अप्पा सो परमअप्पा। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं। भगवान आत्मा, वह परमात्मा है। जिन और आत्मा में किंचित् अन्तर नहीं। जिनवर जो पर्याय में प्रगट है, वह भगवान वस्तु में—द्रव्य में प्रगट है। समझ में आया? 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, इस वचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म।' आहाहा! वीतराग त्रिलोकनाथ की वाणी, भगवान! एक बार सुन तो सही, नाथ! आहाहा!

अरे! भगवान तुझे भगवानरूप से बुलाते हैं। तीन लोक के नाथ केवली सौ इन्द्रों से पूजनीक, इसे भगवान आत्मा ऐसा कहे। आहाहा! अमरचन्दभाई! आहाहा! भाई! तू

भगवान है। भगवान—भग अर्थात् अनन्त ज्ञान, आनन्द, वान। भगवान। भग अर्थात् अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता। ऐसी भग अर्थात् लक्ष्मी, लक्ष्मीवान तू है। तू निर्धन नहीं, तू दरिद्र नहीं, तू पामर नहीं। आहाहा! समझ में आया? परन्तु विश्वास लाना भारी कठिन जगत को। बाहर में दृष्टि फँस गयी है न! उसमें से यह प्रभु अन्दर महाप्रभु है, साक्षात् परमात्मा है। आहाहा! सेठ! मोक्षस्वरूप ही है। भगवान मोक्षस्वरूप ही है। अबन्ध कहा न? आहाहा! १५वीं गाथा में कहा, जो कोई प्रभु आत्मा को अबद्ध जाने... आहाहा! भगवान परमात्मा तू है न, भाई! आहाहा! परमात्मा पर्याय में जो हुए, वह परमात्मा की पर्याय आयी कहाँ से? राग में से आयी? मनुष्य में से आयी? पूर्व की पर्याय में से आयी? आहाहा! त्रिलोकनाथ परमात्मा चैतन्यपिण्ड आनन्दकन्द प्रभु परमात्मस्वरूप में से परमात्मा की पर्याय आयी है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ यह कहते हैं।

भावार्थ :- निर्मल ज्ञान दर्शन स्वभाव जो परमात्मतत्त्व.... देखो! कैसा है यह भगवान आत्मा? देहदेवल में विराजता भगवान, चाहे तो स्त्री का देह हो, पुरुष का हो, चींटी का हो या कुंजर का हो, भगवान तो पूर्णानन्द का नाथ है। वह तो सब पर्याय के, संयोग के भेद से भेद है। आहाहा! समझ में आया? निश्चय से तो एकबार ऐसा कहा, कि जितने आत्मा हैं, वे सब आराधनेयोग्य हैं। भाई! क्योंकि आत्मा वह तो परमात्मस्वरूप है, तो सब परमात्मा वह आत्मा ही आराधनेयोग्य है। आहाहा! फिर उसमें से पाँच परमेष्ठी निकाले हैं। पाँच परमेष्ठी आराधनेयोग्य हैं। फिर उसमें से अरिहन्त, सिद्ध दो निकाले। उसमें से सिद्ध निकाले। उसमें से अन्त में अकेला आत्मा निकाला। भगवान पूर्णानन्द का नाथ आराधनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यह आगे आयेगा, दूसरा देव नहीं, दूसरा तीर्थ नहीं। तीर्थ भी तू और देव भी तू। आहाहा! गुरु भी तू और देव भी तू और तीर्थ भी तू। आहाहा! भगवान अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु है न! जिसमें विकल्प और राग का त्रिकाल अभाव है। आहाहा! जिसमें अल्पज्ञपने का प्रभु! अभाव है। आहाहा! समझ में आया? अल्पज्ञ पर्याय का अभाव। अरे! केवलज्ञान की पर्याय का भी जिसमें अभाव है। त्रिकाली चीज़ में केवलज्ञान की पर्याय तो एक समय की है। केवलज्ञान की पर्याय एक समय की, प्रभु! आहाहा! और

यह त्रिकाली वस्तु सत् महा अविनाशी ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... परमपारिणामिक स्वभावभाव परमात्मा, उसके समक्ष केवलज्ञान की पर्याय भी अपरमभाव है। समझ में आया? यहाँ यह कहते हैं।

निर्मल ज्ञान दर्शन स्वभाव जो परमात्मतत्त्व.... आहाहा! यह परमात्मतत्त्व ही त्रिकाल ऐसा है। जल तो निर्मल ही है। कादव के साथ मलिन दिखता है, वह उसका स्वरूप है? इसी प्रकार कर्म के निमित्त के संग से रागादि (दिखते हैं) वह कहीं आत्मा का स्वरूप है? भगवान तो निर्मलानन्द प्रभु है। समझ में आया? **निर्मल ज्ञान-दर्शन स्वभाव....** दो ही स्वभाव लिये। उपयोग है न! त्रिकाली उपयोग ज्ञान और दर्शन स्वभाव आत्मा है। **उसकी भावना से उल्टे...** ऐसा जो परमात्मा, उसकी भावना अर्थात् अन्तर की एकाग्रता, उससे उल्टे राग-द्वेषादि। आहाहा! चाहे तो शुभराग व्यवहाररत्नत्रय का हो तो भी परमात्मतत्त्व की भावना से उल्टे हैं। आहाहा! पचाना कठिन, भाई! सम्यग्दर्शन पचा सके। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अग्नि जैसे अनाज को पकाती है, उसे पाचन करती है। समझ में आया? आहाहा! इसी प्रकार सम्यग्दर्शन में पूरा आत्मा पच जाता है। समझ में आया? उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं, भाई! जो पूर्णानन्द प्रभु अखण्ड निर्मल ज्ञान, दर्शनस्वभाव का पिण्ड, स्वभाव का सागर, जिसकी परिमितिता—हद नहीं, अपरिमित जिसका स्वभाव, ऐसे परमात्मा की जो भावना अर्थात् मोक्षमार्ग, उससे उल्टे रागादि हैं। समझ में आया? आहाहा!

उल्टे राग-द्वेषादि विभाव-परिणामों से... कहना है क्या? कि ऐसे जो उल्टे राग-द्वेषादि विभावपरिणाम, उनसे **उपार्जन किये जो शुभाशुभ कर्म हैं,...** आहाहा! उसकी यह सब उपाधि है। यह मनुष्यभव और देवभव। समझ में आया? उसमें कुछ बाहर की लक्ष्मी कुछ दो, पाँच करोड़ हो और ऐसा हो... आहाहा! **उपार्जन किये जो शुभाशुभ कर्म हैं, उनके उदय से उत्पन्न हुई मनुष्यादि विभाव-पर्याय...** है, लो! आहाहा! यह स्कन्ध है न? स्कन्ध की विभाविक पर्याय है और अन्दर मनुष्यगति है, वह भी विभाविक पर्याय है। गति... गति है न? वह कहीं स्वाभाविक सिद्धगति नहीं। विभाविक गति है। देव भी विभाविक गति है। आहाहा! जीव की पर्याय, हों! यह (शरीर) तो जड़ है, यह कहाँ मनुष्यपना है? यह कहीं मनुष्यगति नहीं, यह तो जड़ की पर्याय है।

मनुष्यगति तो अन्दर जो मनुष्यपने की योग्यतारूप कर्म के उदय से जो गति मिली, वह गति अपने में है, वह मनुष्यगति है। आहाहा! समझ में आया?

मनुष्यादि विभाव-पर्यायों को भेदाभेदस्वरूप रत्नत्रय की भावना से रहित हुआ... आहाहा! भगवान आत्मा अभेदरत्नत्रय और भेदरत्नत्रय, निश्चय और व्यवहार दोनों साथ में लिये न? वस्तु जो शुद्ध चैतन्यघन परमात्मा, उसके सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वह निश्चयरत्नत्रय और साथ में विकल्प उत्पन्न होता है, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान आदि, वह व्यवहाररत्नत्रय, उसे उपचार से रत्नत्रय कहा। है तो राग, परन्तु अभेदरत्नत्रय के साथ सहचर होने से निमित्त को देखकर उसे व्यवहाररत्नत्रय का आरोप दिया। आहाहा! समझ में आया? लोगों को ऐसा लगे कि यह सब निश्चय है। परन्तु बापू! निश्चय, वह परम सत्य है, भाई! व्यवहार तो आरोपित कथन है।

तीन लोक के नाथ समवसरण में विराजते हों, कल नहीं आया था? आया था न? भव-भव में पूजियो। साक्षात् तीन लोक के नाथ महाविदेह में समवसरण में विराजते हैं। महाविदेह में तो तीर्थंकर का विरह नहीं होता। कभी नहीं हो, ऐसा नहीं होता। तीर्थंकर होते ही हैं। वहाँ अनन्त पुद्गलपरावर्तन (में) मनुष्यरूप से जन्म लिया है। महाविदेह में मनुष्य हुआ। यह आत्मा ने अनन्त पुद्गलपरावर्तन किये, अनन्त भव किये हैं। आहाहा! वहाँ भगवान की उपस्थिति थी, सुनने गया था। आहाहा! उससे क्या? और भगवान की पूजा की साक्षात्। सिद्ध तो परोक्ष है और भगवान (अरिहन्त) तो सामने प्रत्यक्ष है। ऐसे अन्दर विराजते हैं। पाँच सौ धनुष्य का देह है। जय प्रभु... जय प्रभु! आहाहा! उससे क्या? वह तो शुभभाव है। समझ में आया? वह कोई धर्म नहीं और धर्म का वह कारण नहीं। आहाहा! धर्म वीतरागी पर्याय का कारण, कारणपरमात्मा है। वे परमात्मा नहीं, परन्तु यह परमात्मा। समझ में आया? अमरचन्दभाई! ऐसी बात है, भाई! आहाहा!

वैराग्य की बातें तो अन्य में भी होती हैं परन्तु यह अस्तित्व की वस्तु कितनी कैसी है, वह चीज़ कहीं नहीं, सर्वज्ञ के अतिरिक्त। सर्वज्ञ ने देखा है। ओहोहो! जिसकी सर्वज्ञ की पर्याय एक समय, वह भी अपरमभाव। इसलिए ध्रुव स्वभाव जो परमभाव... आहाहा! उत्कृष्ट भाव स्वभावभाव, उत्कृष्ट स्वभावभाव, उस परमात्मा की दृष्टि, ज्ञान

और रमणता, वह निश्चय। स्व के आश्रय से है इसलिए। और पर के आश्रय से रागादि हुए, वह व्यवहार। यह साथ में लिया है। है, निमित्तरूप से है। **भेदाभेदस्वरूप रत्नत्रय की भावना से रहित हुआ...** देखो! दोनों की भावना कही वापस। व्यवहाररत्नत्रय, निश्चयरत्नत्रय। सामने निमित्त है न। आहाहा! होता है न? पाँचवें में, छठवें में निश्चय है, वहाँ व्यवहाररत्नत्रय आता है। निश्चय है वहाँ, हों! जहाँ निश्चय नहीं, वहाँ व्यवहार नहीं। आहाहा!

भेदाभेदस्वरूप रत्नत्रय की भावना से रहित हुआ मिथ्यादृष्टि जीव... अपने स्वभाव की आराधना के बीच निमित्त के ज्ञान बिना... आहाहा! **मिथ्यादृष्टि जीव अपने जानता है,...** मैं मनुष्य हूँ, मैं देव हूँ, ऐसा जानता है। **और इस अज्ञान से रहित सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव उन मनुष्यादि पर्यायों को अपने से जुदा जानता है।** लो! आहाहा! भिन्न जानता है, ऐसा अकेला ज्ञान में नहीं, परन्तु भिन्न अनुभव करता है, तब भिन्न जानता है। आहाहा! अन्दर में आवे तो। वीतरागमार्ग सूक्ष्म और महा निहाल करानेवाला है। समझ में आया? यह ९० हुई। ९१ (गाथा)।

गाथा - ९१

अथ –

९१) अप्पा पंडिउ मुक्खु णवि णवि ईसरु णवि णीसु।
तरुणउ बूढउ बालु णवि अण्णु वि कम्म-विसेसु।।९१।।

आत्मा पण्डितः मूर्खः नैव नैव ईश्वरः नैव निःस्वः।
तरुणः वृद्धः बालः नैव अन्यः अपि कर्मविशेषः।।९१।।

अप्पा पंडिउ मुक्खु णवि णवि ईसरु णवि णीसु तरुणउ बूढउ बालु णवि आत्मा पण्डितो न भवति मूर्खो नैव ईश्वरः समर्थो नैव निःस्वो दरिद्रः तरुणो वृद्धो बालोऽपि नैव। पण्डितादिस्वरूपं यद्यात्मस्वभावो न भवति तर्हि किं भवति। अण्णु वि कम्मविसेसु अन्य एव कर्मजनितोऽयं विभावपर्यायविशेष इति। तद्यथा। पण्डितादिसंबन्धान् यद्यपि व्यवहारनयेन जीवस्वभावान् तथापि शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धात्मद्रव्याद्भिन्नान् सर्वप्रकारेण हेयभूतान् वीतरागस्वसंवेदनज्ञानभावनारहितोऽपि बहिरात्मा स्वस्मिन्नियोजयति तानेव पण्डितादिविभाव-पर्यायांस्तद्विपरीतो योऽसौ चान्तरात्मा परस्मिन् कर्माणि नियोजयतीति तात्पर्यार्थः।।९१।।

आगे फिर आत्मा का स्वरूप कहते हैं –

आत्मा मूर्ख नहीं पण्डित नहिं, नहिं समर्थ या दीन नहीं।
बालक वृद्ध तरुण ये सब हैं भिन्न, कर्म के भेद सभी।।९१।।

अन्वयार्थ :– [आत्मा] चिद्रूप आत्मा [पंडितः] विद्यावान् व [मूर्खः] मूर्ख [नैव] नहीं है, [ईश्वरः] धनवान् सब बातों में समर्थ भी [नैव] नहीं है [निःस्वः] दरिद्री भी [नैव] नहीं है, [तरुणः वृद्धः बालः नैव] जवान, बूढ़ा और बालक भी नहीं है, [अन्यः अपि कर्म विशेषः] ये सब पर्यायें आत्मा से जुदे कर्म के विशेष हैं, अर्थात् कर्म में उत्पन्न हुए विभाव-पर्याय है।

भावार्थ :– यद्यपि शरीर के सम्बन्ध से पंडित वगैरह भेद व्यवहारनय से जीव के कहे जाते हैं, तो भी शुद्धनिश्चयनयकर शुद्धात्मद्रव्य से भिन्न हैं, और सर्वथा त्यागने योग्य हैं। इन भेदों को वीतरागस्वसंवेदनज्ञान की भावना से रहित मिथ्यादृष्टि जीव अपने जानता है, और इन्हीं को पंडितादि विभावपर्यायों को अज्ञान से रहित सम्यग्दृष्टि जीव अपने से जुदे कर्मजनित जानता है ।।९१।।

गाथा-९१ पर प्रवचन

९१। **आगे फिर आत्मा का स्वरूप कहते हैं:-**

९१) अप्पा पंडिउ मुक्खु णवि णवि ईसरु णवि णीसु।
तरुणउ बूढउ बालु णवि अण्णु वि कम्म-विसेसु॥९१॥

अन्वयार्थ—चिद्रूप... भगवान। आत्मा की व्याख्या की। भगवान चिद्रूप है—जिसका ज्ञान ही रूप है। आहाहा! प्रज्ञाब्रह्म ज्ञानब्रह्म, ज्ञान और आनन्द का पूर्ण स्वरूप ब्रह्म आत्मा है। आहाहा! अरे! पामरता स्वीकार की, उसे प्रभुता कैसे बैठे? समझ में आया? आहाहा! एक पाँच, पचास लाख पैसे मिले, दो-चार लड़के हों, कमाई ठीक हो, शरीर सुन्दर जरा आकर्षक हो, वहाँ ऐसा मानो... आहाहा! अरे! प्रभु! वह तो श्मशान की राख है यह तो। समझ में आया? आहाहा! इसी भव में शरीर की राख होगी। या उस भव में? अग्नि की चिंगारी उड़ेंगी। अग्नि की क्रिया बाद में ही करते हैं न! पहले किसकी करे परन्तु वह तो राख का पिण्ड है, प्रभु! वह तो (शरीर) राख होगा। यह तो समयसार ९६ गाथा में कहेंगे। ९५ चली न? ९६ में कहेंगे। मृतक कलेवर में अमृतसागर भगवान मूर्च्छित हो गया है। अभी, हों! अभी मृतक कलेवर कहा है। ९६ आयेगी, ९६ गाथा में आयेगा। ओहोहो! मृतक कलेवर यह अभी, हों! देह छूटने के बाद का प्रश्न कहाँ? मृतक कलेवर में अमृतसागर भगवान... अमृतचन्द्राचार्यदेव ने टीका की है न! अमृत रखा है। अमृतसागर भगवान मृतक कलेवर में। तीनों में म... मा। मृतक कलेवर में अमृतसागर। उसमें म आया न? मूर्छित है। आहाहा! उसमें शरीर की जवानी ठीक देखे और कुछ ऐसा देखे तो आहाहा! क्षण में नाश होने में देरी न लगे।

कहते हैं, आत्मा चिद्रूप आत्मा... भगवान तो चिद्रूप है। वह विद्वान नहीं, वह पण्डित नहीं। बाहर की विद्या क्षयोपशम, वह आत्मा नहीं। पण्डियो नहीं, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन आत्मा का भान हो, वह पण्डित है। भले थोड़ा समझे, दूसरे को समझाना न भी आता हो, उससे क्या? आहाहा! भगवान परमानन्द के नाथ का जिसे अनुभव है, वह पण्डित है। यहाँ कहते हैं कि अकेला बाहर का पण्डित, वह आत्मा नहीं। आहाहा!

आत्मा **मूर्ख नहीं है,....** आत्मा मूर्ख कैसे हो? भगवान! आहाहा! पर्याय में

मूर्खता मानता है। वस्तु तो परमात्मस्वरूप से विराजमान है। आहाहा! निगोद के जीव को अक्षर के अनन्तवें भाग का विकास खुल्ला है। पर्याय में अक्षर के अनन्तवें भाग ज्ञान खुल्ला है, परन्तु वस्तु तो अन्दर परमात्मस्वरूप ही है। आहाहा! लीलफूग—काई। कल ऐसा हो गया था। पूड़ी होती है न पूड़ी। उसमें काई हो गयी। थोड़े दिन से पड़ी होगी। आहाहा! काई... काई... काई। आहाहा! लील समझे? काई। उसमें एक शरीर में अनन्त जीव। कहाँ से आया, कहाँ उपजे। आहाहा!

'कहाँ जन्मे, कहाँ बिछड़े, कहाँ लड़ेगो लाड, न जानेके रुख तळे जाई पड़ेंगे हाल।' हमारे हीराजी महाराज के समय कहा था, भाई! यह श्लोक कहा था। हीराजी महाराज हमारे सम्प्रदाय के गुरु थे। उनका जन्म मारवाड़ पाली। पाली है न? उनकी मील में उतरे थे। मारवाड़ पाली में एक बार उतरे थे। 'कहाँ जन्मे, कहाँ बिछड़े' कहाँ बड़े हुए? यहाँ लाठी में इतने में। 'कहां लड़ेगा लाड, न जाने कंई रुखतले।' खेराली और कांप के बीच। यह खेरळी। हार्टफेल। दो मिनिट में। चलते-चलते। पाँच कोस चलना था। एक कोस चलकर रास्ते में गिर गये। रास्ते में देह छूट गयी। शरीर कहाँ उपजे, कहाँ लड़े-बढ़े, कहाँ जायेगा? आहाहा! यह चीज़ तेरी कहाँ है? समझ में आया? कहाँ वढवाण और कहाँ मुम्बई और कहाँ टाईल्स का व्यापार? इन सेठिया को बीड़ी का व्यापार और सेठ साईकिल करके गाँव में जाते। धक्का, ऐसा सुना था। धन्धे की शुरुआत की तब गाँव में जाये। आहाहा!

हम भी गाँव में उगाही के लिये जाते थे, हों! छोटी उम्र २२ वर्ष की। १७ वर्ष से २२, पाँच वर्ष दुकान का धन्धा चलाया। उगाही करते। उघराणी को क्या कहते हैं? उधारी। पैसे लेने जाते। आवे बेचारे बहुत। आदर करे। पाँच वर्ष गये परन्तु कहीं रुचि जमी नहीं। आहाहा।

यहाँ कहते हैं, वह पण्डित नहीं, मूर्ख नहीं, भगवान! वह **धनवान... 'ईश्वरः'** नहीं। है? कहाँ है? सेठ! **सब बातों में समर्थ भी नहीं है...** यह नहीं, सब बातों में समर्थ वह आत्मा नहीं। लड़के डालचन्दजी जैसे और भाई शोभालाल जैसे, मकान छह-छह लाख के और गाँव में कितने ही दूसरे मकान। हो...हा... हो...हा। इन सब बातों में ईश्वर वह आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : यह इसमें लिखा है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा है तो वह दूसरे को समझाने के लिये है न। हें! सन्तों ने जगत को करुणा करके उपदेश दिया है। उन्हें कहाँ पड़ी थी! कोई समझे, न समझे। विकल्प आया और वाणी रच गयी। अक्षर की वाणी हो गयी। अक्षर की वाणी हो गयी अक्षर से। उन्होंने कुछ की नहीं है। आहाहा! ईश्वर की व्याख्या की— **धनवान सब बातों में समर्थ भी नहीं है,...** वह भी आत्मा नहीं। आहाहा! समझ में आया? **दरिद्री भी नहीं है,... 'निःस्वः निःस्वः'** लो। है न? **'निःस्वः'** स्व रहित। स्व रहित। स्वधन से रहित, ऐसा आया न? भाई! स्वधन रहित—नि। आहाहा! स्व, ऐसा जो धन, उससे रहित दरिद्र, वह परन्तु यह भगवान दरिद्र नहीं। वे लोग नहीं कहते? दरिद्र नारायण। उसे दो तो ईश्वर को दिया कहलाये। अरे! आत्मा दरिद्र ही नहीं। वह तो पूर्णानन्द का नाथ है, सच्चिदानन्द स्वरूप है। परमात्मस्वरूप में और उसमें कोई अन्तर नहीं। पर्याय में अन्तर है, वस्तु में अन्तर नहीं। आहाहा! ऐसी दृष्टि किये बिना और उसका स्वीकार किये बिना कभी सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहा!

'तरुणः' जवान.... नहीं। यह जवानी तो जड़ की दशा। आहाहा! जवानी तेरी झोला खाये, वृद्धावस्था में चली जाये। घड़ीक में ऐं... ऐं... हो जायेगा। वह तेरी नहीं, वृद्धावस्था तेरी नहीं, जवानी तेरी नहीं। बालक भी नहीं। **'अन्यः अपि कर्म विशेषः' ये सब पर्यायें आत्मा से जुदे कर्म के विशेष हैं, अर्थात् कर्म में उत्पन्न हुए विभाव-पर्याय हैं।**

भावार्थ :—यद्यपि शरीर के सम्बन्ध से पण्डित वगैरह... देखा! शरीर के सम्बन्ध से पण्डित, मूर्ख आदि कहा जाता है। आहाहा! भगवान तो उनसे पार भिन्न है। **वगैरह भेद व्यवहारनय से जीव के कहे जाते हैं,...** दोनों नय विरोधी हैं। व्यवहार कहता है, है और निश्चय कहता है नहीं। अब दो नय का विषय विरोध और दो नय को आदरणीय मानना! आहाहा! नय है या नहीं? ऐसा कहे। परन्तु नय है तो क्या है? एक जानने के लिये है और एक आदरने के लिये है। आहाहा! **शुद्धनिश्चयनयकर शुद्धात्मद्रव्य से भिन्न हैं,...** शुद्धात्मद्रव्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ परमात्मस्वरूप से यह सब पण्डिताई आदि भिन्न है। बालक, युवा, वृद्ध, मूर्ख, दरिद्र, ईश्वरता भिन्न है। आहाहा! पाठ में तो ऐसा है, देखो! **'सर्वप्रकारेण हेय'** है। इसका इतना किया, **सर्वथा त्यागने योग्य है।** इतना अर्थ किया। पाठ में—टीका में यह है न? भाई! पहली लाईन है। **'सर्वप्रकारेण**

हेयभूतान्' पहली लाईन है। ९१ के ऊपर नहीं? सर्व प्रकार लिया है। सर्व प्रकार से हेय, कथंचित् प्रकार से, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। सर्व प्रकार से जैन में हो नहीं न, कथंचित्। अरे! सुन तो सही। आहाहा! वह सर्व प्रकार से हेय है।

इन भेदों को वीतरागस्वसंवेदनज्ञान की भावना से रहित... आहाहा! पहले में भेदाभेदरत्नत्रय डाला था, इसमें वीतरागस्वसंवेदन एक (लिया)। वीतराग स्वसंवेदनज्ञान, जिसमें राग और व्यवहार के विकल्प की अपेक्षा नहीं, ऐसा वीतरागी स्वसंवेदन—अपना—स्व, सं—प्रत्यक्ष ज्ञान का वेदन। सम्यग्ज्ञान में स्वसंवेदनज्ञान... आहाहा! उसकी भावना से रहित। वीतरागस्वसंवेदनज्ञान की भावना चाहिए, उससे रहित **मिथ्यादृष्टि जीव अपने जानता है,...** अज्ञानी, मैं पण्डित और मूर्ख और मैं ईश्वर, सब बातों से पूर्ण, वह मिथ्यादृष्टि जानता है। आहाहा! समझ में आया? मेरा हुकम चलता है, मेरा यह चलता है। अरे! प्रभु! तू कौन हुकम चलानेवाला? वह मिथ्यादृष्टि अपने को सब बातों में समर्थ—पूरा, मैं पण्डित या मैं मूर्ख, (ऐसा) मिथ्यादृष्टि जानता (मानता) है। लो! **और इन्हीं को पण्डितादि विभावपर्यायों को...** विभावपर्याय कहा, देखो! पण्डिताई, क्षयोपशमज्ञान की इतनी पर्याय हो, ग्यारह अंग और नौ पूर्व भी पढ़ता हो, वह सब बाहर की पण्डिताई है। आहाहा!

इन्हीं को पण्डितादि... पण्डित आदि आया न सब? मूर्ख, धनवान, तरुण, वृद्ध, बालक कर्म विशेष की सब अवस्थायें **विभावपर्यायों को अज्ञान से रहित सम्यग्दृष्टि...** अज्ञान से रहित है। इसलिए अपनी नहीं मानता। क्षयोपशम की पर्याय अपनी नहीं, ऐसा मानता है। आहाहा! **अज्ञान से रहित सम्यग्दृष्टि जीव अपने से जुदे कर्मजनित जानता है।** भाषा देखो! नौ पूर्व का विकास हो, ग्यारह अंग में एक अंग में अठारह हजार पद, एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक, ऐसा ग्यारह अंग का पाठी मरकर निगोद में जाये। आहाहा! निगोद से निकला हो और ऐसा भी हो जाये। मिथ्यात्व का जोर हो जाये तो निगोद में अक्षर के अनन्तवें भाग में विकास रह जाये। समझ में आया? आहाहा!

पण्डित तो अन्दर सम्यग्दर्शन, ज्ञान हुए, जो ज्ञान स्वर्ग में भी साथ आवे और फिर मनुष्य में भी साथ में रहकर केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष जाये, उस ज्ञान को ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया? दूसरी पण्डिताई को ज्ञान नहीं कहा जाता। ज्ञानी तो (उसे) कर्मजनित जानता है। आहाहा! विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ९२

अथ –

९२) पुण्णु वि पाउ वि कालु णहु धम्माधम्मु वि काउ।
एक्कु वि अप्पा होइ णवि मेल्लिवि चेयण–भाउ।।९२।।

पुण्यमपि पापमपि कालः नभः धर्माधर्ममपि कायः।
एकमपि आत्मा भवति नैव मुक्त्वा चेतनभावम्।।९२।।

पुण्णु वि पाउ वि कालु णहु धम्माधम्मु वि काउ पुण्यमपि पापमपि कालः नभः आकाशं धर्माधर्ममपि कायः शरीरं, एक्कु वि अप्पा होइ णवि मेल्लिवि चेयणभाउ इदं पूर्वोक्तमेकमप्यात्मा न भवति। किं कृत्वा। मुक्त्वा किं चेतनभावमिति। तथाहि। व्यवहार–नयेनात्मनः सकाशादभिन्नान् शुद्धनिश्चयेन भिन्नान् हेयभूतान् पुण्यपापादिधर्माधर्मान्मिथ्यात्व–रागादिपरिणतो बहिरात्मा स्वात्मनि योजयति तानेव पुण्यपापादि समस्तसंकल्पविकल्प–परिहारभावनारूपे स्वशुद्धात्मद्रव्ये सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयात्मके परमसमाधौ स्थितोऽन्तरात्मा शुद्धात्मनः सकाशात् पृथग् जानातीति तात्पर्यार्थः।।९२।। एवं त्रिविधात्मप्रति–पादकमहाधिकारमध्ये मिथ्यादृष्टिभावनाविपरीतेन सम्यग्दृष्टिभावनास्थितेन सूत्राष्टकं समाप्तम्।।

आगे आत्मा का चेतनभाव वर्णन करते हैं –

धर्म–अधर्म–रु पुण्य पाप नभ काल और कायादि सभी।
नहीं एक भी ये आत्मा हैं, मात्र एक चेतन मैं ही।।९२।।

अन्वयार्थ :– [पुण्यमपि] पुण्यरूप शुभकर्म [पापमपि] पापरूप अशुभकर्म [कालः] अतीत अनागत वर्तमान काल [नभः] आकाश [धर्माधर्ममपि] धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य [कायः] शरीर, इनमें से [एक अपि] एक भी [आत्मा] आत्मा [नैव भवति] नहीं है, [चेतनभावम् मुक्तवा] चेतनभाव को छोड़कर अर्थात् एक चेतनभाव ही अपना है।

भावार्थ :– व्यवहारनयकर यद्यपि पुण्य, पापादि आत्मा से अभिन्न हैं, तो भी शुद्धनिश्चयनयकर भिन्न हैं, और त्यागने योग्य हैं, उन परभावों को मिथ्यात्व रागादिरूप परिणत हुआ बहिरात्मा जानता है, और उन्हीं को पुण्य, पापादि समस्त संकल्प, विकल्परहित निज शुद्धात्मद्रव्य में सम्यक् श्रद्धान ज्ञान चारित्ररूप अभेदरत्नत्रयस्वरूप परमसमाधि में तिष्ठता सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धात्मा से जुदे जानता है।।९२।।

वीर संवत् २५०२, श्रावण कृष्ण १२, रविवार
दिनांक-२२-०८-१९७६, गाथा-९२, प्रवचन-६९

परमात्मप्रकाश, ९२ गाथा। **आगे आत्मा का चेतनभाव वर्णन करते हैं -**

९२) पुण्णु वि पाउ वि कालु णहु धम्माधम्म वि काउ।
एक्कु वि अप्पा होइ णवि मेल्लिवि चेयण-भाउ॥९२॥

पुण्यरूप शुभकर्म और पापरूप अशुभकर्म, वह आत्मा नहीं, वह आत्मा में है नहीं। आहाहा! प्रथम तो यह बात है। रात्रि में कहा था कि आत्मा की पर्याय में जो विकार होता है, वह भी स्वतन्त्र षट्कारक परिणमन से होता है। ऐसी स्वतन्त्रता जिसे न जँचे, उसे त्रिकाली चैतन्यभाव स्वतन्त्र है, यह किसी प्रकार उसे दृष्टि में नहीं आ सकता। समझ में आया? एक समय में अनन्त गुण की जो एक समय में पर्याय है, विकृत या अविकृत; वह विकृत अवस्था एक समय में अपने षट्कारक - कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण - इन षट्कारक के परिणमन से अपनी विकृत पर्याय अपने से, पर की अपेक्षा बिना होती है। विकार की पर्याय को तो पर की अपेक्षा नहीं , परन्तु निर्मलपर्याय जो होती है - सम्यग्दर्शन, ज्ञानादि निर्मलपर्याय है, वह भी वास्तव में अपने षट्कारक के परिणमन से होती है। व्यवहार की अपेक्षा से नहीं और द्रव्य-गुण की अपेक्षा से नहीं। आहाहा! ऐसा सत् है। समझ में आया?

जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान की निर्मलपर्याय... यह कहने में आता है कि भूतार्थ के आश्रय से होती है, परन्तु उस पर्याय की स्वतन्त्रता; जब विकार की पर्याय अपने षट्कारक के परिणमन से, अपनी अपेक्षा से और पर की अपेक्षा से रहित होती है, ऐसे विकार के सत् का स्वरूप ऐसा है। आहाहा! तो निर्विकारी पर्याय की सत्ता का स्वीकार अपने से, पर की अपेक्षा बिना (होता है)। वहाँ व्यवहार है तो निश्चय हुआ है - ऐसी अपेक्षा उसमें नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह निर्मलपर्याय अपने से, कर्ता-कर्म... नवरंगभाई! रात्रि को थे? रात्रि में बहुत बात हुई थी। यह तो हमारे सुजानमलजी कहते हैं, दिन में थोड़ा कहना। आहाहा!

एक-एक गुण की एक-एक पर्याय स्वतन्त्र षट्कारक से परिणमित होती है।

आहाहा! उस पर्याय को पर की अपेक्षा तो नहीं; द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं, परन्तु एक पर्याय के साथ में अनन्त पर्यायें जो उत्पन्न होती हैं, उस दूसरी पर्याय की अपेक्षा नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा वस्तु की सत्ता का स्वभाव है। एक-एक पर्याय स्वयं से, अनन्त पर्यायें एक समय में उत्पन्न होती है, निर्मल और विकारी, वह एक-एक समय की पर्याय षट्कारक-कर्ता पर्याय, कर्म पर्याय, करण पर्याय, पर्याय होकर पर्याय रखे - वह पर्याय सम्प्रदान, पर्याय से पर्याय और पर्याय के आधार से पर्याय होती है। आहाहा! यहाँ तो कहना है कि उस पर्याय की इतनी स्वतन्त्रता, क्षणिक पर्याय की इतनी स्वतन्त्रता जिसे न जँचे, उसे त्रिकाली ध्रुव उपादान कभी दृष्टि में नहीं आयेगा। नवरंगभाई! समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दर्शन की पर्याय... जब विकारी पर्याय भी षट्कारक के परिणमन से, पर की अपेक्षा नहीं तो सम्यग्दर्शन की पर्याय में वह सत् है न? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के साथ सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट हुई, उस पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द आया, उसकी सम्यग्दर्शन की पर्याय को अपेक्षा नहीं। समझ में आया? बहुत बात.. समुद्र.. आत्मा एक सत् का समुद्र है, सत् का समुद्र है। आहाहा!

मुमुक्षु : कुछ करने का आया नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : करने का आया न! वीतरागता हुई न! पर्याय, पर्याय से होती है तो उसकी दृष्टि छोड़कर, मैं द्रव्य वस्तु हूँ, यह आया। यह बात तो कहते हैं। यदि पर्याय पर से होवे तो पर्याय को छोड़कर द्रव्य की दृष्टि उसे नहीं होती, किन्तु मेरी पर्याय, मुझसे स्वतन्त्र होती है तो मैं उसे छोड़कर द्रव्यदृष्टि करता हूँ। त्रिकाली चैतन्यभाव मैं हूँ। पर्याय है तो उसमें परन्तु वह स्वतन्त्ररूप से है। आहाहा! समझ में आया?

अरे..! एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं। 'द्रव्याश्रया गुणाः' कहते हैं न? द्रव्य के आश्रय से गुण हैं; गुण के आश्रय से गुण नहीं। आहाहा! एक ज्ञानगुण जो है, वह भी दूसरे अस्तित्वगुण के कारण नहीं है। आहाहा! तो पर्याय में भी ज्ञान की जो एक समय की पर्याय है, उस समय में अस्तित्वगुण की पर्याय है, उसके कारण से ज्ञान की पर्याय नहीं है। आहाहा! समझ में आया? भगवान! मार्ग तो ऐसा है, भाई! लोगों को द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान नहीं और पर्यायरहित भगवान आत्मा कैसा है, उसकी उन्हें दृष्टि

होती नहीं। आहाहा! पर्याय तो है और प्रत्येक गुण भी है, परन्तु एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं है परन्तु एक गुण दूसरे गुण के रूप रूप से है। यह क्या कहा?

ज्ञानगुण जो है, साथ में अस्तित्वगुण है तो अस्तित्वगुण के कारण से ज्ञानगुण नहीं है परन्तु ज्ञानगुण में अस्तित्वपना स्वयं से है। ज्ञानगुण में अस्तित्व है, हों! अस्तित्वगुण के कारण से नहीं। अस्तित्वगुण तो ज्ञानगुण के अस्तित्व में अस्तित्वगुण तो निमित्त है, परन्तु इस ज्ञानगुण में अपने उपादान से अस्तित्व है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी एक पर्याय के अस्तित्व में, ज्ञान की पर्याय का अस्तित्व, अस्तित्वगुण की पर्याय भी साथ में है परन्तु अस्तित्वगुण की पर्याय तो ज्ञानगुण की पर्याय में निमित्त है। उपादान तो ज्ञान की पर्याय में अस्तित्व स्वयं के कारण से अस्तित्व है। दूसरे गुण का दूसरे गुण में रूप कहने में आता है। दूसरे गुण में दूसरा गुण नहीं है। समझ में आया? अब ऐसी बात। कहो, सेठ! कभी सुना नहीं और पैसे ही पैसे में (फँस गया)। स्वतन्त्र है न, भगवान! आहाहा! कैसी स्वतन्त्रता? समझ में आया?

एक पर्याय के साथ दूसरी पर्याय हुई है, उससे भी वह पर्याय नहीं। फिर वह पर्याय पर से होती है, (यह बात ही कहाँ रही)? इसी प्रकार भगवान आत्मा में जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय जो षट्कारक से स्वयं से होती है, उसमें व्यवहार की अपेक्षा नहीं है। यहाँ यह सिद्ध करना है। आहा! यह बात गजब, भाई! अपने त्रिकाली चैतन्यभाव की प्रतीति-सम्यग्दर्शन की पर्याय में व्यवहार की अपेक्षा नहीं है। उस पर्याय में दूसरी पर्याय की अपेक्षा नहीं है, उस पर्याय में द्रव्य-गुण की अपेक्षा निश्चय से नहीं है। आहाहा! समझ में आया? कहो, कान्तिभाई! आहाहा! ये प्लेन में नौकर थे। सेठ तो पहिचानता है। पन्द्रह सौ का वेतन था। छोड़ दिया। छोड़ दिया मासिक पन्द्रह सौ का वेतन। प्लेन में, प्लेन नहीं उड़ते? दो वर्ष से छोड़ दिया। अठारह हजार बारह महीने में मिलते थे। छोड़ दिया, नौकरी छोड़ दी। अब उसमें धूल में क्या है?

अरे! एक समय की पर्याय बिना पर्याय को नहीं चलता। पर के बिना चलता है, अपनी पर्याय में अपनी पर्याय बिना नहीं चलता। आहाहा! यह तो बात चलती है। समझ में आया? ज्ञानगुण जो अपने में है, वह ज्ञानगुण अपने से है। अस्तित्वगुण है तो ज्ञानगुण का अस्तित्व है, ऐसा नहीं है। ऐसे दर्शनगुण है, उसमें अस्तित्व है, वह अपने

अस्तित्व से दर्शनगुण है। अस्तित्वगुण के कारण से दर्शन का अस्तित्व है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अमरचन्दभाई! आहाहा! कहाँ कभी सुना नहीं। भगवान आत्मा कौन है अन्दर? जिसके पर्याय, गुण और द्रव्य स्वतन्त्र... स्वतन्त्र हैं। आहाहा! स्वयंसिद्ध हैं।

कहते हैं कि एक गुण में दूसरे गुण का रूप है, वैसे अनन्त गुण का रूप एक गुण में है। एक ज्ञानगुण है, उसमें अपना अस्तित्व का रूप है, अस्तित्वगुण के कारण से नहीं। वैसे वस्तुत्वगुण के कारण से ज्ञान में वस्तुत्व नहीं परन्तु ज्ञानगुण में वस्तुत्व का रूप है। समझ में आया? ऐसे ज्ञानगुण में जो साथ में कर्तागुण है, उससे कर्तापना नहीं। ज्ञान स्वयं से कर्ता है, ऐसा ज्ञान में कर्ता का रूप है। आहा! ऐसे कर्म नाम का गुण है, उससे ज्ञान में कर्मगुण का रूप नहीं। ज्ञान में कर्मरूप-कार्यरूप, रूप स्वयं से है। आहाहा! समझ में आया? लो, यह और रविवार है तो भावनगरवाले आये हैं न?

ऐसे एक पर्याय में अनन्त पर्याय का रूप है परन्तु एक पर्याय में दूसरी पर्याय नहीं है। आहाहा! समुद्र, समुद्र है न! सत् का सागर है!! द्रव्य का सागर, गुण का सागर, पर्याय का सागर। आहाहा! जिसे ऐसी एक समय की पर्याय में, अपनी पर्याय के षट्कारक से परिणमन है और षट्कारक में भी जो कर्ता-कर्म आदि जो छह गुण हैं, उन गुण की एक समय की पर्याय में दूसरे गुण की पर्याय के कारण कर्ता नहीं। हिम्मतभाई! क्या कहा यह?

जैसे षट्कारक आत्मा में गुण है तो एक गुण दूसरे गुण के कारण से नहीं है, वैसे पर्याय में षट्कारकरूप परिणमन हुआ तो कर्ता की पर्याय से कर्म की पर्याय है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! अन्दर छह गुण हैं न? तो यहाँ भी छह पर्याय हैं। यह बात स्वतन्त्र है। आहाहा! गजब बात है। सर्वज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त यह बात कहीं किसी ने देखी नहीं और किसी ने जानी नहीं। बातें व्यर्थ की कल्पना की हैं। आहाहा! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर भी पर को जानना कहते हैं कि वह तो असद्भूतव्यवहारनय से है। लोकालोक को जानते हैं, ऐसा कहना, वह असद्भूतव्यवहारनय से है, क्योंकि तन्मय होकर नहीं जानते। लोकालोक को तन्मय होकर नहीं जानते। उसरूप होकर जानते हैं? वह तो अपनेरूप रहकर जानते हैं। आहाहा! समझ में आया? उनका स्व-प्रकाशन और पर-प्रकाशन अपनी पर्याय में अपने कारण से परप्रकाशकपना है, पर के कारण से नहीं।

लोकालोक है तो यहाँ परप्रकाशकपना प्रगट हुआ है, ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! तेरी बलिहारी है, भाई! आहाहा! तेरी समृद्धि, तेरी सम्पत्ति.. आहाहा! समझ में आया?

एक पर्याय में कर्ता की पर्याय हुई, पर्याय में, उस समय उसके कर्मगुण की पर्याय भी है या नहीं? षट्कारक गुण की पर्याय है या नहीं? आहाहा! तो एक गुण की पर्याय में दूसरे गुण की पर्याय भी साथ में नहीं। उसके कारण से नहीं। स्वयं का रूप है, कर्ता, कर्तारूप है; कर्म, कर्मरूप है; करण, करणरूप है; अपादान, अपादान; सम्प्रदाय, सम्प्रदाय; अधिकरण, अधिकरण (रूप से है)। आहाहा! गजब बात है! निर्विकल्पता वीतरागता उत्पन्न होने का यह उपाय है। समय-समय की पर्याय स्वयं से है, पर की पर्याय से नहीं। पर से तो नहीं परन्तु अपनी दूसरी पर्याय से नहीं और अपना एक गुण दूसरे गुण से नहीं, तथापि एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप है। ऐसे एक-एक पर्याय दूसरी पर्याय से नहीं है परन्तु एक पर्याय में अनन्त पर्याय का रूप है। आहाहा!

चिद्विलास में बहुत स्पष्टीकरण किया है। दीपचन्दजी साधर्मी। चिद्विलास में बहुत (स्पष्टीकरण किया है)। भले गृहस्थ थे। समझे? दीपचन्दजी है न? चिद्विलास, ज्ञान का विलास। यह चेतना आयी न? ज्ञान का विलास। उसमें ऐसा लिखा है कि एक-एक पर्याय स्वतन्त्र है, अपनी दूसरी पर्याय से भी नहीं। एक-एक गुण स्वतन्त्र है, दूसरे गुण से नहीं, परन्तु दूसरे अनन्त गुण का रूप एक गुण में है। अनन्त गुण का रूप एक गुण में है। ऐसे एक पर्याय में दूसरे अनन्त पर्यायों का रूप है। आहाहा! उसमें तो ऐसा लिखा है कि जैसे-जैसे स्पष्टीकरण करते हैं, वैसे-वैसे शिष्य का आनन्द उपजता है, ऐसा लिखा है। भाई! चिद्विलास में। आहाहा! उसका स्वभाव ही ऐसा है। ओहोहो! उसकी दृष्टि हुई हो और फिर स्वतन्त्रता का स्पष्टीकरण जब हो, तब उसे आनन्द उछलता है। आहाहा! उसमें आनन्द आवे, ऐसा आनन्द कहीं नहीं आता। आहा! ऐसी बात है। समझ में आया? ओहोहो!

एक गुण में अनन्त गुण का रूप! और उस गुण के आश्रय से गुण नहीं, क्योंकि द्रव्याश्रया गुणा आया न? तत्त्वार्थसूत्र में। द्रव्य के आश्रय से गुण है, कुछ गुण के आश्रय से गुण नहीं है, तथापि गुण के आश्रय से गुण नहीं हैं, तथापि अनन्त गुण का रूप एक

गुण में है। आहाहा! पर्याय भी पर्याय के आश्रय से निश्चय से है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी अनन्त पर्याय एक-एक समय में षट्कारक की परिणति से स्वतन्त्र है। ऐसा जिसे जँचा हो, उसे द्रव्य उपादान स्वतन्त्र ध्रुव है, उसकी दृष्टि होती है। क्षणिकपर्याय के उपादान की स्वतन्त्रता जिसे न जँचे, उसे ध्रुव, जो पर्याय में आता नहीं, ऐसी चीज़ की दृष्टि उसे स्वतन्त्र नहीं होती। क्या कहा, सेठ! समझ में आया? आहाहा!

एक समय की अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें एक समय में है। वह एक-एक पर्याय अपने षट्गुण कारण से परिणमती है, दूसरे के कारण से नहीं। उसमें तो निमित्त उड़ जाता है। यह बाधा लोगों को आती है, परन्तु निमित्त तो उसे कहते हैं कि निमित्त से उसमें होता नहीं, तो निमित्त कहते हैं। आहाहा! और निमित्त जो चीज़ है, उसमें भी अनन्त गुण और अनन्त पर्यायें हैं। वह पर्याय भी अपने स्वतन्त्र षट्कारक से परिणमती है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो यह लेना है न? **आत्मा का चेतन भाव...** परन्तु यह किसे जँचे? जिसे पर्याय की स्वतन्त्रता जँची हो। क्षणिक उपादान में प्रत्येक पर्याय स्वयं से हुई है, पर से नहीं, अरे! पर से तो नहीं परन्तु द्रव्य-गुण से नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी पर्याय की स्वतन्त्रता वस्तु का स्वरूप है। ओहोहो! वे कहते हैं कि ईश्वर कर्ता है, यहाँ कहते हैं कि एक पर्याय की कर्ता दूसरी पर्याय नहीं है। एक पर्याय का द्रव्य कर्ता नहीं है।

मुमुक्षु : गुण भी पर्याय का कर्ता नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं; गुण भी कर्ता नहीं। पर्याय स्वतन्त्र अपनी कर्ता है। आहाहा! आहाहा! ऐसे प्रत्येक पर्याय और प्रत्येक गुण अपने-अपने अनन्त गुणरूप और एक पर्याय अनन्त पर्यायरूप है। आहाहा! ऐसा होने पर भी, पर की अपेक्षा नहीं है और अपनी पर्याय दूसरी पर्याय की अपेक्षा से वह पर्याय नहीं है। ऐसा अपना गुण दूसरे गुण से है, ऐसा नहीं है। तथापि एक गुण में अनन्त गुण का रूप है। प्रमेयत्व नाम का गुण है तो ज्ञान में प्रमेयत्व नाम की शक्ति है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : अस्तित्वगुण में ज्ञान का रूप किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : अस्तित्वगुण नहीं। अस्तित्व में जानने की अपेक्षावाला अस्तित्व

है इतना। उसमें जाननेवाला है, इतना अस्तित्व उसमें है। उसमें ज्ञान कहाँ है? अस्तित्व में अनन्त गुण का रूप है, परन्तु अस्तित्वरूप से, ज्ञानरूप से वहाँ कहाँ है? तब तो पर गुण यहाँ आ गये। ज्ञान का अस्तित्व है, वह दूसरे अस्तित्व में उसका रूप है। आहाहा! यह तो बात आ गयी, भाई! रात्रि को थोड़ी निकाली थी न? हमारे सुजानमलजी कहें, दिन में थोड़ी कहना। ऐसा मार्ग, प्रभु! आहाहा! तेरी धारा.. तेरी धारा.. आहाहा!

क्रमबद्ध तो है परन्तु वह पर्याय क्रमबद्ध होती है, वह भी स्वयं से होती है, पूर्व की पर्याय है तो यह पर्याय हुई, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! ऐसा वस्तु का स्वभाव है। यह बन्ध अधिकार में आया है। द्रव्य में अहेतुक सत् है, गुण में अहेतुक सत् है। उसका कोई हेतु नहीं है। पर्याय अहेतुक है, ऐसा आया है। बन्ध अधिकार में (आया है)। आहाहा! निर्मल पर्याय अहेतुक सत् है। (जो) है, उसे पर की अपेक्षा क्या? आहाहा! इसके अतिरिक्त तो बहुत लम्बी बात की। अध्यात्म पंच संग्रह में दीपचन्दजी ने की है। उसके थट और नट और थट... आते हैं न? भाई! एक गुण में दूसरे का नट है और थट है और कला है और... बहुत विस्तार आया है। भाई ने-दीपचन्दजी ने विस्तार बहुत किया है। ओहोहो! एक-एक पर्याय में दूसरी पर्याय का अस्तित्व / रूप, हों! वह गुण उसमें नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : एक पर्याय में दूसरी पर्याय किस प्रकार आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय आवे नहीं परन्तु उस पर्याय का रूप उसमें आवे। अस्तित्वगुण की पर्याय में ज्ञानगुण की पर्याय का रूप आया या नहीं? अस्तित्व की पर्याय वहाँ नहीं आयी परन्तु ज्ञानगुण की पर्याय 'है', वैसा रूप उसमें है या नहीं? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! यह तो सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ पदार्थ। द्रव्य-गुण और पर्याय ऐसे अनन्त (पदार्थ हैं)।

रात्रि में तो यहाँ तक कहा था न? कि एक परमाणु जो है, उसमें दो गुण की स्निग्धता है। कोई चार गुण स्निग्धतावाले परमाणु के साथ (संयोग) होवे तो चार गुण होते हैं। वह चार गुण उसके कारण नहीं हुए। उन चार स्निग्धता की पर्याय षट्कारक परिणति से होती है। आहाहा! बड़ी गड़बड़ यह निमित्त और उपादान की। समझ में आया?

देखो! यह वस्तु है। इसमें परमाणु जो है, वह सूक्ष्म है। यहाँ सूक्ष्म नहीं रहा, स्थूल हो गया। वह स्थूल षट्कारक की परिणति से स्वयं से हुआ है। स्थूल का कर्ता, स्थूल का कर्म, स्वयं से हुआ है, संयोग से नहीं।

मुमुक्षु : संयोग में आये बिना नहीं होता न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आये बिना नहीं होता (ऐसा) नहीं। उसका अर्थ ही यह (कि वह) होता है, तब उसकी योग्यता उसमें ही होती है, परन्तु इससे उसके कारण हुआ है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! गजब बात है, भाई!

प्रत्येक परमाणु में अनन्त गुण हैं। जितने गुण एक चैतन्य आत्मा में हैं, उतने ही गुण परमाणु में-अचेतन में हैं। आहाहा! जितने गुण एक सर्वव्यापक आकाश में हैं, उतनी संख्या से एक परमाणु में उतनें में हैं। आहाहा! उतनी संख्या। जितनी एक आत्मा में है, उतने आकाश में हैं, उतने एक परमाणु में हैं। कहाँ सर्वव्यापक! वह तो क्षेत्र से व्यापक हुआ, भाव तो जो अनन्त गुण है, उतना है। इतने गुण एक परमाणु में है। प्रदेश भले एक हो परन्तु अनन्त गुण शक्ति उतने में है। ओहोहो! और अनन्त गुण की एक परमाणु में एक समय में जो पर्यायें होती हैं तो उस परमाणु में भी षट्कारक गुण है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। आहाहा! गजब बात है। धर्मलालजी! ऐसी बात है, भगवान! लोगों को बेचारों को ऐसा लगता है। बाहर की उस प्रवृत्ति में रच-पच गये न! आहा!

रात्रि में एक आया था अवश्य परन्तु भूल गये। सपने में एक आया था, किसी के साथ में मोक्षमार्ग की चर्चा होती थी, परन्तु किस प्रकार से, वह भूल गये। अन्दर मोक्षमार्ग की चर्चा हुई थी। वह कहे, ऐसे नहीं, निश्चय से ऐसा होता है, वह कहे ऐसा होता है। आहाहा!

एक परमाणु अनन्त गुण सम्पन्न है। अस्तित्वगुण, वर्णगुण, गन्धगुण, रसगुण, स्पर्शगुण, एक-एक गुण दूसरे गुण से नहीं परन्तु दूसरे गुण का रूप उसमें है। वर्णगुण का अस्तित्व है तो अस्तित्वगुण के कारण उसका अस्तित्व है, ऐसा नहीं है। आहाहा! शक्तियों का संग्रहालय भगवान! एक-एक परमाणु अनन्त शक्ति का संग्रहालय है।

एक-एक परमाणु स्वभाव का सागर है। आहाहा! अरे! लोगों को कहाँ (खबर है) तत्त्व क्या है?

मुमुक्षु : बड़ी बखारी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बखारी वह कितनी बखारी! आहाहा! गजब है, बापू! साधारण को तो उसके विश्वास में यह बात आना, नि:सन्देहरूप से आना, यह बहुत अलौकिक बातें हैं। समझ में आया? आत्मा की यथार्थ प्रतीति बिना उसकी यथार्थ प्रतीति नहीं होती। आहाहा!

इसी प्रकार आकाश में भी अनन्त गुण हैं और एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं होता परन्तु एक गुण में दूसरे गुण का रूप है। आहाहा! समझ में आया? रात्रि में बहुत बात की थी, यह थोड़ी-थोड़ी आयी। यह तो फिर वह की वह बात कहीं निकलती है? आहाहा! वह तो सबेरे कहा नहीं था? रात्रि को विचार आया था। कहा, एक गुण में अनन्त गुण का रूप है। चिद्विलास में (आता है), भाई को कहा था। अभी भाई ले आये थे, तुमने नहीं निकाला। मैंने रात्रि को कहा था, चिद्विलास निकालना। एक गुण में अनन्त गुण का रूप है। यह भाई धनसुख है, इनको कहा था। फिर चिमनभाई ने दियाा। मैंने सबेरे कहा था परन्तु यहाँ नहीं देखा। उसमें है। ७५ में है।

एक गुण में सब गुण का रूप सम्भवे। बड़े अक्षर से है। चिद्विलास, दीपचन्दजी गृहस्थाश्रम में (लिखते हैं)। तो क्या है? गृहस्थाश्रम में आत्मा तो है या नहीं? एक गुण में सब गुण का रूप सम्भवे है। आहाहा! वस्तु विषे अनन्त गुण हैं, सो एक-एक गुण में सब गुण का रूप सम्भवे है। जो सत्तागुण है तो सब गुण सत्ता है, सब गुण का अस्तित्व है। ऐसे अनन्त गुण लेना। बहुत स्पष्ट किया है, बारीकी से कहा है। दीपचन्दजी साधर्मी। चिद्विलास, आत्मावलोकन, अनुभवप्रकाश, अध्यात्म पंच संग्रह, इनमें बहुत सूक्ष्म है। उसमें तो वहाँ तक कहा, लोग मेरी बात सुनते नहीं। मैं क्या कहता हूँ, वह सुनते नहीं, इसलिए मैं लिख जाता हूँ। ऐ... सेठ! गृहस्थाश्रम में थे। मैं लिख जाता हूँ। मेरी सत्य बात सुनते नहीं। (वे कहते हैं) नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा करके निकाल डालते हैं। निकाल डालो। मैं लिख जाता हूँ, ऐसा लिखा है। अरे! तत्त्वदृष्टिवन्त कोई दिखता नहीं, ऐसा उसमें लिखा है। यथार्थ तत्त्वदृष्टिवन्त कोई दिखता नहीं, मैं

कहता हूँ तो सुनते नहीं। यह पंच संग्रह में है। अध्यात्म पंच संग्रह है न? सब देखा है न! यहाँ तो कितनी बार सब (पढ़ा गया है)। आहाहा! एक गुण में अनन्त गुण का रूप, लाओ! किसी जगह कहा है। आहाहा! इतना कहा, लो! सुजानमलजी! आधा घण्टा चला।

यहाँ आया न? **आत्मा का चेतनभाव का वर्णन...** यहाँ क्या लिया? जिसे पर्याय की स्वतन्त्रता रुचती हो, वह पर्याय की दृष्टि छोड़कर चेतनभाव की दृष्टि कर सकता है। समझ में आया? पुण्य नहीं, पाप नहीं परन्तु पुण्य-पाप की पर्याय उसमें स्वतन्त्र है, पर्याय में है। आहाहा! देखो!

पुण्यरूप शुभकर्म, पापरूप अशुभकर्म अतीत-अनागत-वर्तमान काल... आत्मा में नहीं है। आहाहा! भूतकाल, वर्तमान और भविष्य वस्तु में कहाँ है? वस्तु तो त्रिकाल है। चेतनभाव जो है, वह तो त्रिकाल है। ध्रुव उपादान। परन्तु जिसे क्षणिक उपादान की स्वतन्त्रता न बैठे, उसे ध्रुव उपादान की शक्ति नहीं बैठती (जँचती)। आहाहा! अभी यह बड़ा विवाद है। आहाहा! अरे रे! भगवान! कठिनता से मार्ग आया, प्रभु! समझ में आया? और वह भी फिर वहाँ तक ले जाते हैं कि अरे! प्रभु! व्यभिचारी पन्थ है। अरे! नाथ! क्या कहना है तुझे भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि प्रभु! चेतनभाव में भूत, वर्तमान, भविष्य का काल भी नहीं है। काल क्या? वह तो वस्तु है, वह है। समझ में आया? आहाहा! समयसार नाटक में आता है। दामोदरभाई बोलते थे। ऐई! तेरे पिता। खबर है? खबर भी नहीं होगी। दामोदरभाई लाखाणी थे न? दामोदरभाई और मूलजीभाई दो। मूलजीभाई तो अपने... दामोदरभाई को वाँचन बहुत। वे कहते थे, घड़ी मेरी काल मेरा, पहर मेरा, दिन मेरा... यह बोलते थे। यह समयसार नाटक में आता है। समयसार नाटक में... यह घड़ी मेरी, यह काल मेरा, यह पहर मेरा—ऐसा करके ममता में काल में चिपट गया है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि त्रिकाल भगवान में काल है ही नहीं। भूतकाल-वर्तमान-भविष्य, वस्तु है। वस्तु में कहाँ काल है? आहाहा! चेतनभाव त्रिकाल भाव... आहाहा! कलश-टीका में तो ऐसा लिया है, २५२ कलश। २५२ कलश है न? जो त्रिकाल वस्तु है, वह स्वकाल है और एक उसकी एक समय की पर्याय है, वह परकाल है। आहाहा!

ऐई! समझ में आया? एक समय का जो द्रव्य है, वह स्वद्रव्य है और द्रव्य का विकल्प से भेद पाड़ना कि यह द्रव्य और यह द्रव्य, ऐसा भेद पाड़ना, वह परद्रव्य है। अन्य परद्रव्य तो भिन्न रह गये। आहाहा! असंख्य प्रदेशी एकरूप है, वह स्वक्षेत्र है और असंख्य प्रदेश में भेद पाड़ना कि यह असंख्य प्रदेश और यह प्रदेश, वह परक्षेत्र है। भेद कल्पना परद्रव्य और भेद कल्पना परक्षेत्र। भगवान आत्मा स्वकाल अर्थात्... यह काल नहीं, हों! भूत, भविष्य नहीं। त्रिकाली वस्तु है, वह स्वकाल है। पर्याय जो है, द्रव्य की, हों! उस एक समय की पर्याय को परकाल कहा। त्रिकाली की अपेक्षा से पर्याय को परकाल कहा। आहाहा! समझ में आया? और भाव। त्रिकाली भाव, एकरूप चैतन्यभाव आदि अनन्त गुण के भाव, अनन्त गुणरूप भाव, वह स्वभाव; उसमें यह ज्ञान है और दर्शन है, ऐसा भेद पाड़ना, वह परभाव। गजब बात है, भाई! परद्रव्य तो परभाव, राग तो परभाव परन्तु अनन्त गुण के एकरूप में गुण की भेद कल्पना होना, वह परभाव है। कलश-टीका २५२ कलश में है। समझ में आया? यह है न कलश-टीका?

स्वद्रव्य अर्थात् निर्विकल्प मात्र वस्तु... एकरूप त्रिकाली द्रव्य, वह स्वद्रव्य। है? **स्वक्षेत्र अर्थात् आधारमात्र वस्तु का प्रदेश...** वस्तु का प्रदेश; वस्तु के प्रदेश नहीं। एकरूप सब। असंख्य प्रदेश को पंचास्तिकाय में एक प्रदेश कहा है। एकरूप की अपेक्षा से एक प्रदेश कहा है। आहाहा! वह स्वक्षेत्र। है? **स्वकाल अर्थात् वस्तुमात्र की मूल अवस्था...** त्रिकाली। **स्वभाव अर्थात् वस्तु की मूल की सहज शक्ति; परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेद कल्पना...** आहाहा! परद्रव्य तो परद्रव्य में रहे, राग भी परद्रव्य में रहा परन्तु द्रव्य में भेद पाड़ना-अभेद में भेद पाड़ना, वह परद्रव्य है। ऐसा मार्ग है। कितनों ने बेचारों ने सुना नहीं होगा, उन्हें यह बात ऐसी लगे... भाई! मार्ग तो यह है, हों!

कर्म से विकार होता है, ऐसे होता है और वैसे होता है! आहाहा! बड़ी गड़बड़। समझ में आया? बनारस में ईश्वरकर्ता माननेवाले पण्डितों के पास पढ़े, उन्हें जैनदर्शन की क्या खबर? वे ईश्वरकर्ता माने। सृष्टि उपादान अपने से है, निमित्त ईश्वर है। वह जहाँ हो, वहाँ निमित्त घुसा डाला। पण्डितों, जैन के पण्डित सीखे उसे। समझ में आया? वह तो बेचारा कहता है, देवकीनन्दन कहते हैं। देवकीनन्दन पण्डित नहीं?

यहाँ रहे, चर्चा हुई। ओहो! आगम चक्खु सहाओ, महाराज! मैंने तो ऐसा मैंने यहाँ देखा। हमारे सब पण्डितों की निमित्ताधीन पढ़ाई है। सब पण्डितों की निमित्ताधीन (दृष्टि है), ऐसा वे कहते थे। देवकीनन्दन! तब सेठ यहाँ नहीं होंगे। समझ में आया? बहुत निस्पृह व्यक्ति थे। पंचाध्यायी की टीका बनायी है न? पंचाध्यायी की टीका में भूल थी तो मैंने कहा, भाई! यह भूल है, तो उन्होंने कहा सुधारो महाराज! हमने तो हमारी दृष्टि से लिखा है। उन्होंने लिखा था छठवें गुणस्थान में बुद्धिपूर्वक का राग है और सातवें में अबुद्धिपूर्वक का राग है, ऐसा लिखा था। मैंने कहा, ऐसा नहीं है। छठवें गुणस्थान में बुद्धिपूर्वक और अबुद्धिपूर्वक दोनों है। सातवें में अबुद्धिपूर्वक है, ऐसा है। फिर सुधार दिया। कहा, देखो! गोम्मटसार में है, व्यक्त-अव्यक्त। जो प्रगट ख्याल में आता है, वह बुद्धिपूर्वक का राग है और उसी समय ख्याल में नहीं आता, वह अबुद्धिपूर्वक-अव्यक्त है। व्यक्ताव्यक्त शब्द गोम्मटसार में है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि स्वद्रव्य में भेद डालना, वह परद्रव्य है। **परक्षेत्र अर्थात् जो वस्तु का आधारभूत प्रदेश निर्विकल्प वस्तुमात्ररूप से कहा था, वही प्रदेश सविकल्प भेदकल्पना से परप्रदेश...** है। आहाहा! असंख्यप्रदेशी भगवान एकरूप, वह स्वक्षेत्र। उस प्रदेश में भेद पाड़ना कि यह प्रदेश और यह प्रदेश ऐसा भेद, वह परक्षेत्र। यह गृहस्थ काम करते हैं, देखो! यह राजमल। कलश-टीका है न? उसमें से समयसार नाटक बनाया है। उसमें से (बनाया है) बनारसीदास। 'राजमल जैनधर्मी' ऐसा लिखा है। यहाँ तो जैनधर्मी का कहना था। **परकाल अर्थात् द्रव्य की मूल की निर्विकल्प अवस्था...** वह स्वकाल। **अवस्थान्तर भेदरूप कल्पना, सो परकाल...** आहाहा! कालद्रव्य परद्रव्य है, उसकी बात नहीं है। अपनी त्रिकाली वस्तु, वह स्वकाल और उसकी एक समय की पर्याय को परकाल कहा। भेद हुआ न? इसलिए परकाल कहा। दृष्टि का विषय बताने में (ऐसा कहते हैं)। पर्याय, भेद वह कोई दृष्टि का विषय नहीं है। दृष्टि का विषय तो त्रिकाल परमानन्दमूर्ति प्रभु निर्विकल्प सच्चिदानन्द आत्मा सम्यग्दर्शन का विषय-ध्येय है। आहाहा! समझ में आया? कहो, छोटाभाई! ऐसी बातें हैं यह। तुम नहीं कहते थे पहले? यह निमित्त का लकड़ा (विपरीतता) पण्डितों में (घुस गया है)। पहले कहते थे। बहिन यहाँ क्षय में थे तब। यह लोग ऐसा कहते, तब हमें शंका पड़ती थी। छोटाभाई कहते थे। आहाहा!

अरे! वस्तु है न? आहाहा! सत् को पर का आश्रय कैसा? चाहे तो पर्याय सत् हो, उसे पर का आश्रय कैसा? आहाहा! जहाँ कहीं ऐसे कथन आये हों तो वह भेद से व्यवहारनय से कथन किये होते हैं। समझ में आया? परन्तु वस्तुस्थिति तो जो है, वह अपने से है।

यहाँ तो सिद्ध यह करना है कि वस्तु जो त्रिकाल है, वह स्वकाल और एक समय की पर्याय वह परकाल। वह परकाल लक्ष्य देने योग्य नहीं है, ऐसा कहना है। त्रिकाल का लक्ष्य करना। लक्ष्य करनेवाली पर्याय परकाल है परन्तु उसका विषय स्वकाल-त्रिकाल है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव का ऐसा मार्ग है। भगवान ने ऐसा तत्त्व कहा है। लोगों को द्रव्य-गुण-पर्याय की खबर नहीं और धर्म होगा... धर्म होगा। अरे! भाई! प्रतिमा ले लो, यह ले लो.. धूल में प्रतिमा नहीं। प्रतिमा कहाँ आयी? अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं। आहा! व्यवहार श्रद्धा का ठिकाना नहीं। राग से रहित त्रिकाल परमात्मा की अनुभूति हो तो वह सम्यग्दर्शन है, ऐसी श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अरे! जिन्दगी चली जा रही है, आँख बन्द करके चला जायेगा कहीं। बेचारे दो व्यक्ति ३५-३५ वर्ष के युवक थे, ऐसे जा रहे थे। किसमें जा रहे थे? रिक्शा में। उसमें सामने ट्रक आया, ऊपर चढ़ गया, मर गये। ३५-३५ वर्ष के जवान मनुष्य। आहाहा! कब देह छूटेगी, भगवान! इसका कुछ नियम देखा है? आहाहा! पहले करनेयोग्य चीज़ तो यह है। समझ में आया?

भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, प्रत्येक गुण स्वतन्त्र, प्रत्येक पर्याय स्वतन्त्र-ऐसा जिसे रुचता है, उसे त्रिकाली द्रव्य का आश्रय लेने योग्य है, वह उसे रुच जाता है। आहाहा! यहाँ कहा है, नहीं? परभाव। **परभाव अर्थात् द्रव्य की सहज शक्ति के पर्यायरूप अनेक अंश द्वारा भेदकल्पना...** आहाहा! अनन्त गुणरूप भगवान एकरूप है, उसमें यह अस्तित्वगुण और यह ज्ञानगुण, ऐसे भेद डालना, वह परभाव है। इस परभाव की व्याख्या कितनी की है! परवस्तु, वह परभाव; रागादिभाव, वह परभाव और भाव में भेद डालना, वह परभाव। यह बात यहाँ अपने चलती है। देखो! यहाँ।

अतीत-अनागत-वर्तमान काल, आकाश, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, शरीर, इनमें

से एक भी आत्मा नहीं है... यह वस्तुरूप से है। पुण्यरूप से पुण्य है, पापरूप से पाप है। भगवान आत्मा के चैतन्यभाव में वह वस्तु नहीं है। ऐसी पर्याय की स्वतन्त्रता जिसे रुचती है, उसे नहीं देखनेवाले को देखने जैसी दृष्टि हो जाती है। समझ में आया? ऐसा मार्ग है। **चेतन भाव को छोड़कर अर्थात् एक चेतन भाव ही अपना है।** आहाहा! यहाँ दृष्टि के विषय की अपेक्षा ली है। पर्याय, पर्यायरूप से तो है, यह तो पहले सिद्ध किया परन्तु पर्याय का आश्रय करने से तो विकल्प उत्पन्न होता है। समझ में आया?

त्रिकाली भगवान चेतनभाव, ज्ञानभाव, ज्ञानरसभाव, ज्ञानशक्तिभाव.. आहाहा! चेतनाभाव वह द्रव्य है, वही चेतनाभाव का क्षेत्र है, वह काल चेतनाभाव, वह काल है, त्रिकाल चेतनाभाव, वह उसका भाव है। आहाहा! द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भिन्न-भिन्न नहीं हैं। उसी चीज़ को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव कहा जाता है। त्रिकाल चेतनाभाव वह द्रव्य, वही क्षेत्र, असंख्य प्रदेशी एकरूप क्षेत्र, त्रिकाल वही स्वकाल और भाव - त्रिकाल एकरूप भाव, वह भाव। आहाहा! ऐसा चेतनाभाव अपना है।

भावार्थ - व्यवहारनयकर यद्यपि पुण्य, पापादि आत्मा से अभिन्न है... पर्याय में है न? पर्याय में पुण्य, पाप है न? **तो भी शुद्धनिश्चयनयकर भिन्न है...** भगवान चेतनास्वभाव, जागृतस्वभाव ऐसे स्वभाव से वे भिन्न हैं। **और त्यागनेयोग्य है...** देखो! पुण्य-पाप के भाव, शरीर आदि त्यागनेयोग्य है। आहाहा! वे कहते हैं कि पुण्य के भाव, व्यवहार के भाव आदर करनेयोग्य हैं, उनसे निश्चय होगा। अरे! भगवान! बहुत अन्तर है, हों! भाई! तुझे अभी मिठास लगेगी और दुनिया को भी उस प्रकार के झुकाववालों को मिठास लगेगी। योगफल झूठा आयेगा। आहाहा! तू प्रसन्न हो जाये और दुनिया को प्रसन्न करे। सेवा करो, देश सेवा करो, अमुक करो, अमुक करो... आहाहा! भगवान ने जगत के सुख और हित के लिये उपदेश दिया। सुख कौन? यह बाहर की सामग्री।

मुमुक्षु : शास्त्र में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या आता है? यह कौन सा सुख? यह तो आत्मा का सुख।

मुमुक्षु : लोक का हित...

पूज्य गुरुदेवश्री : लोक का हित अर्थात् आत्मा का हित, वह लोक का हित है। ऋषभदेव भगवान ने पहले किया न? गृहस्थाश्रम में असि, मसि, कृषि। यह किया था न? परन्तु वह तो उस समय विकल्प था, इसलिए आया। वह कोई मार्ग है और वह धर्म है, ऐसा करके वह कहा था? तीर्थंकरों ने भी असि, मसि, कृषि का (उपदेश किया है), ऐसा कहे। और जगत के हित के लिये किया था न? अरे! प्रभु! वह तो विकल्प आया और वह क्षेत्र उस समय था तो करुणा का विकल्प आया। पश्चात् छोड़ दिया। जब मुनि हुए तब वह विकल्प छोड़ दिया। हित और सुख का कारण होता तो वह विकल्प छोड़ते क्यों? अरे! यह असि, मसि, कृषि आता है न? षट्कर्म बतलाये। तलवार की बात मसि; लिखने की बात, कृषि-खेती की। आहाहा! यह तो उस समय विकल्प आया, उस समय ऐसी स्थिति थी, आया परन्तु जानते थे कि विकल्प है, वह हेय है, दुःखरूप है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दृष्टिरूप से नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टिरूप से नहीं, वह करनेयोग्य रूप से नहीं। करनेयोग्य होगा? राग करनेयोग्य नहीं, वहाँ और पर को सिखाना और कृषि करनेयोग्य है? आहाहा! समझ में आया? भगवान ने भी ऐसा किया था। इसलिए अपने भी ऐसा करो। अरे! भगवान! वह तो तीन ज्ञान के धनी, क्षायिक समकिती थे। खबर थी कि मुझे इस भव में केवलज्ञान है, परन्तु उस समय का प्रसंग ऐसा कि विकल्प स्वयं के कारण उत्पन्न हुआ, वह स्वयं की कमजोरी के कारण उत्पन्न हुआ है - विकल्प, हों! वाणी तो वाणी के कारण से निकली। कृषि में खेती करे, उसमें पाप है। लेखन करे-मसि, असि-तलवार आदि। पाप बताते हैं। वह धर्म का कारण है? समझ में आया? आहाहा!

उन परभावों को मिथ्यात्व रागादिरूप परिणमित हुआ... क्या कहते हैं? परकाल, धर्मास्ति और पुण्य-पाप, इन सबको **मिथ्यात्व रागादिरूप परिणमित हुआ बहिरात्मा अपने जानता है...** आहाहा! मिथ्यादृष्टि पुण्य को अपना मानता है, शुभभाव को अपना मानता है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ शुभकर्म कहा है न, इसलिए वह शुभकर्म जड़ लेना, परन्तु उसका कारण पुण्य है, वह भी शामिल लेना। पुण्य-पाप अधिकार में यह लिया है। लिया है कर्म, पश्चात् अमृतचन्द्राचार्य ने स्पष्टीकरण किया कि शुभकर्म,

शुभ का कारण पुण्यभाव है, यह सब हेय है। समझ में आया? आहाहा! अरे भगवान! जहाँ अकेली पर्याय का भी आदर नहीं, वहाँ फिर पुण्य का आदर और पर का आदर (तो कहाँ से होगा)? आहाहा! समझ में आया?

और उन्हीं को... पुण्य और पाप को मिथ्यादृष्टि अपने जानता है। यहाँ पुण्य-पाप अधिकार में कर्म पाठ लिया है। व्रत, नियम, तपस्या आदि शुभकर्म हैं। उसे अज्ञानी अपना मानता है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग गजब, भाई! सुनने को मिलता नहीं, वह बेचारा कहाँ जाये? अरे रे! स्थिति पूरी होगी, जिन्दगी चली जायेगी। कहाँ उपजेगा? आहाहा! और पाँच-पचास लाख का आसामी सेठिया हो, आहाहा! धर्म न हो, पुण्य हो नहीं, (तो) मरकर ढोर में जायेगा। आहाहा! सम्यग्दर्शन आदि धर्म न हो, परन्तु सुनना, पढ़ना आदि पुण्य भी न हो। उसका समय न लिया हो। समझ में आया? पठन-पाठन, स्तुति, भक्ति आदि पुण्य है। उसका समय न लिया हो। एकाध बार जाकर करे, भागे जाओ! धर्म तो कहाँ? वह मरकर कहाँ जायेगा? पाव घण्टे आवे और हाथ में पुस्तक लेकर एक लाईन पढ़ ले, हो गया। षट् -आवश्यक कहे हैं न? षट्-आवश्यक श्रावक के। थोड़ा वाँचन कर ले, एक लाईन पढ़ ले। यहाँ बहुत आते हैं। पुस्तकें यहाँ रखी हो तो लेकर पाव घण्टे पढ़ ले। पाँच मिनिट पढ़े तो हो गया, जाओ! अरे भगवान! आहाहा! वीतरागमार्ग जो सत्य है, वह सुनने को मिला नहीं, वह कब अन्तर में प्रयोग करके स्वसन्मुख होगा? आहा!

पुण्य-पापादि समस्त संकल्प-विकल्परहित... कहते हैं कि इस पुण्य-पाप को कौन अपने मानता है? बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि अपने मानता है। सम्यग्दृष्टि **निज शुद्धात्मद्रव्य में...** निज शुद्धात्मद्रव्य, हों! पर शुद्धात्मा भी नहीं। पर भगवान शुद्ध आत्मा हैं, परन्तु वे नहीं। वे पर है। पर में वन्दन आदि करेगा तो वह विकल्प है। आहाहा! एक-एक शब्द में कितनी महिमा है! **निज शुद्धात्मद्रव्य में सम्यक्श्रद्धान...** उसकी श्रद्धा, प्रतीति, आनन्द के अनुभव में। आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन है। स्व-संवेदनज्ञान-अपना आत्मा ज्ञान-आनन्दस्वरूप है, उसका ज्ञान। स्व को ज्ञेय बनाकर ज्ञान हुआ, उसका नाम सम्यग्ज्ञान और चारित्र—स्वरूप में रमणता। आनन्द का नाथ प्रभु में रमणता, चरना, चरना। जैसे पशु घास चरता है न? वैसे आत्मा आनन्द का भोजन करता है, चरता है,

उसका नाम चारित्र है। लोगों को बेचारों को कठिन लगता है। अरे भाई! परन्तु सत्य की बात है, बापू! ऐसा मनुष्य देह मिला, इसके... सम्प्रदाय में जन्म हुआ, उसमें जिनेन्द्र की वाणी मिले तो इसका काम कर लेना चाहिए। ऐसा अवसर फिर से मिलेगा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अभेद रत्नत्रयस्वरूप परम समाधि में तिष्ठता... आहाहा! पुण्य-पाप का त्याग भी कब कहलाता है? ऐसा कहते हैं, कि अन्तर अभेद रत्नत्रय में स्थिरता करते हुए, **सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धात्मा से जुदे जानता है।** आहाहा! अन्तर अतीन्द्रिय निर्विकल्प आनन्द में रहकर पुण्य-पाप को भिन्न जानता है। समझ में आया? उसका यथार्थ भिन्न जानना, वह यथार्थ है और बहिरात्मा पुण्य-पाप को अपना मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ९३

अथानन्तरं सामान्यभेदभावनामुख्यत्वेन 'अप्पा संजमु' इत्यादि प्रक्षेपकान् विहायैक-त्रिंशत्सूत्रपर्यन्तमुपसंहाररूपा चूलिका कथ्यते। तद्यथा -

यदि पुण्यपापादिरूपः परमात्मा न भवति तर्हि कीदृशो भवतीति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह -

९३) अप्पा संजमु सीलु तउ अप्पा दंसणु णाणु।
अप्पा सासय-मोक्ख-पउ जाणंतउ अप्पाणु।।९३।।

आत्मा संयमः शीलं तपः आत्मा दर्शनं ज्ञानम्।
आत्मा शाश्वतमोक्षपदं जानन् आत्मानम्।।९३।।

अप्पा संजमु सीलु तउ अप्पा दंसणु णाणु अप्पा सासयमोक्खपउ आत्मा संयमो भवति शीलं भवति तपश्चरणं भवति आत्मा दर्शनं भवति शाश्वतमोक्षपदं च भवति। अथवा पाठान्तरं 'सासयसुक्खपहुं' शाश्वतमोक्षस्य पन्था मार्गः, अथवा 'सासयसुक्खपउ' शाश्वत-सौख्यपदं स्वरूपं च भवति। किं कुर्वन् सन्। जाणंतउ अप्पाणु जानन्ननुभवन्। कम्। आत्मानमिति। तद्यथा। बहिरङ्गेन्द्रियसंयमप्राणसंयमबलेन साध्यसाधकभावेन निश्चयेन स्वशुद्धात्मनि संयमनात् स्थितिकरणात् संयमो भवति, बहिरङ्गसहकारिकारणभूतेन कामक्रोधविवर्जनलक्षणेन व्रतपरिरक्षणशीलेन निश्चयेनाभ्यन्तरे स्वशुद्धात्मद्रव्यनिर्मलानुभवनेन शीलं भवति। बहिरङ्गेन सहकारिकारण भूतानशनादिद्वादशविधतपश्चरणेन निश्चयनयेनाभ्यन्तरे समस्तपरद्रव्येच्छानिरोधेन परमात्मस्वभावे प्रतपनाद्विजयनात्तपश्चरणं भवति। स्वशुद्धात्मैवोपादेय इति रुचिकरणान्निश्चय-सम्यक्त्वं भवति। वीतरागस्वसंवेदन-ज्ञानानुभवनान्निश्चयज्ञानं भवति। मिथ्यात्वरागादिसमस्त-विकल्पजालत्यागेन परमात्मतत्त्वे परमसमरसीभावपरिणमनाच्च मोक्षमार्गो भवतीति। अत्र बहिरङ्गद्रव्येन्द्रियसंयमादिप्रतिपालनादभ्यन्तरे शुद्धात्मानुभूतिरूपभावसंयमादिपरिणमनादु-पादेयसुखसाधकत्वा-दात्मैवोपादेय इति तात्पर्यार्थः।।९३।।

ऐसे बहिरात्मा परमात्मारूप तीन प्रकार के आत्मा का जिसमें कथन है, ऐसे पहले अधिकार में मिथ्यादृष्टि की भावना से रहित जो सम्यग्दृष्टि की भावना उसकी मुख्यता से आठ दोहा सूत्र कहे। आगे भेदविज्ञान की मुख्यता से 'अप्पा संजमु' इत्यादि इकतीस दोहापर्यन्त क्षेपक-सूत्रों को छोड़कर पहला अधिकार पूर्ण करते हुए व्याख्यान

करते हैं, उसमें भी जो शिष्य ने प्रश्न किया कि यदि पुण्य-पापादिरूप आत्मा नहीं है, तो कैसा है? ऐसे प्रश्न का श्रीगुरु समाधान करते हैं।

आत्मा ही है शील तथा संयम तप एवं दर्शन ज्ञान।
आत्मा ही है शाश्वत शिव पद-निज को तू ऐसा ही जान।।९३।।

अन्वयार्थ :- [आत्मा] निज गुण-पर्याय का धारक ज्ञानस्वरूप चिदानंद ही [संयमः] संयम है, [शीलं तपः] शील है, तप है, [आत्मा] आत्मा [दर्शनं ज्ञानम्] दर्शनज्ञान है, और [आत्मानम् जानन्] अपने को जानता अनुभवता हुआ [आत्मा] आत्मा [शाश्वतमोक्षपदं] अविनाशी सुख का स्थान मोक्ष का मार्ग है। इस कथन को विशेषतर कहते हैं।

भावार्थ :- पाँच इन्द्रियाँ और मन का रोकना व छह काय के जीवों की दयास्वरूप ऐसे इन्द्रियसंयम तथा प्राणसंयम इन दोनों के बल से साध्य-साधक भावकर निश्चय से अपने शुद्धात्मस्वरूप में स्थिर होने से आत्मा को संयम कहा गया है, बहिरंग सहकारी निश्चय शील का कारणरूप जो काल क्रोधादि के त्यागरूप व्रत की रक्षा वह व्यवहार शील है, और निश्चयनयकर अंतरंग में अपने शुद्धात्मद्रव्य का निर्मल अनुभव वह शील कहा जाता है, सो शीलरूप आत्मा ही कहा गया है, बाह्य सहकारी कारणभूत जो अनशनादि बारह प्रकार का तप है, उससे तथा निश्चयकर अंतरंग में सब परद्रव्य की इच्छा के रोकने से परमात्मस्वभाव (निजस्वभाव) में प्रतापरूप तिष्ठ रहा है, इस कारण और समस्त विभावपरिणामों के जीतने से आत्मा ही 'तपश्चरण है, और आत्मा ही निजस्वरूप की रुचिरूप सम्यक्त्व है, वह सर्वथा उपादेयरूप है, इससे सम्यग्दर्शन आत्मा ही है, अन्य कोई नहीं है, वीतराग स्वसंवेदनज्ञान के अनुभव से आत्मा ही है, अन्य कोई नहीं है, वीतरागसंवेदनज्ञान के अनुभव से आत्मा ही निश्चयज्ञानरूप है, और मिथ्यात्व रागादि समस्त विकल्पजाल को त्यागकर परमात्मतत्त्व में परमसमरसीभाव के परिणमन से आत्मा ही मोक्षमार्ग है। तात्पर्य यह है, कि बहिरंग द्रव्येन्द्रिय-संयमादि के पालने से अंतरंग में शुद्धात्मा के अनुभवरूप भावसंयमादिक के परिणमन से उपादेयसुख जो अतीन्द्रियसुख उसके साधकपने से आत्मा ही उपादेय है।।९३।।

वीर संवत् २५०२, श्रावण कृष्ण १३, सोमवार
दिनांक-२३-०८-१९७६, गाथा-९३, प्रवचन-७०

परमात्मप्रकाश। ९३ गाथा। यह चार-पाँच लाईन तो यों ही है। पाँच-छह लाईन बाद। **उसमें भी जो शिष्य ने प्रश्न किया कि यदि पुण्य-पापादिरूप आत्मा नहीं है, तो कैसा है आत्मा ?** है ? चार-पाँच लाईन के बाद। पुण्य और पाप, शुभ-अशुभभाव और उसका बन्ध जो पुण्य-पाप रजकण, वह आत्मा नहीं। तो आत्मा है कैसा ? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। **यदि पुण्य-पापादिरूप आत्मा नहीं है, तो कैसा है ? ऐसे प्रश्न का श्रीगुरु समाधान करते हैं।** जिसे ऐसी जिज्ञासा है, उसकी बात करते हैं। यों ही बात सुनने आया, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? जिसे यह पुण्य और पापभाव, शुभ-अशुभभाव आत्मा नहीं, तो आत्मा है कैसा ? ऐसी अन्तर की जिसे जिज्ञासा है, उसे यह उत्तर दिया गया है। समझ में आया ?

९३) अप्पा संजमु सीलु तउ अप्पा दंसणु णाणु।
अप्पा सासय-मोक्ख-पउ जाणंतउ अप्पाणु॥९३॥

अन्वयार्थ : — निज गुण-पर्याय का धारक ज्ञानस्वरूप चिदानन्द ही... भगवान ज्ञान और आनन्दस्वरूप प्रभु आत्मा, वह गुण-पर्याय का धारक ज्ञानस्वरूप चिदानन्द है। सूक्ष्म बात है, भाई! ज्ञानस्वभाव ज्ञानानन्द। वह **संयम है,...** आहाहा! उसका नाम संयम है। भगवान चिदानन्द आत्मा, अपने अन्तर आश्रय से निर्विकल्प वीतरागी परिणति प्रगट करता है, इसका नाम संयम है। आहाहा! यह लोग व्रत और संयम करते हैं न ? वह संयम नहीं। निश्चय यथार्थ संयम तो भगवान आत्मा, अपना स्वभाव जो शुद्ध चैतन्यघन में लीन होकर जो दशा उत्पन्न होती है, उसका नाम संयम कहा जाता है। लो, यह संयम की व्याख्या। यह संयम आत्मा है, ऐसा कहते हैं। पुण्य-पाप के भाव से रहित अपना आत्मा आनन्द शुद्ध ज्ञानानन्द में लीनता, रमणता, पवित्रता जैसी स्व शक्ति और स्वरूप है, ऐसी पवित्रता वीतराग की दशा प्रगट होना, उसका नाम संयम है। टीका में फिर निमित्त लेंगे। पंच महाव्रत आदि विकल्प है, वह स्वरूप का संयम होता है, उसे वह होता है तो निमित्त कहलाता है। निमित्त साधक कहलाता है। निमित्तरूपी साधक।

फिर टीका में लेंगे। समझ में आया? यहाँ तो पाठ में यह है कि सीधा भगवान आत्मा ज्ञानानन्द स्वभावी परमात्मा स्वयं-निज, उसमें आनन्द में लीन होना... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की वर्तमान दर्शा में, अतीन्द्रिय आनन्द का बहुत स्वाद आना, वह आत्मा और उसे संयम कहते हैं। आहाहा! है?

शील है... उसे शील कहते हैं। आहाहा! अपने चिदानन्दस्वभाव में वीतरागभाव से रमना, वह आत्मा का स्वभाव प्रगट होना, वह शील है। यह बाह्य के ब्रह्मचर्य आदि शील, वह तो व्यवहार है, विकल्प है। आहाहा! **तप है,...** स्पष्टीकरण बाद में करेंगे। आत्मा तप है। बारह प्रकार के तप तो विकल्प हैं। अन्तर में आत्मा आनन्द से प्रतपन करके, जैसे सुवर्ण में गेरु लगाकर ओपीत और शोभित होता है; उसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द से पर्याय में उग्ररूप से शोभित होता है, उसका नाम तप कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा दर्शनज्ञान है,... आत्मा समकित है। समझ में आया? भगवान चिदानन्द प्रभु पूर्ण स्वरूप, उसका अन्तर में ज्ञान का अनुभव करके, ज्ञानस्वरूप का अनुभव करके प्रतीति होना, वह सम्यग्दर्शन, वह आत्मा है। समझ में आया? आहाहा! और ज्ञान आत्मा है। शास्त्र का ज्ञान आदि, वह तो निमित्त है। आहाहा! निज आनन्दकन्द का ज्ञान, सहजानन्दस्वरूप प्रभु आत्मा, उसका ज्ञान, वह आत्मा का ज्ञान, वह आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? शास्त्र का ज्ञानादि तो निमित्त है। जब यहाँ आत्मज्ञान करे, तब उसे निमित्त साधक कहा जाता है। आत्मज्ञान और आनन्द प्रगट न करे, तब तो निमित्त और व्यवहार साधक भी नहीं कहलाता। आहाहा! यह बात है।

परमात्मप्रकाश है न! परमात्मा अर्थात् आत्मा। आत्मा शील और तप है। आहाहा! **आत्मा अविनाशी सुख का स्थान मोक्ष का मार्ग है।** भगवान आत्मा ही अविनाशी सुख मोक्ष अथवा मोक्ष का मार्ग है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र भगवान चिदानन्द का दल, ध्रुव के आश्रय से जो निर्मलदशा, वीतरागी स्वसंवेदनदशा प्रगट हो, उसे यहाँ मोक्ष का मार्ग कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? गाथा बहुत ऊँची है। मूल है, यह मूल, जैनदर्शन का मूल। **इस कथन को विशेषतर कहते हैं।** यह तो शब्दार्थ किया। अब टीका।

भावार्थ :- पाँच इन्द्रियाँ और मन का रोकना व छह काय के जीवों की

दयास्वरूप ऐसे इन्द्रियसंयम तथा प्राणसंयम... यह तो विकल्प है, राग है। समझ में आया? वह वास्तविक संयम नहीं। **इन दोनों के बल से साध्य-साधक...** इन्द्रियदमन, छह काय का संयम, उसे व्यवहार साधक कहकर निश्चय ज्ञानानन्दस्वभाव को साध्य कहकर **साध्य-साधक भावकर निश्चय से अपने शुद्धात्मस्वरूप में स्थिर होने से आत्मा को संयम कहा गया है,...** आहाहा! पाँच महाव्रत आदि विकल्प है, वह निमित्त है और उसे छोड़कर अपने स्वभाव में आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का उफान आना, उफान आना। उभरो समझते हो? उफान आता है, वह तो पोला है। दूध में जो उफान आता है, वह तो पोला है। वह कोई (ठोस नहीं है)। पाँच सेर दूध हो और उफान में फूले, इसलिए कहीं दस सेर हो जाये? समझ में आया? यह तो अन्दर मजबूत दृढ़ आनन्दकन्द में से अतीन्द्रिय आनन्द की दृढ़ता प्रगट होती है, अतीन्द्रिय आनन्द की वज्रदशा प्रगट होती है... आहाहा! उसे साध्य संयम कहा जाता है। अरे! ऐसी बात सब।

मुमुक्षु : व्यवहार साधन....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार साधन का तो आरोप किया है। पहले कहा न? अपने निश्चय स्वभाव का साधन किया तो उसे वर्तमान व्रतादि के विकल्प हैं, उसे व्यवहार साधक का आरोप करके साधन कहा है। साधक है नहीं, उसे कहना, उसका नाम व्यवहार। सूक्ष्म बात है। बहुत बार बात हो गयी है। साधक दो प्रकार के नहीं। जैसे मोक्षमार्ग दो प्रकार के नहीं। मोक्षमार्ग का कथन—निरूपण दो प्रकार से है। मोक्षमार्ग तो एक निश्चय ही है। इसी प्रकार संयम एक ही है। अपने स्वरूप में वीतरागीदशा प्रगट पर्याय में शान्ति, वीतरागता प्रगट करना, वही संयम है। परन्तु उस संयम के साथ राग की जो मन्दता है, उसे व्यवहार साधक, साधक का आरोप करके व्यवहार साधक कहने में आता है। साधक है नहीं। है तो बाधक। अरर! उसका नाम व्यवहार है, उसका नाम व्यवहार है। कहा न? मोक्षमार्गप्रकाशक में सातवें अध्याय में टोडरमलजी ने बहुत लिया है।

कहते हैं, भगवान आत्मा राग-विकल्प से रहित निज आत्मा शुद्ध चैतन्य की सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्रदशा, वही मोक्षमार्ग है। वही मोक्ष का मार्ग अर्थात् कारण है। परन्तु साथ में राग की मन्दता, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के विकल्प,

शास्त्र के विकल्प को सहचर निमित्त देखकर उपचार से व्यवहार कहने में आया है। एक अक्षर बदले तो बदल जाए ऐसी वस्तु है। ऐ... सेठ! क्या कहा? मोक्षमार्गप्रकाशक कभी वाँचा है? कहाँ निवृत्ति थी? आहाहा! कहाँ जाना है? भाई! तुझे कहाँ रहना है? आहाहा! अकेला आत्मा जायेगा। पुण्य और पाप के भाव कोई किये होंगे, उसके तो रजकण बँधे, रजकण, अभी तो भाव नहीं। आहाहा! शुभ-अशुभभाव हो गये, उसके पुण्य-पाप रजकण बँध गये। उसमें आत्मा को क्या है? वह रजकण तो संयोग में निमित्त है। स्वभाव में निमित्त हो, ऐसी वह चीज़ नहीं। समझ में आया?

यहाँ चिदानन्द भगवान का संयम आत्मा के आश्रय से (प्रगट हुआ), जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र स्वाद हो, उसका नाम संयम है। उस संयम के साथ पंच महाव्रत के विकल्प आदि है तो राग, परन्तु उसे सहचर निमित्त देखकर व्यवहार साधक कहा गया है। ऐसी बात है। पाठ में तो अकेली आत्मा की बात है, परन्तु टीकाकार ने दो बातें निकाली हैं। समझ में आया? है तो साधक अपना आनन्दकन्द प्रभु, स्वभाव जो है, उसी स्वभावरूप परिणमन होकर आनन्द अन्दर आता है, वही संयम और यथार्थ सत्य है। परन्तु साथ में ऐसी दशावान को पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण आदि का विकल्प साथ में सहचर निमित्त देखकर व्यवहार साधक का आरोप दिया है। ऐसी बात है। इसमें कहीं भी फेरफार हो जाये तो विरोध हो जाये। कहो, नवरंगभाई! यह कहा है। **दोनों के बल से...** यह तो व्यवहार का कथन है। समझ में आया? है न?

'**इन्द्रियसंयमप्राणसंयमबलेन**' संस्कृत में शब्द है। अर्थात् निमित्त है। उसका आश्रय छोड़कर जो स्वभाव की स्थिरता हुई है, वह सच्चा संयम है। आहाहा! समझ में आया? निमित्त के बल से कहने में आया है। वह निमित्त से हुआ है, ऐसा कहने में आया, वह व्यवहारनय का कथन है। समझ में आया? व्यवहारनय ही वह है। भेद और विकल्प, वह सब व्यवहार है। साधक है नहीं परन्तु साधक का कथन दो प्रकार का कहा। पहले कहा न? मोक्षमार्ग दो नहीं, परन्तु दो (प्रकार से) कथन है। मोक्षमार्ग एक ही है। इसी प्रकार स्वरूप का साधन आनन्द का साधन अन्दर जो राग से भिन्न करता है, वह साधक तत्त्व तो एक ही है, परन्तु साथ में पूर्णता वीतरागता नहीं, इसलिए राग की मन्दता की उपस्थिति सहचर देखने में आती है तो निमित्त देखकर साधक का उपचार

कहा। साधक है नहीं। ऐसी बात है। अरे! भगवान पूर्णानन्द का नाथ निर्विकल्प आनन्दकन्द प्रभु, उसके स्वभाव में से स्वभाव प्रगटे नहीं, उसे कोई आत्मा नहीं कहते। वह संयम नहीं। आगे कहेंगे।

अब दूसरा, शील... शील। शील की व्याख्या। **बहिरंग सहकारी...** (निमित्त) के साथ। देखो! सहकारी आया। **बहिरंग सहकारी निश्चय शील का कारणरूप...** व्यवहार कारण **काम क्रोधादिक के त्यागरूप...** काम-क्रोधादि के त्यागरूप **व्रत की रक्षा वह व्यवहार शील है,...** विकल्प है। समझ में आया? आहाहा! पंच महाव्रत के विकल्प, पाँच समिति, गुप्ति के व्यवहार विकल्प को व्यवहार संयम कहा जाता है। निमित्त देखकर, सहचर देखकर व्यवहार कहने में आया है।

और निश्चयनयकर तो... आहाहा! सच्ची रीति से तो **अन्तरंग में अपने शुद्धात्मद्रव्य का निर्मल अनुभव यह शील कहा जाता है,...** आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप का अनुभव, वह शील है। शील—अपने आनन्द का अनुभव, वह शील है। आहाहा! समझ में आया? सत्य दृष्टि से देखें तो अन्तरंग में, अन्तरंग, वे बहिरंग थे, समझ में आया? पहले था न? बहिरंग था। निमित्त सहकारी। पंच महाव्रत के विकल्प। यह अन्तरंग। वह बहिरंग, यह अन्तरंग। वह बहिरंग साधन, अन्तरंग साध्य। यह व्यवहार-निश्चय का कथन है। साध्य वह निश्चय है और व्यवहार साधन, वह व्यवहार है। व्यवहार का आरोप करके साधन कहने में आया है।

शुद्धात्मद्रव्य का निर्मल अनुभव... अतीन्द्रिय आनन्द की दशा वृद्धि को प्राप्त हो, अतीन्द्रिय आनन्द वृद्धि को प्राप्त हो, वह निश्चय शील, आत्मशील, आत्मब्रह्म, ब्रह्मानन्द, ब्रह्म में—ब्रह्म अर्थात् आत्मा के आनन्द में लीनता, वह निश्चय शील है। आहाहा! समझ में आया?

सो शीलरूप आत्मा ही कहा गया है,... वह शील ही आत्मा है। उसकी निर्मल आनन्द दशा को आत्मा कहते हैं और विकल्प उठता है, उसे आत्मा नहीं कहते, उसे अनात्मा कहते हैं। परन्तु व्यवहार से साथ में देखकर उसे साधक कहा गया है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। यहाँ तो एक ही बात ली है। भगवान आत्मा... पुण्य-पाप से रहित और अल्पज्ञता से भी रहित, पूर्ण सर्वज्ञ आनन्दादि का स्वभाव, वर्तमान ज्ञान में

पकड़कर उसकी प्रतीति और शुद्धता स्वरूप की एकाग्रता, उसका नाम यहाँ शील कहा गया है। वह निश्चयशील, वह शील है। व्यवहारशील तो निमित्त का आरोप करके सहकारी कहने में आता है। आहाहा!

अब तप किसे कहते हैं? **बाह्य सहकारी कारणभूत जो अनशनादि बारह प्रकार का तप है,...** देखो! यहाँ तो अनशन, ऊनोदर, रसपरित्याग, वह तो ठीक परन्तु प्रायश्चित और ध्यान, समझ में आया? वह भी एक विकल्प है। आहाहा! अपवास करूँ, त्याग करूँ, आठ अपवास करूँ, वह तो विकल्प है, राग है। समझ में आया? वह तपस्या नहीं। अन्तर की तपस्या में निमित्तरूप देखकर बाह्य साधन कहने में आया है। आहाहा! गजब मार्ग भाई वीतराग का! यहाँ तो एक अपवास करे, न हो भान, सम्यग्दर्शन, नहीं ज्ञान और आनन्द, बस, अपवास करो, वह निर्जरा, व्रत पालन करो, वह संवर। व्रत, वह संवर और तप, वह निर्जरा, हो गया, जाओ! आहाहा!

मुमुक्षु : उल्टी गंगा....

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टी गंगा। आहाहा!

बाह्य सहकारी कारणभूत जो अनशनादि... अनशन करना, ऊनोदर करना, रसपरित्याग करना, देव-गुरु-शास्त्र का विनय करना, वह सब व्यवहार विकल्प है। वह अनशनादि बारह प्रकार के तप लिये हैं न? उसमें तो अभ्यन्तर तप भी ले लिये। वह भी विकल्प है। प्रायश्चित लेना, विनय करना, वैयावृत्य करना, सज्झाय, ध्यान, वह सब विकल्प है। आहाहा! शास्त्र का स्वाध्याय भी विकल्प है, राग है। समझ में आया? **अनशनादि बारह प्रकार का तप है, उससे तथा निश्चयकर अन्तरंग में सब परद्रव्य की इच्छा के रोकने से...** आहाहा! बारह प्रकार के तप में तो इच्छा थी। यह तो इच्छानिरोध होकर अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय अकषायभाव उछाला मारता है, उसका नाम तप कहते हैं। आहाहा! कहो, पोपटभाई! अपवास-बपवास किये हैं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो माना था न भाई ने। आहाहा!

परमात्मा जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ के शासन में तो भगवान आत्मा अन्दर में...

आहाहा! परद्रव्य की सब इच्छा रोकने से, अन्दर आनन्द की दशा, शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... अकषायस्वभाव की धारा बहे, उसका नाम भगवान तप कहते हैं। आहाहा! कभी सुना भी न हो, ऐसे का ऐसे अन्ध दौड़ से वाड़ा में पड़े, बाहर की प्रवृत्ति में धर्म (माना), उसमें जिन्दगी हार जानेवाले हैं। अरेरे! ऐसे मनुष्यपने में... समझ में आया? परमात्मा ऐसा कहते हैं, परमात्मप्रकाश है न! तेरा स्वभाव ही परमात्मस्वरूप है। उसके आश्रय से, उसके अवलम्बन से जो इच्छानिरोध की अमृत की धारा बहे, शान्त अकषायस्वभाव की शान्तधारा बहे, उसे भगवान तप कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! है?

परमात्मस्वभाव... आहाहा! **(निजस्वभाव)...** निजस्वभाव-ज्ञान, आनन्द, शान्ति, वीतरागता। आहाहा! **(निजस्वभाव) में प्रतापरूप तिष्ठ रहा है...** प्रतापरूप। अन्दर अपना प्रताप स्फुरित करता है। आनन्द के नाथ को जागृत करके शान्ति और आनन्द का प्रताप अन्दर से स्फुरित करता है, उसका नाम भगवान तप कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? है या नहीं सामने? हें! घर की बहियाँ देखता है तो यह तो देखे कि इसमें क्या है। यह है, बापू! आहाहा! अरेरे! कहाँ चला जायेगा? बापू! और कोई शुभ-अशुभभाव किये होंगे तो रजकण परमाणु बँध गये होंगे। अब वे रजकण कहीं आत्मा को शरण है? वे रजकण तो संयोग देंगे। स्वभाव देंगे? आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा पुण्य और पाप के विकल्प से रहित, परमात्मस्वरूप निजस्वभाव शुद्ध ध्रुव दल के अवलम्बन से जो वीतरागीदशा प्रगट होती है, अपना प्रताप प्रगट होता है... आहाहा! राग के प्रताप की हानि होती है, (वह तप है)। आहाहा! है? **(निजस्वभाव) में प्रतापरूप...** प्रतापरूप अन्दर **तिष्ठ रहा है...** वीर्य के जोर से स्वरूप में स्थिर होता है। आनन्द में स्थिर हो जाता है, लीन (हो जाता है), इसका नाम तप है। अरे! यह व्याख्या। यहाँ तो अपवास किये तो हो गया तप। आहाहा! आठ दिन के अपवास चतुर्विध आहार त्याग करे तो ओहोहो! भाई! गजब किया! उसमें पोर चढ़ा दे तो और बहुत हो जाये। पोर अर्थात्? तीन घण्टे दूसरे आठम के अपवास के पारणे। आठम के पारणे पोर चढ़ावे तो पच्चीस अपवास का फल (मिले)। धूल भी नहीं। सब लंघन है। वह लंघन है।

मुमुक्षु : तप करनेवाले का तो जुलूस निकाला चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : तप है कहाँ? जुलूस निकाले। तुम्हारे जैसे सेठिया वहाँ। ओहो! भारी अपवास किये, ऐसा कहकर महिमा करे, लो! और कोई बक्षीस देने जाये। बड़े अच्छे अपवास किये हों, महिने, डेढ़ महीने के। आहाहा!

मुमुक्षु : आनन्द का झरना नहीं, तब तक क्या करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : करे, वह तो अनादि का अज्ञान करे। वह तो अज्ञानी का अनादि का (अज्ञान) है। वह कोई वस्तु नहीं, धर्म नहीं। वह तो अज्ञान करता है। यह तो निश्चय (धर्म) करना है, उसकी बात है न! सत्य तप किसे कहते हैं? सत्य की स्पष्टता यह है कि भगवान आनन्द का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द के झरने अन्तर में से झरे और शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति का स्वाद आवे। आहाहा! इसका नाम तप है। अभी मान्यता में ठिकाना नहीं होता। यह करूँगा तो कुछ होगा। वह तो करते हो। वह तो पुण्यबंध और राग है। उसमें होगा क्या? धूल होगी। आहाहा! श्रद्धा की खबर नहीं होती, मूल चीज़ की खबर नहीं होती। देखो न!

परमात्मस्वभाव (निजस्वभाव) में प्रतापरूप... राग में जैसे वीर्य स्फुरित करता था, वह तो नपुंसक वीर्य है। समझ में आया? व्रत, तप आदि के विकल्प में जो वीर्य है, वह तो नपुंसक वीर्य है। आहाहा! अपने आनन्द में वीर्य स्फुरित करे, वह पुरुषार्थ और पुरुष का वीर्य है। जो प्रतापवन्त शोभता है। आहाहा! उसमें कहा न? प्रभुत्वगुण में। अखण्ड प्रताप से स्वयं शोभायमान ऐसी प्रभुत्व नाम की एक शक्ति आत्मा में है। प्रभुत्व नाम का एक गुण है। जैसे ज्ञानगुण है, आनन्दगुण है, शान्ति है। उस प्रभुत्वगुण का स्वरूप क्या? कि जिसका प्रताप अखण्ड है। जिसका खण्ड नहीं पड़ता, ऐसी अखण्ड दशा प्रगट हो, ऐसा अन्तर में प्रभुत्वगुण है। अखण्ड प्रताप से स्वतन्त्र शोभायमान। अपनी आनन्द की दशा से शोभायमान, इसका नाम भगवान प्रभुत्वगुण का कार्य और तप कहते हैं। भाई! मार्ग ऐसा है, भाई! उसे समझा नहीं और मान बैठे कि हम कुछ करते हैं। कुछ तो करते हैं, अनादि का करते हैं। उसमें नया क्या है? आहाहा! जिसमें आत्मा आनन्दस्वरूप की दृष्टि की नहीं, जिसे अन्दर आत्मा की भेंट हुई नहीं, उसे व्यवहार-ब्यवहार सब संसार खाते हैं। यहाँ तो धर्म की बात चलती है। समझ में

आया? वह हो तो, वह तो अनादि से है। समझ में आया?

इस कारण... है? **समस्त विभावपरिणामों के जीतने से...** है न अन्दर? संस्कृत में है। है न? '**प्रतपनाद्विजयनात-प्रतपनाद्विजयनात्त**' संस्कृत में दो शब्द पड़े हैं। उनकी व्याख्या यहाँ अलग की है। प्रताप की और विजय की (व्याख्या) की है। आहाहा! संस्कृत में है। '**समस्तपरद्रव्येच्छानिरोधेन परमात्मस्वभावे प्रतपनाद्विजय-नात्तपश्चरणं भवति**' इसे तपश्चरण कहा जाता है। आहाहा! अरे! वीतरागमार्ग की खबर नहीं होती और राग के मार्ग में धर्म माने, वह तो वीतरागमार्ग नहीं, वह जैनमार्ग नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : बाहर में सब उसे साधन कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह साधन कब? वह निश्चय हो उसे व्यवहार साधन कहा। समझ में आया? निश्चय सम्यग्दर्शन हुआ, उसे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा हो, उसे व्यवहार (साधन कहा जाता है)। है तो राग। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह तो राग है। वह सम्यग्दर्शन की पर्याय नहीं। परन्तु यहाँ निश्चय सम्यक्त्व आत्मा की प्रतीति अनुभव में हुई तो साथ में राग को सहचर निमित्त देखकर व्यवहार समकित कहा। वह समकित नहीं, वह तो राग है। इसी प्रकार वह साधक है नहीं, वह तो राग है। आहाहा! समझ में आया? गजब भाई! पहले तो अभी सत्य को समझने का ठिकाना नहीं होता। आहाहा! है?

समस्त विभावपरिणामों को जीतने से... देखो! यह जिन। पुण्य-पाप के विकल्पमात्र को जीतने से अन्तर में जिन वीतरागी होते हैं, उसे तपस्या कहते हैं। आहाहा! टीका भी की है न! वह **आत्मा ही तपश्चरण है,...** आत्मा की निर्मल वीतरागदशा हुई तो वह आत्मा की दशा, वही आत्मा है। राग और पुण्य के विकल्प, वह आत्मा की दशा नहीं, वह आत्मा नहीं। आहाहा! यह व्यवहार साधक कहा, वह भी आत्मा नहीं। अरे... अरे...! आहाहा! तथापि निश्चय के साधकपने में ऐसे व्यवहार विकल्प को देखकर, सहचर साथ में देखकर निमित्त का आरोप करके सहचर-साधक कहा है। आहाहा! यह न समझे तो फिर गड़बड़ करे तो क्या हो? यहाँ तो आचार्य के मूल पाठ में तो अकेला आत्मा ही लेना है। मूल पाठ में साधक और वह कुछ है नहीं। टीकाकार ने स्पष्ट किया है थोड़ा कि ऐसा होवे तो उसे अन्दर ऐसा विकल्प होता है। निर्विकल्प

आनन्द और शान्ति प्रगट हुई, उसे पूर्ण वीतरागता है नहीं और ऐसा विकल्प-राग होता है, उसे व्यवहार से साधक आरोप करके कहा। है तो बाधक। आहाहा! कठिन बातें, भाई! समझ में आया? क्या कहा? दशरथलालजी! तुम मास्टर हो? मास्टर? आहाहा! ऐसी बात है।

जिसमें भगवान आनन्द का कन्द चिदानन्द प्रभु प्रगट न हो, उस चीज़ को आत्मा कहते नहीं। उसे धर्म कहते नहीं। आहाहा! पहले ज्ञान में ऐसा निर्णय तो करे कि यह मार्ग ऐसा है। ऐसे निर्णय का भी ठिकाना नहीं। वह व्यवहार निर्णय, हों! सच्चा निर्णय तो अनुभव हो, तब होता है। आहाहा! परन्तु विकल्प से निर्णय में तो ऐसी बात निश्चित करे कि रागरहित, विकल्परहित आनन्द की दशा प्रगट हो, वह तप है। आहाहा! यह लंघन किये और अपवास किये, महीने और दो महीने के अपवास किये तो निर्जरा हो गयी। धूल में भी निर्जरा नहीं। निमन्त्रण-पत्रिका आयी थी, उसमें यह लिखा था। पालीताणा, दो साधु हैं, गोंडल संघाडा के। गोंडल के दो साधु हैं न? वे अपवास करते होंगे। उन्हें श्रद्धा का फेरफार है। उसे उसमें भी कुछ ठिकाना नहीं, बदल डाला। वहाँ चातुर्मास करके यहाँ आये होंगे। २३ या ऐसे कुछ अपवास किये। ऊपर निमन्त्रण पत्रिका थी। भव संचेण कोडि कम्म तपस्या निर्जरेहि। करोड़ों भव के संचित कर्म तपस्या से (निर्जरा करके)। यह तपस्या उनकी। यहाँ पालीताणा रहे थे। स्थानकवासी साधु हैं, गोंडल संघाडा के हैं। देवराजजी थे, उनके शिष्य हैं। अन्दर ऊपर लिखा था, देवराजजी, कानजीस्वामी में हो गये हैं, वे सब हमारे गुरु थे। गुरुभ्यो नमः। कैसे थे यह खबर है। आहाहा! अरे! लोग बेचारे अन्धे अन्ध... जिन्दगी चली जाती है। वीतरागमार्ग की गन्ध भी नहीं आती। आहाहा! उसे जन्म-मरण का अन्त कब आवे? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **आत्मा ही तपश्चरण है,...** आहाहा! अब (कहते हैं), **आत्मा ही निजस्वरूप की रुचिरूप सम्यक्त्व है,...** अन्दर 'निश्चय' शब्द चाहिए। निश्चय शब्द रह गया है। समझ में आया? क्या? **आत्मा ही निजस्वरूप की रुचि...** यह छहढाला में आता है न? 'परद्रव्य से भिन्न आत्मरुचि समकित भला है।' जो निश्चय समकित की बात है। पहले के पण्डितों ने तो बहुत लिखा है, परन्तु वर्तमान इसके अर्थ करनेवाले (गड़बड़ करते हैं)। समझ में आया? यह देखो! यहाँ निश्चय समकित कहा। किसे?

आत्मा ही निजस्वरूप... स्वरूप शुद्ध चैतन्यघन की रुचि। आहाहा! उसकी रुचिरूप निश्चय समकित है। वह निश्चय शब्द रह गया है। है इसमें? टीका पढ़ते हैं, उसमें है, ऐसा नहीं कहा? इसमें चाहिए। संस्कृत में है। पहली लाईन है, देखो! '**रुचिकरणातिश्चयसम्यक्त्वं भवति**' संस्कृत में ऊपर है। समझ में आया? आहाहा! देखो! कोई कहे कि आत्मरुचि, वह तो व्यवहार समकित है। निर्विकल्प वीतराग हो, तब निश्चय (कहलाये)। अरे! भगवान! कुछ गड़बड़ करे अभी।

आचार्य तो कहते हैं, आत्मा वस्तु शुद्ध चिद्स्वरूप पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता, कर्ता, कर्म, करण आदि गुण से परिपूर्ण प्रभु आत्मा भरा है। आहाहा! षट्कारक के षट् गुण अन्दर में है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा परिपूर्ण आत्मदल स्वभाव, उसके सन्मुख होकर विकल्प से विमुख होकर, व्यवहार से विमुख होकर, स्वभाव के सन्मुख होकर जो रुचि हो, वह निश्चय समकित है। लो! यह निश्चय समकित। आहाहा! यह चौथे गुणस्थान में निश्चय समकित होता है। कोई कहे कि निश्चय समकित सातवें में और आठवें में होता है, यह व्यवहार समकित है। (तो उसकी) बात खोटी है। समझ में आया? आहाहा! लिखा है, वहाँ सुधारा है। निश्चय है न?

यह सर्वथा उपादेयरूप है... आहाहा! विकल्प बिना की वीतराग शक्ति-स्वभाव भगवान की वीतरागी रुचि, वह निश्चय सम्यग्दर्शन, वह सर्वथा उपादेय है। देखो! वीतराग... यह तो बाद में। ऊपर से डाला। टीका में यह शब्द नहीं है।

मुमुक्षु : शुद्धात्मा उपादेय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में, यह बाद में। हाँ, '**स्वशुद्धात्मैवोपादेय इति**' '**रुचिकरणाति**' ऐसा डाला है। पहले ऐसा डाल दिया। **सर्वथा उपादेयरूप है,...** इन्होंने बाद में डाला। यहाँ तो सर्वथा उपादेय इति। सर्वथा शब्द नहीं है, इतनी बात की। समझ में आया? मुझे तो वह सर्वथा देखना था। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐव शब्द है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐव अर्थात् निश्चय, ऐव अर्थात् निश्चय। शुद्धात्मा ऐव, शुद्धात्मा ही, ऐसा अर्थ होता है। ऐव का अर्थ ही—निश्चय। सर्वथा शब्द है या नहीं, (यह देखना था)। वे कथंचित् कहे न! आहाहा!

शुद्ध आत्मा परमात्मा आनन्दकन्द दल, 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आहाहा! ऐसा सिद्धस्वरूप अपना पद, उसे स्वसन्मुख होकर अन्तर रुचि, निर्विकल्प दृष्टि करना, उसका नाम निश्चय समकित है, वह उपादेय है। ऐसा कहना से व्यवहार समकित का विकल्प उपादेय नहीं है, ऐसा कहना है। विकल्प साथ में हो, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा हो तो उसे व्यवहार समकित कहा जाता है। परन्तु वह व्यवहार समकित उपादेय नहीं। यह लिखा है। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है। दोनों को उपादेय मानता है, वह मूढ़ है। दोनों को मोक्षमार्ग मानता है, वह मूढ़ है। दोनों उसमें आया है—निश्चयाभास और व्यवहाराभास में है न। वह अधिकार तो पहले हमको वाँचने पर इतना हुआ... ओहोहो! (संवत्) १९८४ के वर्ष। लिख लिया। हम पुस्तक नहीं रखते थे। भार-वजन कौन रखे। नहीं तो लोग तो बेचारे देते थे। तो वह अधिकार लिख लिया था। (संवत्) १९८४। ४८ वर्ष हुए। रखी है पुस्तक, लिखा हुआ कागज है। हमारे जीवराजजी थे न, उन्होंने लिखा था। यहाँ बगसरा, बगसरा है न? वहाँ एक मन्दिरमार्गी कल्याणजीभाई थे। वे श्रीमद् के माननेवाले। वहाँ उनके पास था। मोक्षमार्गप्रकाशक वहाँ था तो उनसे ले लिया। बगसरा... बगसरा। बहुत वर्ष हो गये। आहाहा! (संवत्) १९८४। सोलह वर्ष वे और यह ३२, ४८ (वर्ष हुए)। वह अधिकार बहुत अच्छा। ओहोहो! अन्तर में इसे भान हो जाये। समझ में आया? पर का—व्यवहार का अभिमान उड़ जाये। यह व्यवहार करते हैं और यह व्यवहार करते हैं। उससे साधक होगा। धूल भी नहीं। अनन्त बार किया। आहाहा!

आत्मदर्शन बिना, सम्यग्दर्शन बिना, ऐसा व्यवहार अनन्त बार किया। उसे परम्परा मुक्ति का कारण माननेवाले मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसा कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य की बारह भावना है। ग्रन्थ है, बारह अनुप्रेक्षा का ग्रन्थ है। उसमें यह लिखा है, यह आस्रव निन्द्य है, परम्परा अनर्थ का कारण है। और एक अध्यात्म पंच संग्रह, दीपचन्दजी कृत है। उसमें भी लिखा है। अज्ञानी ऐसा मानता है कि हम यह दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति करते हैं, वह परम्परा मोक्ष का कारण है। मूढ़ है। समझ में आया? वह पुस्तक दीपचन्दजी कृत है। अध्यात्म पंच संग्रह। (उसमें) परमात्म पुराण, ज्ञानदर्पण, उपदेश रत्नमाला (ज्ञानदर्पण और सवैयाटीका), ऐसे पाँच अधिकार (ग्रन्थ) हैं। पूरी पुस्तक है। वाँचते समय चिह्न किये होंगे, हर समय कहीं वाँचन हो नहीं इसलिए।

यहाँ कहते हैं, **अन्य कोई नहीं है,...** ऐसा कहकर क्या कहा? यहाँ व्यवहार समकित की व्याख्या नहीं की, भाई! शील और संयम में व्यवहार डाला। इसमें नहीं डाला। अकेला निश्चय। आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, शुद्ध स्वभाव के सन्मुख होकर, विकल्प से विमुख होकर, निमित्त से विमुख होकर, आनन्द के नाथ के सन्मुख होकर अनुभव में जो सम्यग्दर्शन होता है, वही सम्यग्दर्शन सच्चा और वही उपादेय है। समझ में आया? आहाहा! है? **इससे सम्यग्दर्शन आत्मा ही है,...** है? वह सम्यग्दर्शन आत्मा है, राग नहीं। व्यवहार राग, वह सम्यग्दर्शन नहीं, वह आत्मा नहीं। आहाहा! भारी कठिन बातें! कथन व्यवहार के शास्त्र में आवें, उन्हें पकड़े। व्यवहार का कथन है, वह हेय है। तथापि निमित्त देखकर उसे साधक का आरोप दिया। आहाहा! बहुत गड़बड़। जिसे अभी श्रद्धा की खबर नहीं होती।

पहली चीज़ ही सम्यग्दर्शन किस प्रकार प्राप्त हो? वह तो त्रिकाली आनन्द के नाथ का आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है। क्योंकि सम्यक् स्वरूप जो पूर्ण है, उसके आश्रय से सम्यक्-सत्य दर्शन प्रगट होता है। वह निश्चय समकित है, आहाहा! वही उपादेय है, वह आत्मा है। है? अन्य कोई नहीं। व्यवहार नहीं, यहाँ ऐसा कहते हैं। व्यवहार डाला तो नहीं, परन्तु नहीं—ऐसा कहा। आहाहा! व्यवहार समकित देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि नहीं, वह आदरणीय है नहीं। वह हेयरूप से आती है। आहाहा! भारी कठिन! शास्त्र के अर्थ करने में ही बड़ी पूरी भूल है। व्यवहार साधन है, व्यवहार का साधन करो। किसे? जिसे अन्दर निश्चय साधन प्रगट हुआ है, उसे व्यवहार साधन का आरोप करके साधन कहा। है तो बाधक। आहाहा! वहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक में भी कहा नहीं? कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान के साथ सहचर देखकर, निमित्त देखकर आरोप से मोक्षमार्ग कहा है। है तो बन्ध का कारण। व्यवहार समकित आदि है तो बन्ध का कारण। परन्तु अपने स्वभाव का निश्चय देखकर साथ में सहचर देखकर व्यवहार आरोप करके सम्यग्दर्शन कहा है।

टोडरमलजी ने इतना स्पष्ट किया है। आचार्यकल्प नाम है। समझ में आया? कोई आचार्यकल्प ऐसा लगाते थे। बोलना नहीं। मुम्बई। हाँ.... आचार्यकल्प कानजीस्वामी। बोलना नहीं आचार्यकल्प। आहाहा! यह वहाँ चला था। मुम्बई में

जयन्ती हुई न तब। टोडरमलजी की बात अलग है। उस समय नहीं था और उन्हें एकदम (टोडरमलजी ने यह बात प्रकाशित की)। समझ में आया? टोडरमलजी का मोक्षमार्गप्रकाशक.... ओहोहो! गम्भीर... गम्भीर... गम्भीर। सामान्य बात को स्पष्ट करके छनावट करके खुल्ला रख दिया है। आचार्य को यह कहना है।

मुमुक्षु : आपने भी आचार्य का खुल्ला किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में, परन्तु यह तो....

यहाँ कहते हैं, आहाहा! **अन्य कोई नहीं है,....** लो, यह समकित की बात हुई। अब ज्ञान। ज्ञान—सच्चा ज्ञान—सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं? **वीतराग स्वसंवेदनज्ञान के अनुभव से आत्मा ही है,...** आहाहा! समझ में आया? **वीतराग स्वसंवेदनज्ञान के अनुभव से आत्मा ही निश्चयज्ञानरूप है,...** है? वीतरागरूप से स्वसंवेदनज्ञान अन्दर प्रगट हो, उसे ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! यह शास्त्र का भणतर और पठन, वह ज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया? जिसमें ज्ञान भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप का ज्ञान हो, आत्मज्ञान—ऐसा कहा न? आत्मज्ञान। राग का ज्ञान, शास्त्र का ज्ञान नहीं। और उसमें भी आत्मज्ञान कहा। इसका अर्थ पर्याय का भी ज्ञान नहीं। आत्मज्ञान कहा। आहाहा! अरेरे! ऐसी सत्य बात भी कान में न पड़े, वह प्रयोग कब करे? वह कहाँ जाये? आहा! अरेरे! चौरासी के अवतार में दु:खी, दु:खी, दु:खी है। राग की एकता में जेल में पड़ा है यह। आत्मा जेल में पड़ा है। आहाहा! जेल होती है न? जेल कहते हैं न? राग और पुण्य के विकल्प की एकता, वह बड़ी जेल है। आहाहा!

मुमुक्षु : मीठा जहर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मीठा जहर है। यह खटमल को मारने का जहर नहीं आता? खटमल... खटमल। जहरी दवा आती है। और यह तो आत्मा को मार डालने की जहरीली दवा है। मार डालने का अर्थ—चैतन्यस्वभाव पूर्णानन्द का आदर नहीं करके, उसका अनादर करके जो जिसमें नहीं, ऐसे राग का आदर करना, वह आत्मा के स्वभाव का अनादर है, वह मृत्यु है। आहाहा! अर्थात् वह मैं नहीं, वह मैं नहीं, यह राग, वह मैं। आहाहा! महाप्रभु चैतन्य के जीवन को धक्का मार दिया। आहाहा! जीवत्वशक्ति आती है न? ४७ शक्तियाँ हैं, उनमें पहली जीवत्वशक्ति है। दर्शन, ज्ञान,

आनन्द और सत्ता, ऐसे चैतन्य के प्राण, उन प्राण से भगवान अनादि से जीता है। आहाहा! जीवत्वशक्ति है ४७ में। सब पर व्याख्यान हो गये हैं, बाहर आ गये हैं। समयसार में ४७ शक्तियों का वर्णन है, उसमें पहली जीवत्वशक्ति है। जीवत्व का अर्थ जीव, जीवन है न? समयसार की शुरुआत में दूसरी गाथा (ली है), '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**' तो वहाँ से '**जीवो**' में से पहली जीवत्वशक्ति निकाली। वहाँ से शुरु किया। अभी दूसरे एक ने कॉपी की है। देवचन्दजी हो गये हैं न श्वेताम्बर में? उनमें शक्ति-बक्ति कहीं है नहीं बात। श्वेताम्बर में यह बात ही कहाँ है! इसलिए फिर अभी थोड़ी सात, आठ, दस शक्तियाँ आयी हैं। परन्तु उसमें जीवत्व को पहली नहीं डाला, दूसरी डाला है, आड़ी-टेढ़ी करके। ऐसा कि इतनी शक्ति भण्डार में से हाथ आयी है। देवचन्दजी की लिखी हुई। देवचन्दजी की शक्ति थी कब उसमें? शक्तियों का वर्णन तो दिगम्बर सन्तों में है। आहाहा! क्योंकि शक्तिवान ऐसे द्रव्य की दृष्टिवान की जो शक्ति है। आहाहा! समझ में आया? समाचारपत्र में अभी आया है। इतनी शक्ति (मिली है)। कहाँ शक्ति? जीवत्व, चिति, दृशि, वहाँ से नहीं, अद्धर से ली है। ज्ञान, दर्शन और ऐसा कुछ लिया है।

यहाँ तो जीवत्वशक्ति से शुरु करके सिद्धान्त (कहा है)। '**जीवो**' जीवत्व-जीवन जिसका। जीव का जीवन। जिसके ज्ञान, दर्शन, आनन्द और सत्ता के—जिसका जीवन है। आहाहा! उसका टिकना, उसका जीवन उससे है। समझ में आया? यह यथार्थ वर्णन है। शक्ति के वर्णन की शैली में भी यथार्थता कैसी है और अयथार्थ कौन कहता है, उसमें पोल लिखते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा यह प्राण से तो जीता नहीं, दस अशुद्ध भावप्राण से भी जीता नहीं। शुद्ध चैतन्य आनन्द, ज्ञान, सत्ता के भावप्राण से अनादि से आत्मा जीता है। आहाहा! उसे यहाँ जीव कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? अध्यात्म की शैली अलग है, बापू! आहाहा!

वीतराग स्वसंवेदनज्ञान के अनुभव से... आहाहा! शास्त्र का ज्ञान, वह भी विकल्पवाला है। आहाहा! बारह अंग का ज्ञान भी विकल्पवाला है। ऐसा नहीं कहा कलश में? कलश में है। उसमें भी अनुभूति करने का विधान है। कलशटीका में है। आहाहा! यहाँ तो आत्मज्ञान, वह कैसा? वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान। आहाहा! वह चौथे

गुणस्थान में (प्रगट होता है)। वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा का वीतरागी स्वसंवेदन। स्व अर्थात् अपने से, सं अर्थात् प्रत्यक्ष। आत्मा का ज्ञान करना, वह स्वसंवेदनज्ञान, वह निश्चय ज्ञान है। वह सच्चा ज्ञान है। आहाहा! बाकी बाह्य के ज्ञान के अभिमान करना, वह मिथ्या भ्रान्ति है। आहाहा! बाह्य का क्षयोपशम, वह बाह्य का क्षयोपशम, वह अन्तर का नहीं। और अन्तर का क्षयोपशम, वह किसके आश्रय से? पूर्ण ज्ञानपिण्ड प्रभु के आश्रय से। आहाहा! जिस ज्ञान में भगवान समीप वर्तता है, जिस ज्ञान में भगवान आत्मा समीप वर्तता है, उसे ज्ञान कहते हैं। जिस ज्ञान में आत्मा दूर वर्तता है... आहाहा! उसे ज्ञान नहीं कहते। आहाहा! प्रभु... प्रभु... प्रभु! अमरचन्दभाई! ऐसी बातें हैं। भाई! अरेरे! वीतरागमार्ग परमार्थ सत्यमार्ग क्या है, वह सुनने को मिले नहीं, भगवान! हम क्या करें? पहले यह मान्यता तो कर कि मार्ग यह है, दूसरा कोई है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

नियमसार में कहा है कि भाई! तेरी शक्ति न हो तो श्रद्धा में तो यथार्थ रखना। आहाहा! श्रद्धा बराबर यथार्थ रखना। अनुभव की श्रद्धा, वही वस्तु है। आहाहा! नियमसार में कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा कि यह मुनिपना है। ऐसी चारित्र दशा पालन न कर सके तो श्रद्धा में गड़बड़ करना नहीं कि इस काल में अभी ऐसा होता नहीं, अभी ऐसा होता नहीं। श्रद्धा बराबर रखना। समझ में आया? नियमसार में ऐसा है। मूल गाथा है, हों! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **वीतरागस्वसंवेदनज्ञान के अनुभव से आत्मा ही निश्चयज्ञानरूप है,...** आहाहा! अब फिर मोक्षमार्ग क्या है, वह कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, श्रावण कृष्ण १४, मंगलवार
दिनांक-२४-०८-१९७६, गाथा-९३-९४, प्रवचन-७१

परमात्मप्रकाश, ९३ गाथा। अन्तिम बोल हैं। यहाँ तक आया है, देखो! **वीतरागस्वसंवेदनज्ञान के अनुभव से आत्मा ही निश्चयज्ञानरूप है,...** यहाँ तक आया है। सेठ! है? सेठ! बताओ सेठ को। **वीतरागस्वसंवेदनज्ञान के अनुभव से आत्मा ही निश्चयज्ञानरूप है,...** शास्त्रज्ञान, वह तो व्यवहार से कहने में आता है। आत्मा वीतरागस्वरूप है, उसका संवेदन होना, वीतरागस्वरूप का अन्दर संवेदन होना, उसका नाम निश्चय सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! यहाँ तक तो कल आया है।

अब यहाँ (कहते हैं), **मिथ्यात्व....** विपरीत मान्यता और राग-द्वेषादि **समस्त विकल्प जाल को त्यागकर परमात्मतत्त्व में...** अपना जो शुद्ध परमात्मतत्त्व है, शुद्ध त्रिकाली परमात्मतत्त्व, उसमें सम **परमसमरसीभाव के परिणमन से...** परम समताभाव से वीतरागी परिणमन से **आत्मा ही मोक्षमार्ग है।** वीतराग निर्विकल्पस्वरूप भगवान, ऐसा जो परमात्मतत्त्व, सब विकल्प को छोड़कर, व्यवहार के विकल्प को भी छोड़कर परमसमरसीभाव अकेला वीतराग शान्त (भाव में परिणमन होना)। उसमें आया न? 'राग आग दाह दहे सदा, तातै समामृत सेईये।' शुभराग है, वह भी आग है। आहाहा! दाह है। 'राग आग दाह दहे सदा, तातै समामृत सेईये।' समामृत यह। सम— परमसमरसीभाव। विकल्प के त्याग से परम वीतराग परिणति अन्तर में होना, उसका नाम मोक्षमार्ग है। उसका नाम निश्चयमोक्षमार्ग है। उसका नाम सच्चा मोक्षमार्ग है। समझ में आया? व्यवहार, वह असत्यार्थ मोक्षमार्ग है। निमित्त देखकर कहा, परन्तु है असत्यार्थ। व्यवहार मोक्षमार्ग है नहीं। (मोक्षमार्ग) यह एक ही है।

तात्पर्य यह है कि बहिरंग द्रव्येन्द्रिय-संयमादि के पालने से... यह निमित्त, **अन्तरंग में शुद्धात्मा के अनुभवरूप...** आत्मा के अन्तर आनन्द के अनुभवरूप **भावसंयमादिक के परिणमन से...** अकषायभावरूप परिणमन से **उपादेयसुख...** उसमें जो आनन्द आता है, जो **अतीन्द्रिय सुख उसके साधकपने से आत्मा ही उपादेय है।** अतीन्द्रिय सुख का साधन आत्मा है। आहाहा! व्यवहार, अतीन्द्रिय सुख का साधन नहीं है। ऐसी बात है। समझ में आया? **आत्मा ही उपादेय है।** यह ९३ हुई।

गाथा - ९४

अथ स्वशुद्धात्मसंवित्तिं विहाय निश्चयनयेनान्यदर्शनज्ञानचारित्रं नास्तीत्यभिप्रायं मनसि संप्रधार्य सूत्रं कथयति –

९४) अण्णु जि दंसणु अत्थि ण वि अण्णु जि अत्थि ण णाणु।
अण्णु जि चरणु ण अत्थि जिय मेल्लिवि अप्पा जाणु।।९४।।

अन्यद् एव दर्शनं अस्ति नापि अन्यदेव अस्ति न ज्ञानं।
अन्यद् एव चरणं न अस्ति जीव मुक्त्वा आत्मानं जानीहि।।९४।।

अण्णु जि दंसणु अत्थि ण वि अण्णु जि अत्थि ण णाणु अण्णु जि चरणु ण अत्थि जिय अन्यदेव दर्शनं नास्ति अन्यदेव ज्ञानं नास्ति अन्यदेव चरणं नास्ति हे जीव। किं कृत्वा। मेल्लिवि अप्पा जाणु मुक्त्वा। कम्। आत्मानं जानीहीति। तथाहि यद्यपि षड्द्रव्यपञ्चास्तिकाय–सप्ततत्त्वनवपदार्थाः साध्यसाधकभावेन निश्चयसम्यक्त्वहेतुत्वाद्व्यवहारेण सम्यक्त्वं भवति, तथापि निश्चयेन वीतरागपरमानन्दैकस्वभावः शुद्धात्मोपादेय इति रुचिरूपपरिणामपरिणत–शुद्धात्मैव निश्चयसम्यक्त्वं भवति। यद्यपि निश्चयस्वसंवेदनज्ञानसाधकत्वातु व्यवहारेण शास्त्रज्ञानं भवति। तथापि निश्चयनयेन वीतरागस्वसंवेदन ज्ञान परिणतः शुद्धात्मैव निश्चयज्ञानं भवति। यद्यपि निश्चयचारित्रसाधकत्वान्मूलोत्तरगुणा व्यवहारेण चारित्रं भवति, तथापि शुद्धात्मानुभूति–रूपवीतरागचारित्रपरिणतः स्वशुद्धात्मैव निश्चयनयेन चारित्रं भवतीति। १अत्रोक्तलक्षणेऽभेद–रत्नत्रयपरिणतः परमात्मैवोपादेय इति भावार्थः।।९४।।

आगे निज शुद्धात्मस्वरूप को छोड़कर निश्चयनय से दूसरा कोई दर्शन ज्ञान चारित्र नहीं है, इस अभिप्राय को मन में रखकर गाथा–सूत्र कहते हैं –

दर्शन अथवा ज्ञान कोई भी आत्मा से है अन्य नहीं।
चारित भी नहिं अन्य आत्म से सबको जानो आत्मा ही।।९४।।

अन्वयार्थ :– [जीव] हे जीव [आत्मानं] आत्मा को [मुक्तवा] छोड़कर [अन्यदपि] दूसरा कोई भी [दर्शनं] दर्शन [न एव] नहीं है, [अन्यदपि] अन्य कोई [ज्ञानं न अस्ति] ज्ञान नहीं है, [अन्यद् एव चरणं नास्ति] अन्य कोई चरित्र नहीं है, ऐसा [जानीहि] तू जान, अर्थात् आत्मा ही दर्शन ज्ञान चारित्र है, ऐसा संदेह रहित जानो।

भावार्थ :– यद्यपि छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व, नौ पदार्थ का श्रद्धान

कार्य – कारणभाव से निश्चयसम्यक्त्व का कारण होने से व्यवहारसम्यक्त्व कहा जाता है, अर्थात् व्यवहार साधक है, निश्चय साध्य है, तो भी निश्चयनयकर एक वीतराग परमानंदस्वभाववाला शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसा रुचिरूप परिणाम से परिणत हुआ शुद्धात्मा ही निश्चयसम्यक्त्व है, यद्यपि निश्चयस्वसंवेदनज्ञान का साधक होने से व्यवहारनयकर शास्त्र का ज्ञान भी ज्ञान है, तो भी निश्चयनयकर वीतरागस्वसंवेदनज्ञानरूप परिणत हुआ शुद्धात्मा ही निश्चयज्ञान है। यद्यपि निश्चयचारित्र के साधक होने से अट्ठाईस मूलगुण, चौरासी लाख उत्तरगुण, व्यवहारनयकर चारित्र कहे जाते हैं, तो भी शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतराग–चारित्र को परिणत हुआ निज शुद्धात्मा ही निश्चयनयकर चारित्र है। तात्पर्य यह है कि अभेदरूप परिणत हुआ परमात्मा ही ध्यान करने योग्य है।।९४।।

गाथा-९४ पर प्रवचन

आगे निज शुद्धात्मस्वरूप को छोड़कर निश्चयनय से दूसरा कोई दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं है,... आहाहा! व्यवहार कहा परन्तु वह दर्शन, ज्ञान, चारित्र है नहीं। समझ में आया? अपना भगवान आत्मा आनन्द दल चैतन्य ज्ञायकभाव ध्रुव के अवलम्बन से वीतरागी पर्याय—परिणति होती है, वही एक मोक्षमार्ग है, अन्य कोई मोक्षमार्ग नहीं है। यहाँ ऐसा कहा कि अन्य कोई दर्शन, ज्ञान, चारित्र नहीं है। समझ में आया? ९४।

९४) अण्णु जि दंसणु अत्थि ण वि अण्णु जि अत्थि ण णाणु।
अण्णु जि चरणु ण अत्थि जिय मेल्लिवि अप्पा जाणु॥९४॥

अन्वयार्थः—हे जीव!.... जीव और आत्मा दो शब्द लिये हैं। आत्मा कहो या जीव कहो। **हे जीव! आत्मा को छोड़कर दूसरा कोई भी (सम्यक्) दर्शन नहीं है,...** यह त्रिकाली की बात नहीं। वर्तमान निश्चय सम्यग्दर्शन का परिणमन, वह आत्मा के अतिरिक्त होता नहीं और वह आत्मा है, ऐसा कहा जाता है। रागादि भाव है, वह आत्मा नहीं, अनात्मा है। आगे साधन—साध्य में व्यवहार कहेंगे। व्यवहार से साधन कहेंगे। असत्यार्थनय से साधन कहेंगे। आहाहा! परन्तु वह तो बन्ध का कारण है। समझ में आया? इस आत्मा को छोड़कर दर्शन कोई (दूसरी) वस्तु नहीं है। आहाहा! भगवान

(आत्मा) ज्ञायकपिण्ड प्रभु, चैतन्य के नूर के तेज का पूर... आहाहा! उसका आश्रय करके, उसके आश्रय से जो सम्यग्दर्शन है, वह आत्मा है। आत्मा से भिन्न वह कोई वस्तु नहीं। कहो, समझ में आया? निश्चय की बात भारी सूक्ष्म है, भाई! व्यवहार की बात आवे, वहाँ प्रसन्न हो जाये। व्यवहार को यहाँ कहेंगे। साध्यरूप से साधक व्यवहार को कहते हैं। परन्तु वह तो उपचारनय से व्यवहारनय से कहा है। वह यथार्थ, वह साधक नहीं है। आहाहा! यह भी कहेंगे।

हे जीव! आत्मा को छोड़कर दूसरा कोई भी सम्यग्दर्शन नहीं है,... आहाहा! व्यवहार और विकल्प को सम्यग्दर्शन कहा, वह सम्यग्दर्शन नहीं। चिदानन्द भगवान पूर्णानन्द प्रभु की दृष्टि का परिणमन हो, वह आत्मा है। आत्मा को छोड़कर सम्यग्दर्शन कोई दूसरी वस्तु नहीं। अर्थात् व्यवहार राग में सम्यग्दर्शन नहीं, ऐसा कहते हैं। जो व्यवहार से सम्यग्दर्शन कहलाता है, वह आत्मा को छोड़कर जो सम्यग्दर्शन है, वह नहीं। ऐसा कहते हैं। देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का विकल्प... आयेगा, कहेंगे, नौ तत्त्व, छह द्रव्य की श्रद्धा निमित्त होने से व्यवहार से साधक कहा, परन्तु वह असत्य है। क्योंकि उसमें आत्मा नहीं आया। वह तो राग आया। आहाहा! **आत्मा को छोड़कर दूसरा कोई भी दर्शन नहीं है,...** है? भाषा क्या है? '**अन्यदपि**' दूसरा कोई भी, ऐसा। आहाहा!

वस्तु निर्विकल्प आनन्दप्रभु की अनुभव में प्रतीति होना, वह आत्मा की शुद्ध परिणति है। तो उस आत्मा को छोड़कर सम्यग्दर्शन कोई दूसरी वस्तु है ही नहीं। आहाहा! यह झगड़े सब। '**न एव**' **नहीं है,....** सम्यग्दर्शन भगवान पूर्णानन्द '**भूदत्थमस्सिदो**' भूतार्थ त्रिकाल भगवान के आश्रय से सम्यग्दर्शन हो, वह आत्मा है और पर के आश्रय से देव-गुरु-शास्त्र आदि की श्रद्धा हो, वह आत्मा नहीं, वह तो अनात्मा है। उसे व्यवहार कहकर श्रद्धा छुड़ाई है। आहाहा! समझ में आया?

अन्य कोई ज्ञान नहीं है,... भगवान आत्मा का अनुभव स्वसंवेदन ज्ञान सिवाय आत्मज्ञान नहीं है। आहाहा! शास्त्रज्ञान को ज्ञान कहा, वह उपचार से सहचर देखकर वर्तमान व्यवहार कहा। और अनुभव हुआ, उसके पहले शास्त्रज्ञान का विकल्प था, उसे साधक कहा, वह नैगमनय से कहा। वर्तमान शास्त्रज्ञान है, त्रिकाली आत्मा के (आश्रय) से ज्ञान हुआ, वह ज्ञान है और शास्त्रज्ञान है, वह व्यवहारज्ञान है। सहचर देखकर

निमित्त में आरोप देकर व्यवहारज्ञान कहा। वह हेय है। आहाहा! अरे! भाई! गजब बातें, बापू! समझ में आया? है? यह परमात्मप्रकाश रखे हैं। इस समय तो ७५० शास्त्र खप गये हैं। अब है? नहीं होंगे। ठीक किया, यह वाँचन में चलता है उसमें....

परमात्मा... परमात्मा... परमात्मा स्वयं परमात्मा। जिसका स्वरूप परमात्मा द्रव्यस्वभाव, परम आत्मा परमस्वरूप, आनन्दघन चिद्घन अकेला ज्ञानरस, ज्ञानभाव, ज्ञानस्वभाव पूर्ण, उसके आश्रय से उसका वेदन हो वह सम्यग्ज्ञान है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई ज्ञान नहीं है। आहाहा! शास्त्र का ज्ञान व्यवहार से कहा था, उसे यहाँ कहा, अन्य नहीं, वह ज्ञान नहीं। समझ में आया? मार्ग प्रभु! अन्तर के अवलम्बन से होता है, इसके अतिरिक्त सब बातें हैं। अब धर्म करना हो तो, न करना हो तो अनादि काल से यह करता आया है। समझ में आया?

अन्य कोई ज्ञान नहीं है,... 'अन्यद् एव चरणं नास्ति' आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई चारित्र नहीं है। आहाहा! भगवान पूर्ण ज्ञानानन्द वीतराग अनाकुल आनन्द, उसकी स्थिरता की रमणता की वीतराग की परिणति, वह आत्मा है। आत्मा के अतिक्ति दूसरा कोई चारित्र नहीं। पंच महाव्रत के परिणाम, वे आत्मा नहीं, इसलिए वहाँ चारित्र नहीं। आहाहा! समझ में आया? अट्ठाईस मूलगुण जो साधु के कहते हैं, वह आत्मा नहीं, वह तो राग है, इसलिए वह चारित्र नहीं। आहाहा! है? **'अन्यद् एव चरणं नास्ति' अन्य कोई चारित्र नहीं है, ऐसा तू जान।** परमात्मप्रकाश, योगीन्द्रदेव। आहाहा! तू ऐसा जाना, ऐसा कहते हैं। दूसरा जाना, माना है, उसे छोड़ दे। व्यवहारचारित्र और व्यवहारदर्शन, यह दृष्टि छोड़ दे। यह सत्य है। समझ में आया? अरे! इसे ऐसे मनुष्यदेह में ऐसी वाणी का योग मिला तो भी यह वास्तविक तत्त्व को न माने और उपचारिक तत्त्व को यथार्थ साधन माने। समझ में आया? आहाहा! उसका आगे कब आवे? भाई!

अर्थात् आत्मा ही दर्शन, ज्ञान, चारित्र है, ऐसा सन्देह रहित जानो। आहाहा! सन्देहरहित—निःसन्देह। आहाहा! निज भगवान पूर्णानन्द परमात्मा, उस स्वरूप दर्शन का परिणमन, ज्ञान का परिणमन और चारित्र का परिणमन हो, वह आत्मा है। यह निश्चय जो आत्मा है, वह तो त्रिकाली, परन्तु इस आत्मा के—इसके परिणमन को ही आत्मा कहा। आहाहा! समझ में आया? नियमसार ३८ गाथा में तो (ऐसा कहा),

संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय भी हेय है, ऐसा कहा है। पर्याय है न! त्रिकाली ज्ञायकभाव एक उपादेय है। वहाँ संवर, निर्जरा को जो हेय कहा था, उसे यहाँ संवर-निर्जरा का परिणमन शुद्ध है तो उसे आत्मा कहा। निश्चय आत्मा तो आत्मा है, परन्तु उसका निर्मल परिणमन हुआ, शुद्ध वीतरागी दशा हुई, उसे भी आत्मा कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है, भाई! भाव तो है, वह है।

यह तो तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव का पंथ है बापू! यह कोई ऐरे-गैरे का कोई मार्ग नहीं है। कल्पना से खड़ा किया, ऐसा यह नहीं है। तीन लोक के नाथ महाविदेह में विराजते हैं। आहाहा! उनकी वाणी में यह आया, ऐसा सन्तों ने शास्त्र में रचा है। आहाहा! समझ में आया? उसमें वाद और विवाद को अवसर नहीं। समयसार नाटक में कहा है, 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा, वाद विवाद करे सो अन्धा।' सेठ! 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा।' स्वाभाविक भगवान आनन्द का नाथ, उसके साथ सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का परिणमन (हो), वह सहज का धन्धा है। समझ में आया? राग से व्यवहार से (हो), वह तो कृत्रिम बातें हैं। छहढाला में आया न? निश्चय सत्यार्थ... हाँ, सत्यार्थ को निश्चय कहा। वहाँ दूसरे को असत्यार्थ। आहाहा! तो फिर कहा किसलिए? भाई! सहचर-निमित्त देखकर कहा है। समझ में आया? यह कहते हैं, देखो!

भावार्थ :—यद्यपि छह द्रव्य.... भगवान ने कहे हुए छह द्रव्य, जिनवरदेव ने जाने हुए छह द्रव्य। वे छह द्रव्य भगवान ने जाने, इसके अतिरिक्त कोई तीन काल में, परमेश्वर सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी ने छह द्रव्य जाने ही नहीं। अन्यमत के सब बड़े वेदान्तवाले कहो और सांख्यवाले कहो, वे सब सर्वज्ञ भगवान नहीं कि जिससे उन्होंने छह द्रव्य देखे हों। आहाहा! यहाँ तो ऐसा कहते हैं, भगवान त्रिलोकनाथ ने छह द्रव्य देखे, वे छह द्रव्य, **पाँच अस्तिकाय...** काल के अतिरिक्त। काल अस्तिकाय न? अस्ति है, परन्तु काय नहीं। **सात तत्त्व, नौ पदार्थ का श्रद्धान...** छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व, नौ पदार्थ का श्रद्धान, **कार्यकारणभाव से...** व्यवहार को निमित्तरूप से कारण कहा। समझ में आया? वास्तविक वह कारण नहीं है। आहाहा! यह कार्यकारणभाव का सबमें घोटाला है। व्यवहार कारण और निश्चय कार्य। परन्तु किस अपेक्षा से कहा? जैसे व्यवहार मोक्षमार्ग कहा, वह है नहीं, उसे कहा। आत्मा शुद्ध चैतन्य भगवान का सम्यग्दर्शन अनुभव में भान हुआ, उसके साथ व्यवहार समकित आदि, देव-गुरु-शास्त्र

की श्रद्धा है तो राग, परन्तु सहचर-साथ में देखकर उसे निमित्त से उसका कथन किया है। है तो हेय, आहाहा! परन्तु आता है, निश्चय सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग की दशा में व्यवहार विकल्प ऐसा आता है, इसलिए सहचर कारण देखकर व्यवहार मोक्षमार्ग आरोप से कहा। वह मार्ग नहीं, है तो बन्धमार्ग। आहाहा! समझ में आया? देखो!

कार्यकारणभाव... क्या कहते हैं? निश्चय कार्य और व्यवहार कारण। छहढाला में नहीं आया? नियत का हेतु। निमित्त। नियत का—निश्चय का हेतु अर्थात् निमित्त। वह निमित्त का—व्यवहार का ज्ञान कराया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : जरा कठिन पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धीरे-धीरे कहते हैं। निश्चय के आश्रय से ही आत्मा को लाभ है। व्यवहार से आत्मा को लाभ नहीं। परन्तु व्यवहार कहा क्यों? साथ में उस जाति का (विकल्प) देखकर (कहा)। पहला व्यवहार और बाद में निश्चय, ऐसा नहीं यहाँ तो। यहाँ तो निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र हुए, उसी समय सहचर में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान और पंच महाव्रत के परिणाम (होते हैं), उसे व्यवहार आरोप करके व्यवहार मोक्षमार्ग कहा। परन्तु दोनों मार्ग उपादेय है, ऐसा नहीं है। दोनों मार्ग सच्चे हैं, ऐसा नहीं है और दो मार्ग हैं, ऐसा भी नहीं है।

मुमुक्षु : कथन दो प्रकार से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कथन दो प्रकार के हैं। आहाहा! टोडरमलजी ने तो इस सातवें अध्याय में गजब कर दिया है। और तत्पश्चात् भी एक ही लाईन—पंक्ति रखी है कि देखो! जहाँ निश्चय सम्यग्दर्शन है, आत्मा का अनुभव और निर्विकल्प आनन्द की प्रतीति आयी और आनन्द भी आया, उसके साथ व्यवहारश्रद्धा देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, छह द्रव्य की श्रद्धा आदि का विकल्प है, उसे सहचर देखकर निमित्त से, निमित्त होने से उपचार से व्यवहार कहा, परन्तु वह आदरणीय नहीं। आहाहा! वह हेय है। क्योंकि दोनों नय का विषय विरोध है। दो नय ही विरोध है। तो निश्चय से जब यह आदरणीय है तो व्यवहार है, वह आदरणीय नहीं। व्यवहार है, वह हेय है। यह उपादेय है तो वह हेय है। क्योंकि दो नय विरोध है। समझ में आया? अरे! कहो, सूरजभाई! ऐसी बातें हैं यह।

अरे! जन्म-मरण के चक्कर कर-करके मर गया है, भाई! भूल गया, वह भूल गया। आहाहा! यह निगोद में एक श्वास में अठारह भव। अरे! कभी इसने विचार किया है? बापू! ऐसे तो अनन्त भव किये। एक श्वास में अठारह भव, ऐसे अनन्त भव किये। निगोद के, हों! निगोद समझते हो? काई। काई। आहाहा! भाई! तू भूल गया। यह तेरी भीड़ में कितनी भीड़ तूने सहन की, प्रभु! आहाहा! विकार की एकता में दुःख के वेदन का पार नहीं, प्रभु! आत्मा आनन्दमूर्ति से उल्टी दशा। शुभ-अशुभभाव दुःखरूप है, उसके वेदन में भाई! तू अनन्त काल से पीड़ित हो गया है। घाणी में तिल पिलते हैं... आहाहा! आनन्द के नाथ को राग में पील डाला है। भगवान अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति प्रभु को भव और भव के कारण में तूने पील डाला। समझ में आया? और फिर प्रसन्नता मानता है। आहाहा! पागल, वह कहीं पागल! आहाहा! पागल के कहीं गाँव अलग होते हैं? आहाहा! और प्रसन्नता माने। तत्त्व की दृष्टि नहीं होती, ज्ञान नहीं होता और अकेला व्यवहार। शुभ का तो एक ओर रखो, परन्तु अशुभ में प्रसन्नता करे अभी तो। चौबीस घण्टे स्त्री, पुत्र, परिवार, धन्धा... आहाहा! और प्रसन्नता करके जाये। अरे! प्रभु! क्या हुआ? भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : करने का यह।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन था? पुत्र कब था, वह छोड़े? वह तो उसका आत्मा भिन्न है, उसका शरीर भिन्न है। द्रव्य भिन्न है। इस द्रव्य को उससे सम्बन्ध क्या है। ऐई! सेठ! डालचन्दजी होशियार जगा है और यह हुआ इसलिए अच्छा। क्या अच्छा? परन्तु किसका? आहाहा! यह तो सेठ के घर का दृष्टान्त दिया। यह तो सबको ऐसा है न! आहाहा! अरे! प्रभु! परन्तु वह आत्मा परद्रव्य, उसके (शरीर के) रजकण परद्रव्य। तुझे और उसे एक-दूसरे में अभाव है। उसके द्रव्य में तेरा अभाव और तेरे द्रव्य में उसका अभाव। अरे! भगवान! तेरा वह भाव कहाँ से आ गया? वह कहाँ से तेरा पुत्र और कहाँ से स्त्री? आहाहा! प्रभु! उसका आत्मा तो तुझसे भिन्न है। तेरा द्रव्य और उसका द्रव्य अत्यन्त भिन्न है। तीन काल में कहीं दोनों को मेल नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : मेल न हो तब तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी अभी कहेंगे। आगे की गाथा आयेगी—९५वीं। यह तो अभी ९४ चलती है न? ९४ चलती है, ९५ में कहेंगे। '**अण्णु जि तित्थु म जाहि जिय अण्णु जि गुरुउम सेवि।**' यह अन्य तीर्थ में—सम्मेदशिखर और शत्रुंजय न जा, भाई! तेरा तीर्थ अन्दर पड़ा है, प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु! तू अन्दर रह न! वह तीर्थ है न! वहाँ जा न! यह भटका भटक (करता है)। सम्मेदशिखर, शत्रुंजय और गिरनार। यह कहेंगे, न जा—ऐसा कहेंगे। उन्हें कहाँ पड़ी है। समझ में आया? वह तो जानते ही हैं। यह शुभभाव तो दुःख है। आहाहा! गजब बातें हैं! वे ऐसा कहे, एकबार वंदे जो कोई, नरक पशु न होई। प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। क्या है? सुन न! ऐसा कोई शुभ हो तो नरक, पशु न हो। देव में जाये। वहाँ से मरकर नरक, पशु में जायेगा। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आचार्य योगीन्द्रदेव, यह बाद में कहेंगे, हों! गुरु न सेव, तीर्थ में न जा, प्रभु! तेरा गुरु, तेरा तीर्थ तो तेरे पास है न, प्रभु! आहाहा! प्रतिमा अनादि की है। शाश्वत् प्रतिमायें हैं। यह अष्टाह्निका के दिन होते हैं न? अष्टाह्निका। नन्दीश्वर द्वीप बावन जिनालय हैं। एक-एक जिनालय में १०८ रत्न की प्रतिमायें हैं। मानो अभी बोलेगी, ऐसी चीज़ें शाश्वत् हैं। समझ में आया? इन्द्र एकावतारी एक भवतारी शकेन्द्र आदि। उसकी रानी एकभवतारी आठ-आठ दिन जाते हैं। कार्तिक शुक्ल-८ से १५। फाल्गुन शुक्ल-८ से १५, आषाढ़ शुक्ल - ८ से १५। तीन अष्टाह्निका हैं न? पण्डितजी! घुंघरु बाँधकर नाचे। भाव हो, उसे शुभभाव होता है। परन्तु वह धर्म है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वह भी जिसकी दृष्टि निश्चय है, उसे ऐसा भाव आवे, उसे व्यवहार कहने में आता है। अज्ञानी को तो व्यवहार भी कहाँ है? आहाहा! जहाँ आत्मा आनन्द का नाथ जगा नहीं और उसके राग को व्यवहार कहना किसे? समझ में आया?

मुमुक्षु : व्यवहाराभास है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहाराभास है। वाह! दर्शनलालजी! बात तो ऐसी है, भगवान! मार्ग ऐसा है, बापू! झगड़ा-विवाद न करो, प्रभु! वाद-विवाद करो नहीं, भाई! यह बात है, उसे सरलरूप से आदर करो। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं, देखो!

यहाँ कार्य-कारण लिया न? व्यवहार को कारण उपचार से कहा है। वास्तविक कारण वह नहीं है। आहाहा! **निश्चयसम्यक्त्व का कारण होने से व्यवहारसम्यक्त्व कहा जाता है,...** देखो! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, छह द्रव्य, नौ तत्त्व, सात तत्त्व की श्रद्धा का विकल्प जो है, वह निश्चय समकित में निमित्तरूप कारण देखकर उसे व्यवहार समकित कहा है। समझ में आया? उससे होता है, ऐसा नहीं। जब निश्चय सम्यग्दर्शन है तो व्यवहार साथ में है, उसे व्यवहार साधकरूप से आरोपरूप से कहा। समझ में आया? साधकपना तो एक ही प्रकार से है। अपना स्वरूप रागरहित का साधन एक ही प्रकार है, परन्तु साधक का कथन—निरूपण दो प्रकार से है। टोडरमलजी ने यह लिया है। समझ में आया? है न?

मोक्षमार्ग तो कहीं दो नहीं परन्तु मोक्षमार्ग का कथन दो प्रकार से है। जहाँ सत्य मोक्षमार्ग का कथन है, वह निश्चय मोक्षमार्ग है। जहाँ मोक्षमार्ग तो नहीं परन्तु मोक्षमार्ग का निमितत सहचारी—साथ में हो। साथ में हो। पहले राग और फिर निश्चय, ऐसा नहीं। निश्चय के काल में साथ में राग होता है, उसे व्यवहार कहा जाता है। यह शब्द देखो न! कितना... ओहोहो! टोडरमलजी ने तो शास्त्र के गहन विषय को खोलकर रखा है। अब यह लोग कहे, नहीं। अभी ललितपुर में शास्त्री परिषद् भरी थी। उन पण्डितों ने इसका बहुत विरोध किया। टोडरमलजी और बनारसीदास अध्यात्म की भाँग पीकर नाचे हैं, ऐसा कहा। अरेरे! प्रभु! बापू! तुझे कोई पूछनेवाला अभी नहीं। अध्यात्म की भाँग पीकर नाचे। समाचारपत्र में आया था। अरेरे! सोलापुरवाले ने बेचारे ने प्रकाशित किया था। सोलापुर का कोई पत्र आता है न? दिव्यध्वनि (पत्रिका)। उसमें आया था, यह शास्त्री परिषद नहीं, यह तो शस्त्र परिषद है। ऐसा? अरे! टोडरमल कौन, बनारसीदास कौन? धर्म के स्तम्भ सम्यग्दृष्टि जीव। आहाहा! बनारसीदास की शैली देखो तो गजब बात! आहाहा! जिन्होंने समयसार नाटक बनाया। इस कलश-कलशटीका में से। अब यह बनारसीदास और टोडरमल, अध्यात्म की भाँग पी थी। अरे! प्रभु! यह शोभा नहीं देता, भाई!

मुमुक्षु : उन लोगों ने विरोध की भाँग पी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह तो बेचारे... (ऐसा) नहीं होता, भगवान! बापू!

भाई! ऐसे मनुष्यपने में... यह सन्त धर्मात्मा जीव थे। बनारसीदास... आहाहा! अध्यात्म की बातों का स्पष्टीकरण किया, भाई! भांग पीकर नाचे हैं, ऐसा नहीं। समझ में आया?

व्यवहार मोक्षमार्ग उपचार से कहा है। अब यहाँ निश्चय देखो! क्योंकि... कितनी बात समझायी है! निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा लक्षण है। आहाहा! यह तो गजब किया है उन्होंने! टोडरमल, जिन्हें लोग आचार्यकल्प कहते हैं। कहते हैं न? आचार्यकल्प कहते हैं। आहाहा! निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है। आहाहा! इतना सिद्धान्त सिद्ध किया है और स्पष्ट! और यहाँ जो साधक-कारण कहा, वह व्यवहार देखकर कहा है। वह यथार्थ कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो वीतरागमार्ग है, भाई! जिसमें राग-शुभराग भी नुकसानकारक, ऐसे किसी के प्रति द्वेष करना, वह नहीं होता। भले उसकी दृष्टि कोई विपरीत हो, परन्तु व्यक्ति के प्रति द्वेष नहीं होता। समझ में आया? इसलिए यह भाई में आया है न! षट्पाहुड़ में। श्रुतसागर न वह? टीका करनेवाले। ऐसी भाषा लिखी है कि वह टीका मान्य नहीं। उन्होंने एक जगह ऐसा लिखा है कि जो कोई मूर्ति को, यह ढुंढिया के सामने लिखा है। परन्तु ऐसा नहीं होता। किसी व्यक्ति के प्रति इतना द्वेष नहीं होता। उसकी दृष्टि भले विपरीत हो, परन्तु अन्दर वह भगवान है। एक समय की भूल है। पूरा भगवान है। उसके प्रति प्रेम क्यों चला जाये? उसने यह कहा... समझ में आया? श्रुतसागर ने ऐसा कहा, श्रुतसागर टीकाकार न? षट्पाहुड़। कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में गये थे, कलिकाल सर्वज्ञ। ऐसा लिखा है। समझ में आया? आहाहा! बनारसीदास ने उसमें से बनाया। समयसार नाटक। समयसार देखकर। उसे ऐसा कहना, भाँग पी है। भगवान! ऐसा नहीं होता, भाई! व्यंग (नहीं किया जाता)। समाज में झगड़ा उठे, नाथ! तुझे यह शोभा नहीं देता। आहाहा! प्रभु! तू प्रभु है न भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : अपना पागलपन....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसी प्रकार ऐसा कि सोनगढ़वालों ने अध्यात्म की भाँग पी है। अरे! प्रभु! तू रहने दे, बापू! भाई! तुझे ठीक नहीं। अरे! क्या हो? ऐसा जुनून नहीं हो सकता। आहाहा! वह दृष्टान्त दिया भाई ने। सम्यग्ज्ञान दीपिका। मुझे तो उन श्रुतसागर का दूसरा कहना था। श्रुतसागर ने टीका में ऐसा लिखा है, मूर्ति न माने उसे, मूर्तिपूजन

न माने, फूल चढ़ाकर पूजा न माने, उसे खासड़ा लेकर... खासड़ा समझे? जूते। जूते लेकर विष्टा में चुपड़कर मारना। पापं नास्ति। अरे! ऐसा होता है? कोई चाहे जो हो व्यक्ति। सत्त्वेषु मैत्री। चाहे जो आत्मा हो। करना था यह, भाई! परन्तु भूल गये। श्रुतसागर ने ऐसा लिखा है। टीका में।

मुमुक्षु : बीसपंथी....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बीस पंथी होगा, परन्तु ऐसी भाषा होती है कहीं? षट्पाहुड़ की टीका में है। हमें तो टीका-बीका सब देखा है। वहाँ चिह्न भी किये हैं। मूर्ति और मूर्ति की पूजा फूल से न माने... उस समय ढुंढिया निकले थे न, उनके बाद यह निकले हैं। उन्हें जूता लेकर, विष्टा चुपड़कर सिर पर मारना। पापं नास्ति। ऐसी भाषा? इन्द्रों के समय में इन्द्रों ने ऐसा किया नहीं। ऐसा होता है? किसी व्यक्ति के प्रति विरोध नहीं। उसकी दृष्टि हो तो उसे समझ लेना। समझ में आया? उन्होंने ऐसा लिखा है। फिर हिम्मतभाई, यह उनकी टीका ही नहीं की षट्पाहुड़ की। बहुत बार कहा। परन्तु टीका नहीं की। यह मान्य नहीं। टीका मान्य नहीं। बात सच्ची है। ऐसे शब्द? यह कहीं मुनियों के (शब्द होते हैं)? चाहे जो हो... शान्ति... शान्ति... शान्ति... आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भट्टारक! षट्पाहुड़ है। यहाँ नहीं अभी, ऐसा नहीं हो सकता। दृष्टि विपरीत हो, उसे समझ लेना। उसे समझकर उसके साथ बैर बाँधना, ऐसा नहीं होता। भगवान है, भगवान है। शास्त्र में तो यहाँ तक कहा है कि अनन्त आत्मायें जो आत्मारूप है, वह आराधनेयोग्य है, ऐसा कहा। पर्याय में भले भूल हो। समझ में आया? आहाहा! यह भगवान परमानन्द का नाथ प्रभु, अस्ति तुझे यदि वह दृष्टि बैठी हो तो उसका परमात्मस्वरूप वह है। आहाहा! वह सब परमात्मा—आत्मा आराधनेयोग्य है, ऐसा कहा है। आहाहा! यह पर्याय की बात नहीं, आत्मा देख। आहाहा! दशरथलालजी! यह तो वीतरागमार्ग है, बापू! राग का कण भी यहाँ चुभे, दुःख हो। आहाहा! 'राग आग दाह दहे सदा, तातै समामृत सेईये।' समामृत—समता का अमृत सेवन करो, प्रभु! आहाहा! वीतरागभाव का सेवन करो। आहाहा! सन्तों की वाणी तो देखो! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, लिखते हैं।

यहाँ क्या कहते हैं, निश्चय समकित का कारण व्यवहार समकित कहने में आता है। अर्थात् व्यवहार साधक और निश्चय साध्य। व्यवहार साधक, वह व्यवहार से कहा। निश्चय साधक तो अपने स्वरूप की परिणति, वही साधक है। परन्तु उसका आरोप देकर व्यवहार को साधक कहा गया है। वह साधक है नहीं। उसे साधक कहना, इसका नाम व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! एक क्षण में देह उड़ जायेगी। कहाँ चला जायेगा? आहाहा! कोई शरण है वहाँ? शरण जो यहाँ है, वहाँ तो देखता नहीं। आहाहा! सत्य की बात आवे तो वह इसे मान्य होती नहीं। नहीं, नहीं, नहीं। यह नहीं, यह नहीं। व्यवहार करो। अरे! प्रभु! व्यवहार तो अनन्त बार हुआ है, भाई! वह तो अनादि का किया है। मुनिव्रत धार, कहा नहीं? मुनिव्रत धारण करके अनन्त पुद्गलपरावर्तन नौवें ग्रैवेयक के किये हैं। नौवें ग्रैवेयक। ग्रीवा के स्थान में। चौदह ब्रह्माण्ड पुरुष के आकार है। उसकी ग्रीवा के स्थान में नौ पासडा है। उसमें भी अनन्त बार जन्म लिये। यह कौन जाये? दिगम्बर मुनि के अतिरिक्त वहाँ जा नहीं सकता। वस्त्रसहित या दूसरे वहाँ ऊपर जा ही नहीं सकते। ऐसा दिगम्बर मुनि मिथ्यादृष्टि अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया तो उसमें कोई आत्मा का लाभ हुआ नहीं।

यहाँ तो जिसे निश्चय है, उसके साथ राग की मन्दता देखकर व्यवहार कारण और साधक कहा गया है। वह तो जैसे मोक्षमार्ग, वह कारण है न? मोक्षमार्ग क्या है? कारण। जैसे निश्चयमोक्षमार्ग, वह कारण है और व्यवहारमोक्षमार्ग कारण। परन्तु वह (कारण) कैसा? व्यवहारमोक्षमार्ग कारण उपचार से कहा, वास्तविक कारण नहीं। इसलिए कारण तो एक ही है। इसी प्रकार साधक तो एक ही है, परन्तु साधक के साथ राग की ऐसी मन्दता देखकर व्यवहार साधक और व्यवहार कारण कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा स्वरूप है प्रभु का। आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने इस प्रकार से प्रसिद्ध किया है। आहाहा! कहो, दशरथलालजी! ठीक बोले, विरोध की भाँग। अरे! भगवान! वह आत्मा है। भाई! उसके भाव को दुःख हो, वह भी कैसे इच्छे? आहाहा! लो, एक समकित की बात हुई।

तो भी निश्चयनयकर एक वीतराग परमानन्दस्वभाववाला शुद्धात्मा ही उपादेय

है,... देखो! व्यवहार कारणरूप से साधक कहा सही, परन्तु हेय है। आहाहा! है, इतना ज्ञान कराया। व्यवहार है न, राग है न, परन्तु उपादेयरूप से तो एक वीतराग परमानन्द स्वभाव शुद्धात्मा है। **शुद्धात्मा ही....** एकान्त लिया। समझ में आया? आहाहा! एकावतारी इन्द्र बड़े बत्तीस लाख विमान का लाडा / स्वामी, वह जिस सभा में सुनने बैठता होगा, वह भगवान की वाणी कैसी होगी? जहाँ अर्धलोक के स्वामी शकेन्द्र दक्षिण के, उत्तर के ईशानइन्द्र सभा में बैठे हों... आहाहा! वह वीतराग की वाणी, बापू! कैसी होगी? भाई! समतारस के झूले में झुला दे, ऐसी उनकी वाणी होती है। समझ में आया? वीतरागभाव में उसे अन्दर से उत्कीर्ण कर डाले। आहाहा!

भगवान तो वीतरागमूर्ति है न! उसमें से एक समय की वीतरागपर्याय निकालना, उसमें क्या है? आहाहा! निश्चयमोक्षमार्ग, वह तो वीतरागी पर्याय है। परन्तु भगवान तो पूर्ण वीतरागमूर्ति त्रिकाल है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय भी अनन्त-अनन्त पर्यायें अन्दर में पड़ी हैं। एक पर्याय नहीं, परन्तु ऐसी अनन्त अन्दर पड़ी हैं। आहाहा! समझ में आया? अरे! इसकी आस्था और प्रतीति नहीं, इसे विश्वास नहीं आता। मैं इतना बड़ा हूँ, ऐसी प्रतीति नहीं आती। रंक और पामर माना है न! आहाहा! प्रभु! तेरी प्रभुता तो इतनी है कि सर्वज्ञ परमेश्वर की जो पर्याय है, वह तो तेरे द्रव्य से अनन्तवें भाग है। समझ में आया? प्रभु! तू महा प्रभु है। आहाहा! तेरा प्रताप अखण्ड शोभा स्वतन्त्रता से अन्दर शोभायमान है। आहाहा! उसे खण्ड करने को जगत में किसी की सामर्थ्य नहीं है। आहाहा! और जिसे आत्मा की गरज हो, और आत्मा प्राप्त न हो, ऐसा नहीं होता। आहाहा!

बहिन का एक वाक्य सुनकर कल तो... वे ६३ बोल लिखे हैं न? उसमें एक बोल ऐसा आया है, जिसे आत्मा की गरज है और आत्मा प्राप्त न हो तो चौदह ब्रह्माण्ड खाली हो जाये। ऐसा लिखा है। खबर है? आहाहा! ऐसा कहा... है यहाँ? परन्तु याद कहाँ से हो? पहला ही है? आहाहा! **चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित भावना अर्थात् कि राग-द्वेष में से नहीं उदित हुई भावना—ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है। यदि न फले तो जगत को—चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़ेगा।** (बोल २१)। आहाहा! भाव का फल न आवे तो जगत का अभाव हो जाये। आहाहा!

क्या कहा? पण्डितजी! **चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित भावना अर्थात् कि राग-द्वेष में से नहीं उदित भावना—ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है। यदि न फले तो जगत को—चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़ेगा।** ऐसा अन्दर जोर है। आहाहा! तीन लोक का नाथ की भावना करे और फले नहीं, कैसे बने? समझ में आया? परन्तु उसकी दरकार कहाँ है? आहाहा! व्यवहार का प्रेम और रुचि (हो) और (पूछे) मुझे निश्चय क्यों नहीं होता? परन्तु निश्चय कैसे हो? ऐ... पोपटभाई! यह पहला ही बोल है। आहाहा! यह तो गजब है! भाव में से भावना करने पर भाव न आवे... आहाहा! अस्तिपना प्रगट न हो, पूरा जगत अभाव-शून्य हो जायेगा।

मुमुक्षु : सूत्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सिद्धान्त है। आहाहा! पहला बोल आया। अच्छा लिखा है।

मुमुक्षु : जगत को अभाव कैसे हो जायेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् मेरा भाव न आवे, ऐसा कैसे बने? ऐसा कहते हैं। ऐसा इसका अर्थ है। जगत का अभाव अर्थात् कि शून्य हो जाये। मैं सत्य प्रभु हूँ, उसकी भावना में से फले नहीं तो इस जगत का अभाव हो जायेगा। जरा जोर है। बहिन का इसमें जोर है। आहाहा! लोग पागल कहे, पागल कहे। कहो, समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : दुनिया पागल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे न जँचे, इसलिए बेचारा क्या करे? एक साधारण मनुष्य, हम इतने-इतने मुनिपना पालन करते हैं, ऐसे पण्डित और हमारे समकित नहीं और उन्हें समकित? कैसे माने अब साधारण... लोगों को ऐसा हो जाता है। इसलिए उसमें तो आया था एक बार, यह बहिन को ऐसा कहते हैं, यह तो मिथ्यात्व का ताण्डव नचाया है, ऐसा लिखा है। अरेरे! प्रभु! क्या करता है? ऐसा (जैन) समाचारपत्र में आया है। यह लोग चम्पाबहिन को ऐसा हुआ है, अमुक हुआ है। मिथ्यात्व का ताण्डव है। मिथ्यात्व का नाटक है, ऐसा लिखा है। उसने ऐसा लिखा। उसे न जँचे। क्या करे? साधारण महिला को ऐसा कहना और बड़े मुनियों को समकित नहीं, ऐसा कहना, अरे कठिन पड़े न लोगों को?

शुद्धात्मा ही उपादेय है,... देखो! **ऐसा रुचिरूप परिणाम से परिणति हुआ शुद्धात्मा ही निश्चयसम्यक्त्व है,...** यह न? ९४ है न? निश्चय समकित, कल भी आया था। **यद्यपि निश्चय-स्वसंवेदनज्ञान का साधक होने से...** देखो! साधक व्यवहाररूप से। **व्यवहारनयकर शास्त्र का ज्ञान भी ज्ञान है,...** व्यवहार से कहा, हों! आहाहा! **तो भी निश्चयनयकर वीतरागस्वसंवेदनज्ञानकर परिणत हुआ... वीतरागस्वसंवेदनज्ञानकर परिणत हुआ शुद्धात्मा ही निश्चयज्ञान है,...** समझ में आया? आहाहा! **शुद्धात्मा ही निश्चयज्ञान है,...** आहाहा! ज्ञान का ज्ञान किया, वह ज्ञान है। शास्त्र का ज्ञान तो पर है, यह तो वहाँ कहा नहीं? बन्ध अधिकार में। वह तो अक्षर का ज्ञान है, शब्द का ज्ञान है। शास्त्र का ज्ञान, वह शब्दज्ञान। उसका आश्रय शब्द है। आहाहा! बन्ध अधिकार में कहा है। इसलिए वह नहीं, वह ज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया? परन्तु यहाँ साथ में होता है। सम्यक् वेदन से आत्मा का अन्तरज्ञान हुआ, साथ में शास्त्रज्ञान होता है; इसलिए उसे व्यवहार शास्त्रज्ञान कहने में आया है। निश्चय तो यह है। आहाहा! अरे! भगवान! तेरी महत्ता की बातें... आहाहा! भगवान की वाणी में भी तेरा पूर्ण स्वरूप नहीं आया। 'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब', जितना जाना उतना कह नहीं सके।

जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में,
कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब
उस स्वरूप को अन्य वाणी तो क्या कहे?
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब। **(अपूर्व अवसर काव्य)**

तीन लोक के नाथ भी जिसके स्वरूप को वाणी द्वारा पूरा नहीं कह सके... आहाहा! और जाना, उससे अनन्तवें भाग का वाणी में आया और वाणी में आया, उसका अनन्तवें भाग गणधरों ने शास्त्र में रचा। आहाहा! ऐसा तीन लोक का नाथ हाजरा-हुजूर परमात्मा स्वयं अन्दर विराजता है। समझ में आया? उसे अन्य वाणी, वह क्या कहे? वह तो अनुभवगोचरमात्र रहा है। आहाहा! समझ में आया? जन्म से जन्मघुट्टी मिली है न? क्या कहलाता है? जन्मघूंटी। हमारे काठियावाड़ में गळथूथी कहते हैं। परन्तु तुम्हारे घूंटी (कहते हैं)। जन्मघूंटी में गुड़ मिला है, शक्कर मिली है।

कैसा स्वाद? बताओ। कैसा स्वाद? किस पदार्थ के साथ मिलानकर बताओ? ख्याल में है। ख्याल में है परन्तु किसी के साथ तुलना करके नहीं कहा जा सकता। आहाहा! तीन लोक का नाथ साक्षात् परमात्मा ईश्वर स्वयं पूर्ण है। आहाहा! उसके अनुभव की बात करो, कहते हैं। क्या करे? बापू! किस प्रकार करे? कलश में बताया था, नहीं? कलश में बताया था। भाई! यह वचन में न आवे, ऐसी चीज़ है। परन्तु इतना कहा जाता है... ऐसा लिखा है, यह कलश में बताया था। वह प्रज्ञा है न? (कलश) १८१। ज्ञान का परिणमन करना, इतना कहा जा सकता है। दूसरा क्या कहे? समझ में आया? भगवान ज्ञानस्वरूपी पिण्ड प्रभु, ज्ञान का पर्वत, महा पर्वत... आहाहा! उस ज्ञान का परिणमन करना, इतना कहा जा सकता है, दूसरा क्या कहें? समझ में आया?

वीतरागस्वसंवेदनज्ञानरूप परिणत हुआ शुद्धात्मा ही निश्चयज्ञान है। आहाहा! **यद्यपि निश्चयचारित्र के साधक होने से अट्ठाईस मूलगुण, चौरासी लाख उत्तरगुण, व्यवहारनयकर चारित्र कहे जाते हैं,...** वास्तविक नहीं। आहाहा! **तो भी शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतरागचारित्र को परिणत हुआ...** शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतराग। रागरहित शान्त... शान्त... शान्त... अकषायरसरूप से परिणमन हुआ, वीतराग परिणतिरूप से परिणमन हुआ, वह **निज शुद्धात्मा ही निश्चयनयकर चारित्र है,...** वही चारित्र है। आहाहा! समझ में आया? लोग कुछ का कुछ माने और अन्यमति के साथ उसे मिलान करे। अरेरे! भाई! आहाहा! यह तो सर्वज्ञ से सिद्ध हुई वस्तु है। यह कहीं कल्पित है और ऐसा होना चाहिए और ऐसा होना चाहिए—ऐसा नहीं है। ऐसा है। समझ में आया? आहाहा!

तात्पर्य यह है कि अभेदरूप परिणत हुआ परमात्मा ही ध्यान करनेयोग्य है। आहाहा! अभेद रत्नत्रय में परिणमित हुआ परमात्मा ध्यान करनेयोग्य है। यही इसका सार है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ९५

अथ निश्चयेन वीतरागभावपरिणतः स्वशुद्धात्मैव निश्चयतीर्थः निश्चयगुरुर्निश्चयदेव इति कथयति –

९५) अण्णु जि तित्थु म जाहि जिय अण्णु जि गुरुउ म सेवि।
अण्णु जि देउ म चिंति तुहुँ अप्पा विमलु मुएवि।।९५।।

अन्यद् एव तीर्थ मा याहि जीव अन्यद् एव गुरुं मा सेवस्व।
अन्यद् एव देवं मा चिन्तय त्वं आत्मानं विमलं मुक्त्वा।।९५।।

अण्णु जि तित्थु म जाहि जिय अण्णु जि गुरुउ म सेवि अण्णु जि देउ म चिंति तुहुं अन्यदेव तीर्थं मा गच्छ हे जीव अन्यदेव गुरुं मा सेवस्व अन्यदेव देवं मा चिन्तय त्वम्। किं कृत्वा। किं कृत्वा! अप्पा विमलु मुएवि मुक्त्वा त्यक्त्वा। कम्। आत्मानम्। कथंभूतम्। विमलं रागादिरहितमिति। तथाहि। यद्यपि व्यवहारनयेन निर्वाणस्थानचैत्यचैत्यालयादिकं तीर्थभूतपुरुषगुणस्मरणार्थं तीर्थं भवति, तथापि वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूपनिश्छिद्रपोतेन संसारसमुद्रतरणसमर्थत्वान्निश्चयनयेन स्वात्मतत्त्वमेव तीर्थ भवति १यदुपदेशात्पारंपर्येण परमात्मतत्त्वलाभो भवतीति। व्यवहारेण शिक्षादीक्षादायको यद्यपि गुरुर्भवति, तथापि निश्चयनयेन पञ्चेन्द्रियविषयप्रभृतिसमस्तविभावपरिणामपरित्यागकाले संसारविच्छित्ति–कारणत्वात् स्वशुद्धात्मैव गुरुः। यद्यपि प्राथमिकापेक्षया सविकल्पापेक्षया चित्तस्थितिकरणार्थं तीर्थंकर–पुण्यहेतुभूतं साध्यसाधकभावेन परंपरया निर्वाणकारणं च जिनप्रतिमादिकं व्यवहारेण देवो भण्यते, तथापि निश्चयनयेन परमाराध्यत्वाद्वीतरागनिर्विकल्पत्रिगुप्तिपरमसमाधिकाले स्वशुद्धात्म–स्वभाव एव देव इति। एवं निश्चयव्यवहाराभ्यां साध्यसाधकभावेन तीर्थगुरुदेवतास्वरूपं ज्ञातव्यमिति भावार्थः।।९५।।

आगे निश्चयनयकर वीतरागभावरूप परिणत हुआ निज शुद्धात्मा ही निश्चयतीर्थ, निश्चयगुरु, निश्चयदेव है, ऐसा कहते हैं –

निर्मल आत्मा को तजकर तुम अन्य तीर्थ में भ्रमो नहीं।
गुरु सेवा या अन्य देव–चिन्तन नहिं, ये सब आत्मा ही।।९५।।

अन्वयार्थ :– [जीव] हे जीव [त्वं] तू [अन्यद् एव] दूसरे [तीर्थं] तीर्थ को [मा याहि] मत जावे, [अन्यद् एव] दूसरे [गुरुं] गुरु को [मा सेवस्व] मत सेवे, [अन्यद् एव] अन्य [देवं] देव को [मा चिन्तय] मत ध्यावे, [आत्मानं विमलं] रागादि मल रहित

आत्मा को [मुक्तवा] छोड़कर अर्थात् अपना आत्मा ही तीर्थ है, वहाँ रमण कर, आत्मा ही गुरु है, उसकी सेवा कर और आत्मा ही देव है उसी की आराधना कर।

भावार्थ :- यद्यपि व्यवहारनय से मोक्ष के स्थानक सम्मेदशिखर आदि व जिनप्रतिमा जिनमंदिर आदि तीर्थ हैं, क्योंकि वहाँ से गये महान् पुरुषों के गुणों की याद होती है, तो भी वीतराग निर्विकल्पसमाधिरूप छेद रहित जहाजकर संसाररूपी समुद्र के तरने को समर्थ जो निज आत्मतत्त्व है, वही निश्चयकर तीर्थ है, उसके उपदेश-परम्परा से परमात्मतत्त्व का लाभ होता है। यद्यपि व्यवहारनयकर दीक्षा शिक्षा का देनेवाला दिगंबर गुरु होता है, तो भी निश्चयनयकर विषय कषाय आदिक समस्त विभावपरिणामों के त्यागने के समय निज शुद्धात्मा ही गुरु है, उसी से संसार की निवृत्ति होती है। यद्यपि प्रथम अवस्था में चित्त की स्थिरता के लिये व्यवहारनयकर जिनप्रतिमादिक देव कहे जाते हैं, और वे परंपरा से निर्वाण के कारण हैं, तो भी निश्चयनयकर परम आराधने योग्य वीतराग निर्विकल्परमसमाधि के समय निज शुद्धात्मभाव ही देव हैं, अन्य नहीं। इस प्रकार निश्चय व्यवहारनयकर साध्य-साधक-भाव से तीर्थ गुरु देव का स्वरूप जानना चाहिये। निश्चयदेव, निश्चयगुरु, निश्चयतीर्थ निज आत्मा ही है, वही साधने योग्य है, और व्यवहारदेव जिनेन्द्र तथा उनकी प्रतिमा, व्यवहारगुरु महामुनिराज, व्यवहारतीर्थ सिद्धक्षेत्रादिक ये सब निश्चय के साधक हैं, इसलिये प्रथम अवस्था में आराधने योग्य हैं। तथा निश्चयनयकर ये सब पदार्थ हैं, उनसे साक्षात् सिद्धि नहीं है, परम्परा से है। यहाँ श्रीपरमात्मप्रकाश अध्यात्मग्रंथ में निश्चयदेव गुरु तीर्थ अपना आत्मा ही है, उसे आराधनाकर अनंत सिद्ध हुए और होवेंगे, ऐसा सारांश हुआ।।९५।।

वीर संवत् २५०२, श्रावण कृष्ण १५, बुधवार
दिनांक-२५-०८-१९७६, गाथा-९५, प्रवचन-७२

परमात्मप्रकाश, ९५ गाथा है।

९५) अण्णु जि तित्थु म जाहि जिय अण्णु जि गुरुउ म सेवि।
अण्णु जि देउ म चिंति तुहुँ अप्पा विमलु मुएवि॥९५॥

आगे निश्चयनयकर वीतरागभावरूप परिणत हुआ निज शुद्धात्मा ही निश्चयतीर्थ,... है। आहाहा! निश्चयगुरु, निश्चयदेव है, ऐसा कहते हैं:—आहाहा!

अन्वयार्थः—हे जीव, तू दूसरे तीर्थ को मत जावे,... निश्चय की बात है न। जब अन्दर रह नहीं सके, तब देव, गुरु, तीर्थ होते हैं, परन्तु वह व्यवहार है। परन्तु करने का निश्चय से तो अन्तर में करना है। समझ में आया? यहाँ तो आचार्य स्पष्ट करते हैं कि **दूसरे तीर्थ को मत जावे,...** सम्मेदशिखर और शत्रुंजय और गिरनार और.... यहाँ जा, तीर्थ यहाँ अन्दर में है। अन्दर में स्थिर न हो सके, तब शुभभाव है तो व्यवहार होता है। समझ में आया? यह टीका में लेंगे। परन्तु वास्तव में तो निश्चय अपना तीर्थ है, वहाँ जाना है। यहाँ तीर्थ में भटकने से मिलेगा, ऐसा नहीं है। सम्मेदशिखर और शत्रुंजय कहते हैं न (श्वेताम्बर) लोग? पूर्व में ९९ बार ऋषभजिन यहाँ आये थे। तो ९९ यात्रा करे तो कल्याण हो जाये। धूल भी नहीं। ९९ क्या, लाख करे न, वह तो शुभभाव है। समझ में आया? स्वरूप में अन्तर में निर्विकल्प वीतराग परिणति में रहना, वह अपना तीर्थ है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो आचार्य इसका निषेध करते हैं। देखो! व्यवहार निषिद्ध है न? तो यहाँ स्पष्ट करते हैं। आहा! **दूसरे तीर्थ को मत जावे,...** दूसरे तीर्थ में न जा, प्रभु! तेरा तीर्थ तो अन्दर आनन्दस्वरूप है न! आहाहा! निर्विकल्प आनन्दकन्द प्रभु, वहाँ चढ़ न, जा न! वहाँ आरूढ़ हो न। वह तेरा तीर्थ है। आहाहा!

मुमुक्षु : आतम ही देव निरंजन, आतम ही....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों वही है। यह आया न! देव भी तू, गुरु भी तू और तीर्थ भी तू है। बाहर का तो बाद में व्यवहार शुभभाव आता है, होता है, परन्तु वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया? लोग फिर वहाँ भटकते हैं। सम्मेदशिखर और श्वेताम्बर को शत्रुंजय, दिगम्बर को... क्या कहलाता है वह? सम्मेदशिखर। वह होता है, यह कहेंगे अभी। चित्त की स्थिरता के लिये वह शुभभाव होता है, परन्तु उसमें धर्म मानना और उससे धर्म होगा, यह तीन काल में नहीं है। आहाहा! भारी गड़बड़, भाई! एक ने—स्थानकवासी ने उड़ा दिया। एक ने उसमें धर्म मान लिया। समझ में आया? दोनों भूल है। आहाहा! कहो, दशरथलालजी!

आचार्य कहते हैं कि पर तीर्थ में न जा। **दूसरे गुरु को मत सेवे,...** आहाहा! दूसरे गुरु तो व्यवहार है। उनका विनय, सेवा, वह तो शुभभाव है। वह कहीं शुद्धभाव / धर्म

नहीं। आहाहा! अमरचन्दभाई! ऐसा मार्ग लोगों को (कठिन लगता है)। और **अन्य देव को मत ध्यावे,...** सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव का ध्यान न कर, वह तो शुभभाव है। आहाहा! समझ में आया? गाथा बहुत (ऊँची है)। तीर्थ में देव है? देव तो यहाँ है। देवाधिदेव... आहाहा! समझ में आया? तू ही देवाधिदेव, तू ही देव का देव। ओहो! समझ में आया?

(संवत्) १९६३ के वर्ष। ६३... ६३। वर्ष १९६३। लगभग ६३ वर्ष हुए न? ६८ वर्ष पहले रामलीला देखने गये थे न! .... अन्दर से आया। 'शिवरमणी रमनार तूं, तू ही देवनो देव।' १९६३ के वर्ष। १७ वर्ष की उम्र थी। दस और सात। आज तो ८७ हुए। सत्तर वर्ष हुए। समझ में आया? 'शिवरमणी रमनार तूं।' यह रमणी नहीं। परमानन्द की दशा की रमणता में लीनता करना यह है। और तू ही देव का देव। देव का देव देवाधिदेव तू है। आहाहा! समझ में आया? एक लाईन रह गयी। थी तो छह। हम तो व्यापारी हैं, परन्तु यह अन्दर से आया था। छह लाईनें। ... आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, देखो! आहाहा! **अन्य देव को मत ध्यावे,...** अन्य देव अर्थात् कुदेव, कुगुरु की यहाँ बात नहीं। यहाँ तो अरिहन्तदेव को मत ध्या। आहाहा! सिद्ध को मत ध्या। क्योंकि वे परद्रव्य हैं और उनके ऊपर लक्ष्य जाने से तो तुझे शुभभाव होगा, पुण्य होगा। पाप से बचने को, अस्थान से बचने को शुभभाव आता है, परन्तु वह धर्म है—ऐसा नहीं है। आहाहा! तथा वह धर्म का कारण है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। वह यथार्थ कारण है ही नहीं। यह अभी कहेंगे। आहाहा! अन्य देव को न ध्या अर्थात्? कुदेव, कुगुरु की यहाँ बात नहीं। यहाँ तो पंच परमेष्ठी और अरिहन्त, सिद्ध को भी न ध्या। क्योंकि उनका ध्यान करने से तुझे शुभराग होगा। आहाहा! समझ में आया?

मत ध्यावे,... 'आत्मानं विमलं' रागादि मल रहित आत्मा को छोड़कर... भगवान राग से रहित भगवान निर्मलानन्द प्रभु है न! आहाहा! अकेला आनन्द का पर्वत, आनन्द का पर्वत है। आहाहा! वहाँ जा न! तुझे आत्मा की भेंट होगी। भगवान की भेंट वहाँ होगी। वहाँ तीर्थ में और बाहर में कहीं भगवान की भेंट होगी नहीं। आहाहा! लोगों को...

रागादि मल रहित आत्मा को छोड़कर अर्थात् अपना आत्मा ही तीर्थ है,... अपना भगवान आत्मा तीर्थ है। भाई! इसे जँचता नहीं। आहाहा! परम अनन्त ज्ञान,

अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त ईश्वरता का पिण्ड प्रभु है, वह तेरा तीर्थ है। उसके समीप जा, वहाँ। आहाहा! समझ में आया? समयसार नाटक में बनारसीदासजी ने लिया है, शीका चढ़कर शत्रुंजय और सम्मेदशिखर जाता है, वहाँ मानो भगवान हैं। शीका समझते हो? डोली... डोली। डोली नहीं होती? उसमें बैठकर जाये। हिन्दी में उसे शीका कहते हैं। बनारसीदास में आया है। शीका चढ़कर जाये। वहाँ भगवान होंगे। भगवान तो वहाँ कहाँ हैं? भगवान तो यहाँ है। वह तो निक्षेपरूप से भगवान है, व्यवहार है। परन्तु परमार्थ वह देव नहीं। आहा! समझ में आया? निर्मलानन्द भगवान को छोड़कर **आत्मा ही तीर्थ है, वहाँ रमण कर,...** आहाहा! तिरने की शक्ति तो उसमें है। वह तीर्थ आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? गाथा बहुत अच्छी आयी है। आहाहा! उस त्याग में मनवा दे। तीर्थ है तो कल्याण होगा। वह तो व्यवहार आता है, परन्तु जिसे निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान हुए, उसे व्यवहार आता है, परन्तु उसे भी पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया? मोक्ष का कारण नहीं। उपचार से उसे साधक और कारण कहेंगे। है नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग, भगवान!

अनन्त-अनन्त अपरिमित ज्ञानस्वभावी प्रभु, अनन्त-अनन्त अपरिमित हद बिना का अनन्त आनन्द, ऐसा भगवान निर्मल, राग से भिन्न है, वह तेरा आत्मा तीर्थ है, कहते हैं। आहाहा! तिरने का उपाय वहाँ से निकलेगा। बाहर से आता नहीं। आहाहा! समझ में आया? **आत्मा ही गुरु है, उसकी सेवा कर...** आहाहा! आनन्दकन्द प्रभु... तीसरी गाथा में तो यह कहा, नहीं? '**एयतणिच्छयगदो**' तूने आत्मज्ञ (पुरुष की) सेवा नहीं की। समयसार में आता है। वहाँ व्यवहार सिद्ध करना है न! जिसने आत्मा जाना नहीं और जाननेवाले की तूने सेवा नहीं की, तो तुझे कहाँ से मिले? यह निमित्त वहाँ सिद्ध करना है न?

यहाँ कहते हैं, ओहो! **आत्मा ही गुरु है, उसकी सेवा कर और आत्मा ही देव है, उसी की आराधना कर।** दिव्यशक्ति का धारक देव प्रभु आत्मा है। वह देवाधिदेव, देव का देव। है न? यह समयसार कलश में आता है। वही देव है। कलश में आता है न? समझ में आया? दिगम्बर आचार्य तो कोई भी कहे, वस्तु की स्थिति का वर्णन करते हैं। समझ में आया? व्यवहारनय का कथन हो तो भी। निश्चय लक्ष्य में रखकर व्यवहार के

कथन हैं। जिसके पास निश्चय जहाँ नहीं, वहाँ व्यवहार कहाँ है? ऐसा तो अनन्त बार किया है। समझ में आया? अपने अतिरिक्त दूसरे का सेवन न करे, इसी कथन को विस्तार से कहते हैं। लाईन में आगे-पीछे हो गया है, भाई! जरा लेखन में आगे-पीछे है। बाद में आयेगा, हों!

भावार्थः—यद्यपि व्यवहारनय से मोक्ष के स्थानक सम्मेदशिखर... है, व्यवहार से वह है। नहीं ही है—ऐसा नहीं। बिल्कुल प्रतिमा मानना ही नहीं, प्रतिमा पूजना ही नहीं, वह तो मिथ्यादृष्टि है। व्यवहार है। उसे—व्यवहार को न माने, वह मिथ्यादृष्टि है। उसके स्थान में—व्यवहार के स्थान में व्यवहार है। समझ में आया? परन्तु उससे निश्चय आत्मा का मोक्षमार्ग प्राप्त होता है, ऐसा नहीं है। इतनी बात है। आहाहा! शुभभाव हो, बन्धभाव हो। परन्तु आये बिना रहता नहीं। समकिती को भी, क्षायिक समकित हो तो भी, अन्तर में स्थिर नहीं हो सकता तो अशुभ से बचने को, अस्थान से बचने के लिये, तीव्र राग ज्वर से छूटने के लिये ऐसा शुभराग आये बिना नहीं रहता। समझ में आया?

एकावतारी इन्द्र, शकेन्द्र एकभवतारी है। उसकी इन्द्राणी एकभवतारी है। पति-पत्नी दोनों एक भव करनेवाले हैं। आठ दिन, जहाँ बावन जिनालय शाश्वत हैं। एक-एक जिनालय में १०८ शाश्वत् भगवान की रत्न की प्रतिमायें हैं। मानो अभी बोलेंगी, ऐसी रत्न की प्रतिमायें हैं। आठवाँ द्वीप है। (वहाँ) मनुष्य नहीं जा सकता। मनुष्य नहीं जा सकता, देव जा सकते हैं। वे वहाँ घुँघरू बाँधकर नाचते हैं, भक्ति करते हैं। समझते हैं कि यह भाव शुभ है। समझ में आया? अन्दर में यह खेद का कारण, दुःख का कारण जानते हैं। आहाहा! परन्तु आये बिना रहता नहीं। कहो, पोपटभाई! ऐसा है। समझ में आया? है न?

व्यवहारनय से मोक्ष के स्थानक सम्मेदशिखर... गिरनार, शत्रुंजय इत्यादि **जिनप्रतिमा....** वीतराग त्रिलोकीनाथ की प्रतिमा, **जिनमन्दिर आदि (व्यवहार) तीर्थ हैं,...** पुण्यबन्ध का कारण है। परन्तु है। आहाहा! बनारसीदास ने तो... है यहाँ? समयसार नाटक है? आया, आया, हों! गुणस्थान का आया। (चौदह गुणस्थान अधिकार)।

जिनप्रतिमा जिन-सारखी, नमै बनारसी ताहि,
जाकी भक्ति प्रभावसौं, कीनौ ग्रन्थ निवाहि॥१॥

— जिन-प्रतिबिंबनुं माहात्म्य—चतुर्दश गुणस्थान में।

जाके मुख दरससौं भगतके नैननिकौं,
थिरताकी बानी बढै चंचलता विनसी।

सम्यग्दृष्टिसहित की बात है। शुभभाव।

मुद्रा देखी केवलीकी मुद्रा याद आवै जहां,
जाके आगै इंद्रकी विभूति दीसै तिनसी।
जाकौ जस जपत प्रकास जगै हिरदेमैं,
सोई सुद्धमति होई हुती जु मलिनसी॥
कहत बनारसी सुमहिमा प्रगट जाकी,
सोहै जिनकी छबि सुविद्यमान जिनसी॥२॥

अब यह। जिन-मूर्तिपूजकों की प्रशंसा

जाके उर अंतर सुदृष्टि की लहर लसी,
विनसी मिथ्यात मोहनिद्रा की ममारखी।
सैली जिनशासन की फैली जाकै घट भयौ,
गरबकौ त्यागी षट-दरवकौ पारखी॥
आगमकै अच्छर परे हैं जाके श्रवनमैं,
हिरदै-भंडर में समानी वानी आरखी।
कहत बनारसी अलप भवथिति जाकी,
सोई जिन प्रतिमा प्रवानै जिन सारखी॥३॥

आता है। है न! व्यवहार है न! सम्यग्दर्शनसहित स्वरूप के भानसहित ऐसा भाव (आता है)। कितना लिखा है! बनारसीदास। अकेले अध्यात्म की भाँग पीकर नाचते थे। कोई ऐसा कहता है न? कहाँ गये? आहाहा! अरे! भगवान! देखो न! यह अध्यात्म की बात करते हैं, उसके साथ यह बात तो करते हैं। अरे! भगवान! उसे नहीं होता, बापू! भाई! तुझे अध्यात्म का अनादर क्यों हुआ?

यहाँ तो तीन लोक का नाथ आत्मा ही देव है, आत्मा ही गुरु है और आत्मा ही तीर्थ है, ऐसा सिद्ध करना है। फिर उसमें स्थिर न हो सके तो व्यवहार आये बिना रहता

नहीं। '**कहत बनारसी अलप भवथिति जाकी, सोई जिन प्रतिमा प्रवांनै जिन सारखी।**' यह तो हमारे (संवत्) १९७८ से चलता है न! १९७८ के वर्ष से यह सब वाँचा है। समझ में आया? हम तो सम्प्रदाय में भी कहते थे कि देखो! शास्त्र में प्रतिमा है। तुम्हारा स्थानकवासी पंथ निकला है, वह झूठा है।

यह रायचन्द्र गाँधी सेठ ने पूछा था। गृहस्थ, बहुत लाखोंपति, पचास हजार की आमदनी थी। रुई का व्यापार। बोटाद... बोटाद। एकबार एकान्त में पूछा था, महाराज! मैंने कहा, देखो! सम्प्रदाय में है वहाँ ऐसा कैसे कहा जा सकता है? इसमें से निकली। शास्त्र में प्रतिमा है। प्रतिमापूजा है। समझ में आया? रायचन्द गाँधी थे। शान्तिभाई। उन्होंने पूछा था। (संवत्) १९७७ का वर्ष। है, वस्तु है, बापू! इसमें पड़े हैं और कहें तो क्लेश होता है, विरोध होता है। मार्ग ऐसा है, बापू! यह व्यवहार के स्थान में व्यवहार है। समझ में आया? यहाँ यह कहते हैं, देखो! आहाहा!

जिन-प्रतिमा जन दोष निकंदे,
सीस नमाई बनारसि वंदै।
फिरि मनमांहि विचारै ऐसा,
नाटक गरंथ परम पदै जैसा॥
परम तत्त परचै इस मांही,
गुनथान की रचना नांही।
यामैं गुनथानक रस आवै,
तो गरंथ अति सोभा पावै॥५॥

फिर चौदह गुणस्थान वर्णन किये हैं। चौदह गुणस्थान का है। यह लेना है। '**आगम कै अच्छर परे हैं जाके श्रवन मैं**' आगम में प्रतिमा है, ऐसा पाठ है। अनादि है, वह नयी वस्तु नहीं। समझ में आया? परन्तु वह व्यवहार है। वहाँ से धर्म हो जायेगा और उससे जन्म-मरण का अन्त आयेगा, यह नहीं। परन्तु बीच में व्यवहार आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? है पुण्यबन्ध का कारण। और बनारसीदास ने तो यहाँ तक लिया,

कहत बनारसी अलप भवथिति जाकी,
सोई जिन प्रतिमा प्रवांनै जिन सारखी॥

समझ में आया? अज्ञानी को यह बात नहीं जँचती। जिसे सम्यग्दर्शन हुआ है,

और जिसे अल्प भव है, उसे जिनप्रतिमा जिनसारखी निक्षेप भास में आता है। आहाहा! समझ में आया? यह कहा था न?

बहुत वर्ष पहले सेठ के साथ चर्चा हुई थी। दामोदर सेठ पैसेवाले व्यक्ति। उस समय साठ वर्ष पहले बहुत पैसे कहाँ थे! दस लाख रुपये तब तो। ओहोहो! उसने ऐसा कहा, स्थानकवासी थे। जब तक मिथ्यादृष्टि है, तब तक जिनप्रतिमा की पूजा होती है। सम्यग्दर्शन होने के बाद नहीं। ऐसा उसने कहा। स्थानकवासी थे न! फिर मैंने धीरे से कहा, देखो! निश्चय से सम्यग्दृष्टि को अपना आत्मज्ञान हुआ, उसे श्रुतज्ञान होता है और श्रुतज्ञान का भेद यह निश्चय और व्यवहारनय है। व्यवहारनय का विषय निक्षेप जो प्रतिमा है, वह ज्ञानी को ही व्यवहारनय का विषय आता है। इसलिए अज्ञानी को (ही) मूर्तिपूजा है, ऐसी बात नहीं है। समझ में आया? जब अपना आत्मज्ञान होता है, तब श्रुतज्ञान भी होता है। श्रुतज्ञान के अन्तर्भेद नय है। निश्चय और व्यवहार। तथा ज्ञेय के भेद में निक्षेप की प्रतिमा है, वह ज्ञेय का भेद है। तो वह व्यवहारनय का विषय है, अत: ज्ञानी को ही व्यवहारनय का विषय सच्चा होता है। ऐसे निषेध करो, ऐसा नहीं चलता, कहा। हम यहाँ सम्प्रदाय में आ गये हैं, इसलिए (मान लेंगे, ऐसा नहीं है)। जरा सा फेरफार करोगे तो क्षण में छोड़ दूँगा, कहा। हम तो आत्मा के लिये निकले हैं, हम कोई वेश वाडा रखने के लिये नहीं निकले। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को ही नय होते हैं और नय में दो भेद—निश्चय और व्यवहार। व्यवहारनय का विषय स्थापना निक्षेप है, वह ज्ञेय का भेद है। ज्ञान के भेदवाले को ज्ञेय का भेद होता है। आहाहा! बात ऐसी है कि वह पुण्यबन्ध का कारण है। सम्यग्दर्शन में प्रतीति है, भान है कि यह शुभभाव होता है। समझ में आया? हेयबुद्धि से परन्तु आता है। आहाहा! समझ में आया?

व्यवहारनयकर... है? जिनप्रतिमा, जिनमन्दिर, सम्मेदशिखर इत्यादि लेना। तीर्थ है। **क्योंकि वहाँ से गये महान पुरुषों के गुणों की याद आती है,...** यह पहले प्रश्न हुआ था। वहाँ एक बरवाळावाले थे न? गुजर गये न? स्थानकवासी, सन्ताबाल को मानते थे। जगजीवनभाई, वे जगजीवनभाई स्थानकवासी (थे) और सन्तबाल को माने। पहले जब हम (संवत्) २०१३ के वर्ष में यात्रा में जाना था, तब मुम्बई पहले पहले मोटर में बैठे। उस समय (से पहले) तो कभी बैठे नहीं। यात्रा में जाना था न! तब उसने प्रश्न किया था, महाराज! इस यात्रा में क्या? देखो, भाई! यात्रा में ऐसा है कि जहाँ से

मुक्ति पधारे हों, वहाँ भगवान ऊपर हैं। वहाँ जाते हैं, तब उनकी याद आती है कि यह भगवान ऊपर हैं। इस याद के लिये यात्रा है। पण्डितजी! समझ में आया? वे कुछ देते नहीं। जैसे कि यहाँ शत्रुंजय है, वहाँ से पाण्डव मोक्ष पधारे हैं। अभी भी वहाँ ही हैं, उसी स्थान में ऊपर (समश्रेणी से सिद्धालय में) विराजते हैं। वहाँ जाकर... आहाहा! ऊपर भगवान विराजते हैं, ऐसी याद आती है, वह यात्रा का कारण है। समझ में आया? तो वह भी प्रसन्न हो गया, हों! नहीं तो वह मूर्ति को नहीं मानता। क्योंकि सन्तबाल मूर्ति का निषेध करता था। स्थानकवासी का वर्तमान में अभी है। बाद में तो उसने माना कि शास्त्र में मूर्ति है, ८१ वर्ष तक तो है। जब पूर्वधर थे, तब से मूर्ति है। भगवान के बाद ८१ वर्ष तक (मूर्ति तो है ऐसा) शिलालेख निकला है। अभी तो बहुत शिलालेख निकले हैं। पाँच हजार वर्ष पहले से दिगम्बर प्रतिमा है। मोहन जोदड़ो में। मोहन जोदड़ो में पाँच हजार वर्ष पहले की प्रतिमा है। पहले श्वेताम्बर थे कहाँ? तब से प्रतिमा है। समझ में आया? परन्तु उस प्रतिमा में, जिसे निश्चय सम्यक् हुआ है, उसे यह व्यवहार आये बिना रहता नहीं और उसे पुण्यबन्ध का कारण है। मिथ्यादृष्टि को अकेले शुभभाव हो, उसे नय और निक्षेप तो है नहीं। समझ में आया? बाबूभाई! यहाँ तो परीक्षा किये बिना, अन्दर में बैठे बिना हम हाँ नहीं करते। तुम सब मानो, ऐसा हमारे नहीं। यहाँ तो अन्दर में बैठना चाहिए। समझ में आया? ऐई! पोपटभाई! यह सब वे थे। ये सब स्थानकवासी थे। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, देखो! **जिनमन्दिर आदि तीर्थ हैं, क्योंकि वहाँ से गये महान पुरुषों के गुणों की याद होती है,...** देखो! यह निकला। देखो! वहाँ जाते हैं तो वहाँ परमात्मा विराजते हैं। ऋषभदेव भगवान अष्टापद पर्वत के ऊपर, दूसरे तीर्थंकर सम्मेदशिखर के ऊपर। बीस तीर्थंकर जहाँ से मोक्ष पधारे, वहाँ ऊपर भगवान सिद्धरूप से विराजते हैं। वहाँ स्मरण आते हैं। ओहो! इस क्षेत्र में परमात्मा (विराजते हैं)। वह एक शुभभाव है। है तो शुभभाव, हों! पर के गुण का स्मरण भी शुभभाव है। परन्तु वह आये बिना रहे नहीं, तथा वह धर्म नहीं। आहाहा! है?

तो भी.... कहते हैं, भले ऐसा हो, **तो भी वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूप छेदरहित जहाजकर...** आहाहा! तिरने का उपाय तो यह है। आहाहा! वह बीच में आता है परन्तु वह तिरने का उपाय नहीं। देखो! वीतराग निर्विकल्प समाधि। राग से भिन्न अपनी

निर्विकल्प दृष्टि, ज्ञान आदि छेदरहित जहाज है। जहाज कहते हैं। छेदरहित—छिद्र नहीं। वह जहाज। वह राग तो छिद्र है। यह तो रागरहित श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता अन्दर हुई, वह रागरहित—छिद्ररहित जहाज है। आहाहा! वह **छेदरहित जहाजकर संसाररूपी समुद्र के तरने को...** वह छेदरहित जहाज, वीतरागी श्रद्धा, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी स्थिरता, वह अपना तीर्थ है। आहाहा! वह **संसाररूपी समुद्र के तरने को समर्थ जो निज आत्मतत्त्व है,...** आहाहा! समझ में आया? **वही निश्चयकर तीर्थ है,...** वह व्यवहार तीर्थ कहा परन्तु तिरने का उपाय तो यहाँ है। समझ में आया? परन्तु वह बीच में आता है, वह तिरने का उपाय नहीं है। अमरचन्दजी! आहाहा! आये बिना रहता नहीं। दो नय है न? दो नय है। कहीं एक ही नय है? आहाहा! समझ में आया? **निज आत्मतत्त्व है, वही निश्चयकर तीर्थ है,...** आहाहा! लो, बहुत सरस रखा है। गाथा बहुत अच्छी आ गयी। अब फिर थोड़ा है न वह आगे-पीछे कर डाला है।

यद्यपि व्यवहारनयकर दीक्षा शिक्षा का देनेवाला दिगम्बर गुरु होता है,... दिगम्बर गुरु-सन्त आत्मज्ञानी अनुभवी, वे गुरु हैं। व्यवहारनयकर दीक्षा, शिक्षा-उपदेश (देनेवाले) दिगम्बर गुरु होते हैं। है? **उसके उपदेश परम्परा से परमात्मतत्त्व का लाभ होता है।** यह वहाँ लेना। है न? बाद की लाईन यहाँ लेना। **उसके उपदेश....** ऐसा है न? **परम्परा से परमात्मतत्त्व का लाभ होता है।** व्यवहार छोड़कर निश्चय होगा। क्योंकि ज्ञानी को ख्याल है कि यह व्यवहार राग है। अशुभ से बचने के लिये आता है। फिर शुभ छोड़कर स्थिरता होगी, तब निश्चयमोक्षमार्ग होगा। आहाहा! समझ में आया? 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही, वहाँ-वहाँ वह-वह आचरे आत्मार्थीजन सही।' श्रीमद् का वाक्य है। श्रीमद् राजचन्द्र। गिरधरभाई!

मुमुक्षु : उसमें व्यवहार के आचरण का न आ जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न व्यवहार। 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही।' व्यवहार के स्थान में व्यवहार समझना, निश्चय के स्थान में निश्चय समझना।

उसके उपदेश परम्परा से... कौन? **व्यवहारनयकर दीक्षा शिक्षा का देनेवाला दिगम्बर गुरु होता है, उसके उपदेश परम्परा से परमात्मतत्त्व का लाभ होता है।** परम्परा। है? **तो भी...** ऐसा होने पर भी **निश्चयनयकर विषय कषाय आदिक समस्त**

विभावपरिणामों के त्यागने के समय निज शुद्धात्मा ही गुरु है,... आहाहा! वह तो विकल्प है। दीक्षा, शिक्षा गुरु से (लेना)। सेवा, वन्दन आदि विकल्प है। होता है, पूर्ण वीतराग न हो, वहाँ मुनि को भी गुरु की सेवा करने का भाव आता है। आता है न? वैयावृत्य का भाव आता है। प्रवचनसार। मुनि को रोग आदि हो, उस समय स्वयं ध्यान में न हो तो शुभराग आता है। उसकी वैयावृत्य में कफ निकलता हो तो साफ करे, ऐसा करे। यह भाव है न? परन्तु वह शुभभाव है। परन्तु उस शुभभाव की मर्यादा उस समय आये बिना रहती नहीं। हठ करने जाये तो नहीं (स्थिर हो सके)। ऐसा कहते हैं। प्रवचनसार में है न? उत्सर्ग और अपवादमार्ग। अकेला उत्सर्ग में जायेगा और अपवाद नहीं हो तो भ्रष्ट हो जायेगा। तथा अकेले अपवाद में रहेगा और उत्सर्ग का ध्यान नहीं रखे तो निश्चय नहीं प्राप्त होगा। आहाहा! वीतराग की वाणी तो देखो! ओहो! स्याद्वाद जिसकी कथनशैली। आहाहा! प्रवचनसार में चरणानुयोग में ऐसा लिखा है। उत्सर्गमार्ग और अपवादमार्ग। चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में है। आहाहा!

यह बराबर समझने की वस्तु है। भगवान! ऐसी बात है, बापू! व्यवहार आता है। गुरु की सेवा, गुरु के उपदेश से सम्यग्दृष्टि को परम्परा अर्थात् शुभभाव छोड़कर मुक्ति होगी। परम्परा अर्थात् यह। शुभभाव से मुक्ति होगी, ऐसा नहीं, परन्तु शुभभाव छोड़कर होगी। निश्चय से तो **विषय कषाय आदिक समस्त विभावपरिणामों...** पर की भक्ति और सेवा आदि के विभाव परिणाम **त्यागने के समय...** आहाहा! **निज शुद्धात्मा ही...** देखा! वहाँ निश्चय सिद्ध किया। **ही गुरु है,...** भगवान आत्मा गुरु है। आहाहा! फिर गुरु है, उसे व्यवहार गुरु कहा जाता है। परन्तु निश्चय होवे तो न! निश्चय अपना गुरु है, उसकी तो खबर नहीं। और पर गुरु तिरा देंगे (ऐसा मानता है)। आहाहा! समझ में आया?

एक खोजा था। बावळा के। श्रीमद के भक्त यहाँ आते थे। फिर कहते, हमने तो गुरु को पकड़ा है, अब गुरु को तारना है, हमें दूसरा कुछ है नहीं। कौन तारे? समझ में आया? वह सब एकान्त आग्रह। गुरु को पकड़ा। गुरु क्या साक्षात् देव को पकड़ा हो तो भी वह विकल्प है। समझ में आया? मार्ग तो भाई! जैसा है, वैसा है। खींचतान करे, ऐसा नहीं चलता। आहाहा! गुरु तिरा देंगे। गुरु तो पर है। तिरने का उपाय तो तेरे पास है।

मुमुक्षु : मार्ग बताया या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग बताया परन्तु प्रगट किसने किया? आहाहा! यह तो निश्चय की बात चलती हो, तब तो भी व्यवहार सिद्ध किया, व्यवहार है, परन्तु व्यवहार है वह पुण्यबन्ध का कारण है। निश्चय से तो आत्मा की वीतराग निर्विकल्प समाधि, वह देव है, वह गुरु है। समझ में आया?

मुमुक्षु : निश्चय-व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय-व्यवहार ऐसा है। दोनों हैं। परन्तु ऐसा नहीं कि व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा नहीं। व्यवहार है सही, व्यवहार नहीं, ऐसा नहीं और व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा भी नहीं। उसे छोड़कर निश्चय होता है। ऐसी बात है, भाई! बहुत खींचतान ऐसी हो गयी लोगों को। फिर अपनी मान्यता प्रमाण शास्त्र के अर्थ भी खींचतान कर डाले। भगवान क्या कहते हैं, उसके ऊपर दृष्टि ले जाना। अपनी दृष्टि से शास्त्र के अर्थ नहीं करना। समझ में आया? भगवान सन्त क्या कहते हैं, उसके ऊपर दृष्टि ले जाना। अपनी दृष्टि हो कि व्यवहार से प्राप्त होता है, ऐसा उसमें से अर्थ निकाले तो विरोध हो जाये। परम्परा कहा। परम्परा का अर्थ यह कि शुभराग छोड़कर शुद्ध में जायेगा, तब मुक्ति होगी। समझ में आया? आहाहा! सत्य है, सत्य है। आहाहा!

उसी से संसार की निवृत्ति होती है,... भाषा देखो! **निज शुद्धात्मा ही गुरु है, उसी से संसार की निवृत्ति होती है,...** गुरु है, तीर्थ है, सेवा करना, वह शुभभाव है परन्तु उससे संसार की निवृत्ति नहीं होती। आहाहा! ऐसी बात! वास्तव में तो वह शुभभाव संसार है। परन्तु निश्चयवन्त को जब तक पूर्ण वीतरागता न हो तो आये बिना रहे नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। आवे, इसलिए उससे निश्चय होता है, ऐसा है नहीं। अरे! खींचतान कर डाली। टोडरमलजी तो कहते हैं, व्यवहार और निश्चयनय—दोनों नयों को विरोध है। दोनों उपादेय? नहीं, व्यवहार हेय, निश्चय उपादेय। दो है सही। समझ में आया? हेय है, तो क्यों आता है? परन्तु आये बिना रहता नहीं। निर्बलता है। समझ में आया? मुनि को भी पंच महाव्रत आते हैं, अट्ठाईस मूलगुण आते हैं। वह क्या है? शुभभाव है। दृष्टि में तो हेय है, परन्तु अस्थिरता में वह आये बिना रहते नहीं। आहाहा! उसे धर्म माने और मोक्ष का कारण माने तो दृष्टि विपरीत है और वे आते हैं तो आना ही नहीं चाहिए, वह भी मिथ्या आग्रह है। दशरथलालजी! ऐसी बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : पुण्य संसार.... या संसार में रोकने का?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह संसार वह संसार ही है। वह भाव ही संसार है, जगपंथ है। एक बार कहा था न? मुनि को... कहा था न? समयसार नाटक में है। छठवें गुणस्थान में आत्मज्ञानी तीन कषाय का अभाव हुआ है, वह मुनि। 'ता कारण जगपंथ इत।' उसे भी विकल्प आता है तो जगपंथ है। छठवें गुणस्थान में प्रमाद। 'ता कारण जगपंथ इत, उतर शिवमारग... जोर' स्वभाव के सन्मुखता की स्थिरता, वह मोक्षमार्ग का जोर है। 'परमादी जग को धुकै', प्रमादी विकल्प आया, वह जग की ओर झुकाववाला है। आता है परन्तु जग की ओर झुकता है। आहाहा! ऐसी वीतराग की वाणी। है? 'इसलिए प्रमाद संसार का कारण, अनुभव मोक्ष का कारण। प्रमादी संसार को देखता है।' आहाहा! और अप्रमादी मोक्ष की ओर देखता है और अन्दर झुकता है। यह छठवें गुणस्थान की व्याख्या की है, हों! आहाहा! 'जो परमादी आलसी जिनके विकल्प भूरी होई सिथल अनुभौ विषै तिन्हकौ शिवपथ दूरी' जो कुछ विकल्प में आता है, वहाँ मोक्षपंथ दूर हो जाता है। आहाहा! शिथिल अनुभव विषे। अन्तर अनुभव में शिथिल हो गया। आनन्द के नाथ में स्थिर होना चाहिए, (उसके बदले) विकल्प से शिथिल हो गया। आहाहा! 'तिनको शिवपंथ दूरी।' शुभभाव समकिती मुनि को शुभभाव आता है, वह भी शिवपंथ से दूर है। आहाहा! यह दिगम्बर वाक्य तो देखो! बनारसीदास गृहस्थ हैं। समकित दर्शन में कहाँ अन्तर है। सिद्ध और तिर्यंच का समकित समान है। चारित्र में अन्तर है। सम्यग्दर्शन तो तिर्यंच का और सिद्ध का (समान है)। आहाहा!

यह रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आया है, टोडरमलजी ने डाला है। तिर्यंच का और सिद्ध का समकित, दोनों का एक सरीखा है। आहाहा! रहस्यपूर्ण चिट्ठी में है। समझ में आया? 'जो परमादी आलसी तेह अभिमानी जीव... जो अविकल्पी अनुभवी वह समरसी सदीव' आहाहा! बनारसीदास भी... आहाहा! 'जो अविकल्पी अनुभवी शुद्धचेतनायुत, ते मुनिवर लघुकाल में होय कर्म सो मुक्त।' आहाहा! अनुभवी समकिती है, तथापि अनुभव में स्थिर नहीं और यह राग आता है तो प्रमाद है, संसार की ओर झुकता है, कहते हैं। आहाहा! और कुन्दकुन्दाचार्य ने पुण्य-पाप अधिकार में कहा न? पहली गाथा में पुण्य जो संसार में प्रवेश करावे, उसे भला कैसे कहें? आहाहा! आता

है। समझ में आया? सेठ! यह तुम्हारे पुण्य नहीं, हों! इस पुण्य से पैसे मिले, उसकी बात नहीं। यह तो वर्तमान पुण्यभाव की बात है। यह पैसे मिले वह तो पूर्व के पुण्य के परमाणु थे, उसका है। यह तो वर्तमान पुण्य का जो भाव है... समझ में आया? आहाहा! वह संसार है। संसार में प्रवेश करे, जो पुण्यभाव, उसे भला कैसे कहें? आहाहा! इसलिए यहाँ आचार्य बोले न, **मा** तीर्थ में न जा। प्रभु! यह शुभभाव है। आहाहा! **मा** गुरु की सेवा न कर, प्रभु! वह शुभभाव है। देव की सेवा कर, वह शुभभाव है, ऐसा कहा। व्यवहार का निषेध करते हैं। आहाहा! तो भी व्यवहार आता है। व्यवहार न हो तो एकदम अप्रमत्तदशा हो जाये। समझ में आया? चौथे गुणस्थान में भी देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा होती है। पाँचवें में देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति और बारह व्रत होते हैं। छठवें में देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति और पंच महाव्रत होते हैं। होते हैं न? परन्तु वे जाननेयोग्य हैं, ऐसा जान। निषेध करे कि वे होते ही नहीं, ऐसा भी नहीं और उससे कल्याण होगा, ऐसा भी नहीं। समझ में आया? ऐसा मार्ग प्रभु का है, भाई! आहाहा!

निश्चयनयकर विषय कषाय आदिक समस्त विभावपरिणामों के त्यागने के समय... देखा! **निज शुद्धात्मा ही गुरु है, उसी से संसार की निवृत्ति होती है।** आहाहा! **यद्यपि प्रथम अवस्था में चित्त की स्थिरता के लिये...** देखो! समझ में आया? इसमें थोड़ा पड़ा रहा। '**सविकल्पापेक्षया चित्तस्थितिकरणार्थं**' संस्कृत में है। सविकल्प। सविकल्प दशा में होता है तब '**स्थितिकरणार्थं तीर्थंकरपुण्यहेतुभूतं**' जिनप्रतिमा की भक्ति आदि होती है। क्या कहा? पहला शब्द ऐसा है कि **प्रथम अवस्था में चित्त की स्थिरता के लिये...** सविकल्प अवस्था में। जब समकिती को अन्दर निर्विकल्प अनुभव नहीं, जब विकल्प आता है तो सविकल्पदशा में **चित्त की स्थिरता के लिये व्यवहारनयकर जिनप्रतिमादिक देव कहे जाते हैं,...** जिनप्रतिमा, सम्मेदशिखर आदि देव व्यवहार से कहने में आते हैं। साक्षात् भगवान भी व्यवहार से देव कहे जाते हैं। आहा! **और ये परम्परा से निर्वाण के कारण हैं,...** लोग यहाँ उलझते हैं। अज्ञानी की यह बात नहीं है। ज्ञानी को जिसे राग हेय वर्तता है, उसने अशुभराग टाला है और शुभराग टालेगा, इस अपेक्षा से परम्परा कारण कहा है। राग कभी मुक्ति का कारण होगा? समझ में आया? राग का अभाव करेगा तो परम्परा मोक्ष का कारण कहलाता है। आहाहा! गजब बातें, भाई! किस नय का वाक्य है?

अभी तो गड़बड़ चलती है न! जगनमोहनलालजी ने डाला, व्यवहार परम्परा हेतु। किसका व्यवहार? और किस प्रकार? मिथ्यादृष्टि को अभी समकित की खबर नहीं, उसे प्रतिमा-फ्रतिमा का व्यवहार, वह व्यवहार है ही कहाँ? आहाहा! वाद-विवाद ने जगत को मार डाला है। अपना एकान्त पक्ष पकड़े। तो कहे, व्यवहार से लाभ न हो तो वह एकान्त नहीं? एकान्त ही है। व्यवहार से लाभ नहीं, इसका नाम एकान्त है। परन्तु व्यवहार नहीं, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

तो भी निश्चयनयकर... आहाहा! **परम आराधनेयोग्य वीतराग निर्विकल्प-परमसमाधि के समय...** आहाहा! वीतरागी परिणति की परमसमाधि काल में भगवान ही सेवन योग्य है। आहाहा! **निज शुद्धात्मभाव ही देव हैं,...** आहाहा! दिव्यशक्ति का धनी भगवान आत्मा देव है। अरिहन्त आदि देव तो व्यवहार देव हैं। अपनी अपेक्षा से। उनकी अपेक्षा से भले निश्चय हो, इसकी अपेक्षा से पर है तो पर, वह व्यवहार देव है। आहाहा! समझ में आया? **अन्य नहीं।** है? अन्य नहीं, अर्थात्? इस देव के अतिरिक्त अरिहन्तदेव भी देव नहीं, ऐसा कहते हैं। निश्चय में तो अपना आत्मा ही देव है, अन्य देव नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई!

इस प्रकार निश्चय-व्यवहारनयकर साध्य-साधक-भाव से... देखो! निश्चय साध्य है और व्यवहार साधक कहलाता है। व्यवहार से, हों! **तीर्थ-गुरु-देव का स्वरूप जानना चाहिए।** आहाहा! **निश्चयदेव, निश्चयगुरु, निश्चयतीर्थ निज आत्मा ही है,...** आहाहा! निश्चयदेव, निश्चयगुरु, निश्चयतीर्थ है न? विशेष स्पष्ट करके दृढ़ किया है। **वही साधनेयोग्य है, और व्यवहारदेव जिनेन्द्र तथा उनकी प्रतिमा, व्यवहारगुरु महामुनिराज, व्यवहारतीर्थ (सम्मेदशिखर) सिद्धक्षेत्रादिक ये सब निश्चय के साधक हैं,...** निमित्त है। उसमें उसे निमित्त कहा जाता है। साधक कहो, व्यवहार साधक कहो। **साधक हैं, इसलिए प्रथम अवस्था में आराधनेयोग्य हैं।** प्रथम अवस्था में शुभभाव होता है, तब देव-गुरु-शास्त्र आराधनेयोग्य हैं, ऐसा कहते हैं।

निश्चयनयकर ये सब (पर) पदार्थ हैं... समझ में आया? निश्चयनय से साध्य साधन अन्दर लिखा है साध्य साधनभाव से.... **'तीर्थंकरपुण्यहेतुभूतं साध्यसाधकभावेन परंपरया निर्वाणकारणं' उनसे साक्षात् सिद्धि नहीं है,...** देखो! व्यवहार तीर्थ, व्यवहार

देव, व्यवहार गुरु, **उनसे साक्षात् सिद्धि नहीं है,...** परम्परा का अर्थ (यह कि) प्रथम अभी निश्चय सहित शुभभाव आया है, पश्चात् शुभभाव छोड़ेगा। छोड़ेगा अवश्य। समझ में आया? क्योंकि श्रद्धा में ऐसा आया है कि स्वरूप में स्थिर होना, वह चारित्र है। सम्यक् हुआ, वह सम्यग्दर्शन में ऐसा आया है कि इस स्वरूप में स्थिर होना, इतना चारित्र है। ऐसा सम्यग्दर्शन में आया है। आहा! समझ में आया? वह शुभभाव छोड़कर अन्दर स्थिर होगा। अल्प काल में... आहाहा! दूज हुई, उसकी पूर्णिमा होगी ही। पूर्णिमा हुए बिना रहेगी नहीं। आहाहा! इसी प्रकार सम्यग्दर्शन आदि की दूज उगी, उसे पूर्ण केवलज्ञान हुए बिना रहेगा नहीं। व्यवहार छोड़कर स्थिर हो जायेगा। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! गुरु के माननेवाले ऐसा मानते हैं कि गुरु अपने को तिरा देंगे। गुरु तिरा देंगे? तिरने का उपाय तो तेरे पास है? वे कहीं तिरा देंगे? ऐ... सेठ! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : गुरु की देशना मिली....

पूज्य गुरुदेवश्री : देशना मिली परन्तु देशना से कहाँ सम्यग्दर्शन होता है? अपना आश्रय करे तो सम्यग्दर्शन होता है। देशना से नहीं होता, ऐसा कहते हैं। देशना आती है, परन्तु उसका लक्ष्य जहाँ तक वहाँ है, सम्यग्दर्शन नहीं होगा। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान! वीतराग का मार्ग स्याद्वाद अनेकान्त की यह स्थिति है। व्यवहार से भी होता है और निश्चय से भी होता है, ऐसा अनेकान्त नहीं है। निश्चय से होता है, फिर व्यवहार को छोड़कर होता है, उसका नाम अनेकान्त है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। चार ज्ञान... परम्परा है।

यहाँ श्री परमात्मप्रकाश अध्यात्म ग्रन्थ में निश्चयदेव, गुरु, तीर्थ अपना आत्मा ही हैं, उसे आराधनाकर अनन्त सिद्ध हुए... देखो! भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द परमात्मा की दृष्टि, ज्ञान और शान्ति, वह आराधना। उससे अनन्त सिद्ध हुए **और होवेंगे, ऐसा सारांश हुआ।** सारांश यह है। अपना आराधन करके मुक्ति को प्राप्त होते हैं। पर की आराधना बीच में आती है, परन्तु उसे छोड़कर अपनी आराधना करे तो मुक्ति होती है। (विशेष कहेंगे....)

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ९६

अथ निश्चयेनात्मसंवित्तिरेव दर्शनमिति प्रतिपादयति –

९६) अप्पा दंसणु केवलु वि अण्णु सव्वु ववहारु।
एक्कु जि जोइय झाइयइ जो तइलोयहँ सारु।।९६।।

आत्मा दर्शनं केवलोऽपि अन्यः सर्वः व्यवहारः।
एक एव योगिन् ध्यायते यः त्रैलोक्यस्य सारः।।९६।।

अप्पा दंसणु केवलु वि आत्मा दर्शनं सम्यक्त्वं भवति। कथंभूतोऽपि। केवलोऽपि। अण्णु सव्वु ववहारु अन्यः शेषः सर्वोऽपि व्यवहारः। तेन कारणेन एक्कु जि जोइय झाइयइ हे योगिन्, एक एव ध्यायते। यः आत्मा कथंभूतः। जो तइलोयहं सारु यः परमात्मा त्रैलोक्यस्य सारभूत इति। तद्यथा। वीतरागचिदानन्दैकस्वभावात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभूतिरूपाभेद–रत्नत्रयलक्षणनिर्विकल्पत्रिगुप्तिसमाधिपरिणतो निश्चयनयेन स्वात्मैव सम्यक्त्वं अन्यः सर्वोऽपि व्यवहारस्तेन कारणेन स एव ध्यातव्य इति। अत्र यथा द्राक्षाकर्पूरश्रीखण्डादिबहुद्रव्यैर्निष्पन्नमपि पानकमभेदविवक्षया कृत्वैकं भण्यते, तथा शुद्धात्मानुभूतिलक्षणैर्निश्चयसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रै–र्बहुभिः परिणतो अनेकोऽप्यात्मात्वभेदविवक्षया एकोऽपि भण्यत इति भावार्थः। तथा चोक्तं अभेद–रत्नत्रयलक्षणम् – 'दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोधः। स्थितिरात्मन चारित्रं कृत एतेभ्यो भवति बन्धः।।'।।९६।।

आगे निश्चयनयकर आत्मस्वरूप ही सम्यग्दर्शन है –

मात्र आत्मा का दर्शन ही सम्यग्दर्शन, अन्य सभी–
है व्यवहार, अतः जग में वह एक सार, ध्याओ योगी।।९६।।

अन्वयार्थ :– [केवलः आत्मा अपि] केवल [एक] आत्मा ही [दर्शनं] सम्यग्दर्शन है, [अन्यः सर्वः व्यवहारः] दूसरा सब व्यवहार है, इसलिये [योगिन्] हे योगी [एक एव ध्यायते] एक आत्मा ही ध्यान करने योग्य है, [यः त्रैलोक्यस्य सारः] जो कि तीन लोक में सार है।

भावार्थ :– वीतराग चिदानंद अखंड स्वभाव, आत्मतत्त्व का सम्यक् श्रद्धान ज्ञान अनुभवरूप जो अभेदरत्नत्रय वही जिसका लक्षण है, तथा मनोगुप्ति आदि तीन

गुप्तिरूप समाधि में लीन निश्चयनय से निज आत्मा ही निश्चयसम्यक्त्व है, अन्य सब व्यवहार है। इस कारण आत्मा ही ध्यावने योग्य है। जैसे दाख, कपूर, चन्दन इत्यादि बहुत द्रव्यों से बनाया गया जो पीने का रस यद्यपि अनेक रसरूप है, तो भी अभेदनयकर एक पानवस्तु कही जाती है, उसी तरह शुद्धात्मानुभूतिस्वरूप निश्चयसम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रादि अनेक भावों से परिणत हुआ आत्मा अनेकरूप है, तो भी अभेदनय की विवक्षा से आत्मा एक ही वस्तु है। यही अभेदरत्नत्रय का स्वरूप जैन सिद्धान्तों में हरएक जगह कहा है – 'दर्शनमित्यादि' इसका अर्थ ऐसा है, कि आत्मा का निश्चय वह सम्यग्दर्शन है, आत्मा का जानना वह सम्यग्ज्ञान है, और आत्मा में निश्चल होना वह सम्यक्चारित्र है, यह निश्चयरत्नत्रय साक्षात् मोक्ष का कारण है, इनसे बंध कैसे हो सकता है ? कभी नहीं हो सकता।।९६।।

वीर संवत् २५०२, भाद्र शुक्ल १, गुरुवार
दिनांक-२६-०८-१९७६, गाथा-९६, प्रवचन-७३

परमात्मप्रकाश, ९६ गाथा। पहले भाग की ९६। पहले भाग की ९६ गाथा, हों! **आगे निश्चयनयकर आत्मस्वरूप ही सम्यग्दर्शन है:—** मुद्दे की बात करते हैं।

९६) अप्पा दंसणु केवलु वि अण्णु सव्वु ववहारु।
एक्कु जि जोइय झाइयइ जो तइलोयहँ सारु ॥९६॥

आहाहा! गाथा बहुत अलौकिक है!

अन्वयार्थः—'केवलः आत्मा अपि' केवल... 'एक' आत्मा ही सम्यग्दर्शन है,... आहाहा! अर्थात् सम्यग्दर्शन मात्र केवल आत्मा के आश्रय से होता है। वहाँ कोई व्यवहार-फ्यवहार से होता है, ऐसा नहीं है आहाहा! बात तो ऐसी है परन्तु अभी गड़बड़ ऐसी कर डाली है। समझ में आया? केवल आत्मा ही। ऐसा है न? आहाहा! **'केवलु वि आत्मा दर्शनं सम्यक्त्वं भवति'** आहाहा! अकेला आत्मा भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होता है। तो वह आत्मा ही सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

'अन्यः सर्व व्यवहारः' दूसरा सब व्यवहार है,... व्यवहार का अर्थ उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अपना मोक्षमार्ग—

दर्शन, ज्ञान, चारित्र तो आत्मा ही है अथवा आत्मा के आश्रय से उत्पन्न होता है, तो वह आत्मा ही है। आगे कहेंगे, तो यह चीज़ें व्यवहार क्या है? अन्य व्यवहार हो। बाह्य सहकारी कारण रूप से उसे हो। व्यवहार दया, दान, व्रतादि के भाव या देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का भाव, वह केवल मोक्ष के मार्ग में बाह्य सहकारी कारण कहने में आता है। बस, इतना। समझ में आया? परन्तु उपादान तो आत्मा से ही सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **सब व्यवहार है,....** ऐसा कहकर, व्यवहार के आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता, ऐसा अब सिद्ध करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : व्यवहार साधक, निश्चय साध्य तो कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस साधक का अर्थ बाह्य सहकारी का आरोप देकर साधक कहा। साधक है नहीं। यह बात है। आगे गाथा में आयेगा। अपने आत्मा के अवलम्बन से, जिसमें अनन्त आनन्द, ज्ञान आदि भरे हैं, प्रभु! उसके आश्रय से, उसकी पूर्णता के स्वीकार से सम्यग्दर्शन होता है, वही मोक्ष का मार्ग है। साथ में उसे साधक कहा, बाह्य निमित्त कारण को देखकर। यह अभी आयेगा। ९८ में? ९८ में आयेगा पीछे। ९८ है न? ९८ का भावार्थ।

वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूप शुद्धभावना नहीं है, उसके शास्त्र, पुराण, तपश्चरणादि सब व्यर्थ हैं। है? इस भगवान की पुस्तक में तो ऐसा है। आहा! **यहाँ शिष्य प्रश्न करता है...** देखो अब। **क्या बिल्कुल ही निरर्थक है?** बिल्कुल ही निरर्थक है? आहाहा! **उसका समाधान ऐसा है कि, बिल्कुल तो नहीं है, लेकिन वीतराग सम्यक्त्वरूप निज शुद्धात्मा की भावनासहित हो, तब तो मोक्ष के बाह्य सहकारीकारण है...** बाह्य सहकारी—साथ में है तो निमित्त कारण कहने में आता है। आहाहा! देखो न यह! टोडरमलजी ने स्पष्टीकरण किया है, वह बात यहाँ से निकलती है। जो आत्मा अपने आश्रय से... आहाहा! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्रगट करता है, तो वह एक ही मोक्षमार्ग है। अन्य सब व्यवहार अर्थात् मोक्षमार्ग नहीं, ऐसा यहाँ चलती गाथा में कहना है। इसे यहाँ कहा कि अन्तर में अभेद रत्नत्रय स्व के आश्रय से प्रगट हुए हों तो उन सबको बाह्य सहकारी देखकर, निमित्त सहकारी कारण कहने में आता है। बाह्य सहकारी कारण। अन्तर में नहीं। आहाहा! समझ में आया? एक बात (हुई)।

यदि वे वीतरागसम्यक्त्व के अभावरूप हो, तो पुण्यबन्ध के कारण हैं,... अन्तर स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन न हुआ हो और वह व्यवहार हो तो पुण्यबन्ध का कारण है। दो (बातें हुईं)। **और जो मिथ्यात्वरागादि सहित हो तो पापबन्ध के कारण हैं,...** तीन स्पष्टीकरण किये। समझ में आया? भगवान आत्मा जो पूर्ण शुद्ध चैतन्य के सन्मुख होकर—उसका आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्रगट होता है। यहाँ सम्यग्दर्शन की बात मुख्य है न! तो साथ में व्यवहार होता है तो उसे बाह्य सहकारी निमित्तरूप से कहो, जानो। ऐसा कहते हैं। और अन्तर स्वभाव का आश्रय नहीं और वह व्यवहार हो तो मिथ्यात्वसहित पुण्यबन्ध होता है। आहाहा! और वह न हो... समझ में आया? **मिथ्यात्वरागादि सहित हो तो पापबन्ध के कारण हैं,...** आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय भी मिथ्याश्रद्धासहित हो तो वह पापबन्ध का कारण है। देखो! जिसे मोक्ष का बाह्य सहकारी कहते थे, वह मिथ्यात्व रागादि सहित हो तो वह पापबन्ध का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग समकित नहीं और अकेले दया, दान, व्यवहार श्रद्धा, ज्ञान हो तो पुण्यबन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : मिथ्यात्व....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व तो साथ में है ही, परन्तु यहाँ तो अभी उसे अभाव है, इतना लिया है। वीतरागी समकित नहीं, समकित नहीं परन्तु उसका जोर अन्तर झुकाव की ओर नहीं है। परन्तु जरा उसका शुभभाव है तो उसे बाह्य पुण्यबन्ध का कारण कहा है। है तो वह समकित बिना। कहा न? **वीतरागसम्यक्त्व के अभावरूप हों...** ऐसा कहा न? समकित तो नहीं। **तो पुण्यबन्ध के कारण हैं, और मिथ्यात्वरागादि सहित हों,...** अत्यन्त परसन्मुख की दृष्टि और परसन्मुख का राग हो, तब तो पापबन्ध का कारण है। **जैसे कि रुद्र...** शंकर आदि **विद्यानुवादनामा दसवें पूर्व तक शास्त्र पढ़कर भ्रष्ट हो जाते हैं।** समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो अन्य व्यवहार आया न? **आत्मा ही सम्यग्दर्शन है, दूसरा सब व्यवहार है,...** आहाहा! चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, भक्ति, पूजा, दान, दया, व्रत, तप

आदि हो, वह सब विकल्प है और सब अन्य व्यवहार है, उसका अर्थ कि मोक्षमार्ग नहीं है। समझ में आया? आहाहा! अरे! इसे उद्धार करने का रास्ता तो प्रभु आत्मा है। उस आत्मा का अवलम्बन लिये बिना जो कुछ करे, वह सब निरर्थक है, मोक्षमार्ग में वह सार्थक नहीं है। मोक्षमार्ग के लिये निरर्थक, संसार के लिये सार्थक। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! भाषा देखो न! '**अन्यः सर्वः व्यवहारः**'। आहाहा! भगवान आत्मा अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्रगट करे तो वह सम्यग्दर्शन आत्मा ही है। इसके अतिरिक्त अनात्मा है, ऐसा कहना है। सब व्यवहार अनात्मा है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : मिथ्यात्व के अभाव बिना....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। अभाव है परन्तु जरा मन्द है। तीव्र मिथ्यात्व नहीं, मन्द है और उसके साथ पुण्यबन्ध।

मुमुक्षु : सन्मुखता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : सन्मुख तो नहीं। मन्द है इतना। मन्द तो होता है न! मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी की मन्दता होती है। तथापि मन्द हो, वह कहीं वस्तु नहीं। समझ में आया? पुण्यबन्ध होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात है, भाई! वीतराग का मार्ग अभी बहुत बिखर गया। चारों ओर चिल्लाहट मचाते हैं। अरे! यह व्यवहार का तिरस्कार करते हैं, तिरस्कार करते हैं। व्यवहार से होता है, ऐसा मानते नहीं, एकान्त है। जैन गजट में बहुत आता है। आहाहा! अरे! भगवान! भाई! तेरी चीज़ को छोड़कर जो होता है, वह आत्मा के मोक्ष का कारण नहीं है। वह तो अनात्मा है न प्रभु! आहाहा! अनात्मा, वह आत्मा के मोक्ष के कारण में कैसे मदद करे? समझ में आया? भाषा देखो न सिद्धान्त।

आत्मा ही... ऐसा शब्द है न? टीका में स्पष्टीकरण ऐसा है, '**अप्पा दंसणु**'। आत्मा ही दर्शन है। आहाहा! भाई! इसे आत्मा की कीमत लोगों को नहीं। आत्मा महाप्रभु आनन्द का नाथ, अतीन्द्रिय सहजानन्द प्रभु, सहजात्मस्वरूप सहज आत्मस्वरूप त्रिकाल, उसके सन्मुख होकर, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन, उसके आश्रय से हुआ तो आत्मा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाव में जरा विचार करना चाहिए, भाई! यहाँ कहते हैं, '**अप्पा दंसणु**' आत्मा ही सम्यग्दर्शन है। '**अन्यः सर्वः व्यवहारः**' है। आहाहा! एक

लाईन में तो कितना डाला है! यह सिद्धान्त कहा जाता है। समझ में आया? गम्भीरता का पार नहीं। आहाहा! यह सन्तों की वाणी। रामबाण वाणी है। एक पंक्ति में इतना भर दिया है। आहाहा!

भगवान आत्मा वस्तु है न! परमानन्द अनाकुल शान्तरस का कन्द प्रभु है। वह सम्यग्दर्शन आत्मा है। क्योंकि आत्मा के आश्रय से उत्पन्न हुआ तो वह आत्मा है। आहाहा! और पर के आश्रय से उत्पन्न हो, वह व्यवहार अनात्मा है। आहाहा! बात तो ऐसी है, प्रभु! लोगों को भी यह पद्धति / रीति नहीं थी, नयी आयी; इसलिए उन्हें लगता है। शास्त्र में तो पहले से पड़ी है। यह नया बनाया है? यह सोनगढ़ का है? अमरचन्दभाई!

मुमुक्षु : इसका आपने हल कर दिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अलग बात है। यह है। आहाहा! ऐ... सेठ! यह परमात्मप्रकाश पहले का है या यहाँ का है? पहले का है।

मुमुक्षु : यहाँ तो प्रकाशित भी नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रकाशित, वह बात सच्ची। यह प्रकाशन भी वहाँ से आया है, अगास से आया है। अभी नये आये हैं, कोई कहता है। कितने? २५०! ओहोहो! १००० आये। पहले २४०, फिर १००, फिर ४००, अब २५०। १००० हुए, बहुत रखे होंगे। अगास में प्रकाशित हैं। सेठ कहते हैं, ऐसा यहाँ नहीं प्रकाशित हुआ। यह तो दूसरी जगह प्रकाशित है। आहाहा! यहाँ प्रकाशित हुआ हो तो भी शब्द तो वह के वह न? आहाहा! गजब बात है! ९६ गाथा, आहाहा!

आत्मा ही सम्यग्दर्शन है,.... है? आहाहा! '**केवलु**' ऐसा लिखा है न? आहाहा! फिर विशिष्टता क्या है? भगवान पूर्णानन्द पर जिसकी दृष्टि गयी... आहाहा! तो उस दृष्टि का आश्रय तो भगवान आत्मा हुआ और वह दृष्टि आत्मा के आश्रय से हुई तो आत्मा के आश्रय से हुई, वही आत्मा है। आहाहा! और '**अन्यः सर्वः व्यवहारः**' ओहोहो! सन्तों—दिगम्बर मुनियों की वाणी तो देखो! ओहोहो! एक पंक्ति में तो पूरे चौदह ब्रह्माण्ड का सार भर दिया है। निश्चय और व्यवहार, दोनों का फैसला कर दिया है। आहाहा! समझ में आया? सन्त, केवलियों के पथानुगामी हैं। उनके रास्ते-रास्ते चलनेवाले और अल्प काल में केवलज्ञान लेनेवाले। निश्चित लेनेवाले हैं। आहाहा!

कहते हैं कि जिसमें सम्पूर्ण शक्ति और सम्पूर्ण आनन्द पड़ा है, सम्पूर्ण ज्ञान है, ऐसा भगवान आत्मा प्रभु! जो (ध्रुव) सामान्य एकरूप स्वभाव का विशेष तो आश्रय लिया, उसका विशेष ने आश्रय लिया। सम्यग्दर्शन, वह विशेष है। आहाहा! सामान्य का आश्रय लिया। सामान्य का विशेष हुआ, इसलिए वह आत्मा है। समझ में आया? आहाहा! पुस्तक है। हमारे जयन्तीभाई को नहीं थी तो दी, यहाँ रखी थी। जयन्तीभाई को दी, ऐ... मलूकचन्दभाई! यहाँ हमारे पास एक थी। एक खाली था, वह दिया अभी। पढ़ें तो सही, फिर यहाँ रख देना। आये हैं। आहाहा!

यह भगवान आत्मा, जो विकल्प से खाली और अनन्त-अनन्त स्वभाव से भरपूर। आहाहा! समझ में आया? वह वर्तमान पर्याय से भी खाली है और अनन्त गुणों से भरपूर भरा हुआ भण्डार है। पोपटभाई! तुम्हारे दो करोड़ के भण्डार-फण्डार की तो यहाँ कीमत नहीं होती। आहाहा! यह तो अन्दर अनन्त भण्डार भरा है।

मुमुक्षु : अखूट... अखूट।

पूज्य गुरुदेवश्री : अखूट। आहाहा! कम न हो। केवलज्ञान की अनन्त पर्याय निकाले तो भी कम न हो। आहाहा! जिसमें से केवलज्ञान की पर्याय निकाले, एक समय, दो समय ऐसे अनन्त समय निकाले तो भी वह कम नहीं हो, ऐसा भगवान भण्डार अन्दर है। आहाहा! शंकर का भण्डार है वह। यह लोग दुकान में प्रविष्ट करते हुए पैर नहीं लगते? दुकान में अन्दर प्रविष्ट करते हैं न? सवेरे दुकान खोले तब। देहरी को पैर लगते हैं। शंकर का भण्डार है। ऐसा कि आज आमदनी बहुत होओ। दुकान में तुम्हारे वहाँ नहीं करते? सवेरे दुकान खोले न, सवेरे दुकान खोले (तो देहरी को पैर लगे / नमन करे)। हमारे तो यहाँ दुकान में होता है। हमारे दूसरे करते थे, हम नहीं करते थे दुकान खोले तब। ऐसा कि यह शंकर का भण्डार है। यह शंकर अर्थात् सुख का भण्डार तो यह है। शंकर अर्थात् सुख होता है। सुख का भण्डार भगवान अन्तर पूर्णानन्द का नाथ। आहाहा! जिसका जिसने आश्रय लिया, ऐसा सम्यग्दर्शन, वह सामान्य का ही विशेष हुआ। तो विशेष, वह आत्मा ही है। इसके अतिरिक्त अन्य जितने विकल्प, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के विकल्प, अरे! शास्त्र पठन का विकल्प, वह सब अनात्मा है। यह आत्मा है तो वह व्यवहार अन्य है तो अनात्मा है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : गुरु का उपदेश....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु का उपदेश अनात्मा है। यहाँ तो सेठ! ऐसी बात है। यह तो तीन लोक के नाथ जिनवरदेव का मार्ग है प्रभु यह! वीतरागी प्रधान दशा। आहाहा! जिसमें पर के साथ स्नेह का सम्बन्ध नहीं, राग का सम्बन्ध नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा... ओहोहो! एक लाईन में तो गजब किया है!

'**अप्पा दंसणु केवलु**' ऐसा है न? अर्थात् केवल में एक आ गया, भाई! अकेला केवल आत्मा दर्शन है। आहाहा! सम्यग्दर्शन के लिये भगवान अकेला आत्मा ही आश्रय है। इसलिए दर्शन को केवल आत्मा कहने में आता है। आहाहा! पुस्तक सामने है न? देखो न! इसके लिये तो रखते हैं। नहीं तो कहीं वाँचन यहाँ हो और पुस्तक नीचे हो? परन्तु यह तो इसे विशेष ख्याल आवे, इसलिए पुस्तक रखते हैं। समझ में आया? '**अन्यः सर्वः व्यवहारः**' दो भाषा की। एक ओर भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन एकरूप आत्मा, अन्य सर्व व्यवहार। आहाहा! चाहे तो दया, दान के विकल्प उठे, भगवान की भक्ति, तीर्थंकरगोत्र का भाव (हो), सब व्यवहार है। आहाहा! पर के आश्रय से उत्पन्न हुआ, वह सब व्यवहार है। अपने आश्रय से उत्पन्न हुआ, वह आत्मा है। आहाहा!

भगवान निज आँगन में आया, पर्याय में आया? आहाहा! जो स्वभाव में पूर्णानन्द में था, उसका आश्रय लिया तो पर्याय में भगवान आया। आहाहा! ओहोहो! दर्शन की पर्याय में पूरे आत्मा की श्रद्धा हुई। भले आत्मा पर्याय में आया नहीं, परन्तु पूरे आत्मा की श्रद्धा हुई तो आत्मा आया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो बापू! वीतराग का मार्ग है, भाई! चाहे तो दुःखीजन प्राणी! भाई नहीं आये? छोटुभाई रायचन्द। उसे बेचारे को दोनों आँखें गयी है। बहुत हिम्मतवाला व्यक्ति। जामर (जाला) के कारण आँख गयी। जामर की खबर भी नहीं पड़े कि यह है। आहाहा! देह की दशा... भगवान कभी अन्धा नहीं होता। वह तो ज्ञानचक्षु भगवान आत्मा। जिसके ज्ञानचक्षु हैं, ऐसे भगवान का जिसने आश्रय लिया, बड़े का शरण जिसने लिया, वह पर्याय भी आत्मा हो गयी। आहाहा! समझ में आया? जिसने निमित्त और पर का आश्रय लिया, वह अनात्मा हो गया। आहाहा! तीन लोक के नाथ का आश्रय लिया, वह आत्मा हो गया। समझ में आया? पर्याय में उत्तराधिकार मिला। द्रव्य की जितनी शक्ति

है, उसका पर्याय में उत्तराधिकार मिला। इसलिए उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! और विकल्प व्यवहारादि है, वह सब आत्मा से भिन्न है, इसलिए अनात्मा है, ऐसा कहते हैं। ऐसा कहा न यहाँ? आहाहा! गजब बात, प्रभु! लोगों को जँचे, न जँचे, एकान्त माने, न माने, स्वतन्त्र है, भाई! प्रभु का मार्ग तो यह है। प्रभु के श्रीमुख से दिव्यध्वनि में यह आया है। समझ में आया?

'**अन्यः सर्वः व्यवहारः**' यहाँ से निकलना कठिन पड़ता है। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का जिसने आश्रय लिया, वह आत्मा और जिसने पर का आश्रय लिया, वह सर्व व्यवहार अनात्मा। अब क्या करना है तुझे? नवरंगभाई है अभी, रुके हैं, ठीक। कहो, नवरंगभाई! यह पानी का छानना कहीं रह गया। यह पानी छानना आया। आहाहा! अरे! वीतरागदेव की श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान, पंच महाव्रत के परिणाम... कहते हैं कि (वह) आत्मा सम्यग्दर्शन है, तो वह आत्मा नहीं। आहाहा! ऐसे दो भेद किये हैं। अब उस अनात्मा से आत्मा होता है? भगवान! यह नहीं हो सकता। आहाहा! न्यायसंगत नहीं। प्रभु! तुझे ख्याल में तो आना चाहिए न! सत्य क्या है और असत्य क्या है, इसकी तुलना करके अन्दर प्रेम तो आना चाहिए न! अनात्मा से आत्मा होगा? आहाहा! आत्मा से आत्मा होता है, आत्मा से आत्मा होता है। अनात्मा से अनात्मा होता है। पर के आश्रय से तो सब अनात्मा होता है। आहाहा!

देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, भक्ति, पूजा, व्रत भाव आदि... ओहोहो! '**अन्यः सर्वः व्यवहारः**'। सर्व व्यवहार, ऐसा वापस। आहाहा! दो ही भाग। एक ओर भगवान के आश्रय से हुआ, वह आत्मा और अपने अतिरिक्त जितने पर के आश्रय से हुए, वे सर्व व्यवहार—अनात्मा। आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं, भाई! यह? ऐसी बात है, भगवान! क्या करें? कड़क पड़े, प्रभु! मार्ग तो यह है, भाई! आहाहा! लोगों को समझ में न आवे, न बैठे और उल्टे रास्ते चढ़ जाये, इससे कहीं सत्य नहीं पलटेगा। आहाहा!

तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि में आया उसे सन्तों ने शास्त्र में रचा। वे दिगम्बर मुनि महा परमात्मातुल्य भगवान हैं। आहाहा! वे परमात्मा ही हैं। सन्त परमात्मा हैं। आहाहा! परमेष्ठी नहीं, परन्तु परमात्मा। यह स्वरूप ही—पंच परमेष्ठीस्वरूप ही परमात्मा है। एक पूर्ण है और थोड़ा बाकी है, परन्तु वे पूर्ण तुल्य ही हैं। आहाहा! नियमसार में लिया है। सन्त और परमात्मा में किंचित् अन्तर नहीं देखना, अन्तर देखे

वह जड़ है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी वाणी तो देखो! उसके भाव अन्दर चोट मार जाये। आहाहा! ९६ गाथा की एक लाईन। '**अन्यः सर्वः व्यवहारः**' ऐसा शब्द पड़ा है न? '**अण्णु सव्वु ववहारु**' अन्य सर्व व्यवहार। चाहे तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकर गोत्र की जिस भाव से प्रकृति बँधे, वह व्यवहार है, अनात्मा है। कहो, सुजानमलजी! ऐसी बातें हैं, प्रभु! आहाहा! बाहर के आचरण और बाहर की क्रिया से अन्दर में जा सकेगा, ऐसा जो मानता है, प्रभु! ऐसा नहीं, भाई! ऐसा नहीं। वह वस्तु ही ऐसी नहीं। असहाय नहीं वह कि जिसे राग की सहायता मिले तो अन्तर में जाये और अनुभव हो। आहाहा! ऐसा वह बलवान आत्मा है। यह पाँच इन्द्रियाँ है न? भाई! इन पंचेन्द्रिय को बलवान कहा है। पंचास्तिकाय। पाँच इन्द्रियों में पाँच इन्द्रियाँ हैं सही न? और क्षयोपशम तत्प्रमाण है न! बलवान भाषा मूल पाठ में है। पंचास्तिकाय। पाँच इन्द्रियाँ पूरी हुई, उसे बलवान कहा। यहाँ तो अणीन्द्रिय भगवान पूर्णानन्द का नाथ... आहाहा! उसके बल की क्या बात करना! समझ में आया? वह तो उसे ऐसा कि क्षयोपशम विशेष है न, चार इन्द्रिय की अपेक्षा पंचेन्द्रिय को क्षयोपशम विशेष है, इतनी बात। उसे समझने का योग हो, वहाँ समझे। दूसरे मन बिना के प्राणी और पंचेन्द्रिय हो, उसे बेचारे को कहाँ सुनने को भी मिले नहीं। अरेरे! आहाहा! अब क्या कहते हैं?

इसलिए.... ऐसा शब्द पड़ा है टीका में। टीका में ऐसा है, देखो! '**आत्मा दर्शनं सम्यक्त्वं भवति। कथंभूतोऽपि। केवलोऽपि। अण्णु सव्वु ववहारु अन्यः शेषः सर्वोऽपि व्यवहारः**' आहाहा! टीकाकार... '**तेन कारणेन**' ऐसा शब्द है। इस कारण से। आहाहा! हे योगी! स्वरूप में तेरी दृष्टि पड़ी है, इसलिए तुझे योगी कहते हैं। आहाहा! हे सन्त! योगी! जिसने वर्तमान पर्याय को द्रव्य के साथ जोड़ दिया है, वह योगी है। जो वर्तमान पर्याय को राग के साथ जोड़ता है, वह अयोगी भ्रष्ट है। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा? आत्मा केवल सम्यग्दर्शन—अकेला सम्यग्दर्शन है। एक ही आत्मा का आश्रय लिया, इसलिए यह सम्यग्दर्शन, वह आत्मा। '**अण्णु सव्वु**' अन्य सर्व। टीका में '**शेषः**' लिया है। अन्य शेष चाहे जो हो। पंच महाव्रत का विकल्प, तीर्थंकरगोत्र बाँधने का, सर्वार्थसिद्धि के आयुष्य का विकल्प... आहाहा! तीर्थंकरगोत्र बाँधने का भाव, वह शेष अन्य व्यवहार है। अन्य '**शेषः सर्वोऽपि व्यवहारः**' ऐसा है न? पाठ में सर्व शब्द है।

इसलिए हे योगी! एक आत्मा ही ध्यान करने योग्य है,... आहाहा! तू लाख बात

कर, शास्त्र की अनन्त बात कर, यह आत्मा है, वह ध्यान करनेयोग्य है, बस! दूसरी कोई चीज़ है नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा को देव-गुरु-शास्त्र का ध्यान करनेयोग्य नहीं। वह तो पहले आ गया न? कल आया था। तू देव को सेव नहीं, गुरु को सेव नहीं। आचार्य को जगत की कहाँ पड़ी है। सत्य को प्रसिद्ध करते हैं। कहते हैं कि तीर्थ में न जा। अरे! प्रभु! परन्तु इतना शुभभाव है न? सुन, सुन! गुरु को न सेव, अरिहन्त का ध्यान न कर। देव मानकर उनका ध्यान न कर। तू स्वयं देव, गुरु और तीर्थ है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी वाणी तो देखो सन्तों की! रामबाण है न! फैसला कर दिया है। एक आत्मा और एक अनात्मा, एक निश्चय और एक व्यवहार। आहाहा!

इस कारण से, ऐसा है, इस कारण से हे मुनि—हे योगी! आहाहा! '**एक एव ध्यायते**' देखा! आत्मा केवल एक समकित है, अन्य सर्व व्यवहार है। इसलिए **एक आत्मा ही ध्यान करने योग्य है,...** आहाहा! धर्म करना हो, उसे तो भगवान पूर्णानन्द के नाथ का ध्यान करना, वह एक ही चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? क्यों? इसका अर्थ अभी चौथे पद में स्पष्टीकरण करेंगे। पहले तो कहा, केवल सम्यक् आत्मा ही है; अन्य सर्व शेष व्यवहार है, इसलिए आत्मा का ही ध्यान करना। लाख बात की बात... छहढाला में आया नहीं? लाख नहीं, करोड़ नहीं, अनन्त बात की बात। है न? लाख बात की बात, निश्चय उर लाओ। यह क्या? यह। लाख, करोड़ बात शास्त्र की (आवे), परन्तु एक आत्मा की ओर जा। ध्यान, बस एक ही बात। बाकी सब असार... असार... असार।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, द्वैत भी छोड़ दे। यह गुणी और यह गुण तथा यह द्रव्य और यह पर्याय, ऐसा भेद भी छोड़ दे। आहाहा! एक निज आतम उर ध्याओ। निज आतम वापस, ऐसा। भगवान हैं, वे नहीं। यह तो कहीं दिगम्बर सन्तों को पड़ी है कुछ? यह वचनों की तुलना करके कौन झूठा कहेगा, हमको पागल कहेगा... कहो, हम तो पुकार करके कहते हैं कि तीर्थ में जाओ नहीं, गुरु की सेवा करना नहीं। आहाहा! अरे! भगवान! भाई! उसमें तेरा लाभ नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसमें आत्मा का लाभ नहीं। भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, ढ़िंढोरा पीटकर मोटी आवाज में जो कहना है, वह मुनि कह रहे हैं। आहाहा! समाज में कैसे मानेंगे, कैसे करेंगे... समाज उसके घर में रहा। आहाहा!

भाई! तू परमात्मस्वरूप है न! और तेरे आश्रय से हुआ सम्यग्दर्शन, वह तू है न! आहाहा! तू है न! वह आत्मा है, प्रभु! आहाहा! एक ओर पूर्णानन्द के नाथ को आत्मा कहा। पर्याय को भी नहीं। (नियमसार गाथा) ३८। निश्चय आत्मा, त्रिकाली, वह निश्चय आत्मा। पर्याय नहीं। यहाँ तो उसके आश्रय से हुआ, इसलिए आत्मा और पराश्रय हुआ, इसलिए व्यवहार अनात्मा है, ऐसा सिद्ध करने के लिये (कहा है)। आहाहा! समझ में आया? कहो, विमलचन्दजी! ऐसी बात है, भगवान! यह दुनिया दुनिया की जाने, बापू! पाँच-पचास लाख हो, इसलिए ऐसे प्रसन्न... प्रसन्न... प्रसन्न हो जाये। स्त्री अच्छी रूपवान मिले न... अरे! बापू! यह क्या है? सब श्मशान की हड्डियाँ हैं, भाई! तीन लोक का नाथ जहाँ है, वहाँ विकल्प की कीमत नहीं। आहाहा! भगवान के समक्ष परचीज़ की कहाँ कीमत है, भाई! समझ में आया?

हे योगी! '**एक एव ध्यायते**' पहले कहा था न? '**केवलः आत्मा अपि**' सम्यक्। केवल आत्मा ही सम्यग्दर्शन है। तो **एक आत्मा ही ध्यान करने योग्य है,...** क्यों? '**यः त्रैलोक्यस्य सारः**' आहाहा! सेठ! है? कहाँ है? अभी हाथ नहीं आया। '**यः त्रैलोक्यस्य सारः**' है। आहाहा! तीन लोक में सार तीन लोक का नाथ स्वयं सार है। आहाहा! **तीन लोक में सार है।** आहाहा! व्यवहार-फ्यवहार वह सार नहीं। आहाहा! वह असार है। समझ में आया? क्या हो? भाई! मार्ग यह है। दुनिया को कठिन लगे परन्तु मार्ग तो हो, वह होगा न! आहाहा! हलुवा बनाना हो तो पहले घी में आटा को सेंकते हैं, फिर गुड़ का पानी डालते हैं। बहुत महँगा पड़ जाये और गुड़ के पानी में आटा सेंके, फिर घी डाले तो हलुवा होता है? हलुवा बनाने की पद्धति तो यही है। शीरा—हलुवा। पहले आटा को घी में सेंकना। भले घी महँगा हो, आटा चूस ले, परन्तु हलुवा तो इस रास्ते से होगा। इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने आश्रय से ही सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र होते हैं। तीन काल में पर के आश्रय से मोक्षमार्ग होता नहीं। आहाहा! **यह तीन लोक में सार है।**

भावार्थः—वीतराग चिदानन्द अखण्ड स्वभाव, आत्मतत्त्व का सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-अनुभवरूप जो अभेदरत्नत्रय यही जिसका लक्षण है,... आहाहा! वीतराग चिदानन्द अखण्ड स्वभाव आत्मतत्त्व। यह पहले आत्मतत्त्व की व्याख्या की। वीतराग चिदानन्द अखण्ड स्वभाव। भगवान आत्मा वीतराग अखण्ड चिदानन्दस्वभाव आत्मतत्त्व का सम्यक् श्रद्धान। उसका सच्चा श्रद्धान, सच्चा ज्ञान और सच्चे अनुभव की स्थिरता, वह

अभेदरत्नत्रय यही जिसका लक्षण है,... आहाहा! **तथा मनोगुप्ति आदि तीन गुप्तिरूप समाधि में लीन...** आहाहा! मन से, वचन से, काया से, विकल्प से हटकर समाधि— शान्ति... शान्ति... शान्ति में लीन।

निश्चयनय से निज आत्मा ही निश्चयसम्यक्त्व है,... आहाहा! देखो! यह समकित की व्याख्या की है। आहाहा! समाधि—शान्तरस में लीन, शान्तरस भगवान आत्मा, उसमें शान्तरस की परिणति से लीन। आहाहा! **निश्चयनय से निज आत्मा ही निश्चयसम्यक्त्व है,...** देखो! इसका नाम सम्यक्त्व। आहाहा! व्यवहारश्रद्धा करो और रुचि करो, वह नहीं। यह तो श्रद्धा और रुचि उसका नाम है कि जहाँ आनन्द के नाथ की शुद्ध परिणति आनन्द की शान्ति प्रगट हुई, उसे निश्चय समकित कहा जाता है। आहाहा! पर से हटकर स्वभाव के आनन्द की लहर में लीनता करता है, उसका नाम आत्मा और निश्चय समकित है। आहाहा! **अन्य सब व्यवहार है।** दशरथलालजी! **अन्य सब व्यवहार है।** आत्मा नहीं। आहाहा! भाई! थोड़ा परन्तु सत्य होना चाहिए न! समझ में आया? लम्बी बड़ी-बड़ी बातें करे और ऐसा होता है और ऐसा होता है और ऐसा होता है। व्यवहार से ऐसा होता है, परम्परा से होता है। किसे होता है? भाई! किस प्रकार होता है? आहाहा! व्यवहार अनात्मा, उससे परम्परा से आत्मा होगा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो व्यवहारनय का वाक्य है। वह किसे? सम्यग्दृष्टि ज्ञानी धर्मात्मा के लिये बात है। अभी अज्ञानी है, उसे व्यवहार परम्परा मोक्ष का कारण (नहीं)। परम्परा अनर्थ का कारण, नरक, निगोद का कारण है। कठिन काम, बापू! वीतराग का मार्ग... आहाहा! दरकार कब की है इसने आत्मा के ओर की? एक तो यह बाहर की होली पूरे दिन सुलगी। आहाहा! पाप में—प्रपंच में पड़ा, उसे पुण्य का ठिकाना नहीं होता। श्रवण, मनन, स्तुति, भक्ति, वह सब पुण्य है। उसके लिये भी समय न मिले। उसे इस पुण्य से रहित भगवान को खोजना हो तो कब समय मिले? हें! आहाहा! समझ में आया? परद्रव्य की पंचायत में फँस गया। और ऐसे करते हुए आगे गया तो व्यवहार, वह भी वास्तव में परद्रव्य है, वहाँ फँस गया। समझ में आया?

भगवान आत्मा... यहाँ तो गजब बात है! सन्तों को कुछ पड़ी है? तुम यह निषेध

करते हो, (वह लोगों को जँचेगा या नहीं) ? यात्रा न करो, गुरु की सेवा न करो, ऐसी तुम्हारी नग्न भाषा।

मुमुक्षु : कोई गुरु की सेवा नहीं करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता था ? उन्हें कहाँ पड़ी है ? और जिसे अन्तर का भान हो, उसे बहुमान आये बिना रहेगा ही नहीं। समझ में आया ? परन्तु आता है, वह बीच में दखल है, इसलिए वह न कर, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। उन्हें दुनिया की कुछ पड़ी नहीं। यह तो दिगम्बर सन्त हैं। बादशाह हैं, नागा से आघा। नागा बादशाह हैं यह तो। आहाहा! आनन्द के बादशाह हैं। यह वस्तु और मकान के बादशाह कहलाते हैं, बाहर के। ये आनन्द के बादशाह हैं। आनन्द में झूलते सन्त जगत को बातें करते हैं। आहाहा! भाई! तेरा आनन्द का नाथ अन्दर पड़ा है न, प्रभु! तुझे यह व्यवहार की क्रियाकाण्ड के विकल्प से तुझे लाभ हो, तू कहाँ गया ? प्रभु! आहाहा! तेरे स्वभाव के वे सब शत्रु हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, तप का विकल्प है, यह विकल्प, वह शत्रु है। प्रवचनसार में ऐसा कहा, वह अनिष्ट है। विकल्प मात्र अनिष्ट है और स्वभाव, वह इष्ट है। भगवान ने अनिष्ट का नाश करके इष्ट की प्राप्ति की है। आता है न ? प्रवचनसार में आता है। आहाहा! अनिष्ट का नाश करके इष्ट की प्राप्ति की है, ऐसा पाठ है। व्यवहारमात्र अनिष्ट था, उसका त्याग कर डाला है। आहाहा! परमात्मा! आपने अनिष्ट का त्याग करके इष्ट की प्राप्ति की। इष्ट तो अपना स्वरूप है। उसकी निर्मल परिणति, वही इष्ट है। आहाहा! वीतरागी सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वह इष्ट है। रागादि भाव, वे अनिष्ट हैं। स्पष्ट बात है। भगवान! परन्तु यह बाहर आयी न, (तो) लोग एकदम भड़के। था नहीं, था नहीं। यह बात सच्ची। आहाहा!

मुमुक्षु : .... बहुत भड़कते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : रेल आयी तो पूजा करते। 'खस' में रेलगाड़ी आयी न तो रेल की पूजा करते। रेल आयी न ? एक कुम्हार था। हम निकलते थे। यह तो बड़ी देवी है, ऐसा कहे। रेल आयी न रेल ? आहाहा! इंजन से चली। नहीं बैल, नहीं ऊँट, नहीं घोड़ा और यह चले! नळियुं... नळियुं... समझे ? नळियुं को क्या कहते हैं ? मकान के ऊपर (लगाते हैं)। इतने-इतने नळिया (रखे)। तुम्हारे नळिया का नाम होगा ? कवेलुं।

उसमें से लेकर अग्नि डाली और धूप डालकर रेल की (आरती) उतारते थे। ऐसे मूढ़। एक व्यक्ति और ऐसा कहता था, स्थानकवासी था, यह जीन चलती है, उसमें जीव है। अहमदाबाद वाले। आहाहा! बनिया। वह तो जड़ की पर्याय है। ऐसा कि ऐसा काम! एकदम चले। करोड़-करोड़ मण का भार हो। सरपट चले। वह कहीं जीव बिना चले? अरे! सुन! वह कहता था। शान्तिभाई का साला था न? वह (कहता था) यह तो जीव है, कहे। अरे! प्रभु! आहाहा!

अन्य सब व्यवहार है। इस कारण... इस कारण **आत्मा ही ध्यावने योग्य है।** आहाहा! एक भगवान आनन्द का नाथ, वहाँ दृष्टि देकर ध्यान करनेयोग्य है। आहाहा! तेरा झुकाव बदल डाल अब। परसन्मुख के झुकाव में झुका है, वह अब स्वसन्मुख के झुकाव में आ, भाई! आहाहा! यह वलळ नहीं चुकाते? सट्टावाले को। वायदा का एक दिन वलळ चुकावे। यहाँ वलण चूका, प्रभु! यहाँ जा अब। आहाहा! निश्चय की परम सत्य बात लोगों को सुनने को मिली नहीं। ऐसे के ऐसे यह व्रत करना और अपवास करना और तपस्यायें करना... आहाहा! अज्ञान में संथारा किये... मूढ़ है, मर जानेवाले हैं बेचारे। नरक और निगोद में जायेंगे। जो पराश्रयभाव में हित मानकर चिपटे हैं, वे अनात्मा के प्रेमी हैं। उन्हें आत्मा का द्वेष है। यह बात कौन सुने? आहाहा! भगवान आत्मा के प्रति जिसे प्रेम है, उसे व्यवहार के प्रति रुचि उड़ गयी होती है। होता है, होता है। रुचि उड़ गयी है। आहाहा! समझ में आया?

एक आत्मा ही ध्यावने योग्य है,... लो! आत्मा ही ध्यान करनेयोग्य है। आहाहा! यह तो मक्खन बात थी, बापू! अरे! भाग्य बिना... बापू! यह बात सुनने को मिले कहाँ? यह तो वीतराग का मार्ग है, भाई! भगवान ऐसा कहते हैं, मेरे सन्मुख देखने से प्रभु! तुझे राग होगा। आहाहा! तीन लोक का नाथ ऐसा कहे। प्रभु! मेरे सन्मुख देखने से, तू तेरे द्रव्य में से हट जाता है। तेरे सन्मुख देख न, प्रभु! द्रव्य में स्थिर हो, वहाँ स्थिर होनेयोग्य है। यहाँ हमारे सन्मुख देखकर स्थिर होने जायेगा तो राग आयेगा। आहाहा! वीतराग ऐसा कहे, हों! आहाहा! हमारे चरण में आ, तेरा कल्याण हो जाये। हमारे साधु को आहार-पानी दे, तुझे बैकुण्ठ में आहार अच्छा मिलेगा। अरे! धूल... धूल। आहाहा! सेठ! यह मार्ग है। यह सब ठीक इसमें मुड़ गये। यह तो हिन्दी चलता है। आहाहा!

जैसे द्राक्ष, कपूर, चन्दन इत्यादि बहुत द्रव्यों से बनाया गया जो पीने का रस यद्यपि अनेक रसरूप है, तो भी अभेदनयकर एक पानवस्तु कही जाती है... पेय। शब्द पीणुं (पेय) कहे। हो उसमें बहुत वस्तुएँ। **उसी तरह....** आहाहा! यह तो दृष्टान्त हुआ। **शुद्धात्मानुभूतिरूप निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि अनेक भावों से परिणत हुआ... शुद्धात्मानुभूतिस्वरूप निश्चयसम्यग्दर्शन...** आहाहा! यह शुद्धात्मानुभूति चौथे में नहीं? यह आठवें में है। अरे रे! उन विकासचन्दजी का पत्र आया ही करता है। अभी दो-तीन दिन में आया। चौथे गुणस्थान में निश्चय समकित कहकर हलाहल जहर पिलाते हो। अरे! प्रभु! बापू! क्या करे उसे? उसने सुना नहीं न! यहाँ क्या कहते हैं? **शुद्धात्मानुभूतिरूप निश्चयसम्यग्दर्शन...** तो क्या शुद्धात्मानुभूति आठवें में होगी? आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसकी शुद्ध अनुभूति। उसके ओर की शुद्ध अनुभव दशा, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। आहाहा! अरे! प्रभु! आहाहा! कहते हैं न? लक्ष्मी तिलक करने आयी तो मैं मुँह धो आऊँ तो ठीक शोभेगा। अब करने दे न, बाद में नहीं आयेगी। सुना है? लक्ष्मी तिलक करने आती है। तुम्हारे दृष्टान्त तो होगा। तिलक करने। तो कहे, मैं मुँह धो आऊँ। अब वह नहीं आयेगी बाद में। वह नहीं आयेगी, चली जायेगी। अवसर आया तो कहे, अभी नहीं, अभी थोड़ा दूसरा कर लूँ। आहाहा! फिर से ऐसा अवसर नहीं मिलेगा, प्रभु! आहाहा! ऐसी बात है, बापू! आहाहा! ओहो! परमात्मप्रकाश भी परमात्मप्रकाश है न! और विशिष्टता तो यह है कि इस बार वाँचने के समय एक हजार पुस्तकें परमात्मप्रकाश (की आयी है)। यह नया हुई। बाहर आया बाहर। पढ़ेंगे तो सही, भाई! वाँचे तो सही, बापू! अरे! तू कौन है, उसकी बात है, भाई! और कहाँ जाना? कहाँ जाने से तुझे धर्म होगा, उसकी बात है। बाहर में निकलने से धर्म नहीं। आहाहा! ओहोहो!

शुद्धात्मानुभूतिस्वरूप निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि अनेक भावों से परिणत हुआ आत्मा अनेकरूप है,... यह व्यवहार हुआ। **तो भी अभेदनय की विवक्षा से आत्मा एक ही वस्तु है।** एक कहा था न? एक बार। **यही अभेदरत्नत्रय का स्वरूप जैन सिद्धान्तों में हरएक जगह कहा है...** दूसरे में यह अधिकार आया है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, भाद्र शुक्ल २, शुक्रवार
दिनांक-२७-०८-१९७६, गाथा-९६, ९७, प्रवचन-७४

परमात्मप्रकाश, गाथा ९६। **जैन सिद्धान्तों में हरएक जगह कहा है...** यह गाथा है न! अन्दर गाथा है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय, २१६।

दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोधः।
स्थितिरात्मनि चारित्रं कुत एतेभ्यो भवति बंधः॥

आत्मा का निश्चय, वह सम्यग्दर्शन है,... आहाहा! भगवान आत्मा, जो अबन्धस्वरूप, उसका अन्तर्मुख होकर ज्ञान का अनुभव करके प्रतीति करना, वह सम्यग्दर्शन है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय का आधार दिया है। यह सम्यग्दर्शन है। व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। निमित्त से निश्चय होता है, ऐसा नहीं, आत्मा से निश्चय होता है। भगवान आत्मा अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान, उसके सन्मुख की दृष्टि करके अन्तर अनुभव करके प्रतीति करना। आत्मा आनन्द है, उसका अनुभव करके प्रतीति करना, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! चौथे गुणस्थान से यह समकित शुरु होता है। समझ में आया? निश्चय आत्मा अबन्धस्वरूपी प्रभु की अन्तर में प्रतीति—सम्यग्दर्शन, वह बन्ध का कारण कैसे होगा? ऐसा कहते हैं। चौथे पद में (कहेंगे)। वह तो मोक्ष का कारण है। आहाहा! बीच में जब स्थिर न हो सके और व्यवहार आता है तो वह बन्ध का कारण है। समझ में आया?

आत्मा का निश्चय... आत्मा का निश्चय। आत्मा पूर्ण परमात्मस्वरूप निर्विकल्प स्वरूप, अभेदस्वरूप, सामान्य एकरूप की प्रतीति होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! जहाँ शुभाशुभ विकल्प की भी लाग नहीं—सम्बन्ध नहीं। आहाहा! जिसे देव-गुरु की भक्ति आदि का शुभराग, उसका भी जहाँ सम्बन्ध नहीं। ऐसी वह चीज़ है। आहाहा! यह बड़ा विवाद अभी (यह चलता है)। व्यवहार से परम्परा, व्यवहार से परम्परा (होता है)। परन्तु किसे? बापू! भाई! किसे और किसके लिये? भाई! तुझे खबर नहीं। वीतराग के विरह में—प्रभु का विरह पड़ा और दूसरा रास्ता कहना, करना, वह वस्तु नहीं। समझ में आया?

इसी प्रकार परमात्मा का विरह है, परन्तु भगवान त्रिलोकनाथ के राग में प्रीतिवाले को विरह पड़ा जिसे। आहाहा! समझ में आया? तीन लोक के नाथ की यहाँ अस्ति नहीं, परमात्मा की। परन्तु यहाँ परमात्मा है, उसका राग की रुचिवाले को विरह पड़ा। वहाँ रुक गये। भगवान पूर्णानन्दस्वरूप निर्विकल्प आनन्द के सन्मुख सत्कार, स्वभाव का स्वीकार, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! जिसमें इन्द्र के इन्द्रासनों के भोग की जिसे रुचि, सुखबुद्धि टल जाती है। समझ में आया? जहाँ अपनी सुखबुद्धि अपने में है, ऐसा आया, मेरा स्वभाव ही अतीन्द्रिय आनन्द है... कैसे जँचे? पर्याय के पीछे प्रभु विराजता है, इसकी खबर न हो और पर्याय में रुककर आगे बढ़ता है तो राग और पुण्य में जाता है। वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा!

यह पुरुषार्थसिद्धि उपाय में अमृतचन्द्रसचार्य (कहते हैं)। समझ में आया? यह अमृतचन्द्राचार्य ने बनाया हुआ पुरुषार्थसिद्धि उपाय ग्रन्थ है। उसमें यह है। आहाहा! उसमें तो राग आता है, वह हिंसा है—ऐसा कहा। ओहोहो! व्यवहाररत्नत्रय का राग भी स्वरूप की हिंसा है। भगवान वीतरागस्वरूप में राग का होना, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! उस बन्ध के कारण से अबन्ध सम्यग्दर्शन नहीं होता। अभी यह बड़ा विवाद। ... अरे! प्रभु! भाई! परमात्मा का विरह पड़ा है और तुझे आत्मा का विरह रखना है? क्या करना है तुझे? समझ में आया? राग से होता है, यह उसे परमात्मा का विरह है। अपना परमात्मा, हों! आहाहा! समझ में आया?

अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, आहाहा! यह तो ९६ गाथा में आया, '**अप्पा दंसणु केवलु वि अण्णु सव्वु ववहारु**'। आहाहा! उसके अनुकूल के लिये यह गाथा है। पुण्य के विकल्प आदि उठते हैं, वह सब व्यवहार है, वह आत्मा नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा 'अप्पा सो परमअप्पा'। वह परमात्मस्वरूप है, प्रभु! इसे खबर नहीं। साक्षात् सच्चिदानन्द प्रभु चैतन्य महाप्रभु आत्मा है। समझ में आया? उसकी दृष्टि, उसका निर्णय, उसकी श्रद्धा में पूरे परमात्मा की श्रद्धा आती है। परमात्मा उस श्रद्धा की पर्याय में नहीं आता। आहाहा! परन्तु वह पर्याय है, उसने परमात्मा की श्रद्धा की तो वह अबन्धपरिणामी है। मोक्षमार्ग कहो या अबन्धपरिणाम कहो। सम्यग्दर्शन मोक्ष का मार्ग है। मोक्ष का मार्ग—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। तीनों में सम्यग्दर्शन, वह मोक्षमार्ग का एक अवयव है। आहाहा! समझ में आया? यह तो आत्मा का निश्चय,

अबन्धस्वभावी का निश्चय, वह तो अबन्धपरिणाम है। आहाहा! यह कहते हैं। उससे बन्ध कैसे होगा? आहाहा!

भगवान परमात्मस्वरूप अबन्धस्वरूप परमात्मा अन्दर विराजता है। मौजूद है, मौजूद है, आत्मतत्त्व मौजूद है। अस्तिवाला तत्त्व है, महाप्रभु है। आहाहा! अरे! एक बीड़ी बिना चले नहीं, ... बिना चले नहीं, उसे यह कैसे बैठे? समझ में आया? यहाँ ध्यान रखो, ऐ... बातचीत करते। बातचीत में कुछ माल नहीं। यह क्या कहा जाता है, वह सुनने बैठे हो या क्या करने? आहाहा! अरे! प्रभु! यह कहाँ है? भाई! आहाहा! समझ में आया?

आत्मा ज्ञायकस्वरूप भगवान, एक समय में पूर्ण परमात्मा, उसका निश्चय। उसका निश्चय कब होगा? उसके सन्मुख हो तो निश्चय होगा। राग के सन्मुख हो और स्वभाव से विमुख हो तो निश्चय कहाँ से होगा? समझ में आया? आहाहा! अरे! इसने कभी (किया नहीं)। जैन साधु अनन्त बार हुआ। दिगम्बर (साधु होकर) नौवें ग्रैवेयक गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' परन्तु आत्मसन्मुख की दृष्टि नहीं की। इसकारण एक लेश भी सुख प्राप्त नहीं हुआ। महाव्रत-पंच महाव्रत पालन किये तो भी सुख मिला नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? व्यापार, धन्धे में तो अकेला पाप, वहाँ तो सुख है ही नहीं, आहाहा! परन्तु पंच महाव्रत के पालन में अकेला पुण्य है, बन्ध है, उसमें सुख नहीं। आहाहा! पठन, पाठन, भक्ति, वन्दन, स्तुति, परमात्मा का स्मरण, वे सब भाव शुभराग हैं। आहाहा! उसमें सुख नहीं। वह दुःख है। तो दुःख साधन और सुख साध्य? समझ में आया? भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु, उसका राग दुःख है, वह साधन? और यह साध्य? शास्त्र में तो आया है। किस अपेक्षा से? वह साधन (तब कि) राग से भिन्न पड़कर अपना अनुभव किया तो वह साधन है। परन्तु उसके साथ राग की मन्दता का लक्ष्य करने से, निमित्त है, ऐसा देखकर आरोप किया है कि वह व्यवहार साधन है। साधन है नहीं। आहाहा! अरेरे! यह बड़ा विवाद, दिक्कत। मुश्किल से समझने का काल आवे, तत्त्व न मिले उसमें बीच में यह विघ्न। अरे! कब समझे?

कहते हैं, **आत्मा का निश्चय....** आत्मा का निश्चय—विश्वास। पूर्णानन्द परमात्मा

मैं हूँ, ऐसा अन्तर निर्विकल्प निश्चय। निर्विकल्प का ज्ञान, वह ज्ञान है। आहाहा! यह मोक्षमार्ग में ज्ञान दूसरा अवयव है। सम्यग्दर्शन एक, सम्यग्ज्ञान दो, सम्यक्चारित्र तीसरा। तीनों मिलकर मोक्षमार्ग, उसका यह एक अवयव है। आहाहा! यह सब लौकिक के जानपने की पुस्तकें लिखना आवे। कितने ही उन पुस्तकों में होशियार होते हैं न! उसके नौकर रखते हैं। पोपटभाई! पुस्तकें लिखनेवाले को नौकरी में रखते हैं। नामा। तीन-चार सेठिया रखे। तीन-चार लोगों से आठेक हजार महीने आवे। नामा लिखनेवाले नौकर। आहाहा! भगवान! वह तो पाप है। शास्त्र लिखना और शास्त्र का पढ़ना-वाँचना, वह भी पुण्य है। समझ में आया? आहाहा!

प्रभु! तू दुःखी है। दुःख से मुक्त होने का उपाय आत्मा का ज्ञान है। दुःख से मुक्त होने का उपाय भगवान आत्मा का ज्ञान है। शास्त्रज्ञान, वह नहीं। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा अन्दर शुद्धचैतन्य वस्तु, उसका ज्ञान। विनिश्चय है न? आहाहा! आत्मा का विनिश्चय। '**आत्मपरिज्ञानं**' है। विनिश्चय में समकित का आया। विनिश्चय और यह परिज्ञान आया। इसे उपसर्ग लगा दिया है—परिज्ञानं। आहाहा! यह पुरुषार्थसिद्धि उपाय का श्लोक है। अन्दर है। उसका यह अर्थ है। '**दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्म-परिज्ञानमिष्यते बोधः**' आहाहा! पुरुषार्थसिद्धि उपाय का संस्कृत शब्द है। भगवान आत्मा, बापू! प्रभु! कौन है भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! वह परमात्मस्वरूप है, भाई! पर्याय में परमात्मा होता है, वह कहाँ से होता है? बाहर से कोई चीज़ आती है? आहा!

मुमुक्षु : गुरु के उपदेश से।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु से आती नहीं। गुरु का उपदेश क्या, दिव्यध्वनि में से आती नहीं। यह पहले आ गया है। तुम नहीं थे, तब यहाँ आ गया है। है? कितनी? ३६? २३ गाथा है। दो और तीन।

'**वेयहि सत्थहिँ इदयहिँ जो जिय मुणहु ण जाइ।**' आहाहा! वेद की व्याख्या नीचे की है, केवली की दिव्यध्वनि। '**वेदैः**' २३ गाथा। '**वेदैः**' केवली की दिव्यध्वनि। आया? बहियाँ देखना अभी आता नहीं। उन बीड़ियों की बहियाँ बहुत देखी है न! क्या कहा? देखो! लिखा है? '**वेदैः**' है? '**वेदैः**' की व्याख्या की। **केवली की दिव्यवाणी से... 'शास्त्रैः' महामुनियों के वचनों से तथा इन्द्रिय और मन से भी शुद्धात्मा जाना नहीं**

जाता... है? वाँचो, देखो। महामुनि के शास्त्रों से, मुनि के वचनों से, गणधर आदि सन्तों-मुनियों के वचनों से भी आत्मा ज्ञात नहीं होता। परमात्मप्रकाश पुस्तक वहाँ रखी है या नहीं? रखी होगी भण्डार में। ऐ...सेठ! परमात्मप्रकाश है या नहीं? भण्डार में है। केवली की वाणी से और मुनियों के बनाये हुए शास्त्र से और मुनि की वाणी से भगवान ज्ञात नहीं होता। आहाहा! है? तुम्हारे आने से पहले यह गाथा आ गयी। २३ न! इन्द्रिय से, मन से भी ज्ञात नहीं होता। है? आहाहा! मन तो विकल्प है। आहाहा! इन्द्रिय से तो दूसरे पाँच पदार्थ की ओर लक्ष्य जाता है। भगवान तो अणीन्द्रिय है। आहाहा! वह अणीन्द्रिय ज्ञान से ज्ञात होता है। वीतराग की वाणी, केवली की दिव्यध्वनि से भी ज्ञात नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

'**परिज्ञानं**' आत्मा का जानना। इतना साधारण अर्थ। '**परिज्ञानं**' अर्थात् विशेष। पूरा पूर्ण आत्मा का स्वरूप जानना, वह सम्यग्ज्ञान है। चलता अधिकार। **और आत्मा में निश्चल होना, वह सम्यक्चारित्र है,...** आहाहा! सम्यक्चारित्र अर्थात् क्या? पाँच महाव्रत और नग्नपना, वह चारित्र नहीं। आहाहा! अट्ठाईस मूलगुण, वह चारित्र नहीं। आहाहा! लोगों को बहुत कठिन। यह वस्तु उन्होंने सुनी नहीं। इसकी महत्ता, इसकी महिमा क्या है! आहाहा! कहते हैं, **आत्मा में निश्चल होना,...** भगवान आनन्दस्वरूप में निश्चल स्थिर होना, आनन्द में लीन होना, अतीन्द्रिय आनन्द में लीन होना, वह चारित्र है। आहाहा! अब अभी पाँच महाव्रत के ठिकाने नहीं, अट्ठाईस मूलगुण के ठिकाने नहीं, और हो गये व्रतधारी और चारित्र। और यह सेठिया फिर जय नारायण... जय महाराज, जय महाराज (करे)। सब करे, वैसा करे। समाज करता हो, वैसा करे।

मुमुक्षु : जेल में आवे तो क्या करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : गाँव में चोर आवे तो उसे तो चुराने देना न? गाँव में आवे तो क्या करना? खाली हाथ जाये बेचारा? गाँव में चोर आवे। कठिन बात, बापू! मूल वीतराग का मार्ग यह है। आहाहा! यह तो जिनवरदेव त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि में गणधर और सन्तों के बीच यह आया था। आहाहा! वह सभा कोई साधारण नहीं थी। उसमें गणधर और इन्द्र... आहाहा! बाघ और नाग जैसे सुनने बैठे हों। आहाहा! एकावतारी इन्द्र (बैठे हों), उसमें भगवान कहते थे, प्रभु! हम चारित्र किसे कहते हैं?

जो आत्मा परमात्मस्वरूप आनन्द का नाथ है, उसमें लीनता होना, वह चारित्र है। मन में पाँच महाव्रत के विकल्प आदि उठते हैं, वह तो अचारित्र, दोष है। आहाहा! पंच महाव्रत के विकल्प उठते हैं, वह तो जगपंथ है, संसार की दशा प्राप्त कराने का वह कारण है। आहाहा! जगपंथ कहा नहीं था? समयसार नाटक, मोक्ष अधिकार का ४०वाँ बोल (काव्य) है। जगपंथ। आहाहा! यह मोक्षपंथ।

आत्मा आनन्दस्वरूप में अन्दर घुस जाना। आहाहा! घुसना अर्थात् लीन होना। चारित्र कहीं द्रव्य में घुस नहीं जाता—प्रविष्ट नहीं हो जाता। आहाहा! निर्विकल्प आनन्द की रमणता, अतीन्द्रिय आनन्द की निर्विकल्प रमणता, उसे भगवान सत्य चारित्र कहते हैं। उसे सत्य चारित्र कहते हैं। आहाहा! है? **यह निश्चयरत्नत्रय साक्षात् मोक्ष का कारण है...** तब कोई कहे, साक्षात् कहा तो व्यवहार परम्परा कारण, उसमें आ गया। उसका अर्थ यह कि यह साक्षात् है, साथ में राग की मन्दता है, उसका अभाव करके साक्षात् प्राप्त करेगा, इसलिए राग को, व्यवहार को परम्परा कारण कहा गया है। राग कहीं वीतरागता का कारण होता है? आहाहा! लहसुन खाये और कस्तूरी की डकार आवे? आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं।

निश्चयरत्नत्रय साक्षात् मोक्ष का कारण है... फिर कहते हैं, देखो! **इनसे बन्ध कैसे हो सकता है?** यह तो पाठ में है। समझ में आया? **'कृत एतेभ्यो भवति बन्धः'** आहाहा! यहाँ तो कहा कि तीर्थंकरगोत्र का बन्ध पड़ता है, वह भी अपराध है, मोक्षमार्ग नहीं। मोक्षमार्ग में बन्ध कैसा? पुरुषार्थसिद्धि उपाय में लिया है कि तीर्थंकरगोत्र बँधे, मुनि को आहारकशरीर बँधे, वह भाव अपराध है। आहाहा! वह आराधना नहीं, वह तो अपराध, नुकसान, बन्ध है। समझ में आया? पुरुषार्थसिद्धि उपाय, अमृतचन्द्राचार्य। गजब काम किया है! समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय की टीका तो की, परन्तु ऐसा पुरुषार्थसिद्धि उपाय, तत्त्वार्थसार ग्रन्थ बनाये, स्वयं बनाये। सब का वाँचन हो गया है। व्याख्यान में वाँचन किया है। एक तत्त्वार्थसार बनाया है। व्याख्यान में वाँचन हो गया है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय भी वाँचन हो गया है। समझ में आया? लोग कहते हैं न कि समयसार वाँचा है। सब पुस्तकों का वाँचन हो गया है। उसमें तुझे दिक्कत क्या है? धवल का पहला भाग व्याख्यान में वाँचन हो गया है। तत्त्वार्थसार ग्रन्थ अमृतचन्द्राचार्य का है। आहाहा!

उसमें ऐसा लिया है, प्रभु! तेरा जन्म हुआ तो तेरी माता की नजर तो बाद में पड़ेगी, परन्तु अनित्यता ने तुझे गोद में ले लिया है। शरीर को अनित्यता ने गोद में लिया है। माता तो गोद में नजर में बाद में लेगी। आहाहा! यह तो जन्मने के बाद की बात ली है। समझ में आया? माता गोद में तो बाद में लेगी। यह कन्या है या लड़का है? यह बाद में देखेगी। पहले तो अनित्यता ने गोद में ले लिया है। देह कब छूटेगी? आहाहा! तत्त्वार्थसार में ऐसा कहा है।

कभी नहीं हो सकता। ओहोहो! मोक्षमार्ग—भगवान आत्मा का निश्चय ज्ञान और रमणता, वह मोक्ष का मार्ग है, उससे बन्ध कैसे होगा? ऐसा कहते हैं। अस्ति-नास्ति की है। जो आत्मा के निश्चय ज्ञान, चारित्र-लीनता, वह मोक्ष का मार्ग है, उससे बन्ध कैसे हो? इसका दूसरा अर्थ यह कि जो बन्ध का मार्ग है, वह मोक्ष का मार्ग कैसे हो? समझ में आया? यह जोर देने के लिये वहाँ कहा है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा अबद्धस्वरूप परमात्मा, उसके निश्चय दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तो मोक्ष का मार्ग है। उसमें बन्ध कहाँ से होगा? ऐसा कहते हैं। आहाहा! तब कहे, बन्ध होता है न? बन्ध होता है, वह राग से होता है। वह राग, मोक्ष का मार्ग कैसे होगा? जो बन्ध का मार्ग है, वह मोक्ष का मार्ग कैसे होगा? आहाहा! समझ में आया? जैसे मोक्षमार्ग से कभी बन्ध नहीं होता, तो बन्धभाव से कभी मोक्षमार्ग नहीं होता। समझ में आया? आहा! अरे! भाई! यह तो जिसे अन्तर गरज हो। अरेरे! चौरासी के अवतार कर-करके मर गया है। दुःखी... दुःखी... दुःखी। आहाहा! उसे शरीर कुछ ठीक हो और पाँच, पचास लाख मिले और निरोगी हो तो हम ठीक हैं। धूल भी ठीक नहीं। दुःख से घिरा हुआ प्रभु है। तुझे खबर नहीं। आनन्द के नाथ को तूने दुःख में घेर डाला है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख का निमित्त है। पैसा दुःख को अकिंचित्कर है। लक्ष्मी राग कराने में अकिंचित्कर है। परन्तु राग करता है, वह दुःख है। है? आहाहा! यह तो प्रवचनसार में आया था न? पाँच इन्द्रिय के विषय सुख-दुःख की कल्पना में अकिंचित्कर हैं। आहाहा! स्त्री का सुन्दर कोमल शरीर देखकर तुझे राग होता है, तो कहते हैं कि वह विषय राग उत्पन्न कराने में अकिंचित्कर है। आहाहा! सुन्दर रूप, रूपवान शरीर,

मक्खन जैसे गाल, शरीर के अवयव, वह आकृति सुन्दर, कोमलता, उसमें तुझे जो प्रेम होता है, वह प्रेम होने में वह चीज़ अकिंचित्कर है। समझ में आया? आहाहा! इसी प्रकार मोक्षमार्ग में बन्धभाव अकिंचित्कर है। यहाँ तो वहाँ लगाना था। भाई! आहाहा! '**कुत**' बन्ध कहा न आचार्य ने? कहने का आशय यह है। आहाहा!

भगवान आत्मा, अपने स्वभाव के आश्रय से दर्शन, ज्ञान, चारित्र (प्रगट हुए), वह दु:ख से छूटने का उपाय है और उससे दु:ख कैसे होगा? कहते हैं। उसे जो रागादि से दु:ख हो, वह मोक्षमार्ग में अकिंचित्कर है। आहाहा! मोक्षमार्ग, बन्ध को अकिंचित्कर है; बन्ध, मोक्षमार्ग को अकिंचित्कर है। समझ में आया? आहाहा! यह वीतरागमार्ग। लोगों ने स्थानकवासी में दया पालो, व्रत पालो, अपवास करो, यह धर्म। आहाहा! उसका भी ठिकाना कहाँ है? राग की मन्दता करते हों तो कदाचित् मिथ्यात्वसहित पुण्य बँधे। आहाहा! श्वेताम्बर में यात्रायें करे और बड़ी-बड़ी पूजायें करे, हाथी के हौदे रथयात्रा निकाले। पाँच-पाँच हाथी। हाथी थे न हमारे भी? जयपुर। कितने? २१ हाथी। २१ हाथी की शोभायात्रा थी। उससे क्या? वह तो बाहर की चीज़ है। उसमें भाव हो तो शुभ हो। आहाहा! हम पहले गये थे न? साठ हजार लोग। पूरा गाँव। भगवान के निकट रथ पर बैठै थे। साठ हजार लोग कहते थे, परन्तु चालीस हजार तो सही। चलने में, हों! चारों ओर देखनेवाले तो लाखों! मंजिल पर। साधु देखने आये। देशभूषण वहाँ थे। देखने निकले थे कि यह क्या है? लोगों को तो ऐसा हो जाये कि कोई राजा आया है? २१-२१ हाथी क्या है? ऐसे बेचारे बातें करते थे। तब आये थे? परन्तु वह तो बाहर की चीज़, प्रभु! वह तो बाहर की चीज़ है। वह आत्मा से की नहीं होती। २१ हाथी बाहर निकलकर फिर सलामी के लिये। वह तो सब बाहर की चीज़, प्रभु! उसमें राग शुभ हो तो बन्ध का कारण है। उससे मोक्ष के कारण में कोई सहायता मिलती है, ऐसा नहीं है। बहुत कठिन बात, भाई! आहाहा!

आचार्य भगवान, अमृतचन्द्राचार्य महाराज दिगम्बर सन्त मोक्ष के मण्डप रोपे हैं जिन्होंने! मण्डप... मण्डप, मोक्ष के मण्डप रोपे हैं। आहाहा! जिसने भगवान को दर्शन-ज्ञान-चारित्र से लपेट दिया है। आहाहा! उस मोक्षमार्ग से बन्ध कैसे होगा? इसका अर्थ यह है कि रागादि व्यवहाररत्नत्रय बन्ध का कारण है, उससे मोक्षमार्ग कैसे होगा? आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! यह ९६ गाथा हुई। ९७।

गाथा - ९७

अथ निर्मलमात्मानं ध्यायस्व येन ध्यातेनान्तर्मुहूर्तेनैव मोक्षपदं लभ्यत इति निरूपयति–

९७) अप्पा झायहि णिम्मलउ किं बहुएँ अण्णेण।
जो झायंतहँ परम–पउ लब्भइ एक्क–खणेण।।९७।।

आत्मानं ध्यायस्व निर्मलं किं बहुना अन्येन।
यं ध्यायमानानां परमपदं लभ्यते एकक्षणेन।।९७।।

अप्पा झायहि णिम्मलउ आत्मानं ध्यायस्व। कथंभूतं निर्मलम्। किं बहुएं अण्णेण किं बहुनान्येन शुद्धात्मबहिर्भूतेन रागादिविकल्पजालमालाप्रपञ्चेन। जो झायंतहं परमपउ लब्भइ यं परमात्मानं ध्यायमानानां परमपदं लभ्यते। केन [१] कारणभूतेन। एक्कखणेण एकक्षणेनान्तर्मुहूर्तेनापि। तथाहि। समस्तशुभाशुभसंकल्पविकल्परहितेन स्वशुद्धात्मतत्त्व–ध्यानेनान्तर्मुहूर्तेन मोक्षो लभ्यते तेन कारणेन तदेव निरन्तरं ध्यातव्यमिति। तथा चोक्तं बृहदाराधनाशास्त्रे। [२] षोडशतीर्थंकराणां एकक्षणे तीर्थकरोत्पत्तिवासरे प्रथमे श्रामण्यबोधसिद्धिः अन्तर्मुहूर्तेन निर्वृत्ता। अत्राह शिष्यः। यद्यन्तर्मुहूर्त–परमात्मध्यानेन मोक्षो भवति तर्हि इदानीमस्माकं तद्ध्यानं कुर्वाणानां किं न भवति। परिहारमाह। यादृशं तेषां प्रथमसंहननसहितानां शुक्लध्यानं भवति तादृशमिदानीं नास्तीति। तथा चोक्तम् – 'अत्रेदानीं निषेधन्ति शुक्लध्यानं जिनोत्तमाः। धर्मध्यानं पुनः प्राहुः श्रेणिभ्यां प्राग्विवर्तिनम्।।'। अत्र येन कारणेन परमात्म–ध्यानेनान्तर्मुहूर्तेन मोक्षो लभ्यते तेन कारणेन संसारस्थितिच्छेदनार्थ–मिदानीमपि तदेव ध्यातव्यमिति भावार्थः।।९७।

आगे ऐसा कहते हैं, कि निर्मल आत्मा को ही ध्यावो, जिसके ध्यान करने से अंतर्मुहूर्त में (तात्काल) मोक्षपद की प्राप्ति हो –

निर्मल आत्मा को ही ध्याओ, अन्य बहुत कहने से क्या?
आत्मा का जो ध्यान करें, वे क्षण में शिवपद प्राप्त करें।।९७।।

अन्वयार्थ :– हे योगी तू [निर्मलं आत्मानं] निर्मल आत्मा का ही [ध्यायस्व] ध्यान कर, [अन्येन बहुना किं] और बहुत पदार्थों से क्या। देश काल पदार्थ आत्मा से

---

१. पाठान्तर :– कारणभूतेन–करणभूतेन

२. पाठान्तर :– यह गाथा संस्कृत टीकावाली भगवती आराधना में पृष्ठ १७७१, गाथा–२२२८ में है।

भिन्न हैं, उनसे कुछ प्रयोजन नहीं है, रागादि-विकल्पजाल के समूहों के प्रपंच से क्या फायदा, एक निज स्वरूप को ध्यावो, [यं] जिस परमात्मा के [ध्यायमानानां] ध्यान करनेवालों को [एकक्षणेन] क्षणमात्र में [परमपदं] मोक्षपद [लभ्यते] मिलता है।

भावार्थ :- सब शुभाशुभ संकल्प-विकल्प रहित निजशुद्ध आत्मस्वरूप के ध्यान करने से शीघ्र ही मोक्ष मिलता है, इसलिये वही हमेशा ध्यान करने योग्य है। ऐसा ही बृहदाराधना-शास्त्र में कहा है। सोलह तीर्थंकरों के एक ही समय तीर्थंकरों के उत्पत्ति के दिन पहले चारित्र ज्ञान की सिद्धि हुई, फिर अंतर्मुहूर्त में मोक्ष हो गया। यहाँ पर शिष्य प्रश्न करता है कि यदि परमात्मा के ध्यान से अंतर्मुहूर्त में मोक्ष होता है, तो इस समय ध्यान करनेवाले हम लोगों को क्यों नहीं होता? उसका समाधान इस तरह है-कि जैसा निर्विकल्प शुक्लध्यान वज्रवृषभनाराचसंहननवालों को चोथे काल में होता है, वैसा अब नहीं हो सकता। ऐसा ही दूसरे ग्रंथों में कहा है-'अत्रेत्यादि' इसका अर्थ यह है, कि श्रीसर्वज्ञवीतरागदेव इस भरतक्षेत्र में इस पंचमकाल में शुक्लध्यान का निषेध करते हैं, इस समय धर्मध्यान हो सकता है, शुक्लध्यान नहीं हो सकता। उपशमश्रेणी और क्षपकक्षेणी दोनों ही इस समय नहीं हैं, सातवाँ गुणस्थान तक गुणस्थान है, ऊपर के गुणस्थान नहीं हैं। इस जगह तात्पर्य यह हैं कि जिस कारण परमात्मा के ध्यान से अंतर्मुहूर्त में मोक्ष होता है, इसलिये संसार की स्थिति घटाने के वास्ते अब भी धर्मध्यान का आराधन करना चाहिये जिससे परम्परया मोक्ष भी मिल सकता है।।९७।।

गाथा-९७ पर प्रवचन

आगे ऐसा कहते हैं कि निर्मल आत्मा को ही ध्यावो, जिसके ध्यान करने से अन्तर्मुहूर्त में (तत्काल) मोक्षपद की प्राप्ति होः—आहाहा! दृष्टान्त भी देंगे। बहुत सरस। आहाहा!

९७) अप्पा झायहि णिम्मलउ किं बहुएँ अण्णेण।
जो झायंतहँ परम-पउ लब्भइ एक्क-खणेण ॥९७॥

अन्वयार्थः—हे योगी! तू निर्मल आत्मा का ही ध्यान कर,... आहाहा! **आत्मा का ही ध्यान कर...** प्रभु! ध्यान वहाँ कर। त्राटक वहाँ लगा दे। आहाहा! ज्ञान की पर्याय, श्रद्धा की पर्याय को वहाँ लगा दो। आहाहा! वह ध्यान मोक्ष का मार्ग है।

आहाहा! समझ में आया? नियमसार में तो यह कहा, यह ध्यान, वह व्रत, तप जो कहो वह यह है। सब बोल रखे हैं। आचार्यों ने तो पूर्वापर विरोधरहित चारों ओर... दिगम्बर सन्तों की बलिहारी है! आहाहा! उन्होंने मोक्ष के मार्ग के मण्डप डाले, फिरे नहीं। और उस मण्डप से मोक्ष लेनेवाले हैं। पंचम काल में अभी केवलज्ञान नहीं, परन्तु एक भव बाद लेंगे।

निर्मल आत्मा का ही... ऐसा है न? **'ध्यायस्व' ध्यान कर... 'अन्येन बहुना किं'** आहा! **बहुत पदार्थों से क्या...** अर्थात् दूसरे **देश...** अर्थात् क्षेत्र, दूसरा **काल पदार्थ...** रागादि व्यवहार **आत्मा से भिन्न हैं,...** आहाहा! तीर्थक्षेत्र भी आत्मा से भिन्न है। वह काल कहलाये न? क्या कहलाये? पंच कल्याणक का काल। तीर्थंकर के पंच कल्याणक। वह काल भी तुझसे भिन्न है। अमावस्या, चतुर्दशी, भगवान मोक्ष पधारे। काल तो तुझसे भिन्न है। आहाहा! और पदार्थ। रागादि विकल्प से लेकर दूसरे सब पदार्थ तुझसे भिन्न हैं। आहाहा! तीन लोक के नाथ और शास्त्र भी तुझसे तो भिन्न हैं। समझ में आया? आहाहा! जिससे अनन्त ज्ञान प्रगट हो और अनन्त दुःख का अन्त हो, वह उपाय तो अलौकिक होना चाहिए न? यह एक अपवास किया और दो अपवास किये, निर्जरा हो गयी। तेरा काल गया, सुन न! आहाहा! लोगों ने मनवा दिया। स्थानकवासी में तो तप और त्याग की ही व्याख्या, बस। स्थानकवासी आते हैं न? जीवणलाल संघवी, अहमदाबाद, जैनप्रकाश मुम्बई से। चारों ओर। एक व्यक्ति ने अपवास किये और महीना किया और अमुक किया। सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं होता और ऐसे व्रत, वे तो सब बन्ध के कारण हैं। बन्ध के कारण को मोक्ष का कारण (माने) तो मिथ्यात्व पोषित होता है। मिथ्यात्व की पुष्टि होती है, वहाँ धर्म होता है, ऐसा मानता है। गजब बात, बापू! आहाहा! विरुद्ध मान्यता। विपरीत अभिनिवेश। आहाहा! समझ में आया? ऐसा इसमें। क्या कहलाये? कर्म जलाने की पूजा है न? कर्मदहन पूजा, श्वेताम्बर में बहुत आती है। कर्मदहन पूजा, सिद्धचक्र पूजा, शान्तिनाथ की पूजा। वे सब भाव शुभभाव हैं। यदि वहाँ (ध्यान) रखा हो तो। उसमें लक्ष्य अन्यत्र हो तो अशुभभाव है। आहाहा! वह शुभभाव बन्ध का कारण है। वह मोक्ष का कारण है, ऐसा है नहीं। आहा!

ऐसा सत्य इसे सुनने को मिले नहीं, कब करे यह? अरे! जिन्दगी चली जाती है।

मनुष्यपना मिलना मुश्किल पड़े। त्रस की स्थिति पूरी होगी। यदि यह सत्य नहीं समझे तो निगोद में चला जायेगा। भगवान ऐसा कहते हैं, त्रस की स्थिति दो हजार सागर है। त्रस में रहने की। दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय। दो इन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय, चौ इन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देव। उसमें यह दो हजार सागर रहे। यह स्थिति पूरी हो तो निगोद में-एकेन्द्रिय में जाये। आहाहा! नियम है। भगवान ने देखा है। प्रभु! तुझे....

मुमुक्षु : निगोद में जाये अथवा मोक्ष में जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष में तो आत्मज्ञान करे तो न। उसके लिये तो कहा जाता है। आत्मज्ञान, दर्शन और चारित्र करे तो मोक्ष होता है। त्रस की स्थिति पूरी और संसार की स्थिति पूरी। और आत्मज्ञान और सम्यक्त्व नहीं करे तो त्रस की स्थिति पूरी और निगोद की स्थिति शुरुआत। वस्तु भाई! ऐसी है, बापू! यह भय बताने के लिये नहीं है। वस्तु की स्थिति ऐसी है, भाई! यदि यहाँ लिपटा... आहाहा! अपने भाई नहीं? धीरुभाई, ध्रांगध्रावाले। वहाँ जामनगर। रणजीत तालाब है न? वे सब घूमने गये होंगे। वहाँ पानी पीने गये। अपने छोटाभाई के पुत्र रजनीभाई के भाई। पढ़ता था, यहाँ का बहुत प्रेम था, हों! कॉलेज में पढ़ता और सब घूमने गये। बड़ा रणजीत तालाब है। जामनगर में। फिर हम देखने गये थे। वहाँ देह छूट गयी थी न, फिर हम दूसरी बार गये तब देखने गये थे। पानी में पैर जरा फिसल गया। पानी पीने गये होंगे। काई थी। लीलफूग समझे? काई... काई। पैरे ऐसे (हो गया)। तैरना आवे नहीं। ऐसा हो गया, देह छूट गयी। चौबीस घण्टे में तो मुर्दा हाथ आया। वे मछलियाँ थी न? आँख खा गये। मच्छ... मच्छ। चौबीस घण्टे में निकाला। मींदडी थी, मींदडी समझे? लोहे के आंकड़िया होते हैं न? फिर लड़कों ने तो बेचारों ने ट्रक में निकालकर फूल की माला डालकर इस प्रकार से निकाला था। धीरुभाई थे, रजनी से छोटा। आहाहा! तालाब में फिसला, वह गया।

इसी प्रकार जो संसार में फिसले, वह जायेगा निगोद में, ऐसा कहना है। आहाहा! हम दूसरे वर्ष देखने गये थे वहाँ। कहा, धीरुभाई कहाँ गुजर गये? वहाँ एक हरिजन बाबा की जगह है। यहाँ का आनेवाला है, यहाँ का प्रेमी है। हरिजन है। बाबा, जंगल में रहता है। यह उसका शिष्य है। उमराला के शामदास का। वह बाबा यहाँ आता है। हरिजन है। वहाँ सामने उसकी झोंपडी थी। हम देखने गये थे। यहाँ धीरुभाई

फिसल गये, इस जगह। पानी जोरदार और तैरना आवे नहीं। आहाहा! इसी प्रकार जिसे संसार में से तैरना न आवे, वह निगोद में डूब जायेगा। निगोद स्थान ही, जैसे माता का पीहर होता है न? कन्या का पीहर होता है न? उसी प्रकार निगोद, वही आत्मा का पीहर है। वहाँ अधिक काल रहता है। और अनन्त काल वहाँ ही रहा था। वहाँ से निकलकर मुश्किल से मनुष्य हुआ है। आहाहा! मनुष्यपने की दुर्लभता की इसे खबर नहीं। पैसे की दुर्लभता नहीं, पैसा मिलना (दुर्लभ नहीं) मनुष्यपना मिलना, वह दुर्लभ है। आहाहा! ऐसे मनुष्यपने में यदि आत्मा का साधन....

मनुष्य का अर्थ ही यह है, मनुष्यते ज्ञायते इति मनुष्य। जो आत्मा को जाने, वह मनुष्य है। नहीं तो सब पशु हैं। मनुष्य स्वरूपे मृगा चरंति। आहाहा! भगवान आत्मा... सब छोड़ सामने देखना। एक यहाँ देख। आहाहा! यहाँ ध्यान कर, तुझे क्षण में मोक्ष होगा। आहाहा! एक क्षण में मोक्ष होगा। आहाहा! तीन लोक का नाथ निर्विकल्प आनन्द से विराजमान है। उसकी मौजूदगी ही आनन्द की मौजूदगी है। आहाहा! राग और दु:ख की मौजूदगी उसकी नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान! यहाँ तो। आहाहा! वह ध्यान कर।

बहुत पदार्थों से क्या। प्रयोजन? **उनसे कुछ प्रयोजन नहीं है,...** आहाहा! उस व्यवहाररत्नत्रय से भी तुझे क्या प्रयोजन? ऐसा कहते हैं। तेरे प्रयोजन की उसमें कहाँ सिद्धि होती है? आहाहा! **रागादि-विकल्पजाल के समूहों के प्रपंच से क्या फायदा...** समझ में आया? '**रागादिविकल्पजालमालाप्रपञ्चेन**' ऐसा अन्दर शब्द है, हों! रागादि विकल्प जाल माला। विकल्प के जाल की माला। एक के बाद एक मोती फिरावे। आहाहा! जैसे सूत कांतते हैं न? कांतते कहते हैं? एक के बाद एक डोरा निकला ही करे। उसी प्रकार विकल्प की जाल में डोरा अनादि से कांता ही करता है। जैसे मकड़ी जाल में लिपटे, वैसे यह जाल में लिपट जाता है। एक के बाद एक विकल्प किया ही करता है। अरे! बापू! क्या है तुझे? कहाँ जाना है तुझे? आहाहा! जहाँ जाना है, वहाँ व्यवहार का भी साथ नहीं। समझ में आया? तो तुझे किसे साथ लेकर अन्दर जाना है? आहाहा! दृष्टान्त देंगे। अलौकिक!

जाल कहा न? जाल। समूह अर्थात् माला। माला का अर्थ यह किया, भाई!

विकल्पजाल की माला—समूह। विकल्प की जाल माला—समूह। एक के बाद एक (एक के) बाद एक किया ही करता है। उस कांतने में डोरी साँधा ही करता है। पूरी हो जाये तो दूसरी... क्या कहलाती है वह? पुणी... पुणी सांधे। टूटने न दे। ऐसे के ऐसे डोरा साँधा ही करता है। आहाहा! पुणी नहीं होती? ऐसे पैर चलावे। आहाहा! इसी प्रकार भगवान! तूने विकल्प की जाल को कभी तोड़ा नहीं। विकल्प की जाल को तूने लम्बाया है। आहाहा!

जिस परमात्मा के ध्यान करनेवालों को क्षणमात्र में मोक्षपद मिलता है। देखो भाषा! ओहोहो! अब किसे क्षणमात्र में मोक्ष हुआ, यह दृष्टान्त देते हैं।

भावार्थः—सब शुभाशुभ संकल्प-विकल्प रहित निजशुद्ध आत्मस्वरूप के ध्यान करने से शीघ्र ही मोक्ष मिलता है,... है? **इसलिए वही हमेशा ध्यान करनेयोग्य है।** हमेशा ध्यान करना योग्य है। आहाहा! निरन्तर तेरे ध्येय में ध्यान तो उसका होना चाहिए, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : यह तो मुनि की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनो, अभी आया नहीं। यह मोक्ष होगा, ऐसा कहा। किसे होता है, यह कहाँ कहा है। अभी तो होता है, इसकी बात चलती है।

इसलिए वही हमेशा ध्यान करनेयोग्य है। मुनि की प्रधानता से कथन है, तो सबके लिये ऐसा ही है न! गृहस्थ हो या त्यागी हो, उसे आत्मा के ध्यान में जाते ही कल्याण का उपाय है, दूसरा कोई उपाय है नहीं। समझ में आया? यहाँ तो आत्मा की डोर बाँधे तो मुक्ति है, बाकी हराम है कुछ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह महिलायें उठाती हैं न? घड़ा। छोटी पन्द्रह वर्ष की लड़की हो, सिर पर घड़ा (हो)। ध्यान वहाँ हो। भले साथ में चले और बातें करे, परन्तु ध्यान वहाँ होता है। क्योंकि सिर घूमना नहीं चाहिए। होता है न? वह क्या कहलाता है? ईंडरी... ईंडरी। ऐसे बराबर रखे। और वे नाटकिया—खेल करनेवाले आते हैं न? छह-साह (कलश) ऊपर-ऊपर रखे। ऊपर दीपक करे। और चले। उसका सिर है उसे फिरने न दे। पैर चले, शरीर चले, सब चले। अपने यहाँ आया नहीं था? किस गाँव का? यहाँ आये थे। मुम्बई किया है। उसका ध्यान वहाँ होता। महिला भी एक, दो, तीन तक चढ़ावे। ध्यान वहाँ हो। यहाँ आये थे,

मुम्बई आये थे, यहाँ आये थे। मुम्बई आये थे। आहाहा! शास्त्र में दृष्टान्त है। स्त्री सहेली के साथ बात करे, दाँत निकाले (हँसे) परन्तु उसका ध्यान तो वहाँ है। वह गिर न जाये। उसे हाथ लगाना नहीं पड़ता। हाथ लगाये बिना। आहाहा! इसी प्रकार धर्मात्मा के ध्यान में तालावेली आत्मा के ऊपर है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ दृष्टान्त दिया है। **ऐसा ही बृहदआराधना-शास्त्र में कहा है।** शास्त्र है, महाआराधना का शास्त्र। **सोलह तीर्थंकरों के एक ही समय तीर्थंकरों के उत्पत्ति के दिन...** चौबीस तीर्थंकर हुए, उसमें सोलह तीर्थंकरों ने तो दीक्षा ली और केवलज्ञान हुआ। आहाहा! उसमें मुनि हुए। **उत्पत्ति के दिन पहले चारित्र ज्ञान की सिद्धि हुई,...** वे साधु हुए और एकदम चारित्र आया; चारित्र आया और एकदम क्षण में केवलज्ञान हो गया। भगवान ने तो अभी केवलज्ञान प्राप्त किया, मोक्ष तो बाद में जायेंगे। समझ में आया? क्या कहा? सोलह तीर्थंकर ने केवलज्ञान प्राप्त किया। उनके शासन में ऐसी वस्तु बनी कि जहाँ केवलज्ञान हुआ और ध्वनि निकली, वहाँ साधु हुए, वे साधु हुए, क्षण में केवलज्ञान पाकर मोक्ष में चले गये। आहाहा! ऐई! गिरधरभाई! चौबीस तीर्थंकर मोक्ष पधारे, उनमें सोलह में ऐसा बना है, कहते हैं। दूसरे तीर्थंकर में तुरन्त अन्तर्मुहूर्त में साधु होकर केवल (ज्ञान) पाये नहीं। दूरी लगी। आहाहा! भगवान तो मोक्ष बाद में जायेंगे। केवल (ज्ञान) पाये और जहाँ वाणी निकली। आहाहा! दिव्यध्वनि सुनकर अन्दर घुस गये। दिव्यध्वनि से नहीं हुआ। अन्दर में गये। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों पाये हैं। है?

पहले चारित्र ज्ञान की सिद्धि हुई,... अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों की सिद्धि हुई। **फिर अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष हो गया।** फिर साधु अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान पाकर मोक्ष में चले गये। आहाहा! भगवान आत्मा है न अन्दर! अभी भगवान को तो केवलज्ञान हुआ है। सोलह तीर्थंकरों में कितने को तो अभी हजारों वर्ष केवलज्ञान में रहने का होता है। परन्तु कोई साधु ऐस हुए कि तुरन्त के तुरन्त ज्ञान और चारित्र पाये और एक अन्तर्मुहूर्त में—क्षण में केवलज्ञान पाकर मोक्ष में चले गये। आहाहा! दशरथलालजी! ऐसी बात है। आहाहा! यहाँ तो आत्मा के ध्यान की महिमा बतानी है। भगवान को तो अभी केवल (ज्ञान) हुआ, मोक्ष तो बहुत वर्षों के बाद होगा। परन्तु अन्दर जो साधु

हुए... आहाहा! अन्दर में एकदम ज्ञान और चारित्र पाये। सम्यग्ज्ञान, दर्शन तो साथ में है। और क्षणमात्र साधुपना रहा और क्षणमात्र में केवलज्ञान हो गया। क्षपकश्रेणी मांडी। आहाहा! भगवान सामने विराजे अन्दर में, फिर कहाँ उसमें कमी है? समझ में आया? जो चीज़ आराधनेयोग्य है, वह चीज़ तो अपने पास पड़ी है। वह स्वयं ऐसी चीज़ है। आहाहा! देखो! दृष्टान्त।

भगवान आत्मा में इतनी ताकत है कि केवलज्ञानी निकले, फिर साधु हुए हों और भगवान तो अभी मोक्ष बाद में पधारेंगे, यह तो तुरन्त क्षणमात्र में अन्तर में स्थिर होकर क्षपकश्रेणी होकर, केवलज्ञान। केवलज्ञान तो हुआ परन्तु अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष! समझ में आया? नहीं तो केवलज्ञान होने के बाद भी देरी लगे। आहाहा! दृष्टान्त तो कैसा दिया है! समझ में आया? भगवान की वाणी सुनी और अन्दर उतर गये। साधुपद तो पाये, और क्षण में केवलज्ञान पाये और दूसरे क्षण में मोक्ष हो गया। समझ में आया? ऐसी आत्मा के ध्यान की सामर्थ्य है, ऐसा बतलाना है। बाहर के व्यवहार-फ्यवहार में कुछ नहीं। थोथा है। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, भाद्र शुक्ल ३, शनिवार
दिनांक-२८-०८-१९७६, गाथा-९७ से ९९, प्रवचन-७५

सम्यग्दर्शन, वह आत्मा का ध्यान है; ज्ञान, वह भी आत्मा का ध्यान है; चारित्र, वह भी आत्मा की ध्यान दशा है। सब कर-करके यह करना है, ऐसा कहते हैं। सोलह तीर्थंकर को केवलज्ञान हुआ तो मुनि एकदम सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त करके (मोक्ष पाये)। आत्मा का ही मूल तो ध्यान करना है। बाकी चीज़ व्यवहार आदि हो, परन्तु उससे कुछ लाभ नहीं होता। यह सिद्ध करते हैं। साधु हुए तो तुरन्त केवलज्ञान हुआ। वस्तु पूरी अखण्डानन्द प्रभु पर दृष्टि, ज्ञान और रमणता करना, वह चीज़ है। जिससे अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान पाकर साधु मोक्ष में चले गये। भगवान को केवलज्ञान हुआ, फिर सीधे मोक्ष में गये। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि आत्मा परमानन्दस्वरूप परमात्मास्वरूप को ध्यान में लेकर... यह अपने आया न? द्रव्यसंग्रह में। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' अन्तर वस्तु का ध्यान लगाया, निश्चय स्वभाव का आश्रय जहाँ लिया तो निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान प्रगट होता है। कोई व्यवहार है तो व्यवहार के कारण से प्रगट होता है, ऐसा नहीं है। यह सिद्ध करना है। अपना भगवान पूर्णानन्द के आश्रय से ही आराधन होकर अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान लेकर पार हो जाते हैं। समझ में आया?

अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष होता है, तो इस समय ध्यान करनेवाले... अब शिष्य प्रश्न करता है। **फिर अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष हो गया।** तो शिष्य प्रश्न करता है। **यहाँ पर शिष्य प्रश्न करता है कि यदि परमात्मा के ध्यान से अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष होता है, तो इस समय ध्यान करनेवाले हम लोगों को क्यों नहीं होता?** हम भी ध्यान तो करते हैं, ऐसा कहते हैं।

उसका समाधान इस तरह है कि जैसा निर्विकल्प शुक्लध्यान वज्रवृषभनाराच-संहननवालों को चौथे काल में होता है, वैसा अब नहीं हो सकता। व्रजनाराचसंहनन तो निमित्त से कहा, परन्तु अन्तर में जो पुरुषार्थ से अन्तर उग्र एकाग्रता होती थी, ऐसा निर्विकल्प ध्यान जैसा था, वैसा ध्यान अभी नहीं है। यह कारण है। ऐसा कि निमित्तादि

नहीं, इसलिए नहीं होता—ऐसा नहीं लिया। व्रजनाराचसंहनन आदि नहीं, वह नहीं, वह तो निमित्त का कथन है। अपने ध्यान में जितनी न्यूनता है, इस कारण से उग्र ध्यान नहीं होता। आहाहा! वह तो अपना कारण है, दूसरा कोई कारण नहीं, ऐसा बताते हैं। जैसा निर्विकल्प ध्यान अन्दर में लीन होकर अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान लेते हैं, ऐसी लीनता अभी नहीं है। उसका कारण अपनी कमजोरी है। समझ में आया? आहाहा! अस्थिरता है। कोई व्यवहार कच्चा रहा, इसलिए नहीं होता, ऐसा नहीं है। व्यवहार का पक्ष नहीं। यहाँ तो निश्चय का जो ध्येय है, उसे पकड़ने में जो उग्र ध्यान चाहिए, उसकी कमी है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा ही दूसरे ग्रन्थों में कहा है—इसका अर्थ यह है कि श्री सर्वज्ञवीतरागदेव इस भरतक्षेत्र में इस पंचम काल में शुक्लध्यान का निषेध करते हैं,... अन्दर की एकाग्रता उग्र हो, ऐसा भाव अभी नहीं है। आहा! **इस समय धर्मध्यान हो सकता है,...** यह धर्मध्यान अर्थात् शुभ नहीं। कोई कहते हैं न कि धर्मध्यान अर्थात् शुभभाव है, अभी शुक्लध्यान तो है नहीं। वह यहाँ नहीं। निश्चय धर्मध्यान जो है, वह अभी है। आहाहा! व्यवहार धर्मध्यान तो शुभभाव है, उसकी यहाँ बात है नहीं। जितनी लीनता शुक्लध्यान में चाहिए, उतनी लीनता धर्मध्यान में नहीं, परन्तु धर्मध्यान है तो अन्दर आत्मा के आनन्द की लीनता। आहाहा! कैसी शैली ली है, देखो! आहा! तेरे ध्यान की लीनता की कमी है, इसलिए शुक्लध्यान नहीं है। दूसरा कोई कारण नहीं है। आहाहा! पंचम काल है, यह है, फलाना है, वह सब पर निमित्त है। जितनी अन्दर में निर्विकल्प शुक्लध्यान की रमझट जम जानी चाहिए, उसकी उतनी न्यूनता है। परन्तु धर्मध्यान तो है। आत्मा के आनन्द का ध्यान, अपने आनन्द का ध्यान तो है, ऐसा कहते हैं। वह धर्मध्यान। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द प्रभु के शुक्लध्यान की तीव्रता से जो दशा तुरन्त प्राप्त हो, ऐसा नहीं है, परन्तु धर्मध्यान है। उस धर्मध्यान का अर्थ शुभभाव नहीं। अन्दर में लीनता शुक्लध्यान की कमी, वह धर्मध्यान यहाँ है। समझ में आया? आहाहा!

इस समय धर्मध्यान हो सकता है, शुक्लध्यान नहीं हो सकता। उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी दोनों ही इस समय नहीं है, सातवाँ गुणस्थान तक गुणस्थान है,... पंचम काल में भी सप्तम गुणस्थान हो सकता है। समझ में आया? अपना निश्चय ध्यान

करके सम्यग्दर्शन होता है, सम्यग्ज्ञान होता है और सम्यक्चारित्र की सप्तम गुणस्थान तक दशा होती है। आहाहा! परन्तु वह दशा अन्तर के ध्यान से होती है। कोई अकेली क्रियाकाण्ड से, यह पंच महाव्रत लिये, इसलिए सप्तम गुणस्थान हो गया—ऐसा नहीं है। आहाहा! अभी **ऊपर के गुणस्थान नहीं है।**

इस जगह तात्पर्य यह है कि जिस कारण परमात्मा के ध्यान से अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष होता है... इसलिए जो भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द परमात्मस्वरूप का जो उग्र ध्यान होता है और अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष होता है। **इसलिए संसार की स्थिति घटाने के वास्ते...** यह निर्विकल्प ध्यान भले न हो, परन्तु संसार के भव को घटाने के लिये। आहाहा! **अब भी धर्मध्यान का आराधन करना चाहिए,...** यह धर्मध्यान ऊपर से लिया। '**संसारस्थितिच्छेदनार्थमिदानीमपि तदेव ध्यातव्यमिति**' आत्मा का ध्यान करना, ऐसा। धर्मध्यान तो फिर शब्द लगाया। ऊपर कहा है न कि धर्मध्यान है। आहाहा! क्या बात, तात्पर्य! परमात्मस्वरूप जो पूर्ण है, उसका ध्यान सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह ध्यान। उसमें उग्र ध्यान हो जाये तो केवलज्ञान हो जाये। मन्द ध्यान रहे तो संसार की स्थिति घटाकर आत्मा का आराधन करके एक-दो भव में मोक्ष में जाता है। परन्तु बात यह, आत्मा के आराधन की यहाँ बात है। देव-गुरु-शास्त्र की आराधना, उनकी भक्ति, वह तो सब व्यवहार है, वह तो अनन्त बार हुआ, यहाँ भी होता है परन्तु उसका अभाव करके आत्मा का ध्यान होता है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न! राग का अभाव करके, स्वरूप में एकाग्र होता है। राग से नहीं होता। आहाहा! अन्तर्मुख में एकाग्र होना, वह व्यवहाररत्नत्रय की सहायता से नहीं होता। उससे हटकर स्वभाव में एकाग्र हो, वह ध्यान से होता है। सूक्ष्म बात है। एकदम तात्पर्य बात है। बहुत अच्छी बात है। समझ में आया? माल, वह आत्मा है, उसका ध्यान करना, वह एक ही चीज़ है। मन्द ध्यान हो तो संसार की स्थिति छेदकर एक-दो भव के बाद मोक्ष जायेगा। तीव्र ध्यान—शुक्लध्यान हो उस भव में या अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष में जायेगा। ऐसा कहते हैं। सिद्ध यह करना है। उस व्यवहार से होता है, निमित्त से होता है, इस बात का निषेध करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : पूजा, पाठ इत्यादि....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात ही कहाँ है ? यह आत्मध्यान कहाँ है ? मोक्ष के मार्ग में बीच में आया, परन्तु वह तो विघ्न है। भारी कठिन बात। यह कहते हैं, समाचारपत्र (पत्रिका) में लिखते हैं, अभी धर्मध्यान शुभभाव है, शुक्लध्यान नहीं। अखबार में आता है। अरे! यह नहीं। नियमसार में बहुत गाथाओं में लिया है। निश्चय धर्मध्यान, ऐसा शब्द पड़ा है। निश्चय धर्मध्यान। नियमसार में। आहाहा!

पूर्ण आनन्दस्वरूप भगवान... फिर चार बोल लेंगे, बहुत सरस! बहुत सरस। ओहोहो! परमात्मप्रकाश। यह परमात्मप्रकाश किस प्रकार हो? यह परमात्मा निज स्वरूप में लीनता हो तो परमात्मप्रकाश पर्याय में होता है। लीनता की हीनता हो तो धर्मध्यान से संसार का छेद कर डालता है। पश्चात् शुक्लध्यान होगा, तब संसार का अभाव करेगा। आहाहा! व्यवहार से संसार का छेद होता है, उसका यहाँ निषेध करते हैं। क्योंकि व्यवहार, वह राग है और वही संसार है। संसार से संसार किस प्रकार घटे ? यह आया था पत्रिका में। शुभभाव से शुभभाव घटता जाता है। अरे! सब यह गप्प मारते हैं। अरे! प्रभु! लोगों को खबर नहीं होती। वीतराग त्रिलोकनाथ... आहाहा! वस्तु पूरी परमात्मस्वरूप, परमात्मस्वरूप तू है। उसमें लीन होना, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? अल्प लीनता है तो धर्मध्यान, उग्र लीनता है तो शुक्लध्यान। परन्तु लीनता, वह धर्म अध्यात्म वस्तु है। सेठ! आहाहा!

मुमुक्षु : परम्परा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा किसे ? अभी आयेगा। आहाहा! है ? **संसार की स्थिति घटाने के वास्ते अब भी धर्मध्यान का आराधन करना चाहिए, जिससे परम्परा मोक्ष भी...** देखो! इसीलिए तो आचार्य पहले से कहते आये हैं। '**मायाहि तीर्थ**' तीर्थ में न जा, भाई! वहाँ मोक्ष नहीं है। आहाहा! मोक्ष का मार्ग वहाँ नहीं है। मार्ग तो तेरे अन्दर है। गुरु को न सेव। आहाहा! अरे! निषेध ? प्रभु! ऐसे व्यवहार का निषेध करते हो ? निषेध करते हैं, सुन न! देव को न सेव। अरिहन्तदेव को न सेव। क्योंकि वह परसन्मुख जाता है तो तुझे विकल्प ही होंगे। मार्ग निर्विकल्प है। आहाहा! समझ में आया? अरे! वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ की करुणाभीनी दिव्यध्वनि। आहाहा! वीतरागी करुणा,

हों! आहाहा! उसमें आया, उसे सन्त प्रसिद्ध करते हैं। प्रभु! तेरी ओर का जितना झुकाव, उतना संसार का अभाव। यदि उग्र करे तो संसार का तुरन्त अभाव हो जाये। पहले मन्द रीति से धर्मध्यान हो तो परम्परा आगे बढ़कर पूर्ण होगा, तब मोक्ष होगा। समझ में आया?

धर्मध्यान से परम्परा मुक्ति होगी, इसका अर्थ क्या? कि धर्मध्यान छूटकर फिर शुक्लध्यान हो जायेगा, तब मोक्ष होगा। धर्मध्यान से मोक्ष होता है? परम्परा कहा, इसका अर्थ क्या? कि धर्मध्यान से मोक्ष नहीं होगा। परम्परा अर्थात् पश्चात् शुक्लध्यान करेगा, तब मोक्ष होगा। आहाहा! समझ में आया? अरे!

जिससे परम्परा मोक्ष भी मिल सकता है। देखा! वर्तमान धर्मध्यान में लीनता मन्द है। पश्चात् परम्परा अर्थात् आगे बढ़कर जो धर्मध्यान से—लीनता से भी आगे बढ़कर उग्र लीनता होगी, तो उससे परम्परा मोक्ष होगा, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! यह ९७ हुई। ९८। बहुत सरस गाथायें आयीं। आहाहा!

गाथा - ९८

अथ अस्य वीतरागमनसि शुद्धात्मभावना नास्ति तस्य शास्त्रपुराणतपश्चरणानि किं कुर्वन्तीति कथयति –

९८) अप्पा णिय-मणि णिम्मलउ णियमें वसइ ण जासु।
सत्थ-पुराणइँ तव-चरणु मुक्खु वि करहिं कि तासु।।९८।।

आत्मा निजमनसि निर्मलः नियमेन वसति न यस्य।
शास्त्रपुराणानि तपश्चरणं मोक्षं अपि कुर्वन्ति किं तस्य।।९८।।

अप्पा णियमणि णिम्मलउ णियमें वसइ ण जासु आत्मा निजमनसि निर्मलो नियमेन वसति तिष्ठति न यस्य सत्थपुराणइं तवचरणु मुक्खु वि करहिं किं तासु शास्त्रपुराणानि तपश्चरणं च मोक्षमपि किं कुर्वन्ति तस्येति। तद्यथा। वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूपा यस्य शुद्धात्मभावना नास्ति तस्य शास्त्रपुराणतपश्चरणानि निरर्थकानि भवन्ति। तर्हि किं सर्वथा निष्फलानि। नैवम्। यदि वीतरागसम्यक्त्वरूपस्वशुद्धात्मोपादेयभावनासहितानि भवन्ति तदा मोक्षस्यैव बहिरङ्गसहकारिकारणानि भवन्ति तदभावे पुण्यबन्धकारणानि भवन्ति। मिथ्यात्वरागादिसहितानि पापबन्धकारणानि च विद्यानुवादसंज्ञितदशमपूर्वश्रुतं पठित्वा भर्गपुरुषादिवदिति भावार्थः।।९८।।

आगे ऐसा कहते हैं कि, जिसके राग रहित मन में शुद्धात्मा की भावना नहीं है, उनके शास्त्र, पुराण, तपश्चरण क्या कर सकते हैं ? अर्थात् कुछ भी नहीं कर सकते –

जिसके मन में निर्मल आत्मा नहीं नियम से वास करे।
तपश्चरण या शास्त्र पठन भी उसे मुक्ति नहिं दे सकते।।९८।।

अन्वयार्थ :– [यस्य] जिसके [निजमनसि] निज मन में [निर्मलः आत्मा] निर्मल आत्मा [नियमेन] निश्चय से [न वसति] नहीं रहता, [तस्य] उस जीव के [शासत्रपुराणानि] शास्त्र के पुराण [तपश्चरणमपि] तपस्या भी [किं] क्या [मोक्षं] मोक्ष को [कुर्वंति] कर सकते हैं? कभी नहीं कर सकते।

भावार्थ :– वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूप शुद्धभावना जिसके नहीं है, उसके शास्त्र, पुराण, तपश्चरणादि सब व्यर्थ हैं। यहाँ शिष्य प्रश्न करता है, कि क्या बिलकुल ही निरर्थक हैं। उसका समाधान ऐसा है, कि बिलकुल तो नहीं है, लेकिन वीतराग सम्यक्त्वरूप निज शुद्धात्मा की भावना सहित हो, तब तो मोक्ष के ही बाह्य सहकारीकारण

है, यदि वे वीतरागसम्यक्त्व के अभावरूप हों, तो पुण्यबंध के कारण हैं, और जो मिथ्यात्वरागादि सहित हों, तो पापबंध के कारण है, जैसे कि रुद्र वगैरह विद्यानुवादनामा दशवें पूर्व तक शास्त्र पढ़कर भ्रष्ट हो जाते हैं।।९८।।

गाथा-९८ पर प्रवचन

आगे ऐसा कहते हैं कि जिसके राग रहित मन में शुद्धात्म की भावना नहीं है, उनके शास्त्र, पुराण, तपश्चरण क्या कर सकते हैं ? आहाहा! जिसमें शुद्धात्मा की श्रद्धा, ज्ञान और भावना नहीं, उनके शास्त्र के पुराण, पठन, तपश्चरण क्या करे? तप करे, अपवास महीने-महीने के, दो-दो महीने के अपवास करे। क्या करे उसमें? वह तो संसार खाते हैं। आहाहा! समझ में आया? **अर्थात् कुछ भी नहीं कर सकते**—९८ न?

९८) अप्पा णिय-मणि णिम्मलउ णियमें वसइ ण जासु।
सत्थ-पुराणइँ तव-चरणु मुक्खु वि करहिँ कि तासु॥९८॥

अन्वयार्थः—जिसके निर्मल मन में... भगवान आत्मा बसता नहीं। जिसके मन में आत्मा स्थिर हुआ नहीं। आहाहा! **निश्चय से नहीं रहता...** निर्विकल्प आत्मा नहीं रहता। आहाहा! **उस जीव के शास्त्र के पुराण (का ज्ञान) तपस्या भी क्या मोक्ष को कर सकते हैं ?** आहाहा! यहाँ अन्तर्मुहूर्त में आराधन करके आत्मा के आराधन से मोक्ष होता है, परन्तु व्यवहार इतने लाख, करोड़ वर्ष करे तो उससे मुक्ति नहीं होती, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार है, दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत, तप आदि, उससे क्या? वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। क्या उससे मुक्ति होगी? आहाहा! पश्चात् स्पष्टीकरण आयेगा। **कर सकते हैं? कभी नहीं कर सकते।** आहाहा!

भावार्थः—वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूप शुद्धभावना जिसके नहीं है,... जिसे भगवान आत्मा की शुद्ध—पुण्य, पाप के भाव से रहित पवित्र शुद्ध भावना नहीं, शुद्ध उपयोग नहीं... आहाहा! शुद्ध परिणति नहीं, वस्तु के आश्रय से शुद्धदशा नहीं, आहाहा! **उसके शास्त्र, पुराण, तपश्चरणादि सब व्यर्थ हैं।** उसके शास्त्र के ज्ञान और तपस्या कर-करके मर जाये (तो भी) व्यर्थ है। आहाहा! ऐसी भाषा है। मुनि को कहाँ पड़ी है कि दुनिया कहेगी कि अरे! ऐसा मार्ग? ऐसा मार्ग? सुन न अब! आहाहा! तेरी चतुराई

छोड़ दे। भगवान के सन्मुख जायेगा, जितना एकाग्र होगा, उतना धर्म है। व्यवहाररत्नत्रय लाख, करोड़ वर्ष करे तो (भी) वह धर्म नहीं। आहाहा! और आत्मा का आराधन अन्तर्मुहूर्त करे तो मोक्ष होगा। और आत्मा के आराधन बिना ऐसे लाख बार, करोड़ों बार करोड़ों भव करे, क्लेश है, उससे कोई धर्म-बर्म नहीं। आहाहा! कठिन बातें, भाई!

मुमुक्षु : शरीर निरारेग रहे?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर निरोग रहे, उसमें क्या? वह भी निरोग रहना हो तो रहे। तपस्या करता है, इसलिए निरोग रहता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! उसके साथ क्या है? आत्मा निरोग रहता है, वह बात है यहाँ तो। विकल्पसहित, वह रोग है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, वह रोग है। आहाहा! समझ में आया?

'आत्मभ्रांति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान, गुरुआज्ञा सम पथ्य नहिं, औषध विचार ध्यान।' ऐसा कहा। अपवास करना और तपस्या करना और व्रत पालना, यह नहीं कहा। श्रीमद् ने ऐसा कहा है। आत्मसिद्धि में। आहाहा! समझ में आया? भ्रान्ति— राग से और पर से मुझे लाभ होगा, यह भ्रान्ति का बड़ा रोग है। पुण्य परिणाम से, देव-गुरु की भक्ति से या यात्रा आदि से मेरा कल्याण होगा, यह मोटी आत्मभ्रान्ति है। आहाहा! समझ में आया? 'आत्मभ्रांति सम रोग नहीं।' इसके जैसा (दूसरा कोई) रोग नहीं। शरीर का रोग तो जड़ का है। उसमें क्या? आहाहा! 'सद्गुरु वैद्य सुजान।' सुजान, हों! जिसे यथार्थ भान हुआ है, अनुभव हुआ है, वह सद्गुरु ऐसा कहते हैं, 'गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान।' उन्होंने बताया। आत्मा का ध्यान, वह औषध। आहाहा! समझ में आया? उसका विचार ज्ञान और ध्यान, ऐसा। आहाहा! उसका ज्ञान और उसका ध्यान, वह औषध है। जन्म-मरण मिटाने का वह औषध है। आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई! यहाँ तो द्रव्यस्वभाव का आराधन, यह एक ही बात बतलानी है। बाकी सब व्यवहार आदि हो, वह सब बन्ध का कारण है। आहाहा! अब यह लोगों को ऐसा कहना है कि व्यवहार मदद करे। व्यवहार तो शुभराग है। वीतरागपने की प्राप्ति में वह राग मदद करे? यह स्पष्टीकरण करेंगे।

शास्त्र, पुराण, तपश्चरणादि सब व्यर्थ हैं। जिसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आत्मा के आश्रय से हुए नहीं, जिन्होंने आत्मा का आश्रय लिया ही नहीं, आत्मा का आश्रय किया

नहीं, वे प्राणी शास्त्र के पठन लाख, करोड़ करे, तपस्यायें करे, व्रत पाले, सब वृथा है। आत्मा का लाभ है नहीं। आहाहा! **यहाँ शिष्य प्रश्न करता है कि क्या बिल्कुल ही निरर्थक हैं ?** बिल्कुल निरर्थक है ? शिष्य का प्रश्न है। उसमें तीन बोल हैं। पहले आ गया है।

उसका समाधान ऐसा है कि, बिल्कुल तो नहीं है, लेकिन वीतराग सम्यक्त्वरूप निज शुद्धात्मा की भावना सहित हो,... आहाहा! रागरहित निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, उसकी ही भावना, शुद्धात्मा की भावना—ऐसा कहते हैं। वीतरागी सम्यक्त्वरूप वह क्या ? वीतराग सम्यक्त्वरूप क्या ? कि निज शुद्धात्मा की भावना। आहाहा! शुद्ध भगवान पूर्ण शुद्ध, उसकी भावना। उसका नाम वीतराग सम्यग्दर्शन। समझ में आया ? **वीतराग सम्यक्त्वरूप...** एक बात। **निज शुद्धात्मा की भावना....** वीतराग सम्यक् निश्चय अर्थात् शुद्धात्मा की भावना—शुद्धात्मा में एकाग्रता। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में क्या दिखता है ? क्षायिक समकिती चक्रवर्ती का राज करते हों। उसमें क्या है ? क्षायिक समकिती हो और चक्रवर्ती का राज हो। छियानवें हजार स्त्रियाँ हों। यह तो अन्तर की वस्तु है। और बाह्य में सब त्याग करके बैठा हो, नग्नमुनि आदि। पंच महाव्रत पालता हो, उन पंच महाव्रत में धर्म मानता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : गृहस्थ की अपेक्षा तो अच्छे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : गृहस्थ की अपेक्षा अच्छे हैं ? गृहस्थ बुरा की अपेक्षा अच्छे ? समकिती है तो गृहस्थ मोक्षमार्ग में है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अणगार हो, परन्तु राग को धर्म मानता है तो वह महा हल्का है। मोक्षमार्ग में नहीं है, ऐसा लिखा है। रत्नकरण्डश्रावकाचार। आहाहा! गृहस्थाश्रम में भी आत्मा का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन प्रगट किया हो तो वह मोक्षमार्ग में है। और अणगार होकर राग से धर्म मानता है, क्रिया मेरी है, जड़ की क्रिया मैं करता हूँ, तो मुझे लाभ होगा, तो वह मोक्षमार्ग का विरोधी है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया ?

एक तो यह कि वीतराग सम्यक्त्वरूप निज शुद्धात्मा की भावना सहित यदि

व्यवहार हो तो, उस व्यवहार को बहिरंग सहकारण कहते हैं। बहिरंग सहकारण। साथ में निमित्त है, बस इतना। समझ में आया? **वीतराग सम्यक्त्वरूप निज शुद्धात्मा की भावना...** आहाहा! ज्ञानस्वरूप भगवान पूर्ण प्रकाशपिण्ड प्रभु, उसमें वीतरागी समकित अर्थात् शुद्धात्मा की भावना। राग और व्यवहार की भावना नहीं। पर की भावना नहीं, शुद्धात्मा की भावना। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की भी भावना नहीं। ऐसा कहकर वीतरागी समकित, वह सत्य समकित है, वह शुद्धात्मा की भावना। भगवान पूर्णानन्द शुद्ध की भावना, वह वीतराग समकित है। आहाहा! आचार्यों ने भी... समझ में आया?

वीतराग का मार्ग वीतराग की पर्याय से शुरु होता है। राग की पर्याय से शुरु हो, वह वीतराग मार्ग है? आहाहा! लाख व्यवहाररत्नत्रय हो। यह तो नियमसार में कहा है कि कथनमात्र व्यवहाररत्नत्रय तो अनन्त बार किये, उससे कुछ लाभ हुआ नहीं। ऐसा का ऐसा संसार रहा। व्यवहाररत्नत्रय, व्यवहार अर्थात् कथनमात्र, ऐसा अनन्त बार किया। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, भक्ति... पाँच महाव्रत, आहाहा! नौवें ग्रैवेयक गया। शुभभाव, वह कोई धर्मध्यान नहीं, वह कोई मोक्ष का मार्ग नहीं। आहाहा! और यहाँ थोड़ा भी भगवान का आश्रय लेकर धर्मध्यान प्रगट किया तो वह वीतरागी समकित शुद्धात्मा की भावना मोक्षमार्ग में है। आहाहा! समझ में आया? वर्तमान में गड़बड़ बहुत हो गयी, इसलिए लोगों को यह पकड़ना भारी पड़ गया। पत्र-पत्रिकावाले चिल्लाहट मचाते हैं। व्यवहार से लाभ होता है, उसके बदले ना करते हैं, एकान्त है... एकान्त है.... एकान्त मिथ्यात्व है। अरे! प्रभु! सुन तो सही, भाई! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, अपना आत्मा आनन्दकन्द प्रभु, वह राग भी नहीं और अल्पज्ञ भी नहीं। पूर्ण सर्वज्ञ प्रभु, सर्वज्ञस्वभावी, सर्व आनन्दस्वभावी, सर्व वीर्यस्वभावी, सर्व दर्शनस्वभावी, आहाहा! सर्व ईश्वरस्वभावी—ऐसा जो शुद्धात्मा, उसकी भावना अर्थात् इस भाव की भावना—एकाग्रता, वह वीतरागी सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया? वह सच्चा सम्यग्दर्शन है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा हो **तो मोक्ष के ही बाह्य सहकारीकारण हैं,...** बस। बाह्यरूप से। अभ्यन्तर नहीं, परन्तु बाह्यरूप से। अभ्यन्तर तो स्वभाव शुद्धात्मा की भावना, आहाहा! और देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, तपस्या आदि **बाह्य सहकारीकारण हैं,....** बस, इतनी बात। आहाहा! उससे कोई मोक्षमार्ग है या ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा!

यदि वे वीतरागसम्यक्त्व के अभावरूप हो,... श्रद्धा हो परन्तु वीतरागी समकित नहीं। व्यवहार श्रद्धा आदि हो। **अभावरूप हो, तो पुण्यबन्ध के कारण हैं,...** तो उसे पुण्यबन्ध होगा। आहाहा! समझ में आया? **और जो मिथ्यात्वरागादि सहित हो,...** आहाहा! व्यवहारश्रद्धा में भी भ्रष्ट हो... समझ में आया? तो वह मिथ्यात्व और रागादि सहित तो **पापबन्ध के कारण हैं,...** आहाहा! वस्तु की स्थिति यह है। आहाहा! कहा न? **जैसे कि रुद्र वगैरह विद्यानुवादनामा दसवें पूर्व तक शास्त्र पढ़कर...** आहाहा! कहो, **भ्रष्ट हो जाते हैं।** आहाहा! समझ में आया?

तीन बोल लिये। व्यवहार जो कहलाता है, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रतादि भाव, शास्त्र का पठन, वह यदि आत्मसन्मुख की वीतराग समकित जो शुद्धात्मा की एकाग्रतारूप, वीतराग समकित अर्थात् शुद्धात्मा की एकाग्रतारूप ऐसी दशावन्त को बाह्य सहकारी निमित्त कहलाता है। समझ में आया? सहकारी निमित्त, वह आत्मा को कुछ करता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : बाह्य सहकारी....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाह्य सहकारी है। बाह्य चीज़ राग है। अन्तर में तो आत्मा के आनन्द की ओर का झुकाव परिणत हुआ वह। शुद्धात्मा की भावना और वीतराग निर्विकल्प समकित हुआ वह। और यह बाह्य में निमित्त है। यह व्यवहार मोक्षमार्ग कहा न? जिसे निश्चय सम्यग्दर्शन है, उसे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा में है तो राग, परन्तु निश्चय समकित में उसे व्यवहार समकित का आरोप दिया। समकित है नहीं, परन्तु सहचर देखकर निमित्त को अन्दर में व्यवहार कहने में आया है। आहाहा! अपना शुद्ध उपादान आत्मा ध्रुव, वह नहीं, शुद्ध उपादान अन्तर में निश्चय स्थिरता, दृष्टि, ज्ञान की रमणता, वह निश्चय सम्यग्दर्शन, वीतरागी सम्यग्दर्शन। वह शुद्ध भावना, शुद्धात्मा की भावना। आहाहा! उसके साथ यदि यह रागादि व्यवहार हो तो बाह्य सहकारी कारण कहे जाते हैं। यह सहकारी कारण है तो निश्चय है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? निश्चय तो अपने स्वभाव के आश्रय से ही है। बाह्य है तो निश्चय है, ऐसा नहीं। परन्तु निश्चय अन्तर में है, उसे बाह्य रागादि व्यवहार है (तो) सहकारी निमित्तकारण कहते हैं। आहाहा!

वीतराग सम्यक्त्व का अभाव। ऐसी श्रद्धा हो—देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि

हो परन्तु वीतराग समकित नहीं। समझ में आया? शुद्धात्मा की भावना, भाव जो त्रिकाली भाव, उसकी भावना नहीं और कुछ व्यवहार श्रद्धा आदि हो तो पुण्यबन्ध का कारण है। पुण्यबन्ध का कारण है। तपस्या, शास्त्रज्ञान, नौ तत्त्व की व्यवहारश्रद्धा आदि, वह सब पुण्यबन्ध का कारण है। मार्ग गजब, भाई! ऐसा सुनते हुए लोगों को ऐसा लगता है। जहाँ हो वहाँ मिले। आहाहा! स्थानकवासी में तो तप और त्याग ही भरा है। आता है न? जीवणलाल का वहाँ का। स्थानकवासी पत्र नहीं आता? अहमदाबाद। मुम्बई से जैन प्रकाश। वह सब भरा होता है। उसने तप किया और उसने ऐसा किया और उसने त्याग किया। परन्तु वस्तु बिना? यह श्वेताम्बर में ये यात्रायें कीं, कर्मदहन की पूजा की, सिद्धचक्र की पूजा की और धूमधाम की और लाख, दो लाख खर्च किये, ऐसी बातें आती हैं। आहाहा!

आत्मा के स्वभाव की भावना रहित जीव है... ऐसा कहते हैं, उसे यह व्यवहार रतनत्रय आदि हो, भले व्यवहाराभास है, तो वह पुण्यबन्ध का कारण है। उससे धर्म किंचित् नहीं। आहाहा! निश्चय नहीं, परन्तु व्यवहार है, उसमें कुछ-कुछ थोड़ा निश्चय है। वे कहते थे। सुना है।

और जो मिथ्यात्वरागादि सहित हों,... श्रद्धा भी विपरीत और राग भी विशेष, तो वह पापबन्ध का कारण है। आहाहा! **जैसे कि रुद्र वगैरह विद्यानुवादनामा दसवें पूर्व तक शास्त्र पढ़कर भ्रष्ट हो जाते हैं।** आहाहा! जिसमें भगवान आत्मा की भेंट नहीं हुई, तीन लोक का सार, बारह अंग का सार... आहाहा! ऐसा प्रभु दृष्टि में, ज्ञान में आया नहीं, तो उसे सब व्यवहार-फ्यवहार से संसार है। उससे जन्म-मरण मिटेगा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार मिथ्यादृष्टि। परन्तु यहाँ व्यवहार सम्बन्ध है न, इसलिए जरा... है तो समकितरहित। निश्चय समकितरहित, परन्तु व्यवहार श्रद्धा हो, उसके साथ यह हो तो पुण्यबन्ध होता है और जिसके अभी व्यवहारश्रद्धा का ही ठिकाना नहीं, देव-गुरु-शास्त्र का ठिकाना नहीं और व्यवहार करे, वह तो मिथ्यात्व है और साथ में राग भी है। आहाहा! पापबन्ध का कारण है। आहाहा!

अब ९९ गाथा आयी।

गाथा - ९९

अथात्मनि ज्ञाते सर्वं ज्ञातं भवतीति दर्शयति –

९९) जोइय अप्पें जाणिएण जगु जाणियउ हवेइ।
अप्पहँ केरइ भावडइ बिंबिउ जेण वसेइ।।९९।।

योगिन् आत्मना ज्ञातेन जगत् ज्ञातं भवति।
आत्मनः संबन्धिनिर्भावे बिम्बितं येन वसति।।९९।।

जोइय अप्पे जाणिएण हे योगिन् आत्मना ज्ञातेन। किं भवति। जगु जाणियउ हवेइ जगत्त्रिभुवनं ज्ञातं भवति। कस्मात्। अप्पहं केरइ भावडइ बिंबिउ जेण बसेइ आत्मनः संबन्धिनि भावे केवलज्ञानपर्याये बिम्बितं प्रतिबिम्बितं येन कारणेन वसति तिष्ठतीति। अयमर्थः। वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानेन परमात्मतत्त्वे ज्ञाते सति समस्तद्वादशाङ्गागमस्वरूपं ज्ञातं भवति। कस्मात्। यस्माद्राघवपाण्डवादयो महापुरुषा जिनदीक्षां गृहीत्वा द्वादशाङ्गं पठित्वा द्वादशाङ्गाध्ययनफलभूते निश्चयरत्नत्रयात्मके परमात्मध्याने तिष्ठन्ति तेन कारणेन वीतराग–स्वसंवेदनज्ञानेन निजात्मनि ज्ञाते सति सर्वं ज्ञातं भवतीति। अथवा निर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्न–परमानन्दसुखरसास्वादे जाते सति पुरुषो जानाति। किं जानाति। वेत्ति मम स्वरूपमन्य–द्देहरागादिकं परमिति तेन कारणेनात्मनि ज्ञाते सर्वं ज्ञातं भवति। अथवा आत्मा कर्ता श्रुतज्ञानरूपेण व्याप्तिज्ञानेन करणभूतेन सर्वं लोकालोकं जानाति तेन कारणेनात्मनि ज्ञाते सर्वं ज्ञातं भवतीति। अथवा वीतरागनिर्विकल्पत्रिगुप्तिसमाधिबलेन केवलज्ञानोत्पत्ति–बीजभूतेन केवलज्ञाने जाते सति दर्पणे बिम्बवत् सर्वं लोकालोकस्वरूपं विज्ञायत इति हेतोरात्मनि ज्ञाते सर्वं ज्ञातं भवतीति अत्रेदं व्याख्यानचतुष्टयं ज्ञात्वा बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहत्यागं कृत्वा सर्वतात्पर्येण निजशुद्धात्मभावना कर्तव्येति तात्पर्यम्। तथा चोक्तं समयसारे – 'जो पस्सइ अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं। अपदेससुत्तमज्झं पस्सइ जिणसासणं सव्वं।।'।।९९।।

आगे निज भव्यजीवों ने आत्मा को जान लिया, उन्होंने सब जाना ऐसा दिखलाते हैं –

एक आत्मा जान लिया तो सकल जगत होता है ज्ञात।
क्योंकि केवलज्ञान मुकुर में सब जग प्रतिबिम्बित होता।।९९।।

अन्वयार्थ :– [योगिन्] हे योगी [आत्मना ज्ञातेन] एक अपने आत्मा के जानने

से [जगत् ज्ञानं भवति] यह तीन लोक जाना जाता है, [येन] क्योंकि [आत्मनः संबन्धिनि भावे] आत्मा के भावरूप केवलज्ञान में [बिम्बितं] यह लोक प्रतिबिम्बित हुआ [वसति] बस रहा हैं।

भावार्थ :– वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञान से शुद्धात्मतत्त्व के जानने पर समस्त द्वादशांग शास्त्र जाना जाता है। क्योंकि जैसे रामचन्द्र, पांडव, भरत, सगर आदि महान् पुरुष भी जिनराज की दीक्षा लेकर फिर द्वादशांग को पढ़कर द्वादशांग पढ़ने का फल निश्चयरत्नत्रयस्वरूप जो शुद्धपरमात्मा उसके ध्यान में लीन हुए तिष्ठे थे। इसलिये वीतरागस्वसंवेदनज्ञानकर अपने आत्मा का जानना ही सार है, आत्मा के जानने से सबका जानपना सफल होता है, इस कारण जिन्होंने अपनी आत्मा जानी उन्होंने सबको जाना। अथवा निर्विकल्पसमाधि से उत्पन्न हुआ जो परमानंद सुखरस उसके आस्वाद होने पर ज्ञानी पुरुष ऐसा जानता है, कि मेरा स्वरूप जुदा है, और देह रागादिक मेरे से दूसरे हैं, मेरे नहीं हैं, इसलिये आत्मा के (अपने) जानने से सब भेद जाने जाते हैं, जिसने अपने को जान लिया, उसने अपने से भिन्न सब पदार्थ जाने। अथवा आत्मा श्रुतज्ञानरूप व्याप्तिज्ञान से सब लोकालोक को जानता है, इसलिये आत्मा के जानने से सब जाना गया। अथवा वीतरागनिर्विकल्प परमसमाधि के बल से केवलज्ञान को उत्पन्न (प्रगट) करके जैसे दर्पण में घट पटादि पदार्थ झलकते हैं, उसी प्रकार ज्ञानरूपी दर्पण में सब लोक–अलोक भासते हैं। इससे यह बात निश्चय हुई, कि आत्मा के जानने से सब जाना जाता है। यहाँ पर सारांश यह हुआ, कि इन चारों व्याख्यानों का रहस्य जानकर बाह्य अभ्यंतर सब परिग्रह छोड़कर सब तरह से अपने शुद्धात्मा की भावना करनी चाहिये। ऐसा ही कथन समयसार में श्रीकुंदकुंदाचार्य ने किया है। 'जो पस्सइ' इत्यादि–इसका अर्थ यह है, कि जो निकट–संसारी जीव स्वसंवेदनज्ञानकर अपने आत्मा को अनुभवता, सम्यग्दृष्टिपने से अपने को देखता है, वह सब जैनशासन को देखता है, ऐसा जिनसूत्र में कहा है। कैसा वह आत्मा है? रागादिक ज्ञानावरणादिक से रहित है, अन्यभाव जो नर नारकादि पर्याय उनसे रहित है, विशेष अर्थात् गुणस्थान मार्गणा जीवसमास इत्यादि सब भेदों से रहित है। ऐसे आत्मा के स्वरूप को जो देखता है, जानता है, अनुभवता है, वह सब जिनशासन का मर्म जाननेवाला है।।९९।।

गाथा-९९ पर प्रवचन

आगे जिन भव्यजीवों ने आत्मा को जान लिया,... ९९ में गजब बात है। **उन्होंने सब जाना...** 'अेगं जाणहि सव्व जाणहिं', इसका स्पष्टीकरण करते हैं। आहाहा! जिन भव्य जीवों ने भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूपी प्रभु के स्वसन्मुख होकर आत्मा का ज्ञान किया, **उन्होंने सब जाना....** उन्होंने सब जाना। जाननेयोग्य वस्तु को जाना तो सब जान लिया। आहाहा! ९९।

९९) जोइय अप्पें जाणिएण जगु जाणियउ हवेइ।
अप्पहँ केरइ भावडइ बिंबिउ जेण वसेइ॥९९॥

आहाहा! गजब, भाई! परमात्मप्रकाश।

अन्वयार्थः—हे योगी! एक अपने आत्मा के जानने से... 'जगत् ज्ञानं भवति' यह तीन लोक जाना जाता है... आहाहा! इसकी व्याख्या चार प्रकार से करेंगे। समझ में आया? जिसने भगवान आत्मा प्रज्ञा आनन्दस्वरूप, उसका जिसने अन्तर्मुख शुद्धात्मा की भावना से प्रगट हुआ समकित... समझ में आया? तो उसने सब जाना। क्यों? कि **आत्मा के भावरूप केवलज्ञान में यह लोक प्रतिबिम्बित हुआ बस रहा है।** आहाहा! जिसने आत्मा जाना, उसके ज्ञान में लोकालोक आयेगा। चार प्रकार कहेंगे।

भावार्थः—वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञान से शुद्धात्मतत्त्व के जानने पर समस्त द्वादशांग शास्त्र जाना जाता है। देखो! यहाँ ऐसा कहना है, **'जोइय अप्पें जाणिएण जगु जाणियउ'** जगत जाना। अब इसका अर्थ करते हैं, **वीतराग निर्विकल्प-स्वसंवेदनज्ञान से...** यह ज्ञान, हों! शास्त्रज्ञान नहीं। आहाहा! रागरहित अभेद अपने आत्मा के प्रत्यक्ष वेदन ज्ञान से। यह ज्ञान। ऐसे **शुद्धात्मतत्त्व के जानने पर...** ऐसे ज्ञान से शुद्धात्मतत्त्व को जानने पर... आहाहा! **वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञान से शुद्धात्मतत्त्व के जानने पर...** किस प्रकार जानने पर? किसे जानने पर? कि शुद्धात्मतत्त्व को। किस प्रकार जानने पर? **वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञान से जानने पर...** आहाहा! **समस्त द्वादशांग शास्त्र जाना जाता है।** लो। उसने बारह अंग जाने। क्योंकि बारह अंग में कहना था, वह जाना, इसलिए सब जाना। आहाहा! समझ में आया?

क्योंकि जैसे रामचन्द्र, पाण्डव,... महापुरुष। रामचन्द्रजी पुरुषोत्तम पुरुष। आहाहा! पाण्डव। धर्मराजा, भीम, अर्जुन, सहदेव, नकुल। पाण्डव। **भरत...** ऋषभदेव भगवान के पुत्र भरत। **सगर (चक्रवर्ती) आदि महान पुरुष...** ओहो! **जिनराज की दीक्षा लेकर...** आहाहा! वीतरागी सम्यग्दर्शनसहित जिनराज की वीतरागी दीक्षा लेकर। आहाहा! रामचन्द्रजी बलदेव महापुरुष चरमशरीरी—अन्तिम शरीर। उस भव में केवलज्ञान लेकर मोक्ष प्राप्त हुए। आहाहा! पाँचों पाण्डव। उनमें तीन तो उस भाव में केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त हुए। और दो को विकल्प रह गया, अरे! मुनि को क्या होगा? यहाँ शत्रुंजय। आहाहा! तीन बड़े मुनि को क्या होगा? लोहे के (गहने) पहनाये न? दुर्योध्यान के भानेज ने लोहे के गहने—आभूषण मुकुट, यहाँ... यहाँ... (पहनाये)। आहाहा! भावलिंगी सन्त... अमृत के झरने के वेदन हैं, आहाहा! दो मुनियों को ऐसा विकल्प आया। परन्तु आराधन करके एकावतारी हुए। समझ में आया? उन्होंने भी बारह अंग ही जाने, कहते हैं। बारह अंग का सार जाना तो, उसने सब जाना। आहाहा! है?

जिनराज की दीक्षा लेकर फिर द्वादशांग को पढ़कर... बारह अंग पढ़े। आहाहा! भरत, पाण्डव, रामचन्द्र, सगर आदि दीक्षा लेकर बारह अंग पढ़े। आहाहा! **द्वादशांग पढ़ने का फल...** बारह अंग का अर्थ, जिसमें चौदह पूर्व तो एक भाग है। बारह अंग तो उससे भी विशेष है। पाँच भाग है, उसमें तीसरा भाग पूर्व का है, दो भाग विशेष हैं। सब मिलकर बारह अंग हैं। यह पढ़ने का फल **निश्चयरत्नत्रयस्वरूप जो शुद्धपरमात्मा...** आहाहा! निश्चयरत्नत्रयस्वरूप, जो परमात्मा **उसके ध्यान में लीन....** कैसा ध्यान निश्चयरत्नत्रयस्वरूप। आहाहा! गजब बात है, बापू! भगवान पूर्णानन्दस्वभाव निश्चयरत्नत्रय में जिसने ध्यान में लिया। आहाहा! **उसके ध्यान में लीन हुए तिष्ठे थे।** आहाहा!

इसलिए वीतरागस्वसंवेदनज्ञानकर अपने आत्मा का जानना ही सार है,... इसलिए वीतरागस्वसंवेदनज्ञानकर... शास्त्र से नहीं। आहाहा! अपने ज्ञान की पर्याय से अन्तर में ज्ञाता को जानकर। स्वसंवेदन सीधा जानकर। आहाहा! पाण्डव, रामचन्द्रजी, भरत, सगर आदि चक्रवर्ती... आहाहा! दो गये हैं नरक में, बाकी दस चक्रवर्ती मोक्ष पधारे हैं। समझ में आया? आहाहा! छह खण्ड के राज। रामचन्द्रजी बलदेव, तीन खण्ड का

राज। भरत को छह खण्ड का राज। आहाहा! पाण्डव महायोद्धा थे न! ओहो! वे योद्धा बारह अंग को जानकर अन्तर ध्यान में गये, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! जहाँ भगवान पूर्णानन्द विराजता है, आत्मा, हों! वहाँ अन्दर में उतर गये। आहाहा! गहरे उतर गये। जहाँ तल स्पर्श हो, पूर्णानन्द का स्पर्श हो, इस प्रकार अन्दर में गये। आहाहा! मार्ग गजब, भाई! समझ में आया?

वीतरागस्वसंवेदनज्ञानकर अपने आत्मा का जानना ही सार है,... आहाहा! राग व्यवहार, वह सार नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात कठिन पड़े। अभ्यास नहीं और वह उल्टा अभ्यास बहुत। प्रभु रह गया, कहते हैं। तूने सब अभ्यास किये, स्वयं अभ्यास करनेयोग्य चीज़ रह गयी। आहाहा! **आत्मा के जानने से सबका जानपना सफल होता है,...** यह किसकी व्याख्या की? **'जोइय अप्पें जाणिएण जगु जाणियउ'** इसकी व्याख्या चलती है। दो पद है न? जिसने आत्मा जाना, उसने जग जाना। जग जाना, यह बाद में बोल भिन्न किया। जिसने आत्मा जाना, उसने बारह अंग जाने, ऐसा। वह जग में आया न? आहाहा! समझ में आया? जिसने भगवान आत्मा को जाना, उसने जगत को जाना। अब उसके चार भेद। एक तो बारह अंग को जाना। क्योंकि बारह अंग का सार जो आत्मतत्त्व जिसने जाना, उसने बारह अंग जाने अथवा उसने बाह्य ज्ञान का सफलपना किया। क्या कहा, समझ में आया? आहाहा! ऐसी चीज़ पड़ी है, देखो न! यह वाँचने को निवृत्ति नहीं मिलती और उस पाप के पोथा फिराया करता है पूरे दिन। ऐ... सेठ!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अभी वाँचे तो खबर पड़े न। अभी वाँचना नहीं होता। निवृत्ति नहीं मिलती। नवराश को क्या कहते हैं? फुरसत... फुरसत... फुरसत। आहाहा! केवलज्ञान के कपाट खोल डाले हैं। आहाहा! प्रभु! एक बार देख तो सही, कहते हैं। तेरी चीज़ अन्दर महाप्रभु चैतन्य भगवान विराजता है, नाथ! तुझे खबर नहीं, भाई! उसकी तू रक्षा कर। जैसा जिस प्रकार से स्वरूप है, उस प्रकार से निर्विकल्प वीतरागी भावना से जुड़ जा। आहाहा! तो उसने बारह अंग जाने अथवा बारह अंग का सफलपना किया। आहाहा!

दो बातें हैं न? **वीतराग स्वसंवेदनज्ञानकर अपने आत्मा का जानना ही सार है, आत्मा के जानने से सबका जानपना सफल होता है,...** आहाहा! भगवान आत्मा... वर बिना की बारात जोड़ दी। वर समझते हो? दूल्हा... दूल्हा। दूल्हा न हो और बारात जोड़ दी। लाख लोग और ढोल / दुंदुभि बाजा और बैण्ड... दया, दान, व्रत और भक्ति और तप जोड़ दिये। वर—भगवान नहीं होता साथ में। आहाहा! **वीतराग स्वसंवेदनज्ञानकर अपने आत्मा का जानना ही सार है,...** आहाहा! बारह अंग जानकर भी सार तो आत्मा का ज्ञान करना, वह है। यह कलश में भी आया है न, बारह अंग जानना, वह भी विकल्प है। कलश में आया है। उसमें भी अनुभूति करने की बात की है। समझ में आया? है न उसमें? इस प्रसंग में दूसरा भी संशय होता है, कोई जानेगा कि द्वादशांग कोई अपूर्व लब्धि है? बारह अंग का ज्ञान कोई अपूर्व बात है। उसका समाधान—द्वादशांग ज्ञान भी विकल्प है। उसमें भी ऐसा कहा है कि शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है। बारह अंग में यह कहा है कि आत्मा आनन्दमूर्ति भगवान की अनुभूति, वह मोक्षमार्ग है। दया, दान और व्रत, भक्ति-फक्ति मोक्षमार्ग बारह अंग में कहा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

इस कारण जिन्होंने अपनी आत्मा जानी, उन्होंने सबको जाना। इस एक बोल का स्पष्टीकरण किया। आगे आचार्य कहेंगे, बड़े-बड़े आचार्यों ने इस बात को मान्य रखकर रहस्य खोले हैं। यह चार बोल में। फिर आता है न? १०० में। **यही व्याख्यान बड़े-बड़े आचार्यों ने माना है।** आहाहा! जिसने आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान जान लिया, उसने बारह अंग जाने। अथवा बारह अंग का सार जाना तो बाह्य ज्ञान का सफलपना उसे कहते हैं। आहाहा! अपना ज्ञान न करे और अकेला शास्त्र का ज्ञान करे, वह सफल नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग! यह एक बोल कहा। दूसरा बोल।

चार बोल कहेंगे। आत्मा जाना, उसने जगत जाना। आत्मा जाना उसने जगत जाना—इस शब्द के चार अर्थ करेंगे। समझ में आया? एक तो यह अर्थ किया कि जिसने भगवान आनन्द का नाथ प्रभु परमात्मस्वरूप, उसे वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान से जाना, वापस वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान से जाना, उसने बारह अंग का सार जाना और बारह अंग को उसने सफल किया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! लोग नहीं

कहते ? पृष्ठ फिरे, वैसे सोना झरे, ऐसा कहते हैं। क्या कहा ? सेठ ! पृष्ठ फिरे वैसे सोना झरे। उगाही की बहियों में नाम लिखा होता है न ! इससे इतने और इससे इतने (लेना है)। कोई भूल गया हो तो.... दस हजार का लेना है, वह तो भूल गये। पृष्ठ फिर, वैसे सोना झरे। ऐसा कहते हैं। यह पृष्ठ फिरे और निर्विकल्प समाधि प्रगट हो, ऐसा कहते हैं। परिणति फिरते-फिरते निर्विकल्प समाधि आनन्द आवे। आहा ! उसमें पैसा आवे धूल में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धन है। उस धूल में कुछ नहीं। आहाहा ! मरकर वहाँ सर्प होगा ऊपर। आया नहीं था ? यह सायलावाला लाला भगत। सायलावाला लाला भगत था। तब तो सवा रुपये की बहुत कीमत थी न ! वह वापस वहाँ मर गया। बहुत वर्ष हुए। डिब्बी में देखे तो कणो। अरे ! यह बाबा कणो हुआ है। कणो समझते हो ? छोटा सर्प। वह डिब्बी में छोटा सर्प निकला। अरे ! बाबा मरकर छोटा सर्प हुआ और ममता हुई। यह लक्ष्मी जाने तब तो आनन्द और परमात्मा होता है। बाहर की लक्ष्मी में जाये तो वहाँ छोटा सर्प होगा। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

वीर संवत् २५०२, भाद्र शुक्ल ५, रविवार
दिनांक-२९-०८-१९७६, गाथा-९९, प्रवचन-७६

आज दसलक्षणी पर्व का पहला दिन है। उत्तमक्षमा। वह उत्तमक्षमा किसे होती है? जिसे अन्तर आत्मा का अनुभव हुआ हो, यह बात है। सम्यग्दर्शन हुआ हो। निज चैतन्य के आश्रय से निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि। यहाँ चारित्र की व्याख्या है न? तीनों जिसे अन्तर में से प्रगट हुए हों। उसे निश्चय से उत्तमक्षमा होती है। मिथ्यादृष्टि को क्षमा नहीं होती। समझ में आया? व्यवहार से धर्म होता है, ऐसा माननेवाले को उत्तमक्षमा नहीं होती। पद्मनन्दि पंचविंशति, आया है? पुस्तक नहीं दी किसी ने? सबके घर में हो तो लाना। दोपहर में आलोचना चलेगी और सवेरे चलता है न? उसमें यह उत्तमक्षमा का अधिकार है। पद्मनन्दि पंचविंशति। उसमें ८१ गाथा है, फिर ८२ गाथा से उत्तमक्षमा का अधिकार चला है। उसमें पहले ऐसा लिया है... देखो!

आत्मा नाम के निर्मल तेज का निर्णय करना... विश्वास करना, यह निश्चय सम्यग्दर्शन है। अपना ज्ञान तेज प्रकाश का पुंज प्रभु का अनुभव करके प्रतीति करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। और इन तीनों की एकता कर्मबन्ध का नाश करनेवाली है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, जो आत्मा के अवलम्बन से—आश्रय से निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र होते हैं, वह मोक्ष का कारण है। वह बन्ध का कारण जरा भी नहीं। उत्तमक्षमा पहले क्या बात करते हैं, वह समझने की चीज़ है। **इस निश्चय रत्नत्रय से जो बाह्य है...** आचार्य स्वयं कहते हैं। पद्मनन्दि आचार्य जंगलवासी-वनवासी मुनि थे। जो कोई निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र अपने आश्रय से निर्विकल्प आनन्द की वेदना—आनन्द का अनुभव होना, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है। इसके अतिरिक्त बाह्य जो है, **वह चाहे शुभ हो, चाहे अशुभ हो, बन्ध का ही कारण है।** मूल पाठ में है। '**बन्धः**' देखो!

'**बाह्यं बाह्यार्थमेव, त्रितयमपि परं, स्याच्छुभो वाऽछुभो वा, बन्धः संसारमेवं**' व्यवहाररत्नत्रय शुभभाव, वह संसार है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु की अन्तर विकल्प अर्थात्

राग बिना की अन्तर अनुभव की प्रतीति, तेज—चैतन्य के तेज का अन्तर विश्वास, निर्विकल्प आनन्द में विश्वास, उसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन है। आहाहा! और सम्यग्दर्शन बिना यह उत्तमक्षमा आदि होते नहीं। यह पहला श्लोक लिया और फिर उत्तमक्षमा का लिया है, भाई! यह ८१ है और फिर ८२ से उत्तमक्षमा का अधिकार (लेंगे)।

अभी बात तो थोड़ी दूसरी है। '**बन्धः संसारमेवं**' आहाहा! अपना भगवान आनन्द के नाथ की निर्विकल्प दृष्टि, ज्ञान, रमणता, वही एक मोक्ष का मार्ग है। उससे बाह्य चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, आहाहा! उसमें नहीं। है पद्मनन्दि? यह पद्मनन्दि में है। उसमें से क्षमा लेना है। कहते हैं, भगवान आत्मा... देखो! उत्तमक्षमा के दिन से मण्डप डालते हैं। आहाहा! जिसके अन्तर आनन्द के नाथ की प्रतीति अनुभव में हुई हो, आहाहा! और निर्विकल्प आनन्द का जिसे वेदन हुआ हो... आहाहा! वही सम्यग्दर्शन और वही मोक्ष का मार्ग। '**बाह्यं बन्धः**' इसके अतिरिक्त बाह्य चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, श्रद्धा, पंच महाव्रत '**बन्धः संसारमेवं**'। यह तो ठीक संसार, वह राग संसार है। आहाहा!

'**श्रुतिनिपुणधियः साधवस्तं वदन्ति**' क्या कहते हैं? आहाहा! **श्रुतज्ञान के पारंगत आचार्य कहते हैं।** श्रुत के पारंगत आचार्य ऐसा कहते हैं। बारह अंग जाने हों और उसमें क्या है, उसके जाननेवाले ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **श्रुतज्ञान के पारंगत आचार्य कहते हैं। इसलिए भव्य जीवों को निश्चय रत्नत्रय के लिये ही प्रयत्न करना चाहिए।** पहला तो यह बोल है। श्रुत के पारंगत आचार्य ऐसा कहते हैं, लो। कोई और शास्त्र में व्यवहार प्रधान कहे, ऐसा नहीं। यह उसका सार है। परम्परा व्यवहार मोक्ष का कारण है। वह राग भाग है न अभी। तो यहाँ कहते हैं, श्रुत के पारंगत... पाठ है, हों! '**श्रुतिनिपुणाधियः**' श्रुत में निपुण बुद्धिवाले आचार्य, महा श्रुतज्ञानी '**साधवस्तं वदन्ति संसारमेवं**'। निश्चय रत्नत्रय के अतिरिक्त जितने बाह्य के व्यवहार के विकल्प उठें, वे सब बन्ध के कारण और '**संसारमेवं**'। वे श्रुत के पारंगत आचार्य ऐसा कहते हैं। दशरथलालजी! आहाहा! सेठ! इतना कहने के बाद क्षमा ली है, भाई! फिर शुरु करते हैं। आहाहा! कितनी अद्भुत व्याख्या!

पद्मनन्दि आचार्य हुए हैं, दिगम्बर सन्त वनवासी, आनन्द में झूलते थे, उसमें विकल्प आया, करुणा से शास्त्र हो गया। शास्त्र की रचना करनेवाले भी वे नहीं। क्योंकि वह तो परमाणु की पर्याय है। आहाहा! विकल्प आया, तो कहते हैं, परन्तु वह बन्ध का कारण है। ऐसे श्रुत के पारंगत आचार्य ऐसा कहते हैं। आहाहा! अमरचन्दभाई! आहाहा!

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान के तेज का पुंज प्रभु, उस ज्ञान का ज्ञान करके ज्ञान में निर्णय करना। आहाहा! जिसमें राग और विकल्प की अपेक्षा नहीं। उसका नाम भगवान श्रुत पारंगत आचार्य इसे निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र कहते हैं। उससे जो बाह्य... व्यवहाररत्नत्रय शुभराग, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह राग, पंच महाव्रत के परिणाम वह राग, श्रुत के पठन के विकल्प, वह राग, वह सब बन्ध का कारण है और '**संसारमेवं**' है। आहाहा! पद्मनन्दि पंचविंशति है। पद्मनन्दि आचार्य ने २६ अध्याय बनाये हैं, परन्तु नाम दिया पद्मनन्दि पंचविंशति। है २६ अध्याय। पद्मनन्दि आचार्य दिगम्बर सन्त वनवासी, जिसे वनशास्त्र कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

इस वनशास्त्र में श्रुत के पारंगत (ऐसा कहते हैं, ऐसा कहा है)। ऐसा नहीं कि अमुक सूत्र में कहा और दूसरे सूत्र में दूसरा कहा। आहाहा! सब श्रुत के पारंगत आचार्य... है? '**श्रुतिनिपुणधियः साधवस्तं वदन्ति**' निश्चय स्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, निर्विकल्प आनन्द, इसके अतिरिक्त जितने विकल्प हैं, वे बन्ध के कारण, वह संसार है, ऐसा श्रुत के पारंगत आचार्य कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सम्यग्दर्शन होने के बाद... यहाँ तो चारित्रसहित की बात है न! दसलक्षणी चारित्र है। चारित्र के दस भेद हैं। तो जिसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है, उसकी उत्तमक्षमा कैसी होती है, यह बात चलती है। गर्भित में गृहस्थ समकिती को भी उत्तमक्षमा कैसी होती है, उसका वर्णन है। यह ८२ गाथा। उत्तमक्षमा।

जड़जनकृत-बाधाऽक्रोशहासाऽप्रियादा-
वपि सति न विकारं, यन्मनो याति साधोः।
अमलविपुलचित्तैरुत्तमा सा क्षमादौ-
शिवपथपथिकानां, सत्सहायत्वमेति॥८२॥

अर्थ :- आहाहा! **मूर्खजनों द्वारा किये हुए बन्धन, क्रोध, हास्य आदि के होने**

पर तथा कठोर वचनों के बोलने पर भी जो साधु, अपने निर्मल धीर-वीर चित्त से विकृत नहीं होता,... सम्यग्दर्शन, ज्ञान सहित की बात है। समझ में आया? जिसे सम्यग्दर्शन नहीं, उसे उत्तमक्षमा नहीं होती। कृत्रिम क्षमा होती है, पुण्यबन्ध का कारण। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

सन्तों ने भी बात की है न! श्रुत के पारंगत। ऐसा कि जिसने सब सूत्र जाने हैं, ऐसे साधु ऐसा कहते हैं कि अपने आत्मा के आनन्द की प्रतीति, ज्ञान और रमणता, दर्शन-ज्ञान-चारित्र, निर्विकल्प वीतरागी पर्याय, उसके अतिरिक्त के जितने विकल्प उठें, शास्त्र पढ़ना, सुनना, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि... आहाहा! '**संसारमेवं**'। ऐ... सेठ! कभी सुना नहीं। जहाँ-तहाँ हाँ हाँ की। बड़े सेठ कहलाये न। सामने बैठावे। और लोग आशा रखे कि पैसा-बैसा देंगे। सामने आगे बैठावे। हाँ, पढ़ना चाहिए। कहो, सेठ! आहाहा! देखो! यह दिगम्बर सन्तों की वाणी। आहाहा! नवरंगभाई!

निश्चय रत्नत्रय के अतिरिक्त जितने व्यवहार के विकल्प उठें, वह बन्ध का कारण और '**संसारमेवं**'। श्रुत के पारंगत मुनि ऐसा कहते हैं। आहाहा! दशरथलालजी! थोड़ा-बहुत पढ़कर ऐसा कहे, व्यवहार से ऐसा होता है और व्यवहार से (ऐसा होता है)। अरे! सुन तो सही, प्रभु! व्यवहार से बन्ध होता है, वह मोक्ष का कारण? शास्त्र में कहा है न? वह तो परम्परा उसका अभाव करके होगा, इस अपेक्षा से कहा है। व्यवहार तो बन्ध का ही कारण है। '**संसारमेवं**'—ऐसा यहाँ तो पाठ लिया है। समझ में आया? आहाहा! दिगम्बर नग्न मुनि सन्त वनवासी आनन्द में झूलनेवाले पुकार करते हैं। हमको भी शास्त्र में लिखने का जो विकल्प आया, वह बन्ध का कारण और संसार है। आहाहा! समझ में आया? अशुभभाव की बात क्या करना? आहाहा! संसार में कमाना, स्त्री, पुत्र, परिवार के लिये व्यापार-धन्धे में रुकना। आहाहा! वह तो अकेला पाप है।

मुमुक्षु : उसमें से छूटना हो तब....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह छूटने की बात करते हैं न! अपने द्रव्यस्वभाव में दृष्टि करने से व्यवहार से और पर से वह छूट जायेगा। समझ में आया? सुमनभाई! यह तुम्हारे लिये प्रश्न करते हैं। सबके लिये। आहाहा!

अब आचार्य क्या कहते हैं? सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र सहित सन्तों ने... मुख्य तो सन्तों का चारित्र का आराधन है न! गौणरूप से समकिती, श्रावक भी उसमें आ जाते हैं। मिथ्यादृष्टि आते हैं, यह बात नहीं है। जिसकी दृष्टि में व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसे मिथ्यादृष्टि के लिये उत्तमक्षमा का अंश भी उसे नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

दसलक्षणी अर्थात् दस लक्षण। लक्ष्य क्या है? चारित्र। यह चारित्र के दस भेद हैं। दसलक्षण पर्व, वह चारित्र के दस भेद हैं। तो चारित्र, जिसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान हुए तदुपरान्त स्वरूप की रमणता की वीतरागदशा उत्पन्न होती है, उसे ऐसी उत्तमक्षमा होती है। आहाहा! इतनी शर्त सहित उत्तमक्षमा कही जाती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : मुनि....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले थोड़ा कहा न? देश अंश में समकिती श्रावक को भी होता है। देश शब्द बीच में कहा था। आहाहा! मुख्य तो दसलक्षण पर्व चारित्र की आराधना का प्रकार है। क्यों? कि चारित्र, वह मोक्ष का कारण है। और वह चारित्र सम्यग्दर्शन हो तो होता है। इसलिए चारित्र मोक्ष का कारण है। उस चारित्र के यह उत्तमक्षमा आदि दस भेद हैं। वह समकिती को ही दर्शन, ज्ञान, चारित्र हुए, उसके दस भेद हैं, उनकी व्याख्या करते हैं। अमरचन्दभाई! बाहर में तो बस, यह उत्तमक्षमा कहा। परन्तु किसे? उत्तम किसे हो? उत्तम किस सम्बन्ध में आया है?

मूर्खजनों द्वारा हास्य आदि हो तो साधु विकृत चित्त होने नहीं देते। ज्ञान में विकृत नहीं होने देते। **उसी का नाम उत्तम क्षमा है।** आहाहा! है? और (८३ गाथा में) कहते हैं कि **आचार्य कहते हैं कि गुणरूपी शाख-पत्र-फूलों से सहित यह यतिरूपी वृक्ष है।** जो अन्दर क्रोध हो जाये तो जलकर राख हो जाता है, कहते हैं। पूरा वृक्ष फला हो, वृक्ष, शाखा (उसमें) अग्नि लगे तो समाप्त हो जाये। उसी प्रकार आत्मा के सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र फले हों, परन्तु अन्दर यदि क्रोध हो जाये, क्रोधाग्नि, तो सबको नाश कर डालेगी। आहाहा! समझ में आया?

(८४ गाथा में कहते हैं), **राग-द्वेष (आदि) से रहित होकर हम तो अपने**

उज्ज्वल चित्त से रहेंगे। धर्मात्मा सन्त तो ऐसी भावना करते हैं। **स्वेच्छाचारी यह लोक, अपने हृदय में चाहे हमको भला-बुरा कैसा भी मानो, क्योंकि सभी पुरुषों को अपने आत्मा की शुद्धि करनी चाहिए। इस लोक में वैरी अथवा मित्रों से हमको क्या है? अर्थात् वे हमारा कुछ भी नहीं कर सकते क्योंकि जो हमारे साथ द्वेषरूप तथा प्रीतिरूप परिणाम करेगा, उसका फल उसको अपने आप मिल जायेगा।** हमारे क्या? ऐसा करके क्षमा करना।

मुमुक्षु : जो करेगा सो भोगेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : जो करेगा, वह भरेगा। आहाहा!

अब अपने चलता अधिकार। परमात्मप्रकाश। है न? ९९ गाथा। आहाहा! '**जोइय अप्पेँ जाणिएण जगु जाणियउ**' आहाहा! हे योगी! योगीन्द्रदेव कहते हैं, जिसने आत्मा जाना, उसने जग जाना। यह शब्द है। आत्मा आनन्द का नाथ निर्विकल्प वेदन से ज्ञात हुआ। आहाहा! वह '**जगु जाणियउ**' वह जगत को जानता है। वह जगत को जानता है, उसकी व्याख्या की, उसमें चार बोल लिये।

जो कोई आत्मा ज्ञायक तेज का पुंज प्रभु; निमित्त का नहीं, राग का नहीं, एक (समय की) पर्याय का नहीं, त्रिकाली ज्ञायक का तेज भगवान आत्मा, उसका अन्तर्मुख होकर जो सम्यग्ज्ञान होता है,... आहाहा! वह आत्मा जाना, उसने जग जाना। जिसे आत्मा का ज्ञान हुआ, उसे जगत का ज्ञान हुआ। अब जगत के ज्ञान में चार बोल लिये हैं। एक बोल तो कल चला है। है? **निश्चयरत्नत्रयस्वरूप जो शुद्ध परमात्मा उसके ध्यान में लीन हुए तिष्ठे थे। इसलिए वीतरागस्वसंवेदनज्ञानकर अपने आत्मा का जानना ही सार है,...** आहाहा! **आत्मा के जानने से सबका जानपना सफल होता है...** है? यह जग जानने का अर्थ किया। आहाहा! एक। **इस कारण जिन्होंने अपनी आत्मा जानी, उन्होंने सबको जाना।** आहाहा! एक बोल आया। दूसरा बोल। यह जग जाना, इसके चार अर्थ किये हैं।

आत्मा को जिसे भान हुआ, वह जगत को जाननेवाला, जगत को जानता है। **अथवा निर्विकल्पसमाधि से उत्पन्न हुआ...** अब क्या कहते हैं? देखो! अपने आत्मा में निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न हुआ आनन्द... आहाहा! टीका भी गजब की है न! आत्मा

जाना, उसने जग जाना। उसकी यह दूसरी व्याख्या। पहली व्याख्या तो यह कही कि अपने आत्मा का जिसे ज्ञान हुआ, उसे बारह अंग सफल हुए। अथवा बारह अंग में कहना था, वह उसने जाना। तो यह जाना तो उसने बारह अंग जाने। समझ में आया? आहाहा! देखो न! आचार्य कहते हैं, श्रुत के पारंगत आचार्य ऐसा कहते हैं कि भगवान के निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के अतिरिक्त दूसरे किसी भी प्रकार के विकल्प हों... आहाहा! जो तीर्थंकरगोत्र बाँधने का भाव है, वह भी बन्ध का कारण है और संसार है। ऐसे श्रुत के पारंगत आचार्य '**वदन्ति**' -कहते हैं। आहाहा! चिमनभाई! ऐसी बात है। आहाहा!

दूसरा बोल। जिसने निर्विकल्प शान्ति द्वारा... आहाहा! निज आत्मा का आनन्द **परमानन्द सुखरस उसके आस्वाद होने पर...** आहाहा! अपने को जाना, उसने जग को जाना। उसका दूसरा अर्थ। अपना निर्विकल्प आनन्द से जो निर्विकल्प आनन्द का सम्यग्दर्शन, ज्ञान में वेदन हुआ—आस्वादन हुआ। आहाहा! वह पुरुष **आस्वाद होने पर ज्ञानी पुरुष ऐसा जानता है, कि मेरा स्वरूप (तो) जुदा है,...** मैं आनन्दस्वरूपी, मेरा (स्वरूप) राग से, देह से सबसे भिन्न है। समझ में आया?

मुमुक्षु : देहत्याग....

पूज्य गुरुदेवश्री : देह तो कहीं रह गयी। यह तो राग से भिन्न। व्यवहाररत्नत्रय के राग से भिन्न। सुमनभाई से भिन्न? यह कहते हैं कि राग और शरीर से भिन्न तो सुमनभाई के पिता कहलाते हैं, वे भिन्न होंगे? आहाहा!

भगवान आत्मा... बापू! यह तो दसलक्षणी पर्व का पहला दिन है। और यह दिगम्बर में ही दसलक्षणी पर्व चलता है। दूसरे में है नहीं। दूसरे में सत्य मार्ग नहीं था तो उन्होंने कल्पना करके पंचमी बनायी और पंचमी से पहले सात दिन, ऐसा करके आठ दिन बनाये। स्थानकवासी का आज अन्तिम दिन है न? श्वेताम्बर की पंचमी माननेवालों को अन्तिम दिन है। चौथ माननेवालों के कल शनिवार को पूरा हो गया और अपने तो आज से शुरु होता है। समझ में आया? रविवार से मंगलवार। दस दिन है न? आहाहा! अन्तिम मंगल दिन है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, जिसने अपना आत्मा अन्तर से (जाना), शास्त्र से जाना वह नहीं,

ऐसा कहते हैं। सुनकर जाना वह भी नहीं। निर्विकल्प शान्ति द्वारा जिसने आत्मा का स्वाद जाना। आहाहा! पोपटभाई! यह अलकमलक की बातें नहीं। अगम्यगम्य की बात है। आहाहा! प्रभु! तेरा पंथ तो देख। तुझे तेरी कीमत नहीं और तेरे अतिरिक्त बाहर की कीमत में तुझे महत्ता आ गयी। या पुण्य परिणाम में या पुण्य के फल मिले, यह बाहर की धूल पाँच, पचास लाख की महत्ता। तूने तुझे खो डाला। समझ में आया? तेरे अतिरिक्त कोई भी विकल्प और बाह्य सामग्री की यदि महत्ता आयी तो उसने आत्मा का अनादर करके आत्मा की हिंसा की है। समझ में आया? आहाहा! क्या कहा, दूसरा बोल में?

पहले बोल में तो यह लिया कि जिसने आत्मा जाना, उसने बारह अंग को जाना। बारह अंग में कहना था, वह बारह अंग जान लिये। आहाहा! अब कहते हैं कि जिसने आत्मा के आनन्द का स्वाद जाना, उसने राग से, पर से सबसे भिन्न जाना, वह पर को जाना। समझ में आया? जिसने आत्मा का आनन्द निर्विकल्प समाधि से जान लिया... आहाहा! अर्थात् सम्यग्दृष्टि से अपना आत्मा पूर्णानन्द का स्वाद आया, उस आनन्द के स्वाद के अतिरिक्त दूसरी सभी चीज़ें भिन्न हैं, यह आत्मा जाना तो उससे सब भिन्न हैं, ऐसे सर्व को जाना। उसने सब जाना कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा... ऐसा कहा न? जिसने आत्मा जाना, उसने जग जाना। यह दूसरा बोल आया। आत्मा निर्विकल्प शान्ति—समाधि द्वारा अन्तर्मुख भगवान को जिसने जान लिया तो उसमें परमानन्द का स्वाद आया, तो परमानन्द के स्वाद से जो चीज़ भिन्न है, उन सबको जान लिया। आनन्द को जाना, उसने उससे भिन्न सबको जाना, ऐसा कहते हैं। अरे! टीका वह टीका। दिगम्बर सन्तों की शैली ही कोई अलौकिक है। साधारण प्राणी को तो वह पकड़ना कठिन पड़े। आहाहा! जिसे अपना जाना, क्या अपना? अन्दर में राग के विकल्प से रहित शान्ति—समाधि से आनन्द का स्वाद जिसे आया, उसे आनन्द का स्वाद, वह मैं हूँ और उसके अतिरिक्त विकल्प रागादि, दया, दान, व्रतादि हो, वे सब मुझसे भिन्न हैं, ऐसा ज्ञान हुआ। समझ में आया? आहाहा! कर्म मुझसे भिन्न, मेरे आनन्द से कर्म भिन्न; मेरे आनन्द से शरीर भिन्न; मेरे आनन्द से राग भिन्न; पुण्य का फल, वह मेरे आनन्द से भिन्न। चक्रवर्ती का राज मिला हो। जिसने आत्मा का आनन्द निर्विकल्प शान्ति से जान लिया, वह मैं, इसके अतिरिक्त सभी चीज़ें

पर हैं। उसने सब पर को जाना। अपने आनन्द को जाना, उसने सब पर को जाना। मुझसे सब पर भेद (भिन्न) हैं। आहाहा! समझ में आया? नटुभाई! वकालत जानी उसने सब जाना, ऐसा नहीं कहा। बड़े बैरिस्टर। रामजीभाई, देखो न! ३० वर्ष पहले कोर्ट में पाँच घण्टे जाते थे। दो सौ रुपये लेते थे, पहले सौ लेते थे, फिर दो सौ लेते थे। यह सब होशियार कहलाये न? नहीं?

यहाँ तो कहते हैं कि जिसने आत्मा जाना, उसने सब जाना। जग को जाना। वह सब जग है। आत्मा अन्दर निर्विकल्प विकल्प से रहित आनन्द का स्वाद जिसने लिया, उसने आनन्द से राग, शरीर, कर्म, देश, कुटुम्ब सब भिन्न हैं। एक को जाना तो उससे सब भिन्न हैं, उसे भी जाना। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : सबको जाना अर्थात्....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। पर है, इतना। मुझसे पर है, यह जाना। यह मैं आनन्दमय हूँ, तो उससे परचीज़ सब भिन्न है, ऐसा जाना। यहाँ आत्मा को जाना तो सबको जाना। सब अर्थात् ऐसे। न्याय में तो बात बैठती है। भाई! यह तो वीतरागमार्ग है, बापू! आहाहा!

त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि में आया हुआ यह मार्ग है। जिसे गणधर और इन्द्र सुनते थे, कुत्ती के बच्चे की तरह, सब गर्व-अभिमान छोड़कर, आहाहा! सभा में सौ-सौ इन्द्र, सिंह, बाघ, चक्रवर्ती, वासुदेव। वासुदेव हो तब चक्रवर्ती नहीं होते... बलदेव आदि भगवान के निकट (सुनते थे)। आहाहा! 'चिदानन्द भूपाल की राजधानी'। वीतराग की वाणी, सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि वाणी, वह चिदानन्द भूपाल—ज्ञानानन्द का भूपाल राजा आत्मा, उसकी वह वाणी राजधानी है। समझ में आया? यह उसमें आया है। स्तुति में आता है न! 'जिनादेश जाता...' 'प्रणव मंत्र' आहाहा! 'चिदानन्द भूपाल की राजधानी, नमो देवी वाकेश्वरी जैनवाणी।' आहाहा! 'चिदानन्द भूपाल की राजधानी, नमो देवी वाकेश्वरी...' वाक्... वाक्। वाघेश्वरी नहीं। उस सरस्वती को बाघ के ऊपर बैठाते हैं न! 'नमो देवी वाकेश्वरी...' वाक् की ईश्वरी। आहाहा! ऐसी वीतराग की वाणी, उसमें यह भाव आया। आहाहा! समझ में आया? ऐसे कथन सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं है। मुनि भी कहते हैं कि हम सर्वज्ञ को अनुसरकर कहते हैं। अपने अनुभव

से कहते हैं, परन्तु अभी पूर्ण प्रगट हुआ नहीं तो सर्वज्ञ अनुसार सब कहते हैं। आहाहा! इसलिए। है?

परमानन्द सुखरस उसके आस्वाद होने पर... आहाहा! निजात्मा के सम्यग्दर्शन द्वारा परमानन्द रस का **आस्वाद होने पर....** आहाहा! मैं आनन्दरसवाला हूँ और उससे रागादि से लेकर सब चीज़, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भी मुझसे भिन्न है। आहाहा! वह भी संसार है, जग है। आहाहा! समझ में आया? गजब वाणी! थोड़े में गागर में सागर भर दिया है। आहा! अरे! **मेरा स्वरूप जुदा है और देह, रागादिक मेरे से दूसरे हैं, मेरे नहीं हैं, इसलिए आत्मा के (अपने) जानने से सब भेद जाने जाते हैं...** आत्मा को जानने से सब भेद अर्थात् भिन्न चीज़ को जानने में आता है। आहाहा! एक मेरा भगवान आनन्दस्वरूप को जिसने जाना, उससे भिन्न जितनी चीज़ें हैं, आत्मा जाना तो सबको जाना। जग को जाना अर्थात् सबको जाना। आहाहा! समझ में आया? दो बोल हुए। दो बोल हुए न? चार बोल हैं। आचार्य आगे कहेंगे, यह व्याख्यान बड़े-बड़े आचार्यों को मान्य है। बाद की गाथा में आयेगा। १००-१००। यह व्याख्यान बड़े-बड़े आचार्यों, महासन्तों, कुन्दकुन्द आदि आचार्यों ने यह माना है। अमरचन्दभाई! आहाहा!

तीसरा बोला। **आत्मा श्रुतज्ञानरूप व्याप्तिज्ञान से...** अब जब आत्मा जाना, उसे श्रुतज्ञान उत्पन्न हुआ। भावश्रुतज्ञान। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु, चैतन्य के तेज का अम्बार, आहाहा! समझ में आया? चैतन्य के तेज का अम्बार प्रभु, जिसने निर्विकल्प दृष्टि द्वारा आत्मा को जाना, आहाहा! उसे श्रुतज्ञान में लोकालोक ज्ञात होता है, ऐसा कहते हैं, देखो! **श्रुतज्ञानरूप व्याप्तिज्ञान से सब लोकालोक को जानता है,...** आहाहा! **इसलिए आत्मा के जानने से सब जाना गया।** देखो! यह तीसरा बोल हुआ।

मुमुक्षु : व्याप्तिज्ञान अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्याप्ति अर्थात् यह ऐसे है तो ऐसा होना चाहिए, ऐसा। लोक ऐसा, अलोक ऐसा, पर के द्रव्य-गुण-पर्याय ऐसे। व्याप्ति अर्थात् तर्क से। यह कहना है। श्रुतज्ञान में तो तर्क होता है न भाई? मतिज्ञान में नहीं, श्रुतज्ञान में तर्क होता है। उस तर्क को यहाँ व्याप्ति कहा जाता है। तर्क द्वारा उसे पूरा लोकालोक ज्ञात होता है। आहाहा! समझ में आया? पहले दिन में ऐसा अधिकार आया। आहाहा! दसलक्षणी

पर्व अनादि का धर्म है। वह कोई नया नहीं। श्वेताम्बर में तो कल्पित नया किया है। आठ दिन... यह मार्ग दूसरा है, भाई! आहाहा!

कहते हैं, तर्क ज्ञान द्वारा **व्याप्तिज्ञान से सब लोकालोक को जानता है,...** आहाहा! तर्क द्वारा पूरे लोकालोक का ज्ञान होता है। आता है न? भाई! सर्वविशुद्धि। तर्क ज्ञान द्वारा सब जानते हैं। सर्वविशुद्धि में आता है। प्रवचनसार में पीछे चरणानुयोग (चूलिका) में। आहाहा! चारों ओर मिलान करो तो यह तो... आहाहा! सम्यग्दृष्टि तर्क द्वारा सर्वज्ञ ने जो कहा, उस सबका उसे ज्ञान होता है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : व्याप्तिज्ञान....

पूज्य गुरुदेवश्री : तर्क कहा न, तर्क। यह है, आत्मा है तो दूसरे जड़ हैं। यह ज्ञान है तो दूसरे अजीव हैं। पर्याय में अपूर्णता है तो किसी को पूर्णता है। ऐसे तर्क से पूरे लोकालोक का ज्ञान उसे हो जाता है। समझ में आया? आहाहा! जड़ है तो मैं भिन्न हूँ। मैं हूँ तो मुझसे जड़ भिन्न है। मैं चेतन हूँ तो दूसरे अचेतन हैं। मैं ज्ञायक हूँ तो राग, वह अचेतन है। आहाहा! समझ में आया? कितनी गाथा है चरणानुयोग (चूलिका) में? प्रवचनसार (गाथा) २३५।

प्रथम तो, आगम द्वारा सभी द्रव्य प्रमेय (ज्ञेय) होते हैं क्योंकि सर्व द्रव्य विस्पष्ट तर्कणा से अविरुद्ध है... यहाँ यह लेना। आहाहा! **(सर्व द्रव्य आगमानुसार जो विशेष स्पष्ट तर्क, उसके साथ मेलवाले हैं अर्थात् वे आगमानुसार विस्पष्ट विचार से ज्ञात हों, ऐसे हैं)।** आहाहा! २३५। '**आगमेन हि दृष्टा**' ऐसा है। आहाहा! यह छद्मस्थ मुनि की बात है, हों! केवली की नहीं। वह भी केवली की नहीं। आत्मा श्रुतज्ञान से ज्ञात हुआ, उस श्रुतज्ञान में तर्क से लोकालोक ऐसा है, ऐसा ज्ञात हुआ। समझ में आया? आहाहा! यह आत्मा जाना, उसने जग जाना, उसका यह तीसरा अर्थ। आत्मा जाना उसने जग जाना। अर्थात् विकल्प से लेकर सब चीज़ें लोकालोक का ज्ञान हुआ, वह जग का ज्ञान हुआ। आहाहा!

पहले ही पद्मनन्दि में ८०वीं गाथा गयी न, वहाँ गजब बात की। पश्चात् उत्तमक्षमा की बात की। आहाहा! ओहो! श्रुत के पारंगत, पारंगत—प्राप्त श्रुतकेवली। वे साधु ऐसा कहते हैं। अपना आत्मा आनन्दस्वभाव के अतिरिक्त जितने राग व्यवहार आदि होते हैं,

वह सब राग, व्यवहाररत्नत्रय बन्ध का कारण है। वह संसार है—ऐसा श्रुत के पारंगत सन्त कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आज यह पहला मांगलिक किया। आहाहा! दिगम्बर सन्तों की वाणी तो देखो! जिन्हें दुनिया की कुछ पड़ी नहीं। तुम ऐसा कहोगे कि व्यवहार संसार है। लोग चिल्लाहट मचायेंगे। चिल्लाहट मचाये तो उनके घर में रहे, मार्ग यह है। तेरे अशुभभाव और अशुभ का फल तो संसार, आहाहा! परन्तु तुझे समकिती को शुभभाव आवे, समकिती को, हों! अज्ञानी की बात नहीं, सम्यग्दृष्टि को जो शुभभाव है... आहाहा! श्रुत के पारंगत आचार्य, उसे संसार कहते हैं। कहो, गिरधरभाई! ऐसी बात है। आहाहा! तीसरा बोल हुआ। **इसलिए आत्मा के जानने से सब जाना गया।**

चौथा बोल। अब केवलज्ञान लेते हैं। **वीतरागनिर्विकल्प परमसमाधि के बल से केवलज्ञान को उत्पन्न (प्रगट) करके...** आहाहा! एक तो न्याय दिया कि पहले केवलज्ञान किस प्रकार उत्पन्न हुआ? फिर केवलज्ञान से जानना, यह प्रश्न बाद में। समझ में आया? आहाहा! **वीतरागनिर्विकल्प परमसमाधि के बल से केवलज्ञान को उत्पन्न करके...** व्यवहार से उत्पन्न करके, ऐसा नहीं लिया। आहाहा! भगवान अन्तर समाधि—शान्ति का सागर भगवान है। तो उसे आंशिक वीतरागी शान्ति से... आहाहा! जिसने केवलज्ञान प्रगट किया। आहाहा! आत्मा मुक्तस्वरूप है, अबन्धस्वरूप है। यह बाद में कहेंगे। आधार देंगे। समयसार की १५वीं गाथा का आधार देंगे। आहाहा! गजब किया है! परमात्मप्रकाश।

वीतरागनिर्विकल्प परमसमाधि के बल से... यह क्या कहा? अपने चिदानन्द भगवान की सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो वीतरागी पर्याय, उसके बल से केवलज्ञान प्रगट किया। कोई व्यवहार से केवलज्ञान प्रगट किया, (ऐसा नहीं)। आहाहा! है? वे बहियाँ लिखते, इसकी अपेक्षा यह अच्छा है।

मुमुक्षु : इसलिए तो यहाँ आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची। अरे! भाई! बापू! शरणभूत चीज़ कहाँ है? कैसी है? यह जाने बिना तूने क्या किया? और उसे जाना, उसने सब जाना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा को आनन्द की समाधि से जाना, वीतरागी पर्याय से वीतरागस्वभाव

ज्ञात हुआ, निर्विकल्प समाधि से निर्विकल्प समाधि स्वरूप ज्ञात हुआ... आहाहा! समझ में आया? उसने बारह अंग जाने, उसने अपना आनन्द जाना तो आनन्द से भिन्न सर्व चीज़ भिन्न है, ऐसा जाना, अपना आनन्द का ज्ञान—भान हुआ तो श्रुतज्ञान के तर्क से पूरे लोकालोक का ज्ञान हो गया। तर्क से। समझ में आया? और जब केवलज्ञान लेना है तो केवलज्ञान भी कैसे उत्पन्न हुआ, यह बाद में। आहाहा!

वीतरागनिर्विकल्प परमसमाधि के बल से केवलज्ञान को उत्पन्न (प्रगट) करके... ऐसा नहीं कहा कि व्यवहाररत्नत्रय से मोक्ष होगा, परम्परा होगा। अरे! भगवान! बापू! यह निकाला। पण्डित लोगों ने ऐसा अर्थ निकाला। समझ में आया? कहीं पोसाया नहीं, तो अब करना क्या? शास्त्र में व्यवहार को परम्परा कहा है। परन्तु किसे? किस प्रकार से? सम्यग्दृष्टि बिना मिथ्यादृष्टि को परम्परा कारण की बात है ही नहीं। क्योंकि नौवें ग्रैवेयक गया तो अनन्त बार ऐसा किया है। उससे परम्परा सम्यग्दर्शन हुआ नहीं तो मोक्ष तो कहाँ से होगा? आहाहा! ऐसे शुभ-व्यवहार से सम्यग्दर्शन नहीं होता तो मोक्ष तो कहाँ से होगा? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं... आहाहा! **केवलज्ञान को उत्पन्न (प्रगट) करके...** वीतराग अभेद परम शान्ति... शान्ति अकषायभाव, भगवान परम शान्ति अकषायभावस्वरूप, उसे परम अकषाय परिणति द्वारा जिसने जाना, उस बल द्वारा केवलज्ञान प्रगट किया। कोई तपस्या की और अपवास किये और ऐसा किया, इसलिए केवलज्ञान प्रगट हुआ, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? **केवलज्ञान को उत्पन्न (प्रगट) करके...** आहाहा! **जैसे दर्पण में घट पटादि पदार्थ झलकते हैं,...** दर्पण... दर्पण। झलकते हैं अर्थात् प्रतिबिम्ब अपनी पर्याय ऐसी होती है। दर्पण में सामने घट-पट हों, ऐसा आता है न उसमें? आहाहा! **उसी प्रकार ज्ञानरूपी दर्पण में सब लोक-अलोक भासते हैं।** आहा! उसमें तर्कज्ञान से भासित होता है, ऐसा कहा। यहाँ सीधा जानता है, ऐसा कहा। श्रुतज्ञान था न! आहाहा! समझ में आया?

अरे! भगवान वीतराग जिनवरदेव, उसके वीतरागी भाव और वीतरागी भाव से केवलज्ञान होता है। आहाहा! कोई व्रजनाराचसंहनन था तो केवलज्ञान हुआ, ऐसा यहाँ कहा? मनुष्यपना था तो केवलज्ञान हुआ? निर्विकल्प शान्ति—समाधि द्वारा केवलज्ञान

जिसने प्रगट किया, उस केवलज्ञान में, जैसे दर्पण में सभी पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं, केवलज्ञान में लोकालोक प्रतिबिम्बित होते हैं। यह एक जाना, उसने सर्व जाना। आहाहा! यह पैसा और....

मुमुक्षु : सब शास्त्रों का ताला (इसमें है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, हमारे सेठ प्रसन्न हो गये। यह सब मजदूरी के मुफ्त के काम करते थे। आहाहा!

एक आत्मा जाना, उसने जग जाना। आहाहा! पाठ है न? एक आत्मा जाना, उसने जग जाना। इसके चार अर्थ किये। जिसने आत्मा का अनुभवज्ञान किया, आहाहा! उसे बारह अंग का सार ज्ञात हुआ अथवा बारह अंग की सफलता हुई। आहाहा!

मुमुक्षु : अवलम्बन....

पूज्य गुरुदेवश्री : अवलम्बन आत्मा। सेठ! स्थानकवासी और मन्दिरमार्गी में विवाद है न? वह कहे, भगवान का अवलम्बन चाहिए, वह कहे अवलम्बन नहीं। अवलम्बन व्यवहार शुभभाव होता है, तब अवलम्बन कहा जाता है। प्रतिमा से शुभभाव होता है, ऐसा नहीं है। शुभभाव होता है, उसमें निमित्त कहते हैं, तो अवलम्बन... परन्तु है बन्ध का कारण। आहाहा! स्थानकवासी और श्वेताम्बर को बड़ा विवाद। वह कहे, अवलम्बन चाहिए, वह कहे अवलम्बन नहीं। किस अपेक्षा से अवलम्बन चाहिए? सुन तो सही, प्रभु! शुभभाव आता है। वह धर्म तो नहीं। जब अन्दर स्थिर नहीं रह सकता, तब अशुभ से बचने के लिये अस्थान का निषेध करने को भगवान की पूजा आदि का भाव आता है। यह भगवान है तो आता है, ऐसा भी नहीं है। यह सब भारी कठिन पड़े। समझ में आया?

ज्ञानरूपी दर्पण में सब लोक-अलोक भासते हैं। इससे यह बात निश्चय हुई कि आत्मा के जानने से सब जाना जाता है। चार बोल लिये। आहाहा! कहो, सुमनभाई! तुम आये और यह सब आया है, लो! आहाहा! हैरान हो जाये। फँस गया है। पूरा फँस गया है। आठ हजार का वेतन परन्तु सवेरे से शाम तक फुरसत नहीं। खाने को आने दे, बाकी वहीं की वहीं मजदूरी। तेरे आठ हजार और धूल... आहाहा! ऐसा उसका काम

करनेवाला व्यक्ति। वह भी पूरे दिन मजदूर की भाँति काम करता है, नौकरों को रोकता है। अरे! परन्तु दो-चार घण्टे निवृत्ति हो या नहीं दिन में? रात्रि में तो क्या? आहाहा! अरेरे! आत्मा का क्या कर्तव्य है? इसके लिए निवृत्ति मिलती नहीं और पाप करने में अवसर मिले, अरे! प्रभु! इसे कहाँ जाना? आहाहा! भाई! कोई शरण नहीं, कोई आधार नहीं। दुकान में चौबीस घण्टे। चौबीस घण्टे तो न हो, आठ-दस घण्टे। सवेरे से उठे पाँच बजे से रात्रि के दस बजे तक। आहाहा! सत्रह घण्टे फँसा है। ऐ... नटु! आहाहा! सात घण्टे रात्रि में सोने के लिये चाहिए। इसलिए हुआ, बाकी तो....

मुमुक्षु : उसमें इसकी व्यवस्था....

पूज्य गुरुदेवश्री : वापस उसकी व्यवस्था, लो ठीक! आहाहा! यहाँ हमको रात्रिचर्चा हो तो यह चलता हो स्वप्न में। नहीं, ऐसा है। तू कहता है ऐसा नहीं। नींद भी जरा कच्ची होती है न, उसमें अन्दर यह आता है। मोक्षमार्ग का यह है और अमुक यह है। इतना याद भी रहता नहीं। संक्षिप्त... मार्ग ऐसा नहीं है। आनन्द के नाथ को जगाना, वह मार्ग है। व्यवहार-फ्यवहार, वह मार्ग नहीं। वह और तर्क निकालता था। उसमें लिखा हो, वह सब लिखा हो। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ पर सारांश यह हुआ कि इन चारों व्याख्यानों का रहस्य जानकर... चारों व्याख्यानों का रहस्य जानकर। सारांश है न? **बाह्य अभ्यन्तर सब परिग्रह छोड़कर...** मुख्य तो मुनि की व्याख्या है न? बाह्य-वस्त्र आदि, अभ्यन्तर रागादि। सबको छोड़कर। आहाहा! मुनिपने की मुख्य व्याख्या है न! और क्षमा आदि मुनिपने की व्याख्या है न, भाई! दस बोल मुनिपने के हैं और मुनिपना किसे हो? जिसे आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए हों, उसकी उत्तमक्षमा की व्याख्या है। समझ में आया? यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन कैसे हो, उसकी खबर नहीं होती और उत्तमक्षमाधर्म उसे आ गया?

मुमुक्षु : तत्त्वार्थसूत्र....

पूज्य गुरुदेवश्री : तत्त्वार्थसूत्र यह है। तत्त्व में तत्त्व भगवान आत्मा है। आहाहा! उसे जाना, उसने नौ तत्त्व जाने। समझ में आया? है?

ऐसा ही कथन समयसार में... सब तरह से अपने शुद्धात्मा की भावना करनी

चाहिए। देखो! शुद्धात्मा की एकाग्रता करनी चाहिए, ऐसा कहते हैं। ध्येय उसके ऊपर लगा देना चाहिए। आहाहा! चारों का रहस्य **सब तरह से अपने शुद्धात्मा की भावना करनी चाहिए। ऐसा ही कथन समयसार में श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने किया है।** आहाहा! टीकाकार कुन्दकुन्दाचार्य का आधार लेकर कहते हैं। **'जो पस्सदि' इसका अर्थ यह है कि जो निकट-संसारी जीव...** आहाहा! जिसका संसार का अन्त नजदीक आ गया। संसार का अन्त नजदीक आ गया, संसार का अब किनारा आ गया। आहाहा! **जीव स्वसंवेदनज्ञानकर...** वह जीव अपना स्वसंवेदनज्ञान कर, अन्तर का वेदन-ज्ञान कर **अपने आत्मा को अनुभवता,...** है। १५ गाथा। **'जो पस्सदि अप्पाणं'** जो कोई अपने आत्मा को देखता है, कैसा? अबद्ध—राग से और निमित्त से बँधा हुआ नहीं, ऐसा भगवान अन्दर मुक्तानन्द प्रभु... आहाहा! समझ में आया? ऐसे आत्मा को देखता है। **'जो पस्सदि अप्पाणं'** जो कोई अपने को अबद्धस्पृष्ट, सामान्य, विशेष बिना और राग-द्वेष की ज्वाला बिना अकेले आनन्द के नाथ को जो अन्दर देखता है... आहाहा! है? वह **सम्यग्दृष्टिपने से अपने को देखता है....** आहाहा! है?

वह सब जैनशासन को देखता है,... यह जैनशासन। आहाहा! समझ में आया? जिसने भगवान आत्मा, अबद्धस्पृष्ट—बँधा हुआ नहीं, पर से स्पर्शित नहीं। अनन्य—अन्य-अन्य नहीं, ऐसा सामान्य, वह निश्चय और असंयुक्त—विकार से जिसको सम्बन्ध नहीं। त्रिकाली आनन्द के भाव से जिसे सम्बन्ध है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे आत्मा को जो जानता है, वह अपने को देखता है, वह समस्त जिनशासन को देखता है। आहाहा! **ऐसा जिनसूत्र में कहा है।** समयसार की १५वीं गाथा में कहा है। समझ में आया? आहाहा! इसके विशेष पाँच बोल हैं....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, भाद्र शुक्ल ७, मंगलवार
दिनांक-३१-०८-१९७६, गाथा-९९-१००, प्रवचन-७७

तीसरा दिन है। आर्जवधर्म। आर्जव अर्थात् सरलता, कपट रहितता। मूल तो यह धर्म मुख्यरूप से मुनि को होते हैं। जिसे अन्दर सम्यग्दर्शन हुआ हो, आत्मा पूर्ण अखण्ड आनन्दस्वरूप का अन्तर में राग के अवलम्बन बिना, त्रिकाली भगवान के अवलम्बन से निर्विकल्प अर्थात् अभेद वीतरागी दृष्टि होती है। उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? उस सम्यग्दृष्टि को जब चारित्र अन्दर स्वरूप की रमणता होती है, उसे रमणता अर्थात् चारित्र होता है, उसे आर्जवधर्म होता है। मिथ्यादृष्टि को आर्जव आदि साधारण होते हैं, मिथ्यात्वसहित पुण्य बँधेगा। समझ में आया? धर्म नहीं। धर्म तो जिसने अखण्ड आनन्द प्रभु... अब आयेगा, परमात्मप्रकाश में।

जिसने अपना आत्मा पूर्ण शुद्धात्मा, पूर्ण पवित्र आत्मा का अवलम्बन लेकर निश्चय सम्यग्दर्शन, आनन्द के अनुभवसहित जो प्रतीति होती है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान भी सच्चा नहीं और व्रत और चारित्र भी सच्चे नहीं होते। आहाहा! तो आर्जवधर्म क्या है, यह कहते हैं। श्लोक नहीं बोलते।

मन में जो बात होवे, उसी को वचन में प्रगट करना चाहिए, ऐसा न हो कि मन में कुछ दूसरा होवे तथा वचन से कुछ अन्य ही बोलें;... यह तो माया है। जैसा मन में हो, वैसा वाणी में कहे। वाणी तो होती है, यह तो सरलता बतलानी है न! दूसरा बोले। बोले वह तो वाणी है, परन्तु अन्दर में भाव दूसरा हो जाये, यह कहते हैं। **इसे आचार्य आर्जवधर्म कहते हैं। तथा मीठी बात करके दूसरे को ठगना,...** मीठी-मीठी बात करके दूसरे को ठगना, वह भी माया-कपट है। **इसको अधर्म कहते हैं।** मीठी बात करके दूसरे को ठगना, इसका नाम अधर्म है। **इनमें से आर्जव धर्म से तो स्वर्ग की प्राप्ति होती है...** इतना जरा लिया है। है तो धर्म चारित्र की पर्याय। आत्मा में आनन्दस्वरूप के अनुभव की भूमिका में जो स्वरूप की चारित्र-रमण दशा उत्पन्न हो, उसमें जो सरलता है, वह तो वास्तविक धर्म है, बन्ध का कारण नहीं। परन्तु उसके साथ जरा विकल्प रहता है, उसे यहाँ व्यवहार आर्जवधर्म कहकर स्वर्ग का कारण कहा है। आहाहा! समझ में

आया? **तथा अधर्म, नरक को ले जानेवाला होता है। इसलिए आर्जव धर्म के पालन करनेवाले भव्य जीवों को किसी के साथ माया से व्यवहार कदापि नहीं करना चाहिए।** आहा! दूसरी (गाथा)।

यदि एक बार भी किसी के साथ मायाचारी की जाये तो यह मायाचारी, बड़ी कठिनता से संचय किये हुए अहिंसा, सत्य आदि मुनियों के गुणों को फीका कर देती है अर्थात् वे गुण आदरणीय नहीं रह पाते। उस मायारूपी मकान में नाना प्रकार के क्रोधादि शत्रु छिपे हुए बैठे रहते हैं। आहाहा! **और उस मायाचार से उत्पन्न हुए पाप से जीव, नाना प्रकार के दुर्गति-मार्गों में भ्रमण करता रहता है। इसलिए मुनिगण...** मुनि की मुख्यता से (बात) है न! **मुनिगण मायाचार को अपने पास भी फटकने न देवें।** आहाहा! आर्जवधर्म तो अलौकिक है। मूल आर्जवधर्म है, वह बन्ध का कारण नहीं। परन्तु आर्जव के साथ जरा सरलता का विकल्प आ जाता है, उसका पुण्य बँध जाता है। समझ में आया? धर्म जो है, वह तो मोक्ष का कारण है, परन्तु साथ में जरा विकल्प है, वह बन्ध का कारण है। चलता अधिकार। ९९ गाथा चलती है न?

परमात्मप्रकाश। कहाँ गया परमात्मप्रकाश? ९९ गाथा, ९९। आहाहा! **ऐसा ही कथन समयसार में श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने किया है।** वहाँ है। **'जो पस्सदि अप्पाणं'** आहाहा! गाथा १५। समयसार की गाथा १५। परमात्मप्रकाश की गाथा ९९। उसमें आधार दिया है कि जो कोई निकट संसारी जीव... आहाहा! **स्वसंवेदनज्ञानकर अपने आत्मा को अनुभवता,...** है। आहाहा! शास्त्रज्ञान से भी नहीं। सुनने से भी नहीं। आहाहा! अपना भगवान अखण्डानन्द प्रभु अपना स्वसंवेदनज्ञान। स्व अर्थात् अपना, सं अर्थात् प्रत्यक्ष। अनुभूति प्रत्यक्ष आनन्द का वेदन, उससे निजात्मा को अनुभव करता है। आहाहा! यह बात है। यह जैनशासन है। समझ में आया? **सम्यग्दृष्टिपने से अपने को देखता है,...** आहाहा! अन्तर पूर्ण शुद्ध चैतन्य अभेद अपने सम्यग्दृष्टिपने से उसकी श्रद्धा करता है कहो या देखता है कहो। बहुत सूक्ष्म बात, भाई! समझ में आया? **वह सब जैनशासन को देखता है,...** उसने समस्त जैनशासन देखा। आहाहा! **ऐसा जिनसूत्र में कहा है।**

कैसा यह आत्मा है? रागादिक ज्ञानावरणादिक से रहित है,... ऐसी अन्तर में दृष्टि—अनुभव करना, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा तो शुभरागादि से रहित है और

कर्म से भी रहित है। आहाहा! ऐसे आत्मा को दृष्टि में लेना, ऐसे आत्मा को दृष्टि से देखना, दृष्टि से श्रद्धा करना। आहाहा! ऐसी बात है। है? **अन्यभाव जो नर-नारकादि पर्याय उनसे रहित हैं,...** नारकी, मनुष्य, देव आदि जो गति है, शरीर नहीं, गति की पर्याय है, उससे भी भगवान तो रहित है। अन्तर। आहाहा! देखो! यह सम्यग्दर्शन का विषय। सूक्ष्म बात, भाई! सम्यग्दर्शन... कल पूछते थे न? ध्यान किसका करना? यह ॐका और पंच परमेष्ठी का ध्यान करे तो राग है, धर्म नहीं। लाख, करोड़ अन्दर ॐ... ॐ (करे), पंच परमेष्ठी का ध्यान (करे)। णमो अरिहंताणं का ध्यान करे। सिद्ध का ध्यान करे। सब राग है। वह धर्मध्यान नहीं। आहाहा!

यहाँ तो भगवान पूर्णानन्द प्रभु अबद्धस्पृष्ट है। राग से और कर्म से बँधा हुआ नहीं। ऐसी चीज़ की अन्तर्दृष्टि करना और नारकी, मनुष्य आदि की जो पर्याय है, उस अन्य-अन्य पर्याय से भी भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? उसमें तीसरा बोल नहीं लिया। तीसरा बोल रह गया है इसमें। नियत-निश्चय है। उसकी पर्याय में षट्गुणहानिवृद्धि से जो ज्ञान की पर्याय होती है, उनसे रहित है। एकरूप निश्चल समुद्र भगवान आत्मा। आहाहा! उसे नियत कहते हैं। एकरूप त्रिकाल ज्ञायक आनन्दस्वरूप, जिसमें विशेष अवस्थायें जो हीनाधिक है, वह उसमें है नहीं। ऐसे आत्मा को अन्दर जानना, देखना, मानना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और उसका नाम जैनशासन है। आहाहा! समझ में आया?

चौथा बोल है। अविशेष है न? इसका स्पष्टीकरण किया है। वहाँ तो ऐसा है, ज्ञान, दर्शन, चारित्र गुण-धर्म विशेष हैं, वे भी उसमें नहीं। सामान्य एकरूप को अन्दर देखना। ओहोहो! यह मार्ग। देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का राग भी उसमें नहीं। पंच महाव्रत का राग भी आत्मा में नहीं। अरे! गुणभेद भी आत्मा में नहीं। और गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीवसमास आदि के भेद से भी रहित है। भगवान आत्मा में गुणस्थान, मार्गणास्थान के भेद भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? पाँचवाँ बोल रह गया है।

असंयुक्त। विकारी परिणाम से सहित नहीं। संक्षिप्त में अभ्यास किया है। तीन किये हैं, दो रह गये हैं। भगवान आत्मा, जैसे पानी अग्नि के सम्बन्ध में है तो उष्ण है। उसी प्रकार भगवान आत्मा कर्म के सम्बन्ध में है तो वहाँ दु:ख की पर्याय होती है। भगवान आत्मा दु:ख की पर्याय से रहित है। आहाहा! समझ में आया? यह वीतराग

इसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऐसा अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष, असंयुक्त—ऐसे आत्मा को अन्दर श्रद्धा करता है, अनुभव करता है, उसने पूरा जैनशासन देखा। आहाहा! ऊपर आया था न? यह आधार है न? चार बोल आये थे।

जिसने यह आत्मा अन्तर ज्ञानस्वरूप में वेदन से देखा, विकल्प को छोड़कर ज्ञान स्वभाव से सीधा देखा, माना, जाना, उसने बारह अंग का सार जाना। बारह अंग में कहना था, उसका सार जाना। और उसका बारह अंग का ज्ञान सफल हुआ। समझ में आया? चार बोल आये थे। दूसरा यह आया था, भगवान आत्मा राग से भिन्न, अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव, आनन्द से आत्मा को जाना कि आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। ऐसी वर्तमान पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद से आत्मा को जाना, उसने आनन्द के स्वाद से भिन्न रागादि, दया, दान विकल्पादि सब भेद को उसने यथार्थ जाना। जाना, हों! आहाहा! समझ में आया? जिसने आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लिया... आहाहा!

सम्यग्दर्शन में अतीन्द्रिय आत्मा के आनन्द का आंशिक स्वाद आता है। आहाहा! वह स्वाद जिसने लिया, उसने उस आनन्द के स्वाद से विपरीत विकल्पादि दुःखरूप है, वे सब भेद उसने यथार्थ जाने। आनन्द के साथ मिलान किया है कि राग दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम भी दुःखरूप है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बापू! बहुत सूक्ष्म, भाई! अभी तो मार्ग को नोंच डाला है। आहाहा! जिसने आनन्द को जाना... आहाहा! **परमानन्द सुखरस उसके आस्वाद होने पर...** जिसने भगवान आत्मा के सन्मुख होकर संयोगी निमित्त, राग और एक समय की पर्याय से विमुख होकर, अपने आनन्द का स्वाद जिसने लिया, उसने आनन्द के स्वाद से सब राग, दया, दान, विकल्प भी भिन्न है, अपने ज्ञान से भिन्न है, ऐसा भेदज्ञान किया। वह सब भेद उसे यथार्थ ज्ञान में आते हैं। समझ में आया? आहाहा! कठिन बातें, भाई! लोगों को कुछ न कुछ पण्डितों ने और मुनियों ने मनवा दिया है। अरे! बापू! मार्ग अलग, नाथ! आहाहा!

भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द से आत्मा छलाछल भरपूर है। जैसे तालाब पानी से भरा हो, समुद्र जैसे जल से भरा हो... आहाहा! उसी प्रकार भगवान अनाकुल अतीन्द्रिय आनन्द से पूरा छलाछल भरा है। उस पर एकाग्र होकर जिसने आनन्द का स्वाद लिया, उसने आनन्द से विपरीत जितनी चीज़ है, उन सब भेदों

का ज्ञान कर लिया। बराबर है? आहाहा! जिसने शक्कर का स्वाद लिया, उससे भिन्न जितनी कड़वी, खट्टी, मीठी चीज़ है, वह उससे भिन्न है, ऐसा ज्ञान हो गया। आहाहा! धर्मी को आत्मा के आनन्द के स्वाद के समक्ष व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प भी दुःखरूप भिन्न भासित होते हैं। ऐसा मार्ग है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसे यथार्थ पहिचान हुई। यह तो आनन्द है और यह रागादि है, इससे विरुद्ध दुःखरूप है। तो उसका यथार्थ भेदज्ञान हुआ। आनन्द से भिन्न का उसे यथार्थ ज्ञान हुआ। जिसने आनन्द के नाथ को आनन्द से देख लिया... आहाहा! उसे आनन्द से विपरीत भेद; भेद अर्थात् अनेक, उस भेद का यथार्थ ज्ञान उसे हुआ। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! दो बोल हुए न?

तीसरा बोल यह लिया था, जिसने अपने श्रुतज्ञान से आत्मा को जाना, भावश्रुतज्ञान, हों! द्रव्यश्रुत से तो ज्ञात नहीं होता। द्रव्यश्रुत जानता है परन्तु जो विकल्प उत्पन्न होता है, उससे भी ज्ञात नहीं होता। आहाहा! जिसने अपने आत्मा में मति, श्रुत, सम्यक् भावज्ञान से आत्मा को जान लिया, उसने श्रुतज्ञान के तर्क—व्याप्ति ज्ञान से लोकालोक जान लिया। जिसने अपना ज्ञान आत्मा श्रुतज्ञान से जाना, आनन्द के स्वाद के साथ श्रुतज्ञान से जाना, उसने तर्क से—व्याप्तिज्ञान से (लोकालोक जान लिये)। यह राग है, यह शरीर, वाणी अजीव है। मेरा स्वभाव नहीं, इसलिए अजीव है। यह दुःख है, मेरा आनन्द है, उससे भिन्न यह राग आस्रव है अथवा दुःख है। ऐसा यथार्थ ज्ञान लोकालोक के श्रुतज्ञान में आ जाता है, ऐसा कहते हैं। जिसने एक को जाना, उसने सर्व जाना, उसका अर्थ चलता है।

जिसने एक भगवान को जाना, उसने पूरे जगत को जाना। उस जगत को जानने में चार प्रकार किये। बारह अंग को जाना, वह जगत। आहाहा! आनन्द को जानने से दुःख आदि को पर जाना, वह जगत। आहाहा! और आत्मा को श्रुतज्ञान से जाना, तो श्रुतज्ञान के तर्क से लोकालोक को जाना, वह जगत। आहाहा! और जिसने आत्मा को अन्तर में जाना, उसे केवलज्ञान होता है तो केवलज्ञान से लोकालोक को जाना। न्याय समझ में आता है? भाषा तो सादी है, भाई! भाव तो है, वह है। आहाहा!

इन चार बोल की सिद्धि में यह दृष्टान्त दिया। समयसार का दृष्टान्त दिया। जिसने

भगवान आत्मा... जिसके अनन्त गुण हैं। संख्या से आकाश के प्रदेश से अनन्तगुणे। आकाश के प्रदेश हैं, लोकालोक, एक पॉईन्ट परमाणु जितने में रखें, उसे प्रदेश कहा जाता है। ऐसे अनन्त लोकालोक के आकाश के प्रदेश अनन्त हैं। उससे अनन्तगुणे एक आत्मा में गुण हैं। आहाहा! अरे! समझ में आया? ऐसे जो अनन्त गुण आत्मा में हैं... आहाहा! ऐसे अनन्त गुणरूप आत्मा को जिसने जाना, वह पर्याय में लोकालोक को जानता है। ऐसे आत्मा को जिसने जाना, उसने जैनशासन जाना। आहाहा!

जैनशासन का तात्पर्य तो वीतरागता है। आया न? पंचास्तिकाय, १७२ गाथा। सूत्रतात्पर्य तो प्रत्येक गाथा में कहा गया है। शास्त्रतात्पर्य तो वीतरागता है। आहाहा! चारों अनुयोग का तात्पर्य तो वीतरागता है। चारों अनुयोगों को जानकर भी अपने द्रव्य सन्मुख होकर आत्मा को नहीं जाना, उसने कुछ नहीं जाना। आहाहा! और जिसने भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अनन्त गुण का सागर, उसको जिसने जाना, उसने पूरा जैनशासन जाना। क्योंकि जैनशासन में यह कहना था। चारों अनुयोग में साररूप यह कहना था कि वीतरागपर्याय प्रगट कर। तो वीतरागपर्याय कब प्रगट होती है? त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से वीतराग पर्याय प्रगट होती है। पर के आश्रय से तो राग होता है। चाहे तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकर हो, उनकी भक्ति और उनके स्मरण से तो राग उत्पन्न होता है। आहाहा! ऐ... सेठ! आहाहा!

जिसने चार अनुयाग जाने, वह उसे कहा जाता है कि यह जाना उसने चार अनुयोग जाने, वह यथार्थ है। चार अनुयोग में कहना है वीतरागता; और वह वीतराग की पर्याय कैसे उत्पन्न हो? कि त्रिकाली भगवान के आश्रय से उत्पन्न होती है। तो चारों अनुयोग का सार, जिसने आत्मा जाना, उसने सब जाना। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कि चरणानुयोग में ऐसा है और करणानुयोग में ऐसा है, सब है परन्तु सार तो वीतरागता है। समझ में आया? वह वीतरागपर्याय कब प्रगट होती है? कि स्व का आश्रय करे तो वीतरागपर्याय प्रगट होती है। चारों अनुयोग में स्व का आश्रय करना, यह तात्पर्य है। दशरथलालजी! न्याय समझते है? आहाहा! क्या शैली! सन्तों की, दिगम्बर सन्तों की क्या शैली! चारों अनुयोग में तात्पर्य वीतरागता? आहाहा! यह अनुयोग पढ़ेगा तो उसमें ऐसा होगा। अरे! सुन न अब सब।

चारों अनुयोग का तात्पर्य तो प्रभु! भगवान आत्मा में स्व आश्रय करना कि जिससे वीतराग समकित प्रगट हो। चौथे गुणस्थान में समकित है, वह वीतराग समकित है। समझ में आया? समकित सराग और फराग, ऐसे भेद तो अपेक्षा से कथन है। चारित्रदोषसहित समकित कहे तो। समकित वस्तु तो वीतराग ही है। यहाँ क्या कहना है? चारों अनुयोग में तात्पर्यरूप से वीतरागता कही। और वह वीतरागता कब उत्पन्न होती है? कि चारों अनुयोग में यह कहने में आया है कि आत्मा परमात्मस्वरूप भगवान का आश्रय ले। कि जिससे तुझे शास्त्र का तात्पर्य जो वीतरागदशा, तुझे प्रगट होगी। आहाहा! गजब बात है, भाई! देव-गुरु-शास्त्र का आश्रय लेगा तो राग होगा, वह कहीं शास्त्र तात्पर्य नहीं है। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया?

चार अनुयोग में पर से पृथक् करके वाँचा, पढ़ा, वह राग हुआ। वह तो राग हुआ। समझ में आया? अथवा देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का राग, वह कहीं शास्त्र का तात्पर्य नहीं है। आहाहा! व्यवहार जो भाव है, वह कहीं शास्त्र का तात्पर्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव, गणधरों और सन्तों के बीच जो बात कहते हैं, वह यह बात है। आहाहा! पाँचवें काल के लिये दूसरा और चौथे काल के लिये दूसरा, ऐसा कोई मार्ग नहीं है। आहाहा!

ऐसे आत्मा के स्वरूप को जो देखता है, जानता है, अनुभवता है, वह सब जिनशासन का मर्म जाननेवाला है। आहाहा! अेगं जाणई, सव्वं जाणई, उसका यह स्पष्टीकरण है न? एक को जाना, उसने जग जाना। इसकी व्याख्या में यह आधार दिया कि भगवान कुन्दकुन्दाचार्य भी ऐसा कहते हैं। चारों ओर से विकल्प को समेटकर अपनी पर्याय जो परसन्मुख झुकती है, उसे समेटकर, आहाहा! भगवान तीन लोक का नाथ परमात्मा स्वयं है, उसके ऊपर पर्याय को जोड़ देना, यह शास्त्र का तात्पर्य है, शास्त्र को यह कहना है। समझ में आया? अमुक ने ऐसा कहा है और इस शास्त्र में यह कहा है, सबका कहने का यह है। लाख बात हो नहीं। छहढाला में आया नहीं? 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो, छोड़ी जगत द्वंद्व फंद....' द्वैतपने का विकल्प भी छोड़। आहाहा! छहढाला में भी गागर में सागर भर दिया है। पाठशाला में पढ़ाते हैं परन्तु अर्थ की खबर नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, पूरा जैनशासन जाना। आहाहा! वह चार बोल का आधार दिया न? चार में ऐसा कहा। आहाहा! परमात्मा पूर्ण परमात्मा का ज्ञान, अबद्धस्पृष्ट, नियत, अनन्य, अविशेष, असंयुक्त अर्थात् सामान्य। अकेला भगवाकन त्रिकाल सामान्य नित्य सदृश नित्य धातु, ऐसी नित्य चैतन्यधातु जिसने धार रखी है, ऐसा आत्मा, उस ओर जिसने झुकाव करके आत्मा को जाना, उसने पूरा जैनशासन जाना। ... कैसे है और ऐसे है, सबमें यह कहना है। समझ में आया? व्रत करना, ऐसी बात आती है न? यह तो कहते हैं, सुन न! वह व्रत के विकल्प का वापस सार क्या है? यदि वीतराग को जाना हो तो व्रत के विकल्प को व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो आ गया है।

जिसने आत्मा का आनन्द जाना, तो आनन्द के साथ रागादि व्यवहार का मिलान नहीं होता, समझे? तो उसने भेद को जाना। उसने भेद का ज्ञान जाना। आहाहा! वह भी वीतराग शासन जाना। वीतराग शासन क्या है? कि अपनी वीतरागी पर्याय प्रगट करके अपने को जाना, तो उससे भेद है, उसे भी जाना। बस, जाना। आहाहा! क्यों?—कि भगवान आत्मा स्व ज्ञ—स्वभावी है, सर्वज्ञस्वभावी प्रभु है। तो सबको जाननेवाला स्वभाव अपना अपने में है। सबको जानने का स्वभाव, पर की अपेक्षा बिना, पर की सत्ता है तो सबका जानना होता है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! अपना स्वभाव स्व-पर को जानने का, वह अपनी सामर्थ्य से प्रगट हुआ है। स्व-पर को जाननेवाला ऐसा आत्मा जगा, उसे जिसने यथार्थ जाना, उसने सब जाना। देव जाने, गुरु जाने, शास्त्र जाने, सब तात्पर्य इसमें आ गया। आहाहा! देव को यह कहना था, गुरु को यह कहना था, गुरु ने यह प्रगट किया था, शास्त्र को यह कहना है। आहाहा! समझ में आया? कहो, अमरचन्दभाई! बात तो सादी भाषा है, भाई!

मार्ग ऐसा है, बापू! लोग कुछ का कुछ करके जिन्दगी हार जायेंगे, बापू! आहाहा! यह करो, यह करो, व्यवहार करो। करते-करते होगा। यह व्यवहार का ज्ञान भी करते तो होगा नहीं, परन्तु व्यवहार से भिन्न पड़कर भगवान को जाने, तब व्यवहार का ज्ञान यथार्थ होता है। आहाहा! ज्ञान होता है, हों! क्योंकि स्वपरप्रकाशक ज्ञान का अपना स्वभाव है। स्वपरप्रकाशक आत्मा को जिसने जान, उसने स्व का ज्ञान और रागादि का ज्ञान, स्वपरप्रकाशक स्वयं से प्रगट हुआ तो उसने व्यवहार जाना। समझ में आया? कुछ समझ में आता है? यह तो गाथा ऐसी है न!

जिसने भगवान को जाना, भगवान यहाँ आत्मा को ही कहते हैं, हों! वे भगवान नहीं, वे भगवान उनके भगवान। आहाहा!

मुमुक्षु : मात्र जानना ही... जानना ही....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जानना, वह करना नहीं?

मुमुक्षु : दूसरा कुछ करना या नहीं करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा कौन करे? यह बात तो चलती है। जब अपने को शुद्ध चैतन्यघन आनन्द के स्वाद के साथ जान लिया तो उसे व्यवहार आदि है, उसका जानना हो गया। करना नहीं, जानना हो गया। आहाहा! चिमनभाई! समझ में आया? आहाहा! कहो, पद्मचन्दजी! मार्ग तो यह है। दुनिया चाहे जो करती हो, चाहे जो मानो। तीन लोक के नाथ अनन्त तीर्थंकरों ने, अनन्त केवलियों ने, यह भगवान आत्मा जाना, उन्होंने सब जाना, ऐसा सब भगवान कहते हैं। तो सब जानने में यह व्यवहार आ गया। आत्मा को जाना, उसने व्यवहार भी जाना। और जिसने आत्मा को नहीं जाना, उसे व्यवहार है ही नहीं। उसे तो व्यवहार को जानना भी नहीं रहता। पद्मचन्दजी! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! सेठियों को मानो वह पैसा खर्च करे तो धर्म हो जाये। शरीर के बलशाली बलवाले वह मानो कि अपवास करें तो धर्म हो जाये। मन के (बलशाली) बातें करने से धर्म हो जाये। तीनों खोटे हैं यहाँ तो। समझ में आया? आहाहा!

गाथा भारी, भाई! गाथा ही यह है न! '**जोइय अप्पें जाणिएण जगु जाणियउ हवेइ**' आहाहा! यह ९९ का धक्का है। वह नहीं कहते कुछ? वार्ता में आता है न? आहाहा! '**जोइय**' हे योगी! हे धर्मीजीव! ऐसे भगवान सम्बोधन करते हैं। जिसने भगवान आत्मा को जाना... आहाहा! वह '**जगु जाणियउ**' उसने पूरे जगत को जाना। पश्चात् जगत के चार बोल लिये। बारह अंग जाने, वह जगत में—पर में जाते हैं। आहाहा! निज स्वरूप जाना, उसने बारह अंग को जाना। निज स्वरूप जाना उसने आनन्दसहित जाना तो आनन्द से विपरीत चीज़ यह दुःख है, यह राग है, उसका भी ज्ञान हुआ। अज्ञानी का भेद और व्यवहार का ज्ञान भी यथार्थ नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? और अपने को जाना, उसने शास्त्रज्ञान द्वारा, सम्यग्ज्ञान द्वारा, श्रुतज्ञान द्वारा तर्क से लोकालोक को जाना। और जिसने अपने को जाना, उसे केवलज्ञान भी ज्ञात होता है, तो केवलज्ञान में

लोकालोक जानते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया कुछ? यह ९९ हुई। बहुत सरस आ गया, लो! आते-आते आया। आहाहा!

प्रभु! तुझे कहाँ जाना है? भाई! तेरे घर में गये बिना (छुटकारा नहीं)। तेरा घर तो अन्दर है। तेरा घर राग में नहीं, निमित्त में नहीं, पर्याय में नहीं। समझ में आया? भजन में भी नहीं आता? 'अब हम कबहुँ न निज घर आये, कबहुँ न निज घर आये रे, अब हम कबहुँ न निज घर आये।' पर्याय में रहे, राग में रहे, वह निजघर नहीं। आहाहा! जिसमें फर्नीचर—पूरे अनन्त गुण पड़े हैं, यह फर्नीचर तुम्हारे कहते हैं न? क्या कहते हैं? क्या कहा जाता है वह? फर्नीचर। कहा न? एक जगह शाम को आहार करने गये थे न? तो साढ़े पाँच लाख का तो फर्नीचर था। सर्वत्र चरण कराये। क्या कहलाता है तुम्हारे? मखमल... मखमल। मखमल की गलीचे और मखमल के... बड़े गृहस्थ व्यक्ति। पाँच करोड़। शाम को आहार करने गये थे तो सर्वत्र चरण कराये। ओहोहो! इसमें से निकलना कठिन पड़ेगा। आहाहा!

भगवान! जिस क्षेत्र—बँगले में रहता है, उस क्षेत्राकार वृत्ति हुई। बस, यह... यह। आहाहा! वह क्षेत्राकार वृत्ति पराधीन है। उसमें से तुझे निकलना कठिन पड़ेगा, प्रभु! जहाँ सोता हो, उस मकान में खिड़की ऐसी हो, हवा ऐसी (आवे)। ऊपर नीचे। पूरे दिन क्षेत्राकार वृत्ति हो गयी उसकी। निज आकार नहीं हुई। ऊपर पर्दा हो और या मच्छरदानी हो। दोनों ओर से खिड़की में से हवा आती हो। आहाहा! खाट हो और ऐसे देखे तो ऐसे दिखे। आहाहा! जो क्षेत्र पर है, उसके साथ तुझे कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! जिसे परक्षेत्राकार वृत्ति हुई, उसे उसमें से निकलना भारी मुश्किल। परद्रव्य के आकार वृत्ति हुई, उसमें से निकलना मुश्किल। परकाल के आकार आकृति हुई, परकाल, परद्रव्य की जो वर्तमान पर्याय है, वह परकाल है। उसकी आकृति हुई, उसे उसमें से निकलना कठिन। परभाव के आकार वृत्ति हुई। राग और द्वेष, पुण्य और पाप के भाव के आकार वृत्ति हुई। आहाहा! उसे परभाव के आकार हुई वृत्ति में से निकलना कठिन, प्रभु! तू तो उससे भिन्न है। आहाहा! कहो, रसिकभाई! ऐसा है यह। कलकत्ता में जिस मकान में रहते हों, मकान हो और जहाँ खिड़कियाँ और रंग से रंगे, घड़ी हो। आहाहा! प्रभु! क्या है यह? भाई! यह तो सब परपदार्थ। उस ओर के लक्ष्य से परआकृति वृत्ति हो, उसमें एकाकार हो जाये।

यहाँ तो परमात्मा जहाँ परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के आकार नहीं, परन्तु परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के जानने के स्वभाववाला जो है। समझ में आया? आहाहा! भाव आ गया। कोई शब्द गुजराती आ जाता है। आहाहा! उसने समस्त जिनशासन जाना। आहाहा! ऐसा कहने से यह भी आया कि जिसने आत्मा निश्चय स्वभाव अभेद जाना, उसे व्यवहार का जानना होता है। अज्ञानी को व्यवहार का जानना (यथार्थ होता नहीं)। देखो! न्याय तो देखो! ओहोहो! ११ और १२ गाथा, भाई! ग्यारहवीं भूतार्थ, बारहवीं व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान। सर्वत्र चारों ओर एक की एक बातें। आहाहा! गजब बात है। दिगम्बर सन्तों ने जगत को पूरा मोक्षमार्ग दिया है। केवलज्ञान के पथानुगामी, उनकी शैली देखो तो कहीं पूर्वापर विरोधरहित। आहाहा!

कहते हैं, ११वीं गाथा में ऐसा कहा कि जिसने भूतार्थ को जाना, वह यह जैनशासन जाना। अबद्धस्पृष्ट कहो या भूतार्थ कहो। त्रिकाली भगवान महासत्ता प्रभु की, उसके आश्रय से जिसे सम्यग्दर्शन हुआ, वह तो निश्चय हुआ। परन्तु उसे अभी रागादि है न! कि रागादि है, वह व्यवहार उसे जाननेयोग्य हो गया। आदरनेयोग्य तो भगवान ही एक रहा। रागादि आते हैं, उसे व्यवहार का यथार्थ ज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : भूतार्थ के आश्रय से अभूतार्थ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभूतार्थ ज्ञात हुआ। भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ, पश्चात् अभूतार्थ जो रागादि बाकी है, उसे उस समय जानता है। जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहा! गजब बात करते हैं न! यह भाषा साधारण नहीं, भाई! आहाहा! यह यहाँ कहते हैं। जिसने भगवान आत्मा को जाना, उसे आनन्द से विपरीत भिन्न चीज़ है, उसका यथार्थ ज्ञान होता है। समझ में आया? लो, यह ९९ हुई। इतना आया थोड़ा अन्दर से। आहा! क्योंकि चार बोल तो उन्होंने डाले हैं और पाँचवाँ बोल कुन्दकुन्दाचार्य का आधार दिया। **'अप्पँ जाणिएण'** आहाहा! जाननेवाले को जाना नहीं और बाकी सिरपच्ची (की)। देखनेवाले को देखा नहीं और सिरपच्ची करे। आहाहा!

गाथा - १००

अथैवदेव समर्थयति -

१००) अप्प-सहावि परिट्ठियह एहउ होइ विसेसु।
दीसइ अप्प-सहावि लहु लोयालोउ असेसु।।१००।।

आत्मस्वभावे प्रतिष्ठितानां एष भवति विशेषः।
दृश्यते आत्मस्वभावे लघु लोकालोकः अशेषः।।१००।।

अप्पसहावि परिट्ठियहं आत्मस्वभावे प्रतिष्ठितानां पुरुषाणां, एहउ होइ विसेसु एष प्रत्यक्षीभूतो विशेषो भवति। एष कः। दीसइ अप्पसहावि लहु दृश्यते परमात्मस्वभावे स्थितानां लघु शीघ्रम्। अथवा पाठान्तरं 'दीसइ अप्पसहाउ लहु'। दृश्यते, स कः, आत्मस्वभावः कर्मतापन्नो, लघु शीघ्रम्। न केवलमात्मस्वभावो दृश्यते लोयालोउ असेसु लोकालोकस्वरूप-मप्यशेषं दृश्यत इति। अत्र विशेषण पूर्वसूत्रोक्तमेव व्याख्यानचतुष्टयं ज्ञातव्यं यस्मात्तस्यैव वृद्धमतसंवादरूपत्वादिति भावार्थः।।१००।।

अब इसी बात का समर्थन (दृढ़) करते हैं -

निज स्वभाव में लीन पुरुष को व्यक्त ज्ञान में यही विशेष।
सकल लोक एवं अलोक भी उन्हें तुरत ही दिखता है।।१००।।

अन्वयार्थ :- [आत्मस्वभावे] आत्मा के स्वभाव में [प्रतिष्ठितानां] लीन हुए पुरुषों के [एष विशेषः भवति] प्रत्यक्ष में जो यह विशेषता होती है, कि [आत्मस्वभावे] आत्मस्वभाव में उनको [अशेषः लोकालोकः] समस्त लोकालोक [लघु] शीघ्र ही [दृश्यते] दिख जाता है।

भावार्थ :- अथवा इस जगह ऐसा भी पाठांतर है, 'अप्पसहाव लहु' इसका अर्थ यह हैं, कि अपना स्वभाव शीघ्र दिख जाता है, और स्वभाव के देखने से समस्त लोक भी दिखता है। यहाँ पर भी विशेष करके पूर्व सूत्रकथित चारों तरह का व्याख्यान जानना चाहिये, क्योंकि यही व्याख्यान बड़े-बड़े आचार्यों ने माना है।।१००।।

गाथा-१०० पर प्रवचन

१००वीं गाथा। १०० है न?

१००) अप्प-सहावि परिट्ठियह एहउ होइ विसेसु।
दीसइ अप्प-सहावि लहु लोयालोउ असेसु॥१००॥

आहाहा! **आगे इसी बात का समर्थन (दृढ़) करते हैं :—**

अन्वयार्थः—आत्मा के स्वभाव में लीन हुए पुरुषों के प्रत्यक्ष में जो यह विशेषता होती है,... क्या कहते हैं? भगवान ज्ञानस्वभावी आनन्द प्रभु, उसे जिसने राग के विकल्प से रहित जान लिया। राग के विकल्प से रहित जाना और उस राग के विकल्प से रहित आत्मा है, उसे जाना। क्या कहा यह? राग के विकल्प से रहित जाना, पर्याय सहित। वह राग के विकल्प से रहित। उस पर्याय ने राग के विकल्प से रहित त्रिकाली है, उसे जाना। आहाहा! **प्रत्यक्ष में जो यह विशेषता है, कि आत्मस्वभाव में उनको समस्त लोकालोक शीघ्र ही दिख जाता है।** आहाहा! यह तो 'ऐगं जाणई सव्वं जाणई' इसका यह विस्तार है। आचारांग में यह शब्द है। उसमें यह शब्द आ गया इतना। श्रीमद् की पुस्तक में मुख्य में डाले यह। 'जे ऐगं जाणई सव्वं जाणई'। श्रीमद् की पुस्तक में (डालते हैं), वह आचारांग का टुकड़ा है और अपने 'ऐगं जाणई सव्वं जाणई', प्रवचनसार की ४८-४९ गाथा है। भाई! ४८-४९। उस समय सब थे न? हुकमीचन्द सेठ और भाई बंसीधरजी पण्डित। तब यह प्रवचनसार की ४८-४९ (गाथा) चलती थी। उसमें यह आया था, 'ऐगं जाणई सव्वं जाणई।' उसमें यह है। प्रवचनसार दिव्यध्वनि का सार। आहाहा! है न भाई उसमें? आत्मा जाना, उसने सब जाना। आहाहा! वह लोक का नाथ...

लोकालोक को जानने की तो एक समय की पर्याय है। एक समय की पर्याय में लोकालोक जानता है। एक समय की लोकालोक जाननेवाली पर्याय माने, तब तो एक पर्याय में लोकालोक जाना, ऐसा आ जाता है। यह तो अभी पर्याय को माने। आहाहा! क्या कहा? एक समय की जो ज्ञान की पर्याय जीव की है, उसमें लोकालोक जानने की सामर्थ्य से लोकालोक जानता है। पर्याय में ऐसा ही है। आहाहा! जैसे १७-१८ गाथा में

कहा न? समयसार। भगवान आत्मा ज्ञान की एक समय की पर्याय में, उस पर्याय में द्रव्य ही अनुभव में आता है। अज्ञानी को भी अनादि से। आहाहा! १७-१८ गाथा। मुम्बई में बहुत स्पष्टीकरण हुआ। मुम्बई में तो बहुत लोग। दस-दस हजार। रविवार को तेरह हजार, दूज (वैशाख शुक्ल दूज जन्मजयन्ती) के दिन पन्द्रह हजार। बहुत लोग। अन्त में तो दूज थी न? वैशाख शुक्ल-दो। जन्मदिन था और गाँव में शिवाजी का जन्मदिन था। इसलिए दुकानें बन्द रखकर लोग देखने आये थे। सोलह तक जाते। पन्द्रह हजार तो सही। पन्द्रह हजार लोग। मार्ग यह है, बापू! आहाहा!

क्या कहा? कि एक समय की पर्याय में लोकालोक जानने की सामर्थ्य है और एक समय की पर्याय में द्रव्य को जानने की सामर्थ्य है। क्या कहा यह? चाहे तो श्रुतज्ञान की पर्याय हो, परन्तु उस पर्याय में द्रव्य ही ज्ञात होता है। अनादि ज्ञान की पर्याय में द्रव्य ज्ञात होता है, परन्तु अज्ञानी की दृष्टि उसके ऊपर नहीं है। अज्ञानी की दृष्टि पर्याय और राग के ऊपर है। आहाहा! समझ में आया? आज तो अब यहाँ परप्रकाशक मिलाना है। जिसकी ज्ञानपर्याय है, उसमें भगवान ऐसा कहते हैं कि द्रव्य ही अनुभव में आता है। क्योंकि पर्याय का स्वपरप्रकाशक स्वभाव है। इस कारण से ज्ञान की पर्याय में द्रव्य ही अनुभव में आता है। परन्तु अज्ञानी की दृष्टि द्रव्य के ऊपर नहीं है, इसलिए उसे द्रव्य अनुभव में आता है, इसकी खबर नहीं। उसकी पर्याय पर दृष्टि और राग पर दृष्टि होने से स्व ज्ञात होता है, उसका ख्याल ही नहीं। ठीक! आहाहा!

ठीक, अब यहाँ कहते हैं, यहाँ तो दूसरा कहना था कि एक समय की पर्याय की लोकालोक जानने की सामर्थ्य है। वह पर्याय अपने को जानती है, ऐसा उसका स्वभाव है, कहते हैं। आहाहा! परन्तु उस पर्याय की दृष्टि द्रव्य के ऊपर नहीं है। द्रव्य, पर्याय में ज्ञात होता है। शक्ति तो ऐसी है। परन्तु दृष्टि उसके ऊपर नहीं, इसलिए द्रव्य ज्ञात होता है, वह ख्याल में नहीं आता। आहाहा! ऐसी बात तो देखो! आहाहा! अमृत बरसता है भगवान की वाणी में तो। भगवान ने तो अमृत बरसाया है, भाई! आहाहा! सन्तों ने— कुन्दकुन्दाचार्य आदि... आहाहा! थोड़ी बात में कितना समाहित कर दिया है!

यहाँ कहते हैं कि अपने को जाना, उसने लोकालोक जाना। है? अब जिसे पर्याय में आत्मा ज्ञात होता है, ऐसी जो द्रव्य पर दृष्टि हो तो द्रव्य को जाना और पर्याय में सामर्थ्य इतनी है, लोकालोक को जानता है। उस पर्याय में स्वपरप्रकाशक भाव आ

गया। जानना, वह आ गया। वह तो भगवान ज्ञानस्वरूप है। सर्वज्ञस्वभावी पदार्थ है। आहाहा! समझ में आया? यह और कहाँ से निकला ऐसा, लो! आहाहा! और वह द्रव्य को जाने, उसकी पर्याय की सामर्थ्य लोकालोक को जाने, वह तो है ही। परप्रकाशक तो पर्याय में है ही, परन्तु पर्याय में स्वप्रकाशक है, इसकी उसे खबर नहीं। समझ में आया? कहो, चेतनजी! आहाहा! भगवान का सन्देश देते हैं। आहाहा!

यह पर्याय में स्वपरप्रकाशक स्वभाव है, वह कब ज्ञात हो? कि द्रव्य को जाने, तब पर्याय के स्वपरप्रकाशक स्वभाव का ज्ञान उसे होता है। समझ में आया? ज्ञान का स्वभाव स्वपरप्रकाशक है। तो भगवान सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है। तो सर्वज्ञस्वभावी का अर्थ त्रिकाल स्वपरप्रकाशक जिसका स्वभाव। स्वपरप्रकाशक उसका त्रिकाली ध्रुव स्वभाव। यह नियमसार में आता है न? भाई! त्रिकाली ज्ञानस्वभाव स्व को जानता है, वह त्रिकाली शक्तिरूप से। नियमसार में आता है। आहाहा! त्रिकाली ध्रुव जो ज्ञान, दर्शन, वह त्रिकाली को जानता है, ऐसा वहाँ लिया है। स्वभाव है न उसका? आहाहा! द्रव्यस्वभाव जो त्रिकाली है, ज्ञान-दर्शन, वह त्रिकाली, त्रिकाली को जानता-देखता है, ऐसी वह चीज़ है। वह त्रिकाली जाने-देखे, ऐसी शक्ति ही उसकी है। समझ में आया? परन्तु वह चीज़ ऐसी है, उसकी प्रतीति करनेवाली पर्याय है। आहाहा! समझ में आया?

वस्तु जो है, वह ज्ञान-दर्शनमय है। ज्ञान-दर्शन स्व-पर पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण को जाने, वही उसका स्वभाव है। स्वभाव में नया करना, वह नहीं। त्रिकाल जाने, ऐसा ही उसका स्वभाव है। आहाहा! वह त्रिकाल जाने, ऐसा उसका स्वभाव है, ऐसी प्रतीति कौन करता है? उसका ज्ञान कौन करता है? वह तो पर्याय करती है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! वह त्रिकाली आत्मा ज्ञान-दर्शनरूप, वह त्रिकाल को जानता-देखता ही है। वही उसका त्रिकाली स्वभाव है। अब वह त्रिकाली ज्ञान-दर्शन त्रिकाली को जानता-देखता है, वह तो ध्रुव की बात हुई। परन्तु यह ध्रुव ऐसा है, ऐसा निर्णय किसने किया? वह तो जाननेवाली पर्याय ने किया। आहाहा! मार्ग तो बापू! बहुत अलौकिक है और यह दिगम्बर जैनदर्शन... आहाहा! दूसरे को दुःख लगे, न लगे, सत्य यह है, प्रभु! आत्मा पुकार करके कहता है। आहाहा!

क्या कहा अपने? देखो! **आत्मा के स्वभाव में लीन हुए पुरुषों के प्रत्यक्ष में जो यह विशेषता होती है, कि आत्मस्वभाव में उनको समस्त लोकालोक शीघ्र ही दिख**

जाता है। आहाहा! यह १००वीं गाथा चलती है। अर्थात् जिसने आत्मस्वभाव जान लिया, जाना तो उसके स्वभाव की जो पर्याय प्रगट हुई, उसमें लोकालोक जानने की पर्याय ख्याल में आ गयी। लोकालोक को जानती है, ऐसा व्यवहार का ख्याल तो निश्चय जाना तो आया, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा... आहाहा!

प्रभु! आहा! भरतक्षेत्र में तेरा विरह पड़ा। यह वाणी वहाँ से कुन्दकुन्दाचार्य लाये। आहाहा! देखो! यह कुन्दकुन्दाचार्य। दर्शनसार में है। देवसेनाचार्य कहते हैं, प्रभु! कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में से आप यह बात न लाते तो हम मुनिधर्म कैसे प्राप्त करते? आहाहा! देवसेनाचार्य ने दर्शनसार में पाठ लिया है। पद्मनन्दिनाथ! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के पाँच नाम हैं न? वहाँ महाविदेह में जाकर यह न लाये होते तो हम मुनिधर्म किस प्रकार प्राप्त करते? आहाहा! समझ में आया? अब यह महाविदेह की कपोलकल्पित बात करते हैं। अरे! भगवान! बापू! विद्यानन्दजी दिल्ली में ऐसा कहते हैं कि महाविदेह में गये थे, यह बात कपोलकल्पित है। ऐ श्रीपालजी! सुना है या नहीं? क्या कहते हैं? समाचारपत्र में आया है कि यह कपोलकल्पित है। अरे! प्रभु! तुझे शास्त्र की खबर नहीं। पंचास्तिकाय की जयसेनाचार्य की संस्कृत टीका में है। महाविदेह में गये थे, यहाँ आकर (शास्त्र) बनाये। पाठ है। और षट्पाहुड़ की टीका में अन्त में है। यह दर्शनसार में देवसेनाचार्य का पाठ है। समझ में आया? बात यह कि यहाँ से (सोनगढ़ से) बात बहुत आयी है कि महाविदेह में गये थे, इसलिए इस बात को मिथ्या करने को (ऐसा कहते हैं)। अरे! भगवान! क्या करता है यह? अरे! प्रभु! क्या करता है? भाई! यह चम्पाबहिन को असंख्य अरब वर्ष का जातिस्मरण है और सम्यक्त्व है, यह बात अब उन्हें मिथ्या करनी है। उससे महाविदेह में गये हैं और वह सब यहाँ से निकला है। अरे! भगवान! अरे! प्रभु! तुझे शोभा नहीं देता, भाई! आहाहा! भगवान! यह शैली तो देखो! कहाँ से आती है अन्दर से! समझ में आया?

कहते हैं, जिसने आत्मा जाना... है न? आत्मस्वभाव को जाना, उसे लोकालोक भी ज्ञात हो गया। आहाहा! यह उसकी विशेषता है, ऐसा कहते हैं। है न? देखो! **आत्मा के स्वभाव में लीन हुए पुरुषों के प्रत्यक्ष में जो यह विशेषता होती है, कि आत्मस्वभाव में उनको समस्त लोकालोक शीघ्र ही दिख जाता है।** भाई! यह लिया। इसकी विशेषता है न! १०० गाथा। आहाहा! विशेष आयेगा, लो.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, भाद्र शुक्ल ८, बुधवार
दिनांक-०१-०९-१९७६, गाथा-१००-१०१, प्रवचन-७८

दसलक्षणी पर्व का आज चौथा दिन है। सत्य का दिन है, सत्य। आचार्य सत्यधर्म का वर्णन करते हैं। मुनि कैसे होते हैं? यह मुनि की व्याख्या है। जिसे निज आनन्दस्वरूप भगवान अनुभव में सम्यग्दर्शन में आया हो, तदुपरान्त अपने में रमणता आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द में रमणता प्रगट हुई हो, उसका नाम चारित्र और मुनिपना कहते हैं। उस मुनि को सत्यधर्म होता है। मुनि की व्याख्या है न? जब तक राग से धर्म मानता है, पुण्य से क्रियाकाण्ड से मुझे धर्म होगा, तब तक तो वह मिथ्यादृष्टि है और सम्यग्दृष्टि नहीं। उसमें चारित्र तो नहीं तो उसे सत्यधर्म है नहीं। समझ में आया? यह कहते हैं।

उत्कृष्ट ज्ञान को धारण करनेवाले मुनियों... अर्थात् अपना जो शुद्ध ज्ञायकभाव चैतन्यसूर्य, ऐसे ज्ञान को धारण करनेवाले मुनि होते हैं। कहो, सेठ! अपना एक समय में ज्ञायकभाव चैतन्यसूर्य, चैतन्य के तेज का अम्बार, प्रकाश का पूर प्रभु, आहा! ऐसे **उत्कृष्ट ज्ञान को धारण करनेवाले...** मुनि उसे कहते हैं और समकिती भी उसे कहते हैं। अपना ज्ञायकभाव पुण्य-पाप की क्रिया से भिन्न, देह की क्रिया से भिन्न, ऐसा भगवान आत्मा महाचैतन्य की सत्ता स्वभाव स्वरूप को दृष्टि में, ज्ञान में धारण करनेवाला... आहाहा! **प्रथम तो बोलना ही नहीं चाहिए...** कहते हैं। बोलना, वह जड़ की क्रिया और बोलने में विकल्प उठता है। सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया? **यदि बोले तो ऐसा (वचन) बोलना चाहिए, जो समस्त प्राणियों का हित करनेवाला हो,...** समस्त प्राणी में अपना भी आत्मा प्राणी है। हित करनेवाला। अपना आनन्दस्वभाव भगवान की दृष्टि करो, स्थिरता करो, यह सत्य वचन है। समझ में आया? निमित्त से पर में कुछ होता है और व्यवहार क्रियाकाण्ड से आत्मा में धर्म होता है, यह सब मिथ्या मान्यता और झूठे वचन हैं। सूक्ष्म बात, बापू!

मुमुक्षु : यह तो मुनियों की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनियों की बात मुख्य है, परन्तु गृहस्थ को उसकी श्रद्धा करनी

पड़े न! मुनि ऐसे होते हैं, ऐसी उसकी श्रद्धा तो करनी पड़े न! दसलक्षणी पर्व, वे मुनि के हैं। उत्तमक्षमा आदि सम्यग्दृष्टिसहित अपने आनन्द के अनुभव के वेदनसहित स्वरूप के आनन्द में जिसकी रमणता अर्थात् चारित्र अर्थात् चरना जम गया है, उसे यह दसलक्षणी पर्व की आराधना है। चारित्र है न यह तो। समझ में आया? उत्तमक्षमा आदि चारित्र के दस बोल हैं। चारित्र किसे होता है? जिसे अपना उत्कृष्ट ज्ञान भगवान पूर्णानन्द प्रभु... यह उत्कृष्ट का अर्थ किया। आहाहा! चैतन्य शरीर, वाणी से तो भिन्न, पुण्य-पाप के विकल्प, दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प से भी भिन्न, ऐसा उत्कृष्ट चैतन्य का तेज, जिसे ज्ञायकभाव कहते हैं, ऐसे मुनियों ने ऐसे आत्मा को धारण किया है। आहाहा! राग को धारण किया, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

शास्त्रकार मुनि तो उसे कहते हैं कि जिसने शुद्धोपयोग धारण किया है। इसके ऊपर से लक्ष्य गया। क्या कहा? यह पंच महाव्रत आदि है, वह तो शुभराग है, आस्रव है। वह कोई धर्म नहीं। जिसने पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव से भिन्न शुद्ध स्वरूप जो भगवान पूर्णानन्द प्रकाश का पुंज प्रभु, उसकी ओर का उपयोग अर्थात् आचरण का शुद्ध व्यापार, वह शुद्ध उपयोग मुनिपना है। यह बात यहाँ कहते हैं।

ऐसे मुनि को पहले तो बोलना नहीं चाहिए। बोले तो सर्व प्राणी को हित करनेवाला हो, परिमित हो, मर्यादित हो। आहाहा! बहुत बकवास करना, ऐसा करना, देशसेवा करो, वह सब मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? पर की दया पाल सकता है, ऐसा मानना भी मिथ्यात्व है। यह बन्ध अधिकार में कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य (ने कहा है)। आहाहा! मैं पर का कर सकता हूँ और पर को सुखी कर सकता हूँ, ऐसी भाषा और प्ररूपणा मिथ्यादृष्टि की है। वह जैन की नहीं, जैन साधु की नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग दुनिया ने सुना नहीं। **अमृत के समान प्रिय हो...** आहाहा! है? अपना आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु, अमृत का पिण्ड वह तो आत्मा है। आहाहा! पुण्य-पाप के भाव जहर हैं। अरे! गजब बात, नाथ! शुभभाव जो व्रत के हैं, वह विषकुम्भ है। समयसार, मोक्ष अधिकार में कहा है। यह प्रभु आत्मा अमृतकुम्भ है। आहाहा! अरे! यह क्या चीज़!

अविकारी वीतरागी रस का पिण्ड प्रभु आत्मा अमृतरस है। उसकी वाणी में अमृत आना चाहिए, ऐसा कहते हैं। **अमृत के समान प्रिय हो...** आहा! **सर्वथा सत्य हो,...**

सर्वथा सत्य हो। कथंचित् सत्य और कथंचित् असत्य, ऐसा नहीं। आहाहा! **जो वचन, जीवों को पीड़ा देनेवाला और कड़वा हो, उस वचन की अपेक्षा मौन साधना ही अच्छा है।** सत्य वचन बोलनेवाला, सत्यव्रत को पालनेवाला, समकितसहित की बात है, हों! अकेला सत्यव्रत नहीं। पंच महाव्रत के परिणाम तो अभव्य को भी अनन्त बार हो गये और नौवें ग्रैवेयक गया, उन सबको (हो गये)। महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण तो अनन्त बार हो गये, वह तो राग है, आस्रव है। उस आस्रवतत्त्व से रहित जो कुछ सत्यस्वरूप भगवान आत्मा की प्रतीति और रमणता में सत्य की—चारित्र की रमणता सहित सत्यव्रत हो। **सत्यव्रत के पालन करने से ही वह समस्त व्रतों का पालन करनेवाला होता है।** परम सत्य।

एक श्लोक तो सम्प्रदाय में था, याद नहीं था। 'समकितनुं मूल जाणी...' यह गुजराती है। पहले सम्प्रदाय में चलता था। 'समकितनुं मूल जाणिये सत्यवचन साक्षात्, साचामां समकित वसे, मायामां मिथ्यात्व।' मूलचन्दभाई! यह बात सम्प्रदाय में कहते थे। व्याख्यान तो सम्प्रदाय में थे तब (संवत्) १९७४ से चलते हैं। हजारों लोगों में। (संवत्) १९७४ से। कितने वर्ष हुए? २७ और ३२, ५९ वर्ष। साठ में एक कम। सम्प्रदाय में भी हमारी तो प्रतिष्ठा बहुत थी न! दो-दो हजार, तीन-तीन हजार लोग होते थे। बोटाद। और राजकोट में तो अन्तिम चौमासा (था)। कैसा कहलाता है? १९८९, संवत् १९८९। राजकोट में तीन-तीन हजार लोग। घण्टे, डेढ़ घण्टे पहले तो मोटरें जम जाती थीं। उसमें भी हमारी बड़ी प्रतिष्ठा थी न! परन्तु बात सब दृष्टि की झूठी। समझ में आया? पर की दया पालना, वह धर्म है। हमारे गुरु ऐसा कहते थे। सम्प्रदाय में गुरु को यह वस्तु नहीं मिली थी।

हमारे गुरु थे, वे बहुत गम्भीर थे। कषाय मन्द थी। अहिंसा पालना, ऐसा कहते थे। अहिंसा—पर को न मारना, यह परमधर्म आगम का सार है, ऐसा कहते थे। यहाँ कहते हैं, यह नहीं। अहिंसा परमोधर्म। आत्मा में राग की उत्पत्ति नहीं होना और वीतरागी पर्याय की उत्पत्ति होना, वह अहिंसा परमोधर्म है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में यह कहा है। आहाहा! पुरुषार्थसिद्धि उपाय का यह श्लोक है। चाहे तो पर की दया पालने का भाव उत्पन्न हो, वह राग और हिंसा है। अब उसे धर्म माने, वह असत्य है। प्ररूपणा

असत्य है, श्रद्धा असत्य है। उसे सत्य धर्म है नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, सेठ!

आचार्य कहते हैं कि सत्यवादी मनुष्य, आगामी भवों में श्रेष्ठ चक्रवर्ती राजा बनते हैं,... समकिती हो, आत्मज्ञानी हो, वह सत्यवादी हो, उसमें विकल्प रह जाये तो चक्रवर्ती पद भी मिल जाता है। समझ में आया? **इन्द्रादि फल को प्राप्त करते हैं और सबसे उत्कृष्ट मोक्षरूपी फल को भी प्राप्त कर लेते हैं...** आनन्द के अनुभवी। आहाहा! यह सत्यव्रत की बात की। अब अपने चलता अधिकार। १००वीं गाथा चलती है न? १००, १००। कैलाशचन्दजी! १०० गाथा है। है? यहाँ से लो।

फिर से, **आत्मा के स्वभाव में लीन हुए पुरुषों के...** शब्दार्थ करते हैं। आहाहा! **आत्मा के स्वभाव में लीन हुए पुरुषों के...** भगवान आत्मा का स्वभाव ज्ञान और आनन्द, आहाहा! उसमें **लीन हुए पुरुषों के प्रत्यक्ष में जो यह विशेषता होती है कि आत्मस्वभाव में उनको समस्त लोकालोक शीघ्र ही दिख जाता है।** समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा... यहाँ ऐसा कहते हैं कि आत्मा का स्वभाव क्या? स्वभाव ज्ञान और आनन्द, वह उसका स्वभाव है। अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान उसका स्वभाव है। आहाहा! ऐसे आत्मस्वभाव में जो लीन है, अतीन्द्रिय आनन्द में लीन है... आहाहा! उसे केवलज्ञान हो जाता है या श्रुतज्ञान होता है। तो श्रुतज्ञान में भी लोकालोक ज्ञात होता है। समझ में आया? कठिन बात, बापू! जैनदर्शन कोई चीज़ ऐसी है। वर्तमान में तो उसका रूप लौकिक रूप कर डाला है। आहाहा!

यह परमात्मप्रकाश है। योगीन्द्रदेव मुनि थे, दिगम्बर सन्त आत्मध्यानी आनन्द में लहर करनेवाले। समझ में आया? सच्चे मुनि हों, सच्चे मुनि, वीतराग कहे ऐसे सच्चे मुनि को तो पौन सेकेण्ड की निद्रा होती है। पौन सेकेण्ड से विशेष निद्रा आ जाये तो मुनिपना रहता नहीं। आहाहा! ऐसी बात कहाँ लोगों ने सुनी है! अमरचन्दभाई! आता है? यह छहढाला में आता है। छहढाला में। 'पिछली रयन में...' छहढाला में आता है। 'पिछली रयन में एकासन...' एकासन अर्थात् ऐसे हो तो ऐसे न हो, आसन बदले नहीं। पौन सेकेण्ड में इतनी निद्रा आ जाये। तुरन्त अप्रमत्तदशा हो जाये। आहाहा! पाठशाला में पढ़ाते हैं, अर्थ की कहाँ खबर है। छहढाला नहीं?

यहाँ कहते हैं, जिसे आत्मस्वभाव... आहाहा! ज्ञानानन्द सहजानन्द प्रभु, जो

दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से भी भिन्न है और जिसका स्वभाव परिपूर्ण ज्ञान और आनन्द से भरपूर है। आहाहा! अरे! जैसे सरोवर अथवा समुद्र पानी से छलाछल भरा हुआ है, वैसे भगवान आत्मा ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति से भरपूर भरा है। कहाँ है, खबर नहीं। कहो, समझ में आया? ऐसे **आत्मा के स्वभाव में लीन हुए पुरुषों के प्रत्यक्ष में जो यह विशेषता होती है कि आत्मस्वभाव में उनको समस्त लोकालोक शीघ्र... 'लघु.. लघु' शीघ्र ही दिख जाता है।** अन्तर स्वभाव में लीन हुए, उस छद्मस्थ को श्रुतज्ञान हुआ, उसके श्रुतज्ञान में भी लोकालोक भासित होता है। आहाहा! समझ में आया?

यह परमात्मप्रकाश है। परमात्मप्रकाश में इस गाथा में क्या लिया? परमात्मस्वरूप जो निज स्वभाव है... आहाहा! उसमें लीन होकर जो भावश्रुतज्ञान प्रगट हुआ तो उसमें भी परोक्षरूप से लोकालोक ज्ञात होता है और स्वभाव में पूर्ण लीन होकर केवलज्ञान हुआ तो उसमें तो लोकालोक ज्ञात हो, ऐसी स्वभाव की सामर्थ्य है। ऐसा कहकर क्या कहा? आत्मा के स्वभाव में लीन होता है तो लोकालोक का ज्ञान होता है, परन्तु लोकालोक की किसी चीज़ को करता है... आहाहा! किसी की दया पालता है, किसी की हिंसा करता है, वह चीज़ स्वरूप में नहीं है। आहाहा! लोकालोक, अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, अनन्त परमाणुओं में एक-एक परमाणु और एक-एक आत्मा में अनन्त गुण और अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें एक समय में। आत्मा का स्वभाव ऐसा है कि उसमें लीन हो तो आत्मा की पर्याय सर्वज्ञ हो जाती है, ऐसा कहते हैं। वह किसी को करता नहीं परन्तु सबको जानता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग अभी सुना नहीं। उसे रुचे कहाँ से? बैठे कहाँ? अरे! है? **शीघ्र ही दिख जाता है।**

भावार्थः—अथवा इस जगह ऐसा भी पाठान्तर है, 'अप्पसहाव लहु' आत्मा का स्वभाव अल्पकाल में प्राप्त कर लेता है। है? **अपना स्वभाव शीघ्र ही दिख जाता है,...** अर्थात् यह ज्ञानानन्द प्रभु, सहजात्म प्रभु अनन्त ज्ञान, आनन्द का धनी / स्वामी प्रभु का ध्यान करने से, उसमें एकाकार होने से, यह ध्यान, हों! ॐकार का ध्यान और पंच परमेष्ठी का ध्यान, वह ध्यान नहीं, वह तो सब राग है। आहाहा! मार्ग बापू! बहुत अलग है, भाई! अरेरे! ऐसा मनुष्यपना मिला, यदि यह सत् समझेगा नहीं तो उसके भव का अन्त कहीं नहीं आयेगा। समझ में आया?

मुमुक्षु : रात्रि में प्रश्न पूछते थे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूछते थे न, इसलिए तो कहते हैं। ध्यान करो, ॐ... ॐ करो, महावीर... महावीर करो, णमो अरिहंताणं करो, यह तो सब विकल्प है, राग है। ध्यान तो आत्मा के स्वभाव का अन्दर ध्यान करना, वह ध्यान है। परन्तु अभी आत्मस्वभाव कैसा, उसकी प्रतीति हुई न हो, वह ध्यान कैसे करे? कहो, पद्मचन्दजी! पहिचानते हो? कैलाशचन्दजी! आगरा। सब पैसेदार हैं। धूल के धनी। धूल... धूल। धूल में भी काम आती नहीं। गत वर्ष शिक्षण शिविर का खर्च इन्होंने दिया था न? गत वर्ष शिक्षण शिविर की थी न? बीस हजार का खर्च हुआ था। इन्होंने दिया था। बीस दिन शिक्षण शिविर चला था न? अभी शिक्षण शिविर चला न? अभी का खर्च संस्था का था। यहाँ संस्था में कहाँ कमी है, बहुत है। कितने लोग आये? ६०० लोग तो बाहर से आये और २५० महिलायें आयी थीं। शिक्षण शिविर में नहीं, सुनने के लिये। महिलाओं को शिविर में बैठना नहीं। चन्दुभाई! एक हजार लोग आये थे, बीस दिन। अरे!

इस शिक्षण शिविर का अर्थ यह भगवान आत्मा... आहाहा! संयोगी चीज़ से तो शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार से तो भिन्न है, अन्दर में राग होता है, शुभ-अशुभ विकल्प राग होता है, उससे भी भिन्न है, और उस राग को जाननेवाली वर्तमान ज्ञान की अल्पज्ञ पर्याय है... आहाहा! प्रभु... प्रभु! ऐसा मार्ग! उस अल्पज्ञ पय्राय से भी अन्दर भिन्न है, उसे यहाँ आत्मस्वभाव कहते हैं। समझ में आया? ऐसे आत्मस्वभाव में... है? **अपना स्वभाव शीघ्र ही दिख जाता है, और स्वभाव के देखने से समस्त लोक भी दिखता है।** आहाहा! चैतन्यस्वभाव... बापू! बातें सूक्ष्म पड़े। अभी तो बाहर में सब मनवा दिया है। यह व्रत करो और तप करो और अपवास करो और त्याग करो। जो आत्मा भगवान पर के त्याग-ग्रहण से तो शून्य है।

आत्मा में ऐसा एक गुण है, भगवान ४७ शक्ति में कहते हैं, कि पर के त्याग-ग्रहण रहित आत्मा है। पर के त्याग-ग्रहण से तो शून्य है। पर का त्याग कैसे करे? पर का ग्रहण कैसे किया है इसने? आहाहा! परमाणुमात्र का ग्रहण कैसे करे? और परमाणु को छोड़े कैसे? ग्रहण किया नहीं, छोड़े कैसे? आहाहा! समझ में आया? त्यागोपादानशून्यत्व। हमारे पण्डितजी को याद आ गया। त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति।

समयसार में ४७ शक्ति में है। भगवान आत्मा... आहाहा! पर का त्याग और पर के ग्रहण से तो रहित है। समझ में आया? यह प्राणी कहे कि मैं यह वस्तु छोड़ दूँ, स्त्री, पुत्र छोड़ दूँ। क्या छोड़े? छूटे ही पड़े हैं। ग्रहण कब किये थे तो छोड़े। आहाहा! अज्ञान पकड़ा था। पूर्णानन्द के नाथ को नहीं जानकर मैं राग हूँ और पुण्य हूँ और दया, दानवाला हूँ, ऐसा अज्ञान किया था। उस अज्ञान को छोड़ना इसे है। वह अज्ञान छोड़ना, यह भी व्यवहार से कथन है। ज्ञानानन्दस्वभाव की अन्तर दृष्टि और अनुभव होने पर अज्ञान उत्पन्न नहीं होता, अज्ञान का नाश होता है, उसे अज्ञान का नाश किया—ऐसा कहा जाता है। अरे... अरे...! बातें गजब, बापू! सत्य बात ऐसी है। समझ में आया?

यह कहते हैं, **अपना स्वभाव शीघ्र... 'लहु'** है न? **'लहु'।** भगवान आत्मा चैतन्य सूर्य ज्ञान स्वपरप्रकाशक स्वभाव का समुद्र, ऐसे आत्मस्वभाव का ध्यान करने से, उस ओर लीन होने से आत्मस्वभाव **'लहु' शीघ्र दिख जाता है,...** अपने को पूरा आत्मा दिखता है और वह दिखने में पूरा लोकालोक भी दिखता है। आहाहा! यह ऐसी बात! क्या है यह? क्या करना... यहाँ तो कहते हैं, करना वहाँ मरना है। भाई लिखते हैं न? सोगानी, निहालचन्द्र सोगानी। अजमेर। दिल्ली नहीं? कलकत्ता। एक लड़के की दुकान है, मुम्बई। वे स्वयं गुजर गये। यह द्रव्यदृष्टि प्रकाश में लिखते हैं, बहुत आत्मशक्ति थी, फिर धन्धा छोड़ दिया था। वहाँ लड़का है। कलकत्ता में है और एक मुम्बई है। यह कहते हैं, राग करना, शुभराग करना, वहाँ शान्ति का मरना है। आया है? द्रव्यदृष्टि प्रकाश आया है न तुमको? आहाहा! लोगों को कुछ करना है, कुछ करना है। परन्तु क्या करना है? ज्ञान करना, वह करना नहीं? आहाहा!

स्वरूप भगवान चैतन्य का पुंज प्रभु... आहाहा! स्वभाव का सागर, अनन्त शक्ति का संग्रहालय। संग्रह का आलय—स्थान है। भगवान अनन्त शान्ति, अनन्त आनन्द का संग्रहालय आलय—स्थान है। वह राग का स्थान नहीं। वह पुण्य-पाप का स्थान आत्मा नहीं। आहाहा! वह गुण का गोदाम है। यह गोदाम नहीं होते? मुम्बई में बड़े गोदाम हैं। केसर के डिब्बे बड़ी-बड़ी अलमारियाँ। हमने तो सब देखा है न? पाँच वर्ष धन्धा किया था न! पिताजी की दुकान थी न! अभी हमारी दुकान है न! पालेज। भरूच और वडोदरा के बीच। है न, हमारे आये थे न! अब वह व्यापार-धन्धा करते हैं। नटुभाई।

तीन लड़के हैं। बुआ के पुत्र भागीदार थे, उनके पुत्र हैं। दुकान चलती है। अब अलग हो गये हैं। तीन लाख की आमदनी थी। बारह महीने की तीन लाख की आमदनी, हों! अब अलग हो गये। भाग पड़ गये। हो गया। और उसमें रुकना पड़े। आहाहा! अरे.. अरे! मार डाला। यह करना और यह करना और यह करना। इन सब विकल्प में मर गया है। कहो, गिरधरभाई! चैतन्य के आनन्द के ज्ञान के जीवन में राग करना, वह ज्ञान के जीवन का संहार होता है। जिसे परमात्मा पुरुषार्थसिद्धि उपाय में अमृतचन्द्राचार्य... अभी पण्डितजी बोले, प्रादुर्भाव राग। चाहे तो शुभराग की उत्पत्ति हो, हिंसा है। समझ में आया? गजब बात! बापू! वीतरागमार्ग परमेश्वर का, और वह मार्ग जिसे अन्दर में बैठे, (उसे) भव का अन्त (आवे) और सिद्धपद की प्राप्ति (हो)। आहाहा! यहाँ यह कहते हैं न, देखो न!

अपना स्वभाव शीघ्र दिख जाता है, और स्वभाव के देखने से समस्त लोक भी दिखता है। आहाहा! **यहाँ पर भी विशेष करके पूर्व सूत्रकथित चारों तरह का व्याख्यान जानना चाहिए, क्योंकि यही व्याख्यान बड़े-बड़े आचार्यों ने माना है।** बड़े-बड़े आचार्य। कुन्दकुन्द आदि महा आचार्य-सन्तों ने चार प्रकार का व्याख्यान किया है, वह अपने आ गया। ९९ में आ गया न? ९९। क्या आया? चार बोल आ गये। यह कहते हैं कि बड़े-बड़े आचार्यों ने यह कहा है। जिसने अपना आत्मा ज्ञानानन्द सहजानन्द प्रभु जान लिया, उसने बारह अंग जान लिये। आहाहा! शास्त्रज्ञान भी नहीं। अपना भगवान पूर्णानन्द चैतन्यसूर्य बिम्ब प्रभु, चैतन्य का चमकता सूर्य प्रभु, अरे! कहाँ इसने कभी देखा नहीं। ऐसे चैतन्यस्वभाव का चमकता सूर्य, उसका जिसने अन्तर में जाकर अनुभव किया, तो उसने बारह अंग जान लिये। बारह अंग में कहना था, वह उसके पास आ गया। समझ में आया? आहाहा! एक बोल यह कहा। चार बोल है न? चार। बड़े-बड़े आचार्यों ने यह चार बोल (कहे हैं)।

दूसरा बोल यह आया कि भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का जिसने स्वाद लिया, सम्यग्दृष्टि होकर सम्यग्दृष्टि—सत्यदृष्टि, सत्य अर्थात् परम सत्य स्वरूप की दृष्टि अनुभव में आकर जो सम्यग्दर्शन हुआ, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया। स्वाद तो यह दाल, भात, सब्जी का, रसगुल्ला और आम का (आता है)। धूल में भी स्वाद

नहीं। सुन तो सही! आहाहा! यह पर का स्वाद अज्ञानी को आता है? कड़वा, मीठा, गळपळ / मीठा, उसका स्वाद आता है? वह तो जड़ की वस्तु है। इसी प्रकार स्त्री के शरीर के भोग काल में इसे शरीर का अनुभव होता है? बिल्कुल झूठ। आहा! पर में राग उठाकर राग का स्वाद अज्ञानी लेता है। ज्ञानी ने अन्दर में राग से रहित निज स्वभाव का स्पर्श किया... आहाहा! समकिती, हों! अभी चौथे गुणस्थान में अपना स्वाद लिया। यह आ गया। **परमानन्द सुखरस उसके आस्वाद होने पर ज्ञानी पुरुष ऐसा जानता है,...** ओहोहो! मैं तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप हूँ, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का ज्ञान हुआ तो वह राग और सुख-दुःख की कल्पना और शरीरादि, इस आनन्द से भिन्न है, ऐसा भेदज्ञान हो गया। आनन्द से सब चीज़ भिन्न है, उन सबका ज्ञान इसे हो गया। आहाहा! ऐसी बातें। कुछ पैसा भरने का कहे, दान करने का कहे तो समझ में आये। धूल में भी नहीं। तेरे दान। तू यहाँ कौन और पैसे कहाँ तेरे बाप के (थे)? तेरी चीज़ कहाँ थी, वह दे। पैसा मेरा मानकर दे, वह तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? वह तो अजीव है, तू तो जीव है। जीव का अजीव हो जाता है? आहाहा! पैसा है न उसके पास अधिक, इसलिए उसने दाँत निकाले (हंसा)। छह लड़के और दो करोड़ रुपये हैं उसके पास।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ कहाँ थे। ममता है अभी अन्दर। वह चीज़ कहाँ थी? वहाँ भी कहाँ तुम्हारे पास थी? पोपटभाई! यहाँ तो सत्य बात (यह है), बापू! यह पैसा कहीं आत्मा के पास आता है? आता है वह मुझे आये—ऐसी ममता उसके पास आयी है। आहाहा! प्रभु... प्रभु! तू क्या करता है? चोर है, कहते हैं। जो पर की चीज़ पर है, उसे मेरी मानता है, वह तो चोर है। आहाहा! स्त्री का आत्मा, पुत्र का आत्मा, वह तो पर है। वह तो उसके कारण से आये और उसके कारण से रहे और उसके कारण से चले जायेंगे। तेरे कारण से यहाँ आये नहीं, वे तो परद्रव्य हैं। तुझमें आये है ही कहाँ? आहाहा! परद्रव्य का संयोग आता है? क्या है?

मुमुक्षु : अपने पास है तो रखवाली तो करनी पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन रखवाली करे? अब तो उसके पुत्र और सब होशियार

हुए हैं। डालचन्द और... धूल में भी नहीं। डालचन्द किसका? ऐई! अरे! भगवान! बापू! परद्रव्य को मेरा मानना, वह तो महामूढ़ता है।

यहाँ तो प्रभु यहाँ तक कहते हैं, यह दया, दान, व्रत का विकल्प उठे, वह मेरा है, वह भी मूढ़ और मिथ्यादृष्टि है। राग का चोर है वह। राग तो परवस्तु है। आहाहा! स्व वस्तु में वह कहाँ है? आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

जिसे अपना आनन्द आया, आनन्द के स्वाद के समक्ष यह दूसरी चीज़ आनन्द से भिन्न है, वह अपने से भिन्न है, उसका ज्ञान हो गया। आहाहा! दो बोल हुए। तीसरा बोल। जिसे अपना ज्ञान हुआ, ऐसा श्रुतज्ञान हुआ—भावश्रुतज्ञान अन्दर हुआ, आनन्द के ज्ञान में, उस भावश्रुतज्ञान द्वारा लोकालोक को जानता है। समझ में आया? अब चौथा बोल। जिसे आत्मज्ञान-भान हुआ, वह आगे बढ़कर जब केवलज्ञान प्राप्त करता है तो लोकालोक को जानता है। 'अेगं जाणई सव्वं जाणई।' अपने को जाना तो सर्व को जाना। अपने को जाना तो सबकी पहिचान हुई। अपने को जाना तो लोकालोक को जाना। अपने आनन्दस्वरूप को जाना तो दुःख और रागादि भिन्न है, उन्हें भी जाना। आहाहा! प्रभु... प्रभु! मार्ग ऐसा है, भाई! लोगों को बेचारों को मिलता नहीं और ऐसा का ऐसा ढोंग करके मर जानेवाले हैं। आहाहा! समझ में आया? दशरथलालजी! यह चार बोल यहाँ कहे न!

पूर्व सूत्रकथित चारों तरह का व्याख्यान जानना चाहिए। है न? वे यह चार कहे, वे। **क्योंकि यही व्याख्यान बड़े-बड़े आचार्यों ने माना है।** बड़े-बड़े आचार्यों ने चार व्याख्यान कहे हैं। अभी चार कहे न? अब १०१। यह १०० गाथा हुई। यह बराबर मेल (हुआ)। अब १०१ चलती है, दोपहर में १०१ (चलती है)। समयसार की १०१ चलती है।

मुमुक्षु : यह १०१।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह १०१।

गाथा - १०१

अतोऽमुमेवार्थं दृष्टान्तद्वार्ष्टान्ताभ्यां समर्थयति –

१०१) अप्पु पयासइ अप्पु परु जिम अंबरि रवि-राउ।
जोइय एत्थु म भंति करि एहउ वत्थु-सहाउ।।१०१।।

आत्मा प्रकाशयति आत्मानं परं यथा अम्बरे रविरागः।
योगिन् अत्र मा भ्रान्तिं कुरु एष वस्तुस्वभावः।।१०१।।

अप्पु पयासइ आत्मा कर्ता प्रकाशयति। कम्। अप्पु परु आत्मानं परं च। यथा कः किं प्रकाशयति। जिमु अंबरि रविराउ यथा येन प्रकारेण अम्बरे रविरागः। जोइय एत्थु म भंति करि एहउ वत्थुसहाउ हे योगिन् अत्र भ्रांति मा कार्षीः, एष वस्तुस्वभावः इति। तद्यथा। यथानिर्मेघाकाशे रविरागो रविप्रकाशः, स्वं परं च प्रकाशयति तथा वीतरागनिर्विकल्प-समाधिरूपे कारणसमयसारे स्थित्वा मोहमेघपटले विनष्टे सति परमात्मा छद्मस्थावस्थायां वीतरागभेदभावनाज्ञानेन स्वं परं च प्रकाशयतीत्येष पश्चादर्हदवस्थारूपकार्यसमयसाररूपेण परिणम्य केवलज्ञानेन स्वं परं च प्रकाशयतीत्येष आत्मवस्तुस्वभावः संदेहो नास्तीति। अत्र योऽसौ केवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयव्यक्तिरूपः कार्यसमयसारः स एवोपादेय इत्यभिप्रायः।।१०१।।

आगे इसी अर्थ को दृष्टातदार्ष्टान्त से दृढ़ करते हैं –

स्व पर प्रकाशक है यह आत्मा ज्यों नभ से रवि करे प्रकाश।
हे योगी! यह वस्तु स्वभाव न इसमें कुछ संशय करना।।१०१।।

अन्वयार्थ :– [यथा] जैसे [अंबरे] आकाश में [रविरागः] सूर्य का प्रकाश अपने को और पर को प्रकाशित करता है, उसी तरह [आत्मा] आत्मा [आत्मानं] अपने को [परं] पर पदार्थों को [प्रकाशयति] प्रकाशता है, सो [योगिन्] हे योगी [अत्र] इसमें [भ्रान्तिं मा कुरु] भ्रम मत कर। [एष वस्तुस्वभावः] ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है।

भावार्थ :– जैसे मेघ रहित आकाश में सूर्य का प्रकाश अपने को और पर को प्रकाशता है, उसी प्रकार वीतरागनिर्विकल्प समाधिरूप कारणसमयसार में लीन होकर मोहरूप मेघसमूह का नाश करके यह आत्मा मुनि अवस्था में वीतराग स्वसंवेदनज्ञानकर अपने को और पर को कुछ प्रकाशित करता है, पीछे अरहंत अवस्थारूप कार्यसमयसार

स्वरूप परिणमन करके केवलज्ञान से निज और पर को सब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से प्रकाशता है। यह आत्म-वस्तु का स्वभाव है, इसमें संदेह नहीं समझना। इस जगह ऐसा सारांश है, कि जो केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्यरूप, कार्यसमयसार है, वही आराधने योग्य है।।१०१।।

गाथा-१०१ पर प्रवचन

आगे इसी अर्थ को दृष्टान्त, दाष्टान्त से दृढ़ करते हैं—

१०१) अप्पु पयासइ अप्पु परु जिम अंबरि रवि-राउ।
जोइय एत्थु म भंति करि एहउ वत्थु-सहाउ ॥१०१ ॥

अन्वयार्थः—जैसे आकाश में सूर्य का प्रकाश अपने को और पर को प्रकाशित करता है,... 'अंबरे अंबरे' 'अंबरे' अर्थात् आकाश। आकाश में सूर्य का प्रकाशन अपने को और पर को प्रकाशित करता है। **उसी तरह आत्मा अपने को और परपदार्थों को प्रकाशता है,...** बस। अपने आनन्द, ज्ञानस्वरूप को जानता है और इसके अतिरिक्त रागादि पर हैं, उन्हें जानता है, प्रकाशित करता है। समझ में आया? **हे योगी! इसमें भ्रम मत कर।** हे धर्मात्मा! भ्रमणा न कर अब, कि मैं पर को कर दूँ और पर से मुझमें कुछ होता है। तेरे स्वभाव का भान होने से... आहाहा! परपदार्थ का प्रकाश सहज हो जाता है। पर का जानना तुझे सहज हो जाता है। आहाहा! जानना, हों! आहाहा!

इसमें भ्रम मत कर। 'एष वस्तुस्वभावः' ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। आहाहा! क्या कहा यह? भगवान चैतन्यप्रकाश का नूर पूर, उसे जिसने जाना... समझ में आया? उन सबको परप्रकाश में जानता ही है। स्व को जाना, उसमें परप्रकाश का ज्ञान भी आ गया। आहाहा! पर को प्रकाशित करता है। पर को मेरा मानता है, ऐसा नहीं। आहाहा! भरत चक्रवर्ती समकिती थे। छियानवें हजार रानियाँ थीं। ऋषभदेव भगवान के पुत्र, भरत। छियानवें हजार स्त्रियाँ, सोलह हजार देव जिनकी तैनात में और देव थे, न देव? दो हजार तो यहाँ शरीर की रक्षा के लिये रहे। वह चक्रवर्ती आत्मज्ञानी थे तो विकल्प से लेकर परवस्तु मेरी है नहीं, ऐसा मानते थे। आहाहा! छह खण्ड में रहने पर भी

अखण्ड में रहे हैं। बहुत सूक्ष्म बात, प्रभु! समकित वस्तु ऐसी वस्तु है। अभी समकित अर्थात् कुछ नहीं। यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो। नौ तत्त्व की श्रद्धा करो, वह समकित। अरे! धूल भी नहीं, सुन न! समझ में आया? **ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है।**

भावार्थः—जैसे मेघरहित आकाश में सूर्य का प्रकाश अपने को और पर को प्रकाशता है,... सूर्य। **उसी प्रकार...** अब सिद्धान्त आया। यह तो दृष्टान्त हुआ। आहाहा! **वीतरागनिर्विकल्प समाधिरूप कारणसमयसार में...** लो, यह ध्यान। भगवान पूर्णानन्दस्वरूप में वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप कारणसमयसार मोक्ष का मार्ग। कारणसमयसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग। क्या? वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का राग, वह भी धर्म नहीं।

मुमुक्षु : परम्परा।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी परम्परा नहीं। वह तो व्यवहार के वचन हैं। राग, वह कहीं कारण होता होगा? लहसुन खाये और कस्तूरी की डकार आवे? लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी। धूल भी नहीं आयेगी। इसी प्रकार राग करते-करते आत्मा की दृष्टि—सम्यग्दर्शन होगा। समझ में आया? ऐसी बातें हैं, बापू! यह तो परमात्मा के घर की बातें हैं। आहाहा!

वीतरागनिर्विकल्प समाधिरूप कारणसमयसार में... अर्थात् मोक्षमार्ग। क्या मोक्षमार्ग? वीतराग—राग रहित, पुण्य के विकल्प भी नहीं। निर्विकल्प—अभेद, समाधि अर्थात् शान्ति। आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ कारणसमयसार का अर्थ शुद्ध पर्याय?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुद्ध पर्याय मोक्षमार्ग की, वह कारणसमयसार। अभी धीरे-धीरे आते हैं। कारणसमयसार के दो प्रकार। एक त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु ज्ञायकभाव कारणपरमात्मा को कारणसमयसार कहते हैं। आहाहा! वस्तु जो त्रिकाली आनन्द का नाथ अनन्त शक्ति का सागर, ध्रुव, उसे कारणसमयसार अथवा कारणपरमात्मा कहते हैं। उस कारणपरमात्मा के आश्रय से निर्विकल्प—रागरहित वीतरागी शान्ति, वीतरागी शान्ति द्वारा जिसने मोक्षमार्ग प्रगट किया, वह कारणसमयसार। यह पर्याय का

कारणसमयसार। आहाहा! राग-फाग की तो यहाँ बात ही नहीं। विकल्प जो उठते हैं दया, दान के, वह तो धर्म भी नहीं, धर्म का कारण भी नहीं और मोक्षमार्ग भी नहीं। आहाहा! ऐ... दशरथलालजी! भगवान! मार्ग तो बहुत अलग प्रकार का, प्रभु! लोगों को परोसा है, अजैनपना जैन के नाम से परोसा है। आहाहा!

जैनमार्ग की रीति तो वीतरागभाव की है। समझ में आया? एक शब्द में रखा। क्या? जैसे आकाश में सूर्य अपने को प्रकाशित करता है, पर को प्रकाशित करता है। उसी प्रकार भगवान आत्मा अपना कारणसमयसार प्रभु जो त्रिकाल, उसमें विकल्प रहित निर्विकल्प अर्थात् वीतरागी पर्याय से निर्विकल्प अभेद और समाधि। समाधि अर्थात् वे बाबा समाधि करते हैं, वह नहीं। वीतराग की भावरूपी समाधि अन्दर प्रगट की, उसका नाम मोक्षमार्ग कहा जाता है। उसका नाम कारणसमयसार—पर्याय का कारणसमयसार है। अरे.. अरे! ऐसी सब बातें। ओहोहो! कहो! है?

पहले दृष्टान्त लिया है न? समझे? **जैसे मेघ रहित...** बादल और वर्षारहित आकाश में सूर्य का प्रकाश अपने को, सूर्य अपने को प्रकाशित करता है और पर को प्रकाशित करता है। **उसी प्रकार वीतरागनिर्विकल्प समाधिरूप कारणसमयसार में लीन होकर...** आहाहा! भाषा भी कठिन पड़े लोगों को। जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया, वह सम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय है। त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द की अनुभव में प्रतीति की, स्वभाव जो त्रिकाली कारणपरमात्मा ध्रुव है, उसकी प्रतीति उसके आश्रय से की, वह निर्विकल्प सम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय है। और त्रिकाली ज्ञान का ज्ञान किया, वह ज्ञान है, वह सम्यग्ज्ञान है। और त्रिकाली ज्ञानस्वरूप में लीनता हुई, वह चारित्र है। आहाहा! समझ में आया? भाई!

यह पर्यूषण के दिन हैं। भगवान की वाणी यह है। इसे सुनने को न मिले, वह क्या करेगा? प्रभु! आहाहा! आँख बन्द करके कहीं कौवे और कुत्ते में (चला जायेगा)। त्रस की स्थिति पूरी होगी। त्रस की स्थिति पूरी होगी तो चला जायेगा निगोद में। मुश्किल से निकलकर मनुष्य हुआ है। आहाहा! ऐसा वीतराग का मार्ग यदि ख्याल में न आया, सूत की डोरी बिना की सुई खो जाती है, हाथ नहीं आती। परन्तु यदि सुई में सूत की डोरी... यह तो समझते हो न? अकेली सुई हो (तो नहीं मिलती)। परन्तु यदि

साथ में डोरा हो और चिड़िया माला में ले जाये तो... यह... अपना डोरा है, सुई वहाँ है, इसी प्रकार आत्मा ने सम्यग्ज्ञानरूपी डोरा पिरोया होगा तो जन्म-मरण से रहित हो जायेगा, वह खोयेगा नहीं। चार गति में खो नहीं जायेगा। आहाहा! समझ में आया? और यह सम्यक् सत्य ज्ञान जिसने किया नहीं, वह चाहे जितने महाव्रत आदि पालन करे, वह चार गति में भटकनेवाला है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने यह दृष्टान्त दिया है। '....' सुई सूत के डोरे सहित होगी तो खोयेगी नहीं। खोवाशे नहीं को क्या कहते हैं? गुम नहीं होगी। खोई कहते हैं? ठीक। तुम्हारी हिन्दी कहीं पूरी नहीं आती। यह तो थोड़ी-थोड़ी आती है। आहाहा! और ससूत्र सुई खोयेगी नहीं। आहाहा!

जिसने ज्ञानलक्षण स्वभाव प्रगट कर लिया... आहाहा! मैं तो ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ। पुण्य-पाप के भाव मैं नहीं और उनसे मुझे लाभ नहीं, नुकसान है। आहाहा! ऐसे निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र से कारणसमयसार में लीन हुआ। आहाहा! प्रभु अन्दर ध्यान में आनन्द में (लीन हुआ)। अतीन्द्रिय आनन्द में दृष्टि-ज्ञान की लीनता हुई। वह मोक्षमार्ग। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। तत्त्वार्थसूत्र। दसलक्षणी में बोलते हैं सब। पहाड़े बोल जाये। अर्थ की खबर नहीं होती कि क्या है? आहाहा! सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः, तत्त्वार्थसूत्र (का पहला सूत्र)। आहाहा! वह यह। भगवान पूर्णानन्द प्रभु वीतरागस्वरूप प्रभु आत्मा है। आत्मा वीतराग की मूर्ति है। अभी, हों! आहाहा!

यह निर्विकल्प वीतराग समाधिस्वरूप ही आत्मा है। लो, और यह कहा। क्या कहा? भगवान आत्मा निर्विकल्प वीतराग शान्त समाधिस्वरूप ही है। उसके आश्रय से पर्याय में जो प्रगट हुआ, वह भी निर्विकल्प समाधि वीतरागपर्याय, उसका नाम मोक्ष का मार्ग। क्या कहा यह? निर्विकल्प वीतराग निर्विकल्प समाधि। उसे उत्पन्न किया। मोक्षमार्ग। परन्तु वह निर्विकल्प पर्याय उत्पन्न किससे हुई? वह वस्तु निर्विकल्प वीतराग समाधि शान्तमूर्ति प्रभु आत्मा है, उसमें से निर्विकल्प पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! यह व्यवहार राग करते-करते होती है, इससे इनकार करते हैं। कहो, झांझरीजी! ऐसा मार्ग है। आहाहा! अरे! इसने एक सेकेण्ड भी कभी जाना नहीं, रुचा नहीं। आहाहा! ऐसी की ऐसी जिन्दगी मजूदरी की भाँति निकाल दी। आहाहा! साधु के व्रत, तप,

अट्ठाईस मूलगुण है न? वह भी राग है, मजदूरी है; आत्मधर्म नहीं। ऐ... सेठ! परन्तु अपने को कुछ त्याग नहीं आता और (दूसरे में) थोड़ा बाहर से त्याग किया हो तो जय महाराज, जय नारायण (करे)। अरे! भगवान! सुन तो सही। प्रभु!

यहाँ एक शब्द में कितना भर दिया है! **आकाश में सूर्य का प्रकाश अपने को और पर को प्रकाशता है, उसी प्रकार...** यह तो दृष्टान्त हुआ। **वीतरागनिर्विकल्प समाधिरूप कारणसमयसार...** भगवान की—आत्मा की पर्याय। आहाहा! भगवानस्वरूप ही प्रभु आत्मा है। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो निर्विकल्प वीतरागी शान्ति प्रगट हुई, वह मोक्षमार्ग। समझ में आया? भाई! यह पर्यूषण के दिनों में जो सत्य बात... आज वापस सत्यधर्म है। चौथा सत्यधर्म है। आहाहा! इसकी श्रद्धा में तो पक्ष करे कि निर्विकल्प वीतराग की परिणति उत्पन्न हो, वह मोक्षमार्ग है। ऐसा श्रद्धा में पहले पक्ष करना चाहिए। पक्ष करे तो लक्ष्य हुआ तो दक्ष होगा तो केवलज्ञान होगा। पक्ष करे तो लक्ष्य होगा और तब दक्ष होगा। आहाहा! अरेरे!

मुमुक्षु : पक्ष करे तो लक्ष्य होगा....

पूज्य गुरुदेवश्री : पक्ष करे तो लक्ष्य होगा। पक्ष करते-करते लक्ष्य होगा और लक्ष्य होते-होते दक्ष होगा। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान होगा। परन्तु अभी पक्ष का भी ठिकाना नहीं। आहाहा! यहाँ तो परमात्मा योगीन्द्रदेव सन्त दिगम्बर जंगलवासी। मुनि तो जंगल में रहते थे। श्वेताम्बर आदि वस्त्रसहित तो बाद में निकले हैं। भगवान के बाद ६०० वर्ष में। वह कहीं मुनिमार्ग नहीं। वह जैनमार्ग नहीं।

जैन तो आत्मा के आनन्द में मस्त, अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में मस्त। जिसे वस्त्र-पात्र छूट जाते हैं और अन्तर में तीन कषाय का अभाव हो जाता है। ऐसी निर्विकल्प वीतरागी समाधि का नाम मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? वीतराग निर्विकल्प... नीचे कहाँ वीतराग है? वीतराग तो केवल (ज्ञान) हो, तब होते हैं। अरे! सुन तो सही। आत्मा त्रिकाल वीतराग निर्विकल्प शान्तस्वरूप ही है। खबर कहाँ है, वह चीज़ अन्दर में क्या है! उसके आश्रय से जो दृष्टि प्रगटे, वह निर्विकल्प वीतराग परिणति प्रगट होती है। समझ में आया? वह कारणसमयसार। आहाहा! मोक्ष जो केवलज्ञान है, वह कार्यसमयसार है। केवलज्ञान मोक्ष कार्यसमयसार है, उसका

कारणसमयसार यह। आहाहा! उसका कारण यह। उसका कारण व्यवहार दया, दान और व्रत वह कारण-फारण नहीं, वह तो विघ्न है। बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया? है?

सूर्य की भाँति। सूर्य अपने को प्रकाशित करता है, पर को प्रकाशित करता है। उसी प्रकार वीतराग निर्विकल्प समाधि, समाधि अर्थात् शान्ति, समाधि अर्थात् वे बाबा कहते हैं, वह समाधि नहीं, वह तो हठयोगी मूढ़ है। यह तो आत्मा के आनन्द में जागृत होकर शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति। शान्तरस के झरना झरे। राग, वह कषायभाव अशान्तभाव है। आहाहा! छहढाला में आया नहीं? 'राग आग दाह दहे सदा, तातै समामृत सेईये।' छहढाला में आता है। 'राग आग दाह दहे सदा।' यह शुभराग भी आग है, दाह है। आहाहा! छहढाला में गागर में सागर भर दिया है। उसके अर्थ की खबर नहीं होती। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं।

राग रहित वीतरागी निर्विकल्प अभेद समाधि-शान्ति, ऐसे **कारणसमयसार में लीन होकर मोहरूप मेघसमूह का नाश करके...** लो। उसे सूर्य ने बादलों का नाश किया। यह मोह इससे नाश पाता है। आहाहा! पूर्ण वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा है ही। उसके आश्रय से उसका ध्यान करने से जो निर्विकल्प शान्ति वीतरागी पर्याय प्रगट होती है, उसे यहाँ कारणसमयसार कहते हैं। उसमें लीन होकर **मोहरूप मेघसमूह का नाश करके वह आत्मा छद्मस्थ अवस्था में...** संस्कृत में छद्मस्थ अवस्था है, भाई! संस्कृत में। वह इन्होंने नहीं डाला। संस्कृत है। उस ओर है। '**विनष्टे सति परमात्मा छद्मस्थावस्थायां वीतरागभेदभावनाज्ञानेन**' छद्मस्थ अवस्था।

अपने आनन्दस्वरूप में लीन होकर छद्मस्थ अवस्था में... आहाहा! **वीतराग स्वसंवेदनज्ञानकर अपने को और पर को कुछ प्रकाशित करता है...** क्या कहते हैं? जैसे बादल... बादल कहते हैं? मेघ। बादल बिना का सूर्य अपने को प्रकाशित करता है और पर को प्रकाशित करता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने चैतन्य के प्रकाश का नूर पूर में एकाग्र होकर निर्विकल्प शान्ति और वीतरागी पर्याय से लीन होकर, छद्मस्थ अवस्था में उससे क्या होता है? है? **वीतराग स्वसंवेदनज्ञानकर अपने को...** आहाहा! अपनी वीतरागी पर्याय स्व अर्थात् प्रत्यक्ष संवेदनज्ञान अपने को जानता है और

पर को कुछ प्रकाशित करता है... कुछ। पूर्ण नहीं। समझ में आया? अरे! गजब गाथा ऐसी, भाई! अलौकिक है, बापू! आहाहा! वीतरागमार्ग अलौकिक है। इसके अतिरिक्त कहीं नहीं है। वीतराग दिगम्बर मार्ग यह वीतराग है। ऐसी बात किसी मत में कहीं नहीं है। दूसरों के साथ समन्वय करे, सब झूठ है। समझ में आया? आहाहा!

वीतराग स्वसंवेदनज्ञानकर... मोहादि का नाश करके... आहाहा! **अपने को और पर को कुछ प्रकाशित करता है...** छद्मस्थ है न? पूर्ण प्रकाशित न हो प्रत्यक्ष। **पीछे अरहन्त अवस्थारूप...** आहाहा! **कार्यसमयसार स्वरूप परिणमन करके...** देखो! यह कार्य। यह आत्मा का कार्य है। धूल का कार्य नहीं और राग का कार्य भी आत्मा का नहीं। आहाहा! अपनी निर्विकल्प वीतरागी पर्याय द्वारा जिसने... आहाहा! **कार्यसमयसार -स्वरूप परिणमन करके...** आहाहा! कार्यसमयसार कहा। यहाँ मोक्षमार्ग को कारणसमयसार कहा। यह कारण है और केवलज्ञान कार्य है। समझ में आया? व्यवहाररत्नत्रय कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह तो बन्ध का कारण है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, पंच महाव्रत का विकल्प, शास्त्र पढ़ने का विकल्प, वह सब बन्ध का कारण है। आहाहा!

यह दसलक्षणी पर्व में हिन्दी पहली बार चलता है, हों! अभी तक गुजराती चला है। उसमें हमारे और कैलाशचन्दजी बराबर आ गये। दोनों ने आग्रह किया होगा। हिन्दी नहीं चलता, दसलक्षणी पर्व में। उन बीस दिन चलता है, तब हिन्दी में चलता है। हिन्दी (भाषी) बहुत आते हैं न! परन्तु यह तो पहली बार हिन्दी चलता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जिसने अपनी स्वसंवेदन वीतराग पर्याय द्वारा लोकालोक प्रकाशित करे, ऐसा कार्यसमयसार प्रगट किया, उसका नाम परमात्मा और अरिहन्त कहा जाता है। विशेष कहा जायेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, भाद्र शुक्ल ९, गुरुवार
दिनांक-०२-०९-१९७६, गाथा-१०१-१०२, प्रवचन-७९

दसलक्षणी पर्व का पाँचवाँ दिन है। शौच... शौच। शौच का अर्थ है पवित्रता। इसका अर्थ है। ९४ गाथा है न? **जो परस्त्री तथा पराये धन में इच्छारहित है, किसी भी जीव को मारने की जिनकी भावना नहीं है और जो अत्यन्त दुर्भेद्य लोभ, क्रोधादि मलों का हरण करनेवाला है, ऐसा चित्त ही शौचधर्म है,...** क्या कहते हैं? थोड़ी सूक्ष्म बात है। परस्त्री अर्थात् वास्तव में तो राग की परिणति, वह परस्त्री है। शुभराग हो, अशुभराग तो एक ओर रहा, शुभराग दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वह राग, वह अशुद्ध परिणति है, उसका संग करना, वह परस्त्री का सेवन है। समझ में आया? वैसे तो परस्त्री का बाहर का त्याग तो अनन्त बार किया। समझ में आया? है न? सात व्यसन है न, उसमें है। सात व्यसन है न? समयसार नाटक में लिया है न? (साध्य-साधक द्वार, पद-२९) क्या कहलाता है वह? व्यसन... व्यसन।

'**अशुभमैं हारि शुभजीति यहै दूत कर्म**' जुआ किसे कहते हैं? जुआ कहते हैं? भगवान यहाँ जुआ किसे कहते हैं? कि अशुभ कर्म में हार मानना और शुभ में जीत मानना, वह जुआ है। सुमनभाई! कल गये थे कहीं? ठीक। वहाँ तुम्हारे वह है। समझ में आया? बनारसीदास ने स्पष्टीकरण किया है। **अशुभकर्म के उदय में हार और शुभकर्म के उदय में विजय मानना, वह भाव जुआ है,...** भाव सट्टा है। आहाहा! बाहर के सट्टा की चीज़ क्या? साधारण है। समझ में आया? और देखो! **शरीर में लीन होना, वह भाव माँसभक्षण है,...** भगवान आनन्दस्वरूप में लीनता छोड़कर, भगवान अतीन्द्रिय आनन्दमय प्रभु, उसमें लीनता छोड़कर शरीर में लीनता करना... सेठ! वह भाव माँस (भक्षण) है। वह माँस खानेवाला है। क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : अलग अर्थ निकाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है, हमारा नहीं है। समयसार नाटक का है। बनारसीदास। ३४७ पृष्ठ है। हमने तो (संवत्) १९७८ के वर्ष से वाँचा है। १९७८। यह समयसार नाटक। २२ और ३२=५४ वर्ष हुए। हम तो तब से यह वाँचते हैं। हम तो सम्प्रदाय में

यह वाँचते थे। उसमें थे न? यहाँ कहते हैं, **शरीर में लीन होना वह भाव-माँस भक्षण है, मिथ्यात्व से मूर्च्छित होकर स्वरूप को भूल जाना, वह भाव-मद्यपान है,....** क्या आया, देखो!

अशुभमैं हारि शुभजीति यहै दूत कर्म,
देह की मगनताई यहै मांस भखियौ।
मोह की गहलसौं अजान यहै सुरापान,

आहाहा! मदिरा पी है। जिसने निज भगवान आनन्दस्वरूप की दृष्टि छोड़कर... आहाहा! शुभभाव के प्रेम में गहल हो गया है, गहल, वह सुरापान—उसने मदिरा पी है। समझ में आया? उसे शौचधर्म होता नहीं। यहाँ तो यह बात ऐसी है, भाई! '**कुमति की रीति गनिका कौ रस चखियौ।' कुबुद्धि के रास्ते चलना, वह भाव-वेश्या सेवन है,....** विपरीत मति—राग से धर्म है, पुण्य से धर्म है... समझ में आया? ऐसी कुबुद्धि पर चलना, वह वेश्या का संग है।

मुमुक्षु : .... ऐसा ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है, इसकी तो बात चलती है। यह बात तो ऐसी ही है। आहाहा! यह तो समयसार नाटक बनारसीदास ने बनाया है।

कुबुद्धि के रास्ते चलना, वह भाव-वेश्या सेवन है,... आहाहा! **और कठोर परिणाम रखकर प्राणों का घात करना, वह भाव-शिकार है,...** अन्दर द्वेष करके पर का घात करना, वह द्वेष, वह शिकार है। आहाहा! अपना शिकार—अपनी शान्ति का उसमें शिकार होता है। आहाहा! राग और द्वेष के परिणाम में रुचि और प्रेम (उसमें) निज शान्ति का शिकार होता है। ऐसी बात है, भाई! समझ में आया? **देहादि परवस्तु में आत्मबुद्धि रखना, वह भाव-परस्त्रीसंग है,...** अभी कहा वह। देह, राग, पुण्यभाव में आत्मबुद्धि रखना। आहाहा! वह शुभभाव और देह और स्त्री आदि परपदार्थ सब, उन सबमें आत्मबुद्धि रखना, वह भाव-स्त्रीसंग है। बाहर की स्त्री का संग तो अनन्त बार छोड़ा। उसमें क्या हुआ? समझ में आया? यह परस्त्री जो आत्मा की विकार परिणति... आहाहा! उसमें आत्मबुद्धि रखना। भगवान तो निर्मलानन्द प्रभु है, उसकी बुद्धि छोड़कर शुभाशुभ परिणाम, जो मलिन है, उसमें आत्मबुद्धि करना, वही परस्त्री का सेवन है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यभिचारिणी बुद्धि।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यभिचारिणी बुद्धि। लोगों को बाहर की पड़ी है, परन्तु अन्तर चीज़ क्या है, उसकी खबर नहीं। समझ में आया? यहाँ यह कहते हैं, देखो! ओहो!

अनुरागपूर्वक पर पदार्थों का ग्रहण करने की अभिलाषा, वह भाव-चोरी है। आहाहा! प्रेम से शुभभाव को ग्रहण करना, वह भाव-चोरी है। आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ प्रभु शुद्ध चैतन्यघन को छोड़कर, ऐसे शुभराग के भाव में अपनी बुद्धि रखना अथवा प्रेम करना, वह भाव-चोरी है। **यही सातों भाव-व्यसन आत्मज्ञान का विदारण करते हैं....** यह सातों भाव-व्यसन भगवान आत्मज्ञान, सम्यग्दर्शन का विदारण करते हैं, छेदते हैं। आहाहा! समझ में आया? चिमनभाई! यह ऐसा आया। उसमें साधारण परस्त्री का लिखा है, वह तो साधारण बात है। आहाहा!

अपने में शुभराग का भाव हो, समझ में आया? वह भी हिंसा है। आहाहा! उसमें से छूटकर वीतरागी पर्याय आत्मा के आश्रय से प्रगट करना, वह अहिंसाधर्म है। वह शौच है, वह पवित्रता है। आहाहा! समझ में आया? यह एक बोल हुआ। एक गाथा (हुई)। दूसरी गाथा। **आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार अत्यन्त घृणित मद्य (शराब) से भरा हुआ घड़ा यदि बहुत बार शुद्ध जल से धोया भी जाये तो वह शुद्ध नहीं हो सकता, उसी प्रकार जो मनुष्य, बाह्य में गंगा-पुष्कर आदि....** यह तो अन्यमति के नाम लिये। परन्तु अपने शत्रुंजय आदि जाये और शत्रुंजी नदी में नहाये, उससे कोई पवित्र नहीं होता। आहाहा! **किन्तु उसका अन्तःकरण नाना प्रकार के मिथ्यात्वादि (क्रोधादि) कषायों से मलीसम (मलिन) है...** ऐसा शब्द है उसमें? भाई! है न मिथ्यात्वादि? इसमें क्रोधादि कषाय लिखा है। पाठ में मिथ्यात्व है। यह अर्थ में थोड़ा अन्तर है। '**मिथ्यात्वादिमलिमसं**' ऐसा पाठ है। जिसकी बुद्धि, देह मेरा है, पुण्य परिणाम होते हैं वे मेरे हैं और उनसे मुझे लाभ होगा, ऐसे मिथ्यात्व से जिसकी बुद्धि मलिन है। आहाहा! समझ में आया? वह अशौच है। आहाहा! पर में निज बुद्धि छोड़कर निज स्वभाव में बुद्धि करना—सम्यग्दर्शन, वह शौच है। बाकी सब शौच, अशौच है। आहाहा! समझ में आया? मिथ्यात्वादि मुख्य यह वस्तु लेना है।

अपने परमात्मप्रकाश में १०१ है न? १०१ गाथा है। आहाहा! **यह आत्मवस्तु**

का स्वभाव है,... १०१ गाथा, नीचे से तीसरी पंक्ति। **यह आत्मवस्तु का स्वभाव है,...** क्या? अपने आत्मा का, आहाहा! शुद्ध चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्द प्रभु, उसकी दृष्टि करके, उसमें लीन होना, वह कारणसमयसार में लीन हुआ। उससे कार्यसमयसार केवलज्ञानादि प्रगट होगा, वह कार्यसमयसार है। आहाहा! समझ में आया? भाई! जैनदर्शन सूक्ष्म है। लोगों को तो जैनदर्शन मिला नहीं। अजैन नाम में जैनपना धराया है। राग में पर से लाभ है (यह मान्यता) अजैनपना है। शुभराग जो दया, दान, व्रत, भक्ति से धर्म होता है, ऐसी मान्यतावाला जैन नहीं है, अजैन है। समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दघन प्रभु का अनुभव करना। आहाहा! वह चैतन्य पवित्र को अनुसरकर अनुभव करना। 'अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप, अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।' समझ में आया? आहाहा! अरे! मूल बात बिना सब थोथा चले और सब जिन्दगी गँवावे, चार गति में भटकते हैं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, अपना जो कारणपरमात्मा, ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, उसका अनुभव करके दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्रगट करता है, सम्यग्दर्शन, वह निर्विकल्प दशा (प्रगट करता है), उसे यहाँ कारणसमयसार कहते हैं। और उस कारणसमयसार से कार्यसमयसार—केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रगट होता है, उसे कार्यसमयसार कहते हैं। बात-बात में अन्तर। वह कहते हैं न? 'आनन्द कहे परमानन्दा माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मळे ने एक तांबियाना तेर।' इसी प्रकार भगवान कहते हैं, तुझे और मेरे बात बात में अन्तर है। समझ में आया? परमात्मप्रकाश है, कभी देखा नहीं। कैलाशचन्दजी! घर में है या नहीं? हमारी बहिन के पास तो होगा। उनके पास तो होगा, उसमें क्या? बहिन के पास है न? माँ! यह परमात्मप्रकाश लिया? लिया। आहाहा! यह चीज़ तो क्या है! जैनदर्शन के प्राण।

भगवान परमात्मस्वरूप ही है, ऐसा परमात्मप्रकाश कहता है। तेरी चीज़ ही परमात्मस्वरूप है। विकल्प, राग, मन के सम्बन्ध बिना की, कर्म बिना की चीज़, तेरा परमात्मस्वरूप अनन्त आनन्द और ज्ञानस्वरूप प्रभु है। आहाहा! उसकी अन्तर में, वह परमात्मस्वरूप जो असली ध्रुव कायम को यहाँ कारणपरमात्मा कहते हैं। समझ में आया? बात में अन्तर बहुत। इस कारणपरमात्मा के सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन अन्तर में ज्ञान का अनुभव करके, ज्ञान की प्रतीति (करना), पूर्ण ज्ञानस्वरूप है, ऐसी अन्तर में

निर्विकल्प राग बिना की प्रतीति करना, उसका नाम तो प्रथम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया? और उस सम्यग्ज्ञान के बाद, पूर्णानन्द प्रभु स्वरूप है, उसे सं अर्थात् अपने से प्रत्यक्ष ज्ञान का संवेदन करना, राग का नहीं, ज्ञान-आनन्द का संवेदन करना, इसका नाम सम्यग्ज्ञान है। और उस स्वरूप—भगवान परमात्मा में अन्तर लीन होना, अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन करना। आहाहा! (वह सम्यक्चारित्र है)। आहाहा! यह भोजन करते हैं न? सवेरे साटा और फाटा... साटा को क्या कहते हैं तुम्हारे? खाजा। खाजा कहते हैं न? यह मीठा खाजा नहीं आते? अभी खाजा आये थे विद्यार्थियों के लिये। कोई लाया था। खाजा कहते हैं तुम्हारे, नहीं? यहाँ साटा कहते हैं। आहाहा! यह खाजा तो भगवान आनन्द का नाथ, उसे खा, वह खाजा है। समझ में आया? अरेरे! यह कहाँ से लावे? भाई! अभी बात ही सुनने को न मिले, वह बेचारा कहाँ जाये? अरे!

प्रभु तो ऐसा कहते हैं, यह कारणपरमात्मा सच्चिदानन्द प्रभु ध्रुव, वह कारणजीव कहो, कारणपरमात्मा कहो, त्रिकाली कारणसमयसार कहो, उसके सन्मुख का अनुभव, निर्विकल्प राग बिना की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, उस प्रगट पर्याय को कारणसमयसार कहते हैं। त्रिकाल को कारणसमयसार और प्रगट पर्याय जो हुई, वीतरागी सम्यक्त्व, वीतरागी ज्ञान, वीतरागी चारित्र—स्थिरता को कारणसमयसार कहते हैं। और उस कारणसमयसार का फल अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि जो कार्यसमयसार भगवान होता है, वह कार्यसमयसार है। उस कारणसमयसार का वह कार्यसमयसार फल है। कोई व्यवहार दया, दान, व्रत से कार्य आता है, ऐसा नहीं है। यह लोगों को एकान्त लगता है, परन्तु वस्तु सम्यक् एकान्त ऐसी है। समझ में आया? आहाहा! महाप्रभु चैतन्यरत्न!

'ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे', 'ज्यों निर्मलता...' कहते हैं न यहाँ? यह वस्तु का स्वभाव, देखो! **यह आत्म-वस्तु का स्वभाव है,...** क्या? 'ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की' स्फटिक रत्न होता है न? हमने तो इतना स्फटिक रत्न देखा है। जामनगर में। (संवत्) १९९० के वर्ष में। १००वीं गाथा चलती थी। फिर डॉक्टर आये। प्राणजीवन डॉक्टर। डॉक्टर है, मासिक ढाई हजार वेतन, उस समय, हों! यह तो (संवत्) १९९० के वर्ष की बात है। तब तो हम सम्प्रदाय में थे। परन्तु समयसार वांचते थे न! तो उसने कहा।

मुमुक्षु : स्फटिक....

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना स्फटिक बताया। छह लाख रुपये का तो एक सोलेरियम है। सोलेरियम समझे? छह लाख रुपये की मशीन है। उस समय के छह लाख, हों! अभी तो बढ़ गये। छह लाख रुपये की। सूर्य की धूप आवे न? तो उसमें तांबें के होते हैं। फोड़ा हो, उसे लगावे तो मिट जाये। ऐसे छह लाख का सोलेरियम है। उस डॉक्टर ने १००वीं गाथा सुनी। समयसार की १००वीं गाथा बहुत सूक्ष्म है। तो कहे, महाराज! आप देखने आओ, आपको दृष्टान्त में काम आयेगा। फिर हम देखने गये थे। समझ में आया? अपने १०० गाथा में आया न? समयसार नहीं? यह तो जामनगर में चली थी, उसकी बात है। राजकोट में तो १०० तक चली थी। १९९० के वर्ष। वहाँ चली थी। वहाँ से यहाँ गये थे। जामनगर में भी चली थी। १०० में तो बहुत अधिकार आ गया है। आहाहा! क्या है?

आत्मा में प्रदेशों का जो कम्पन होता है और जो राग की इच्छा वृत्ति उठती है, उस राग और कम्पन का जो अज्ञानी कर्ता होता है तो पर के कार्य काल में कम्पन और राग को निमित्तकर्ता कहा जाता है। बात बात में अन्तर। सब उल्टी बातें। जिसका घड़ा... समझते हो? यह घड़ा मिट्टी का। उल्टा हो तो, उसके ऊपर सब उल्टे रहें, उसके ऊपर सीधा नहीं रहे। घड़ा समझते हो या नहीं? कैलाशचन्दजी! यह मिट्टी का। नीचे मुख रखे तो ऊपर ऐसे न रह सके। उल्टे के ऊपर उल्टा ही रहे। इसी प्रकार जिसकी दृष्टि उल्टी है, उसके तर्क आदि शास्त्रज्ञान सब उल्टा है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, वहाँ १००वीं गाथा में लिया था। वे डॉक्टर व्याख्यान में आये थे। वहाँ ले गये थे। कहा कि, देखो! भगवान! एक बार बात सुनो! समझ में आया? तब तो कहे अभी सम्प्रदाय में थे, हों! फिर (संवत्) १९९१ में छूटा। कहा, आत्मा में जो राग होता है और आत्मा के प्रदेशों का कम्पन होता है, वह कम्पन और राग विकार है। चाहे तो शुभराग हो। तो उस राग और कम्पन का जो अज्ञानी कर्ता होता है। क्यों? कि वस्तु पवित्र है। और अपवित्र का कर्ता होता है, अपवित्र चीज़ मेरी है, ऐसा उसने माना। आहाहा! तो वह पुण्य और पाप के भाव अथवा कम्पन का कर्ता अज्ञानी होता है। राग का शुभभाव। उस पर की क्रियाकाल में उसके योग और राग निमित्तकर्ता कहलाते

हैं। उसका कार्यकाल तो वहाँ पर में होता है। परन्तु यह अज्ञानी आत्मा योग और राग को करनेवाले को निमित्तकर्ता कहलाता है। यह दोपहर में चलता है। दोपहर में बहुत आयेगा। कल भी बहुत आया था। अभी आज बहुत विशेष आयेगा। यह तो वीतराग का मार्ग है, बापू! सर्वज्ञ तीन लोक के नाथ। यह कहीं साधारण ऐरे-गैरे चल निकले, ऐसा यह मार्ग नहीं है।

यहाँ कहते हैं कि योग और राग का कर्तृत्व समकिती को-ज्ञानी को छूट जाता है। समझ में आया? यह गाथा वहाँ चली थी। कम्पन और इच्छा का कर्ता ज्ञानी-सम्यग्दृष्टि नहीं होता। क्योंकि मेरी वस्तु कम्पन और राग से भिन्न है। ऐसी पवित्रता का भान होने से सम्यग्दृष्टि राग और कम्पन का कर्तृत्व अथवा अपनापना छूट जाता है तो उस प्राणी को पर के जो कार्य होते हैं, उसमें वह ज्ञानी निमित्तकर्ता भी नहीं। परन्तु ज्ञानी को तो वह चीज़ होती है, और राग होता है, वह अपने ज्ञानस्वभाव में ज्ञान का भान हुआ, वह स्वपरप्रकाशक ज्ञान हुआ, उसमें राग और परचीज़ निमित्त होती है। ज्ञान में निमित्त होती है इस ओर। किसे खबर यह क्या वस्तु? ऐसे के ऐसे बाहर में लो धर्म। आहाहा! यहाँ कहते हैं,... उस समय यह गाथा चलती थी। (संवत्) १९९०। ४२ वर्ष हुए। ४२। यहाँ ४२वाँ चौमासा चलता है। फिर तुरन्त (संवत्) १९९१ में हम यहाँ आये। १९९१, फाल्गुन कृष्ण ३। तुम्हारी चैत्र कृष्ण ३ को यहाँ आये। फाल्गुन कृष्ण ३, ४१ वर्ष पूरे हुए। यह ४२वाँ चलता है। सोनगढ़ में। यह तो पूरा जंगल था। आहाहा!

मुमुक्षु : जंगल में मंगल हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! आत्मा को रागसहित मानना, वह जंगल है। राग से रहित अनुभव करना, वह मंगल है। ऐई! पद्मचन्दजी! कठिन बातें ऐसी, भाई! भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, सत् चिदानन्द, सत्-शाश्वत्, ज्ञान और आनन्द का सागर प्रभु। उसे राग सहित मानना, वह जंगल—खाली आत्मा है। आहाहा! और राग से रहित चिदानन्द प्रभु का अनुभव करना, वह मंगल है। पण्डितजी! यहाँ तो सब में अर्थ में अन्तर है। वस्तु ऐसी है। आहाहा! अरे! कभी दरकार की नहीं। अपनी चीज़ अन्दर क्या है, उसे जाने बिना करो यह, यह करो। करके मर जा न! व्रत किये और तप किये और अपवास किये। मर गया। समयसार में लिखा है, यह सब कायक्लेश है। समझ में

आया ? निर्जरा अधिकार में। कायक्लेश, यह तो खेद है। भगवान आनन्द के नाथ को जाना नहीं और यह क्रियाकाण्ड के राग में लवलीन हो गया, मूढ़ मिथ्यादृष्टि कायक्लेश करता है। चार गति में भटकता है। समझ में आया ? श्रीपालजी ! ऐसी बातें है, भाई ! दुनिया से बहुत विरुद्ध है। दुनिया विरुद्ध है तो विरुद्ध से विरुद्ध यह। आहाहा ! यहाँ यह कहा, देखो !

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से प्रकाशता है। क्या कहा ? अपनी कारणसमयसार जो वस्तु त्रिकाली है, उसमें से कारणसमयसार की पर्याय प्रगट की, उससे कार्यसमयसार केवलज्ञान प्रगट होता है। तो वह केवलज्ञान कैसा है ? **केवलज्ञान से निज और पर को सब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से प्रकाशता है। यह आत्म-वस्तु का स्वभाव है,...** आहाहा ! वह तो सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा है। अरे ! भाई ! यह बातें बैठना बहुत कठिन ! भगवान तो ज्ञानस्वरूपी सर्वज्ञस्वभावी, उसमें एकाग्र होकर मोक्षमार्ग प्रगट किया तो सर्वज्ञस्वभाव की व्यक्तता कार्यसमयसार केवलज्ञान, वह कार्य। सर्वज्ञस्वभाव शक्ति की व्यक्तता पूर्ण प्रगट हो जाती है। यह वस्तु का स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! **यह आत्म-वस्तु का स्वभाव है,...** ऐसा है न ? आहाहा ! एक समय में तीन काल—तीन लोक द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ज्ञात होते हैं, वह तो वस्तु का स्वरूप है। स्वरूप जो त्रिकाल सर्वज्ञस्वभावी था, भगवान तो सर्वज्ञस्वरूपी ही आत्मा अन्दर है। सब आत्मा। स्त्री, पुरुष का लिंग और रागादि चीज़ आत्मा की नहीं। उसे निकालकर देखो तो परमात्मा शुद्ध चिदानन्दमूर्ति भगवान है। बाहर से न देखो, शरीर को न देखो, राग को न देखो। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ यह कहा... आहाहा ! यह क्या कहते हैं ? अपना स्वभाव सर्वज्ञस्वरूपी है। त्रिकाल, हों ! उस सर्वज्ञस्वभाव की अन्तर रुचि हो, राग से पृथक् होकर और स्वभाव में एकत्व होकर, राग से—विकल्प से पृथक् होकर और स्वभाव से एकत्व होकर, यह समयसार की तीसरी गाथा है। एकत्व-विभक्त। यह शब्द आ गया। अन्दर विकल्प से भिन्न पड़कर स्वभाव से एकत्व करके जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्रगट होते हैं, वह कारणसमयसार मोक्ष का उपाय है। व्यवहार जो यह दया, दान और व्रत, भक्ति-फक्ति वह कोई मोक्ष का उपाय नहीं है, वह तो बन्ध का कारण है। अरे... अरे ! इतनी सब बातें

लोगों को कठिन पड़ती है। आहाहा! भाई! वीतराग का मार्ग तो यह है। चाहे तो आज बैठा (स्वीकार कर), कल बैठा। यह वस्तु बैठने से ही छुटकारा है। आहाहा!

इसमें सन्देह नहीं समझना। आहाहा! क्या कहते हैं यह? कि पूर्ण केवलज्ञान एक समय में तीन काल—तीन लोक देखे, ऐसा दर्शन, ऐसा वीर्य और ऐसा आनन्द, वह तो वस्तु का स्वभाव है तो शक्ति में था, वह प्रगट हो गया। इसमें सन्देह करना नहीं। आहाहा! अभी तो समकित में यह बात करते हैं। समझ में आया? **इस जगह ऐसा सारांश है, कि जो केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यरूप, कार्यसमयसार है,...** केवलज्ञान, वह कार्यसमयसार **वही आराधनेयोग्य है।** आहाहा! समझ में आया? क्या कहा यह? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य जो भगवान परमात्मा को प्रगट होता है, वह कार्यसमयसार। वह तुझे आराधनेयोग्य है। वह सेवन करनेयोग्य है। तो उसका सेवन करना अथवा त्रिकाली आत्मा का सेवन करना। वह पूर्ण आराधन—ध्येय को प्रगट करने के लिये इसका सेवन करना। आहाहा! शब्द कठिन भारी, भाई! तीन लोक के नाथ को ध्येय बनाकर जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्रगट होता है, उसका साध्य केवलज्ञान है। ध्येय भगवान है, त्रिकाली नाथ परमात्मस्वरूप निज भगवान, वह ध्येय है। सम्यग्दृष्टि—धर्मी को वह ध्येय है। और ध्येय से जो पर्याय प्रगट हुई, उसका साध्य क्या? पूर्ण केवलज्ञान प्रगट करना, वह उसका साध्य है। आहाहा! बहुत अन्तर, बापू! बहुत अन्तर। जगत के साथ अन्तर बहुत है, भाई! पूरी दुनिया से वीतराग का मार्ग अलग है। अरे! दुनिया ने कुछ का कुछ कल्पित कर मनवाया है और लोग माननेवाले बेचारों को भान नहीं होता। जी हाँ... जी हाँ... करते हैं। सुमनभाई! आहाहा! यह सुमनभाई रामजीभाई का पुत्र है, पहिचानते हो? मासिक आठ हजार वेतन है। ऐसो है न ऐसो? उसमें है। अब एच.पी. हो गया फिर हिन्दुस्तान (पेट्रोलियम में है)। वहाँ आठ हजार की मजदूरी करता है। मासिक आठ हजार। पचास वर्ष के नीचे उम्र है। ४९-४८? धूल में भी नहीं। आहाहा! प्रभु की लक्ष्मी तो देख, प्रभु! तेरी अखूट लक्ष्मी तुझमें पड़ी है, नाथ! तुझे खबर नहीं। आहाहा! ज्ञान और आनन्दरूपी लक्ष्मी प्रभु! तुझमें है। क्या कहें? आहाहा! जिसकी शक्ति और जिसका स्वभाव अपरिमित अर्थात् हद नहीं। आहाहा! मर्यादा नहीं, ऐसी तेरी शक्ति ज्ञान और आनन्द की अन्दर पड़ी है, प्रभु! आहाहा! उसका सम्यग्दर्शन द्वारा विश्वास ला। आहाहा!

और विश्वास के ज्ञान करके, स्थिरता करके आगे बढ़कर कार्यसमयसार प्रगट करना है, वह तेरा साध्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **वही आराधनेयोग्य है।**

यह तो परमात्मप्रकाश है। कैलाशचन्दजी! पहले घर में नहीं होगा? यह परमात्मप्रकाश घर में नहीं? यह नहीं? यह परमात्मप्रकाश नहीं होगा। यहाँ अभी आये हैं। अगास में प्रकाशित हुए हैं। एक हजार यहाँ लाये हैं। यहाँ शुरु किया न तो यहाँ तो छपाये नहीं। श्रीमद् राजचन्द्र, अगास, वहाँ बारह रुपये की कीमत में पड़े हैं और नौ रुपये में देते हैं। यहाँ छह में देते हैं। उन्होंने बारह के नौ लिये। एक हजार मँगाये। अब अपने यहाँ नौ के छह में देते हैं। किसी प्रकार सत्य समझे, भाई! यह मार्ग प्रभु का। ईसाई लोगों में एक रुपये की पुस्तक चार पैसे में देते हैं और ईसाई बनाये न यह हरिजन को और कितनों को ईसाई बनाया है न हिन्दुस्तान में? यह तो परमात्मा की वाणी, बापू! आहाहा! यह साहित्य जैसे बने वैसे कीमत घटाकर लोगों में प्रचार होओ। समझ में आया? यह बात है। कहा न अभी?

यह मकान (परमागममन्दिर) जब हुआ, छब्बीस लाख का हुआ। एक व्यक्ति का पत्र आया। महाराज! मेरे पास पैंतीस तोला सोना है। आप लो और समयसार का सोने का कवर बनाओ। कैलाशचन्दजी! इनकार कर दिया। भाई! यहाँ अब कुछ नहीं। यह हो गया वह हो गया। पैंतीस तोला सोना। अपने समयसार है न? चाँदी का कवर तो है, सोने का बनाओ। अरे! अब रहने दो। अब कोई भी पैसे का खर्च करना हो तो चाँदी भी लाना नहीं। ऐसा कहा था। अभी सत्रह हजार का आया है न? समवसरण। सत्रह हजार— दस और सात। चाँदी का आया है न? आया, तब मैंने सभा में कह दिया। अब किसी को चाँदी का यहाँ लाना नहीं। यहाँ नहीं रखेंगे। अब पैसा खर्च करना हो तो शास्त्र की कीमत कम करने में खर्च करना। कैलाशचन्दजी! ऐसे चाहे जहाँ डाल देना, उसका क्या काम है? भगवान की वाणी लोग सुनें-सुनें, वाँचे। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो उसकी कीमत है, बापू! आहाहा! यह भी लोगों को बनाना नहीं था। तीन लाख का बनाना था। हमने तो किसी को कहा ही नहीं, हों! मन्दिर बनाओ या यह करो, किसी को नहीं कहा। इन्हें विचार हुआ कि महाराज की ८०वीं जन्मजयन्ती... के उपलक्ष्य में कुछ बनाना हो तो लोगों का विचार माँगा। तो लोग कहे, परमागम बनाओ। तीन लाख

का बनाओ। तीन लाख का बनाना था तो पाँच लाख का चन्दा हो गया। पाँच लाख का चन्दा हुआ तो अब दस लाख का बनाओ। दस लाख के बदले छब्बीस लाख का हो गया। जो बनना हो उसे कौन करे और कौन रचे? आहाहा! समझ में आया? अब तो किसी को चाँदी का बर्तन या फोटो अमुक बनाना नहीं। यहाँ नहीं रखेंगे। वह चीज़ यहाँ किस काम की? यह तो एक शास्त्र था, भगवान की वाणी है और मशीन आयी है इटली से। पहले-पहले इनका पुत्र लाया। गया था। यहाँ तो किसी को कहा नहीं। परन्तु पोपटभाई के छह पुत्र हैं न! एक बड़ा गया था। उसके पास दो करोड़ रुपये हैं। एक गया था, बड़ा लड़का हसमुख। २९००० की न? २९००० की मशीन आयी। देखा तुमने? नहीं देखा होगा। तुम देखना। माँ ने देखा होगा। माँ! देखा? वह मशीन... मशीन। देखी है? २९००० की आयी है और १९००० के टाईप आये हैं और २०००० का खर्च हुआ है। ६९०००। सत्तर में एक कम। हिन्दुस्तान में पहला है। किसी को देते नहीं। परन्तु इनका बड़ा लड़का गया। हमारे वहाँ धन्धे के लिये नहीं चाहिए, हमारे तो शास्त्र की बात है। हिन्दुस्तान में पहली बार आयी है। किसी को देते नहीं। पौने चार लाख अक्षर इसमें बनाये हैं। मशीन से हुआ है। दूसरी जगह उत्कीर्ण किया है और यह तो मशीन से बहुत अच्छा हुआ है और इतना साफ। अक्षर उत्कीर्ण करने जो मुम्बई से आये थे। सोना भरने आये थे। ये अक्षर बने कैसे? हमने तो कभी देखे नहीं। कहा, यह उत्कीर्ण नहीं है, यह तो मशीन से बने हैं। पहली-पहली बार आयी, हिन्दुस्तान में पहली बार (आयी है)। सात हजार के सोने के अक्षर करते थे। इनकार किया। रहने दो, भाई! हम इस छोटे गाँव में आ गये हैं। सात हजार अक्षर सोने के (करने के) के बाद बन्द कर दिया। पन्द्रह हजार लिखे। बस। ऊपर है न? पन्द्रह हजार। ऊपर इतना रखा, बस। ऊपर सोने के हैं वे। ऊपर हैं वे सोने के हैं। साठ हजार करनेवाले थे। इनकार किया, रहने दो, बापू! हम छोटे गाँव में आ गये हैं। यह तो जंगल में आ गये हैं। फिर बन्द रखा। पन्द्रह हजार करके बन्द कर दिया। फिर यह रंग किया। यह तो बनने के काल में, उसके कारण से बनते हैं, कौन बनावे? आहाहा!

मुमुक्षु : पोपटभाई....

पूज्य गुरुदेवश्री : पोपटभाई का नाम कहा। इनका बड़ा पुत्र है, हसमुख। छह पुत्र हैं। धूल है। आत्मा का राग नहीं तो परचीज़ कहाँ से आयी? यह बात तो यहाँ चलती है।

गाथा - १०२

अथास्मिन्नेवार्थे पुनरपि व्यक्त्यर्थं दृष्टान्तमाह –

१०२) तारायणु जलि बिंबियउ णिम्मलि दीसइ जेम।
अप्पए णिम्मलि बिंबियउ लोयालोउ वि तेम।।१०२।।

तारागणः जले बिम्बितः निर्मले दृश्यते यथा।
आत्मनि निर्मले बिम्बितं लोकालोकमपि तथा।।१०२।।

तारायणु जलि बिंबियउ तारागणो जले बिम्बितः प्रतिफलितः। कथंभूते जले। णिम्मलि दीसइ जेम निर्मले दृश्यते यथा। दृाष्टान्तमाह। अप्पए णिम्मलि बिंबियउ लोयालोउ वि तेम आत्मनि निर्मले मिथ्यात्वरागादिविकल्पजालरहिते १बिम्बितं लोकालोकमपि तथा दृश्यत इति। अत्र विशेषव्याख्यानं यदेव पूर्वद्दष्टान्तसूत्रे व्याख्यानमत्रापि तदेव ज्ञातव्यम्। कस्मात्। अयमपि तस्य द्दष्टान्तस्य द्दढीकरणार्थमिति सूत्रतात्पर्यार्थः।।१०२।।

आगे इसी अर्थ को फिर भी खुलासा करने के लिये दृष्टान्त देकर कहते हैं –

जैसे स्वच्छ नीर में तारे नित प्रतिबिम्बित होते हैं।
वैसे वीतराग आत्मा में सकल पदार्थ झलकते हैं।।१०२।।

अन्वयार्थ :– [यथा] जैसे [तारागणः] ताराओं का समूह [निर्मले जले] निर्मल जल में [बिम्बितः] प्रतिबिम्बित हुआ [दृश्यते] प्रत्यक्ष दिखता है, [तथा] उसी तरह [निर्मले आत्मनि] मिथ्यात्व रागादि विकल्पों से रहित स्वच्छ आत्मा में [लोकालोकं अपि] समस्त लोक–अलोक भासते हैं।

भावार्थ :– इसका विशेष व्याख्यान जो पहले कहा था, वही यहाँ पर जानना अर्थात् जो सबका ज्ञाता द्रष्टा आत्मा है, वही उपादेय है। यह सूत्र भी पहले कथन को दृढ़ करनेवाला है ।।१०२।।

गाथा–१०२ पर प्रवचन

आगे इसी अर्थ को फिर भी खुलासा करने के लिये दृष्टान्त देकर कहते हैं—

१०२ (गाथा)। १०२।

१०२) तारायणु जलि बिंबियउ णिम्मलि दीसइ जेम।
अप्पए णिम्मलि बिंबियउ लोयालोउ वि तेम॥१०२॥

आहाहा! देखो! दृष्टान्त देते हैं। आहाहा! परमात्मप्रकाश तो....

अन्वयार्थः—जैसे ताराओं का समूह निर्मल जल में प्रतिबिम्बित हुआ... क्या कहते हैं? रात्रि का समय है और नदी के जल का प्रवाह चलता है। उसमें तारे और चन्द्र दिखते हैं। वे तारे, चन्द्र नहीं; वह तो पानी की पर्याय है। जल की पर्याय है। ध्यान रखना, दृष्टान्त देकर क्या सिद्ध करते हैं। आहाहा! **जैसे ताराओं का समूह...** ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारे हैं। वह तारे हैं न? तारे। उनकी संख्या भगवान ने सिद्धान्त में ऐसी कही है, ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारे हैं। एक चन्द्र, अट्ठाईस नक्षत्र, अठयासी ग्रह, ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारे हैं। सूर्य के समय ... चन्द्र के समय रात्रि में दिखते हैं न? एक चन्द्र, अट्ठाईस नक्षत्र, अठयासी ग्रह, ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारे हैं। यहाँ दृष्टान्त देना है कि निर्मल जल में—स्वच्छ जल में रात्रि में देखो तो उन तारागण का प्रतिबिम्ब अर्थात् वह जल की पर्याय दिखती है। तारे अन्दर नहीं हैं। समझ में आया? अन्दर जो प्रतिबिम्ब दिखता है, वह तो जल की पर्याय है। दर्पण है न? दर्पण। यहाँ बिच्छू हो या कोयला हो, अन्दर दिखता है। अन्दर कोयला और बिच्छू है? वह तो दर्पण की अवस्था है। दर्पण में दिखता है न? दर्पण, दर्पण। वह तो दर्पण की अवस्था है। आहाहा! इसी प्रकार जल की अवस्था ऐसी है कि इतने करोड़ तारे हों, उनके प्रतिबिम्ब पड़े, जल की पर्याय जलरूप हुई है। आहाहा! इसी प्रकार केवलज्ञान को बतायेंगे। आहाहा!

निर्मल जल में प्रतिबिम्बित हुआ... देखा, वापस निर्मल जल। मलिन हो तो अन्दर प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। आहाहा! **प्रत्यक्ष दिखता है, उसी तरह मिथ्यात्व रागादि विकल्पों से रहित स्वच्छ आत्मा में...** आहाहा! राग की एकता का मिथ्यात्व जिसने टाल दिया है, आहाहा! दया, दान के विकल्प से भी मेरी चीज़ भिन्न है, ऐसा भान हुआ है, आहा! मिथ्यात्व का नाश होकर। **मिथ्यात्व रागादि विकल्पों से रहित स्वच्छ आत्मा में समस्त लोक-अलोक भासते हैं।** जैसे जल की पर्याय में वे कोड़ाकोड़ी तारे नहीं परन्तु उनकी प्रतिबिम्ब की जल की पर्याय भासित होती है। उसी प्रकार भगवान आत्मा अपनी ज्ञान की पर्याय में लोकालोक भासित होता है, वह लोकालोक नहीं, लोकालोक सम्बन्धी अपनी जो पर्याय है, उसे जानने से लोकालोक दिखता है। आहाहा! यह तो

बापू! प्रभु का मार्ग, भाई! कहीं है नहीं। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनवरदेव... आहाहा! देखो तो सही!

जल की स्वच्छता में जो तारे दिखते हैं, वह जल की स्वच्छता की पर्याय है, तारे नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा केवलज्ञान प्रगट करता है, उस केवलज्ञान में लोकालोक जो प्रतिबिम्बित होता है, वह लोकालोक नहीं, उस सम्बन्धी अपनी निर्मल पर्याय प्रगट हुई, उसमें दिखता है। जल को देखने से जैसे तारे दिखते हैं, उसी प्रकार ज्ञान की पूर्ण पर्याय को देखने से अन्दर में लोकालोक दिखता है। आहाहा! क्या कहते हैं? अमरचन्दभाई! आहाहा! प्रभु! तू कितना बड़ा है, देख तो सही! ओहोहो! ऐसी केवलज्ञान की एक समय की पर्याय, जिसमें लोकालोक ज्ञात होता है, वह लोकालोक के कारण से नहीं। अपनी पर्याय की सामर्थ्य इतनी है कि स्व और पर को जानने की परिणति हो गयी। आहाहा!

यह चर्चा हमारे बहुत वर्ष पहले हुई थी। सम्प्रदाय में चलती थी न हमारे। एक सेठ कहते थे कि लोकालोक है तो केवलज्ञान हुआ। कहा, बिल्कुल खोटी बात है। केवलज्ञान तो अपनी पर्याय में से हुआ है। उसमें लोकालोक और अपने को जानने की पर्याय अपने से हुई है। लोकालोक है तो हुई है, ऐसा है नहीं। यह तो (संवत्) १९८३ के वर्ष की बात है। हमारे तो पहले से चलती थी न अन्दर की। १९८३, कितने वर्ष हुए? १७ और ३२ = ४९। पचास में एक कम। क्या कहते हैं?

तारे और चन्द्र है, इसलिए जल की पर्याय भासित होती है? वह तो जल की पर्याय के सामर्थ्य से उसरूप परिणमन हुआ है। आहा! बहुत सूक्ष्म बात, भाई! समझ में आया? दर्पण में—दर्पण में अग्नि... अग्नि ऐसे होती है न? तो क्या अग्नि अन्दर में है? वह तो दर्पण की अवस्था है। उस दर्पण की अवस्था में अग्नि का प्रतिबिम्ब दिखता है। है तो दर्पण की अवस्था। और वह अवस्था भी अग्नि है तो ऐसी अवस्था हुई है, ऐसा नहीं। आहाहा! दर्पण की पर्याय की इतनी सामर्थ्य है कि अपने से अग्नि सम्बन्धी का ज्ञान प्रतिबिम्ब और अपनी पर्याय प्रगट करता है।

इसी प्रकार यहाँ परमात्मा कहते हैं... देख तो सही नाथ! तेरी सामर्थ्य। जिसमें—तेरी शक्ति में ऐसी केवलज्ञान की अनन्त पर्यायें पड़ी हैं। उसमें से केवलज्ञान पर्याय जो

लोकालोक को जानने की प्रगट होती है, उस केवलज्ञान की पर्याय में लोकालोक का प्रतिबिम्ब अर्थात् झलक दिखती है। लोकालोक अन्दर नहीं। आहाहा! पर्याय में स्वपरप्रकाशक के सामर्थ्य से इतनी परिणति हुई है। आहाहा! यह तो सब पागल कहें ऐसा है। आहाहा! इतने सात हाथ में, शरीर सात हाथ का है, केवलज्ञान इतने में है। देह से भिन्न केवलज्ञान यहाँ होता है। उस कारणसमयसार के कारण से कार्यपरमात्मा हुआ, उस कार्यपरमात्मा की पर्याय की सामर्थ्य कितनी है, यह बताते हैं। आहाहा! अपनी पर्याय जो मोक्षमार्ग के कारण से प्रगट हुई... आहाहा! उस पर्याय में अपना त्रिकाली स्वरूप ज्ञात होता है। उस पर्याय में अपना द्रव्य ज्ञात होता है, परन्तु उस पर्याय में द्रव्य आता नहीं। क्या कहा? भगवान! यह मार्ग तो...

एक समय की पर्याय में द्रव्य त्रिकाली वस्तु भगवान है, उसका ज्ञान होता है, परन्तु वह चीज़ आती नहीं। चीज़ तो चीज़ में रहती है। सुमनभाई! लॉजिक से तो कहा जाता है परन्तु अब क्या हो? इसी प्रकार एक समय की पर्याय में लोकालोक नहीं आता, परन्तु लोकालोक सम्बन्धी जो अपना ज्ञान अपने से परिणत हुआ है, वह आता है। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! तेरी बात तो देख! एक कार्यसमयसार केवलज्ञान परमात्मा जो है, अरिहन्त विराजते हैं, अनन्त सिद्ध विराजते हैं, वे कार्यसमयसार, एक समय की ज्ञान की एक गुण की एक पर्याय। आहाहा! ऐसे तो अनन्त गुण हैं। वह एक समय की पर्याय, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के कारण से जो प्रगट हुई, वह तो एक समय की पर्याय अपना द्रव्य और अनन्त गुणों को जानती है, तथापि अनन्त द्रव्य और गुण, पर्याय में आते नहीं। वह पर्याय लोकालोक को जानती है, तथापि लोकालोक पर्याय में आते नहीं। आहाहा! अब इसमें तुम्हारे रुपये-फुपये की कुछ कीमत नहीं होती।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उसके कारण से बना। कौन बनावे? रामजीभाई ने ध्यान रखा था। परन्तु ध्यान रखा, इसलिए बना? बाहर निकले और पूछे वापस। सज्झाय में से। किसने किया? ध्यान तो रखा। वजुभाई ने ध्यान रखा, परन्तु वजुभाई कितनी बार दो-दो महीने बाहर जाते थे। ये तो सदा यहाँ ही हों।

मुमुक्षु : वजुभाई ध्यान रखते, वे तो इंजीनियर थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इंजीनियर चले जाते उनके लड़के के पास या किसी के लिये। कोई बीमार था। ऐसा एक-दो बार सुना था। कहो, समझ में आया? वह पर से नहीं बनता और उसका यहाँ ज्ञान हुआ तो वह है तो ज्ञान हुआ—ऐसा भी नहीं। आहाहा! उस ज्ञान की पर्याय के सामर्थ्य से स्वपर का ज्ञान हुआ है। अरे! वस्तु की स्थिति कैसी है, यह खबर नहीं, प्रतीति हो कहाँ से?

नौ तत्त्व में मोक्षतत्त्व है। मोक्षतत्त्व है न नौ में? जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। मोक्षतत्त्व केवलज्ञान है। मोक्ष तो अभी केवलज्ञान की एक समय की पर्याय में कितनी सामर्थ्य है और किस कारण से है, इसकी— मोक्षतत्त्व की खबर न हो तो उसे जीवतत्त्व की खबर कहाँ से होगी? क्योंकि ऐसी मोक्षतत्त्व की पर्याय तो जीव में अनन्त पड़ी हैं। आहाहा! समझ में आया? केवलज्ञान में....

यहाँ कहते हैं कि जैसे जल की स्वच्छता में तारे दिखते हैं, वे तारे नहीं, वह जल की स्वच्छ अवस्था है। उसी प्रकार भगवान ज्ञान की पर्याय में एक समय में स्वद्रव्य पूर्ण और लोकालोक जानता है, वह लोकालोक और द्रव्य उसमें आये नहीं, पर्याय की इतनी सामर्थ्य है। स्व-पर को विकल्प बिना जाने, ऐसी पर्याय की सामर्थ्य है। आहाहा! मोक्षतत्त्व की प्रतीति, नौ तत्त्व की यथार्थ प्रतीति होनी चाहिए न! ऐसे का ऐसा मान ले, केवलज्ञान है और तीन काल को (जानता है) परन्तु वह है क्या? आहाहा! वह यहाँ दृष्टान्त दिया है, देखो न! परमात्मप्रकाश, योगीन्द्रदेव (कृत)। लगभग १२००-१३०० (वर्ष हो गये)। ई.स. ६०० या ऐसा कुछ है। यह कितनी चलती है? १९०० न? १३ के वर्ष में लगभग योगीन्द्रदेव हुए। ई.स. ६००। यह १९७५ चलता है न? इसमें है, अन्दर लिखा है। पढ़ा तो है। योगीन्दु ईसा की छठवीं शताब्दी में हुए हैं। प्रस्तावना में है।

मुमुक्षु : यह बीसवीं शताब्दी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बीसवीं शताब्दी है। अर्थात् १४०० वर्ष हुए। इसमें है। ११५ पृष्ठ पर है। शुरुआत में देखो! ११५ पृष्ठ है न प्रस्तावना का? प्रस्तावना का ११५ पृष्ठ। दूसरा पेरेग्राफ। योगीन्द्र के समय की आरम्भ की अवधि। दूसरा पेरेग्राफ है न? ११५ पृष्ठ दूसरा पेरेग्राफ। ... इसलिए योगीन्दु ईसा की छठवीं शताब्दी में हुए हैं। है? १४०० वर्ष हुए। आहाहा! यहाँ तो सब तैयार है। आहा! भाई ने अभी प्रश्न किया, कितने

वर्ष हुए? बराबर खबर नहीं, १३०० या १४००। आहाहा! योगीन्द्र दिगम्बर मुनि जंगल में बसनेवाले आनन्दकन्द में झूलनेवाले। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, पंच महाव्रत के विकल्प के भी जाननेवाले; करनेवाले नहीं। आहाहा! समझ में आया? उन्होंने यह परमात्मप्रकाश बनाया है। तुम पूछते थे न? यह परमात्मप्रकाश ई.स. ६०० वर्ष। लगभग १४०० वर्ष हुए। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य को दो हजार वर्ष हुए। संवत् ४९। आहाहा!

कहते हैं, **निर्मल जल में प्रतिबिम्बित हुआ प्रत्यक्ष दिखता है,....** आहाहा! **उसी तरह मिथ्यात्व रागादि विकल्पों से रहित...** पुण्य से धर्म है, निमित्त से पर में कार्य होता है, ऐसी जो मिथ्याभ्रान्ति, उससे रहित होकर। आहाहा! सम्यग्दर्शन और चारित्रसहित होकर। ऐसा। मिथ्यात्वरहित अर्थात् सम्यग्दर्शन। रागादि रहित अर्थात् स्थिरता। आहाहा! भ्रान्ति को छेदकर निर्भ्रान्त सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ। पूर्णानन्द का नाथ मैं हूँ, शुद्ध चैतन्य ज्ञानजल में हूँ। मैं किसी का करनेवाला नहीं और मैं राग का भी करनेवाला नहीं। आहाहा! ऐसा अपना जो स्वभाव, चैतन्यमूर्ति पूर्ण शुद्ध का भान हुआ, उसकी प्रतीति हुई, उसमें रमणता हुई, वह चारित्र। चारित्र, वह कहीं पंच महाव्रत और नग्नदशा, वह कोई चारित्र नहीं। आहाहा!

चरना, रमना, जमना, इसका नाम चारित्र है। जैसे पशु चरता है न? तो ... या घास? पशु चरता है न? घास चरता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा, चरना अर्थात् अन्दर आनन्द का भोजन करना, अन्दर में, उसका नाम चारित्र है। पशु जैसे घास खाता है, उसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप का अनुभव और ज्ञान हुआ है, पश्चात् आनन्द को चरना—आनन्द को अनुभव करना, अतीन्द्रिय आनन्द को भोगना, इसका नाम चारित्र कहा जाता है। सब व्याख्या में अन्तर, बापू! ऐ... सेठ! यह सब ऐसा का ऐसा समय व्यतीत किया। कभी कुछ ध्यान रखा नहीं। पैसा... पैसा और यह धूल और धमाका। बाहर का चलता था। व्रत करो और अपवास करो, यह करो और यात्रा करो। सम्मेदशिखर की यात्रा करो। उसमें क्या होगा? वह तो शुभराग है। देह की क्रिया तो जड़ से होती है। आहाहा! प्रभु! वह तेरा स्वभाव नहीं। तेरा स्वभाव तो ज्ञान है। ऐसा कहा न? ज्ञानस्वभाव परिपूर्ण प्रभु पड़ा है, उसका अनुभव, प्रतीति, ज्ञान और रमणता करके जिसने कार्यसमयसार प्रगट किया, ऐसी एक समय की पर्याय में लोकालोक और अपना द्रव्य ज्ञात होता है, ऐसी पर्याय की सामर्थ्य है। आहाहा!

भगवान! एक समय की एक गुण की पर्याय में इतनी सामर्थ्य। ऐसी-ऐसी अनन्त गुण की एक समय की पर्याय में सामर्थ्य। ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायें, गुण में अनन्त पड़ी हैं, उसकी सामर्थ्य और अनन्त गुण का एकरूप द्रव्यस, उसकी सामर्थ्य। आहाहा! समझ में आया? उस पूरी सामर्थ्य की प्रतीति सम्यग्दर्शन करता है। अरे! भगवान! बापू! तू कौन है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। परमात्मप्रकाश परमात्मशक्तिरूप से तो तू परमात्मा ही है। परन्तु परमात्मा का ज्ञान—अनुभव करके जो परमात्मशक्ति में से केवलज्ञान व्यक्ति प्रगट की, उसका ऐसा स्वभाव है कि एक पर्याय में लोकालोक और स्व को जानता है। निर्मल जल को देखने से निर्मल जल की पर्याय भी ज्ञात होती है और पर्याय में पड़ा है, वह भी ज्ञात होता है। इसी प्रकार अपनी केवलज्ञान की पर्याय में पर्याय को जानता है, उसमें लोकालोक प्रतिबिम्बित हुए अथवा लोकालोक सम्बन्धी अपना परप्रकाशक ज्ञान हुआ, उसे भी जानता है। मार्ग ऐसा है, बापू! आहाहा! ऐ.. सुमनभाई! अब ऐसे आत्मा को रंक जैसा मानना... एक राग और पैसे मिले और स्त्री अच्छी मिली तो उसमें सुख मानना। अरे! मूढ़ है। .... तेरी सामर्थ्य तो देख। आहाहा! समझ में आया?

एक चक्रवर्ती का राज मिला, पाँच-पचास लाख, करोड़, दो करोड़ मिले तो सुखी है। धूल है। मूढ़ है। सुख तो तेरी चीज़ में है या सुख बाहर में है? आहा! समझ में आया? सुख की कितनी सामर्थ्य है! आहाहा! अनन्त-अनन्त गुण जो हैं, उनकी कितनी सामर्थ्य है! प्रभु! जिसकी एक समय की पर्याय में इतनी सामर्थ्य वर्णन की है कि पर्याय को देखने में लोकालोक देखता है। जल की पर्याय को देखने से अन्दर तारे दिखते हैं। इसी प्रकार अपनी केवलज्ञान पर्याय निर्मल हुई, उसे देखने से लोकालोक ज्ञात हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? गजब काम किया है! मुनियों ने—दिगम्बर सन्तों ने हाथ में हथेली में ऐसा बता दिया है, देख! यह तेरा परमात्मा। आहाहा! समझ में आया? परन्तु इसे निवृत्ति नहीं, फुरसत नहीं। और फुरसत मिले तो बाहर का दूसरा सुनने का मिले, यह करो, यह करो और यह करो। उसमें तत्त्व क्या है, और तत्त्व का सामर्थ्य क्या है? इतने सामर्थ्य की प्रतीति करने में प्रतीति का सामर्थ्य कितना! समझ में आया? विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, भाद्र शुक्ल १०, शुक्रवार
दिनांक-०३-०९-१९७६, गाथा-१०२-१०३, प्रवचन-८०

दशलक्षणी पर्व का छठा दिन है। संयमधर्म। संयम किसे कहते हैं, यह बात चलती है। **जिसका चित्त...** सं अर्थात् सम्यग्दर्शनसहित। जिसे आत्मा के आनन्द का अनुभव हुआ हो, उसमें प्रतीति जो सम्यग्दर्शन हो, उसे सं कहा जाता है। सं... सं। अब यम। यह सं उपरान्त अन्तर में आनन्द में लीन है। इन्द्रियों के विषयों से हटकर, छह काय की हिंसा से हटकर, अरे! छह काय की दया के विकल्प से भी हटकर अन्तर में यम-यम अर्थात् लीन होना। आहाहा! सं-यम। तीन शब्द हैं। सं अर्थात् सम्यग्दर्शन सहित। जिसे सम्यग्दर्शन अनुभव नहीं, उसके व्रतादि को संयम नहीं कहा जाता। सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसका अनुभव किया नहीं। इसके बिना सब लिया। नौवें ग्रैवेयक गया। दिगम्बर साधु, अट्ठाईस मूलगुण, हजारों रानियों का त्याग किया, शुक्ललेश्या हुई। शुक्ललेश्या, परन्तु इस राग से, विकल्प से भिन्न भगवान, वह क्रियाकाण्ड में जो राग उत्पन्न होता है, उससे भिन्न भगवान आत्मा है, उसके आनन्द के अनुभव बिना, उसे सुख की प्राप्ति नहीं हुई। समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, सम्यग्दर्शन सहित **जिसका चित्त, जीवों की दया से भीगा हुआ है...** किसी भी एकेन्द्रिय प्राणी जीव, हरितकाय अथवा पानी के जीव हैं, एक बूँद में असंख्य (जीव हैं), लीलोतरी समझे? हरिकाय। उसके एक टुकड़े में असंख्य जीव। उसके लिये आहार बनाया हो तो वह साधु ले नहीं, तीन काल में प्राण जाये तो भी (ले नहीं)। समझ में आया? ऐसी **जीवों की दया से भीगा हुआ है, जो ईर्या, भाषा, ऐषणा आदि पाँच समितियों का पालन करनेवाला है...** देखकर चलना, सत्य भाषा सर्वज्ञ कहते हैं, वैसी भाषा, सत्य बोलना, ऐषणा—निर्दोष। उसके लिये पानी की बूँद भी बनी हो तो ले नहीं। ऐसी ऐषणा समिति। आहार, पानी, भोजन, चौका उसके लिये बने, वह प्राण जाये तो भी ले नहीं। ऐसी ऐषणा समिति सम्यग्दर्शनसहित। आहाहा! समझ में आया? **ऐसे साधु के जो षट्काय के जीवों की हिंसा तथा इन्द्रियों के विषयों का त्याग है, उसी को गणधर आदि देव संयमधर्म कहते हैं।** आहाहा! गणधर—सर्वज्ञ के वजीर, दीवान उसे संयम कहते हैं।

दूसरी (गाथा)। **आचार्य कहते हैं कि प्रथम तो इस संसाररूपी गहन वन में भ्रमण करते हुए प्राणियों का मनुष्य होना ही अत्यन्त कठिन है,...** अनन्त काल मनुष्यपना मिलना कठिन है। **किन्तु किसी कारण से मनुष्य जन्म प्राप्त भी हो जाओ तो उत्तम...** जाति में जन्म होना। ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय आदि। वह महा उत्तम पुण्य के कारण से (मिलता है)। कठिन है, दु:साध्य है। **यदि किसी प्रबल दैवयोग से उत्तम जाति भी मिल जाये तो अर्हंत भगवान के वचनों का सुनना बड़ा दुर्लभ है।** सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी अपने आत्मा का आश्रय करानेवाली, आहाहा! पर से छुड़ानेवाली, यह वीतराग की (वाणी) सुनने को मिलना भी महा कठिन है। वह भी मिली, कहते हैं। सुनने को मिली। आहाहा! अधिक जीवन न हो तो क्या? शरीर का जीवन लम्बा न हो। सुनने का काल रहे नहीं, समझने का काल रहे नहीं। वह भी मिला, **तो सम्यग्दर्शन, सम्यगज्ञान की प्राप्ति होना अति कठिन है।** आहाहा! अरे! यह तो महा कठिन, बापू! सम्यग्दर्शन किसे कहे! आहाहा! समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन नहीं। वह तो विकल्प-राग है। नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा भी समकित नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! नौ तत्त्व के भेद का अनुभव करना, वह तो मिथ्यात्व है। मूलचन्दभाई! आहाहा!

एक आनन्द का नाथ प्रभु सच्चिदानन्द प्रभु, अनाकुल शान्तरस से भरपूर भगवान, उसका अन्तर में अनुभव करके प्रतीति होना, वह अनन्त काल में नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार साधु होकर गया, दिगम्बर साधु होकर अनन्त बार गया, परन्तु सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया। आहाहा!

मुमुक्षु : क्या कमी रह गयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, यह सम्यग्दर्शन नहीं हुआ, यह कमी। छहढाला का सुनाया नहीं? छहढाला में (आता है)। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवर उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' आत्मज्ञान नहीं किया। व्रत पालन किये, संयम लिया, सब बाह्य क्रियाकाण्ड किये परन्तु वास्तविक जो आत्मज्ञान है, (वह नहीं हुआ)। उस विकल्प से, राग की क्रिया से भी भगवान भिन्न है। समझ में आया? तारणस्वामी कहते हैं न? अप्पा सो परम अप्पा। उसका कहाँ भान है! आत्मा ही परमात्मा आनन्दकन्द प्रभु है। निर्विकल्प आनन्द। उसका अनुभव करना, आनन्द का

सेवन करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और आत्मज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? मुनिव्रत अनन्त बार लिया है। नग्न दिगम्बर (हुआ है)। अभी तो ऐसी क्रिया है भी नहीं। ऐसी क्रिया नौवें ग्रैवेयक में गया तब (की है)। अन्तिम नौवें ग्रैवेयक। शुभभाव से वहाँ गया। ऐसा शुभभाव तो अभी है भी नहीं। समझ में आया? पंच महाव्रत (पालन किये)। चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो क्रोध न करे। ऐसी क्रिया (पालन की) परन्तु आत्मज्ञान—राग से भिन्न मेरी चीज़ है, (ऐसा) स्वसन्मुख नहीं हुआ। स्वसन्मुख से विमुख होकर वह क्रियाकाण्ड किया। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा उपदेश नहीं मिला होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश भी मिला था। भगवान के पास अनन्त बार गया था। भगवान के पास साक्षात् तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव के समवसरण में अनन्त बार पूजा की। भव-भव में पूज्यो, परमात्मप्रकाश में आता है। साक्षात् तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव की सभा में गया। मणिरत्न के दीपक, हीरा के थाल, कल्पवृक्ष के फूल से पूजा की। तो क्या हुआ? वह तो शुभराग है। समझ में आया? ऐसा तो अनन्त बार किया है। भगवान साक्षात् तीन लोक के नाथ केवली के समीप गया। उसमें क्या हुआ? उनकी श्रद्धा की, वह तो राग है। भगवान है, ऐसी श्रद्धा तो राग है। यह भगवान आत्मा राग से भिन्न, उसकी श्रद्धा-अनुभव करे, तब सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, देखो! **सम्यग्दर्शन, सम्यगज्ञान की प्राप्ति होना अति कठिन है।** आहाहा! यह पद्मनन्दि आचार्य कहते हैं। दिगम्बर मुनि हजार वर्ष पहले, जंगलवासी-वनवासी थे। वनवासी। **यदि किसी पुण्य के उदय से अखण्ड तथा निर्मल सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति भी हो जाये तो संयमधर्म के बिना वे स्वर्ग तथा मोक्षरूपी फल के देनेवाले नहीं हो सकते।** आहाहा! फिर अन्तर आनन्दस्वरूप में रमणता। सं—सम्यग्दर्शनपूर्वक... आहाहा! निर्विकल्प शान्ति में, आनन्द में रमना, अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन करना, वह संयम है। आहाहा! सब बात दुनिया से अलग है, भगवान! आहाहा! देखो! यह लिया। **इसलिए संयम सबसे अधिक प्रशंसनीय है, अतः संयमियों को ऐसे संयम की अवश्य रक्षा करनी चाहिए।** लो, इतनी बात चली।

अब परमात्मप्रकाश। कितनी गाथा थी? भावार्थ है? ठीक। १०२।

भावार्थः—इसका विशेष व्याख्यान जो पहले कहा था, यही यहाँ पर जानना अर्थात् जो सबका ज्ञाता-दृष्टा आत्मा है,... आहाहा! यह तो राग होता है, दया, दान, व्रत, भक्ति का, उसका भी ज्ञाता-दृष्टा आत्मा है। आहाहा! उसे आत्मा कहते हैं। क्रियाकाण्ड का राग है, वह मेरा है और मैं कर्ता हूँ, वह तो आत्मा नहीं। वह तो अनात्मा मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! जगत से अलग बात है, भाई! क्या करे? भगवान की पुकार तो अनादि काल से चली आती है परन्तु उसने सुनी ही नहीं। अपनी दृष्टि रखकर सत्य बात क्या है, यह सुना नहीं।

यहाँ कहते हैं कि **सबका ज्ञाता दृष्टा आत्मा है,...** आहाहा! **वही उपादेय है।** है? राग विकल्प से, दया, दान, व्रतादि विकल्प से भिन्न, ऐसा ज्ञाता दृष्टा भगवान, वही आत्मा को—सम्यग्दृष्टि को उपादेय है। उपादेय अर्थात् आदर करनेयोग्य, ग्रहण करनेयोग्य वह है। आहाहा! बाकी व्रत, तप के विकल्प हैं, वे भी आस्रव हैं। वे आदरणीय नहीं। आहाहा! समझ में आया? भाई! मार्ग तो (ऐसा है)।

अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु बाह्य वस्तु की सुन्दरता में आकर्षित हो जाता है, उसमें आत्मा के आनन्द का घात होता है। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु, अपने आनन्द की अर्पणता छोड़कर, बाह्य की अनुकूल सुन्दर आकर्षणवाली चीज़ में उल्लसित वीर्य होकर सुन्दरता में घुस जाता है। आहाहा! तो आत्मा के आनन्द का अनादर होता है। समझ में आाय? आहाहा! सुन्दर नाथ तो स्वयं आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ सुन्दर स्वरूप प्रभु आत्मा है। उसकी सुन्दरता की अनुभवदृष्टि छोड़कर बाह्यपदार्थ की सुन्दरता में लुभा जाता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! पोपटभाई! ऐसा ही किया, बापू! आहाहा! सोने के गहने और... आहाहा! अरे! मलूकचन्दभाई! यह तुम्हारे गये थे न? तुम्हारे लड़के के... क्या कहलाते हैं वह? घड़ी का कारखाना है न? मुम्बई। इन मलूकचन्दभाई के पुत्र, पाँच करोड़ रुपये हैं। क्या कहलाता है उसका नाम? पूनमचन्द। नाम भूल जाते हैं। मुम्बई में है न? एक बार घड़ी के कारखाने में ले गया था, महाराज के चरण हो।

मुमुक्षु : बँगला है....

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा बँगला है, पाँच करोड़ रुपये हैं। पाँच करोड़। इनका पुत्र

है। दूसरे नम्बर का, हों! पहले नम्बर का है, वह स्वीट्जरलैण्ड में है। उसके पास चार करोड़ हैं। यह मलूकचन्दभाई के दो पुत्र। परन्तु उनके पिता को कुछ नहीं, हों! पैसे का सुख नहीं। मलूकचन्दभाई के पास थोड़े, पाँच-पच्चीस हजार। इनके पास कहाँ थे? वह तो लड़के ने कमाये हैं। अलग कर देने के बाद कमाये तो उसके पिताजी का हक नहीं। और जड़ का हक किसका है? आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि लोग बाहर में ललचा जाते हैं, वहाँ एक बार गये थे। यह बात की थी। घड़ी... घड़ी होती है। घड़ी के ऊपर सोने को गिलेट देते हैं। सोना... सोना। वह कहता था। अपने तो वहाँ देखा। एक दिन में सौ तोला या इतने घड़ियों को सोने का लेप देते हैं। एक किलो-दो सेर सोना। इनके लड़के का कारखाना है न! और वह कौन है? उनका साला है? मामा का पुत्र है। इनके मामा का पुत्र है। वह काम करता है। बड़ा कारखाना है। परन्तु उस घड़ियाल पर सोने का देते हैं, वह इनके मामा का पुत्र है। एक किलो। एक दिन में एक किलो।

मुमुक्षु : ऐसी बात करो तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं। श्मशान के खाते हैं सब। समझ में आया? यह दिखलाने के लिये साथ-साथ आवे। आहाहा! बड़े दो-दो हजार के तो वेतनदार मनुष्य—नौकर हों।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जाते हैं, वह तो इन भाई का पुत्र। पोपटभाई का। यह तो मलूकचन्दभाई के पुत्र की बात है। बड़े पुत्र के पास चार करोड़ है। स्वीट्जरलैण्ड में है। लड़का एक भी नहीं। परन्तु अभी ममता छोड़ता नहीं। और दूसरे छोटे लड़के के पास पाँच करोड़ हैं। दोनों लड़कों के पास नौ करोड़ हैं। और दूसरे दो हैं, उनके पास पाँच-पाँच, दस लाख हैं। इनके साथ रहते हैं। धूल में भी कुछ नहीं। प्रभु! तू कहाँ ललचा गया?

तेरी लक्ष्मी अन्दर अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द पड़ी है। आहाहा! जो विकल्प से पार है, राग से पार है। महानिधान तेरे पास है। आहाहा! उस निधान की तो कीमत नहीं और बाहर की धूल की कीमत। यह कहते हैं कि पर में अर्पित हो जाता है। अपने स्वरूप की दृष्टि इसे छूट गयी है। आहाहा! समझ में आया? यह कहा था न? एक बार

मुम्बई आहार लेने गये थे। एक अपने हैं न? रसिकभाई के बहनोई। राजकोटवाले। शाम को आहार-पानी करने गये। पैसे पाँच करोड़। सर्वत्र चरण कराये। अकेला मखमल, पूरे मकान में बिछाया हुआ। साढ़े पाँच लाख का तो वह फर्नीचर कहलाये तुम्हारा। कचरा! और पाँच करोड़। शाम को आहार करने—भोजन करने गये। आमन्त्रण दिया हुआ था तो गये थे। सर्वत्र चरण किये। धूल में भी कुछ (नहीं)। इसमें से निकलना कठिन पड़ेगा। इस साहिबी में से निकलना महामुश्किल पड़ेगा। आहाहा!

भगवान तो इस साहिबी से भिन्न है और अन्दर दया, दान के विकल्प से भी भगवान तो अन्दर भिन्न है। मूलचन्दभाई! आहाहा! परन्तु यह सब लड़के अमेरिका जाये और पाँच-दस हजार (कमाये) तो ओहोहो! वहाँ तो भंगी को मासिक दस हजार मिलते हैं। अमेरिका में तो भंगी को दस हजार मासिक मिलते हैं। इस बनिया के पुत्र को मानो हमारे दस हजार का वेतन! अब दस क्या धूल में है। दस हजार में कितने बचे? वहाँ का भंगी मोटर में आता है। मासिक दस हजार का वेतन। अमेरिका में। सुना है। हम कहीं गये हों या नहीं? हमने तो सुना है। भंगी को मासिक दस हजार का वेतन। और यह कहे, हमारा लड़का गया और आठ हजार वेतन है, दस हजार (वेतन है)। अब धूल में क्या है? कहो, चिमनभाई! आहाहा!

भगवान! तेरे पास अन्तर आनन्द का निधान पड़ा है। अतीन्द्रिय आनन्द सुख का पिण्ड प्रभु है। आहाहा! उसकी दृष्टि में पूरी दुनिया तृण तुल्य है। इन्द्र के इन्द्रासन भी सड़े हुए तिनके के समान हैं। आहाहा! इन्द्र की इन्द्राणियाँ, करोड़ों के भोग सड़े हुए कुत्ते और बिल्ली जैसे सड़े हुए हैं। निज आनन्द की दृष्टि की अपेक्षा से। ऐसे समकित को समकित कहा जाता है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर मैं हूँ, ऐसा अन्तर्मुख होकर निर्विकल्प अर्थात् राग का भाव छोड़कर वीतरागी पर्याय से अनुभव होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। बाकी शास्त्रज्ञान और लाख ज्ञान, वह ज्ञान नहीं है, अज्ञान है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, देखो! **सबका ज्ञाता-दृष्टा आत्मा है, वही उपादेय है।** आहाहा! **यह सूत्र भी पहले कथन को दृढ़ करनेवाला है।** चार बोल आये थे न? अब १०३।

गाथा - १०३

अथात्मा परश्च येनात्मना ज्ञानेन ज्ञायते तमात्मानं स्वसंवेदनज्ञानबलेन जानीहीति कथयति

१०३) अप्पु वि परु वि वियाणइ जें अप्पें मुणिएण।
सो णिय-अप्पा जाणि तुहुँ जोइय णाण-बलेण।।१०३।।

आत्मापि परः अपि विज्ञायते येन आत्मना विज्ञातेन।
तं निजात्मानं जानीहि त्वं योगिन् ज्ञानबलेन।।१०३।।

अप्पु वि परु वि वियाणियइ जें अप्पें मुणिएण आत्मापि परोऽपि विज्ञायते येन आत्मना विज्ञातेन सो णिय अप्पा जाणि तुहुं तं निजात्मानं जानीहि त्वम्। जोइय णाणबलेण हे योगिन्, केन कृत्वा जानीहि। ज्ञानबलेनेति। अयमत्रार्थः। वीतरागसदानन्दैकस्वभावेन येनात्मना ज्ञातेन स्वात्मा परोऽपि ज्ञायते तमात्मानं वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानभावनासमुत्पन्न-परमानन्दसुखरसास्वादेन जानीहि तन्मयो भूत्वा सम्यगनुभवेति भावार्थः।।१०३।।

आगे जिस आत्मा के जानने से निज और पर सब पदार्थ जाने जाते हैं, उसी आत्मा को तू स्वसंवेदन ज्ञान के बल से जान, ऐसा कहते हैं –

जिसे जानने से निज पर सब ही पदार्थ जाने जाते।
हे योगी! उस निज स्वरूप को ज्ञान शक्ति से तुम जानो।।१०३।।

अन्वयार्थ :- [येन आत्मना विज्ञातेन] जिस आत्मा को जानने से [आत्मा अपि] आप और [परः अपि] पर सब पदार्थ [विज्ञायते] जाने जाते हैं, [तं निजात्मानं] उस अपने आत्मा को [योगिन्] हे योगी [त्वं] तू [ज्ञानबलेन] आत्मज्ञान के बल से [जानीहि] जान।

भावार्थ :- यहाँ पर यह है, कि रागादि विकल्प-जाल से रहित सदा आनंद स्वभाव जो निज आत्मा उसके जानने से निज और पर सब जाने जाते हैं, इसलिये हे योगी, हे ध्यानी, तू उस आत्मा को वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञान की भावना से उत्पन्न परमानंद सुखरस के आस्वाद से जान, अर्थात् तन्मयी होकर अनुभव कर। स्वसंवेदन ज्ञान (आपकर अपने के अनुभव करना) ही सार है। ऐसा उपदेश श्री योगीन्द्रदेव ने प्रभाकर भट्ट को दिया।।१०३।।

गाथा-१०३ पर प्रवचन

आगे जिस आत्मा को जानने से... आहाहा! भगवान कौन है, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! यह चैतन्यप्रकाश का नूर सूर्य है। इसमें विकल्प, राग, दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प भी उसमें है नहीं। वह तो भिन्न चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? है? **आत्मा को जानने से आप (निज) और पर सब पदार्थ जाने जाते हैं,...** जिसे आत्मज्ञान हुआ, उसे राग क्या है, उसका यथार्थ ज्ञान होता है। समझ में आया? ज्ञानी को भी दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का राग आता है, परन्तु वह राग है, तो उसका यथार्थ ज्ञान किसे होता है? जिसे आत्मा के आनन्द का ज्ञान हो, उसे उसका यथार्थ ज्ञान होता है। आहाहा! मैं आनन्दस्वरूप हूँ और विकल्प उठता है, वह दुःखरूप है। चाहे तो शुभविकल्प हो, समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह शुभराग भी दुःखरूप है। कहाँ इसे खबर है एक भी चीज़ की। समझ में आया?

अपने को जानने से **आप (निज) और पर सब पदार्थ जाने जाते हैं, उस अपने आत्मा को...** क्या कहते हैं, देखो! अब। आहाहा! **हे योगी! तू आत्मज्ञान के (स्वसंवेदनज्ञान के) बल से जान।** शास्त्र से नहीं। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु का स्व अर्थात् अपने से, ज्ञान की पर्याय से वेदन करके जान। आहाहा! वह शुभ विकल्प से भी ज्ञात नहीं होता। समझ में आया? क्या शब्द पड़ा है? पड़ा है? देखो! **उस अपने आत्मा को हे योगी! तू आत्मज्ञान के (स्वसंवेदनज्ञान के) बल से...** राग और विकल्प और व्यवहार के बल से नहीं। आहाहा! बात इसने अनन्त काल में सुनी नहीं और जँची नहीं। सुनता है तो जँची नहीं। आहाहा! समझ में आया? अपनी कीमत क्या है, उसकी खबर नहीं। निर्विकल्प आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा परमात्मशक्ति का पिण्ड, वह आत्मा है। आहाहा! उसमें से परमात्मा की पर्याय केवलज्ञान की उत्पन्न होती है। उस परमात्मा की पर्याय का कारण कारणपरमात्मा अपना आत्मा है। उसका कारण व्यवहार विकल्प भी उसका कारण नहीं। आहाहा! कठिन बातें, बापू! कठिन, भाई! अनन्त काल में परिभ्रमण करते-करते गंवाया है। आहाहा! समझ में आया?

एक जवान व्यक्ति था न? कल नहीं कहा था? कौन सा गाँव? अभाना। जवान

था, हों! यहाँ दो-चार दिन सुना। पहले तो प्रश्न करता था। करते-करते जहाँ दो-चार दिन सुना, ३५-४० वर्ष का था, रोवे... रोवे... रोवे... महाराज मेरी तो पूरी जिन्दगी व्यर्थ गयी। हम तो बाहर के क्रियाकाण्ड में धर्म मानते थे। यह पुण्य किया और दया पालन की और व्रत किये। आहाहा! अरेरे! जिन्दगी व्यर्थ गयी, अवस्था हो गयी। समझ में आया? यह चीज़ सुनने में मिलती नहीं। सुनने के बाद इसका अनुभव करना, वह तो अलौकिक बात है। मूलचन्दभाई! वहाँ अमेरिका में है? अमेरिका में गये थे न! वहाँ रुके थे, लड़का है। धूल भी नहीं, सब मजदूर है वहाँ। अमेरिका में क्या है वहाँ? अरबोंपति बेचारे दु:खी हैं वहाँ। अब अध्यात्म को शोधते हैं। अध्यात्म का अब यह निकाला। श्री कृष्ण हरे कृष्ण... हरे कृष्ण हरे हरे। वे बाबा होते हैं। वे कपड़े पहनते हैं न? मुम्बई में देखे हैं न? हिप्पी। हरे कृष्ण... हरे कृष्ण (बोला करे)। हरे कृष्ण में क्या आया? हरि कौन और कृष्ण कौन, इसकी तो खबर नहीं। मुम्बई में अमेरिका से बहुत बाबा आये हैं। भाई! देखे हैं? कुर्ता पहनते हैं न? लाला। हमने देखे हैं न! मुम्बई में तो देखे हैं। हरे कृष्ण। कौन हरि कृष्ण? बापू! राग, द्वेष और अज्ञान को हरे, वह हरि भगवान आत्मा है। और कृष्ण—कर्म कृशे, वह कृष्ण। अज्ञान और राग को कृश डाले—खिरा डाले, ऐसा भगवान वह आत्मा कृष्ण है। समझ में आया? यह भक्ति बहुत करे। उलझन में आ जाये न! पैसे से कुछ शान्ति मिलती नहीं। अरबोंपति और बड़े-बड़े मकान। धूल में भी है नहीं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि अपने स्वसंवेदनज्ञान बल से जान। पाठ है न? '**णाण-बलेण।**' देखो! १०३ है। अन्तिम चौथा पद है। '**णाण-बलेण**'। ज्ञानस्वरूप अन्दर भगवान है, उसे ज्ञान के वेदन के बल से उसको जान। आहाहा! अभी क्या कहते हैं, यह समझना कठिन पड़े। **जिस आत्मा को जानने से आप और पर सब पदार्थ जाने जाते हैं,...** आहाहा! अपना भगवान ज्ञानस्वरूपी आनन्दस्वरूपी जाना तो उसे रागादि व्रत, भक्ति आदि के विकल्प उठते हैं, वह दु:खरूप है, ऐसा यथार्थ ज्ञान उसे होता है। आहाहा! समझ में आया? सुजानमलजी! यह घोंटन है। आहाहा! पहली बार पढ़ने जाये न? तो मास्टर हाथ पकड़कर एकड़ा घुंटाता है। क्योंकि बालक को आता नहीं न! एकड़े एक। इसी प्रकार यहाँ एकड़ा घुंटाते हैं। एकड़ा बिना के शून्य, वह सब धूल है।

आहाहा! एक के पश्चात् शून्य लग जाये तो नौ बढ़ा दे। इसी प्रकार स्वसंवेदनज्ञान; शास्त्र का ज्ञान भी नहीं, वह तो अनन्त बार किया है। ग्यारह अंग का ज्ञान किया है, नौ पूर्व का ज्ञान किया है, लब्धि (प्रगट हुई), उसमें क्या है? वह तो अज्ञान है। आहाहा! जिसमें ज्ञान का ज्ञान न हो, ज्ञान शब्द से आत्मा, भगवान ज्ञानस्वरूपी का ज्ञान अन्तर्मुख का न हो तो शास्त्रज्ञान भी अज्ञान कहलाता है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **आप और पर सब पदार्थ जाने जाते हैं,...** तब ज्ञात होते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो पहले कहा था, कलशटीका में। यह सब्जी है न? व्यंजन। व्यंजन और नमक, नमक। नमक खारा है, व्यंजन खारा नहीं—इसका यथार्थ ज्ञान किसे होता है? जिसे स्वरूप ज्ञानानन्द का ग्रहण है, मैं आनन्दकन्द हूँ, ऐसा ज्ञान है, उसे उसका ज्ञान होता है। उसमें—कलशटीका में आया है। बताया न! कलशटीका। आहाहा! पानी शीतल है और अग्नि गरम है, ऐसा शीतलपने का और उष्णपने का भेद निजस्वरूपग्राही ज्ञान से प्रगट ज्ञात होता है। आहाहा! आचार्यों ने गजब किया है न! यह शीतल है और यह उष्ण है, इसका ज्ञान भी, जिसे आत्मा ज्ञानस्वरूप का अनुभव है, स्वरूप का ज्ञान हुआ है, उसे ही पर का यथार्थ होता है। आहाहा! समझ में आया? आहा! दो जगह लिया है, हों! व्यंजन और खारे लवण का स्वाद, उससे व्यंजन खारा ज्ञात होता है, वह छूटा। निज स्वरूप के जानपने के द्वारा प्रगट होता है। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु जिसके अनुभव में आया तो अपना ज्ञान हुआ। ज्ञानस्वरूपी मैं तो ज्ञाता-दृष्टा त्रिकाल ज्ञायक हूँ। ऐसा अन्तर्मुख होकर ज्ञान हुआ, उसे यह खट्टा है, यह मीठा है, यह व्यंजन फीका है, (उसका ज्ञान होता है)। मोळा को क्या कहते हैं? फीका। क्या कहलाता है? मीठुं—खारा है। यह नमक खारा है, यह पर का ज्ञान भी यथार्थ उसे होता है कि जिसे स्वरूप ज्ञानानन्द का भान हो, उसे पर का यथार्थ ज्ञान होता है। समझ में आया? आहाहा! देखो न! यह कलशटीका, राजमलजी (कृत)। उसमें से समयसार नाटक बनाया है। बनारसीदासजी ने उसमें से—इस कलश (टीका) में से बनाया है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **आत्मा को जानने से आप और पर सब पदार्थ जाने जाते हैं,...** आहाहा! जब निज आनन्द का ज्ञान हुआ तो रागादि विकल्प है, वह आस्रव है, दया,

दान के भाव पुण्य हैं, ऐसा ज्ञान ज्ञानी को यथार्थ होता है। समझ में आया? आहाहा! **उस अपने आत्मा को हे योगी! तू...** देखो! आया। **'ज्ञानबलेन ज्ञानबलेन'। आत्मज्ञान के बल से जान।** शास्त्रज्ञान से नहीं, पर से नहीं, गुरु से नहीं, देव से नहीं। आहाहा! समझ में आया? दिव्यध्वनि द्वारा भी आत्मा ज्ञात नहीं होता। गुरु की वाणी से भी आत्मा ज्ञात नहीं होता। यह पहले आ गया है। २३ गाथा। २३ न? २३ गाथा में आ गया है। परमात्मप्रकाश २३ गाथा। दो और तीन। आगम जो वीतराग की वाणी, वेद—भगवान के शास्त्र, दिव्यध्वनि से भी आत्मा ज्ञात नहीं होता। यह पहले आ गया है। २३ है न? २३ में है। यह आया।

'वेदै' केवली की दिव्यवाणी से, महामुनियों के वचनों से तथा इन्द्रिय और मन से भी शुद्धात्मा जाना नहीं जाता है,... आहाहा! २३ गाथा है। यहाँ तो अपने १०३ चलती है। आहाहा! वेद—शास्त्र। वेद अर्थात् अन्यमति के वेद नहीं, हों! वीतराग की वाणी को यहाँ वेद कहते हैं। तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि और शास्त्र-मुनियों ने बनाये हुए शास्त्र, दिगम्बर सन्तों ने, उनसे भी आत्मा ज्ञात नहीं होता और इन्द्रिय और मन से भी ज्ञात नहीं होता। वह तो अपने स्वसंवेदनज्ञान से ज्ञात होता है। आहाहा! है? है न?

'ज्ञानबलेन' तू आत्मज्ञान के बल से जान। आहाहा! गजब बात करते हैं। अन्तर्मुख दृष्टि करके आत्मज्ञान के बल से तू आत्मा को जान। यह व्यवहार के विकल्प से भी ज्ञात नहीं होता, देव-गुरु-शास्त्र से भी आत्मा ज्ञात नहीं होता। क्योंकि वह परद्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? और परद्रव्य की श्रद्धा राग है, उससे भी ज्ञात नहीं होता। देव-गुरु और शास्त्र सच्चे हैं, तीन लोक के नाथ केवली और गुरु निर्ग्रन्थ मुनि सन्त आत्मा के आनन्द के अनुभवी, उन्हें मानना, वह भी राग है, विकल्प है, परद्रव्य है। उस ओर का मानना, वह राग है। उस राग से भी ज्ञात नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात गजब, प्रभु! क्या करे? भगवान की ध्वनि तो यह है। महाविदेह में परमात्मा विराजते हैं। वहाँ भगवान के पास तो कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। आठ दिन रहे थे। समझ में आया? वहाँ अभी दिल्ली में कपोलकल्पित बात है, ऐसा आया है। समाचारपत्र में आया है। विद्यानन्दजी कहते हैं, कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में गये, यह सब बात कपोलकल्पित है। अरे! भगवान! अरे प्रभु! क्या करता है? आहाहा! समझ में आया?

पंचास्तिकाय में आया है। जवाब दिया है। हितैषी है न कोई? दिल्ली। पत्रिका प्रकाशित करते हैं न? प्रकाशचन्द्र हितैषी, वह पुस्तक (पत्रिका) छपती है न, सन्मति सन्देश में जवाब आया है। शास्त्र का आधार है। पंचास्तिकाय की जयसेनाचार्यदेव की संस्कृत टीका में है कि भगवान कुन्दकुन्दाचार्य, प्रभु के पास गये थे, वहाँ से आकर यह बनाया है। शिवकुमार के लिये बनाया है ऐसा पाठ है।

मुमुक्षु : देवसेनाचार्य में भी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : देवसेनाचार्य तो कहते हैं परन्तु यह तो अभी वाँचा न हो न! देवसेनाचार्य की एक दर्शनसार पुस्तक है। हमने तो सब देखा है, हजारों शास्त्र देखे हैं। उसमें पाठ है कि हे भगवान!... देवसेनाचार्य दिगम्बर सन्त अनुभवी आनन्द के स्वादी, वे कहते हैं कि हे प्रभु! कुन्दकुन्दाचार्य! आप यदि महाविदेह में न गये होते और वहाँ से यह बात न लाये होते तो हम धर्म कैसे प्राप्त करते? अपने उसमें—समयसार में डाला है। पहले गाथा डाली। आहाहा! देवसेनाचार्य, जो आत्मज्ञानी, अनुभवी आनन्द में झूलनेवाले भावलिंगी साधु आचार्य थे। वे कहते हैं। है न यहाँ?

जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण।
ण विवोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति॥

देवसेनाचार्य अपने दर्शनसार नामक ग्रन्थ में कहते हैं। **(महाविदेहक्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकरदेव) श्री सीमन्धरस्वामी से प्राप्त दिव्य ज्ञाना द्वारा श्री पद्मनन्दिनाथ ने....** पद्मनन्दि नाम है न? कुन्दकुन्दाचार्य का पद्मनन्दि नाम है। पाँच नाम हैं। **(श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने) बोध न दिया होता तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते?** आहाहा! आचार्य कहते हैं। देवसेनाचार्य, दर्शनसार पुस्तक में। आहाहा!

मुमुक्षु : आचार्य महाराज की भूल हो गयी होगी महाराज।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं। उन्हें खबर नहीं न! महाविदेह में गये थे, यह कपोलकल्पित है। यह समाचारपत्र में आया था। विद्यानन्दजी वहाँ दिल्ली में हैं न! महाविदेह में गये थे और सीमन्धर भगवान के दर्शन किये और आये और शास्त्र बनाये, यह सब कपोलकल्पित है। अरे! भगवान! यह तो साक्षात् परमात्मा के पास गये थे,

आठ दिन वहाँ रहे थे, श्रुतकेवलियों से चर्चा की, भगवान की वाणी तो सुनी। भगवान के साथ तो चर्चा होती नहीं। वे तो केवली हैं। वाणी निकले तब सुने। परन्तु सुनकर आठ दिन श्रुतकेवली सन्तों से चर्चा की। फिर यहाँ आकर यह शास्त्र बनाये। आहाहा! समझ में आया? **मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते?** आहाहा! दूसरा एक उल्लेख देखो, जिसमें कुन्दकुन्दाचार्यदेव को कलिकाल सर्वज्ञ कहा। षट्पाहुड़ की संस्कृत टीका पूरी होने के पश्चात् अन्त में यह शब्द पड़े हैं। षट्पाहुड़ में है। यहाँ सब शास्त्र है। कलिकाल सर्वज्ञ कहे हैं। ...पाँच नाम विराजित चार अंगुल ऊपर आकाशगमन करने की जिनकी ऋद्धि थी। पूर्व विदेह में जाकर सीमन्धर भगवान को वन्दन किया था। जिनसे प्राप्त श्रुतज्ञान द्वारा जिन्होंने भारतवर्ष के भव्य जीवों को प्रतिबोध किया है। ऐसे जिनचन्द्रसूरि भट्टारक के पट्ट के आभरणरूप कलिकाल सर्वज्ञ आचार्यदेव, उनके द्वारा रचित अष्ट प्राभृत है। अष्ट प्राभृत है न। यहाँ प्राभृत है न, वह है। यह नियमसार है, षट् प्राभृत, अष्ट प्राभृत है, पंचास्तिकाय है, यह प्रवचनसार है। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य तो तीसरे नम्बर में आये न! मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु..। तीसरे नम्बर में आये। पहले नम्बर में भगवान, दूसरे नम्बर में गौतम, तीसरे नम्बर में कुन्दकुन्दाचार्य और जैनधर्मोस्तु मंगलं। आहाहा! उनकी यह वाणी है। इस परमात्मप्रकाश में कुन्दकुन्दाचार्य की बहुत छाप है। पहले लेख है। कुन्दकुन्दाचार्य का अनुसरण तो बहुत आचार्यों ने किया है। साक्षात् भगवान कुन्दकुन्दाचार्य आनन्द के नाथ, जिनके अनुभव में... ऐसा कहते हैं, हमारे अनुभव के वैभव में आनन्द की मोहरछाप है। समयसार पाँचवीं गाथा में है। हमारा जो आनन्द का अनुभव है, हमारे पास मोक्ष का मार्ग है, उसकी मोहरछाप। यह पोस्ट में नहीं करते? (छाप) लगाते थे न! इसी प्रकार हमारे अनुभव की मोहरछाप क्या है? अतीन्द्रिय आनन्द है। आहाहा! आनन्दमुद्रा हमारी छाप है, हमारे पास है। आहाहा! हम दुःखवाले हैं और विकल्पवाले हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह पाँचवीं गाथा में है। यह समयसार की पाँचवीं गाथा है न!

कहते हैं, हमारा अन्तर वैभव क्या है? उस वैभव से हम शास्त्र कहेंगे। **निरन्तर झरता हुआ...** जैसे पर्वत में से पानी झरे, वैसे हमारा आत्मा निरन्तर आनन्द से अन्दर से

झरता है। आहाहा! वह हमारा मुनिपना है, वह हमारा वैभव है। पंच महाव्रत और विकल्प, नग्नपना, वह कहीं हमारा मुनिपना नहीं। आहाहा! है? **निरन्तर झरता हुआ— आस्वाद में आता हुआ, सुन्दर जो आनन्द...** सुन्दर आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द, जिसमें इन्द्र के आनन्द भी जहर जैसे हैं। अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु विकल्प से, राग से, व्यवहार से रहित अन्दर। हमारी मोहरछाप आनन्द है, उसकी मुद्रा से युक्त। संस्कृत है। मुद्रा— मोहरछाप है हमारी। समझ में आया? यह चलता है न? मोहर लगाते हैं न? इसी प्रकार हमारे वैभव की मोहरछाप आनन्द की हमारे पास है। आहाहा! यह मुनिपना।

प्रचुरसंवेदनस्वरूप.... ऐसा क्यों कहा? चौथे में समकित में थोड़ा आनन्द तो आता है और मुनि को प्रचुर स्वसंवेदन होता है, इसलिए प्रचुर शब्द प्रयोग किया है। सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में आत्मानुभवी होता है, उसे भी आनन्द का स्वाद तो थोड़ा आता ही है, इसके बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं, यह तो कहते हैं, हम तो मुनि हैं तो **प्रचुरसंवेदनस्वरूप...** हमारे तो आनन्द की उग्रता का वेदन अन्दर वर्तता है। आहाहा! अरे! वाणी तो देखो! आहाहा! और **स्वसंवेदन...** देखा! स्वसंवेदन। अपने यहाँ आया न? इस गाथा में स्वसंवेदन आया न? उस स्वसंवेदन से। है? **उससे जिसका (हमारे वैभव का) जन्म है।** (हमारे वैभव का जन्म हुआ है)। यह हमारा वैभव है। आनन्द की दशा और शान्ति और वीतरागता जो प्रगट हुई, वह हमारा वैभव है। यह धूल का वैभव नहीं। अरे! राग व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प, वह भी हमारा वैभव नहीं। आहाहा! सेठ! आहाहा! यह वैभव। यह तुम्हारे दो करोड़ चारों ओर जमाये हों। छह लड़के, बँगले और फलाना और ढींकणा क्या कहलाये? फर्नीचर। आहाहा!

यहाँ तो आचार्य महाराज भगवान कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त (कहते हैं), हमारा सन्तपना—मुनिपना कैसा है? कि हमारे अतीन्द्रिय आनन्द की मोहरछाप में हमारा निज वैभव प्रगट हुआ है। उस वैभव से हम समयसार कहेंगे। आहाहा! कथनीमात्र से और भगवान कहते हैं और व्यवहार विकल्प है और मैं कहता हूँ, ऐसा है नहीं। आहाहा! बड़ी गाथा। समयसार तो गजब बात है! यहाँ यह आया, देखो! है?

आत्मज्ञान के बल से जान। इसकी व्याख्या हुई। आत्मा का ज्ञान। आत्मज्ञान, हों! राग का ज्ञान नहीं, पर का नहीं, शास्त्र का नहीं। आहाहा! अभी इसमें अर्थ आयेगा।

भावार्थः—यहाँ पर यह है कि रागादि विकल्प-जाल से रहित... आहाहा! यह व्रत, तप, भक्ति और पूजा के विकल्प, वह तो विकल्प की—राग की जाल है। आहाहा! उस **विकल्प-जाल से रहित सदा आनन्द स्वभाव...** आहाहा! मेरा तो सदा आनन्द—अतीन्द्रिय आनन्द स्वभाव है। मैं तो अतीन्द्रिय सुख का सागर हूँ। आहाहा! समझ में आया? यह पैसा और स्त्री और पुत्र तो तुम्हारे दुःख में निमित्त है। निमित्त, हों! दुःख नहीं। दुःख तो ममता करता है, वह दुःख है। ममता में ये सब निमित्त हैं। यह हसमुख और रंभाबहिन, सब दुःख के निमित्त हैं। वस्तु तो ऐसी है। निमित्त है, दुःख नहीं। दुःख तो स्वयं अज्ञानभाव से करता है। विकारभाव करता है, वह दुःख है। उस दुःख में वह चीज़ निमित्त है, बस! आहाहा!

भगवान तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप आत्मा है। आहाहा! अरे! वह कहाँ है, उसकी इसे खबर नहीं। कहो, दशरथलालजी! **सदा आनन्द स्वभाव...** आहाहा! **जो निज आत्मा...** भाषा तो देखो! ओहोहो! परमात्मप्रकाश। समयसार की छाप पड़ी है अन्दर। आत्मा की छाप पड़ी है। आहाहा! विकल्प-राग अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्प की वृत्तियाँ हैं, वह विकल्प जाल है, उससे रहित मेरी चीज़ अन्दर है। आहाहा! मैं तो सदा आनन्दस्वभाव से हूँ। **निज आत्मा, उसके जानने से...** आहाहा! निज स्वरूप निधान आनन्दकन्द को जानने से अन्तर्मुख स्वसन्मुख होकर उसे जानने से **निज और पर सब जाने जाते हैं,...** वहाँ अपना और पर का यथार्थ ज्ञान होता है। आहाहा! कहो, दरबार! ऐसी बात कहीं नहीं है, हों! यह गीता-फीता में भी नहीं और कहीं नहीं। उन लोगों में तो गीता मान्य है न! यह बात नहीं, बापू! आहाहा! क्या कहें? हमने तो वाँचा है और हमको तो सब खबर है न! गीता भी वाँची है और दूसरे हजारों शास्त्र वाँचे हैं। श्वेताम्बर के वाँचे और दिगम्बर के (वाँचे)। आहाहा! यह चीज़.... भगवान! तू कौन है? दया, दान, व्रत के विकल्प हैं, वह तो व्यवहार व्रत सब आस्रव-राग है। वह धर्म नहीं और धर्म का कारण भी नहीं। आहाहा! अरे! भगवान! बहुत कठिन पड़े। प्रभु! क्या करें? मार्ग तो यह है। आहाहा!

निज और पर सब जाने जाते हैं, इसलिए हे योगी!... गुरु योगीन्द्रदेव हैं न? उनके शिष्य प्रभाकर भट्ट थे। उन्होंने प्रश्न किया था, उसे—प्रभाकर को लक्ष्य कर

कहते हैं। हे योगी! योगी अर्थात्? जाननस्वरूप में अपनी परिणति को जोड़ दिया, वह योगी। यह अन्यमति के बाबा योगी की यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मा देखा, और आत्मा है, वह पूर्णानन्द का नाथ आत्मा है। उसमें अपनी निर्मल परिणति, वीतरागी परिणति को जोड़ दिया, वह योगी। बाकी सब ढोंगी। आहाहा! प्रभु! सन्तों ने जगत को निहाल कर दिया है। स्पष्ट बात की है। उन्हें समाज की पड़ी नहीं कि मेरी बात समाज में झेली जायेगी या नहीं? समाज समतौल रहेगा या नहीं? ऐसी कुछ पड़ी नहीं है। सत्य यह है, भगवान! आहाहा! सत्य का रहस्य उद्घाटन करने में समाज समतौल रहेगी या नहीं? हम इतनी सब बात करते हैं। आत्मा आत्मा से ज्ञात होता है, पर से नहीं, राग से नहीं। तो समाज मानेगी या नहीं? समाज समाज के घर में रहा। कहो, सेठ! आहाहा!

हे योगी! हे ध्यानी!... आहाहा! यह दो शब्द पड़े हैं न! अन्तर आनन्द के स्वरूप में ध्यान लगाया, वह ध्यानी। ध्यानी यह णमोकार गिने और ॐकार गिने, वह ध्यानी नहीं, वे तो सब रागी है। आहाहा! समझ में आया? पंच णमोकार गिनो—णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताण लाख बार (गिनो)। सब राग है। परद्रव्य की ओर का झुकाव सब राग है। वह तो तुम्हारे बहुत आता है। तारणस्वामी बहुत कहते हैं। तारणस्वामी तो यहाँ तक कहते हैं, लोगों में रंजन करने के लिये, लोकरंजन के लिये तू जो उपदेश देता है, राग से लाभ होता है, वह लोकरंजन है, मरकर नरक में जायेगा। जनरंजन आता है, खबर है। यहाँ अपने अष्टपाहुड़ में आता है। कुन्दकुन्दाचार्य का। जनरंजन करने के लिये दुनिया प्रसन्न रहे, ऐसा उपदेश देना, मर जायेगा। नरक-निगोद में जायेगा। वीतरागमार्ग जो है, उस बात की तो खबर नहीं उसे और दुनिया प्रसन्न हो। ऐसा करो, ऐसा करो, व्यवहार करो, देशसेवा करो, दया-दान करो, पूजा करो, तुमको धर्म होगा। उसमें अज्ञान की प्रसिद्धि होती है। यहाँ तो ऐसी बात है, भाई! यहाँ आचार्य बात गुप्त नहीं रखते। आहाहा!

हे योगी! हे ध्यानी! तू उस आत्मा को... देखो! आत्मा कैसे ज्ञात होता है? **वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञान की भावना से उत्पन्न परमानन्द सुखरस के आस्वाद से जान,...** आहाहा! कितनी व्याख्या रखी है! क्या कहते हैं? इस भगवान आत्मा को

वीतराग निर्विकल्प... रागरहित अन्दर विकल्प रहित वीतरागी परिणति—पर्याय द्वारा निर्विकल्प अभेद स्वसंवेदनज्ञान—अपने आत्मा के अनुभव का ज्ञान। ऐसी **भावना से उत्पन्न परमानन्द सुखरस के आस्वाद से...** आहाहा! अतीन्द्रिय परमानन्द के सुखरस के स्वाद से जान कि यह आत्मा है। आहाहा! कहो, सुमनभाई! आहाहा! गजब बात करते हैं!

भगवान! तेरी महिमा बड़ी है, भाई! आहाहा! तू तो परमानन्द के रस से ज्ञात होता है। विकल्प दया, दान, व्रत, व्यवहार, श्रद्धा, शास्त्र का व्यवहार ज्ञान, पंचम महाव्रत के परिणाम से वह ज्ञात नहीं होता, वे तो विकार हैं। आहाहा! समझ में आया? है या नहीं यहाँ लेख? अभी का है यह? यह तो पहले का है। एक हजार परमात्मप्रकाश (मँगाये हैं)। आहाहा! भगवान! तू कैसे ज्ञात होता है? भगवानरूप से शिष्य को बुलाते हैं, हों! आहाहा! भग अर्थात् आनन्द और ज्ञान की लक्ष्मीवान। आहाहा! भग-वान। प्रभु ७२ गाथा में कहते हैं—भगवान आत्मा। आहाहा! इसकी माँ झूले में झुलाते समय, 'मेरा बेटा चतुर है', ऐसा कहकर महिमा करके सुलाती है। गाली दोगे तो नहीं सोयेगा। यह ध्यान रखो। मेरा रोया, सो जा—ऐसा कहेगो तो नहीं सोयेगा। परन्तु मेरा बेटा चतुर है और.... अपने (गुजराती में) कहते हैं। तुम्हारे हिन्दी में कुछ होगा। चतुर है, पाटले बैठकर नहाया और मामा के घर गया... ऐसी बात है। महिमा करे तो वह सो जाता है।

यहाँ तीन लोक के नाथ जगत को जागृत करने के लिये भगवान कहकर जगाते हैं। जाग रे जाग, नाथ! तुझे सोना अब नहीं पोसाता। आहाहा! उसकी माँ महिमा करके सुलाती है, यहाँ भगवान आत्मा... आहाहा! जिसमें पुण्य-पाप के विकल्प भी नहीं, ऐसी तेरी चीज़ है, प्रभु! आहाहा! तुझे तेरी कीमत नहीं, नाथ! और तू पर की कीमत करने में रुक गया। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह तो भगवान तीन लोक के नाथ ऐसा कहते हैं, हों! भगवान आत्मा। आहाहा! प्रभु! तू जाग न, नाथ! यह राग और विकल्प से तेरी जागृति नहीं होगी, नाथ! तू ऐसा निर्बल नहीं कि तुझे राग का आश्रय लेना पड़े। आहाहा! सुमनभाई! सुमन, यह फूल का नाम है, हों! आहाहा! आनन्द के फूल चढ़ा, प्रभु! तो ज्ञात होगा। आहाहा! कठिन बात, बापू! क्या कहते हैं?

निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञान की भावना... एकाग्रता। आहाहा! ज्ञान का सागर प्रभु, आनन्द का समुद्र प्रभु, उस ओर की वीतरागी पर्याय, रागरहित निर्विकल्प पर्याय द्वारा भावना से **उत्पन्न....** क्या हुआ? उसमें परमानन्द उत्पन्न हुआ। आहा! अतीन्द्रिय परमानन्द। यह विषय के आनन्द तो जहर है। भोग के विकल्प में जो मजा दिखता है, वह शरीर की नहीं, शरीर को तो स्पर्शता भी नहीं, शरीर को आत्मा छूता नहीं, इसका शरीर शरीर को छूता नहीं। आहाहा! मात्र लक्ष्य करके यह मुझे ठीक है, ऐसी मान्यता खड़ी होती है, उसमें राग होता है, उस राग का स्वाद लेता है। स्त्री के शरीर का नहीं, आत्मा के आनन्द का नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह माँस, हड्डियाँ, चमड़ी, धूल का स्वाद कैसे आवे? परन्तु उस ओर लक्ष्य करके राग उत्पन्न करता है कि यह ठीक है, ठीक है। उस राग का—जहर का स्वाद लेता है। आहाहा! उसका भोग लिया और मजा आया, ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा! प्रभु! तेरी चीज तो देख। तेरे स्वभाव-सन्मुख होने से तुझे परमानन्द सुख होगा। आहाहा! परमानन्द अतीन्द्रिय शान्ति समकित दर्शन में (होगी)। ऐसे **सुखरस के आस्वादन से जान,...** उससे आत्मा जान। आहाहा! समझ में आया? यह तो दिगम्बर सन्तों की वाणी वीतराग की वाणी है। बापू! यह वाणी समझने के लिये बहुत पुरुषार्थ की जागृति चाहिए, भाई! यह कहीं साधारण चीज़ नहीं है। आहाहा! क्या कहते हैं?

इसका अर्थ किया। '**णाण-बलेण**'। चौथा अन्तिम पद है न? यह '**णाण-बलेण**' की व्याख्या की है। आहाहा! ज्ञानबल द्वारा आत्मा को जान। इसका अर्थ—निर्विकल्प परमानन्द सुख के आस्वादन से तू जान कि यह आत्मा है। आहाहा! जिसमें से परमानन्द निकला, उस आनन्द के स्वाद से जान कि यह आत्मा अकेला परमानन्द का पुंज है। ऐसा जान, उसे ज्ञान कहा जाता है और उसे सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। आहाहा! सच्चा सम्यग्दृष्टि वह है। **तन्मय होकर....** देखो! आस्वाद से जान का अर्थ क्या किया? निज **परमानन्द सुखरस के आस्वादन से जान अर्थात् तन्मय होकर अनुभव कर।** आहाहा!

स्वसंवेदनज्ञान (आपकर अपने के अनुभव करना) ही सार है। पूरे सिद्धान्त का—बारह अंग का सार यह है। आहाहा! है? **स्वसंवेदनज्ञान (आपकर अपने के**

अनुभव करना) ही सार है। स्वसंवेदन है न? स्व अर्थात् अपना। **स्वसंवेदनज्ञान (आपकर अपने के अनुभव करना) ही सार है। ऐसा उपदेश श्री योगीन्द्रदेव ने प्रभाकर भट्ट को दिया।** अपने शिष्य को यह उपदेश दिया कि प्रभु! तू यह कर, हों! आहाहा! ऐसा नहीं कहा कि तू व्रत पाल और ऐसा कर। वह तो विकल्प है, राग है। परमानन्द सुखरूप प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड। रसगुल्ला होता है न? रसगुल्ला। रसगुल्ला नहीं होता? दूध का। इसी प्रकार आत्मा आनन्द का रसगुल्ला है। कैसे जँचे? जँचने से छुटकारा है, नहीं तो जन्म-मरण तीन काल में नहीं मिटेंगे। आहाहा! समझ में आया? यह (उपदेश) योगीन्द्रदेव ने प्रभाकर भट्ट को दिया है। १०३ हुई। १०४ (आयेगी).....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १०४

अतः कारणात् ज्ञानं पृच्छति –

१०४) णाणु पयासहि परमु महु किं अण्णें बहुएण।
जेण णियप्पा जाणियइ सामिय एक्क-खणेण।।१०४।।

ज्ञानं प्रकाशय परमं मम किं अन्येन बहुना।
येन निजात्मा ज्ञायते स्वामिन् एकक्षणेन।।१०४।।

णाणु पयासहि परमु महु ज्ञानं प्रकाशय परमं मम। किं अण्णे बहुएण किमन्येन ज्ञानरहितेन बहुना। जेण णियप्पा जाणियइ येन ज्ञानेन निजात्मा ज्ञायते, सामिय एक्कखणेण हे स्वामिन् नियतकालेनैकक्षणेनेति। तथाहि। प्रभाकरभट्टः पृच्छति। किं पृच्छति। हे भगवन् येन वीतरागस्वसंवेदनज्ञानेन क्षणमात्रेणैव शुद्धबुद्धैकस्वभावो निजात्मा ज्ञायते तदेव ज्ञानं कथय किमन्येन रागादिप्रवर्धकेन विकल्पजालेनेति। अत्र येनैव ज्ञानेन मिथ्यात्वरागादिविकल्परहितेन निजशुद्धात्मसंवित्तिरूपेणान्तर्मुहूर्तेनैव परमात्मस्वरूपं ज्ञायते तदेवोपादेयमिति तात्पर्यार्थः।।१०४।।

अब प्रभाकरभट्ट महान् विनय से ज्ञान का स्वरूप पूछता है –

जो आत्मा क्षण एक मात्र में जिससे जाना जाता है।
उत्तम ज्ञान प्रकाश करो मुझमें, विकरूप जानों से क्या?।।१०४।।

अन्वयार्थ :– [स्वामिन्] हे भगवान् [येन ज्ञानेन] जिस ज्ञान से [एकक्षणेन] क्षणभर में [निजात्मा] अपनी आत्मा [ज्ञायते] जानी जाती है, वह [परमं ज्ञानं] परम ज्ञान [मम] मेरे [प्रकाशय] प्रकाशित करो, [अन्येन बहुना] और बहुत विकल्प-जालों से [किं] क्या फायदा ? कुछ भी नहीं।

भावार्थ :– प्रभाकर भट्ट श्रीयोगीन्द्रदेव से पूछता है, कि हे स्वामी जिस वीतरागस्वसंवेदनकर ज्ञानकर क्षणमात्र में शुद्ध, बुद्ध स्वभाव अपनी आत्मा जानी जाती है, वह ज्ञान मुझको प्रकाशित करो, दूसरे विकल्प-जालों से कुछ फायदा नहीं है, क्योंकि ये रागादिक विभावों के बढ़ानेवाले हैं। सारांश यह है कि मिथ्यात्व रागादि विकल्पों से रहित तथा निज शुद्ध आत्मानुभवरूप जिस ज्ञान से अंतर्मुहूर्त में ही परमात्मा का स्वरूप जाना जाता है, वही ज्ञान उपादेय है। ऐसी प्रार्थना शिष्य ने श्रीगुरु से की।।१०४।।

वीर संवत् २५०२, भाद्र शुक्ल ११, शनिवार
दिनांक-०४-०९-१९७६, गाथा-१०४-१०५, प्रवचन-८१

यह दसलक्षणी पर्व धर्म के आराधना के दस दिन हैं। पर्यूषण कहते हैं न? परि—समस्त प्रकार से भगवान आनन्दस्वरूप आत्मा में लीन होना, वह पर्यूषण पर्व है। पण्डितजी! पर्यूषण। आहाहा! देह से भिन्न भगवान और पुण्य-पाप की क्रिया से भी भिन्न आत्मा है, उस आत्मा का ज्ञान करके, अनुभव करके उसमें विशेष स्वभाव की सेवा करना, उसमें लीन होना, उसे यहाँ पर्यूषण दिवस कहा जाता है। सेठ! आहाहा! उसमें आज सातवाँ दिन है न? सातवाँ दिन—तप-तप। अब तप किसे कहते हैं? सूक्ष्म बात है, भाई! जब तक आत्मा क्या चीज़ है, यह जब तक उसका अनुभव और सम्यग्दर्शन न हो, तब तक सब साधना व्यर्थ है। दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति हो, परन्तु वह शुभराग है। वह धर्म नहीं। आहाहा! यहाँ सातवें बोल में यह कहते हैं।

सम्यग्ज्ञानरूपी दृष्टि से भले प्रकार वस्तु के स्वरूप को जानकर... भगवान आत्मा चिदानन्द चमत्कारी वस्तु है। आहाहा! जब तक वह सम्यग्ज्ञान से अपना आत्मा शान्ति से, आनन्द से वेदन में न आवे, तब तक उसे आत्मज्ञान नहीं कहा जाता। आहाहा! समझ में आया? वह यहाँ आत्मज्ञानसहित की बात चलती है, भगवान! इतने अपवास आदि करे, वह तो लंघन है। लंघन। '**कषायविषयाहारो त्यागो यत्र विधियते**' '**कषायविषयाहारो त्यागो यत्र विधियते उपवासः सः विज्ञेयं शेषम लंघनं विधुः।**' क्या कहते हैं? आहाहा! अन्य में भी नरसिंह मेहता ऐसा कहते हैं, 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहिं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' भगवान की भक्ति करो या पूजा करो या दया करो, दान करो, व्रत करो, वह सब संसार में भव करने का कारण है। आहाहा! भगवान आत्मा....

यहाँ, **सम्यग्ज्ञानरूपी दृष्टि...** चैतन्यज्योति जलहल भगवान आत्मा, चैतन्यप्रकाश का पूर नूर तेज है। उसमें तो दृष्टा और ज्ञाता स्वभाव भरा है। और अतीन्द्रिय आनन्द की गाँठ आत्मा है। सच्चिदानन्द है न? सत् चिदानन्द। सत्—कायम रहनेवाला ज्ञान और आनन्द, जिसका स्वभाव है। वह सम्यग्ज्ञानरूपी दृष्टि से वस्तु का—अपना स्वरूप बराबर ज्ञात होता है, तब रागादि विकल्प है, वह पर है, वह मेरा कर्तव्य नहीं, ऐसा इसे

यथार्थ ज्ञान होता है। यह अन्दर आनन्द में रहने के कारण इच्छा का निरोध करके, अतीन्द्रिय आनन्द में लीन रहता है, उसे भगवान तप कहते हैं। आहाहा! इसकी विशेष व्याख्या यह है। तपंते इति तपः। जैसे स्वर्ण होता है, स्वर्ण। गेरु लगाते हैं गेरु। सोना ओपता है, शोभता है, इसी प्रकार भगवान आत्मा.... सूक्ष्म बात, प्रभु! जिसे धर्म कहते हैं, वह बात बहुत सूक्ष्म है, प्रभु!

आत्मा आनन्दकन्द प्रभु का जहाँ अनुभव-दृष्टि होने पर भी जब विशेष इच्छा का निरोध करके आनन्द ओपता है, अतीन्द्रिय शोभता है, ऐसी दशा को तप कहा जाता है। अरे! लोग कुछ का कुछ बाहर से लगे और मान बैठे धर्म हुआ। और वह भी यह तो उत्तमतप है न? दस प्रकार है न? उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम तप। उत्तम शब्द क्यों कहा? कि आत्मा का अनुभव आनन्द के स्वादसहित इच्छा का निरोध हो, उसे उत्तम कहा जाता है। साधारण अपवास आत्मा के भान बिना अपवासादि करता है, वह उत्तम नहीं, उससे तो पुण्यबन्ध होता है। संसार में रुले—भटके। आहाहा! अमरचन्दभाई! ऐसी बात है, भगवान!

यहाँ पाठ यह है, '**बोधदृशा**' अन्दर सम्यग्ज्ञानरूपी दशा प्रगट करके। आहाहा! जिसने उस आनन्द में लीन होकर आत्मा की उग्र शान्ति की शोभा अन्दर में बढ़ाई, उसका नाम भगवान इच्छानिरोध तप कहते हैं। यह भान बिना जितने अपवास आदि करे, वह लंघन है, लंघन। आत्मा में उससे जरा भी धर्म नहीं होता। आहाहा! विशेष, क्रोध, मान, माया, लोभ जो राग विकार है, उसे जीतने में आनन्द के नाथ को जागृत करके, उसमें स्थिर होना, वह जीतने का उपाय है। आहाहा! पुण्य और पाप के विकार, आत्मा योद्धा अन्दर सुभट है, आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की शोभा से सुभट प्रभु है। उस अतीन्द्रिय आनन्द के आश्रय से सुभट भगवान आत्मा से विकार जीता जाता है। समझ में आया? पद्मचन्दजी! सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह तो सब वस्तु बहुत करते हैं न! आहाहा! बाहर की तो करे, अनन्त बार की। यह व्रत भी पालन किये, पंच महाव्रत पालन किये, नग्न दिगम्बर हुआ, वह सब क्रियाकाण्ड में राग मन्द हो तो मिथ्यात्व सहित पुण्य बँधता है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

यहाँ तो इसलिए यह कहा, '**धर्मश्रिया**'। दूसरे बोल में है। धर्मरूपी लक्ष्मी। यह

पुण्य-पाप नहीं, बाहर की धूल-लक्ष्मी तो नहीं। अन्तर आनन्द और ज्ञान... दूसरे बोल में है, भाई! ९९ में। '**धर्मश्रिया**' दूसरे पद में है। धर्मरूपी लक्ष्मी। आहाहा! ऐ... सेठ! यह तुम्हारी धूल की लक्ष्मी की यहाँ गिनती नहीं। क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : उत्तमतप की व्याख्या हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उत्तमतप की व्याख्या। बात सच्ची, भगवान! यह दस बोल के उत्तम नाम हैं न? उत्तमक्षमा, उत्तममार्दव... उत्तमतप, सबको 'उत्तम' शब्द है न? तो उत्तम क्यों कहा? मात्र राग की मन्दता की क्रिया, वह उत्तम नहीं। भगवान आनन्द का नाथ प्रभु सच्चिदानन्दस्वरूप—सत् चिदानन्द। सत्—शाश्वत्, चिद्—ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु। सुखकन्द, आनन्दकन्द। अरे! कैसे जँचे? उसे खबर नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मा, उसके अन्दर जाकर अनुभव करना और विशेष अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेना... आहाहा! उसे यहाँ तप कहा जाता है। वह उत्तमतप है। जिससे कर्म निर्जरा होकर अल्प काल में जिसे मोक्ष अर्थात् मुक्ति होती है। कहो, सेठ! आहाहा!

मुमुक्षु : यह तपसा निर्जरा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तपसा निर्जरा है। यह थोड़ा लिया।

अब अपने चलता है न? परमात्मप्रकाश। कहाँ आया है? १०४ गाथा।

यह परमात्मप्रकाश शास्त्र है। शास्त्र का नाम परमात्मप्रकाश। जो भगवान आत्मा अन्दर परमात्मस्वरूपी ही है। आहाहा! जो परमात्मस्वरूप है, उसका पर्याय में एन्लार्ज होता है तो परमात्मा होता है। अरे! यह वस्तु उसका यहाँ प्रकाश करते हैं। गुरु का शिष्य है। एक योगीन्द्रमुनि हो गये। आनन्द के अनुभवी मुनि दिगम्बर। अतीन्द्रिय आनन्द में अन्दर लवलीन। आहाहा! जैसे पूरणपोली होती है न? पूरणपोली समझते हो? गर्म-कर्म करके फिर घी में डाले। पूरणपोली समझते हो? घी में डुबोवे और फिर ऐसे चमचा से ऊँची करे। उसमें से घी टपके। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय सरोवर प्रभु आत्मा है। उसकी खबर कहाँ है? प्रभु! इसे खबर कहाँ है? अतीन्द्रिय सुख का सागर प्रभु, उसमें डुबकी लगाकर अतीन्द्रिय आनन्द झरता है, उसका नाम तप कहा जाता है। ऐई!

यहाँ शिष्य गुरु से प्रश्न करता है। गुरु कैसे हैं? कि जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव हुआ है। कल यह कहा था। समयसार पाँचवीं गाथा। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हमारा मुनिपना कैसा है? हमारा वैभव कैसा है? यह दुनिया का वैभव नहीं। ऐई! यहाँ बहुत करोड़पति बैठे हैं। ऐई! यह सब करोड़पति हैं। एक रामजीभाई उस ओर बैठे हैं। किसान है, राजकोट के। नहीं? रामजीभाई। वे करोड़पति हैं। वे स्तम्भ के पास बैठे हैं। राजकोट के किसान, किसान। यहाँ रहते हैं, बहुत रहते हैं। अकेले भोजन बनाकर जीमते हैं। वह वाडीभाई का यहाँ मकान है न? वाडीभाई का मकान, वहाँ रहते हैं। यहाँ वाडी है, वहाँ रहते हैं। किसान है, किसान। राजकोट के। इनके पास एक करोड़ रुपये हैं। पैंतीस लाख का तो एक थियेटर इन्होंने बनाया है। हमको चरण करने ले गये थे। स्तम्भ के पास बैठे हैं। शान्त है। नरम व्यक्ति है। बहुत समय से यहाँ ही रहते हैं। सोनगढ़। आहाहा! सेठ! यह सेठ करोड़पति, यह पैसेवाला, इनके पास बहुत पैसे हैं। यह खिलौने के राजा हैं। दिल्ली... दिल्ली। खिलौनों के राजा, आत्मा के नहीं। कैलाशचन्दजी। यह नाम दिया है न? राजा कहते हैं न? राजा टॉयज। यह मुझे पूछते थे, टॉयज का अर्थ क्या? खिलौने होते हैं। राजा टॉयज कहते हैं न! कैलाशचन्दजी राजा टॉयज दिल्ली। आहाहा!

यह भगवान आत्मा... कहते हैं, जिसे अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द के झरने (बहते हैं), अन्दर में मोहरछाप पड़ी है। कल कहा था। मुनिपना अर्थात् क्या? कि जिसे अतीन्द्रिय आनन्द के झरने झरते हैं। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का पर्वत है। आत्मा की खबर कहाँ है? आत्मा अर्थात् कुछ नहीं। भगवान तो अतीन्द्रिय आनन्द का पर्वत आत्मा है। उसमें एकाग्र होता है तो अतीन्द्रिय आनन्द के झरने झरते हैं। तो मुनि ऐसा कहते हैं कि हमारा मुनिपना क्या है? हमारा अतीन्द्रिय आनन्द का जो अनुभव होता है, उस अतीन्द्रिय आनन्द की मोहरछाप हमको पड़ी है, वह हमारा मुनिपना है। देह की नग्नक्रिया और व्यवहार की पंच महाव्रत की क्रिया, वह हमारा मुनिपना नहीं। आहाहा! कल बताया था। पाँचवीं गाथा। आनन्द का झरना झरता है। आनन्द की मोहरछाप। जो यह पोस्ट में लगाते हैं न? पोस्ट में छाप लगाते हैं। उसी प्रकार... आहाहा! धर्म की मोहरछाप क्या? धर्म की मोहरछाप तो अतीन्द्रिय आनन्द झरना, वह

मोहरछाप है। अरे! दुनिया कहाँ चलती है और कहाँ भटकती है! आहाहा! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु है न! सत् चिदानन्द, ऐसा तो बहुत बोलते हैं। स्वामीनारायण में भी भाषा बोलते हैं। परन्तु सत् कायम रहनेवाला, चिद् अर्थात् ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द। आहाहा! वह ज्ञान और आनन्द का सत् स्वरूप त्रिकाली भगवान, उसमें एकाग्र होकर अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना, अतीन्द्रिय आनन्द की मोहरछाप आना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है, उसका नाम सम्यग्ज्ञान है, उसका नाम सम्यक्चारित्र है। समझ में आया? उन चारित्रवन्त को शिष्य पूछता है। देखो!

अब प्रभाकर भट्ट महान विनय से ज्ञान का स्वरूप पूछते हैं—गुरु हैं आनन्द के अनुभवी। मुनि है न, आनन्द के अनुभवी। बाह्य में नग्न है। अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द की लहरें उछलती हैं। जैसे समुद्र में से ज्वार आता है... भरती को क्या कहते हैं? बाढ़... बाढ़... बाढ़ (ज्वार)। हमारे (गुजराती) में भरती कहते हैं। भाटा नहीं आता, यहाँ तो ज्वार आता है। आहाहा! भगवान में मध्यबिन्दु में, यह समुद्र में मध्यबिन्दु में से ज्वार आता है, उसी प्रकार भगवान आत्मा मध्यबिन्दु में अतीन्द्रिय आनन्द से छलाछल भरपूर है। आहाहा! उसमें सम्यग्दृष्टि देने से, दबाव देने से, जैसे... वह क्या कहलाता है? फब्बारा... फब्बारा होता है न? फब्बारा। वहाँ गये थे न? मुम्बई। मुम्बई नहीं? वह बड़ा फब्बारा बीच में है। अपने मोटर निकले तब दिखता है। यह भगवान तो बड़ा फब्बारा ऐसा है। है क्षेत्र शरीरप्रमाण, परन्तु उसका भाव अपरिमित अन्दर है। आहाहा! अनन्त-अनन्त आनन्द है, उसमें जरा दृष्टि का—सम्यक् दृष्टि का दबाव देते हैं तो आनन्द का फब्बारा अन्दर से फूटता है। अरे! भगवान आत्मा कौन है, इसकी खबर कहाँ है? और आत्मा बिना सब चल निकले। वर नहीं और बारात जोड़ दी। दूल्हा... दूल्हा। दूल्हा कहते हैं न? वर नहीं और बारात जोड़ दी। उसे बारात नहीं कहा जाता, मनुष्यों का झुण्ड कहा जाता है। वर हो तो बारात कहा जाता है। इसी प्रकार भगवान आनन्द के नाथ को जागृत किया हो और अनुभव हो तो वह वर है। तब दया, दान के विकल्प आते हैं तो पुण्य कहलाता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ **प्रभाकर भट्ट महान विनय से...** महान विनय से गुरु को कहता है। दिगम्बर मुनि हैं, योगीन्द्र हैं, अतीन्द्रिय आनन्द जिन्हें अन्दर से प्रस्फुटित हुआ है। अन्दर से

फब्बारा फूटा है। छठवें गुणस्थान में मुनि उसे कहते हैं, जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का फब्बारा फूटा है। झरना बहता है। ऐसे गुरु को वह प्रभाकर भट्ट थे, फिर तो मुनि हुए हैं, उन्होंने प्रश्न किया है। **महान विनय से ज्ञान का स्वरूप पूछता है।** अर्थात् क्या? भगवान! यह आत्मा ज्ञान... ज्ञान कहते हैं, वह चीज़ क्या है? समझ में आया? यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है, आत्मा ज्ञानस्वरूप है, वह ज्ञान क्या है? महाराज! हमको तो कभी उस ज्ञान का अनुभव हुआ नहीं। दूसरा सब हमने किया। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा की, परन्तु वह आत्मा क्या है? आहाहा! वह ज्ञानस्वरूप क्या? स्व-रूप। उसके ज्ञान का स्वरूप क्या है? ऐसा शिष्य गुरु को पूछता है। १०४। है? '**अतः कारणात् ज्ञानं पृच्छति**'। संस्कृत है।

१०४) णाणु पयासहि परमु महु किं अण्णें बहुएण।
जेण णियप्पा जाणियइ सामिय एक्क-खणेण॥१०४॥

आहाहा! शिष्य का प्रश्न तो देखो! हे **स्वामिन्!** है इसमें? शब्दार्थ है। हे '**स्वामिन्**' **हे भगवान्...** इसका अर्थ किया है। **जिस ज्ञान से क्षणभर में अपनी आत्मा जानी जाती है...** आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, अनन्त बार किये परन्तु ज्ञात नहीं हुआ और जिस ज्ञान से अन्तर्मुहूर्त में ज्ञात हो, वह ज्ञान कैसा है? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अनन्त बार मुनिव्रत धारण किये, पंच महाव्रत, नग्न दिगम्बर (साधु होकर) घोर तपस्यायें (कीं), शुक्ललेश्या, चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो क्रोध न करे, इतनी तो क्षमा की, परन्तु आत्मज्ञान क्या है, उसका भान नहीं। तो प्रभु! आप आत्मज्ञान... आत्मज्ञान, वह क्या चीज़ है? समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : जिसे आवश्यकता है उसने....

पूज्य गुरुदेवश्री : आवश्यकता है, उसने प्रश्न किया है। शिष्य ने प्रश्न यह किया है। यह आत्मधर्म की बात है। समझ में आया? यह कोई सम्प्रदाय की बात नहीं। आत्मधर्म क्या है, उसका प्रश्न करता है। आहाहा!

ज्ञानस्वरूप आत्मा, यह ज्ञान, वह क्या है? आहाहा! हमने तो राग किया, पुण्य किया, दया, दान, व्रत, भक्ति कर करके मुनिपना भी अनन्त बार लिया, परन्तु प्रभु! आप

कहते हो कि ज्ञान कोई चीज़ है, उसके भान बिना सब व्यर्थ है, तो वह ज्ञान है क्या? हे '**स्वामिन्' जिस ज्ञान से क्षण भर में...** नियत काल में, ऐसा है उसमें। संस्कृत में नियत काल है। '**हे स्वामिन् नियतकालेनैकक्षणेनेति**' संस्कृत में ऐसा है। '**नियतकालेनै**' अल्प काल में। आहाहा! समझ में आया? **क्षण भर में अपनी आत्मा जानी जाती है, वह परम ज्ञान मेरे प्रकाशित करो,...** प्रभु! यह बताओ, बाकी दूसरी बात (जानना नहीं)। समझ में आया? आहाहा! **और बहुत विकल्प-जालों से क्या फायदा?** आहाहा! बाकी वृत्ति और विकल्प उठते हैं, व्रत के, भक्ति के, पूजा के, अशुभ के, उससे आत्मा को क्या लाभ? बहुत विकल्प जाल से क्या है? आहाहा! गुरु से यह प्रश्न किया है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रकाशित करो अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रकाश करो अर्थात् अभी तो बताते हैं। मुझे बताओ, ऐसा। प्रकाशित करो अर्थात् मुझे बताओ, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : कर दे....

पूज्य गुरुदेवश्री : कर कौन दे? गुरु कर दे? आहाहा! यह ब्राह्मण विवाह में विवाह करा दे। फिर उसका घर, परिवार चला दे? तुमने हमको स्त्री से विवाह कर दिया, इसलिए अब घर चलाओ। गुरु बतावे, फिर काम इसे करना है। आहाहा! अपने कहावत है न कि ब्राह्मण विवाह करावे परन्तु कहीं घर चला दे? हम दो व्यक्ति हैं, अब घर चलाओ तुम। कैलाशचन्दजी! तुम्हारे कहावत तो होगी। हिन्दी में होगी थोड़ी। यहाँ गुजराती में ऐसा चलता है।

यहाँ परमात्मा गुरु को शिष्य पूछता है। तो गुरु उसका घर नहीं चला देते—उसे अनुभव नहीं करा देते। उसे अनुभव बताते हैं कि तेरी चीज़ क्या है।

मुमुक्षु : विवाह तो करा दे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : विवाह करावे, इसका अर्थ यह राग, यह शरीर, आत्मा से भिन्न है, उसका तू जुड़ान कर। यह विवाह। विवाह तो इसे करना है या ब्राह्मण को करना है? स्त्री के साथ सम्बन्ध किसे करना है? ब्राह्मण को करना है? आहाहा!

प्रभु! **परम ज्ञान मेरे प्रकाशित करो,...** अर्थात् बताओ। '**अन्येन बहुना**' **बहुत विकल्प-जालों से क्या फायदा?** आहाहा! बहुत विकल्प आये, नाथ! व्रत के और भक्ति के, पूजा के, दान के और दया के, ऐसे विकल्प से क्या? उसमें आत्मज्ञान नहीं हुआ, उसमें आत्मभान नहीं हुआ, उसमें आत्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ। आहाहा! तो अन्य विकल्प से क्या है? प्रभु! आहाहा! शिष्य की झंखना तो देखो! जिसे ऐसी झंखना है, उसे उत्तर देते हैं। भावार्थ है न?

भावार्थः—प्रभाकर भट्ट श्री योगीन्द्रदेव से पूछता है,... योगीन्द्र मुनि थे। लगभग १३०० (वर्ष पहले हुए)। ईस्वी सन् ६००। अर्थात् १४०० वर्ष हुए। दिगम्बर मुनि थे, वनवासी, आत्मानन्द में झूलनेवाले। अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभवी। 'वस्तु विचारत ध्यावतै मन पावै विश्राम, रस स्वादत सुख उपजे अनुभव ताको नाम।' भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का पिण्ड प्रभु, उसकी वस्तु विचारत ध्यावतै। उसका विचार करने से और अन्तर में ध्यान करने से। 'वस्तु विचारत ध्यावतै, मन पावै विश्राम।' मन के विकल्प वहाँ विश्राम पा जाते हैं। आहाहा! घर में प्रवेश करने पर विकल्प शान्त हो जाते हैं। 'रस स्वादत सुख उपजै।' उस अतीन्द्रिय आनन्द के रस के स्वाद का सुख उपजने पर 'अनुभव ताकौ नाम।' उसका नाम अनुभव और आत्मज्ञान कहा जाता है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! दुनिया से दूसरी लगे, ऐसी है परन्तु वस्तु परमात्मा तीन लोक के नाथ यह फरमाते हैं। और शिष्य ने भी यह प्रश्न किया है। महाराज! अनादिकाल से बहुत विकल्प हुए। शुभ भी अनन्त बार किये, अशुभ भी अनन्त बार हुए, परन्तु प्रभु! ज्ञानस्वरूप भगवान कौन है? और वह क्षण में किस प्रकार प्राप्त हो? ऐसे अनन्त काल व्रत, नियम किये और प्राप्त नहीं हुआ, वह क्षण में प्राप्त हो, वह चीज़ कैसी है? समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : शिष्य को धन्यवाद।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु ऐसी है, बापू! आहाहा!

प्रभाकर भट्ट श्री योगीन्द्रदेव से पूछता है, कि हे स्वामी जिस वीतराग-स्वसंवेदनकर... देखो भाषा! वीतराग स्वसंवेदनज्ञानकर। आहाहा! वह विकल्प से नहीं, व्यवहाररत्नत्रय के राग से नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, बापू! यह तो जन्म-मरण

के अन्त की बात है। और इसकी शुरुआत कैसे हो, यह बात है। आहाहा! कहते हैं, **जिस वीतरागस्वसंवेदनकर ज्ञानकर क्षणमात्र में,...** है? कैलाशचन्दजी! है? आहाहा! ऐसे अन्धकार फट जाये और उजाला प्रगट होता है, वह क्षण में। इसके अतिरिक्त दूसरे उपाय करे, परन्तु उजाला प्रगट नहीं होता। आहाहा! दियासलाई घिसे और एकदम प्रकाश हो। इसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त काल से विकल्प के जाल, पुण्य की, दया, दान, व्रत की (क्रिया) की, प्रभु! उससे क्या हुआ? हमारा आत्मा क्षणमात्र में प्राप्त हो, वह वस्तु बताओ। है न? आहाहा! **क्षणमात्र में शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव...** 'एक' शब्द पड़ा रहा है। संस्कृत में है। वहाँ 'एक' शब्द चाहिए। शुद्ध बुद्ध एक, ऐसा शब्द चाहिए। संस्कृत में है। '**शुद्धबुद्धैकस्वभावो**' क्या कहते हैं? तीसरी लाईन है न? भावार्थ की तीसरी लाईन है। शुद्ध परमात्मा पवित्र, बुद्ध अर्थात् ज्ञान का पिण्ड, एक स्वभाव। जिसका एकरूप स्वभाव त्रिकाल है। ज्ञाता... ज्ञाता... ज्ञाता... ज्ञाता... ज्ञाता। चैतन्य का पुंज प्रभु। आहाहा! यह तो शिष्य प्रश्न करता है। ऐसा मेरा आत्मा एक क्षण में शुद्ध-बुद्ध एक स्वभावस्वरूप है। आहाहा! **अपनी आत्मा जानी जाती है,...** वह किस प्रकार से आत्मा ज्ञात होता है? हमने तो बहुत व्रत किये, तप किये परन्तु आत्मा तो ज्ञान में आया नहीं। यह छहढाला में आया न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' यह पंच महाव्रत के परिणाम दुःख हैं। राग है, आस्रव है, दुःख है। आहाहा! अरे! कठिन!

भगवान आत्मा एक क्षण में **अपनी आत्मा...** ऐसी भाषा है। देखा? भगवान का आत्मा और तीर्थंकर का आत्मा नहीं। आहाहा! चौथी है। है न उसमें? **क्षणमात्र में शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव...** आहाहा! शिष्य का प्रश्न भी इतना बड़ा है। पवित्र शुद्ध-बुद्ध ज्ञानपिण्ड और एकरूप स्वभाव। पर्याय का भेद भी जिसमें नहीं। आहाहा! राग तो नहीं, परन्तु मति-श्रुत आदि ज्ञान की पर्याय के जो पाँच भेद हैं, वे भी नहीं। एकरूप। सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव **अपनी आत्मा जानी जाती है, वह ज्ञान मुझको प्रकाशित करो,...** आहाहा! हे नाथ! मुझे बताओ। हमारी तो यह पिपासा है, हमें दूसरा कुछ नहीं चाहिए। आहाहा! हमारे लक्ष्मी नहीं चाहिए, पुण्य नहीं चाहिए, स्वर्ग नहीं चाहिए, कुछ नहीं चाहिए, हमको तो यह एक बताओ। आहाहा! आत्मा की लक्ष्मी क्या है? वह बताओ, प्रभु! ऐसा कहते हैं। आहाहा!

दूसरे विकल्प-जालों से कुछ फायदा नहीं है,... है ? दूसरे विकल्प के जाल, पुण्य-पाप की वृत्तियों से हमारे कुछ लाभ नहीं है। **क्योंकि ये रागादिक विभावों के बढ़ानेवाले हैं।** आहाहा! यह तो पुण्य-पाप के विकल्प क्रियाकाण्ड में बढ़ानेवाले हैं, विकल्प बढ़ानेवाले हैं, वह आत्मा नहीं। आहाहा! आहा! **रागादिक विभावों के बढ़ानेवाले हैं। सारांश यह है कि मिथ्यात्व रागादि विकल्पों से रहित...** मिथ्यात्व अर्थात् विपरीत मान्यता जो कि पुण्यभाव-शुभभाव से धर्म होता है, पापभाव में मजा आता है, ऐसा मिथ्यात्वभाव। आहाहा! और राग-द्वेष। ऐसे विकल्प से रहित **तथा निज शुद्ध आत्मानुभवरूप जिस ज्ञान से अन्तर्मुहूर्त में ही परमात्मा का स्वरूप जाना जाता है,...** देखो! यह सम्यग्ज्ञान का तो अन्तर्मुहूर्त में अनुभव होता है, कहते हैं। भाषा क्यों ऐसी की ? कि ऐसे बाह्य तप और व्रत, तप तो अनन्त बार किये, तो भी हाथ नहीं आया और सम्यग्ज्ञान अनुभव करने से तो क्षणमात्र में हाथ आ जाता है। आहाहा! है ?

जिस ज्ञान से अन्तर्मुहूर्त में ही... निज परमात्मा पूर्णानन्द प्रभु, **जाना जाता है, वही ज्ञान उपादेय है।** आहाहा! जिस ज्ञान से पूर्णानन्द का नाथ अन्तर में ज्ञात होता है, वह ज्ञान आत्मज्ञान उपादेय है। ग्रहण करनेयोग्य हो तो वह है, दूसरी चीज़ उपादेय है नहीं। आहाहा! **ऐसी प्रार्थना शिष्य ने श्रीगुरु से की।** अब इसका उत्तर गुरु देते हैं। १०५।

गाथा - १०५

अत उर्ध्वं सूत्रचतुष्टयेन ज्ञानस्वरूपं प्रकाशयति –

१०५) अप्पा णाणु मुणेहि तुहुँ जो जाणइ अप्पाणु।
जीव-पएसहिं तित्तिडउ णाणें गयण-पवाणु।।१०५।।

आत्मानं ज्ञानं मन्यस्व त्वं यः जानाति आत्मानम्।
जीवप्रदेशैः तावन्मात्रं ज्ञानेन गगनप्रमाणम्।।१०५।।

अप्पा णाणु मुणेहि तुहुं प्रभाकरभट्ट आत्मानं ज्ञानं मन्यस्व त्वम्। यः किं करोति। जो जाणइ अप्पाणु यः कर्ता जानाति। कम्। आत्मानम्। किंविशिष्टम्। जीवपएसहिं तित्तिडउ जीवप्रदेशैस्तावन्मात्रं लोकमात्रप्रदेशम्। अथवा पाठान्तरम्। 'जीवपएसहिं देहसमु' तस्यार्थो निश्चयेन लोकमात्रप्रदेशोऽपि व्यवहारेणैव संहारविस्तारधर्मत्वाद्देहमात्रः। पुनरपि कथंभूतम् आत्मानं णाणें गयणपवाणु ज्ञानेन कृत्वा व्यवहारेण गगनमात्रं जानीहीति। तद्यथा। निश्चयनयेन मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानपञ्चकादभिन्नं व्यवहारेण ज्ञानापेक्षया रूपावलोकनविषये दृष्टिवल्लोकालोकव्यापकं निश्चयेन लोकमात्रासंख्येयप्रदेशमपि व्यवहारेण स्वदेहमात्रं तमित्थंभूतमात्मानम् आहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञास्वरूपप्रभृतिसमस्तविकल्पकल्लोलजालं त्यक्त्वा जानाति यः स पुरुष ज्ञानादभिन्नत्वाज् ज्ञानं भण्यत इति। अत्रायमेव निश्चयनयेन पञ्चज्ञानाद-भिन्नमात्मानं जानात्यसौ ध्याता तमेवोपादेयं जानीहीति भावार्थः। तथा चोक्तम् – 'आभिणिबोहिय सुदोधिमणकेवल च तं होदि एगमेव पदं। सो एसो परमट्ठो जं लहिदुं णिव्वुदिं गादि।।'।।१०५।।

आगे श्रीगुरु चार दोहा-सूत्रों से ज्ञान का स्वरूप प्रकाशते हैं-श्रीगुरु कहते हैं, कि-

ज्ञानमात्र ही आत्मा है-हे योगी! निज को ऐसा जान।
मात्र असंख्य प्रदेशी है वह ज्ञान अपेक्षा गगन प्रमाण।।१०५।।

अन्वयार्थ :- हे प्रभाकर भट्ट, [त्वं] तू [आत्मानं] आत्मा को ही [ज्ञानं] ज्ञान [मन्यस्व] जान, [यः] जो ज्ञानरूप आत्मा [आत्मानम्] अपने को [जीवप्रदेशैः तावन्मात्रं] अपने प्रदेशों से लोक-प्रमाण [ज्ञानेन गगनप्रमाणम्] ज्ञान से व्यवहारनयकर आकाश-प्रमाण [जानाति] जानता है।

भावार्थ :– निश्चयनयकर मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल इन पाँच ज्ञानों से अभिन्न तथा व्यवहारनय से ज्ञान की अपेक्षारूप देखने में नेत्रों की तरह लोक–अलोक में व्यापक है। अर्थात् जैसे आँख रूपी पदार्थों को देखती हैं, परंतु उन स्वरूप नहीं होती, वैसे ही आत्मा यद्यपि लोक–अलोक को जानता है, देखता है, तो भी उन स्वरूप नहीं होता, अपने स्वरूप ही रहता है, ज्ञानकर ज्ञेय प्रमाण है, यद्यपि निश्चय से प्रदेशोंकर लोक–प्रमाण है, असंख्यात प्रदेशी है, तो भी व्यवहारनयकर अपने देह–प्रमाण है, ऐसे आत्मा को जो पुरुष आहार, भय, मैथुन परिग्रहरूप चार वांछाओं स्वरूप आदि समस्त विकल्प की तरंगों को छोड़कर जानता है, वही पुरुष ज्ञान से अभिन्न होने से ज्ञान कहा जाता है। आत्मा और ज्ञान में भेद नहीं है, आत्मा ही ज्ञान है। यहाँ सारांश यह है, कि निश्चयनयकर के पाँच प्रकार के ज्ञानों से अभिन्न अपने आत्मा को जो ध्यानी जानता है, उसी आत्मा को तू उपादेय जान। ऐसा ही सिद्धांतों में हरएक जगह कहा है – 'आभिणि' इत्यादि। इसका अर्थ यह है, कि मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवलज्ञान ये पाँच प्रकार के सम्यग्ज्ञान एक आत्मा के ही स्वरूप हैं, आत्मा के बिना ये ज्ञान नहीं हो सकते, वह आत्मा ही परम अर्थ है, जिसको पाकर वह जीव निर्वाण को पाता है।।१०५।।

गाथा-१०५ पर प्रवचन

१०५) अप्पा णाणु मुणेहि तुहुँ जो जाणइ अप्पाणु।
जीव-पएसहिँ तित्तिडउ णाणेँ गयण-पवाणु॥१०५॥

आगे श्रीगुरु चार दोहा-सूत्रों से ज्ञान का स्वरूप प्रकाशते हैं-श्रीगुरु कहते हैं, कि—

अन्वयार्थः—हे प्रभाकर भट्ट! तू आत्मा को ही ज्ञान जान,... आहाहा! शास्त्रज्ञान, वह ज्ञान नहीं। भगवान चैतन्यमूर्ति आत्मा, वह ज्ञान है। समझ में आया? शक्कर, वह मिठास है। गळपण कहते हैं? मिठास। उसी प्रकार आत्मा शक्कर के समान ज्ञानस्वरूप है। उसमें राग या विकल्प है नहीं। आहाहा! **आत्मा को ही ज्ञान जान, जो ज्ञानरूप आत्मा अपने को...** आहाहा! **अपने प्रदेशों से लोक-प्रमाण...** जरा बात करते हैं। असंख्य प्रदेशी आत्मा है। असंख्य प्रदेश अर्थात् जैसे सोने की चैन होती है न? चैन। हजार मकोड़ा की। सूक्ष्म बात है। उसी प्रकार आत्मा मकोड़ा, वह प्रदेश है। सोने की चैन

होती है न? मकोड़ा कहते हैं? कड़ी.. कड़ी। यह एक-एक कड़ी। एक कड़ी एक प्रदेश। उसमें सोना है, वह गुण। समझे? और पूरी चैन एक। उसी प्रकार भगवान आत्मा एक-एक प्रदेश उसमें है। कड़ी समान। उस प्रदेश में अनन्त ज्ञानादि है उन असंख्य प्रदेश का पिण्ड—चैन वह आत्मा है। समझ में आया? सांकळी समझते हो? यह चैन नहीं बनाते? चैन कहते हैं न? कड़ी कहते हैं, वह कड़ी बराबर है। उसकी एक-एक कड़ी होती है न? चैन की। उसी प्रकार भगवान असंख्य कड़ी—असंख्य प्रदेशी है। यह सर्वज्ञ (वीतराग) के अतिरिक्त किसी ने ऐसा देखा ही नहीं। समझ में आया?

श्रीमद् राजचन्द्र भी कहते हैं। श्रीमद् राजचन्द्र ज्ञानी हो गये। गृहस्थाश्रम में थे। सम्यग्ज्ञानी हो गये। एक भव में मोक्ष जायेंगे। लाखों का जवाहरात का व्यापार था। वहाँ मुम्बई। परन्तु सम्यग्दर्शन, वह तो कोई अलौकिक चीज़, बापू! आहाहा! गृहस्थाश्रम में थे परन्तु स्वर्ग में गये हैं, वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। 'इससे देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे।' ऐसा स्वयं कह गये हैं। 'अशेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे...' थोड़ा राग बाकी रहता है। हम देह छोड़कर जाते हैं, हमारी पूर्ण दशा हुई नहीं। तो अभी हम कहते हैं कि एक भव करके, 'जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे...' इस राग को तोड़कर एक भव में हम केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। हमारे निजघर में जाऊँगा। आहाहा! समझ में आया? उन्होंने आत्मसिद्धि में एक श्लोक बनाया है।

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयं ज्योति सुखधाम,
दूसरा कितना कहें, कर विचार तो पाम रे...
गुणवंता ज्ञानी, अमृत वरस्या रे पंचम काल मां...

'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन' भगवान शुद्ध अर्थात् पूर्ण है। बुद्ध अर्थात् ज्ञान का पिण्ड है। चैतन्यघन का असंख्य प्रदेशी है। यहाँ यह कहना था। चैतन्यघन है, वह असंख्य प्रदेशी है। जैसे कड़ी कही न? एक हजार कड़ी की सांकळी—चैन। उसी प्रकार असंख्य प्रदेशी आत्मा है। सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं है। आहाहा! उसका क्षेत्र असंख्य प्रदेश है। उसमें अनन्त गुण हैं। स्वयं ज्योति है—अपने से है, किसी ने बनाया नहीं। सुखधाम है, वह आनन्द का स्थान है। सुख का धाम है। अतीन्द्रिय आनन्द का क्षेत्र है। 'दूसरा कितना कहें' उसका ध्यान कर, ऐसा कहते हैं। 'कर विचार तो

पाम' कोई क्रिया कर तो प्राप्त कर, ऐसा नहीं कहा। यह ज्ञान करके अन्दर में स्थिर हो तो प्राप्त कर। समझ में आया? आहाहा!

जो स्वरूप समझे बिना, पाया दुःख अनन्त,
समझाया उन पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवन्त।
रे गुणवन्ता रे ज्ञानी अमृत बरस्या रे पंचम काल में...

अमृत का सागर उछला अन्दर से। आहाहा! सम्यग्दर्शन हुआ। चैतन्य ज्ञानमयी अन्दर में है, ऐसी दृष्टि की। यह पुण्य-पाप की क्रिया नहीं, शरीर-वाणी, मन कुछ उसमें नहीं, ऐसी अन्तर्दृष्टि करने से भगवान अपना स्वरूप जागृत हुआ। सम्यग्दर्शन, क्षणमात्र में सम्यग्दर्शन हुआ। क्या कहते हैं? आहाहा! अपनी ज्ञान की पर्याय को अन्तर में झुकाने से क्षणमात्र में परमात्मा प्राप्त होता है और इसके अतिरिक्त लाख क्रिया, करोड़ (क्रिया) करे तो भी पुण्यबन्ध होगा और वह स्वर्ग में जायेगा, परन्तु भवभ्रमण घटेगा नहीं, ऐसा कहते हैं, ऐसी बात है, भगवान! दुनिया को कठिन लगे, क्या हो? वस्तु तो जो है, वैसी रहेगी। आहाहा!

वह **'जीवप्रदेशैः तावन्मात्रं ज्ञानेन गगनप्रमाणम्' व्यवहारनयकर आकाश-प्रमाण जानता है।** असंख्य प्रदेशी है। लोकाकाश है, उतने प्रदेश हैं। सूक्ष्म बात है। यह लोक चौदह ब्रह्माण्ड है न? जितने आकाश के प्रदेश हैं, उतने एक जीव के प्रदेश हैं। **व्यवहारनयकर आकाश-प्रमाण जानता है।** अथवा यहाँ ऐसा भी पाठ है, ऐसा समझना कि निश्चयनयकर लोकप्रमाण है। क्या कहते हैं? उसके प्रदेश पूरा लोक है, इतने प्रमाण में असंख्य प्रदेश हैं। है तो इतने शरीर प्रमाण, परन्तु उसके प्रदेश की संख्या कितनी है? लोक के आकाश के प्रदेश जितनी संख्या है। अरे! अरे यह बात! तो भी व्यवहारनय से संकोच विस्तार स्वभाव होने से शरीरप्रमाण अभी है। आहाहा! शरीर प्रमाण है।

भावार्थः—निश्चयनयकर मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल इन पाँच ज्ञानों से अभिन्न... आहाहा! इस गाथा में वह दृष्टान्त देंगे न! वह निर्जरा का। **'आभिणि बोहीज्ञाननो'** पाँच ज्ञान का, वह दृष्टान्त देंगे। आहाहा! अरे! सुनो प्रभु! उसमें शरीर तो नहीं, दया, दान, व्रत के विकल्प तो नहीं, परन्तु ज्ञान के पाँच भेद हैं, ऐसा भी अन्तर में नहीं। आहाहा! पर्यायबुद्धि उड़ाते हैं। रागबुद्धि उड़ाकर, निमित्तबुद्धि उड़ाकर और पर्यायबुद्धि

उड़ाकर द्रव्यबुद्धि कराते हैं। आहाहा! अरे! कौन दरकार करे? भाई! चौरासी लाख में भटककर मर गया है। कौआ, कुत्ता, नरक के वेदन किये परन्तु भूल गया है। माता के गर्भ में था, वहाँ से निकला वहाँ ऊँहा... ऊँहा... वहाँ मैं और मैं यहाँ हो गया, जाओ। आहाहा! भूल गया, आहाहा! बापू! तू कहाँ था अनन्त काल? आदि रहित काल, नाथ! तूने कहाँ व्यतीत किया है, तुझे खबर है? आहाहा! शास्त्र तो कहते हैं, तेरे मरण के समय तेरी माता का रुदन हुआ। ऐसी अनन्त माताओं के रुदन से अनन्त समुद्र भर जायें इतने रुदन किये, ऐसे अनन्त मरण तूने किये, प्रभु! एक बार जवानी में तू मर गया और तेरी माता रोती थी, उसका रुदन, ऐसी अनन्त माताओं के रुदन इकट्ठे करो तो अनन्त स्वयंभूरमण समुद्र भर जायें, इतनी भव तूने चौरासी के अवतार में किये, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! यह आत्मा के ज्ञान और सम्यग्दर्शन बिना। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ शिष्य को कहते हैं, आहा! **निश्चयनयकर मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल इन पाँच ज्ञानों से अभिन्न तथा व्यवहारनय से ज्ञान की अपेक्षारूप देखने में नेत्रों की तरह लोक-अलोक में व्यापक है।** लोक-अलोक में व्यापक अर्थात् जाननेवाला। यह ज्ञान है, वह लोक-अलोक को जानता है। लोक-अलोक में प्रविष्ट नहीं होता। आहाहा! **जैसे आँख रूपी पदार्थों को देखती है,...** आँख... आँख। अग्नि देखे, रूपी देखे। परन्तु आँख वहाँ अग्निपदार्थ में प्रविष्ट होती है? आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अपने आनन्दस्वरूप का भान हुआ तो, सम्यग्दृष्टि की शास्त्र में चर्चा है। सम्यग्दृष्टि-आनन्द का अनुभव हुआ, परन्तु फिर पूर्ण साधने के लिये माता के निकट जाकर कहता है, माता! जननी! एक बार आज्ञा दे। मेरा आनन्द का नाथ मुझे साधना है। आहाहा! मेरा आनन्दस्वरूप मुझे साधना है। माता! एक बार आज्ञा दे। माँ! तुझे रोना हो तो एक बार रो ले। परन्तु जननी! मैं अब फिर से भव नहीं करूँगा, दूसरी माता नहीं करूँगा। आहाहा! मेरे आत्मा की मुझे इतनी लगन लगी है, आनन्द के नाथ को मुझे पूर्ण (साधना) है। आहाहा! सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् आत्मा के आनन्द का स्वाद आया। एक क्षणमात्र में। आहाहा! भगवान! आहाहा! पश्चात् पूर्ण आनन्द की प्राप्ति करने में

दीक्षित होने की भावना हुई, माता से कहता है—माँ! आज्ञा दे एक बार मुझे। माता रोती है। माँ! रोना हो तो रो ले, माँ! परन्तु फिर से माता नहीं बनाऊँगा। मेरे आनन्द के नाथ में अन्दर घुस जाऊँगा। मेरा सब भवभ्रमण समाप्त हो गया। मैं तो मुक्ति प्राप्त करने के लिये दीक्षित होता हूँ। आहाहा! कोई पुण्यबन्ध करके स्वर्ग में जाना, वह मेरी चीज़ नहीं है। आहाहा!

सम्प्रदाय में हम एक बात कहते थे। सम्प्रदाय में, हों! स्थानकवासी में उत्तराध्ययन में एक चौदहवाँ अध्ययन है। हम तो पहले से थोड़ी-थोड़ी बात करते थे। स्पष्ट अब बाहर आयी। वहाँ एक ब्राह्मण के छह पुत्र हैं, वे दीक्षित होते हैं। फिर माँ-बाप को लड़के कहते हैं, 'अजैव धम्मम पडिवज्जयामो, जहिं ... ज्ञान पुनभवामो, अणागयमैव...' हे माता! नहीं प्राप्त कोई चीज़ रही है? अनन्त काल में अनन्त बार नरक और स्वर्ग प्राप्त किया। परन्तु अप्राप्त चीज़ आनन्द के नाथ को मैंने देखा नहीं। मेरे आनन्द के नाथ को मैंने अनुभव किया नहीं। तो मैं आत्मा, माता! ऐसा कहता हूँ, 'अजैव धम्म... मैं आत्मा के आनन्द में रमणता आज अंगीकार करूँगा। 'अजैव धम्मम...' माता! आनन्द के नाथ की भेंट करने के लिये मैं अन्दर जाता हूँ। माता! फिर से कहता हूँ, फिर से मैं भव नहीं करूँगा। आहाहा! 'जही पवन्नाम पुनः भवामो' माता! '...' माता! इस जगत की कौन सी चीज़ अप्राप्त रही है? अनन्त बार सेठ, रंक / भिखारी हुआ। प्रभु! '...' माता! श्रद्धा कर, श्रद्धा कर। मुझे आज्ञा दे। माँ! मैं तो वनवास में जाऊँगा। आहाहा! जहाँ आनन्द का नाथ मेरा प्रभु है, उसे साधने के लिये मैं तो वनवास में जाऊँगा। आहाहा! अरे! संसार में मुर्दे को उठाकर ले जाते हैं, तो माता! मैं तो शरीर को उठाकर श्मशान में चला जाता हूँ। मेरी चीज़ अन्दर पड़ी है, उसे साधने, उसमें एकाग्र होने (के लिये जाता हूँ)। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, भगवान! आहाहा! सम्प्रदाय में तो हजारों लोग सुनते थे। उस समय भी हमारी प्रतिष्ठा तो बहुत थी न! छोटी उम्र में हजार, पन्द्रह सौ लोग। बोटाद। उपाश्रय में तो समावे नहीं। फिर गली.. शेरी समझे? गली। उसमें लोग... लोग... लोग। यह बात चले तो लोग तो... बापू! मार्ग यह है, नाथ! अन्तर आनन्द का नाथ प्रभु है, उसे साधना है। दूसरी कोई क्रिया-फ्रिया से आत्मा मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा! कहो, सेठ! आहाहा!

यह यहाँ शिष्य को कहते हैं निश्चय से तो आत्मा असंख्य प्रदेशी, अखण्ड व्यवहार से पाँच पर्याय है और शरीर प्रमाण है। **जैसे आँखें रूपी पदार्थों को देखती है, परन्तु उन स्वरूप नहीं होती,...** आँख है, वह अग्नि को देखे, परन्तु आँख अग्नि के स्वरूप में प्रविष्ट नहीं होती। आहाहा! **उन स्वरूप नहीं होता, अपने स्वरूप ही ज्ञान रहता है, ज्ञानकर ज्ञेय प्रमाण है...** आहा! क्या कहते हैं? भगवान तो ज्ञान में जितने अनन्त ज्ञेय है, उसे जानने की तेरी शक्ति है, परन्तु तू तुझमें रहकर ज्ञेय को जानता है। पर में—ज्ञेय में प्रवेश करके जानता है, ऐसा नहीं है। तेरे असंख्य प्रदेश में रहता है। आहाहा! आनन्द का नाथ प्रभु! आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, प्रभु! यह तो जन्म-मरण से रहित की बातें हैं, नाथ! बाकी जन्म-मरण करके अनन्त बार मर गया। स्वर्ग में गया, नौवें ग्रैवेयक। अनन्त पुद्गलपरावर्तन (किये), बापू! आहाहा! मुनि हुआ, पंच महाव्रत पालन किये, उत्कृष्ट क्रिया बहुत की, परन्तु आत्मज्ञान सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। आहाहा! अनन्त पुद्गलपरावर्तन स्वर्ग के किये। माता! अब मुझे भव नहीं करना है। मेरे नाथ में भव नहीं और भव का भाव नहीं। मेरी चीज में भव नहीं और मेरी चीज में भव का भाव नहीं। मेरी चीज में तो अकेला ज्ञान और आनन्द भरा है। आहाहा! भव और भव के भाव से खाली और निज आनन्द और ज्ञान के भाव से भरपूर (मैं हूँ)। आहाहा! इस प्रकार गुरु शिष्य को कहते हैं। शिष्य! तू ऐसा जाना, बापू! तेरी चीज़ वहाँ अन्दर है, वहाँ जा न! समझ में आया? आहाहा!

कैसा है आत्मा? देहप्रमाण है। **ऐसे आत्मा को जो पुरुष आहार, भय, मैथुन, परिग्रहरूप चार वांछाओं स्वरूप आदि समस्त विकल्प की तरंगों को छोड़कर...** आहाहा! आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा, विकल्प, उन सब विकल्प को छोड़कर, हे प्रभाकर! उस विकल्प को छोड़कर निर्विकल्प आनन्द में जा, प्रभु! तुझे आत्मा प्राप्त होगा। आहाहा! प्रभु का तुझे विरह रहा, प्रभु! अन्दर में जा तो वह तेरा विरह टूट जायेगा। आहाहा! ऐसा कहते हैं। यह परमात्मप्रकाश में ३६ गाथा में आया है। आहाहा! जिसे दया, दान, व्रत के परिणाम शुभभाव आदि उपादेय है, उसे आत्मा हेय है। आहाहा! ३६ गाथा में आ गया है। जिसे विकल्प जो व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव विकल्प राग है, उसे जिसने उपादेय माना, उसे आत्मा हेय है और जिसने आनन्द के

कन्द को उपादेय माना, उसे राग हेय है। ऐसे गुलाँट खाता है। आहाहा! यह परमात्मप्रकाश में ३६ गाथा में आ गया है। आहाहा! अरे! यह बात कहाँ है, प्रभु! आहाहा!

शिष्य को कहते हैं, चार प्रकार की वांछा छोड़ और समस्त विकल्प की तरंग छोड़। **छोड़कर जानता है,...** आहाहा! यह विकल्प का जाल छोड़कर अन्तर में जानता है। विकल्प का जाल रखकर अन्तर में जानता है, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **वही पुरुष ज्ञान से अभिन्न होने से ज्ञान कहा जाता है।** देखो! क्या कहते हैं? उस विकल्प के जाल को छोड़कर ज्ञानस्वरूप को जाना, उसने पूरे आत्मा को जाना। समझ में आया? क्योंकि ज्ञान से अभिन्न ज्ञान कहा जाता है। इस आत्मा से ज्ञान अभिन्न है। पुरुष शब्द से आत्मा। उससे ज्ञान अभिन्न है। **आत्मा और ज्ञान में भेद नहीं है,...** आहाहा! जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... स्वभाव, वह आत्मा। उस जाननस्वभाव से आत्मा भिन्न नहीं है। विकल्प से भिन्न है। आहाहा! मार्ग नाथ, बहुत सूक्ष्म, भाई! अरेरे! हाथ आवे नहीं उसे और ऐसा का ऐसा भटककर भवभ्रमण करता है। बापू! क्या कहते हैं? आहाहा!

भगवान आत्मा विकल्प जो शुभ-अशुभ है, उससे भिन्न है, परन्तु अपने ज्ञान से अभिन्न है। यह ज्ञान, वह आत्मा। जानन... जानन... जानन स्वभाव, वह आत्मा। समझ में आया? सूक्ष्म बात तो है, प्रभु! आहाहा! कभी किया नहीं, अभ्यास नहीं। आहाहा! अन्तर में यह ज्ञान है न? जानना... जानना... जानना... यह ज्ञान है, वह आत्मा और विकल्प है, वह भिन्न है। तो तुझे आत्मा को जानना हो तो विकल्प को छोड़कर ज्ञान को पकड़ और ज्ञान को पकड़ने से आत्मा पकड़ में आयेगा और तुझे आनन्द का अनुभव होगा, तब सम्यग्दर्शन होगा। आहाहा! अभी तो सम्यग्दर्शन की बात करते हैं। समझ में आया? ऐसी बात है, प्रभु! पूरी दुनिया से भिन्न भगवान है। देव-गुरु-शास्त्र से भी भिन्न है। देव-गुरु-शास्त्र तो पर है। आहाहा!

प्रभु परमात्मा तो ऐसा कहते हैं, प्रभु! मेरे सन्मुख देखने से तुझे विकल्प होगा। आहाहा! तू तेरे सन्मुख देख न अन्दर। तीन लोक का नाथ दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा फरमाते हैं। जिनवरदेव। प्रभु! तू मेरे सन्मुख देखता है तो हम तो तुझसे परद्रव्य हैं। तुझे राग होगा। ऐई! तू तेरे सन्मुख देख न! भगवान अन्दर ज्ञानस्वरूपी प्रभु है न! अरे... भाई!

तुझे आनन्द आयेगा। हमारे सन्मुख देखने से प्रभु! तुझे राग-दु:ख होगा। आहाहा! वह तो जिनवर त्रिलोकनाथ कहे, वीतराग कहे। आहाहा! हमारी भक्ति करने से भी राग होगा। तेरी भक्ति करने से वीतरागता होगी। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह यहाँ कहते हैं, देखो!

समस्त विकल्प तरंगों को छोड़कर... ज्ञानस्वरूप जो चैतन्यब्रह्म प्रज्ञाब्रह्म जो आत्मा, उस ज्ञान को पकड़ने से ज्ञान और आत्मा अभिन्न है। आहाहा! समझ में आया? राग से ज्ञान भिन्न है, ऐसे ज्ञान से आत्मा भिन्न नहीं है। विकल्प जो दया, दान के हैं, उनसे ज्ञान भिन्न है, वैसे आत्मा ज्ञान से भिन्न नहीं है, ज्ञान से आत्मा अभिन्न है। आहाहा! भारी कठिन, पकड़ना कठिन। अरे! चौरासी के अवतार मनुष्यदेह में टालने का यह अवसर है, प्रभु! यह भव अनन्त भव के अभाव के लिये मिला है। आहाहा! समझ में आया? एक भव में अनन्त भव का अभाव करने का काल है, प्रभु! यहाँ तो यह बात, मौसम यह है। कहो, दरबार! तुम्हारे मौसम पकता है न? दाने, गेहूँ बहुत पके तुम्हारे वहाँ। आहाहा! वह मौसम नहीं, बापू! वह तो होली है। वहाँ लक्ष्य जाये तो राग होगा, अग्नि होगी। यह नाथ तेरा प्रभु अन्दर है न, भाई! तुझे माहात्म्य की खबर नहीं। आहाहा!

एक बड़ा पुरुष करोड़पति आया हो, उसके साथ बात न करके बालक के साथ बात करे और उसको उठ जाना पड़े। क्या कहा? एक व्यक्ति पन्द्रह मिनिट बात करने आया। तो उस समय बालक के साथ बात करने लगा। उठकर चला गया। मैं आया हूँ और मेरे साथ बात करता नहीं। इसी प्रकार परमात्मा त्रिलोकनाथ अन्दर विराजता है, उसके सन्मुख देखता नहीं और विकल्प के सन्मुख देखता है तो वह चीज़ चली जाती है। भाई! आहाहा! ऐसा भगवान कहते हैं, हों! आहाहा! बापू! यहाँ तो आत्मा की बात है, नाथ! आत्मधर्म कैसे हो, यह बात है। बाकी तो सब किया और सब जाना। आहाहा! लो!

यहाँ सारांश यह है कि निश्चयनयकर पाँच प्रकार ज्ञानों से अभिन्न अपने आत्मा को जो ध्यानी जानता है,... देखो! आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है। ऐसा कहते हैं कि निमित्त का लक्ष्य तो छोड़ दे, राग का लक्ष्य छोड़ दे और ज्ञान की जो पाँच पर्याय

होती है, उसका लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! गजब बात करते हैं! ज्ञान की पर्याय के भेद हैं न? मति, श्रुत, अवधि आदि वे पाँच भेद हैं। उन भेद का लक्ष्य छोड़ दे। अकेला ज्ञायकस्वरूप अन्दर अभेद है, उसकी दृष्टि कर, तो तुझे आत्मा प्राप्त होगा। भगवान! तेरी बात तो ऐसी है, नाथ! तुझे क्या कहना? तू कौन है, कितना है, बापू! तुझे खबर नहीं। आहाहा! तेरी बात सर्वज्ञ जानकर भी पूरी नहीं कह सके, ऐसी तेरी चीज़ अन्दर है, प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....बापू! वह तो समय है, भाई! तुझे करने का यह मौसम है। छोड़ दे सब; यह कर। आहाहा! ऐसा गुरु शिष्य को कहते हैं। यह दृष्टान्त आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, भाद्र शुक्ल १२, रविवार
दिनांक-०५-०९-१९७६, गाथा-१०५, १०६, प्रवचन-८२

आत्मा के दस प्रकार के धर्म हैं। उत्तम अर्थात् आत्मा के अनुभवसहित। उत्तमक्षमा कहते हैं न? आज उत्तमत्याग। आज आठवाँ दिन है न? लोगों को आत्मा क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं और उसकी कीमत किये बिना सब त्याग रागादि का या संसार का, वह सब व्यर्थ है। वह यहाँ बताते हैं। त्याग है न?

आत्मा ज्ञानानन्द सहजानन्द स्वरूप का अनुभव हो, पुण्य-पाप के विकल्प से, राग से भिन्न... यह अभी आयेगा, ऐसा आत्मा चिदानन्दस्वरूप अखण्डानन्दकन्द है, आनन्दपुंज और आनन्दकन्द है। यह खबर कहाँ है! कभी जाना नहीं। इसके बिना क्रिया करो, व्रत करो, तप करो। समझ में आया?

यह कहते हैं कि दसलक्षणी पर्व में आज आठवाँ दिन त्यागधर्म का है। त्याग की व्याख्या क्या? अपने आनन्दस्वरूप में से विकल्प का भी त्याग करना। आहाहा! यह बात है। पर का त्याग-ग्रहण तो आत्मा में है ही नहीं। त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति। भगवान आत्मा में ऐसी एक शक्ति है, गुण है, स्वभाव है कि पर के त्याग और ग्रहण रहित ही है। पर का त्याग करना या पर को ग्रहण करना, वह आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! वह तो पर को छोड़ो, पर को छोड़ो। क्या छोड़े? पर तो छूटा हुआ ही पड़ा है। पर का त्याग और पर के ग्रहण से रहित भगवान आत्मा में त्यागोपादानरहित शक्ति है। तो पर के त्याग की बात यहाँ नहीं है।

यहाँ तो सम्यग्दर्शन में आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन-अनुभव हुआ है, उसमें जरा आनन्द की स्थिरता भी आयी। उसमें थोड़ा राग रह जाता है, उसे अपने आनन्द में लीन रहकर राग को छोड़ना, इसका नाम त्यागधर्म कहा जाता है। व्याख्या बहुत कठिन! समझ में आया? यह कहते हैं।

शास्त्रों का भलीभाँति व्याख्यान करना... सम्यग्दर्शनपूर्वक आत्मा के आनन्द के भानसहित शास्त्र का व्याख्यान करना। अर्थात् शास्त्र में ऐसा कहा है कि राग से भी तेरी चीज़ भिन्न है। और राग से दया, दान, व्रत से भी तेरा कल्याण हुआ नहीं। ऐसा

व्याख्यान करना। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? शास्त्र का व्याख्यान करना। शास्त्र वीतरागभाव बताते हैं तो वीतरागभाव कब होगा? जब चिदानन्द भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु का आश्रय लेकर, उस ध्रुव का ध्यान करके। आहाहा! चीज़ अनादि काल से पड़ी रही और बाहर से सब माना है। 'छार पर लीपणुं तेह जाणो।' छार पर लीपणुं, समझते हो? राख होती है न? भस्म-राख। उसके ऊपर लीपण करे, वह रहेगी? आनन्दघनजी कहते हैं। समझ में आया? 'देव-गुरु-धर्मनी शुद्धि कहो केम रहे? केम रहे शुद्ध श्रद्धान आणो, शुद्ध श्रद्धान विण सर्व क्रिया करे, छार पर लीपणुं तेह जाणो।' हमारे यहाँ गार कहते हैं। नीचे राख हो और ऊपर गार (लिपण)। रहेगी नहीं, पपड़ी उखड़कर निकल जाती है। आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप से पूर्णानन्द प्रभु है, उसका अनुभव, श्रद्धा-दृष्टि नहीं, उसके बिना जितनी क्रिया, वह सब छार पर लिपण है। आहाहा! यह कहते हैं। ऐसा (व्याख्यान) करना। शास्त्र का ऐसा व्याख्यान करना। शास्त्र ऐसा कहते हैं कि राग और निमित्त की उपेक्षा कर और तेरी चीज़ है, उसकी अपेक्षा कर। ऐसा शास्त्र कहते हैं। शास्त्र का ऐसा कथन करना, वह शास्त्र की व्याख्या है। ऐसे दया पालो और व्रत पालो और भक्ति करो, उससे तेरा कल्याण होगा, यह शास्त्र की व्याख्या है ही नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त काल में कभी की नहीं। अनन्त-अनन्त अवतार हुए। चींटी, कौआ, कुत्ता, नरक, ढोर / पशु अनन्त अवतार हुए। अनादि काल का है। परन्तु इस चीज़ की प्रतीति, अनुभव और शुद्ध श्रद्धा बिना अनन्त काल गया।

यहाँ यह कहते हैं, श्रद्धा की व्याख्या—आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप, उस संयोगी चीज़ का भी लक्ष्य छोड़ दे और अन्दर दया, दान के विकल्प आते हैं, उनका भी लक्ष्य छोड़ दे और एक समय की पर्याय जो प्रगट दशा है, उसका भी लक्ष्य छोड़ दे, ऐसा शास्त्र कहते हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से कहना, वह शास्त्र से विरुद्ध है। समझ में आया? यह पहला शब्द है—व्याख्यान करना।

मुनियों को पुस्तक, स्थान... आदि राग घटाकर देना। परन्तु यह सम्यग्दर्शन सहित की यहाँ बात है। आत्मा की शुद्ध श्रद्धा—मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ, ऐसे भानसहित राग

की मन्दता (-राग) घटाकर देना, छोड़ देना और स्वरूप में स्थिरता करना, उन मुनियों को पुस्तक आदि देने के भाव में आता है। राग का त्याग करना। समझ में आया? कठिन बात, बापू! पुस्तक तो परवस्तु है, ले-दे कौन? दे कौन, ले कौन? सूक्ष्म बात, भाई! एक अँगुली भी ऐसे चलती है, उसे आत्मा कर सकता नहीं। वह तो जड़ है। ऐसे चले, वह तो जड़ से होता है। उसका त्याग-ग्रहण करे, ऐसा आत्मा है ही नहीं। आहाहा! तो पुस्तक देना-लेना वह क्रिया आत्मा की नहीं। अन्दर में आत्मा के आनन्द के भान की भूमिकासहित, उस ओर में राग घटाकर पर को चीज़ देने में राग घटे और वीतरागता बढ़े, इसका नाम त्यागधर्म कहा जाता है। ऐसी व्याख्या है। बड़ी लम्बी है। एक ही गाथा हुई।

चलता अधिकार, १०५ है न? १०५ श्लोक। कहाँ आया? **आत्मा को तू उपादेय जान।** यहाँ तक आया है।

ऐसा ही सिद्धान्तों में हर एक जगह कहा है— क्या है? ओहोहो! समयसार की २०४ गाथा है। यह गाथा समयसार है न अपने? दोपहर में वाँचन होता है, उसकी २०४ गाथा है। **'आभिणि' इसका अर्थ...** सूक्ष्म है, भगवान! एक बार सुन! आत्मा, आत्मा तो कहते हैं, परन्तु आत्मा क्या चीज़ है, इसकी खबर नहीं। आत्मा में शरीर, कर्म और राग तो नहीं, परन्तु उसका ज्ञानस्वभाव जो है, उसकी ज्ञान की जो पाँच पर्याय है—मति, श्रुत, अवधि आदि, इन पाँच पर्याय के भेद भी अन्दर नहीं है। समझ में आया? एकरूप चिदानन्द विज्ञानघन भगवान, भाई! आत्मा की बात... उसे छोड़कर सब (किया)। वर को छोड़कर बारात जोड़ दी। वर नहीं। हमारे वर कहते हैं। दूल्हा। इसी प्रकार भगवान आत्मा के भान बिना सब किया। भक्ति की, पूजा की, व्रत किये, तप किये। आहाहा! यहाँ आचार्य कहते हैं, भगवान आत्मा तो ज्ञानमूर्ति चैतन्यब्रह्म है। उसमें दया, दान के विकल्प तो है नहीं परन्तु उसमें ज्ञान की पाँच पर्याय के भेद भी अन्दर में नहीं। आहाहा! है?

ये पाँच प्रकार के सम्यग्ज्ञान एक आत्मा के ही स्वरूप हैं, आत्मा के बिना ये ज्ञान नहीं हो सकते,... परन्तु उसकी पर्याय का लक्ष्य छोड़कर अभेद पर जाना, तो उसका आत्मज्ञान होता है, ऐसा कहते हैं। बहुत सूक्ष्म, भाई! **आत्मा के बिना ये ज्ञान**

नहीं हो सकते, यह आत्मा ही परम अर्थ है,... आहाहा! महा भगवान चैतन्यबिम्ब प्रभु, **जिसको पाकर...** इस पूर्णानन्द के नाथ को दृष्टि में लेकर, उसमें स्थिरता करके, आहाहा! **जीव निर्वाण को पाता है।** तब आत्मा मोक्ष प्राप्त करता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : स्थिरता करके, ऐसा इसमें लिखा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इसमें आया न? **सम्यग्ज्ञान एक आत्मा के ही स्वरूप है,...** स्वरूप में स्थिरता होना। ज्ञानस्वरूप त्रिकाल, उसका स्वीकार तो सम्यग्दर्शन से होता है, फिर उसमें स्थिरता होना, वह चारित्र है। ज्ञान में ज्ञानस्वरूप में रमणता, वह चारित्र है। व्रत-फ्रत करना, वह चारित्र है नहीं।

मुमुक्षु : ज्ञान में स्थिर, वह चारित्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। ज्ञान में स्थित, वह चारित्र है। आहाहा! चरना। पशु चरते हैं। तो क्या पशु ढेला चरते हैं? घास चरते हैं। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा... प्रभु! बात तो बहुत अगम्य है। अनन्त काल में इसने सम्यग्दर्शन की बात सुनी नहीं। आहाहा! यह ज्ञानस्वरूपी प्रभु, उसके सन्मुख का अनुभव करके फिर ज्ञान में रमणता करना, चरना, रमना, आनन्द का भोजन करना, अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन। आहाहा! उसका नाम चारित्र है। उस चारित्र से फिर मुक्ति होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अकेले सम्यग्दर्शन-ज्ञान से मुक्ति नहीं होती। अन्दर स्वरूप आनन्द में रमने से (होती है)।

'निजपद रमे सो राम कहिये'। आहाहा! अपने आनन्दस्वरूप में रमे, उसे— आत्माराम को राम कहते हैं। यह राग में रमे, उसे हराम कहते हैं। यहाँ तो ऐसी बात है, बापू! आहाहा! समझ में आया? यह आनन्दघनजी कह गये हैं। 'निजपद रमे सो राम कहिये, कर्म कृषे सो कृष्ण कहिये।' राग को, द्वेष को नाश करे, वह कृष्ण भगवान आत्मा है। आहाहा! हरि आत्मा है। कैसे? पंचाध्यायी में लिया है। मिथ्यात्व और राग-द्वेष को हरे अर्थात् नाश करे, उसका नाम भगवान आत्मा को हरि कहते हैं। आहाहा!

'हरता फरता प्रगट हरि देखुं, मेरा लेखा यह जन्म।' मेरा जन्म काम में लगा, ऐसा कहते हैं। 'मुक्तानन्दनो नाथ विहारी रे। कौन बाँधे जीवनदोरी अमारी रे, हरता

फरता प्रगट हरि देखुं।' यह मिथ्यात्व और राग-द्वेष को हरनेवाला—नाश करनेवाला ऐसा भगवान आत्मा, क्षण में और पल में मैं उसे देखूँ। 'मारूँ जीववुं रे सफळ तव देखुं रे' मेरे जीवन की सफलता तो तब है। आनन्द के नाथ को मैं बारम्बार निहारूँ। आहाहा! 'मुक्तानंदनो नाथ विहारी रे... अे ओघा जीवनदोरी अमारी' हमारा नाथ आनन्द का सागर भगवान, उसमें हमारी जीवन डोरी—रमणता सर्वत्र, वह हमारे जीवन की सफलता है। बहुत सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! भाई! धर्म चीज़ बहुत अलौकिक है। लोगों ने तो साधारण (कर डाली)। आहाहा! हरिजन होता है न? हरिजन—भंगी। ऐ राजा! एक बीड़ी देना बीड़ी। धर्म होगा। दरबार! यह हरिजन होता है। बापू! एक बीड़ी देना। ठीक बापू! गजब भाई! ऐसा करने से दो-चार भुंगला ले लिया हो। पीता हो, कोई बड़ा व्यक्ति निकले तो दो-चार भुंगला दे जाये। बापू! एक दियासलाई देना। धर्म होगा। ठीक! भारी धर्म, भाई! समझ में आया? आहाहा! बापू! धर्म चीज़ बहुत अलौकिक चीज़ है।

यहाँ तो कहते हैं, १०५ है न? अन्तिम। **निर्वाण को पाता है।** अपना स्वरूप, जिसमें अनन्त शान्ति और अनन्त स्वच्छता भरी पड़ी है, ऐसा भगवान आत्मा। आहाहा! स्वच्छता। पूर्ण स्वच्छता आत्मा में पड़ी है। उस स्वच्छता का अनुभव करके स्वच्छता में रमणता करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है और उससे मुक्ति होती है।

अब १०६ लेते हैं। १०६ में विशेष है।

गाथा - १०६

१०६) अप्पहँ जे वि विभिण्ण वढ ते वि हवंति ण णाणु।
ते तुहुँ तिण्णि वि परिहरिवि णियमिँ अप्पु वियाणु।।१०६।।

आत्मनः ये अपि विभिन्नाः वत्स तेऽपि भवन्ति न ज्ञानम्।
तान् त्वं त्रीण्यपि परिहृत्य नियमेन आत्मानं विजानीहि।।१०६।।

अप्पहँ जे वि विभिण्ण वढ आत्मनः सकाशाद्येऽपि भिन्नाः वत्स ते वि हवंति ण णाणु तेऽपि भवन्ति न ज्ञानं, तेन कारणेन तुहुं तिण्णि वि परिहरिवि तान् कर्मतापन्नान् तत्र हे प्रभाकरभट्ट त्रीण्यपि परिहृत्य। पश्चात्किं कुरु। णियमिं अप्पु वियाणु निश्चयेनात्मानं विजानीहीति। तद्यथा। सकलविशदैकज्ञानस्वरूपात् परमात्मपदार्थात् निश्चयनयेन भिन्नान् त्रीण्यपि धर्मार्थकामान् त्यक्त्वा वीतरागस्वसंवेदनलक्षणे शुद्धात्मानुभूतिज्ञाने स्थित्वात्मानं जानीहीति भावार्थः।।१०६।।

आगे परभाव का निषेध करते हैं –

जो भी भिन्न वस्तु आत्मा से वे नहिं होती ज्ञानस्वरूप।
धर्म अर्थ अरु काम त्याग कर जानो मित्र को ज्ञानस्वरूप।।१०६।।

अन्वयार्थ :– [वत्स] हे शिष्य, [आत्मनः] आत्मा से [ये अपि भिन्नाः] जो जुदे भाव हैं, [तेऽपि] वे भी [ज्ञानम् न भवंति] ज्ञान नहीं हैं, वे सब भाव ज्ञान से रहित जड़रूप हैं, [तान्] उन [त्रीणि अपि] धर्म, अर्थ, कामरूप तीनों भावों को [परिहृत्य] छोड़कर [नियमेन] निश्चय से [आत्मानं] आत्मा को [त्वं] तू [विजानीहि] जान।

भावार्थ :– हे प्रभाकर भट्ट, मुनिरूप धर्म, अर्थरूप संसार के प्रयोजन, काम (विषयाभिलाष) ये तीनों ही आत्मा से भिन्न हैं, ज्ञानरूप नहीं हैं। निश्चयनय करके सब तरफ से निर्मल केवलज्ञानस्वरूप परमात्मपदार्थ से भिन्न तीनों ही धर्म, अर्थ, काम, पुरुषार्थों को छोड़कर वीतरागस्वसंवेदनस्वरूप शुद्धात्मानुरूपज्ञान में रहकर आत्मा को जान।।१०६।।

गाथा-१०६ पर प्रवचन

१०६) अप्पहँ जे वि विभिण्ण वढ ते वि हवंति ण णाणु।
ते तुहुँ तिण्णि वि परिहरिवि णियमिँ अप्पु वियाणु॥१०६॥

अन्वयार्थ :- हे शिष्य! परभाव का निषेध करते हैं। गुरु से शिष्य ने पूछा, प्रभु! मुझे ऐसा बताओ, क्रियाकाण्ड करके मेरा तो अनन्त काल गया। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा (किये), परन्तु आत्मा एक क्षण में प्राप्त हो, ऐसा ज्ञान बताओ न! समझ में आया? भगवान चिदानन्द का नाथ प्रभु अन्दर विराजता है। आहाहा! उस ज्ञान का ज्ञान हमको कैसे हो? प्रभु! एक क्षण में आत्मा का भान हो, (वह किस प्रकार?) अनन्त काल क्रियाकाण्ड में गया परन्तु आत्मा का भान हुआ नहीं। यह एक क्षण में अन्दर आनन्द के नाथ के सन्मुख देखने से (आत्मा का ज्ञान होता है)। आहाहा! यह तो अज्ञानी को पागल जैसा लगे, ऐसा है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **आगे परभाव का निषेध करते हैं—हे शिष्य! आत्मा से जो जुदे भाव हैं, वे भी ज्ञान नहीं हैं,...** आहाहा! अन्दर दया, दान, भक्ति, पूजा के भाव और हिंसा, झूठ, चोरी के भाव (हों) तो धर्म भाव, धर्म अर्थात् पुण्य, वह पुण्यभाव और लक्ष्मी को प्राप्त करने के भाव, काम अर्थात् भोग **धर्म, अर्थ, कामरूप...** धर्म अर्थात् पुण्य—शुभभाव और अशुभभाव, लक्ष्मी आदि प्राप्त करना, काम, भोग का अशुभभाव, वह अशुभ और शुभभाव आत्मा में नहीं है। समझ में आया? तीनों भाव से भगवान रहित है। यह कहते हैं, देखो! **सब भाव ज्ञान से रहित जड़रूप हैं, उन धर्म, अर्थ, कामरूप...** है? तीनों शब्द हैं। धर्म शब्द से शुभभाव। धर्म शब्द से शुभभाव और अर्थ शब्द से यह धूल-लक्ष्मी प्राप्त करने के भाव। यह अशुभ। यह लक्ष्मी प्राप्त करने का भाव। ऐ... हसमुखभाई! पाप है। अशुभभाव है।

मुमुक्षु : अशुभ आप कहो?

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुभ कहो या पाप कहो। शुभ कहो या पुण्य कहो। भाई! सूक्ष्म बात, बापू! अनन्त काल में इसने चैतन्य का ज्ञान ही नहीं किया। सम्यग्दर्शन बिना सब थोथा किया। आहाहा! यह कहते हैं, देखो!

धर्म, अर्थ, कामरूप तीनों भावों को छोड़कर... है? हे शिष्य! तुझे आत्मा चाहिए तो यह पुण्य और पाप के दोनों भाव छोड़ दे। आहाहा! उनका आश्रय छोड़ दे। और उस आचरण का लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! है? **तीनों भावों को छोड़कर निश्चय से आत्मा को तू जान।** आहाहा! समझ में आया? यह धर्म शब्द से आत्मा का धर्म नहीं यहाँ। पुण्य के अर्थ में धर्म लिया है। समयसार में भी लिया है। धर्मी पुण्य-धर्म को नहीं चाहता, ऐसा पाठ है। धर्म को चाहता नहीं, इसका अर्थ पुण्य को चाहता नहीं। समझ में आया? यह व्रत के भाव और दया, दान, भक्ति के भाव, वह पुण्यभाव है। उसे यहाँ व्यवहार धर्म भाव कहा। वह छोड़नेयोग्य है। आहाहा!

इस ग्रन्थ का नाम परमात्मप्रकाश है। समझ में आया? कहते हैं, आहाहा! **तीनों भावों को छोड़कर... 'नियमेन आत्मानं विजानीहि'** आहाहा! हे शिष्य! प्रभु! अन्दर चैतन्य है न! चैतन्य महाप्रभु अन्दर विराजता है, तेरी चीज़। वह क्या है, उसकी खबर नहीं होती। कभी स्व के ऊपर नजर नहीं की और पर से कभी नजर हटायी नहीं। आहाहा! पर शब्द से यह पुण्य और पाप। पुण्य में धर्म (माना)। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह पुण्य। और लक्ष्मी प्राप्त करने का भाव कमाने का (भाव), वह पाप। और भोग का भाव, काम-काम, भोग का भाव वह पाप। आहाहा! ये तीनों पाप और एक पुण्य। **तीनों भावों को छोड़कर...** है? **निश्चय से आत्मा को तू जान।** भगवान! आहाहा! नरसिंह मेहता तो ऐसा कहते हैं, 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिहन्यो नहिं, त्यां लगी साधना (सर्व झूठी)...' तेरी पूजा और भक्ति सब ऐकड़ा बिना के शून्य हैं। आहाहा! लोगों को भी यह तत्त्व क्या है, इसके ऊपर लक्ष्य ही नहीं। फुरसत नहीं न! कमाना और कमाना और स्त्री, पुत्र, परिवार को निभाना, उसके पापभाव में से इसे फुरसत कहाँ है? और उसमें भी कदाचित् फुरसत मिले और दान, दया, भक्ति के भाव करे तो वह भी पुण्यभाव है, अधर्म है, धर्म नहीं। आहाहा! प्रभु! कठिन पड़े जगत को। आहाहा!

परमात्मा सर्वज्ञदेव, भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है। इस चैतन्य की इसे कीमत नहीं। यह चैतन्य अर्थात् क्या? यह सर्वज्ञस्वरूपी है। जिसका स्वभाव सर्वज्ञ है। अकेला ज्ञानस्वभाव सर्वज्ञस्वभाव पूर्णानन्दस्वभाव—ऐसा परमात्मा आत्मा है। इस आत्मा को प्राप्त करना हो तो शुभ-अशुभभाव को छोड़कर अन्दर में जा। जहाँ प्रभु विराजता है,

वहाँ जा। जा, कहते हैं? थोड़ी-थोड़ी गुजराती आ जाती है, हिन्दी पूरी नहीं आती न! इस समय हिन्दी में लिया है। नहीं तो दसलक्षणी पर्व में हम कभी नहीं चलाते। स्थानकवासी के आठ धर्म हैं। अठारह दिन गुजराती चलाते हैं। इस बार हमारे सेठ आये हैं, सेठ तो तब भी आये थे, तो भी गुजराती करते थे। हमारे कैलाशचन्दजी आये हैं तो हिन्दी किया। गुजराती समझे नहीं। एक तो भाव सूक्ष्म, उसमें गुजराती भाषा। तुंबड़ी में कंकड़ जैसा लगे। आहाहा!

भगवान! तेरी चीज़ अन्दर कौन है? नाथ! यह शरीर देहदेवालय में आत्मा भगवान विराजता है। यह आत्मा पुण्य और पाप के विकल्प से भिन्न है। आहाहा! यह स्फटिकमणि। 'ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीवस्वभाव रे, श्री जिन वीर ने धर्म प्रकाशिया...' आहाहा! 'प्रबल कषाय अभाव रे... श्री जिन वीर ने धर्म प्रकाशिया।' त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमात्मा ने ऐसा धर्म कहा। जैसे स्फटिक निर्मलता से प्रकाश से भरपूर पड़ा है, उसी प्रकार तेरी चीज़ आनन्द और ज्ञानस्वभाव के प्रकाश से भरी पड़ी है। तेरी नजर वहाँ गयी नहीं, प्रभु! आहाहा! समझ में आया?

जैसे नारियल होता है न? नारियल। क्या कहते हैं? ऊपर की जटा है, वह नारियल है? फिर अन्दर काचली है, वह नहीं। काचली को तोड़कर लाल छाल होती है। खोपरापाक बनाते हैं न? उसे निकाल डालते हैं। वह लाल छाल, वह खोपरा है? भाई! तुझे खबर नहीं। अन्दर श्वेत-सफेद सेर-डेढ़ सेर का गोल, वह श्रीफल है। श्रीफल। समझ में आया? आहाहा!

इसी प्रकार इस देह में भगवान, यह देह जटा है और आठ कर्म जड़ है, वह काचली है। काचली को क्या कहते हैं? नरेटी। यह भाषा दूसरी है। आठ जड़ कर्म हैं, वह काचली है और काचली की ओर लाल छाल है न? वह यह पुण्य-पाप के भाव वह लाल छाल है। समझ में आया? यह पुण्य और पाप के भाव की लाल छाल के पीछे श्वेता-सफेद गोला जैसे श्रीफल है, उसी प्रकार सफेद अर्थात् उज्ज्वल, मीठा अर्थात् आनन्द, पवित्र आनन्द का गोला भगवान पड़ा है। परन्तु खबर कहाँ है? आहाहा! समझ में आया? यह तो दृष्टान्त दिया। इसमें समझ में आये ऐसा है या नहीं श्रीफल में?

बादाम लो। बादाम होती है न? ऊपर का स्थूल छिलका और बादाम के ऊपर लाल छाल। बादाम... बादाम। लाल छाल से अन्दर बादाम तो भिन्न है। आहाहा! सफेद बादाम का गोला है। लाल छाल भिन्न, ऊपर का छिलका है न मोटा? इसी प्रकार यह शरीर है, वह ऊपर का स्थूल छिलका है और पुण्य-पाप के भाव अन्दर की लाल छाल है। उससे भिन्न, बादाम का गोला जैसे मीठा पड़ा है, वैसे चैतन्य गोला आनन्द का नाथ भगवान अन्दर विराजता है।

मुमुक्षु : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : कब क्या? जब भान करे तब। आहाहा! वह गायन नहीं गाया था? डॉक्टर ने। 'जब जाग जाओ तब सवेरा है।' अभी जाग जाओ तो अभी सवेरा है। नागपुरवाले। आहाहा! 'जब जाग जाओ तभी है सवेरा।' अन्धकार उड़ाकर प्रकाश निकला। अरे! आत्मा, वह कौन चीज़ है? वह आनन्द का दल है। जैसे खोपरा... खोपरा कहते हैं न? श्रीफल। मिठास और सफेदाई का दल है। इसी प्रकार भगवान सफेद अर्थात् शुद्ध और आनन्द (मिठास) अर्थात् आनन्द का मेवा यह आत्मा है। कभी सुना नहीं। ऐसे का ऐसा अनन्त काल से भटकाभटक करता आया है। समझ में आया?

कहते हैं, **धर्म, अर्थ, कामरूप तीनों भावों को छोड़कर...** दृष्टि में से छोड़ दे, प्रभु! तुझे आत्मा का भान करना हो तो। इन तीन से आत्मा प्राप्त नहीं होगा। लक्ष्मी के प्रेम से नहीं होगा, भोग के प्रेम से नहीं होगा, दया, दान, व्रत के भाव से भी प्राप्त नहीं होगा। आहाहा! कहो, मूलचन्दभाई! ऐसा मार्ग है, प्रभु! आहाहा! आज तो आठवाँ दिन है। रविवार से शुरु हुए न? पर्यूषण रविवार से चालू हुए। तुम मंगलवार से आये। तुम्हारा छठवाँ दिन है। आठ दिन तो आज हो गये। आहाहा!

योगीन्द्रदेव सन्त मुनि हैं, आत्मा के आनन्द में झूलनेवाले। अतीन्द्रिय आनन्द में झूले, उसका नाम मुनिपना है। यह शरीर की क्रिया, वह तो जड़ की है, उसमें व्रत के परिणाम हों, वह भी चैतन्य नहीं, वह तो विकार है। आहाहा! उसे दृष्टि में से छोड़ दे। जहाँ भगवान पूर्णानन्द शुद्ध चैतन्यघन है, वहाँ दृष्टि ले जा। तुझे परमात्मा की भेंट होगी। वहाँ आत्मा का साक्षात्कार होगा। आहाहा! तुझे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आयेगा। आहाहा! यह दुनिया के दु:ख। संसार के सुख, वह दुनिया के दु:ख हैं। यह पैसा सुखी,

राजा सुखी, देव सुखी... सब हराम है। आहाहा! कहा न? छदामीलाल बड़ा राजा जैसा। फिरोजाबाद। राजा जैसा। गुजर गया तो कोई उसके नौकर ने मार डाला। गाँव को पैसा बहुत देता था। पचास लाख रुपये तो खर्च किये थे। पैसा और जमीन इतनी है। आहाहा! उसे मार डाला। खून-खून जाम। दरवाजा बन्द था।

मुमुक्षु : पैसा मौत का कारण हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा मौत का कारण हुआ। वह बहुत उदार है। पच्चीस-पचास हजार रुपये तो उसके पास पड़े ही होते हैं। बड़ा करोड़पति। कोई व्यक्ति उसका नौकर था। नेपाल का। अखबार में आया था। दरवाजा बन्द करके मार दिया। खिड़की में से निकल गया। दरवाजा बन्द कर दिया। सेठ क्यों नहीं आये? क्यों नहीं आये? दरवाजा बन्द है। खोले वहाँ मात्र खून.. खून.. खून। आहाहा! पूरी नगरी फिरोजाबाद हा...हा... पुकार करे। बहुत पैसा देता था। गरीब व्यक्ति आवे तो (दे)। समझ में आया? वह शुभभाव है। धर्म नहीं। कल यह अखबार में आया था। पूरी फिरोजाबाद नगरी अभी विधवा हो गयी। छदामीलाल सेठ गये तो विधवा हो गयी। यह तो....

मुमुक्षु : उनके घर में ही हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, घर में ही हुआ। उनके बंगले में। उनका ही व्यक्ति। नेपाल का नौकर था। पैसे कुछ होंगे। पैसे तो पड़े ही होते हैं। लोगों को खबर नहीं होती। उनके परिवार को भी खबर नहीं हो, इतने पैसे रखते थे। अलमारी में पैसे पड़े हों। कोई भी गरीब व्यक्ति आवे (तो दे)। बहुत उदार। चालीस लाख, पचास लाख तो उनकी जिन्दगी में खर्च किये हैं।

मुमुक्षु : दानादि शुभकार्य में।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शुभकार्य में। और प्रतिमा लाये हैं। बाहुबली की चार-पाँच लाख की... होगी।... एक लाख आये हैं। खर्च करने में तो कितने लाख होंगे।... वहाँ गुजर गये। उनका लड़का है। लड़का उनका नहीं, गोद लिया है। खबर है। उसका पत्र आया है। महाराज! यहाँ पधारो। उनकी भावना थी। अभी फिरोजाबाद में कनुभाई गये हैं। भाई! अभी वहाँ लोग समाते नहीं। कनुभाई का पत्र आया है। व्याख्यान करते

हैं। दाहोदवाले। बहुत लोग। कल पत्र आया है। इतने लोग आते हैं कि मन्दिर में समाते नहीं। मन्दिर में सोनगढ़ के लोगों को नहीं बैठने देना, ऐसा कहते थे, वहाँ मन्दिर में समाते नहीं। अरे! भगवान! क्या करता है? आहाहा!

भावार्थः- यहाँ कहते हैं, **हे प्रभाकर भट्ट!** भावार्थ है। आहाहा! गुरु योगीन्द्रदेव कहते हैं। सन्त मुनि आनन्द में झूलनेवाले। शिष्य ने प्रश्न किया, प्रभु! मुझे मेरा आत्मा बताओ न! मेरा ज्ञानस्वरूप आत्मा कैसे प्राप्त हो? दूसरी बात अब छोड़ दो। बहुत किये, दया की, व्रत किये, भक्ति की, तप किये, पूजा की, भगवान की भक्ति में अरबों रुपये खर्च किये, आहाहा! परन्तु मुझे आत्मा प्राप्त नहीं हुआ। तो प्रभु! एक क्षण में आत्मा प्राप्त हो, ऐसी चीज़ बताओ। अनन्त काल में प्राप्त नहीं हुआ, वह एक क्षण में प्राप्त हो, वह चीज़ क्या है? यह कहते हैं।

हे प्रभाकर भट्ट! मुनिरूप धर्म... है? मुनिरूप धर्म अर्थात् पंच महाव्रत आदि पुण्य। पंच महाव्रत की क्रिया करते हैं, वह पुण्य है। मुनिरूप धर्म अर्थात् व्यवहार है, वह धर्म नहीं। आहाहा! अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य पालते हैं, और परिग्रहरहित होते हैं, वह सब विकल्प है, पुण्य है। मुनिरूप धर्म अर्थात् मुनि का पुण्य। **अर्थरूप संसार के प्रयोजन...** यह संसार के प्रयोजन के लिये लक्ष्मी और **काम (विषयाभिलाष) ये तीनों ही आत्मा से भिन्न हैं,...** मुनिरूप धर्म... कहो, दरबार! ऐसी बात है। भगवान! तेरी चीज़ क्या है? आहाहा! आनन्द का दल प्रभु है। शकरकन्द का दृष्टान्त नहीं दिया था? ऊपर की छाल के अतिरिक्त सब शकरकन्द है। शक्कर की मिठास का पिण्ड है। इसलिए शकरकन्द कहलाता है। शकरकन्द क्यों कहा है? जो लाल छाल है, उसके अतिरिक्त पूरी चीज़ शकरकन्द है—मिठास का पिण्ड है। शक्कर का पिण्ड है। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा मुनिरूप धर्म, जो विकल्प पंच महाव्रत आदि अट्ठाईस मूलगुण है, उनसे भगवान भिन्न है। उनसे आत्मा प्राप्त नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा प्राप्त न हो तो कुछ प्राप्त तो होना चाहिए न!

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य प्राप्त होता है, मिथ्यात्वसहित। यह सेठाई-बेठाई मिले, मरकर जाये तो। स्वर्ग में जाये, फिर मरकर नरक में जाये और पशु में जाये। ऐ... सेठ! राजेश्वरी, वह नरकेश्वरी, नहीं आता? आता है। राजेश्वरी, वह नरकेश्वरी। भोगेश्वरी

वह नरकेश्वरी। करोड़, अरबों रुपये मिले हों, वह मरकर नरक में जानेवाले। काम भोग की रस की पिपासा है। यह मुनिधर्म है, वह पुण्य है, शुभभाव है। उससे तेरी चीज़ आत्मा भिन्न है। आहाहा!

मुमुक्षु : सुभौम चक्रवर्ती।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। मरकर नरक में गया। ब्रह्मदत्त। बारह चक्रवर्ती होते हैं। सब क्षत्रिय थे। तीर्थंकर भी सब क्षत्रिय थे। आत्मा का धर्म, वह क्षत्रिय का धर्म है। आहाहा! राजा, राजकुमार, चक्रवर्ती की सोलह हजार देव सेवा करते हैं। समझ में आया? आनन्द के नाथ का धर्म तो चक्रवर्ती क्षत्रिय का था। तीर्थंकर सब क्षत्रिय होते हैं। बनिया-वनिया कोई तीर्थंकर नहीं होते। क्योंकि उन्हें बल और ज्ञान की उग्रता होती है। आहाहा! स्वयं का वीर्य इतना स्फुरित करे कि आनन्दकन्द में अन्दर झुक जाते हैं, अन्तर्मुहूर्त में सम्यग्दर्शन पाकर अन्तर्मुहूर्त में कोई केवलज्ञान पाकर मोक्ष में चले जाते हैं। समझ में आया? तीर्थंकर के अतिरिक्त, हों! तीर्थंकर को मोक्ष जाने में थोड़ी देरी लगती है। आया था न अपने? पहले आ गया है।

चौबीस तीर्थंकर हैं। उसमें कोई तीर्थंकर के समय में तीर्थंकर को जब केवलज्ञान हुआ, तब कोई मुनि आत्मज्ञानी हुए तो वे मुनि अन्तर्मुहूर्त में समकित पाये, अन्तर्मुहूर्त आनन्द में लीन चारित्र हुआ, अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान हुआ, अन्तर्मुहूर्त में देह छूटकर मोक्ष में गये। आया है। आ गया है। कितने में आया? ९७ गाथा। ९७ गाथा में है। ९ और ७। अपने तो १०६ चलती है न? **सोलह तीर्थंकरों के एक ही समय तीर्थंकरों के उत्पत्ति के दिन पहले चारित्र ज्ञान की सिद्धि हुई...** नीचे है। ९७ में भावार्थ में चौथी-पाँचवीं लाईन है। **फिर अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष हो गया।** आहाहा! भगवान सोलह तीर्थंकरों को केवलज्ञान हुआ, उस समय जब दिव्यध्वनि निकली। महा सन्त विराजमान थे। आत्मा के आनन्द का अनुभव हो गया और अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान होकर मोक्ष हो गया। अभी भगवान तो बाद में मोक्ष में जायेंगे। आहाहा! समुद्र जैसे शीतल जल से भरा हो अथवा तालाब भरा हो, एक जरा सा ऐसा करे तो पानी अन्दर से निकलता है। उसी प्रकार भगवान आनन्द से छलाछल भरा है। अरे! कहाँ इसे विश्वास है? आत्मा क्या है, उसकी खबर नहीं। अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द का नाथ अनाकुल आनन्द से छलाछल

भरा है। उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। आहाहा! अनाकुल ज्ञान, अतीन्द्रिय ज्ञान से भरपूर प्रभु है। इन्द्रियज्ञान की पर्याय, वह भी पर है। आहाहा! समझ में आया? क्या कहते हैं? आया न यहाँ अन्तर्मुहूर्त में। आहाहा! अपने यहाँ १०६।

मुनिरूप धर्म... आहाहा! है, संस्कृत में है, हों! **'णियमिं अप्पु वियाणु' 'सकल-विशदैकज्ञानस्वरूपात् परमात्मपदार्थात् निश्चयनयेन भितान् त्रीण्यपि धर्मार्थकामान् त्यक्त्वा'** आहाहा! यह धर्म शब्द से पुण्य। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पालते हैं, वह सब पुण्य है, राग है, आस्रव है। उसे अभी तो धर्म मनाते हैं, वह धर्म है, यह प्ररूपणा ही मिथ्या है। शास्त्र की प्ररूपणा ही नहीं, शास्त्र की श्रद्धा ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहा! **हे प्रभाकर भट्ट!...** गुरु शिष्य को कहते हैं। योगीन्द्रदेव सन्त मुनि आनन्द में झूलनेवाले। यह विकल्प जो पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण के उठते हैं, वह पुण्य है। मुनिधर्म, वह पुण्य है। आहाहा! वह आत्मा नहीं। है? गजब बात, बापू! भाई! आत्मा कौन है, उसकी खबर नहीं और उसकी खबर बिना वर बिना बारात जोड़ दी। किसका विवाह करायेगा? वर के साथ अणवर हो तो कहीं उसे कन्या देते हैं? अणवर समझते हो? क्या कहते हैं? दूल्हा नहीं। हमारे तो यहाँ अणवर कहते हैं? अणवर अर्थात् वर के साथ रक्षा करनेवाला, उसका ध्यान रखनेवाला। (वरराजा का) सेक्रेटरी....

हम भी (अणवर) बने थे। (संवत्) १९६४ के वर्ष में। हमारे फावाभाई का विवाह था न? फावाभाई का। यह धीरुभाई नहीं? उनके पुत्र हैं न, मनहर। सूरत में आता है न? साठ लाख रुपये हैं। अभी साठ लाख हैं। उसके पिता थे, उनका विवाह हुआ था संवत् १९६४ में। तब मेरी उम्र १८ वर्ष की, उनकी उम्र १४ वर्ष की। उनका विवाह हुआ तो वे वर थे और मैं अणवर था। अणवर को मिले क्या? खाने में मिठाई मिले। क्या कहलाता है? पंचोळु। एक थाली में बैठे। एक थाली में बैठे... परन्तु स्त्री मिले? इसी प्रकार पुण्य से स्वर्गादि मिले, परन्तु धर्म नहीं मिलता। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, भगवान! ... यहाँ ४३ वाँ वर्ष चलता है। मार्ग तो बापू..! दरबार तो पहले से है न। वहाँ भी आते थे। नूतन वर्ष के दिन बहुत बार आते थे। नारियल लेकर (संवत्) १९९१-९२ में। यही कहा।...

यहाँ कहते हैं कि हे शिष्य! तुझे आत्मज्ञान करना हो, धर्म करना हो तो मोक्ष का मार्ग तुझे प्राप्त करना हो तो वह मुनिरूप धर्म—पुण्य दया, दान, व्रतादि क्रियाकाण्ड, समिति, गुप्ति आदि व्यवहार। अर्थरूप लक्ष्मी, काम (विषयाभिलाष) **ये तीनों ही आत्मा से भिन्न हैं,...** गजब बात है।

मुमुक्षु : अट्ठाईस मूलगुण आत्मा से भिन्न है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अट्ठाईस मूलगुण आत्मा से भिन्न है। वह तो विकल्प है, राग है। आहाहा! और उससे धर्म मानता है, वह करते-करते कल्याण हो जायेगा। मिथ्यात्व है। आहाहा! क्या हो? भाई! अरे! दुःखी प्राणी है।

मुमुक्षु : महाराज! सब निष्फल जायेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : निष्फल नहीं, सफल होगा, संसार फलेगा। हमारे कैलाशचन्दजी (पूछते हैं)। आहाहा! ईशु ख्रिस्त को उस समय तो... काम था न? ...कहते उसमें लोगों में विरोध हो गया। इतना विरोध हो गया कि ऐसे लकड़ी में जड़ दिया। यहाँ एक कील, यहाँ एक कील। वह कहते हैं, हे प्रभु! यह क्या करते हैं? मैं कौन हूँ, इसकी खबर नहीं। प्रभु! इन्हें क्षमा कर दो। आहाहा! वे माँस खाते थे। गाय का माँस मँगाते। धर्म तो नहीं था। उस समय लौकिक नीति में बहुत अधर्म होता था ... ईशु ईश्वर का अवतार है, ऐसा कहकर लोगों ने... धर्म नहीं। उन्हें जड़ दिया। आहाहा! अरे! दुनिया। यह तो अलौकिक बातें हैं, बापू!

यहाँ तो मुनिधर्म जिसे कहते हैं, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, पाँच समिति, गुप्ति, वह सब राग है; आत्मधर्म नहीं। उससे आत्मधर्म प्राप्त नहीं होता। आहाहा! चिल्लाहट मचाये न! वे कहें, व्यवहार करते-करते फिर निश्चय होगा। यहाँ कहते हैं, व्यवहार करते-करते राग होगा। प्रभु! तुझे खबर नहीं, नाथ! आहाहा!

ज्ञानरूप नहीं है,... आहाहा! अस्ति-नास्ति की। यह शुभभाव आत्मा नहीं, आत्मा से भिन्न है और आत्मा ज्ञानरूप है। व्यवहार धर्म, वह ज्ञानरूप नहीं। आहाहा! पंच महाव्रत। हजारों रानी छोड़कर पंच महाव्रत ले। महाव्रत तो विकल्प और आस्रव है। आहाहा! वह कहीं आत्मारूप नहीं। प्रभु! इसे खबर नहीं। समझ में आया?

आहाहा! एक बाई नहीं थी? इंग्लैण्ड की। इंग्लैण्ड की बाई। पीहर से आयी थी। यहाँ थी तो उसके विरोधी हो गये। यह बाई उसके पीहर की है। उसके देश की है, अपने देश की विरोधी है। ... लोहे के टुकड़े करके ... डाल दिये। ... क्या नाम कहा?... अरे! भगवान! वे लोग ऐसा मानते थे कि अपने देश की विरोधी है। उस देश की वह थी। भले पीहर था, उस देश का विरोध था, परन्तु यहाँ तो देश को अनुकूल थी। परन्तु लोगों को ऐसा हो गया, भान नहीं होता। हे प्रभु! यह क्या करते हैं? प्रभु! इन्हें क्षमा करना। आहाहा! इन्हें खबर नहीं कि मेरा... अभिप्राय क्या है? अभी उसके देश में उसके कुटुम्बी हैं, वे देश के विरोधी हैं तो यह भी विरोधी है। समझ में आया? आहाहा! यह तो...

टोडरमल को चढ़ा दिया न! आहाहा! उन्होंने तो मोक्षमार्गप्रकाशक में सत्य बात रखी थी। विरोध हो गया। शिव की मूर्ति (जेब में) डाल दी। उन्हें खबर पड़ी परन्तु बोले नहीं। आहाहा! राजा का विरोध हो गया। राजा ने हुकम दिया कि हाथी लाओ। हाथी के पैर के नीचे इन्हें कुचल डालो। आहाहा! हाथी बेचारा ऐसा हिचकता था। फिर टोडरमलजी कहते हैं, अरे... हाथी! राजा ने (हुकम) दिया है तो तुझे क्या है? रख थे पैर मेरे ऊपर। आहाहा! वह पैर रखता है। मर जाते हैं। टोडरमल, जिन्होंने मोक्षमार्गप्रकाशक बनाया, उन्हें आचार्यकल्प की उपमा है।

मुमुक्षु : इस प्रकार से कुचल डाले?

पूज्य गुरुदेवश्री : मार डाला न। मोक्षमार्गप्रकाशक। ... मोक्षमार्गप्रकाशक के कर्ता टोडरमल। बहुत ज्ञानी, बहुत विद्वान पूरी दुनिया से विरुद्ध किया तो लोग विरुद्ध हो गये। आहाहा! पुण्य से धर्म नहीं, महाव्रत से धर्म नहीं, ऐसा कहे। पंच महाव्रत, वे आस्रव हैं, अधर्म हैं—ऐसा कहा तो लोगों ने चिल्लाहट मचायी। यह क्या कहते हैं? ... विकल्प उठे, वह आस्रव है। स्वरूप तो चिदानन्द ज्ञानमूर्ति प्रभु ज्ञान का समुद्र है न! उसमें पुण्य की वृत्ति उठे, वह आत्मा से भिन्न है। वह ज्ञान नहीं, वह आत्मा नहीं। आहाहा!

निश्चयनय करके सब तरफ से निर्मल... अब अन्दर भगवान आत्मा पुण्य-पाप से भिन्न **निश्चयनय करके सब तरफ से निर्मल एक केवलज्ञानस्वरूप...** 'एक' शब्द

पड़ा रहा है। संस्कृत में है। केवलज्ञानस्वरूप है, वहाँ 'एक' चाहिए। निर्मल 'एक' केवलज्ञानस्वरूप, ऐसा शब्द चाहिए। संस्कृत में है।

मुमुक्षु : 'सकलविशदैकज्ञानस्वरूपात्' ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, एक ज्ञानस्वरूप यह।

कहते हैं, शुभ-अशुभभाव की वृत्ति छोड़ दे और भगवान अन्दर ज्ञानमूर्ति प्रभु, आहाहा! कैसा? **सब तरफ से निर्मल एक केवलज्ञानस्वरूप...** एक केवलज्ञानस्वरूप। केवलज्ञान पर्याय नहीं। एक केवलज्ञान—एकरूप केवलज्ञान। आहाहा! ऐसा भेद भी नहीं, राग नहीं, निमित्त नहीं, भेद नहीं। आहाहा! भगवान! तुझे आत्मा देखना हो तो उस अभेद में दृष्टि कर तो तुझे क्षण में आत्मा प्राप्त होगा। आहाहा! समझ में आया? शिष्य का यह प्रश्न था न? प्रभु! बहुत क्रियाकाण्ड किये परन्तु आत्मा का कहीं पता लगा नहीं। तो प्रभु! एक क्षण में आत्मा मिले, वह ज्ञान क्या है? यह कहते हैं वह। प्रभु! एक क्षण में कैसे मिले? आहाहा!

तेरी दृष्टि विकार-विकल्प से हटकर अन्दर ज्ञानानन्द एकस्वरूप भगवान विराजता है, वहाँ दृष्टि लगा दे। तुझे क्षण में आत्मा की प्राप्ति हो जायेगी। एक क्षण में तुझे सम्यग्दर्शन होगा। आहाहा! कहो, सेठ! ऐसी बात है। सब कहते हैं न, ... भगवान! क्या करता है? भाई! रमेशभाई नहीं आते? उन्हें मारा था। मन्दिर में मारा। यह सोनगढ़िया है। अरे भगवान! न जँचे तो नहीं जाना, परन्तु किसी को... मारना, वह कोई मार्ग है? चाहे तो सिर का काटनेवाला हो, परन्तु उसके ऊपर क्रोध नहीं करना।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बहुत मारा। भाई थे न! रमेशभाई को। ... तो भी उसे मारना नहीं चाहिए। तत्त्वैषु मैत्री। सब भगवान आत्मा हैं। भगवानस्वरूप है, उसकी मैत्री कैसे जाये? पर्याय में भले भूल हो। समझ में आया? परन्तु वस्तु तो भगवानस्वरूप है, साधर्मी है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **निर्मल केवलज्ञानस्वरूप परमात्मपदार्थ से भिन्न तीनों ही धर्म, अर्थ, काम, पुरुषार्थों को छोड़कर...** है? आहाहा! बहुत सरस गाथा है। आता है,

परन्तु उसकी दृष्टि छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। आत्मा अखण्डानन्द प्रभु... **तीनों ही धर्म, अर्थ, काम, पुण्य, लक्ष्मी और काम, इन पुरुषार्थों को छोड़कर...** यह पुण्य का पुरुषार्थ भी छोड़ दे, कहते हैं। आहाहा! यह अधर्म का पुरुषार्थ है, बापू! गजब बात! बापू! भगवान तीन लोक के नाथ ऐसा कहते थे। समझ में आया?

मुमुक्षु : पुण्य छोड़ दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... यहाँ दृष्टि में से छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। शुभ उपयोग तो नहीं छूटेगा, शुद्ध उपयोग जब करेगा तब छूटेगा परन्तु दृष्टि में से छोड़ दे। वह धर्म है और धर्म का कारण है, ऐसी दृष्टि छोड़ दे। समझ में आया? आहाहा! और क्या करना? **वीतरागस्वसंवेदनस्वरूप शुद्धात्मानुरूपज्ञान में रहकर आत्मा को जान।** आहाहा! वीतराग स्वसंवेदनज्ञानस्वरूप-रागरहित वीतरागी वेदन से शुद्धात्मानुभूति-शुद्धात्मा के अनुभवस्वरूप ज्ञान में रहकर आत्मा को जान। आहाहा! वीतरागी निर्विकल्प परिणति में रहकर उसे जान। ऐसे यों ही जानना.. जानना, ऐसा नहीं। आहाहा! है? बहुत सरस, परमात्मप्रकाश तो गजब बात है! वीतराग स्वसंवेदनज्ञान-राग रहित स्व-अपना वेदनस्वरूप शुद्धात्मानुभूति, ऐसे ज्ञान में रहकर अन्दर भगवान को जान अन्दर। क्षण में तुझे परमात्मा प्राप्त होगा। आहाहा! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १०७

अथ –

१०७) अप्पा णाणहँ गम्मु पर णाणु वियाणइ जेण।
तिण्णि वि मिल्लिवि जाणि तुहुँ अप्पा णाणेँ तेण।।१०७।।

आत्मा ज्ञानस्य गम्यः परः ज्ञानं विजानाति येन।
त्रीण्यपि मुक्त्वा जानीहि त्वं आत्मानं ज्ञानेन तेन।।१०७।।

अप्पा णाणहं गम्मु पर आत्मा ज्ञानस्य गम्यो विषयः परः। कोऽर्थः। नियमेन। कस्मात्। णाणु वियाणइ जेण ज्ञानं कर्तृ विजानात्यात्मानं येन कारणेन अतः कारणात् तिण्णि वि मिल्लिवि जाणि तुहुं त्रीण्यपि मुक्त्वा जानीहि त्वं हे प्रभाकरभट्ट, अप्पा णाणें तेण। कं जानीहि। आत्मानम्। केन। ज्ञानेन तेन कारणेनेति। तथाहि। निजशुद्धात्मा ज्ञानस्यैव गम्यः। कस्मादिति चेत्। मतिज्ञानादिकपञ्चविकल्परहितं यत्परमपदं परमात्मशब्दवाच्यं साक्षान्मोक्षकारणं तद्रुपो योऽसौ परमात्मा तमात्मानं वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान गुणेन विना दुर्धरानुष्ठानं कुर्वाणाअपि बहवोऽपि न लभन्ते यतः कारणात्। तथा चोक्तं समयसारे – 'णाणगुणेण विहीणा एयं तु पयं बहू वि ण लहंते। तं गिण्ह णियदमेदं जदि इच्छसि दुक्खपरिमोक्खं।।'। अत्र धर्मार्थकामादिसर्वपरद्रव्येच्छां योऽसौ मुञ्चति स्वशुद्धात्मसुखामृते तृप्तो भवति स एव निःपरिग्रहो भण्यते स एवात्मानं जानातीति भावार्थः। उक्तं च – 'अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे धम्मं। अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि।।'।।१०७।।

आगे आत्मा का स्वरूप दिखलाते हैं –

ज्ञानगम्य ही है यह आत्मा क्योंकि ज्ञान ही ज्ञान करे।
इसीलिए तुम तीन छोड़कर ज्ञान भाव से आत्म लखो।।१०७।।

अन्वयार्थ :– [आत्मा] आत्मा [परं] नियम से [ज्ञानस्य] ज्ञान के [गम्यः] गोचर है, [येन] क्योंकि [ज्ञानं] ज्ञान ही [विजानाति] आत्मा को जानता है, [तेन] इसलिये [त्वं] हे प्रभाकर भट्ट तू [त्रीणि अपि मुक्तवा] धर्म, अर्थ, काम इन तीनों ही भावों को छोड़कर [ज्ञानेन] ज्ञान से [आत्मानं] निज आत्मा को [जानीहि] जान।

भावार्थ :– निज शुद्धात्मा ज्ञान के ही गोचर (जानने योग्य) है, क्योंकि मतिज्ञानादि पाँच भेदों रहित जो परमात्म शब्द का अर्थ परमपद है वही साक्षात् मोक्ष

का कारण है, उस स्वरूप परमात्मा को वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदन ज्ञान के बिना दुर्धर तप के करनेवाले भी बहुत से प्राणी नहीं पाते। इसलिये ज्ञान से ही अपना स्वरूप अनुभव कर। ऐसा ही कथन श्रीकुंदकुंदाचार्य ने समयसारजी में किया है 'णाणगुणेहिं' इत्यादि। इसका अर्थ यह है, कि सम्यग्ज्ञाननामा निज गुण से रहित पुरुष इस ब्रह्मपद को बहुत कष्ट करके भी नहीं पाते, अर्थात् जो महान दुर्धर तप करो तो भी नहीं मिलता। इसलिये जो तू दुःख से छूटना चाहता है, सिद्धपद की इच्छा रखता है, तो आत्मज्ञानकर निजपद को प्राप्त कर। यहाँ सारांश यह है कि, जो धर्म-अर्थ-कामादि सब परद्रव्य की इच्छा को छोड़ता है, वही निज शुद्धात्मसुखरूप अमृत में तृप्त हुआ सिद्धांत में परिग्रह रहित कहा जाता है, और निर्ग्रंथ कहा जाता है, और वही अपने आत्मा को जानता है। ऐसा ही समयसार में कहा है 'अपरिग्गहो' इत्यादि। इसका अर्थ ऐसा है, कि निज सिद्धांत में परिग्रह रहित और इच्छा रहित ज्ञानी कहा गया है, जो धर्म को भी नहीं चाहता है, अर्थात् जिसके व्यवहारधर्म की भी कामना नहीं है, उसके अर्थ तथा काम की इच्छा कहाँ से होवे? वह आत्मज्ञानी सब अभिलाषाओं से रहित है, जिसके धर्म का भी परिग्रह नहीं है, तो अन्य परिग्रह कहाँ से हो? इसलिये वह ज्ञानी परिग्रही नहीं है, केवल निजस्वरूप का जाननेवाला ही होता है।।१०७।।

वीर संवत् २५०२, भाद्र शुक्ल १३, सोमवार
दिनांक-०६-०९-१९७६, गाथा-१०७, प्रवचन-८३

दसलक्षणी पर्व का नौवाँ दिन है। दसलक्षण अर्थात् आत्मा का अनुभव, आनन्द के अनुभवसहित स्वरूप में आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द में रमना, उसका नाम चारित्र है। उस चारित्र के उत्तमक्षमा आदि दस भेद हैं। मुख्य तो चारित्र की व्याख्या है। यहाँ आकिंचन आया न आज? आकिंचनधर्म। नौवाँ दिन है।

जिनका मोह सर्वथा गल जाता है,... आहाहा! णमो अरिहंताणं, पहले कहा न? वह क्या है? वह पक्ष नहीं। अरि अर्थात् मिथ्यात्व और राग-द्वेष जो दुश्मन है, उसे हन्ता, जिसने हनन किया, उसे अरिहन्त कहा जाता है। समझ में आया? यह पहला पद आया न? णमो लोए सव्व अरिहंताणं। वास्तव में तो ऐसा है कि णमो लोए सव्व

त्रिकालवर्ती अरिहंताणं, ऐसा शब्द है। शास्त्र का ऐसा शब्द है। फिर संक्षिप्त करके णमो लोए सव्व साहूणं कर दिया। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं—पूरा पद ऐसा है। धवल में ऐसा है। जिसने अपना आनन्दस्वरूप भगवान, वीतरागभाव प्रगट किया और जिसने मिथ्यात्व, राग-द्वेष का नाश किया। अरि—वह विकार अरि है, शत्रु है। उसे हंता—घाता है। ऐसे त्रिकालवर्ती अरिहन्तों को, त्रिकालवर्ती—तीनों काल में वर्तनेवाले, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं, उसका विस्तार किया। समझ में आया? क्योंकि इसने अकिंचन—कुछ भी राग और परचीज़ मेरी नहीं, ऐसा अपना आनन्दस्वरूप जिसने प्रगट किया है, उनका मोह गल गया। मोह हंता कहो, घात किया कहो, गल गया कहो। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए निचली श्रेणी में निर्ग्रन्थ मुनि हैं, सच्चे साधु, उनका भी मोह गल गया है। जिसे अन्दर आनन्द की लहर जग गयी है। अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर भगवान, वह आत्मा क्या है, उसकी लोगों को कीमत नहीं। आत्मा अर्थात् कुछ नहीं। यह करना, यह करना। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र है। अतीन्द्रिय ज्ञान। शास्त्रज्ञान ही नहीं। यह ज्ञान भी नहीं। शास्त्रज्ञान, वह तो विकल्प अर्थात् राग के झुकाववाला ज्ञान है। वह ज्ञान नहीं। आहाहा! अन्तर में आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय ज्ञान की मूर्ति प्रभु है। ऐसा अतीन्द्रिय ज्ञान जिसने प्रगट किया, छठवें गुणस्थान में मुनि, सच्चे मुनि हैं, वे निर्ग्रन्थ होते हैं। समझ में आया? यह कहते हैं।

आत्मा के हित में ही निरन्तर लगे रहते हैं,... आत्मा आनन्दस्वरूप में... मुनि, वह तो अन्तर आनन्द में ही सदा रमते हैं। है? **जो सुन्दर चारित्र के धारण करनेवाले हैं...** अन्तर शान्ति... शान्ति... शान्ति... वीतरागस्वरूप उपशम चारित्र, उपशम अर्थात् स्थिरता, उस चारित्र के धारक हैं। आहाहा! **तथा घर, स्त्री, पुत्रादि को छोड़कर, मोक्ष के लिये तप करते हैं,...** (आत्मध्यान करते हैं)। आहाहा! अपने स्वरूप में तपते हैं, तपते हैं अर्थात् ध्यान करते हैं। **वे मुनि, संसार में विरले ही हैं।** ऐसे मुनि मिलना विरल है। और इस काल में तो महादुर्लभ है। समझ में आया? शास्त्र में तो ऐसा लेख है, पद्मनन्दि पंचविंशति शास्त्र है। एक, दो, तीन मुनि। ऐसा लिखा है। सम्यग्ज्ञानी, दृष्टि, अनुभवी सन्त तो एक, दो, तीन कदाचित् कहीं हों तो मिले। ऐसा पाठ है। इसका अर्थ

थोड़े हैं, ऐसा लेना। मोक्षमार्गप्रकाशक में स्पष्टीकरण है। बहुत थोड़े, कोई हों... आहाहा!

जिन्हें अन्दर परमेश्वरपद प्रगट हुआ है, अतीनिद्रय आनन्द की लहरें (उछलती हैं)। अन्दर अतीन्द्रियस्वरूप भगवान आत्मा, उसकी पर्याय में, जैसे किनारे—समुद्र के किनारे पानी का ज्वार आता है न? बाढ़—ज्वार; उसी प्रकार धर्मात्मा सन्त को वर्तमान पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार आता है। समझ में आया? और राग की हीनता—भाटा आ गयी है। ज्वार और भाटा है न। विकार का भाटा आया है और आनन्द का ज्वार आया है। आहाहा! ऐसी बात भी कहाँ है। आहाहा! यहाँ यह कहते हैं। वे मुनि जगत में विरल हैं।

जो स्वतः अपने हित के लिये तप करनेवाले हैं, दूसरे तपस्वियों के लिये शास्त्रादिक का दान करते हैं,... आहाहा! सम्यग्ज्ञान दूसरे को देते हैं। भाई! तेरी चीज़ रागरहित, आनन्द का नाथ प्रभु, उसका ज्ञान कर। वह ज्ञान है। ऐसा उपदेश देते हैं और ज्ञान देते हैं, वह तो जगत में विरल है, कहते हैं। समझ में आया? अपने आत्मा के आनन्द का ज्ञान देना... **उनके सहायी भी हैं...** धर्मात्मा आनन्दस्वरूप को साधते हैं, उसे जो विरल धर्मात्मा सहायक—मददगार होते हैं। आहाहा! **संसार के बीच में अत्यन्त दुर्लभ है...** वे प्राणी संसार में महादुर्लभ। अर्थात् **वे बड़ी कठिनाई से मिलते हैं।** एक गाथा आयी।

दूसरी गाथा। **समस्त शास्त्रों को जाननेवाले वीतरागदेव ने अपनी आत्मा से समस्त वस्तुओं को भिन्न जानकर सबका त्याग कर दिया है।** अकेली नग्नदशा। वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं और अन्दर में राग का कण भी नहीं। आहाहा! आकिंचन। किंचन—किंचित् राग का अंश भी नहीं और बाहर से वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं। ऐसा अकिंचन भाव जिसने प्रगट किया। आहाहा! अरे! दुनिया को कहाँ... यह कहते हैं, देखो! **यदि कहोगे कि सबको छोड़ते समय उन्होंने शरीर, पुस्तकादि का त्याग क्यों नहीं किया?** वे तो छूटते नहीं। शरीर और पुस्तक के प्रति ममता छूटती है, वे छूटते नहीं। आयुष्य हो तब तक शरीर छूटता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यदि वे शरीरादि में किसी प्रकार का ममत्व करें तो उनको जिनेन्द्र की आज्ञा-

भंग करनेरूप महान दोष का भागी होना पड़ेगा... आहाहा! वह तो निर्ग्रन्थ है। निर्ग्रन्थ अर्थात् शुभभाव जो राग है, वह ग्रन्थ है। आहाहा! उसमें से भी अन्दर में निकल गये। जिनकी निर्ग्रन्थदशा अन्तर में है। आहाहा! वीतरागभाव जिनकी पर्याय में—अवस्था में हिलोरें मारता है। आहाहा! जैसे पानी हिलोरे मारता है न? हिलोरे कहते हैं, क्या कहते हैं? ... आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, वीतरागमूर्ति वह भगवान आत्मा तो है। उसका अनुभव करके जिसकी पर्याय में वीतरागी पर्याय प्रगट हुई, धर्म, अर्थ, काम से रहित। यह चलता है न? अपने यह आयेगा। प्रवचनसार। अभी आयेगा दोपहर में। उसे यहाँ निर्ग्रन्थदशा कहते हैं। यह आयेगा।

अब आयेगा। १०७ गाथा। १०६ हो गयी।

शिष्य ने गुरु से प्रश्न किया था कि नाथ! मुझे आत्मा बताओ। मैंने क्रिया तो बहुत की। व्रत, नियम, तपस्या तो अनन्त बार किये। तो भी हमको आत्मा एक क्षण भी मिला नहीं। आहा! तो हमको नियत काल में... ऐसा शब्द-पाठ है। पण्डितजी! क्षणमात्र में कहा न? पाठ में नियत काल है। संस्कृत में है। नियत काल आया था। कहा था न? आहाहा! नियत है। शब्द आया था कहीं। १०४ में आया। पाठ में नियत काल, ऐसा है, लो। संस्कृत की पहली लाईन। '**नियतकालेनैकक्षणेनेति**'। संस्कृत में है। शिष्य का प्रश्न है कि प्रभु! हमारा आत्मा एक क्षण में बताओ। अनन्त काल हमारा व्यतीत हुआ। यह व्रत किये और तप किये और भक्ति की और पूजा की, उसमें कुछ आत्मा मिला नहीं। वह तो राग की क्रिया है। आहाहा! अब हमारा ज्ञानस्वरूप भगवान नियत काल में—अल्प काल में बताओ, प्रभु! आहाहा! अब लम्बा काल नहीं। अल्प काल में आत्मा प्राप्त हो, ऐसी चीज़ बताओ। तो उसका उत्तर गुरु देते हैं। १०७ चलती है न? १०७।

१०७) अप्पा णाणहँ गम्मु पर णाणु वियाणइ जेण।
तिण्णि वि मिल्लिवि जाणि तुहुँ अप्पा णाणँ तेण॥१०७॥

अन्वयार्थः—आत्मा नियम से ज्ञान के गोचर है,... यह भगवान तो अन्दर ज्ञानस्वरूप है, ज्ञान से गम्य है। कोई व्रत क्रिया आदि से, विकल्प से वह ज्ञात नहीं होता। आहाहा! ज्ञान कौन सा? अपना ज्ञान। शास्त्रज्ञान भी नहीं। वह तो परलक्ष्यी ज्ञान

है। आहाहा! है? **आत्मा... 'परं' नियम से ज्ञान के गोचर है,...** आहाहा! स्वसंवेदन। अपने ज्ञान से ही आत्मा ज्ञान में ज्ञात होता है। आहाहा! अन्तर ज्ञान की वेदनदशा में ज्ञान ज्ञात होता है। भारी सूक्ष्म बात, भाई!

क्योंकि ज्ञान ही आत्मा को जानता है,... आहा! अन्दर ज्ञानस्वभाव जो है, वह आत्मा को जानता है। राग की क्रिया, वह कहीं आत्मा को जानती नहीं। आहाहा! शिष्य को उत्तर देते हैं। **हे प्रभाकर भट्ट! तू धर्म, अर्थ, काम इन तीनों ही भावों को छोड़कर...** है? धर्म कौन? पुण्य। यह पंच महाव्रत और बारह व्रत, भक्ति और पूजा, यह सब पुण्य है, व्यवहार धर्म अर्थात् पुण्य। उसे छोड़ दे। दृष्टि में से छोड़ दे, वह धर्म नहीं। आहाहा! प्ररूपणा पूरी अभी बदल गयी है। वह सब धर्म है। जो पुण्य है, व्यवहार है, उसे अज्ञानी धर्म कहता है।

यहाँ धर्मात्मा कहते हैं, '**त्रीणि अपि मुक्त्वा**' है? पुण्य-शुभभाव चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि और लाख शास्त्रवाँचन और श्रवण (करे), वह सब शुभभाव है। आहाहा! उसे छोड़ दे, दृष्टि में से छोड़ दे। उससे आत्मा प्राप्त नहीं होता। आहाहा! अर्थ—यह धूल / लक्ष्मी। यहाँ तो भगवान धूल कहते हैं न, पुद्गल है न? वह तो अजीव है। उस अजीव को प्राप्त करने की भावना, वह पाप है। ऐई! यह सब पैसेवाले पैसे के लिये... यह समीर अब पैसे के लिये वहाँ अमरेली जाता है। अमरेली कहलाता है? क्या कहलाता है? अमेरिका। पढ़कर फिर पैसा (कमायेगा)। पैसा तो इसके पिता के पास बहुत है। यह पैसा कमाने का भाव पाप है, दुर्गति में जानेवाला है। यहाँ तो यह है, भगवान!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ले, इसलिए स्पष्टीकरण करते हैं, स्पष्टीकरण करते हैं। जिसे धर्म करना हो, उसे लक्ष्मी की ओर का भाव भी दृष्टि में से छोड़ना पड़ेगा और दया, दान, व्रत के परिणाम भी दृष्टि में से छोड़ने पड़ेंगे। जिसे सम्यग्दर्शन चाहिए, सम्यग्दर्शन चौथा गुणस्थान अभी तो, आहाहा! उसे धर्म, अर्थ और काम। पाँच इन्द्रिय के विषय की अभिलाषा, वह तो पाप है। आहाहा! अर्थ और काम में पाप लिया तथा धर्म में पुण्य लिया। वह शुभ और अशुभभाव दो लिये। वे दोनों बन्ध के कारण हैं। आहाहा! तुझे

आत्मा चाहिए हो तो उस शुभाशुभभाव की रुचि छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यह बाहर की मोहनगरी। श्मशान में होता है न? श्मशान में हड्डियाँ होती हैं। फिर फासफूस होती है। क्या कहते हैं? हड्डियों में से चमक.. चमक होती है। लड़के-बालक जाये तो उसे ऐसा लगता है कि भूतड़ा होगा। भूतड़ा-बूतड़ा कोई नहीं। यह हड्डियाँ पड़ी होती हैं न? हड्डियाँ समझे? उसमें फासफूस के कारण चमक... चमक हड्डियों में से होती है, उसे फासफूस कहते हैं।

इसी प्रकार आत्मा के अतिरिक्त जगत की दशा सब हड्डियों की फासफूस है। आहाहा! जगत की चमक में जगत अन्दर चला जाता है और भगवान चैतन्यमूर्ति अन्दर है, उस ओर जाने का समय नहीं लेता। आहाहा! कहो, पोपटभाई! यह लड़के और पैसा और उसमें वापस बापूजी... बापूजी करे। आहाहा!

एक बार राणपुर में उपाश्रय के पास कोई खाट बनाता था। यह काथी की खाट नहीं होती? एक हरिजन ढेढ था, वह बनाता था। मैं तो उपाश्रय में था। फिर दस बजे तो उसकी स्त्री आयी और उसका पुत्र आया, छाछ और रोटी लेकर। ऐसे खाते थे तो मानो बादशाही है। मैंने कहा, यह दुनिया ऐसी बादशाही करती है।

मुमुक्षु : लागू करे....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लागू किया न! यह हसमुख का योग और पैसे का योग, उसमें प्रसन्न हो वह हरिजन जैसा भिखारी है। पद्मचन्दजी! यहाँ तो यह है, भगवान! आहाहा! सम्यग्दृष्टि तो गृहस्थाश्रम में हो, तो भी राग और रजकण की चीज़ की ममता छूट गयी है। वह मैं नहीं, वह मैं नहीं। मैं तो आनन्द का नाथ हूँ। सच्चिदानन्दस्वरूप मैं हूँ। हो, राग होता है, परन्तु वह मैं नहीं। वह मेरा नहीं। आहाहा! आकिंचन (का) दिन है न आज? किंचितमात्र राग का कण और रजकण वह मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! मैं तो पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध वीतरागमूर्ति आत्मा अन्दर अकषाय स्वभाव का पिण्ड, वह मैं हूँ। आहाहा! धर्मी की ऐसी दृष्टि होनी चाहिए। समझ में आया? इसके बिना कभी धर्म (होता नहीं)। धर्म शब्द से सुख का पंथ। अपने पूर्णानन्द की

दृष्टि होती है तो सुख के पंथ में जाता है। और पुण्य और पाप के रास्ते जाता है तो दुःख के पंथ में जाता है। समझ में आया?

शास्त्र, भगवान तो यहाँ तक कहते हैं, सच्चे मुनि हैं, आत्मज्ञानी, ध्यानी आनन्द का उन्हें पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, छठवें गुणस्थान में, वह जगपंथ है। समयसार नाटक में है, एक बार बताया था। जगपंथ। समझ में आया? आहाहा! जिसे आनन्द का नाथ जाग-जाग जगा है। ग्रन्थिभेद—राग की एकता टूट गयी है। और स्वभाव आनन्द के नाथ की जागृत दशा, चारित्र की रमणता आनन्द की प्रगट हो गयी है। उसे भी जरा पंच महाव्रत के विकल्प आते हैं। आहाहा! वह जगपंथ है। मोक्ष का पंथ नहीं। समझ में आया? बतलाना है? लो, (मोक्ष द्वारा-४०) है। समयसार नाटक।

ता कारन जगपंथ इत, उत सिव मारग जोर,
परमादी जगकौं धुकै, अपरमादि सिव ओर॥४०॥

ता कारन जगपंथ इत... मुनि को दया, दान, व्रत के विकल्प उठते हैं, अहिंसा आदि व्रत का, परन्तु वह विकल्प आस्रव है, वह जगपंथ है। गजब बात है, भाई! 'ता कारन जगपंथ इत, उत सिव मारग जोर' स्वरूप में अप्रमत्तदशा में रमणता करना। यह विकल्प तो प्रमाद है। आहाहा! प्रभु! 'परमादी जगकौं धुकै' आहाहा! आत्मज्ञानी ध्यान, हों! जिसे अभी सम्यग्दर्शन नहीं, उसकी तो बात ही नहीं। जिसे आत्मानुभव है, जिसे आनन्द की दशा, रमणता चारित्रदशा प्रगट हुई है, उसे भी छठवें गुणस्थान में जो विकल्प आता है... 'ता कारण... जगकौं धुकै...' आहाहा! इतना विकल्प भी संसार की ओर झुकाववाला है। 'अपरमादि सिव ओर' अन्दर आत्मा के आनन्द में अप्रमादी रमते हैं, वे शिव की ओर जाते हैं। शिव अर्थात् मोक्ष। आहाहा! बापू! मार्ग बहुत अलग है, भाई! अभी तो सुनना मुश्किल पड़ गया है। बस, यह व्रत करो और अपवास करो और तप करो और महाव्रत लो, यह धर्म है। यह तो श्रद्धा ही मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? ४०वाँ पद है, मोक्ष द्वार। समझ में आया? कितने बोल हैं? ५३ हैं। मोक्षद्वार में ५३ बोल (पद) हैं, उसमें यह ४०वाँ बोल है। हम तो यह (संवत) १९७८ के वर्ष से वांचते हैं। कितने वर्ष हुए? २२ और ३२=५४ वर्ष हुए। हम तो दुकान पर भी शास्त्र वांचते थे, परन्तु श्वेताम्बर के। हम तो श्वेताम्बर थे न! पिताजी श्वेताम्बर थे। हमारी

दुकान वहाँ पालेज में थी। भाई आये है न, नटुभाई है। वहाँ नौ वर्ष रहे दुकान पर। पाँच वर्ष तो दुकान भी चलायी थी। १७ से २२ वर्ष की उम्र। १७—१० और ७, पाँच वर्ष दुकान चलायी। परन्तु कुछ रुचि नहीं जमी। लेन-देन करते थे, पैसे की उगाही को जाते थे। छोटी उम्र में हमको सेठ... सेठ कहते थे। दुकान चलाते थे न! १७ वर्ष से २२ वर्ष, परन्तु सब राग और द्वेष की बातें।

मुमुक्षु : आपने अब सच्ची दुकान चलायी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दुकान सच्ची है। वह तो पाप की दुकान थी। हम तो छोटी उम्र में दुकान के स्वामी थे न! छोटी उम्र में ग्राहक आवे तो सेठ... सेठ करते थे। सेठ आओ, सेठ आओ। हमारी तो १७ वर्ष की छोटी उम्र। पिताजी (संवत्) १९६३ के वर्ष में गुजर गये। १९५९ से १९६३ पिताजी ने दुकान चलायी। संवत् १९५९-१९६३। पिताजी गुजर गये, फिर हमारे बड़े भाई थे, उनकी दूसरी दुकान थी। हमारी दो दुकानें थीं। हमारे भाई आये है न, नटुभाई। उनके पिताजी काका हमारे भागीदार थे, बुआ के पुत्र। यह सब वर्ष में कितनी बार... परन्तु अकेला पाप। घनघनाहट पूरे दिन यह लिया और दिया और यह किया।

मुमुक्षु : न्याय नीति से भी पाप।

पूज्य गुरुदेवश्री : न्याय कहाँ था? पैसा लेना और देना... आहाहा! पैसा मिले तो अन्दर प्रसन्न हो जाये। ग्राहक के पास उगाही को जाते थे। उघराणी समझे? पैसे लेन-देन किये हों, वहाँ जाते थे। पाँच सौ-पाँच सौ रुपये, हजार-हजार लेकर आये। और एक दिन की बिक्री हो न? वकरा को क्या कहते हैं? बिक्री। पाँच सौ-पाँच सौ रुपये। गल्ला था न। उस समय यह नोट कहाँ थे। उस समय तो चाँदी थी। एक दिन के पाँच सौ-पाँच सौ आते थे। हम व्यापार करते तब। उसमें धूलधाणी में कुछ नहीं था, पाप का पोटला था।

यहाँ तो कहते हैं, पुण्यभाव जो है... आहाहा! समकिती मुनि को भी जब विकल्प, पुण्यभाव आता है, वह भी जगपंथ, संसारपंथ में उसे भवबन्ध होगा। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : छठवें गुणस्थान में....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, विकल्प आवे, महाव्रत है न? इतना प्रमाद है न! यहाँ पाण्डव, शत्रुंजय, पाँच पाण्डव ध्यान में थे। धर्मराजा, भीम, अर्जुन, सहदेव, नकुल। पाँचों आत्मा के ध्यान में मस्त थे। दुर्योधन का भानेज आया, वह पहले विरोधी था। उन्हें राज चाहिए था। ऐसा करके लोहे के मुकुट और लोहे के गहने पहनाये। आहाहा! यह शत्रुंजय पर हुआ। पाँच पाण्डवों में से तीन पाण्डव वहाँ से मोक्ष गये। सहदेव और नकुल दो... सुनो! मुनि थे, ध्यानी थे, आत्मज्ञानी अनुभवी थे। परन्तु बड़े भाई को जरा विकल्प आ गया। भीम, अर्जुन और धर्मराजा। सहोदर थे न। एक माता के पुत्र थे। मुनि थे, वृद्ध अवस्था (थी), इसलिए ऐसा विकल्प आया कि अरे! मुनियों को कैसे होगा? इतना शुभ विकल्प आया। ३३ सागर की आयु बँध गयी। केवलज्ञान दूर हो गया।

मुमुक्षु : ....भाई का आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आया, भाई, वे भी मुनियों का। शुभराग है न! विकल्प आया क्यों? वह राग है। आयुष्य बँध गया। तीन (पाण्डव) केवल (ज्ञान) पाकर मोक्ष गये। तीन तो मोक्ष में चले गये। आहाहा! अन्तिम देह। परमात्मा सिद्ध हो गये। तीन— धर्मराजा, अर्जुन और भीम। सहदेव और नकुल को एक भव सर्वार्थसिद्धि का हो गया। अभी सर्वार्थसिद्धि में हैं। वहाँ से फिर मनुष्य होकर (मोक्ष में जायेंगे)। मनुष्यभव में भी कितने वर्ष के बाद केवलज्ञान होगा। एक विकल्प में मोक्ष इतना दूर हो गया। वह भी मुनियों के लिये विकल्प आया तो भव हो गया। आहाहा!

मुमुक्षु : अपराध हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग है न, भगवान! यह तो भगवान वीतरागस्वरूप प्रभु है। आहा! उसमें से निकलकर जितने विकल्प होते हैं, वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : इतना राग और इतनी बड़ी सजा?

पूज्य गुरुदेवश्री : सजा नहीं, बड़ी सजा नहीं। पण्डितजी क्या कहते हैं? वह कहते हैं न? ककड़ी के चोर को (फाँसी की सजा)। यह प्रश्न करते हैं। ककड़ी का चोर नहीं। आहाहा! समझ में आया? विकल्प क्यों किया? राग क्यों आया? समझ में

आया ? आहाहा ! उस राग से दो भव बढ़ गये। तीन (पाण्डव) मोक्ष पधारे। आत्मदशा-सिद्धपद प्राप्त हुआ। आहाहा ! वे सिद्ध होंगे परन्तु एक भव के बाद। अभी सर्वार्थसिद्धि में हैं, वहाँ से मनुष्य होकर केवलज्ञान परमात्मा होंगे। परन्तु दो भव बढ़ गये। आहाहा ! समझ में आया ?

धर्म, अर्थ, काम इन तीनों ही भावों को छोड़कर... आहाहा ! पहले सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन चौथा गुणस्थान। उसमें भी शुभ और अशुभभाव की रुचि छूट जाती है। रुचि छूटे बिना सम्यग्दर्शन कभी नहीं होता। आहाहा ! भाव रहते हैं, अस्थिरता के भाव रहते हैं परन्तु रुचि छूट जाती है। शुभ है, वह धर्म है और धर्म का कारण है, ऐसी दृष्टि छूट जाती है। समझ में आया ? सूक्ष्म बात, भाई ! अनन्त काल में कभी किया ही नहीं। ऐसे का ऐसे जन्म धारण किये। मनुष्यपना अनन्त बार मिला है। यह कहीं पहला मनुष्यपना नहीं है। अनन्त काल... अनन्त काल... अनादि... अनादि... अनादि... आहाहा ! ऐसे देखो तो अनन्त... अनन्त भव गये तो अनन्त भव मनुष्य के हो गये हैं। अरबोंपति सेठ भी अनन्त बार हो गया है। भिखारी, सौ बार माँगे और एक बार ग्रास मिले, ऐसा भिखारी भी अनन्त बार हुआ। अनन्त काल किसे कहते हैं ? प्रभु ! कितना काल, ऐसे देखो ! काल पीछे... पीछे... पीछे... पीछे... भव... भव... भव... भव... भव अनन्त भव हैं। आहाहा ! इसने कभी विचार कहाँ किया है ? जहाँ जन्में वहाँ हो गया, हम बनिये, हम ऐसे और हम व्यापारी हैं, हम व्यापार करते हैं और यह धन्धे में पैसे मिले और यह पुत्र हमारे। मर गया, ऐसा का ऐसा। ऐई !

भावमरण। श्रीमद् ने नहीं कहा ? श्रीमद् राजचन्द्र हुए न ? 'तू क्यों भयंकर भावमरण प्रवाह में चकचूर है ?' श्रीमद् राजचन्द्र आत्मज्ञानी हुए। गृहस्थाश्रम में थे। समकिती आत्मज्ञानी थे, एक भव में मोक्ष जायेंगे। अभी स्वर्ग में हैं। श्रीमद् राजचन्द्र को लाखों का जवाहरात का व्यापार था। मुम्बई। उन्हें अनुभवदृष्टि बहुत हो गयी। स्वर्ग में गये हैं और वहाँ से एक भव करके मोक्ष में जायेंगे। उन्होंने १६ वें वर्ष में (काव्य) बनाया है।

बहु पुण्य पुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला।
तो भी अरे! भवचक्र का फेरा न एक कभी टला॥

भवभ्रमण टला नहीं। और यह मनुष्यपना मिला तो तेरा मनुष्यपना अफल है। आहाहा! 'सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते सुख जाता दूर है...' बाहर की सामग्री में सुख है, ऐसी मान्यता में तेरे आनन्द का—सुख का नाश होता है। आहाहा! गृहस्थाश्रम में थे, लाखों का जवाहरात का व्यापार था। समझ में आया? समकिती थे, नीति से व्यापार करते थे। एक बार व्यापार करने में, मोती का व्यापार था, तो जिसके साथ मोती का व्यापार किया, वह साधारण मोती का धन्धा लिया था, उसमें (सामनेवाले ने) ऊँचे मोती की पुड़िया दे दी। ऊँचे मोती की पुड़िया दी। बड़ी कीमत के मोती। और जो सौदा किया था, वह अल्प कीमत का था। वह पुड़िया लेकर घर आये। अरे! यह क्या? इसमें लाखों रुपये की आमदनी। लाखों (रुपये के) मोती। अरे! यह मोती नहीं। अरे! मैंने यह नहीं लिये। अरे रे! वह बेचारा व्यक्ति आया। अरे! भाई! यह मोती का सौदा नहीं किया। भाई! तेरे मोती यह रखे, बापू! लाखों रुपये की आमदनी, हों! यह मोती का अपने सौदा नहीं हुआ। वह मोती लाओ। दे दिये। बहुत नीतिवान जीवन। धर्मी का जीवन कैसा होता है! धर्मी का जीवन कैसा होता है? नैतिक जीवन जिसका। आहाहा! आहाहा! लाखों की आमदनी। बड़ी पुड़िया थी। एक मोती बीस-बीस हजार का होता है। एक-एक बीस हजार का। ऐसी पूरी मोती की पुड़िया हाथ में आयी। नहीं, भाई! नहीं, यह हमारा नहीं। भाई! तू ले जा। वह तो (देखता रह गया), अरे! यह कौन पुरुष है? दैवीपुरुष कौन है यह? जिसने लाखों की आमदनी एक क्षण में मिली, उसे छोड़ देता है। यह कोई दैवीपुरुष है, ऐसा बेचारा प्रसन्न होकर गया। मुम्बई में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आया था। खबर है, हमको सब खबर है। हमने तो सब पढ़ा है न। यहाँ तो पूरी जिन्दगी इसमें निकली है न। (संवत्) १९६५ के वर्ष से हमारा यह धन्धा है। वाँचन, श्रवण। १९६५। कितने वर्ष हुए? ६७ वर्ष हुए। ६० और ७। तब से रात्रि के आहार-पानी का त्याग है। १९६५ के वर्ष से। रात्रि में पानी की बूँद नहीं और आहार का कण नहीं। दुकान पर थे, तब भी हम रात्रि में आहार नहीं लेते थे। धन्धा करते थे। हमारा जीवन तो पहले से ऐसे संस्कार हैं न! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, समकिती को तो धर्म, अर्थ और काम के भाव छोड़कर...

आहाहा! मुनि को तो वे भाव होते ही नहीं। और समकिती को वे भाव होते हैं, परन्तु उसकी रुचि छोड़ दे। वह शुभभाव पंच महाव्रत के परिणाम धर्म हैं और धर्म का कारण है, वह छोड़ दे, वह राग है, आस्रव है। आहाहा! गजब बात है। धर्म, अर्थ, काम तीन आये न? पुण्य और पाप। अर्थ प्राप्त करने का भाव पाप। यह तम्बाकू को रखने का भाव। बीड़ी के बड़े व्यापारी हैं। घर में साठ मोटरें हैं। साठ मोटर। क्या कहलाती है वह? दोनों भाई बुन्देलखण्ड के बादशाह कहलाते हैं। परन्तु नरम, हों! इतने पैसे परन्तु उसका कुछ (नहीं)। हम वहाँ आये थे न! तीन-तीन लाख की धर्मशाला बनायी है। तीन लाख की धर्मशाला लोगों के लिये। तीन लाख की धर्मशाला। हम वहाँ थे। उद्घाटन हुआ था। परन्तु वह तो राग की मन्दता, वह कोई धर्म नहीं। लाखों, करोड़ों के दान देने के भाव हों, वह राग की मन्दता पुण्य है। आहाहा!

यहाँ तो अपने आनन्द का दान दे, वह धर्म है। सम्प्रदान आत्मा में है। आत्मा में एक सम्प्रदान नाम का गुण है। षट्कारक है। सूक्ष्म बातें, बापू! कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, (और अधिकरण) ऐसे छह बोल हैं। सम्प्रदान नाम का आत्मा में एक गुण है। अपनी दृष्टि करके स्थिर होता है तो आनन्द का दान पर्याय में आता है। अतीन्द्रिय आनन्द अपने को लेना और देना। पात्र भी स्वयं और दाता भी स्वयं। आहाहा! यहाँ तो ऐसा है, भगवान! बात तो बहुत सूक्ष्म है, बापू! यह तो जन्म-मरण रहित होने की बात है, भगवान! जिसमें सेठाई और राजाई मिले, वह तो धूल है सब। आहाहा! जिसमें भव का अभाव हो... श्रीमद् यह कहते थे, 'तू क्यों भयंकर भावमरण प्रवाह में चकचूर है?' अरे! प्रभु! शुभ-अशुभभाव मेरे हैं, ऐसा मानने में तेरा मरण होता है। क्षण-क्षण भयंकर भावमरण। देह से छूटना तो दूसरी चीज़ है, परन्तु अन्दर में आनन्द के नाथ को पुण्य-पाप के प्रेम में ले लाना, वह आत्मा की शान्ति का मरण होता है। आहाहा! भावमरण। सोलहवें वर्ष में बनाया। कैलाशचन्दजी! सोलह-सोलह वर्ष देह के। आत्मा को कहाँ वर्ष है? आत्मा तो अनादि-अनन्त है। देह की सोलह वर्ष की उम्र में यह बनाया था। 'तू क्यों भयंकर भावमरण प्रवाह में....' आहाहा!

लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये?
परिवार और कुटुम्ब है क्या वृद्धिनय पर तोलिये,

संसार का बढ़ना अरे नरदेह की यह हार है,
नहीं एक क्षण तुझको अरे इसका विवेक विचार है।

सोलह वर्ष में, कैलाशचन्दजी! है? आहाहा! अभी तो जवान अवस्था फूटती थी। परन्तु पूर्व के संस्कार थे। पहले भगवान के पास थे परन्तु भूल हो गयी थी इसलिए...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा नहीं? क्या कहा? पहले यह कहा, संसार का बढ़ना... 'लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी...' लक्ष्मी बढ़ी, पाँच करोड़ आदि और अधिकार बढ़े। दस-दस हजार, पन्द्रह-पन्द्रह हजार की एक दिन की आमदनी हो, ऐसा अधिकारी हो। 'लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये?' क्या बढ़ा तुझे? यह तो सोजा (सूजन) चढ़ी। 'परिवार और कुटुम्ब है क्या...' परिवार बढ़ा। मेरे परिवार में २०० व्यक्ति, ५०० व्यक्ति हमारे परिवार में। हमारा परिवार इतना। 'परिवार और कुटुम्ब है क्या वृद्धि नय पर तोलिये।' वह बढ़ा नहीं, प्रभु! आहाहा! 'संसार का बढ़ना अरे नरदेह की यह हार है, नहीं एक क्षण तुझको अरे इसका विवेक विचार है।' ऐसा है। पण्डितजी! सोलह वर्ष में पुकार करते हैं। वैरागी थे। पूर्व के संस्कारी थे। क्षयोपशम बहुत था। उस समय उनके जैसा क्षयोपशमवाला दूसरा कोई पुरुष नहीं था।

मुमुक्षु : शतावधानी थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : शतावधानी थे। शतावधानी तो अभी भी होते हैं, वह कोई वस्तु नहीं। परन्तु उनका क्षयोपशम बहुत, बहुत था। शतावधानी तो अभी साधारण भी होते हैं। वह कोई चीज़ नहीं। उन्होंने तो शतावधान किया, बाद में छोड़ दिया कि यह तो मान और इज्जत की बात है। ऐसा करके छोड़ दिया। आहाहा! बहुत ही आत्मार्थी। धन्धा और स्त्री, कुटुम्ब के बीच रहने पर भी अन्तर में, जैसे नारियल में... सूखा नारियल होता है न? अन्दर काचली में होता है। काचली समझते हो? तथापि ऐसे पृथक् रहता है। उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव राग और पर में रहता है, ऐसा दिखने पर भी उससे भिन्न रहता है। आहाहा! समझ में आया? यह नारियल में गड़गड़ नहीं होती? गडगडिया कहते हैं न? खड़कता है। अन्दर पृथक् है। आहाहा!

श्रीमद् को एक बार पूछा। साहेब! आप यह व्यापार-धन्धा करते हो और यह सब करते हो और आप धर्मी? बापू! प्रभु! ऐसा कहा, नारियल में गोला भिन्न रहता है। भाई! हम भिन्न रहते हैं। आहाहा! ऐसा प्रश्न किया था। उनके जीवन की स्थिति बहुत जानते हैं न! हमको तो सबको परिचय है न! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, शिष्य को गुरु कहते हैं। गुरु से शिष्य ने प्रार्थना की, प्रभु! हमको आत्मज्ञान बताओ न। हमारे पास यह एक वस्तु है। हम राग की क्रिया कर-करके अनन्त काल गया, नाथ! परन्तु हमारे जन्म-मरण का अन्त नहीं आया, प्रभु! तो जन्म-मरण का अन्त आवे, ऐसी चीज़—ज्ञान हमको बताओ और वह अल्पकाल में बताओ। हमारी आयुष्य की स्थिति लम्बी नहीं है, अल्प स्थिति है। महाराज! यह मनुष्यदेह आँख मिंच जायेगी तो समाप्त हो जायेगी। तो अल्प काल में हमारे जन्म-मरण मिट जाये, ऐसा बताओ। तो गुरु कहते हैं, सुन, सुन! भाई! आहाहा! तुझमें जो शुभ और अशुभभाव होते हैं (उनसे तू भिन्न है)। शरीर, वाणी, मन, परिवार, वह तो पर है, वह तो कहीं रह गये, समझ में आया? आहाहा!

'**त्रीणि अपि मुक्त्वा**' पुण्य के भाव, लक्ष्मी के भाव, काम के भाव को छोड़कर, **ज्ञान से निज आत्मा को जान।** है? अन्तर की ज्ञानलक्ष्मी से—ज्ञान की दशा से आत्मा को जाने। विकल्प से नहीं, पर से नहीं। शास्त्र के ज्ञान से भी ज्ञात नहीं होता। जगत की विद्वत्ता हो, वह बाहर है, वह आत्मा में नहीं। आहाहा! अन्तर के ज्ञान की जो दशा है, वस्तु जो ज्ञानस्वरूप है, उसकी पर्याय में वर्तमान में विकसित ज्ञान का अंश है, उस ज्ञान की पर्याय को अन्तर में झुकाने से आत्मा ज्ञात होता है। तब उसे धर्म और समकित होता है। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान! क्या कहें?

श्रीमद् एक बार कहते थे। अरे! हमारी यह बात—नाद कौन सुनेगा? क्योंकि गृहस्थाश्रम में थे और सत्य बात तो आयी थी। तो फिर लोग तो बाहर का त्याग देखे तो माने। इसलिए ऐसा कहते थे, अरे रे! हमारी सत्य बात, हमारा नाद कौन सुनेगा? हम तो सत्य कहते हैं परन्तु कौन सुनेगा?

इसी प्रकार यहाँ परमात्मा शिष्य को कहते हैं, प्रभु! हम ऐसी बात तुझे सुनाते हैं। आहाहा! भगवान! तेरी निधि-निधान सच्चिदानन्द प्रभु निधान पड़ा है न तेरी चीज़ में।

आहाहा! उस ज्ञानस्वरूपी भगवान को वर्तमान ज्ञान की परिणति से जान। आहाहा! इसके अतिरिक्त कभी समकित तीन काल में नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? **छोड़कर ज्ञान से...** ज्ञान शब्द से यह शास्त्र का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं। आत्मा का जो ज्ञान अन्दर है, पर्याय-अवस्था, जो राग के विकल्प से रहित, उस ज्ञान की पर्याय से अन्दर जान। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान की अवस्था जो प्रगट अंश है, जानने की दशा, उसके द्वारा जाननेवाले को जान। आहाहा! तो तुझे समकित दर्शन होगा और तेरे जन्म-मरण का अन्त आयेगा। ऐसा है, भगवान! आहाहा! क्या कहें? कहाँ कहें? कौन सुने? बाहर की प्रवृत्ति के प्रेम में पड़े हैं, उन्हें यह बात सुनना ऐसी कठिन लगे, अरे! यह तो अकेली निश्चय-निश्चय की (बातें करते हैं)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक क्षण में नियत काल में आत्मा प्राप्त होता है। अनन्त काल में नहीं हुआ, वह क्षण में प्राप्त होता है और वह साधकदशा भी असंख्य समय में पूर्ण केवलज्ञान हो जाता है। अपना अनुभव होने के बाद असंख्य समय केवलज्ञान प्राप्त करने में लगते हैं। अनन्त समय नहीं। आहाहा! एक पाँच भव या पन्द्रह भव बहुत तो, बस! समाप्त हो जायेगा। केवलज्ञान परमात्मा। अनन्त काल परिभ्रमण में व्यतीत किया। नौवें ग्रैवेयक गया, व्रत लिये, तप किये, मुनिपना लिया वह कैसा? दिगम्बर मुनि। और चमड़ी उतारकर नमक छिंड़के तो भी क्रोध न करे। परन्तु वह सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा!

भगवान अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु का पता लिया नहीं। समझ में आया? आहाहा! 'सहेजे समुद्र उल्लस्यो जेमां रतन तणाणा जाय, पुण्यवान कर वावरे अेनी मोतीअे मुठी भराय।' 'सहेजे समुद्र उल्लस्यो रतन तणाणा जाय, पुण्यवान कर वावरे तो मोतीअे मुठी भराय।' अन्तर में जाये तो उसे आत्मरत्न मिलता है। पापी प्राणी वहाँ मुट्ठी डाले शंख से मुट्ठी भरती है। शंख हाथ में आते हैं, शंख। इसी प्रकार पुण्य की क्रिया और दया, दान की क्रिया हाथ में आवे। ऐसी बात है, भगवान! आहाहा! यह तो आ पड़े हैं कहीं के कहीं, बापू! इस सोनगढ़ के गाँव में पड़े हैं यहाँ तो। मार्ग तो यह है, बापू! आहाहा! क्या कहें? समझ में आया? आहाहा!

भावार्थः—निज शुद्धात्मा ज्ञान के ही गोचर (जानने योग्य) है,... भगवान

शुद्धस्वरूप पवित्र भगवान, वह तो अपनी ज्ञान की दशा से ही गम्य है। है न? गोचर अर्थात् गम्य। आहाहा! गोचर—यह गाय चरती है न? गाय चरती है, वह किस प्रकार? घास चरती है, वह मूल से नहीं उखाड़ती, ऊपर-ऊपर से खाती है। इसलिए गोचर कहते हैं। गाय-गोचर। और गधे का स्वभाव ऐसा है कि मूल से (उखाड़कर खाता है)। फिर उगता नहीं। गाय तो घास चाहे जितना पड़ा हो, खींचती नहीं। ऊपर से खाती है। इसलिए मूल सुरक्षित रहता है। वापस नयी होती है। इससे उसे गोचर कहते हैं। गोचरी। मुनि की गोचरी कहते हैं न? आहाहा! मुनि आहार लेने जाये तो उसके घर में बना हो, स्वयं के लिये नहीं, उसके लिये बनाया हो, उसमें से थोड़ा ले ले ऊपर से। उसके लिये रखकर। यह तो उनके लिये चौका बनावे और ले, तो वस्तु ही कहाँ रही? आहाहा! गध्धाचरी हुई, वह गोचरी नहीं हुई। कैलाशचन्दजी! भगवान! यहाँ तो बात यह है। हमने भी ऐसा किया न, पन्द्रह वर्ष। गोचरी—भिक्षा के लिये जाते थे। निर्दोष लेते थे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चाहे जो हो, अपने तो सत्य की बात चलती है। आहाहा! हम भी भिक्षा के लिये जाते थे न। गृहस्थ लोग थे। रायचन्द गाँधी, पचास हजार की आमदनी उस समय, हों! साठ वर्ष पहले। बड़ा दिनशा का व्यापार। पचास-पचास लोग घर में भोजन करे। आम का रस। केरी समझे? आम। अध मण, दो मण पड़ी हो। हम भिक्षा के लिये जायें। हमारे लिये नहीं बनाया हो। रस देने उठे। खड़े रहो। इसमें गुठली है? गोटली समझे? गुठली। इसमें गुठली है? महाराज! खबर नहीं। छूना नहीं, छूना नहीं, हम नहीं लेंगे। गुठली होती है न? गुठली। उसमें जीव हैं। आम की (गुठली)। अध मण, दो मण रस पड़ा हो। पहले हम पूछें, किसके लिये बनाया है? मेहमान आये हैं, उनके लिये। इसमें गुठली है या नहीं? महाराज! हमको खबर नहीं। छूना नहीं। अन्दर एकेन्द्रिय जीव है। वह रस हम नहीं लेंगे। ऐसी सख्त क्रिया थी। रोवे बेचारे। गृहस्थ लोग, हों! हमारे लिये एकेन्द्रिय जीव मरे... उस समय तो हमारी क्रिया ऐसी थी न! मानी थी। बाद में तो जाना कि यह तो क्रियाकाण्ड है। यह नहीं। समझ में आया? आहाहा! वह तो राग की मन्दता की क्रिया। वह कोई धर्म नहीं। समझे?

यहाँ तो कहते हैं, **निज शुद्धात्मा...** ऐसा लिया है। भगवान का आत्मा नहीं, तीर्थंकर का आत्मा नहीं, वह तो पर है। निज शुद्धात्मा, ऐसे शब्द पड़े हैं, देखो! निज— अपना शुद्ध पवित्र भगवान आनन्दकन्द आत्मा, वह ज्ञान के ही गम्य है। अपनी ज्ञान की निर्मल दशा द्वारा ज्ञात होता है। व्यवहार से ज्ञात नहीं होता, निमित्त से ज्ञात नहीं होता, शास्त्र से ज्ञात नहीं होता, दिव्यध्वनि से ज्ञात नहीं होता। आहाहा! वह तो पहले आ गया है। दिव्यध्वनि से भी आत्मा ज्ञात नहीं होता। मुनियों की वाणी है, उस वाणी द्वारा भी आत्मा ज्ञात नहीं होता। आहाहा! 'शास्त्र दिशा दिखाकर अलग रहे।' शास्त्र दिशा दिखलाये कि देखो भाई! अन्दर आत्मा आनन्द है, वहाँ जा। बस, इतना बतावे। फिर अलग रहे। शास्त्र अन्दर नहीं जाते। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भगवान! इसकी सच्ची दृष्टि होना, वह तो अलौकिक बातें हैं। भले चारित्र न हो।

श्रेणिक राजा, श्रेणिक राजा। चारित्र नहीं था। सम्यग्दर्शन था। आत्मज्ञान हुआ था। हजारों राजा चँवर ढोरते थे। परन्तु एक बार मुनि की असातना की थी। मुनि ध्यान में बैठे थे, नग्न मुनि। एक सर्प मर गया था, (मुनि की) गर्दन में डाला। (राजा श्रेणिक तब) बौद्धधर्मी था। उनके ऊपर (मुनि के ऊपर) डाला और फिर चले गये। करोड़ों चींटियाँ। उनकी (श्रेणिक की) चेलना रानी थी। श्रेणिक राजा की रानी। वह रानी समकिती थी, ज्ञानी थी। चेलना को कहा, तुम्हारे गुरु पर सर्प डाल आया हूँ, अब सर्प निकाल डाला होगा। (रानी कहती है) अन्नदाता! हमारे गुरु ऐसे नहीं होते। अन्नदाता! पतिदेव! ऐसा कहे न? पत्नी पतिदेव रूप से (बुलाती है)। पतिदेव! ऐसा नहीं होता, वह सर्प नहीं निकाला होगा? चलो, कहाँ है? दोनों गये। पति और पत्नी दोनों। मुनि तो ध्यान में—आनन्द में थे। आनन्द... आनन्द... आनन्द। करोड़ों चींटियाँ (शरीर में) छिद्र पड़ गये। माता चेलना रानी ने हाथ ऊँचा करके (कहा) देखो! पतिदेव! इन्होंने निकाला नहीं। यह तो आनन्द के ध्यान में मस्त हैं। इन्हें मुनि कहा जाता है। हें! ओहोहो! महाराज! मुझे धर्म समझाओ, मैं धर्मरहित हूँ। यह चेलना का प्रताप। धर्म सुना, उसी क्षण समकित हो गया। दृष्टि खोलकर अन्दर चले गये। आहाहा! वहाँ ही। उसमें क्या? आत्मा में अन्दर, फिर भगवान के पास समवसरण में गये, वहाँ विकल्प आया, तीर्थंकरगोत्र बँध गया। परन्तु नरक का आयुष्य बँध गया था। मुनि की गर्दन में (सर्प) डाला था न।

नीचे सात नरक हैं। रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुप्रभा (इत्यादि) ऐसे सात नरक नीचे हैं। एक-एक नरक में असंख्य नारकी हैं। यह सब राजा, महाराजा, सेठिया, माँस खानेवालों की वहाँ पार्लियामेन्ट भरती है। सब मरकर नरक में जाते हैं। आहाहा! ऐई! पद्मचन्दजी! आहाहा! वे नरक में गये। आयुष्य बँध गया न! तैंतीस सागर का बंध था। परन्तु जहाँ समकित को प्राप्त हुए, स्थिति तोड़ डाली। चौरासी हजार वर्ष की रही। चौरासी हजार वर्ष। अभी नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष है। श्रेणिक राजा वहाँ निकलकर रानी के गर्भ में (जन्मकर) तीर्थंकर होंगे। आगामी चौबीसी में क्षत्रिय कुल में तीर्थंकर पुत्र होंगे। जैसे महावीरस्वामी भगवान थे, वैसे ही तीर्थंकर होंगे। एक आत्मज्ञान और सम्यग्दर्शन का प्रताप ऐसा है। समझ में आया? लोगों को सम्यक्त्व क्या है, इसकी कीमत नहीं है। वे तो बाहर त्याग करे, यह किया, अब धूल भी नहीं, सुन न! अणगारो मोही... आता है? रत्नकरण्ड श्रावकाचार। अणगार होकर भी राग को धर्म मानता है, व्रत से धर्म मानता है तो मिथ्यादृष्टि संसारी है। और समकिती गृहस्थाश्रम में हो, परन्तु राग से धर्म नहीं, आत्मा के स्वरूप से धर्म है, वह निर्मोही मोक्षमार्ग में है। आहाहा! रत्नकरण्ड श्रावकाचार, समन्तभद्राचार्य। आहाहा! ऐसी बातें हैं, यह तो भगवान! आहाहा! पर्यूषण के दिन हैं, भगवान! आहाहा! कहा?

मतिज्ञानादि पाँच भेदों रहित जो परमात्म शब्द का अर्थ परमपद है... आहाहा! क्या कहते हैं? कि आत्मा जो ज्ञानस्वरूपी त्रिकाल है, वह पुण्य के परिणाम जो दया, दान, व्रतादि से तो भिन्न है परन्तु पर्याय जो पाँच होती हैं, मति, श्रुत, अवधि (मनःपर्यय, केवल) ज्ञान की पाँच दशा, उन पाँच दशा से भी रहित अभेद है। आहाहा! एकरूप ज्ञायकभाव है। है? उसे परमात्मा परमपद कहते हैं। **वही साक्षात् मोक्ष का कारण है,...** आहाहा! समझ में आया?

उस स्वरूप परमात्मा को वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदन ज्ञान के बिना... आहाहा! देखो! आत्मा अन्तर में वीतरागी ज्ञान दशा बिना, वीतरागी निर्विकल्प ज्ञान बिना **दुर्धर तप के करनेवाले भी बहुत से प्राणी नहीं पाते।** महीने-महीने के अपवास करो, पंच महाव्रत पालन करो, हजारों रानियों का त्याग करो, उससे आत्मा प्राप्त नहीं होता। है? वह तो परमात्मा जो अपना स्वरूप भगवान पूर्णानन्द प्रभु... वह भी पूर्ण परमात्मा की

बात बैठती नहीं। भिखारी की भाँति रंक हो गया, रंक। आहाहा! जहाँ पाँच-पच्चीस लाख पैसे (रुपये) मिलें तो मानो हम बादशाह हो गये। एक राजपद मिले तो बादशाह। धूल भी नहीं, सुन तो सही। भिखारी परवस्तु को अपनी माननेवाला अपनी वस्तु को छोड़कर, वह तो भिखारी है—रंक है। शास्त्र में वरांका शब्द है। वरांका, ऐसा शब्द है। वरांका अर्थात् भिखारी—रंक। चैतन्यलक्ष्मी की तुझे खबर नहीं, पूर्णानन्द का नाथ अन्दर पड़ा है, उसकी तो तुझे खबर नहीं और बाहर के पैसे और धूल में चला गया। भिखारी—रंक चार गति में मर जायेगा। यहाँ तो यह बात है। ऐई! पैसे-पैसे की कुछ कीमत नहीं होती, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। मुम्बई में कीमत होगी। नहीं? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, 'वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदन...' यह ज्ञान, हों! दूसरे शास्त्र का ज्ञान और अमुक का ज्ञान और चार अनुयोग का ज्ञान, वह नहीं। परमात्मा अपना स्वरूप वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान बिना **दुर्धर तप के करनेवाले भी बहुत से प्राणी नहीं पाते।** आहाहा! **इसलिए ज्ञान से ही अपना स्वरूप अनुभव कर।** ज्ञान की पर्याय अन्दर लाकर अनुभव कर। विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, भाद्र शुक्ल १४, मंगलवार
दिनांक-०७-०९-१९७६, गाथा-१०७, १०८, प्रवचन-८४

आज दसवाँ दिन है। यह दसलक्षणी पर्व का ब्रह्मचर्य दिन है। ब्रह्मचर्य—ब्रह्म अर्थात् आत्मा का आनन्द, उसमें चरना, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। आहाहा! स्त्री का त्याग, वह तो एक शुभभाव है। यहाँ तो स्त्री लेंगे। संसार के परिभ्रमण के चक्र में स्त्री कारण है, ऐसा बताते हैं। ब्रह्मचर्य का अधिकार है न! निश्चय से तो शुभ-अशुभ जो विकार की परिणति है, वही परस्त्री है। आहाहा! यहाँ वह स्त्री ली है।

जिस प्रकार कुम्भकार का चाक, जमीन के आधार से चलता है, उस चाक की तीक्ष्ण धारा रहती है, उसके ऊपर मिट्टी का पिण्ड भी रहता है तथा वह चाक, नाना प्रकार के कुसूल, स्थास आदि घट के विकारों को करता है, उसी प्रकार संसाररूपी चाक की आधार यह स्त्री है अर्थात् यह स्त्री न होती तो यह जीव, कदापि संसार में भटकता न फिरता। आहाहा!

इस संसाररूपी चाक में अत्यन्त तीक्ष्ण दुःखों का समूह ही धार है अर्थात् संसार में नाना प्रकार के नरकादि दुःखों का सामना करना पड़ता है। इस संसाररूपी चाक के ऊपर नाना प्रकार के जीव ही पिण्ड हैं। यह संसाररूपी चाक, देव-मनुष्यादि नाना प्रकार के विकार धारण कराकर, जीवों को भ्रमण करानेवाला है, अतः स्त्री ही संसार-चक्र की कारण है। इसलिए जो मोक्ष का अभिलाषी मनुष्य, उन स्त्रियों को माता-बहिन-पुत्री के समान मानता है... आहाहा! छोटी, वह पुत्री; अपने समान (हो वह) बहिन; बड़ी हो वह माता। यहाँ तो स्त्री की मुख्यता से कथन है।

जो पुरुष, निरन्तर स्त्रियों के हृदय में प्रीति उपजानेवाले हैं अर्थात् जिनको स्त्रियाँ चाहती हैं,... वे भी लोक में पुण्यवन्त कहलाते हैं। **तथापि जिन मनुष्यों के हृदय में स्त्रियाँ स्वप्न में भी निवास नहीं करती,...** आहाहा! **वे उनसे भी अधिक धन्य हैं तथा उन वीतरागी-पुरुषों के चरण-कमलों को स्त्रियों के प्रिय पात्र, बड़े-बड़े चक्रवर्ती आदि भी सिर झुकाकर नमस्कार करते हैं,...** आहा! यहाँ निश्चय से तो भगवान आत्मा ब्रह्मस्वरूप है। प्रजाब्रह्म। प्रज्ञा अर्थात् ज्ञान और ब्रह्म अर्थात् आनन्द। परन्तु खबर कहाँ

है इस चीज़ की। आत्मा क्या चीज़ है? आत्मा का स्वरूप क्या है? और आत्मा का स्वभाव क्या है? वह स्वभाव तो अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय स्वच्छता, स्वच्छता, ऐसा स्वभाव में पुण्य और पाप के, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव, वे परपरिणति हैं, विभाव परिणति हैं।

यह समयसार नाटक में जुगार (व्यसन) में कहा था न? परपरिणति, वह स्त्री का संग है। जुगार में लिया था न? समयसार नाटक में। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु... अरे! कुछ खबर नहीं होती, आत्मा अर्थात् क्या? आहाहा! यहाँ सर्वज्ञ परमात्मा, जिसने आत्मा पूर्ण प्रगट किया, उन्होंने आत्मा कैसा है, वह कहा और देखा, वह आत्मा तो अतीन्द्रिय ज्ञान की स्वच्छता की मूर्ति है। उसकी वर्तमान पर्याय में पुण्य-पाप के भाव हैं, वह विभाविक विकारीदशा है। उस विकारीदशा में एकता मानना, वह व्यभिचार है। आहाहा! क्यों? कि स्वभाव आनन्द है और पुण्य-पाप के भाव विकार है। उसके साथ एकत्व करना, वह तो व्यभिचार है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! समझ में आया? अन्दर आत्मा ब्रह्म अर्थात् सहजानन्द प्रभु है। अरे! कैसे बैठे? बीड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं, सवेरे चाय न पीवे तो दिमाग ठिकाने रहे नहीं। सवेरे चाय पीकर आया नहीं तो दिमाग ठीक नहीं है, कहता है। सुनने में दिमाग नहीं चलता। आहा! ऐसे तो लक्षण-अपलक्षण। उसे (यह कहना)। आहाहा! सेठ! चाय पीकर आवे, बीड़ी को पीकर आवे तो मगज ठीक रहे सुनने में। व्यसन के यह कहीं ठिकाने हैं।

यहाँ तो परमात्मा सर्वज्ञदेव और सन्त ऐसा कहते हैं, प्रभु! तेरा ब्रह्म अर्थात् आनन्दस्वरूप है न, नाथ! उस आनन्द में लीन होना, आनन्द की रुचि करके, ज्ञान करके उसमें लीन होना, वह ब्रह्मचर्य है कि जिससे भव का अभाव हो जाता है। समझ में आया? निज स्वभाव... यह महिलायें कहाँ जाती है ऊपर? पहले आना चाहिए या बाद में आना? आज तो बड़ा दिन है। मांगलिक दिन है, अनन्त चतुर्दशी है। आहाहा! समझ में आया? आज तो ब्रह्मचर्य दिन गिना है। दसलक्षण है न? तो उत्तम ब्रह्मचर्य यह है। शरीर से स्त्री का सेवन न करना, वह उत्तम ब्रह्मचर्य नहीं, वह तो एक शुभभाव है। आहाहा! उत्तम ब्रह्मचर्य तो आत्मा आनन्द का नाथ सहजानन्दस्वरूप, ऐसे सबका

आत्मा है। आहाहा! उसमें अन्दर में लीन होना, चरना—ब्रह्म अर्थात् आनन्द और चर्य अर्थात् रमना। अरे! यह बात कभी सुनी नहीं। आहाहा!

शुद्ध परिणति आनन्द के नाथ की शुद्ध परिणति प्रगट करना, वह ब्रह्मचर्य है। समझ में आया? बाहर से ब्रह्मचर्य तो अनन्त बार पालन किया, हजारों स्त्रियों का त्याग किया। परन्तु वह तो शुभभाव है, वह कोई चीज़ धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया? पंच महाव्रत के परिणाम हैं, वे भी आस्रव हैं। उनके साथ एकत्वबुद्धि करना, वह व्यभिचार है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं। समझ में आया? कहो, मूलचन्दभाई! ऐसी बात है, बापू! तीन लोक का नाथ अन्दर विराजता है। चैतन्यमूर्ति ज्ञानानन्द सहजानन्दस्वरूप प्रभु। वह सहजानन्द स्वामीनारायण का नहीं, हों! यह भगवान आत्मा ही सहजानन्दस्वरूप अन्दर है। खबर कहाँ? आत्मा की बात कभी सुनी नहीं। समझ में आया? और आत्मा जाने बिना, आत्मा के ज्ञान बिना ज्ञानी नाम धराना और धर्मी नाम धराना, वह सब बिना एक के शून्य हैं। आहाहा! यह ब्रह्मचर्य की बात की। (परमात्मप्रकाश में) कौन सी गाथा आयी? १०७। भावार्थ की चार लाईनें चली हैं।

फिर से, भावार्थ फिर से। **निज शुद्धात्मा...** परन्तु निज आत्मा क्या, उसकी खबर नहीं होती। शरीर की क्रिया करना, या राग करना, दया करना, पूजा करना और भक्ति करना, वह आत्मा। आहाहा! वह तो सब विकल्प और राग है, वह आत्मा नहीं। **निज शुद्धात्मा ज्ञान के ही गोचर (जाननेयोग्य) हैं;...** आहाहा! यह ज्ञान कौन सा? यह शास्त्र का ज्ञान और पर का ज्ञान नहीं। अन्तर ज्ञानस्वभाव को गम्य आत्मा है। पुण्य-पाप की राग की परिणति छोड़कर, आहाहा! अन्तर ज्ञान की निर्मलदशा द्वारा आत्मा गम्य अर्थात् ज्ञात होता है। आहाहा! समझ में आया? **क्योंकि मतिज्ञानादि पाँच भेदों से रहित जो परमात्म शब्द का अर्थ परमपद है...** परमपद प्रभु अन्दर, वह कैसे बैठे? आहाहा! दो बीड़ी, सिगरेट ठीक से पीवे तब पाखाने में दस्त उतरे। इतने तो अपलक्षण। उसे कहना कि तेरा आत्मा परमानन्द है। कैसे बैठे उसे? आहाहा! भगवान! आत्मा वस्तु है या नहीं? तो वस्तु है तो उसका कोई त्रिकाली स्वभाव है या नहीं? जैसे वह त्रिकाली है तो त्रिकाली आत्मा है, ऐसा कोई त्रिकाली स्वभाव है या नहीं? तो त्रिकाली स्वभाव तो उसका अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय स्वच्छता, वीतरागता जिसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा भाववान है, तो उसका भाव क्या? शुभ-अशुभभाव, वह उसका भाव नहीं। वह तो विकारी भाव है। आहाहा! त्रिकाली भाव तो अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता... आहाहा! जिसकी महिमा वाणी द्वारा भी पूरी नहीं आ सकती, ऐसा आत्मा है। उस आत्मा को जाने बिना सब व्यर्थ है। महाव्रत पालन करो और मुनिपना लो, और द्रव्यलिंग अनन्त बार धारण किया, उससे कोई जन्म-मरण मिटे नहीं। चार गति के चक्र में भटकता है। आहाहा! यहाँ यह कहते हैं।

परमपद है, वही साक्षात् मोक्ष का कारण है,... परमात्मा निज स्वरूप, परन्तु कैसे जँचे? अपना माप, तुलना करना आती नहीं। समझ में आया? अपना माप—प्रमाण क्या है, उसकी खबर नहीं। उस प्रमेय का प्रमाता है। भगवान त्रिकाल प्रमेय अर्थात् ज्ञानस्वरूप है, उसका यह प्रमाता—प्रमाण करनेवाला है। पर का प्रमाण करनेवाला नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान भी अनादि से... तीर्थंकर अनन्त हो गये। वे अनन्त तीर्थंकर क्षत्रिय थे। राजकुमार थे। संसार छोड़कर अनन्त आनन्द की दशा प्रगट की। फिर इस जगत को उपदेश दिया। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **उस स्वरूप परमात्मा को वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदन ज्ञान के बिना...** आहाहा! स्वरूप रागरहित भगवान आत्मा है, तो उसकी परिणति अर्थात् पर्याय में—दशा में रागरहित वीतरागी निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान से वह प्राप्त होता है। है? ऐसे **ज्ञान के बिना दुर्धर तप के करनेवाले...** अपवास करो, मुनिपना, बारह व्रत और मुनिधर्म पालन करो, सब मिथ्या है। आहाहा! समझ में आया? आज तो बड़ा दिन है—मांगलिक दिन है और आज मंगलवार है। आज वार भी मंगलवार है। आहाहा!

मांगलिक तो परमात्मा है। मंग अर्थात् सुख और ल अर्थात् लाती। अन्तर में आनन्द की दशा को सुख को प्राप्त करे, वह मांगलिक है। आहाहा! समझ में आया? पाँच-पचास हजार पैदा करे तो (ऐसा कहे), आज हमारे मांगलिक है, बनाओ लापसी। धूल में भी नहीं, सुन न! साठ वर्ष में पुत्र हुआ। बाँझ को पुत्र आया। आज तो बनाओ लापसी। उसमें क्या धूल मांगलिक है? आहाहा! पाँच-पचास लाख का मकान बनाया। वास्तु... वास्तु। आज मांगलिक है। धूल भी मांगलिक नहीं। आहाहा!

अपना आत्मा, मंग अर्थात् पवित्रता, ल अर्थात् लाती। मंगल। अपनी पवित्र दशा

जो अन्दर है, उसे पर्याय में—अवस्था में पवित्रता प्राप्त करना, उसका नाम परमात्मा मांगलिक कहते हैं। दुनिया से विरुद्ध है, भाई! समझ में आया? लाख, दो लाख एक दिन में पैदा करे। बस, आज तो करो मांगलिक, लापसी बनाओ। लापसी कहते हैं? क्या कहते हैं? यह गेहूँ की बनती है न?

मुमुक्षु : खीर।

पूज्य गुरुदेवश्री : खीर नहीं। लापसी बनती है। खीर तो दूध की बनती है। यह तो गेहूँ के आटे की लापसी बनती है न? तुम्हारे क्या कहते हैं? हलुवा भी नहीं। हलुवा तो शीरो। वह तो शीरा को हलुवा कहते हैं। लापसी कहते हैं, इतनी भी खबर नहीं। यहाँ तो कहते हैं, पाँच-दस लाख मिले तो (कहे) बनाओ लापसी। धूल में भी लापसी कहाँ थी! पाप है। आहाहा!

मांगलिक तो चिदानन्द सहजानन्द प्रभु आत्मा... आहाहा! उसमें एकाकार होकर पुण्य-पाप की परिणति को हटाकर, शुद्ध परिणति अरागी वीतरागी प्रगट करे, उसका नाम भगवान मांगलिक कहते हैं। वह मंगल अर्थात् मांगलिक दिन यह है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अमांगलिक है, पाप है। मंगल कैसा? आहाहा!

एक व्यक्ति था, सुना था। हम राजकोट थे न! भाई! वह नहीं? बनिया था न? प्रेमचन्दभाई। म्युनिसीपलटी के एक ऊपरी थे। बहुत वेतन था। श्वेताम्बर मन्दिरमार्गी थे। बारात में गये होंगे। जान समझे? विवाह में। बर्फी खायी। एकदम आया और श्वास बन्द हो गयी। शरीर लट्ठ जैसा, सोने जैसा शरीर, हों! मन्दिरमार्गी श्वेताम्बर। हमारी तो प्रसिद्धि थी, इसलिए (उसे लगा) महाराज गाँव में हैं, बुलाओ महाराजा को। दर्शन करना है। उपाश्रय नजदीक था। गये। और आँख में से आँसू बहते जायें। स्त्री ऊपर बैठी हुई। पूछे। मर जाते हैं न, इसलिए पूछे। परन्तु जाने दे न। क्या पूछना है तुझे? क्या करते हो तुम? उस समय एक पोर्टर आया। रावसाहेब का सरकार की ओर से इलकाब आया। यहाँ मरने की तैयारी। हम वहाँ बैठे थे। मांगलिक सुनाते थे। वहाँ पोर्टर आया। पोर्टर समझे? पुलिस। पटावालो साईकिल लेकर (आया)। भाई! क्या नाम? प्रेमचन्दभाई। उसे राजा साहेब का इलकाब दिया जाता है। यहाँ मरने की तैयारी। अरे! तेरे राजा

साहेब कहाँ गये ? बापू ! आहाहा ! और रोवे। आँख में से आँसू बहते जायें। शरीर ऐसा लट्ठ जैसा। सोने जैसा। दो-तीन दिन विवाह में पकवान खाये न ? पकवान। इसलिए क्या कहलाता है ? डबल निमोनिया हो गया। डबल निमोनिया। महाराज को बुलाओ। मैंने तो मांगलिक सुनाया। उसे आँख में से आँसू बहते जायें। मरने की तैयारी। स्त्री ऊपर बैठी थी। उसके गद्दे पर (बैठी थी)। पूछती थी, इसका क्या ? फिर मर जानेवाले हैं। परन्तु अब मरने दो न, तुम क्या करते हो यह ? बेचारा यहाँ से जाता है। यह तुम पूछ लो। इसका क्या करना ? लड़की का क्या करना ? पैसे का क्या करना ? अब करना हो वह करना, जाने दे न इसे। परन्तु लुटेरे... उसका हो वह हो, हमारे क्या है ? नरक में जाये तो हमारे कहाँ स्नान है ? यहाँ से हमारी सुविधा जाती है, उसे रोते हैं। मरकर कहाँ गया, उसे यह रोते हैं ? हमारी सुविधा (जाती है)। काम करता था, व्यापार-धन्धा करता था, उसे रोते हैं। मरकर ढोर में गया या नरक में गया, कौन पूछते हैं ? ऐई ! आहाहा !

यहाँ कहते हैं, प्रभु ! एक बार आत्मा क्या चीज़ है, उसे तूने कभी सुना नहीं। आहाहा ! भगवान पूर्णानन्द का नाथ पुण्य-पाप के विकल्प से रहित अन्दर है, उसकी दृष्टि करके उसमें लीन होना, यह परमात्मा अर्थात् आत्मा की प्राप्ति का उपाय है। समझ में आया ? यह सब क्रियाकाण्ड आत्मा की प्राप्ति का उपाय नहीं। आहाहा ! है ? **इसलिए ज्ञान से ही अपना स्वरूप अनुभव कर।** आहाहा ! है ? ज्ञान बिना, अपना ज्ञानस्वरूप। यह ज्ञान अर्थात् बाहर का ज्ञान नहीं। चार अनुयोग का ज्ञान किया और अमुक ज्ञान किया और अमुक किया, वह तो सब अज्ञान है, सुन न अब। यहाँ तो आत्मा अन्दर आनन्दकन्द का ज्ञान करना। आहाहा ! उस ज्ञान में अपना आत्मा ज्ञात होता है। **दुर्धर तप के करनेवाले बहुत से प्राणी नहीं पाते। इसलिए ज्ञान से ही अपना स्वरूप अनुभव कर।** प्रभु ! आहाहा !

ऐसा ही कथन श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसारजी में कहा है 'णाणगुणेहिं' इत्यादि। इसका अर्थ यह है कि सम्यग्ज्ञाननामा निज गुण से रहित... आहाहा ! ज्ञान की निर्मल किरण अन्दर है, उस निर्मल ज्ञान द्वारा आत्मा को जानना। उससे **रहित पुरुष इस ब्रह्मपद को बहुत कष्ट करके भी नहीं पाते।** सम्यग्ज्ञान के अनुभव बिना निजगुण से रहित पुरुष **ब्रह्मपद को बहुत कष्ट करके भी...** महाव्रत पालन करे, अपवास करे,

ब्रह्मचर्य पालन करे, दया पाले, मर जाये करके। आहाहा! परन्तु उससे आत्मपद प्राप्त नहीं होता। आहाहा! **जो महान दुर्धर तप करो तो भी नहीं मिलता।** है? दुर्धर तप करे। छह-छह महीने के अपवास (करे), आजीवन शरीर से स्त्री का विषय न ले। उससे क्या हुआ? वह तो शुभराग है। वह कोई चीज़ नहीं। आहाहा! आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करे, बाल ब्रह्मचारी। वह शुभभाव है, धर्म नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, दुःख से छूटना चाहता है। **महान दुर्धर तप करो तो भी नहीं मिलता। इसलिए जो तू दुःख से छूटना चाहता है,...** वह शुभ और अशुभभाव दुःख है, जहर है, कष्ट है। आहाहा! **इसलिए जो तू दुःख से छूटना चाहता है, सिद्धपद की इच्छा रखता है, तो आत्मज्ञान कर निजपद को प्राप्त कर।** आत्मज्ञान कर, ऐसा कहते हैं। भाई! यह ज्ञान अर्थात् शास्त्र का वाँचन किया, वह ज्ञान नहीं। समझ में आया? अनुयोग द्वारा ऐसा है। करणानुयोग में ऐसा है और अमुक योग में ऐसा है। वह ज्ञान नहीं, वह तो परवस्तु है। यहाँ तो आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु का अन्दर में ज्ञान करे। आहाहा! भारी कठिन बात!

अरे! जन्म-मरण करके मर गया अनादि से। आहाहा! चींटी के, कौवे के, कुत्ते के भव कर-करके अनन्त काल हुआ। अनादि से है, कहीं नया है? आत्मा कहीं नया होता है? वह तो अनादि है। तो अनादि से कहाँ रहा? आनन्द में आया? मोक्ष हुआ? आहाहा! चार गति में भटका। आहाहा! प्रभु! तेरे दुःख की बात करते-करते, तूने इतने दुःख भोगे हैं कि देखनेवाले को आँसू बहे। इतने दुःख प्रभु! तूने भोगे हैं। प्रभु! तू भूल गया। समझ में आया? आहा! एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, निगोद, बटाटा / आलू, उसमें जीव है। अन्दर दुःख है, उसमें अनन्त दुःख है। क्योंकि अपनी सम्पत्ति घात हो गयी है। वह एकेन्द्रिय पीपल, नीम के अन्दर जीव है, वे महादुःखी हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! प्याज... डुंगळी कहते हैं न? प्याज। एक टुकड़े में तो असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव हैं। यह लोग जब तेल में उकाले, तेल या घी, एक सेकेण्ड में सब मर जाते हैं। आहाहा! सड़सड़ाट। अनन्त जीव हैं, भाई! तुझे खबर नहीं। तू अन्दर इस प्रकार से था। आहाहा! एक आत्मज्ञान बिना इसने ऐसा परिभ्रमण किया है। समझ में आया?

शास्त्र का ज्ञान किया, नौ पूर्व का, ग्यारह अंग का ज्ञान अनन्त बार किया। एक आचारांग शास्त्र है, उसके अठारह हजार पद हैं। एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक हैं। ऐसे-ऐसे आचारांग, सूयगडांग, ठाणांग, ऐसे ग्यारह अंग का ज्ञान अनन्त बार किया। वह ज्ञान नहीं। आहाहा! अपना भगवान मन और विकल्प से रहित आत्मा का ज्ञान अन्दर करना, वह आत्मज्ञान है। आहाहा! उस ज्ञानस्वरूपी भगवान का ज्ञान करना। भाई! सूक्ष्म बात, प्रभु! चौरासी के अवतार में घाणी में पिल गया है। चौरासी लाख कहते हैं न? यह चौरासी लाख योनि है। एक-एक योनि में अनन्त बार जन्म लिये हैं। यह कहीं नया जन्म नहीं है। आहाहा!

भगवान भव और भव के भावरहित भगवान, आहाहा! भव और भव के भाव रहित प्रभु और अनन्त आनन्दसहित नाथ, आहाहा! उसके सन्मुख होकर, स्वभाव के सन्मुख होकर, पर से विमुख होकर अपना ज्ञान करना, वह आत्मज्ञान है। उसके बिना कभी जन्म-मरण मिटेगा नहीं। समझ में आया? जैसे घाणी में तिल पिलते हैं। तिल... तिल... ऐसे पिलते हैं, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! आहाहा! आनन्द के नाथ को पुण्य-पाप के भाव में तूने कुचल डाला है। आहाहा! अरे! यहाँ तो यह बात है, भगवान! आत्मज्ञान बिना सब शून्य है। आहाहा! यही कहा न? देखो!

तू दुःख से छूटना चाहता है, सिद्धपद की इच्छा रखता है, तो आत्मज्ञान कर निजपद को प्राप्त कर। यहाँ साराँश यह है कि जो धर्म-अर्थ-कामादि सब परद्रव्य की इच्छा को छोड़ता है,... आहाहा! जो कोई दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वह धर्म अर्थात् पुण्य, उसे भी दृष्टि में से छोड़ता है। आहाहा! है? यह तो दया, दान और व्रत पाले, वहाँ धर्म हो गया हमारे। धूल भी नहीं, सुन न! वह तो आस्रव है। धर्म क्या है, इसकी तुझे खबर भी नहीं। व्रत पालो, ब्रह्मचर्य पालो, जीवन में सत्य बोलो, दया पालो। यह तो सब शुभभाव आस्रव है। भगवान तो ज्ञानस्वरूप है। उसमें पालने-फालने का राग कहाँ से आया? समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भगवान! तेरी शक्ति की अन्दर बलिहारी है, नाथ! आहाहा!

'जो पद श्री जिनवर ने जाना ज्ञान में, जो पद श्री जिनवर ने जाना ज्ञान में, उसे न भगवन की वाणी कह सकी।' आहाहा! समझ में आया? घी का स्वाद तो जन्मघूंटी

में... क्या (कहते हैं?) जन्मघूंटी। जन्मघूंटी से घी तो मिला है न? कैसा स्वाद है? कहो। तुम सब खिलौने के व्यापार में बहुत चतुर हो न! घी का स्वाद कैसा है? जन्मघूंटी में मिला है। केले जैसा है? शक्कर जैसा है? गुड़ जैसा है? घी-केला होते हैं। (उसका स्वाद कैसा)? ख्याल में है परन्तु कहा नहीं जा सकता। ऐसा है न? स्वाद कैसा है, यह ख्याल में है, परन्तु जगत की किसी चीज़ के साथ तुलना करके कह सकूँ, ऐसी चीज़ दिखाई नहीं देती। घी जैसी जड़ चीज़ का स्वाद भी आया और ख्याल में है, तथापि कहा नहीं जा सकता, तो भगवान आनन्द का नाथ... आहाहा! जिसने सम्यग्दर्शन में आत्मा के आनन्द का स्वाद लिया... सम्यग्दर्शन अभी चौथा गुणस्थान, आहाहा! कैसा स्वाद है? गूँगे के गुड़ का स्वाद। गूँगा होता है न? उसे गुड़ खिलावे। कैसा स्वाद है? बोल नहीं सकता। आहाहा! इसी प्रकार परमात्मा आत्मा, उनकी निर्विकल्प समकित दृष्टि में क्या स्वाद है, वह अनुभवगम्य है। आहाहा! अनिर्वचनीय है। वचन में क्या आवे? घी जैसे की बात नहीं की जा सकती। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भगवान! एक बार सुन तो सही, नाथ! यह मनुष्यपना मिला, पंचेन्द्रिय हुआ, लम्बा आयुष्य रहा, निरोग शरीर रहा, तूने पुण्य भी किये, परन्तु वह कहीं जन्म-मरण मिटने की चीज़ नहीं है। आहाहा! है? **आत्मज्ञान कर निजपद को प्राप्त कर।** आहाहा! **साराँश यह है कि धर्म...** अर्थात् पुण्य। पंच महाव्रतादि भाव, वह पुण्य। **अर्थ...** अर्थात् पैसा। यह पैसे की इच्छा, वह पाप; काम भोग की इच्छा, वह पाप और धर्म-पुण्य; उस पुण्य की इच्छा, वह पाप। उसकी—पुण्य की इच्छा करना, वह भी पाप है। आहाहा! निश्चय में तो पुण्य को ही पाप कहा है। 'पाप को पाप सब कहे परन्तु अनुभवीजन पुण्य को पाप कहे।' योगसार (दोहा ७१) में आता है। समझ में आया? आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ निर्विकल्प शान्तरस, उसमें से पुण्य का भाव प्रगट होना, वह तो पाप है। अभी तो पुण्य को पाप कहे, वहाँ चिल्लाहट मचाते हैं। हाय.. हाय..! बापू! तेरी चीज़ में यह राग अन्धेरा है। आहाहा! प्रकाश की मूर्ति है न, प्रभु! चैतन्यप्रकाश के नूर का पूर प्रभु! तेरी चीज़ है, खबर नहीं कभी। आहाहा! समझ में आया?

ऐसी चीज़ को **धर्म-अर्थ-कामादि सब परद्रव्य की इच्छा को...** देखो! धर्म को परद्रव्य कहा, भाई! यह पुण्य के भाव, वह परद्रव्य है, अपनी चीज़ नहीं। आहाहा!

पाँच महाव्रत और साधु के अट्ठाईस मूलगुण परद्रव्य हैं, राग है। गजब बात है, बापू! अरे! आहाहा! धर्म अर्थात् पुण्य की क्रियायें, अर्थ अर्थात् पैसे की इच्छायें, कामभोग की भावना सभी परद्रव्य की इच्छा है, उसे **छोड़ता है, वही निज शुद्धात्मसुखरूप अमृत में तृप्त हुआ...** आहाहा! निज शुद्धात्मसुखरूप अमृत। वह पुण्य और पाप के भाव दुःखरूप हैं। आहाहा! उनकी दृष्टि छोड़कर भगवान अन्दर चिदानन्द प्रभु है, उसकी दृष्टि कर। आहाहा! **निज शुद्धात्मसुखरूप अमृत...** आहाहा! जैसे ब्राह्मण चूरमा बहुत खाता है और चूरमा में भी क्या कहलाता है? भूल गये। थेपली... थेपली। यह हमारा एक मित्र था, वह थेपली कहता था। मित्र कहे, थेपली खाईये। थेपली अर्थात् क्या? अपने लड्डू बाँधते हैं, ऐसा नहीं, खुला चूरमा रखे। वड के पान का क्या कहलाता है वह? पतरावली। ब्राह्मण को पतरावली में खुला चूरमा दे। ऊपर से घी ऐसे डाले। लड्डू बाँधकर नहीं, उसमें तो घी मर्यादित हो जाता है। यह तो पहले छोटी उम्र में सुना था। हम उमराला में थे न! हमारा एक मित्र वहाँ धोळा जीमने गया था। यहाँ धोळा जंक्शन है न? क्या खाया? थेपली खायी। थेपली और क्या? अपने बनिया को कुछ खबर नहीं। पतरावली में खुला चूरमा दे। पाव सेर। फिर बोघरणुं भरकर घी हो। बोघरणुं समझे? तपेली। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, थेपली क्या है? आत्मा में आनन्द की अवस्था प्रगट करना, वह थेपली है। चूरमा, वह तो धूल है, विष्टा है-विष्टा होगी। छह घण्टे बाद उस चूरमा की विष्टा होगी। आहाहा! यह तो निज शुद्धात्मस्वरूप अमृत। आहाहा! **तृप्त हुआ...** जैसे वह थेपली खाकर तृप्त होता है। उसमें उस समय तो अपने यह अरबी के पत्ते होते हैं न? पतरवेलिया—अरबी के होते हैं न? अरबी नहीं होती? अरबी के बड़े पत्ते होते हैं। फिर चने का आटा (बेसन) चढ़ाकर, टुकड़े करके तलते हैं। अरबी के—पतरवेलिया (के पत्ते के भुजिया) और थेपली। ब्राह्मण खाये और फिर चल न सके। आहा! यह पाठ है, हों! समयसार में पाठ है। मंथर, ऐसा पाठ है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! शुभ-अशुभ विकल्प की दृष्टि छोड़कर अन्दर निज तृप्त भगवान अमृतस्वरूप की तृप्ति अन्दर प्रगट हुई, आहाहा! उस अमृत से तृप्त हुआ। यह अमृत से तृप्त हुआ। आहाहा! **सिद्धान्त में परिग्रह रहित कहा जाता है,...**

उस जीव को परिग्रह अर्थात् पर की ममता रहित कहा जाता है। आहाहा! है? **और निर्ग्रन्थ कहा जाता है,...** आहाहा! **और वही अपने आत्मा को जानता है। ऐसे ही समयसार में कहा है 'अपरिग्गहो' इत्यादि। इसका अर्थ ऐसा है कि निज सिद्धान्त में परिग्रह रहित और इच्छा रहित ज्ञानी कहा गया है,...** धर्मी को तो परिग्रह की इच्छा नहीं और पुण्य की इच्छा नहीं। है? परिग्रह रहित और इच्छा रहित ज्ञानी **धर्म को भी नहीं चाहता है,...** आहाहा! वह महाव्रत के परिणाम और दया, दान के परिणाम को भी धर्मी-समकिती नहीं चाहता। आहाहा! ऐसी बात कठिन पड़े लोगों को। कभी दरकार की नहीं। मजदूरी कर-करके... ऐ... हसमुखभाई! यह सब मजदूर तुम बड़े, नहीं? पैसे के मजदूर। सच्चा होगा? वहाँ तो तुमको बड़ा सेठ... सेठ कहते हैं। आहाहा!

एक हमारे थे वे। जेठा बैठ न हेठा। ऐसा कहते थे। चूडा में एक थे। भाई को खबर नहीं होगी। छोटाभाई को। कैसे? नाम भूल गये। वृद्ध थे न? बुजुर्ग-वृद्ध। भूल गये, बहुत वर्ष हुए। वे बहुत कड़क थे। फिर एक जेठमलजी क्षत्रिय थे। उन्होंने दीक्षा ली थी। उनका कुछ ठिकाना नहीं। खाटडी के। खबर है न? मिले थे। वहाँ मर गये। यह फिर वे थे रायचन्दभाई। रायचन्दभाई एक बुजुर्ग-वृद्ध थे। वे आवे तो खड़े न हो। क्योंकि बिना ठिकाने के साधु। वस्त्र इतने, परन्तु क्रिया का कोई ठिकाना नहीं। फिर खड़े न हों। क्यों खड़े नहीं होते? जेठी बैठ न हेठी, फिर ऐसा कहे। यह चूडा में बनता था। चूडा। यह तो बहुत वर्ष की बात है। (संवत्) १९७१ में पहली बार चूडा गये थे। १९७० में दीक्षा ली। १९७१ में गये। रायचन्द दोशी थे। उनका नाम रायचन्द दोशी। आहाहा!

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे रायचन्द दोशी थे। एक व्यक्ति था। फिर एक साधु थे। उनके साधुपने का ठिकाना नहीं था। खाटडी के राजपूत थे। बुजुर्ग ऐसे कड़क थे कि साधुपना न हो तो उसे माने नहीं। साधु ने उपाश्रय में प्रवेश किया तो कहे, उठो सब। रायचन्द दोशी उठते नहीं। अरे! जेठी बैठ न हेठी। उनका नाम जेठीमल था। खाटडी के राजपूत थे। ऐसा कि खड़े क्यों करते हो? तुम्हारे में है क्या? साधुपना कहाँ है? स्थानकवासी थे। खबर है न! यहाँ तो ६३ वर्ष तो दीक्षा लिये हुए हो गये। ६३ वर्ष तो

दीक्षा को हुए। दुकान छोड़े हुए। शरीर को ८७ चलता है। ८० और ७। बहुत देखा और बहुत जाना। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, तू तेरी चीज़ के भान बिना जो पुण्य की क्रिया में बड़ा मानता है, तो नीचे उतर जायेगा। चार गति में नीचे चला जायेगा। भगवान आत्मा पुण्य और पाप के परिणाम से रहित है, ऐसे शुद्धात्मा के अमृत की तृप्ति प्रगट नहीं की, वह चार गति में भटकनेवाले हैं। चाहे तो दिगम्बर साधु हो और चाहे तो पंच महाव्रत पालता हो। समझ में आया? आहाहा! यह कहते हैं, देखो!

जो धर्म को भी नहीं चाहता है,... धर्म शब्द से पुण्य। आहाहा! यह समयसार की गाथा है। जिसे पंच महाव्रत के परिणाम आते हैं, उसे समकिती इच्छते नहीं। यह नहीं, यह नहीं, मैं तो आनन्दकन्द प्रभु हूँ। आहाहा! बात कभी सुनी नहीं। बाहर में क्रियाकाण्ड थोड़ी की, इसलिए हो गये साधु। आहाहा! कहते हैं, समकिती धर्मी जीव **धर्म को भी नहीं चाहता है, अर्थात् जिसके व्यवहारधर्म की भी कामना नहीं है,...** है? आहाहा! **जिसके व्यवहारधर्म की भी कामना नहीं है,...** पाप की तो नहीं... आहाहा! व्यवहार धर्म—पुण्य (उसकी भी भावना नहीं)। पाँच समिति, तीन गुप्ति, निर्दोष आहार लेना आदि सब भाव शुभभाव है। आहाहा! उसे भी नहीं चाहता। **व्यवहारधर्म की भी कामना नहीं है,...** उसे आत्मा का ज्ञान होता है। परन्तु जिसे व्यवहारधर्म की कामना है, उसे आत्मज्ञान नहीं होता। ऐसी बात है, भाई! अरेरे!

उसके अर्थ तथा काम की इच्छा कहाँ से होवे? जिसे व्यवहारधर्म की इच्छा नहीं, ऐसा कहते हैं। उसे अर्थ और काम की इच्छा कहाँ से होवे? पैसा, धूल और भोग। आहाहा! धर्म, अर्थ और काम तीन आये न? तो धर्म अर्थात् पुण्य परिणाम। अर्थ अर्थात् पैसा कमाने का भाव पाप, भोग के भाव पाप। जिसे पुण्य की भी इच्छा नहीं, उसे अर्थ और काम की इच्छा कैसे होगी? आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती था। छह खण्ड का राज। छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ गाँव, बहत्तर हजार नगर, अड़तालीस हजार पाटण। परन्तु अकेला पाप... पाप... पाप। वह मरते समय हीरा के... क्या कहलाता है? हीरा का पलंग। सोलह हजार देव खड़े थे। चक्रवर्ती राजा। स्त्री के प्रति प्रेम। उसकी छियानवें हजार स्त्रियाँ थीं। उनमें

एक स्त्री की एक हजार देव सेवा करे। उसे चक्रवर्ती राजा कहा जाता है। चक्रवर्ती अभी यहाँ नहीं है, महाविदेह में है। महाविदेह में क्षत्रिय चक्रवर्ती राजा है। अपने शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ हुए न? चौबीस तीर्थंकर में ये तीन चक्रवर्ती थे। चक्रवर्ती थे, कामदेव थे, तीर्थंकर थे। सोलहवें शान्तिनाथ, (१७वें) कुन्थुनाथ, (१८वें) अरनाथ। वे तो मोक्षगामी जीव। आहाहा! जो तीन ज्ञान लेकर तो यहाँ माता के गर्भ में आये। अनुभव समकित लेकर आये। इस भव में सब छोड़कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में चले गये।

वह ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती मरते हुए... आहाहा! छियानवें हजार स्त्रियाँ, सोलह हजार देव सेवा करे। कुरुमति... कुरुमति करके सातवें नरक में गया। अभी सात नरक नीचे है। सात पाताल हैं। रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा (इत्यादि) ऐसे सात नरक हैं। पहले नरक में कम से कम (आयु) स्थिति दस हजार वर्ष की है। साधारण माँस आदि खाता हो, वह थोड़ी स्थिति में जाता है। बहुत माँस और परस्त्री का सेवन और अधर्म (किया हो), वह नीचे नरक में जाता है। नीचे सातवाँ नरक है। जिसमें ३३ सागर की स्थिति है। एक सागरोपम में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम जाते हैं, एक पल्य में असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। वहाँ अनन्त बार गया। भूल गया है। जन्मा तो ऊंहा... ऊंहा। यह वहाँ और हम यहाँ, हमारे कुछ नहीं होता। आहाहा! उस नरक में, भाई! ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती, हों! आहाहा! देव सेवा करते खड़े रहे। नरक का आयुष्य बाँधा हुआ। महापाप। बड़ा राजा क्षत्रिय। आहाहा! कुरुमति, कुरुमति ऐसा करके देह छूट गया। सातवें पाताल में अभी है। सातवें नरक और वह भी अपरिठाणे नरक में है। सातवें नरक में बड़े पाँच पासडा है। नरक अर्थात् यह विष्टा नहीं, हों! नरक गति है। आहाहा! बापू! वहाँ अनन्त बार गया। प्रभु! तुझे खबर नहीं, आहाहा! वह मरकर नरक में (गया)। अभी तो थोड़े वर्ष हुए। अभी तो असंख्य अरब वर्ष वहाँ रहेगा। आहाहा! वह चक्रवर्ती छह खण्ड का राजा...

मुझे तो दूसरा कहना था। उसका ७०० वर्ष का आयुष्य था। कितने? ७००। तो ७०० वर्ष में जितने श्वास ले, उस एक-एक श्वास में नरक का आयुष्य... कितना कहा? ग्यारह लाख छप्पन हजार (नौ सौ पिचहत्तर) पल्योपम। भाई! तुमको खबर नहीं। एक श्वास में कल्पना का सुख भोगा। उसमें एक श्वास में सुख के दुःखरूप से

ग्यारह लाख पल्योपम। एक पल्य में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं, इतना ग्यारह लाख पल्योपम का दुःख भोगता है। एक श्वास में इतना, ७०० वर्ष का इतना गुना हुआ। परन्तु लोगों को कहाँ खबर है। ब्याज निकालना हो तो चक्रवर्ती ब्याज निकाले। क्या समझे? ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती। ७०० वर्ष यहाँ रहा। उसमें जितने श्वास रहे, एक श्वास ग्यारह लाख पल्योपम का नरक का दुःख हुआ। एक बार कहा था, मुझे बहुत याद नहीं रहे, परन्तु कहा था। भाई को याद है। धनजीभाई को। ग्यारह लाख छप्पन हजार नौ सौ पिचहत्तर। इतने पल्योपम। एक पल्य में असंख्य अरब (वर्ष) जाते हैं। एक पल्य के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। कहाँ सुना है? अनन्त काल हुआ। अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... कहीं अन्त नहीं। उसमें तो इतने वर्ष असंख्य हैं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो मार्ग यह है, भाई बापू! यह तो वस्तु का धर्म ऐसा है। यह तो आत्मधर्म की बात है। जिसे तीर्थंकरों ने (कहा)। सर्वज्ञ परमेश्वर महा छह खण्ड के राजा, राजा महाराजा चक्रवर्ती क्षत्रिय, हों! जिनके शरीर के तेज सूर्य के तेज से भी अधिक। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ चक्रवर्ती—तीर्थंकर थे। जिनका तेज, हजारों सूर्य के तेज से भी उनके शरीर का तेज विशेष था। यह मुनिपना लेकर आत्म आनन्द में रहे... वह आनन्द में रहना, वह मुनिपना है। यह अकेली क्रिया, वह मुनिपना है ही नहीं, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! वह केवलज्ञान प्राप्त कर अनन्त मोक्ष पधारे। समझ में आया? और वह मोक्ष पधारने से पहले वाणी द्वारा, दिव्यध्वनि द्वारा जगत को सन्देश दिया कि मोक्षमार्ग यह है और इस मोक्षमार्ग से हम मोक्ष प्राप्त करते हैं। तुम्हें मोक्ष चाहिए हो, दुःख से मुक्त होना हो... है न? आया न? पहले आया था।

व्यवहारधर्म की भी कामना नहीं है, उसके अर्थ तथा काम की इच्छा कहाँ से होवे? वह आत्मज्ञानी सब अभिलाषाओं से रहित है,... आहाहा! सम्यग्दृष्टि को तो राग की इच्छा नहीं, जिसे पुण्य की इच्छा नहीं। आहाहा! पाप की इच्छा तो कहाँ से होगी? आहाहा! उसकी भावना तो भगवान आनन्दस्वरूप की ओर है। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु है। आहाहा! अरे! कहाँ जँचे? इसे बीड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं। अब ऐसे लक्षण के पार नहीं। उसे कहना कि तेरा स्वरूप अनन्त आनन्द का है। किस माप से माप करे? आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! तू कौन है? अन्दर आत्मा वस्तु है, पदार्थ है, तत्त्व है। उस तत्त्व में अनन्त आनन्द भरा है। अनन्त अतीन्द्रिय

ज्ञान, अनन्त अतीन्द्रिय सुख, अनन्त अतीन्द्रिय स्वच्छता, निरोगता। अनन्त... अनन्त... अनन्त प्रभुता, ऐसा प्रभु आत्मा... आहाहा! जिसे प्राप्त हुआ, समकिती को व्यवहारधर्म की इच्छा नहीं। आहाहा! **वह आत्मज्ञानी सब अभिलाषाओं से रहित है, जिसके धर्म का भी परिग्रह नहीं है,...** धर्म शब्द से पुण्य। व्यवहार महाव्रतादि। उसका परिग्रह नहीं, पकड़ नहीं तो अन्य परिग्रह कहाँ से होगा? समझ में आया? उन मुनि को वस्त्र हो और पात्र हो, (यह तो होगा ही कहाँ से?) जिसे पुण्य की भी इच्छा नहीं, ऐसी निर्ग्रन्थदशा प्रगट हुई है।

निश्चय से तो... जरा सूक्ष्म बात है। सम्यग्दृष्टि है न? चौथे गुणस्थान में। उसने भी राग और स्वभाव की एकता की जड़ तोड़ डाली है, गाँठ तोड़ डाली है। राग और स्वभाव एक, यह गाँठ तोड़ डाली है, इतना तो वह निर्ग्रन्थ हुआ है। चाहे तो दया, दान, व्रत का विकल्प हो, परन्तु वह राग है। उससे भिन्न पड़कर अपने ज्ञान में राग से भिन्न हो गया है। इतनी ग्रन्थि को तोड़ डाला है। ग्रन्थि तोड़ डाली, इतना निर्ग्रन्थ हुआ है। चौथे गुणस्थान में। आहाहा!

श्रीमद् भी एक बार कहते हैं। भाई! श्रीमद् में आता है एक बार। अरे! हम निर्ग्रन्थ। इस अपेक्षा से निर्ग्रन्थ, हों! जितनी राग की एकता टूट गयी, उतना आनन्दकन्द आया। निर्ग्रन्थदशा में यह उपाधि क्या है? ऐसा कहते थे। व्यापार था न जवाहरात का! ऐसा आता है। खबर है?

मुमुक्षु : निर्ग्रन्थ भाव से और गृहस्थ वेश में....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। निर्ग्रन्थ भाव से और गृहस्थ वेश में, मिलान कहाँ खाये? गृहस्थ वेश में ऐसा आया है। खबर है। श्रीमद् की दशा तो बहुत ऊँची हो गयी थी। गृहस्थाश्रम में थे। अन्दर राग से भिन्न पड़कर आनन्दकन्द का आत्मज्ञान हुआ था। आहाहा! गृहस्थ वेश में और निर्ग्रन्थ भाव से। ऐसा उसमें लिखा है। निर्ग्रन्थ यह। जितने दया, दान के विकल्प से भिन्न पड़कर आत्मा का ज्ञान हुआ, उतना वह निर्ग्रन्थ हुआ। ग्रन्थ अर्थात् राग में से निकल गये। आहा! मुनि जो हैं, छठवाँ गुणस्थान, वह तो गजब दशा, बापू! ओहोहो! जिसे गणधर नमस्कार करे। णमो लोए सव्व साहूणं। चार ज्ञान और चौदह पूर्व के धारक, चार ज्ञान और चौदह पूर्व की रचना अन्तर्मुहूर्त में

करनेवाले गणधर सन्त, उन सन्तों को नमस्कार करे, वे सन्त कैसे होंगे ?! जिसके चरण में गणधर का नमस्कार पहुँचे। आहा! ऐई! कैलाशचन्दजी! हृदय कोमल है। बात ऐसी है, भगवान! हों! आहाहा! णमो लोए सव्व साहूणं। गणधर भी। वे साधु कैसे होंगे ? जो आनन्द की दशा में झूलते हों। पुण्य की भी जिन्हें इच्छा नहीं। आनन्द की ही मात्र भावना है और तीन कषाय का अभाव है। आहाहा! अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरणी, प्रत्याख्यानावरणी का तो जिसे नाश हो गया है। एक संज्वलन का लोभ महाव्रतादि का विकल्प रहा है, उसकी भी इच्छा नहीं। उसके भी ज्ञाता हैं। ऐसे सन्त को गणधर कहते हैं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। णमो लोए त्रिकालवर्ती सव्व साहूणं। तीनों काल में वर्तनेवाले ऐसे सन्त को मैं तीर्थंकर का वजीर / दीवान / गणधर—तीर्थंकर राजा तो गणधर दीवान, कैलाशचन्दजी! यहाँ तो भाषा ऐसी है, वह दीवान नमस्कार करते हैं। आहाहा! बापू! वह पद बहुत ऊँचा है। आहाहा!

यह कहते हैं, **जिसके धर्म का भी परिग्रह नहीं है,...** पुण्य की भी इच्छा नहीं। भाव आवे, परन्तु भावना नहीं। **अन्य परिग्रह कहाँ से हो ?** वस्त्र और पात्र रखे, वह मुनिपना नहीं। आहाहा! समझ में आया ? वस्त्र-पात्र हो और मुनिपना मानना, निगोदगामी है। ऐसा लिखा है। वस्त्र, पात्र रखना और मुनि हैं, ऐसा मानना, मुनि मनवाना, निगोदं गच्छई। ऐसा पाठ है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, निगोद में जायेगा। शकरकन्द, आलू में जायेगा। इतनी विराधना, तुझे तत्त्व की खबर नहीं। मुनिपने की दशा में क्या होता है, उसकी तुझे खबर नहीं। समकित की दशा में क्या होता है, उसकी खबर नहीं तो तुझे मुनिपने में क्या होता है, इसकी तुझे खबर नहीं। और वस्त्र-पात्र लेकर हम साधु हैं, (ऐसा माने)। वस्त्र, पात्र छोड़कर भी जिसे पुण्य की इच्छा है, वह तो वस्त्र-पात्र छोड़ा हो तो भी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? यहाँ यह कहते हैं, हों!

जिसके धर्म का भी परिग्रह नहीं है, तो अन्य परिग्रह कहाँ से हो ? इसलिए वह ज्ञानी परिग्रही नहीं है,... धर्मी को राग का भी परिग्रह—पकड़ नहीं है। आहाहा! राग आता है, उसका भी जाननेवाला है। अपना मानकर राग को पकड़ता है, ऐसा नहीं। **केवल निजस्वरूप का जाननेवाला ही रहता है।** लो! समकिती तो केवल एक निज स्वरूप भगवान परमानन्द की मूर्ति प्रभु, उसे जाननेवाला होता है। उसे समकिती और ज्ञानी कहा जाता है। आहाहा!

गाथा - १०८

अथ –

१०८) णाणिय णाणिउ णाणिएण णाणिउँ जा ण मुणेहि।
ता अण्णाणिं णाणमउँ किं पर बंभु लहेहि।।१०८।।

ज्ञानिन् ज्ञानी ज्ञानिना ज्ञानिनं यावत् न मन्यस्व।
तावद् अज्ञानेन ज्ञानमयं किं परं ब्रह्म लभसे।।१०८।।

णाणिय हे ज्ञानिन् णाणिउ ज्ञानी निजात्मा णाणिएण ज्ञानिना निजात्मना करणभूतेन। कथंभूतो निजात्मा। णाणिउ ज्ञानी ज्ञानलक्षणः तमित्थंभूतमात्मानं जा ण मुणेहि यावत्कालं न जानासि ता अण्णाणिं णाणमउं तावत्कालमज्ञानेन मिथ्यात्वरागादिविकल्पजालेन ज्ञानमयम्। किं पर बंभु लहेहि किं परमुत्कृष्टं ब्रह्मस्वभावं लभसे किं तु नैवेति। तद्यथा। यावत्कालमात्मा कर्ता आत्मानं कर्मतापन्नम् आत्मना करणभूतेन आत्मने निमित्तं आत्मनः सकाशात् आत्मनि स्थितं समस्तरागादिविकल्पजालं मुक्त्वा न जानासि तावत्कालं परमब्रह्मशब्दवाच्यं निर्दोषि–परमात्मानं किं लभसे नैवेति भावार्थः।।१०८।। इति सूत्रचतुष्टयेनान्तरस्थले ज्ञानव्याख्यानं गतम्।

आगे ज्ञान से ही परब्रह्म की प्राप्ति होती है, ऐसा कहते हैं –

निज को ज्ञानमयी बुधजन यदि ज्ञान कला से नहिं जाने।
तो अज्ञान भाव से वे निज परम ब्रह्म को नहिं जाने।।१०८।।

अन्वयार्थ :– [ज्ञानिन्] हे ज्ञानी [ज्ञानी] ज्ञानवान् अपना आत्मा [ज्ञानीना] सम्यग्ज्ञान करके [ज्ञानिनं] ज्ञान लक्षणवाले आत्मा को [यावत्] जब तक [न] नहीं [जानासि] जानता, [तावद्] तब तक [अज्ञानेन] अज्ञानी होने से [ज्ञानमयं] ज्ञानमय [परं ब्रह्म] अपने स्वरूप को [किं लभसे] क्या पा सकता है ? कभी नहीं पा सकता। जो कोई आत्मा को पाता है, तो ज्ञान से ही पा सकता है।

भावार्थ :– जब तक यह जीव अपने को आपकर अपनी प्राप्ति के लिये आपसे अपने में तिष्ठता नहीं जान ले, तब तक निर्दोष शुद्ध परमात्मा सिद्धपरमेष्ठी को क्या पा सकता है ? कभी नहीं पा सकता। जो आत्मा को जानता है, वही परमात्मा को जानता है।।१०८।।

गाथा-१०८ पर प्रवचन

अब १०८। **आगे ज्ञान से ही परब्रह्म की प्राप्ति होती है, ऐसा कहते हैं**—सम्यक् अन्तर ज्ञान से आत्मा प्राप्त होता है। यह बाहर की ज्ञान की बात नहीं। अन्तर ज्ञान की जो निर्मल परिणति, उस परिणति द्वारा आत्मा ज्ञात होता है, वह ज्ञान। आहाहा!

१०८) णाणिय णाणिउ णाणिएण णाणिउँ जा ण मुणेहि।
ता अण्णाणिं णाणमउँ किं पर बंभु लहेहि॥१०८॥

अन्वयार्थः—हे ज्ञानी! ज्ञानवान अपना आत्मा... कर्ता। अब छह कर्ता (कारक) उतारते हैं। छह विभक्ति आती है न? कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। विद्यालय में चौथी कक्षा में आता था। ज्ञानवान अपना ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा, वह कर्ता। **सम्यग्ज्ञान करके...** यह करण। अपना सम्यग्ज्ञान, वह करण अर्थात् साधन। आहाहा! दया, दान, व्रत, वह साधन नहीं। आहाहा! है? **ज्ञानवान अपना आत्मा...** वह कर्ता। **सम्यग्ज्ञान करके...** वह करण। **ज्ञान लक्षणवाले...** वह कर्म। पहला करण था, यह कर्म। कर्म अर्थात् कार्य। **ज्ञानलक्षणवाले आत्मा को...** आहाहा! जानना-देखना, वह आत्मा का कार्य है। राग और पुण्य, वह आत्मा का कार्य नहीं। आहाहा! तो पर का कार्य तो कैसे करे? आहाहा! शरीर के, वाणी के... **जब तक नहीं जानता...** इस प्रकार आत्मा को न जाने **तब तक अज्ञानी होने से ज्ञानमय अपने स्वरूप को क्या पा सकता है?** अपनी ज्ञान की पर्याय द्वारा ज्ञाता कर्ता होकर, ज्ञान का साधन करके, ज्ञान को प्राप्त नहीं करता, तब तक आत्मा प्राप्त हो सकता है? **कभी नहीं पा सकता। जो कोई आत्मा को पाता है, तो ज्ञान से ही पा सकता है।** जिस किसी को अनुभव में आत्मा प्राप्त होता है, वह अन्तर की ज्ञानदशा से मिलता है, दूसरे उपाय से मिलता नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, भाद्र कृष्ण १, गुरुवार
दिनांक-०९-०९-१९७६, गाथा-१०८, १०९, प्रवचन-८५

परमात्मप्रकाश, १०८ गाथा का भावार्थ है। सूक्ष्म विषय है। **जब तक यह जीव...** भावार्थ में जीव लिया। पाठ में ज्ञानी लिया है। ज्ञानस्वरूप। क्यों?—कि भगवान आत्मा जीव ज्ञानस्वरूप है। शास्त्रज्ञान या वह ज्ञान नहीं। वह ज्ञानस्वरूप, ज्ञातास्वरूप, ज्ञायकस्वरूप वह आत्मा है। पाठ में तो ऐसा लिया है कि ज्ञानी, हे ज्ञानी। ज्ञान से ज्ञान को ज्ञान में जान। आहाहा! यहाँ यह कहते हैं।

हे जीव! **जब तक यह जीव...** ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा, उसमें तो पुण्य-पाप के विकल्प, महाव्रतादि के, वे भी उसमें है नहीं, वे तो विकार हैं। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि तू परमात्म ज्ञानस्वरूपी आत्मा है। तो वह जीव अर्थात् ज्ञानस्वरूपी भगवान, वह जीव, वह कर्ता। छह विभक्ति है। जीव ज्ञानस्वरूप भगवान कर्ता। किसका? अपनी निर्मल वीतरागी पर्याय का कर्ता। वह व्यवहार जो पंच महाव्रत आदि पाँच समिति, वह व्यवहाररत्नत्रय, व्यवहारधर्म, वह आत्मा के ज्ञान की पर्याय का कर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो कल १०७ में आया था न? १०७ में आ गया था।

मुमुक्षु : आज तो गुजराती में चलेगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : दिक्कत नहीं। यह कैलाशचन्दजी यहाँ है न! सेठ का पक्ष है। क्या कहते हैं? समझे।

जिसके व्यवहारधर्म की भी कामना नहीं है,... १०७। है? प्रवीणभाई! १०७। आहाहा! धर्मी जीव उसे कहते हैं... आहाहा! जिसे व्यवहारधर्म जो दया, दान, व्रत, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, शास्त्र पठन, ऐसे व्यवहार धर्म की भी उसे कामना नहीं। आहाहा! होता है, परन्तु उसकी कामना नहीं, उसकी भावना नहीं। आहाहा! समझ में आया? अभी तो उस व्यवहार का ठिकाना नहीं, ऐसे महाव्रत और वह सब धर्म मान लिया है। यहाँ तो व्यवहारधर्म बराबर सच्चा हो तो भी धर्मी को उसकी कामना-वांछा नहीं। आहाहा! क्योंकि वह राग है, विकार है, आहाहा! भगवान अपना जीव अर्थात्

ज्ञानी अर्थात् ज्ञानवान। अर्थ में है न पहला? **हे ज्ञानी! ज्ञानवान अपना आत्मा...** अर्थ है। मूल पाठ में यह है। ज्ञानवान। जाननस्वभाव वह जीव। यह जाननस्वभाव, जीव, वह कर्ता। किसका? अपना। अपने ज्ञानरूपी कार्य का कर्ता। आहाहा! समझ में आया? वह कर्म है। कर्म अर्थात् कार्य। सूक्ष्म बात है, भगवान!

ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा अपना ज्ञानरूपी, आनन्द और ज्ञानरूपी कार्य का वह कर्ता है। समझ में आया? वह भगवान ज्ञानस्वरूपी पुण्य-पाप, व्यवहाररत्नत्रय का भी कर्ता नहीं और व्यवहाररत्नत्रय उसका कार्य नहीं और ज्ञानस्वरूपी कार्य, वह व्यवहाररत्नत्रय का (कार्य) नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! समझ में आया? वह जीव अर्थात् ज्ञानस्वरूपी भगवान अपने को अर्थात् ज्ञानस्वरूपी को। ज्ञानस्वरूपी को अर्थात् अपने स्वरूप को। शरीर, वाणी, मन तो पर है, उसमें तो आत्मा नहीं, परन्तु व्यवहाररत्नत्रय जो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोधादि भाव, उसमें आत्मा नहीं। वह तो अनात्मा है। आहाहा! भगवान आत्मा अपने ज्ञानस्वभाव से अपना ज्ञानस्वभाव का कार्य करता है। वह आतमा का कार्य है। आहाहा! पर का कार्य तो करता नहीं। यह (बात) तो दोपहर में बहुत चलती है। परन्तु यहाँ तो राग जो व्यवहाररत्नत्रय का, पंच महाव्रत का राग, वह भी धर्मी नहीं करता। आहाहा! वह भी धर्मी का कार्य नहीं। आहाहा! धर्मी का कार्य तो अपने ज्ञानस्वभावरूपी शुद्ध आनन्द की परिणति, वह अपना कार्य है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : घर का काम कब करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता था घर का काम? ऐई! कैलाशचन्दजी! खिलौनों का कौन करे? ऐसा कहते हैं। खिलौनों का खिलौने करे। कैलाशचन्दजी देखे कि क्या होता है? आहाहा! भगवान! मार्ग वीतराग सर्वज्ञ का मार्ग, यह आत्मा परमात्मस्वरूप का मार्ग उसमें है। बाहर में नहीं। आहाहा! अरे! इसकी चीज़ क्या है? परमात्मस्वरूप यह आत्मा है। आहाहा! आयेगा। १०९ में आयेगा। यह तो परमेश्वर है, भाई! भगवान आत्मा तो परमेश्वर है। परमेश्वर है, ब्रह्मा है, विष्णु है, वह स्वयं स्वरूप है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा है। पर से दृष्टि उठाकर, पर का लक्ष्य छोड़कर, अपना आनन्दकन्द प्रभु ज्ञानस्वरूपी पुंज प्रभु, वह ज्ञानवान आत्मा अपने ज्ञान और आनन्दादि

की पर्यायरूपी कर्म करता है, वह उसका कार्य है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बापू! बहुत सूक्ष्म है, भाई!

वीतराग सर्वज्ञदेव कहते हैं कि ऐसा आत्मा जिसने नहीं जाना, वह सिद्धपद कैसे प्राप्त कर सकेगा? समझ में आया? उसे मोक्ष की पर्याय कैसे प्राप्त हो? जिसे अपना आत्मा ज्ञानवान ज्ञानस्वभाव प्रकाशपुंज, वह अपने ज्ञान और आनन्दरूपी कार्य का करनेवाला है। दो बोल हुए। कर्ता और कर्म। छह बोल हैं। छह विभक्ति है न? कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। आत्मा में यह छह शक्तियाँ पड़ी हैं। क्या कहते हैं? भगवान आत्मा में कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण यह छह शक्तियाँ—गुण हैं। ४७ में आता है। ४७ शक्तियाँ। आहाहा! त्रिकाली शक्ति का पिण्ड प्रभु, कर्ता, कर्म आदि गुण का (पिण्ड), वह वस्तु ज्ञानस्वभावी, आनन्दस्वभावी, वीतरागस्वभावी भगवान आत्मा, वह वीतरागस्वभाव द्वारा वीतरागस्वभाव का कार्य करता है। आहाहा! कठिन ऐसी बातें! यह सब जिनमन्दिर बनाना और यह करना और वह करना... कौन करे? प्रभु! सुन तो सही, भाई! आहाहा! उसके काल में वह होता है। कौन करे? और करनेवाला का अभिप्राय हो तो जरा शुभ हो, इतना। समझ में आया? वह कर नहीं सकता। वह तो परमाणु अपना कर्ता होकर कर्म—कार्य, वह परमाणु अपना कार्य करता है। आहाहा! कठिन बातें, भाई! जड़ करे? वह जड़ वस्तु है या नहीं?

जड़ में अनन्त शक्ति है। जड़ में भी कर्ता, कर्म षट्कारक की शक्तियाँ पड़ी हैं। जैसे भगवान आत्मा में छह शक्तियाँ हैं, ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं, ऐसी एक-एक परमाणु में कर्ता रूपी शक्ति (पड़ी है)। यह (आत्मा में) अरूपी शक्ति है। परमाणु एक-एक पॉईन्ट। यह नहीं, यह तो अनन्त परमाणुओं का पिण्ड है। अन्तिम एक टुकड़ा, जिसके दो टुकड़े नहीं हों। आहाहा! कैलाशचन्दजी! कभी सुना नहीं, तुम्हारे खिलौनों के कारण। इतने और भाग्यशाली तो आ गये। यह बात ऐसी सूक्ष्म है, भगवान! लोग निकाल डालते हैं। सोनगढ़ का निश्चय... निश्चय, ऐसा करके। अरे! प्रभु! सुन तो सही, भाई! यह तो भगवान का सत्य स्वरूप है, भाई! आहाहा! समझ में आया?

अपना गुण ज्ञान से, ज्ञानी ज्ञानस्वभाव से ज्ञानस्वभाव का कार्य करता है, और

आपकर... करण क्या? साधन क्या? ज्ञानस्वभाव, वह अपना साधन है। आहाहा! करण है न तीसरा बोल? कर्ता, कर्म, करण। करण अर्थात् साधन। व्यवहार यह क्रियाकाण्ड दया, दान, व्रतादि रत्नत्रय, वह साधन है या नहीं? नहीं, वह साधन नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द और वीतरागी पिण्ड प्रभु, वह वीतरागी पिण्ड ही स्वयं साधन होकर वीतरागी कार्य करता है। आहाहा! गाथा आज ठीक आ गयी है। आज लोग बहुत आये हैं न! अभी दोपहर में आयेंगे। दोपहर में समायेंगे नहीं। भावनगर से दो बस आनेवाली हैं। आज ७५० लोग भोजन में हैं। वह व्यक्ति कह गया था। पत्र आया है। आहाहा!

अरे! प्रभु! तेरी प्रभुता तो देख। आहाहा! पढ़ते थे, उसमें आता था। पढ़ते थे न? दलपतराम का। यह ६० वर्ष पहले की बात है। 'प्रभुता प्रभु तारी तो खरी, मुजरो मुझ रोग ले हरि।' यह हमारे पठन में आता था। साठ वर्ष पहले की, सत्तर वर्ष पहले की बात है। दलपतराम बड़े कवि थे न? क.द.डा.। कदडा अर्थात् कवि दलपतराम डाह्याभाई। बड़े हो गये। उन्होंने यह बनाया है। यह तो दस-बारह वर्ष की उम्र की बात है। ७५ वर्ष पहले। 'प्रभु प्रभु तारी तो खरी, मुजरो मुझ रोग ले हरि।' प्रभुता! प्रभुता तारी खरी कि यदि अज्ञान और राग-द्वेष को नाश कर डाले और वीतरागता और आनन्द को प्रगट करे तो तेरी प्रभुता खरी। यह तुमको याद नहीं होगा। दलपतराम में आता था। यह तो ७५ वर्ष पहले की बात है न! दस-बारह वर्ष की उम्र थी, तब यह (पढ़े हुए हैं)। पूरा पद है बड़ा। यह तो इतना याद रह गया। माल माल याद रह जाये। आहाहा!

प्रभु! एक बार सुन तो सही, नाथ! तेरी प्रभुता। तू अन्दर साक्षात् परमेश्वर है। शक्तिरूप से स्वभावरूप से भावरूप से यह सत् के सत्त्वरूप से तू परमेश्वर है। आहाहा! अरे! कैसे बैठे? पामरता मानी। आहाहा! एक दया के भाव करे, वहाँ ऐसा हो जाये, ओहो! हमने तो क्या किया? वह तो राग है न, प्रभु! वह तो पामरता है। आहाहा! प्रभुता तेरी तो यह है कि **अपने को आपकर...** आहाहा! है? एक-एक शब्द में बहुत गम्भीरता है। **आपकर...** आनन्द और ज्ञानस्वरूप का साधन करके आनन्द का भाव करता है। वह राग, व्यवहाररत्नत्रय का साधन करके आनन्द—धर्म की पर्याय करता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो छह कारक हैं। तुम्हारे आते हैं। तुम तो संस्कृत के

प्रोफेसर हो। संस्कृत के प्रोफेसर हैं। जयपुर। आहाहा! भगवान! यह तो तेरे संस्कार का प्रोफेसर हो, तब प्रोफेसर कहलाये। आहाहा!

कहते हैं, **अपने को आपकर....** अपने ज्ञानानन्दस्वभाव का साधन करके। राग नहीं। आहाहा! निमित्त नहीं। भगवान! तू परमात्मस्वरूप है न! परमात्मस्वरूप का साधन करके। आहाहा! तीन बोल हुए—कर्ता, कार्य और करण—साधन। अब **अपनी प्राप्ति के लिये...** सम्प्रदान हुआ। आनन्द की दशा, ज्ञान की दशा अपने में रखने के लिये तू कर। किसी को देना नहीं। तू लेनेवाला और तू देनेवाला। पात्र भी तू और लेनेवाला भी तू। आहाहा! दुनिया पात्र और तू आहार-पानी दे, ऐसी यहाँ चीज़ नहीं। यह तो आत्मा दे सकता नहीं। आत्मा की क्रिया है ही नहीं। आहाहा!

भगवान! तू सम्प्रदान है न! यह चौथा बोल है। **अपनी प्राप्ति के लिये...** अपना आनन्द और वीतरागता की प्राप्ति के लिये अन्दर पुरुषार्थ करता है, कहते हैं। किसी को देने के लिये, किसी के लिये है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो बाबा हो तब हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाबा ही है। राग बिना का ही चैतन्य भगवान अन्दर है। बाबा समझते हो? पर से रहित। यह बाबा नहीं होता? स्त्री, पुत्र, परिवार रहित। ऐसा कि यह सब छोड़ दें तो हो। छूटा ही पड़ा है अन्दर। कहाँ घुस गया है? तुझमें राग नहीं घुस गया तो शरीर, वाणी, स्त्री तो कहीं रह गये। भगवान! चैतन्यगंज प्रभु में तो राग का भी प्रवेश नहीं। आहाहा! समझ में आया? पहले घी का दृष्टान्त देते थे। पहले घी ऐसे होते थे कि कपासिया होता है न? कपासिया, गोदाम, उसमें भैंस को खाने के लिये छोड़ देते थे। अभी तो तौल करके दे, पाँच सेर और ढाई सेर। महँगा बहुत हो गया न? हमारे वीरजीभाई कहते थे, जामनगरवाले। हमारी माँ की माँ वहाँ चेला में थी। बखार समझे? गोदाम। कपासिया भरे हों। कपासिया समझे? छूटी भैंस को दे। कपास के बी-कपासिया। दो सौ मण, पाँच सौ मण पड़े हों। भैंस को खिलावे, उसका बने दूध। और उसका बने दही, और उसका बने घी। वह घी ऐसा बनता था, चेला की बात है। जामनगर के पास है न? उसकी माँ की माँ वहाँ रहती थी। विरजीभाई वकील। अभी गुजर गये। ९३ वर्ष में। इस काठियावाड़ में दिगम्बर का पहले में पहला अभ्यास

विरजीभाई को। दिगम्बर शास्त्र का। पूरे काठियावाड़ में पहले में पहला। शुरुआत से उन्हें दिगम्बर का शास्त्रों का अभ्यास किया। ९३ वर्ष में गुजर गये। बीस वर्ष की उम्र से दिगम्बर शास्त्र का अभ्यास। वे कहते थे कि घी ऐसा आता था कि जिसमें अँगुली तो न घुसे, घन घी, अँगुली तो न घुसे, ठोस, ठोस कहते हैं न? अँगुली तो न घुसे परन्तु खुरपा मुड़ जाये, ऐसा घी था। अभी तो सब गड़बड़ हो गयी। यहाँ तो हमारे दूसरा कहना है, मागसर महीने का घी, जिसमें अँगुली न घुसे। खुरपा तो मुश्किल-मुश्किल से घुसे।

इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञानघन है, उसमें शरीर तो प्रविष्ट नहीं हो, वाणी तो प्रविष्ट नहीं, हो, परन्तु विकल्प प्रविष्ट नहीं होता। समझ में आया? दया, दान के विकल्प, महाव्रत के विकल्प अन्दर प्रविष्ट नहीं हो सकते। ऐसा घन—ज्ञानघन वह है। जैसे घी घन है। घन—ठोस। भाई ने कहा न? इसी प्रकार यह ज्ञान ठोस है। आहाहा! प्रभु! अरे! तू कौन है? तूने तुझे सुना नहीं, नाथ! आहाहा! भगवान! तेरी बात करते हैं। परमात्मा सर्वज्ञदेव समवसरण में एक भवतारी इन्द्र और इन्द्राणी के बीच यह बात करते थे। वह यह बात है। आहाहा!

प्रभु! तेरी **अपनी प्राप्ति के लिये...** किसी को देना है और यह बात आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! यहाँ तो आनन्दस्वरूप भगवान, अपनी प्राप्ति, आनन्द, शान्ति की और वीतरागता की प्राप्ति के लिये अन्दर पुरुषार्थ करता है। आहाहा! हसमुखभाई! बहुत सूक्ष्म, बापू! यह तुम्हारे पैसे और फिर मुम्बई वापस। होली। मोह। क्या कहलाता है? मोहमयी नगरी। श्रीमद् ने लिखा है, मोहमयी नगरी। बड़े आठ-आठ मंजिल के, दस मंजिल के, पच्चीस-पच्चीस मंजिल के मकान हैं, नहीं? मोटरें चले धमाधम। लाख-लाख रुपये की मोटरें और दो लाख की मोटरें। आहाहा! क्या कहलाता है, उस मोटर का नाम? तुम्हारे पूनमचन्द को मोटर है। ईम्पाला, ईम्पाला मोटर। लाख, डेढ़ लाख की। हम जाते हैं तो आता है सामने। गाँव में ले जाने को। ईम्पाला। धूल में नहीं वहाँ, बापू!

यह आनन्द का नाथ प्रभु, अपने लिये पुरुषार्थ करता है और आनन्द प्राप्त करता है, उसका नाम धर्म है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति

के काल में ऐसा होता है, यह बताते हैं। अभी तो चौथा गुणस्थान, हों! आहाहा! **अपनी प्राप्ति के लिये...** यह सम्प्रदान हुआ। सं—सम्यक् प्रकार से दान दिया। अपनी आनन्द की दशा प्रगट करके स्वयं ने रखी। यह सम्प्रदान। पर को दान देना, वह आत्मा कर नहीं सकता। आहार, पानी, वस्त्र या पैसा दूसरे को दे नहीं सकता। वह तो जड़ चीज़ है। जड़ को क्या दे सके? हाँ, उसमें राग मन्द हो तो पुण्य है। पुण्य को रखा। पुण्य विकारी भाव रखा। यह आत्मा अपना ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द ध्रुव, उसकी अन्तर में दृष्टि करके अपनी लिये आनन्द की दशा, सम्यग्दर्शन की दशा अपने लिये रखी है। आहाहा! किसी को समझाना है और किसी को देना है, यह वस्तु आत्मा में है नहीं। ऐसी बात है, भाई! आहाहा! चौथा बोल हुआ—**अपनी प्राप्ति के लिये...**

आपसे... यह पाँचवाँ बोल हुआ। **अपने से...** यह अपादान है। पाँच बोल में कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान—अपने से। जो निर्मल धर्मदशा अपने से होती है। उपादान है न! व्यवहाररत्नत्रय से नहीं, बाह्य देव-गुरु-शास्त्र के निमित्त से भी नहीं। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वभावी प्रभु अपने से, अपने से—से अपने से। पाँचवीं विभक्ति है। से—अपने से। से (अपने) से। उससे—ऐसा अपना आनन्दकन्द प्रभु ज्ञानस्वरूपी, उससे अन्दर पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! धर्मदशा अपने से अपने में प्रगट होती है। आहाहा! आहाहा! ऐसा मार्ग अब, लोगों को बेचारे साधारण को धमाल करना और अपवास करे और फिर उसका उत्सव करे। हो गया धर्म। अरे! भाई! वह तो राग की मन्दता रखता हो तो पुण्य है। उसमें उत्सव करे और पाँच-पचास हजार खर्च करे, वह कोई धर्म नहीं है। ऐई! मार्ग यह है, प्रभु! आहाहा!

अपने से... अपने से। अपने आनन्द और ज्ञानस्वरूप से। उससे प्रगट करता है। दूसरे से प्रगट होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अरे! ऐसा सत्य सुनने को मिले नहीं, प्रभु! वह आत्मा कब करे? अरे! दुःखी है, चार गति में दुःख है। विपरीत मान्यता चलावे तो वर्तमान दुःख है, परम्परा दुःख है। आहाहा! यह तो ऐसा माने कि बराबर कहते हैं, व्यवहार करते-करते होगा। अरे! प्रभु! दुःखी हो जायेगा, भाई! तेरी श्रद्धा मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व में तू वर्तमान में दुःखी है और उसके परिणाम में, भाई! भगवान! दुःख आयेगा भविष्य में। दुनिया देखकर रो पड़ेगी, ऐसा दुःख होगा, भाई! क्या करे? आहाहा! समझ में आया?

एक बार कहा था न? लाठी की महिला थी। अठारह वर्ष की कन्या थी? दो वर्ष का विवाह। उसके पति को वह दूसरी थी, उसकी पहली स्त्री मर गयी थी। यह दूसरी। इसे शीतला निकली। शीतला समझते हो? माता शीतला। दाने-दाने में कीड़े पड़े। दाने-दाने में कीड़े... कीड़े। वह महिला कहती थी, उसे गद्दी में सुलावे। ऐसा करे तो हजारों कीड़े (गिरे), ऐसे कीड़े निकले, ऐसा करे तो कीड़े निकलें। माँ! ऐसा कहती थी। माँ! मैंने ऐसे पाप इस भव में किये नहीं। इस प्रकार महिला रोती थी। आहा! ऐसा करूँ तो सुख नहीं, ऐसा करूँ तो सुख नहीं। नहीं पानी पीने का प्रेम, नहीं आहार का प्रेम, नहीं सोने का प्रेम, हवा करे। दाने-दाने में कीड़े। बारीक कीड़े। ऐसा करे तो यहाँ से हजार निकले और ऐसा करे तो (यहाँ से निकले)। और माँस के बटका भरे। बापू! यह सब पूर्व के मिथ्यात्व के फल हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! मर गयी। उसी और उसी में देह छूट गयी। इतना बोली, माँ! गुजराती काठियावाड़ी है न। यहाँ लाठी है। लाठी वाले आये हैं न? कोई आये हैं। धीरुभाई आये हैं। वह कहे, माँ! मैंने ऐसे पाप किये नहीं। यह कहाँ से? माँ कहे, बापू! पूर्व भव का कुछ होगा।

ऐसी पीड़ा से तो अनन्तगुणी पीड़ा नरक में है। यह पीड़ा तो अनन्तवें भाग है। पहले नरक में दस हजार वर्ष की स्थिति का नारकी अनन्त बार हुआ। वहाँ इस पीड़ा से अनन्तगुणी पीड़ा है। प्रभु! तुझे खबर नहीं। तेरा आनन्द उल्टा हो गया। तेरा आनन्दस्वभाव राग में उल्टा हो गया। आहाहा! उसका तुझे दुःख हुआ। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, वह राग और दुःख तेरे स्वभाव में है ही नहीं। आहाहा! ऐसे स्वभाव को पकड़ ले, प्रभु! तू ऐसा है ही। आहाहा!

अपने से। अपना ज्ञानस्वभावी भगवान अपने से ज्ञान की क्रिया करता है। आहाहा! धर्म की क्रिया आत्मा अपने ज्ञान से करता है, ऐसा कहते हैं। यह बात है, भगवान! आहा! पाँच बोल हुए। **अपने में...** छठा बोल-अधिकरण—आधार। छठवाँ बोल है? इन छह बोल में तो कितना भरा है! आहाहा! भावार्थ है या नहीं? १०८। पहले कहा न? **जब तक ये जीव...** ज्ञानस्वरूपी प्रभु—कर्ता। **अपने को...** कार्य। अपना ज्ञान का, आनन्द का कार्य। **आपकर...** करण—साधन। अपने ज्ञान और आनन्द के साधन से कार्य करता है। अपनी पर्याय में रखने के लिये वह कार्य करता है। **आपसे...**

आत्मा के आनन्द से कार्य करता है और **अपने में तिष्ठता...** अधिकरण। अपने आधार से करता है। उसे किसी का आधार है नहीं। व्यवहार रत्नत्रय का आधार भी आनन्द की पर्याय की प्राप्ति करने में है नहीं। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र का भी उसमें आधार है नहीं। मन्दिर और मन्दिर की प्रतिमा, अरे! साक्षात् तीन लोक के नाथ समवसरण में विराजते हों और वहाँ दर्शन करता हो, उनका आधार तेरे आत्मा में नहीं। आहाहा! तू ही परमात्मा है। प्रभु! तुझमें क्या कमी और अल्पता है कि तू दूसरे की शरण लेने जाता है? समझ में आया?

अपने में तिष्ठता... अपने में रहकर **नहीं जान ले,...** देखो! ऐसे जब तक ऐसा नहीं जानता, **तब तक निर्दोष शुद्ध परमात्मा सिद्धपरमेष्ठी को क्या पा सकता है?** वहाँ तक परमात्म दशा, मोक्षदशा को कैसे पा सकता है? आहाहा! चाहे तो व्यवहाररत्नत्रय करके मर जा न! अनन्त काल हुआ। आहाहा! पंच महाव्रत और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा और भक्ति, पूजा, व्रत, आहाहा! वह तो सब विकल्प / राग है। आहाहा! क्या प्रभु! अन्दर आत्मा के आनन्द की क्रिया बिना क्या तुझे आत्मा की प्राप्ति होती है? और आत्मा की प्राप्ति बिना तुझे सिद्धपद की प्राप्ति होती है? आहाहा! मक्खन है। मक्खन कहते हैं न? आहाहा! ऐसा स्वरूप ही तेरा है। तुझे खबर नहीं, नाथ! आहाहा!

नाथ क्यों कहते हैं? अपने ज्ञायक आनन्दस्वभाव की रक्षा करनेवाला, वह आत्मा है और आनन्द की पर्याय पूर्ण करनेयोग्य भी आत्मा है। जोगक्षेम के करनेवाले को आत्मा कहते हैं। निर्मल दशा प्रगट की, उसे विशेष निर्मल प्रगट करे, उसका नाम नाथ कहा जाता है। पत्नी की पति रक्षा करता है और भावना प्रमाण नयी चीज़ दे सकता है, इसलिए उसका पति कहलाता है। दुनिया के व्यवहार। इसी प्रकार यह आत्मा अपना नाथ है। आहाहा! अपने आनन्दस्वरूप की प्राप्ति हुई, उसकी आत्मा रक्षा करता है और पूर्णानन्द की प्राप्ति के प्रयत्न में है। आहाहा! जोगक्षेम करनेवाला। समझ में आया?

'अनाथी' का आता है न? अनाथी मुनि का। उत्तराध्ययन में आता है। मुनि थे। बहुत सुन्दर रूप था। रूपवान। नग्न मुनि। जंगल में बबूल होता है न? बावळ को क्या कहते हैं? बबूल। बबूल के नीचे जंगल में ध्यान में बैठे थे। श्रेणिक राजा हाथी के ऊपर

निकले। ऐसा देखा, ओहो! यह महाराज कोई राजकुमार राजा जैसे हैं। यह बबूल के नीचे (ध्यान करते हैं)। यह क्या? नीचे उतरे। महाराज! आप अनाथ हो। आप मेरे राज में आओ। महाराज कहते हैं, हे राजन्! तू अनाथ है। प्रभु! आपने मुझे नहीं पहिचाना। अरे! राजन्! तुमको कहाँ पहिचाना? तुम राजा हो, ऐसा दिखता है। इससे क्या? तू मेरा नाथ होने आया, अनाथ? सुन तो सही, तू अनाथ है। महाराज! मैं राजा, मुझे हजार राजा चंवर ढोरते हैं। इन्द्राणी जैसी हजार रानियाँ हैं। अनाथ है, राजा! तेरा शरण तुझे नहीं। अनाथ है। महाराज! कैसे अनाथ? प्रभु! तू राज और पर का शरण लेने जाता है तो अनाथ है। निज भगवान का शरण नहीं लिया, इसलिए तू अनाथ है। आहाहा! फिर वहाँ समकित पाये हैं। आहाहा! यह बात।

तीन लोक का नाथ चिदानन्द प्रभु परमात्मा प्रकाश का पुंज प्रभु अन्दर विराजता है, उसकी तो तूने कीमत की नहीं और उसे छोड़कर पैसा, लक्ष्मी, परिवार और स्त्री और पुण्य-पाप के भाव की कीमत—महत्ता करके तू मर गया। समझ में आया? तेरी महत्ता चाहिए, उतनी तूने महत्ता की नहीं और दूसरे की महत्ता है नहीं, यह पुण्य की दया, दान की महत्ता नहीं, उसकी तूने महत्ता की है, मैंने ऐसा किया, मैंने ऐसा किया। तू भावमरण से मर गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... वह पात्र था। आहाहा! अनाथी मुनि है। श्वेताम्बर में बीसवाँ अध्ययन है—अनाथी मुनि का। सब देखा है, हम तो व्याख्यान करते थे। उत्तराध्ययन है न? ३६ अध्ययन हैं। बाईस सौ श्लोक है, बाईस सौ श्लोक। हमने तो सब कण्ठस्थ किया था न। छह हजार श्लोक उस समय कण्ठस्थ किये थे। व्याख्यान देते थे, उस समय भी लोग... सम्प्रदाय में हमारी प्रतिष्ठा बहुत थी न! लोग सुनें। सुनो, भगवान! बात तो ऐसी है। आहाहा! समझ में आया? और बात नहीं की थी?

उत्तराध्ययन का चौदहवाँ अध्ययन है। छह जीव ने दीक्षा ली। ब्राह्मण के छह (पुत्र)। ब्राह्मण के छोटी उम्र के पुत्र थे, करोड़पति। फिर उन्हें दीक्षा लेने के भाव हुए तो माता-पिता से आज्ञा लेते हैं। अपने एक बार यहाँ कहा था, माता! आज्ञा दे, माँ!

अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो, जह्हि पवण्णा ण पुणब्भवामो।
अणागेय णेव य अत्थि किंचि, सद्धखमं णे विणइतु रागं॥२८॥

जननी! मेरे प्रति का राग छोड़ दे। माता! जगत में अप्राप्त चीज़ कौन रह गयी है? सब चीज़ें अनन्त बार मिली हैं। एक आत्मा आनन्द का नाथ मिला नहीं। आहाहा! 'अजैव धम्मं पडिवज्जयामो, जहिं पवणां ण पुणब्भवामो' माता! हम आज ही आनन्द के नाथ को अंगीकार करेंगे और कोलकरार करते हैं, माता! हम फिर से माता करेंगे नहीं। आहाहा! 'अजैव धम्मं पडिवज्जयामो, जहिं पवणां ण पुणब्भवामो' फिर से माता नहीं करेंगे, तुझे रोना हो उतना रो ले, परन्तु दूसरी जननी नहीं अब, हम मोक्ष में जायेंगे। हम आनन्द के कन्द को साधकर... आहाहा! हम इसी भव में सिद्धपद को प्राप्त करेंगे। उस समय लोग... यह तो पचास वर्ष पहले बोटाद में व्याख्यान चलता हो। बहुत सभा, पन्द्रह सौ लोग हमेशा। परन्तु यह बात नहीं ऐसा दृष्टि का विषय जहाँ आवे, वह समझ में नहीं आये। वैराग्य की बात। वैराग्य तो सम्यग्दर्शन हो तो वैराग्य सच्चा है। समझ में आया?

ज्ञान और वैराग्य दो शक्तियाँ कही न? निर्जरा अधिकार में। ज्ञान और वैराग्य शक्ति। ज्ञान अर्थात् अपना पूर्णानन्द के नाथ का अस्तित्व का अनुभवज्ञान और पर से हटना, राग से हटना, वह वैराग्य। अकेला वैराग्य किस काम का? अस्तित्व तो परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा है, ऐसे अस्तित्व के प्रतीति का ज्ञान नहीं और वैराग्य करे, वह तो श्मशानिया वैराग्य है। श्मशानिया वैराग्य समझे? पच्चीस वर्ष का लड़का मर गया हो। वापस घर आकर रोटी, दाल, भात, सब्जी उड़ावे। आहाहा!

यहाँ आत्मा को भगवान (कहते हैं)। यह परमात्मप्रकाश है। इस पुस्तक का नाम परमात्मप्रकाश है। लिया? भाई! परमात्मप्रकाश मिला? लिया? अच्छा। आहाहा! **अपने में तिष्ठता नहीं जान ले,...** आहाहा! अपने ज्ञानस्वभाव का ज्ञान करके, ज्ञानकार्य और ज्ञान करके रखना, ज्ञान के आधार से, ज्ञान की दशा से अपने आत्मा को न जाना, उसे मोक्ष क्या होगा? उसे क्या कल्याण होगा? ऐसा कहते हैं। आहाहा! **तब तक निर्दोष शुद्ध परमात्मा सिद्धपरमेष्ठी को क्या पा सकता है?** आत्मा का ज्ञान किया और तू कहे, मोक्ष जाऊँगा, धूल में भी नहीं होगा। समझ में आया? जिसका मोक्ष होना है,

उसे तूने जाना नहीं क्या चीज़ है। मोक्ष तो आत्मा का होता है न? दुःख से मुक्ति और आनन्द की प्राप्ति, उसका नाम मोक्ष। पूर्ण दुःख से मुक्ति और पूर्ण आनन्द की प्राप्ति, इसका नाम मोक्ष। वह तो आत्मा की दशा है। आत्मा को जाना नहीं और आत्मा की दशा -सिद्धपद कहाँ से होगा? आहाहा! समझ में आया? **क्या पा सकता है? कभी नहीं पा सकता।** आहा! मर जाये नहीं, पंच महाव्रत कर-करके, क्लेश करके। अपवास करे। ऐसा कहते हैं। आता है न? निर्जरा अधिकार में। क्लेशो। क्लिषतां। पंच महाव्रत पालन कर क्लेश करे तो कर, वह सब क्लेश है, राग है। आहाहा! गजब बात बापू! महाव्रत पाले तो कहे क्लेश है। राग है न? वह कहाँ आत्मा है? वह आत्मधर्म कहाँ है? अरे! मूल वरराजा पड़ा रहा। वरराजा पड़ा रहा और बारात जोड़ दी। आहाहा! यहाँ कहते हैं, **जो आत्मा को जानता है, वही परमात्मा को जानता है।** है अन्त में? १०८ हुई।

गाथा - १०९

अथानन्तरं सूत्रचतुष्टयेनान्तरस्थले परलोकशब्दव्युत्पत्त्या परलोकशब्दवाच्यं परमात्मानं कथयति –

१०९) जोइज्जइ तिं बंभु परु जाणिज्जइ तिं सोइ।
बंभु मुणेविणु जेण लहु गम्मिज्जइ परलोइ।।१०९।।

दृश्यते तेन ब्रह्मा परः ज्ञायते तेन स एव।
ब्रह्म मत्वा येन लघु गम्यते परलोके।।१०९।।

जोइज्जइ दृश्यते तिं तेन पुरुषेण तेन कारणेन वा। कोऽसौ दृश्यते। बंभु परु ब्रह्मशब्दवाच्यः शुद्धात्मा। कथंभूतः। परः उत्कृष्टः। अथवा पर इति पाठे नियमेन। न केवलं दृश्यते जाणिज्जइ ज्ञायते तेन पुरुषेण तेन कारणेन वा सोइ स एव शुद्धात्मा। केन कारणेन। बंभु मुणेविणु जेण लहु येन पुरुषेण येन कारणेन वा ब्रह्मशब्दवाच्यनिर्दोषिपरमात्मानं मत्वा ज्ञात्वा पश्चात् गम्मिज्जइ परलोइ तेनैव पूर्वोक्तेन ब्रह्मस्वरूपपरिज्ञानपुरुषेण तेनैव कारणेन वा गम्यते। क्व। परलोके परलोकशब्दवाच्ये परमात्मतत्त्वे। किं च। योऽसौ शुद्धनिश्चयनयेन शक्तिरूपेण केवलज्ञान–दर्शनस्वभावः परमात्मा स सर्वेषां सूक्ष्मैकेन्द्रियादिजीवानां शरीरे पृथक् पृथग्रूपेण तिष्ठति स एव परमब्रह्मा स एव परमविष्णुः स एव परमशिवः इति, व्यक्तिरूपेण पुनर्भगवानर्हन्नैव मुक्तिगतसिद्धात्मा वा परमब्रह्मा विष्णुः शिवो वा भण्यते। तेन नान्यः कोऽपि परिकल्पितः जगद्व्यापी तथैवैको परमब्रह्मा विष्णुः शिवो वास्तीति। अयमत्रार्थः। यत्रासौ मुक्तात्मा लोकाग्रे तिष्ठति स एव ब्रह्मलोकः स एव विष्णुलोकः स एव शिवलोको नान्यः कोऽपीति भावार्थः।।१०९।।

इस प्रकार प्रथम महास्थल में चार दोहों में अंतरस्थल में ज्ञान का व्याख्यान किया। आगे चार सूत्रों में अंतरस्थल में परलोक शब्द की व्युत्पत्तिकर परलोक शब्द से परमात्मा को ही कहते हैं –

उसी ज्ञान से देखा जाता परम ब्रह्म जाना जाता।
उससे परम ब्रह्म को माने जीव शीघ्र शिवपुर जाता।।१०९।।

अन्वयार्थ :– [तेन] उस कारण से उसी पुरुष से [परः ब्रह्मा] शुद्धात्मा नियम से [दृश्यते] देखा जाता है, [तेन] उसी पुरुष से निश्चय से [स एव] वही शुद्धात्मा [ज्ञायते]

जाना जाता है, [येन] जो पुरुष जिस कारण [ब्रह्म मत्वा] अपना स्वरूप जानकर परलोके लघु गम्यते परमात्मतत्त्व में शीघ्र ही प्राप्त होता है।

भावार्थ :– जो कोई शुद्धात्मा अपना स्वरूप शुद्ध निश्चयनयकर शक्तिरूप से केवलज्ञान केवलदर्शन स्वभाव है, वही वास्तव में (असल में) परमेश्वर है। परमेश्वर में और जीव में जाति–भेद नहीं है, जब तक कर्मों से बँधा हुआ है, तब तक संसार में भ्रमण करता है। सूक्ष्म बादर एकेन्द्रियादि जीवों के शरीर में जुदा जुदा तिष्ठता है, और जब कर्मों से रहित हो जाता है, तब सिद्ध कहलाता है। संसार–अवस्था में शक्तिरूप परमात्मा है, और सिद्ध–अवस्था में व्यक्तिरूप है। यही आत्मा परब्रह्म, परमविष्णु शक्तिरूप है, और प्रगटरूप से भगवान् अर्हंत अथवा मुक्ति को प्राप्त हुए सिद्धात्मा ही परमब्रह्मा, परमविष्णु, परमशिव कहे जाते हैं। यह निश्चय से जानो। ऐसा कहने से अन्य कोई भी कल्पना किया हुआ जगत् में व्यापक परमब्रह्म, परमविष्णु, परमशिव नहीं। सारांश यह है कि जिस लोक के शिखर पर अनंत सिद्ध विराज रहे हैं, वही लोक का शिखर परमधाम ब्रह्मलोक वहीं विष्णुलोक और वही शिवलोक है, अन्य कोई भी ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोक नहीं है, ये सब निर्वाणक्षेत्र के नाम हैं, और ब्रह्मा, विष्णु, शिव ये सब सिद्धपरमेष्ठी के नाम हैं। भगवान् तो व्यक्तिरूप परमात्मा हैं, तथा वह जीव शक्तिरूप परमात्मा है। इसमें संदेह नहीं है। जितने भगवान् के नाम हैं, उतने सब शक्तिरूप इस जीव के नाम हैं। यह जीव ही शुद्धनयकर भगवान् है।।१०९।।

गाथा–१०९ पर प्रवचन

---

१०९ गाथा। **परलोक शब्द की व्युत्पत्तिकर परलोक शब्द से परमात्मा को ही कहते हैं:**—अब यहाँ परलोक कहते हैं न? परलोक। परलोक (अर्थात्) क्या? पर अर्थात् परमात्मा, वह परलोक है। पर अर्थात् प्रधान लोक। यह लोक जो राग–द्वेषादि से (परलोक में जाये, वह नहीं)। परलोक क्या? कि आत्मा आनन्द का कन्द, वह परलोक है। आहाहा! समझ में आया? यह लोक राग–द्वेष, पुण्य–पाप, यह लोक जगत का, भटकने का। परलोक इससे भिन्न भगवान पूर्णानन्द की प्राप्ति होना, वह परलोक है। समझ में आया? परलोक स्वर्ग में जाना, वह परलोक नहीं, वह तो सब यह लोक भटकने का है। यह कहते हैं।

१०९) जोइज्जइ तिं बंभु परु जाणिज्जइ तिं सोइ।
बंभु मुणेविणु जेण लहु गम्मिज्जइ परलोइ॥१०९॥

अन्वयार्थः—उस कारण से उसी पुरुष से शुद्धात्मा नियम से देखा जाता है,... शुद्धात्मा परमात्मस्वरूप आनन्द ज्ञाता-दृष्टा, **उसी पुरुष से निश्चय से वही शुद्धात्मा जाना जाता है, जो पुरुष जिस कारण अपना स्वरूप जानकर परमात्मतत्त्व में शीघ्र ही प्राप्त होता है।** अपने आनन्द के नाथ को जाना तो फिर उसे परमात्मपद प्राप्त होता है।

भावार्थः—जो कोई शुद्धात्मा अपना स्वरूप शुद्ध निश्चयनयकर... शुद्ध निश्चयदृष्टि से **शक्तिरूप से केवलज्ञान...** आहाहा! भगवान आत्मा की शक्ति तो केवलज्ञान है। केवलज्ञान अर्थात्? यह केवलज्ञान की पर्याय, वह नहीं। अकेला ज्ञान, अकेला ज्ञान, ज्ञान का पुंज। **केवलदर्शन...** अकेला दर्शन स्वभाव। है? **वही वास्तव में (असल में) परमेश्वर है।** आहाहा! अपना आत्मा ही केवलज्ञान और केवलदर्शनस्वरूप है, वही परमेश्वर है। अल्पज्ञता नहीं। पर्याय में अल्पज्ञता है, वह नहीं। वस्तु जो अकेली ज्ञानरस, ज्ञानभाव। '**कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं एक हौं, अपने रससों भर्यो अनादि...**' आनन्द रस से भरपूर मैं अनादि हूँ। '**मोहकर्म मम नांहि नांहि भ्रमकूप है, सुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है।**' (नाटक समयसार, जीवद्वार-३३)। शुद्ध चेतनासिन्धु—समुद्र है यह तो। आहाहा! अरे! कैसे जँचे? बीड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं। सवेरे चाय बिना चले नहीं। दिमाग ठिकाने न रहे। ऐसे तो व्यसन के लक्षण। उसे कहे कि तू परमात्मा है। आहाहा!

कहै विचच्छन पुरुष... ज्ञानी-समकिती ऐसा कहते हैं, '**कहै विचच्छन...** विचिक्षण उसे कहते हैं। दुनिया के चतुर, वे चतुर नहीं, वे सब गहल-पागल हैं। अपने आत्मा को जिसने जाना, वह विचिक्षण—चतुर है। आता है न श्लोक? नाटक समयसार में। '**कहै विचच्छन...** यह राजकोट के डॉक्टर हैं, वाँचनकार हैं। यह राजकोट से आये हैं न। ये दोनों डॉक्टर हैं। यह तीसरे डॉक्टर तो यहाँ हैं। इनके सेठ आये हैं। रतिभाई। यह सेठ वहाँ मन्त्री है। यह करोड़पति है। बहुत बड़े कारखाना और फारखाना और सब... भाई कहते हैं कि हम डॉक्टर हैं परन्तु रोगी होकर आये हैं। आहाहा! देखो! क्या कहते हैं?

भगवान! तेरी चीज़ अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शनस्वरूपी शक्ति से तू परमेश्वर ही है। तेरी शक्ति और तेरा स्वभाव परमेश्वर ही है। उसे ऐनलार्ज करके पर्याय में परमात्मा होता है। छोटी (वस्तु को) बड़ी की है न—ऐनलार्ज। आहाहा! तेरी चीज़ ही अन्दर वस्तु केवल अकेला ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान, अकेला दर्शन-दृष्टा। ज्ञाता-दृष्टा के स्वभावस्वरूप भगवान तू परमेश्वर है। उस परमेश्वर की प्राप्ति सम्यग्दर्शन, ज्ञान से होती है। और वह परमेश्वर सम्यग्दर्शन, ज्ञान से पूर्ण परमेश्वर की प्राप्ति पर्याय में होती है तो जो शक्ति में था, वह पर्याय में पूर्ण आ गया। व्यक्ति हो गयी। समझ में आया? आहाहा! जैसे चौंसठ पहरी पीपर होती है न? लींडीपीपर-छोटी पीपर। अन्दर चौंसठ पहरी चरपराई भरी है। चौंसठ समझे न? चौंसठ अर्थात् चौंसठ पैसा। सोलह आना, रुपया। अन्दर पूर्ण चरपराई भरी है। और कल एक व्यक्ति का प्रश्न था। तुमने कहा था कि (छोटी पीपर में) चौंसठ पहरी चरपराई है, परन्तु उसे घुंटने से प्रगट होती है न? निमित्त से प्रगट होती है न? अरे भगवान! तुझे खबर नहीं। कल एक आया था। भगवान! छोटी पीपर में पड़ी है, उसका परिणमन, उत्पन्न काल स्वयं से होता है। तब उस चीज़ को निमित्त कहा जाता है। अपना चौंसठ पहरी का परिणमन, चौंसठ पहरी अर्थात् रुपया, सोलह आना। चौंसठ पैसा कहते हैं न? अब सौ पैसे का रुपया हो गया। पहले तो चौंसठ पैसे का था न? चौंसठ अर्थात् रुपया रुपया चरपराई अन्दर भरी है।

उसी प्रकार भगवान आत्मा में रुपया—रुपया पूर्ण ज्ञान, आनन्द और सुख अन्दर भरा है। आहाहा! समझ में आया? तो फिर उसने रात्रि में प्रश्न किया। प्रभु! परन्तु तूने सुना नहीं। मिट्टी का घटमय कर्म मिट्टी से हुआ है। कुम्हार से नहीं। कुम्हार तीन काल में करता नहीं। सुन तो सही! इसी प्रकार घुंटन है, वह परिणमन का कर्ता नहीं। छोटी पीपर स्वयं से परिणमन करती है। एक पहर, दो पहर, तीन पहर, चार पहर, चौंसठ पहर। आहाहा! समझ में आया? वह पत्थर से प्रगट नहीं हुई है। अपने परिणमन से प्रगट हुई है। आहाहा! यह प्रश्न किया था। चन्दुभाई! धुलिया में। धुलिया है न? तब कहा था? बड़ी सभा थी। दो बार धुलिया गये। पहली बार बड़ी सभा थी। पहले-पहले गये तब दिगम्बर में उतरे थे। दूसरी बार तो अन्यत्र उतरे थे। स्थानकवासी उपाश्रय में व्याख्यान वाँचा था। तुमने ऐसा दृष्टान्त दिया था। परन्तु घुंटे तो हो न? निमित्त घुंटे तो

बाहर आवे। ऐई! अरे! भगवान! सुन तो सही, प्रभु! चौसठ पहरी (चरपराई) अन्दर है, उसकी पर्याय में उत्पन्न होने में अपना निज क्षण है। उस चरपराई को उत्पन्न होने में उसका अपना निजक्षण—जन्मक्षण उसका है। पत्थर से नहीं। अरे! यह बात! समझ में आया? धुलिया में कन्हैयालाल कोई है। उसने बड़ा लेख दिया है। समन्वय करो, समन्वय करो। थोड़ा तुम व्यवहार को कहो और हम कुछ निश्चय में आयें, ऐसा समन्वय करो। वह समन्वय कब हो?

यहाँ तो व्यवहार से आत्मा में बिल्कुल नहीं होता। जैसे कुम्हार से घड़ा नहीं हुआ। तो निमित्त तो है न? निमित्त से घड़ा नहीं हुआ। इसी प्रकार व्यवहार से निश्चय नहीं होता। व्यवहार निमित्त है। आहाहा! व्यवहार होता अवश्य है। निमित्त वहाँ होता अवश्य है, परन्तु निमित्त से होता नहीं। व्यवहार होता अवश्य है, व्यवहार से निश्चय होता नहीं। आहाहा! वस्तु तो ऐसी है, भाई! वर्तमान में तो सबने गड़बड़ कर डाली। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

(असल में) परमेश्वर है। है? **परमेश्वर में और जीव में जाति-भेद नहीं है,...** आहाहा! परमेश्वर जो सिद्ध भगवान हुए और तू जीव, दोनों में जाति भेद नहीं। तेरी जाति एक ही है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आता है? (नाटक समयसार, पद-११)

चेतनरूप अनूप अमूरति,
सिद्ध समान सदा पद मेरो,
मोह महातम आतम अंग,
कियौ परसंग महा तम घेरौ।
ग्यानकला उपजी अब मोहि,
कहौं गुन नाटक आगमकेरौ।
जासु प्रसाद सधै सिवमारग
वेगि मिटै भव (घट) वास बसेरौ।

बनारसीदास के नाटक समयसार में है। अब उसे यह कहते हैं। ललितपुर में शास्त्री परिषद भरी न? उसमें (ऐसा कहा), टोडरमल और बनारसीदास अध्यात्म की भांग पीकर नाचे हैं। अरे! भगवान! अब फलटन में करनेवाले हैं। मारो उन्हें। ऐसा

माननेवाले के सिर फोड़ डालो। अरे! भगवान! ऐसा नहीं होता है, भाई! इन्द्र के समय में विरोधी नहीं थे? तो इन्द्र किसी को मारते थे? जानो। यह आत्मा है। इसकी पर्याय उल्टी हो तो तुम जानो, परन्तु मारना और यह क्या? वह आत्मा है, भाई! आहाहा! निश्चय से तो आत्मारूप से तो साधर्मी आत्मा है। पर्याय को लक्ष्य में न लो। आत्मा परमेश्वर है तो आत्मा (रूप से) साधर्मी है। पर्याय से भले तुझे... आहाहा! भगवान है, बापू!

यहाँ क्या कहते हैं? देखो! शक्तिरूप से परमेश्वर है। **परमेश्वर में और जीव में जाति-भेद नहीं है,...** आहाहा! **जब तक कर्मों से बँधा हुआ है,...** अर्थात् अपनी अपूर्ण पर्याय है, वहाँ तक संसार में भ्रमण करता है। **सूक्ष्म बादर एकेन्द्रियादि जीवों के शरीर में जुदा-जुदा तिष्ठता है, और जब कर्मों से रहित हो जाता है, तब सिद्ध कहलाता है। संसार अवस्था में शक्तिरूप परमात्मा है, और सिद्ध-अवस्था में व्यक्तिरूप (परमात्मा) है।** प्रगटरूप है। आहाहा! परमेश्वर जो है, वह ऐनलार्ज हो गया है। अन्तर एकाग्रता (द्वारा)। आहाहा! सिद्ध भगवान हो गया। अन्दर सिद्ध शक्ति थी। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' 'चेतनरूप अनूप...' मैं चैतन्यरूप अनूप—मेरी कोई उपमा है नहीं। 'चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो, मोह महातम आतम अंग...' परन्तु मैंने राग को मेरा मानकर मोह का माहात्म्य किया। 'मोह महातम आतम अंग, कियो परसंग महातम घेरो।' आहाहा!

'ज्ञानकला उपजी अब मोहि, कहौं गुन नाटक आगमकेरौ' मैं आगम का नाटक कहूँगा। आहाहा! समझ में आया? 'कहौं गुन नाटक आगमकेरौ, जासु प्रसाद सधै सिवमारग।' अपना मोक्षमार्ग, भगवान के आनन्द की दशा से मोक्षमार्ग प्रगट होता है। आहाहा! 'वेगि मिटै भव (घट) वास बसेरौ।' मिट्टी के पिण्ड में रहना, वह शीघ्रता से मिट जाये। तेरा छूट जायेगा। आहाहा! हड्डियाँ, चमड़ी में रहना! अरे! प्रभु पवित्रता का धाम। आहाहा! शुद्ध अमृत का कुण्ड, उसे अन्दर चमड़ी में रहना! आहाहा! 'वेगि मिटै भव (घट) वास...' अल्प काल में प्रभु! तेरा घटवास छूट जायेगा। यह कहते हैं, ऐसा यदि साधन करे तो तेरा (भववास) छूट जायेगा, मोक्ष हो जायेगा। 'सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में' आनन्द की, ज्ञान की पूर्णता (की) आदि होगी, परन्तु फिर

अन्त नहीं। अनन्त काल ऐसा का ऐसा रहेगा, ऐसा तेरा मोक्षपद है। प्रवीणभाई! आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं, देखो!

संसार-अवस्था में (पर्याय में) शक्तिरूप परमात्मा है, और सिद्ध-अवस्था में व्यक्तिरूप है। आहाहा! **वही आत्मा परब्रह्म,...** है। देखो! परमब्रह्म वह आत्मा है। दूसरा कोई परमब्रह्म है या ईश्वरकर्ता-फर्ता (है, ऐसा नहीं)। आत्मा **परमविष्णु...** है। तीन काल तीन लोक को जाननेवाला व्यापक विष्णु-आत्मा अपना है। आहाहा! है? वह **परम शिव...** है। वह शंकर है। पूर्णानन्द का नाथ आत्मा परम शिव है। वह शक्तिरूप है। आहा! **और प्रगटरूप से भगवान अर्हंत...** वह प्रगट परमात्मा है। **मुक्ति को प्राप्त हुए सिद्धात्मा...** वह परमात्मा **परमब्रह्म...** है। पर्याय में परमब्रह्म हुए। **परम विष्णु, परम शिव कहे जाते हैं। यह निश्चय से जानो।** आहाहा! समझ में आया? दूसरा कोई परमब्रह्म करनेवाला ईश्वर है, ऐसा नहीं। तू ही स्वयं इतनी शक्तिवान है कि परमब्रह्म तू, विष्णु तू, शिव तू, ब्रह्मा तू है। आहाहा! समझ में आया? और सिद्ध हो तब पर्याय में परमब्रह्म और शिव हो गया। अन्दर शक्ति है, उसकी व्यक्ति होती है तो परमात्मा होता है। उसका साधन तो अन्दर किया। अपने स्वरूप में अन्दर आनन्द में एकाग्रता होना, वह साधन है। उससे मुक्ति की पर्याय प्राप्त होती है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, भाद्र कृष्ण २, शुक्रवार
दिनांक-१०-०९-१९७६, गाथा-१०९ से १११, प्रवचन-८६

परमात्मप्रकाश, १०९ गाथा। यहाँ आया, कि यह आत्मा है, वह शक्तिरूप से परमात्मा है। प्रत्येक आत्मा। और व्यक्तिरूप से सिद्ध परमात्मा है। प्रगट दशा हो गयी। प्रत्येक आत्मा शक्तिरूप शिव है, विष्णु है और जो कहो, वह है। और प्रगटरूप सिद्ध परमात्मा हुए, उन्हें भी शिव, ब्रह्मा, विष्णु, ऐसा कहा जाता है।

साराँश यह है कि जिस लोक के शिखर पर अनन्त सिद्ध विराज रहे हैं, वही लोक का शिखर परमधाम ब्रह्मलोक... है। वह ब्रह्मलोक है, दूसरा कोई ब्रह्मलोक बैकुंठ कहते हैं, वह है नहीं। **विष्णुलोक...** है। वही विष्णुलोक है। क्योंकि सबको जाननेवाला भगवान सर्वव्यापकरूप से जानता है, इस अपेक्षा से विष्णु है। **वही शिवलोक है...** निरुपद्रव तत्त्व प्राप्त है। वही सिद्ध भगवान शिवलोक और शिवधाम है। **अन्य कोई भी ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोक नहीं है, ये सब निर्वाणक्षेत्र के नाम हैं,...** आहाहा! मुक्ति का धाम शिवलोक आदि निर्वाणक्षेत्र के नाम हैं। **ब्रह्मा, विष्णु, शिव ये सब सिद्धपरमेष्ठी के नाम हैं।**

भगवान तो व्यक्तिरूप परमात्मा हैं,... सिद्ध भगवान तो व्यक्त अर्थात् प्रगटरूप परमात्मा हैं। **तथा यह जीव शक्तिरूप परमात्मा है।** आहाहा! यह आत्मा शक्तिरूप परमात्मा ही है। समझ में आया? **इसमें सन्देह नहीं है। जितने भगवान के नाम हैं, उतने सब शक्तिरूप इस जीव के नाम हैं। यह जीव ही शुद्धनयकर भगवान है।** आहाहा! कैसे जँचे? जिसमें पुण्य परिणाम जो दया, दान, व्रतादि भी है नहीं, ऐसा शक्तिरूप भगवान परमात्मा, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। सम्यग्दृष्टि का ध्येय शक्तिरूप परमात्मा है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि धर्मी को... यह तो आ गया न? पुण्य की भी इच्छा नहीं। कामना नहीं। गाथा १०७ में आया था परन्तु यह समयसार की २१० गाथा की व्याख्या है। २१०। धर्मी को व्यवहाररत्नत्रय के, दया, दान, व्रत के परिणाम का परिग्रह नहीं होता। उसे परिग्रह नहीं, वे मेरे, ऐसा परिग्रह नहीं और उसकी भावना—इच्छा नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध पूर्णानन्द, वह उसका परिग्रह है। अपना स्वरूप। आहाहा!

और उसकी भावना, उसका नाम मोक्षमार्ग है। पुण्य की भावना भी नहीं। व्यवहारधर्म। समझ में आया? आहाहा! व्रत और तप और भक्ति और पूजा का भाव, उसकी भी धर्मी को भावना नहीं। धर्मी को उसका परिग्रह नहीं, वह चीज़ मेरी, ऐसा परिग्रह नहीं और उसकी भावना नहीं। उसकी भावना हो तो आस्रव की भावना हुई। समझ में आया? बीच में आता है, परन्तु भावना नहीं। आहाहा! ऐसे आत्मा को परमात्मा कहते हैं।

यह जीव ही... अन्तिम शब्द है। **शुद्धनयकर भगवान है।** आहाहा! पूर्ण पवित्र परमात्मस्वरूप, वह आत्मा है, वह भगवान है। यह १०९ गाथा हुई।

गाथा - ११०

अथ –

११०) मुणि–वर–विंदहँ हरि–हरहं जो मणि णिवसइ देउ।
परहँ जि परतरु णाणमउ सो वुच्चइ पर–लोउ।।११०।।

मुनिवरवृन्दानां हरिहराणां यः मनसि निवसति देवः।
परस्माद् अपि परतरः ज्ञानमयः स उच्यते परलोकः।।११०।।

मुणिवरविंदहं हरिहरहं मुनिवरवृन्दानां हरिहराणां च जो मणि णिवसइ देउ योऽसौ मनसि निवसति देवः आराध्यः। पुनरपि किंविशिष्टः। परहं जि परतरु णाणमउ परस्मादुत्कृष्टादपि अथवा परहं जि बहुवचनं परेभ्योऽपि सकाशादतिशयेन परः परतरः। पुनरपि कथंभूतः। ज्ञानमयः केवलज्ञानेन निर्वृत्तः सो वुच्चइ परलोउ स एवंगुणविशिष्टः शुद्धात्मा परलोक इत्युच्यते इति। पर उत्कृष्टो वीतरागचिदानन्दैकस्वभाव आत्मा तस्य लोकोऽवलोकनं निर्विकल्पसमाधौ वानुभवनमिति परलोकशब्दस्यार्थः, अथवा लोक्यन्ते दृश्यन्ते जीवादिपदार्था यस्मिन् परमात्म–स्वरूपे यस्य केवलज्ञानेन वा स भवति लोकः परश्चासौ लोकश्च परलोकः व्यवहारेण पुनः स्वर्गापवर्गलक्षणः परलोको भण्यते। अत्र योऽसौ परलोकशब्दवाच्यः परमात्मा स एवोपादेय इति तात्पर्यार्थः।।११०।।

आगे ऐसा कहते हैं कि भगवान्का ही नाम परलोक है –

जो निवास करता मुनि मन में हरि हर सुरपति के मन में।
उत्तम से भी उत्तम है वह ज्ञानमयी परलोक लखो।।११०।।

अन्वयार्थ :– [यः] जो आत्मदेव [मुनिवरवृन्दानां हरिहराणां] मुनिश्वरों के समूह के तथा इन्द्र वा वासुदेव रुद्रों के [मनसि] चित्त में [निवसति] बस रहा है, [सः] वह [परस्माद् अपि परतरः] उत्कृष्ट से भी उत्कृष्ट [ज्ञानमयः] ज्ञानमयी [परलोकः] परलोक [उच्यते] कहा जाता है।

भावार्थ :– परलोक शब्दका अर्थ ऐसा है कि पर अर्थात् उत्कृष्ट वीतराग चिदानंद शुद्ध स्वभाव आत्मा उसका लोक अर्थात् अवलोकन निर्विकल्पसमाधि में अनुभवना वह परलोक है। अथवा जिसके परमात्मस्वरूप में या केवलज्ञान में जीवादि पदार्थ देखे जावें, इसलिये उस परमात्मा का नाम परलोक है। अथवा व्यवहारनयकर

स्वर्ग-मोक्ष को परलोक कहते हैं। स्वर्ग और मोक्ष का कारण भगवान का धर्म है, इसलिये केवली भगवान् को परलोक कहते हैं। परमात्मा के समान अपना निज आत्मा है, वही परलोक है, वही उपादेय है।।११०।।

गाथा-११० पर प्रवचन

आगे ऐसा कहते हैं कि भगवान का ही नाम परलोक है— परलोक। परलोक— भगवान, वही परलोक है। आहाहा!

११०) मुणि-वर विंदहँ हरि-हरहं जो मणि णिवसइ देउ।
परहँ जि परतरु णाणमउ सो वुच्चइ पर-लोउ॥११०॥

अन्वयार्थ — जो आत्मदेव... यह भगवान आत्मदेव। **मुनिश्वरों के समूह के...** मुनिश्वरों के समूह के मन में यह भगवान बसता है। आहाहा! जिसकी ज्ञान की दशा में पूर्णानन्द प्रभु बसता है। पुण्य, राग और निमित्त नहीं बसते। आहाहा! ऐसा कहते हैं। भारी सूक्ष्म मार्ग, भाई! समझ में आया? मुनिश्वरों के समूह में **तथा इन्द्र वा वासुदेव रुद्रों के...** उनकी ज्ञान की पर्याय में भगवान पूर्णानन्द बसता है। मन अर्थात् ज्ञान की पर्याय। उस ज्ञान की वर्तमान पर्याय में पूर्ण भगवान बसता है। भगवान का वास अपनी ज्ञान की पर्याय में है। आहाहा! समझ में आया? **रुद्रों के चित्त में बस रहा है, वह उत्कृष्ट से भी उत्कृष्ट ज्ञानमयी परलोक कहा जाता है।** वह परलोक है। आहाहा! राग के दया, दान के विकल्प से भी पर—भिन्न वह परलोक है। राग से भिन्न स्व को अवलोकन करना, उसका नाम परलोक है। आहाहा! पुण्य-पाप के विकल्प से, निमित्त से भिन्न भगवान जो आत्मा, पूर्णानन्दस्वरूप, उसे अवलोकन करना, वह परलोक है। पर को, परप्रधान को अवलोकन करना, वह परलोक है। अरे! समझ में आया? वह परलोक यह है। आहाहा!

विकल्प से पार, पर। पार और पर। अवलोकन करनेयोग्य है, तो वह परमात्मा है, उसे परलोक कहते हैं। पर-अवलोकन। लोक्यन्ते इति लोकः। आहाहा! राग से, निमित्त से भिन्न पूर्णानन्द परमात्मा अपना स्वरूप, वह अवलोकनयोग्य है और वह पर

से (भिन्नता का) अवलोकन, उसका नाम परलोक है। कहो, समझ में आया? ऐसी बात है। **परलोक कहा जाता है।**

भावार्थः—परलोक शब्द का अर्थ ऐसा है कि पर अर्थात् उत्कृष्ट... उत्कृष्ट—ऊँचे में ऊँचा। **वीतराग चिदानन्द...** आहाहा! भगवान आत्मा का स्वभाव वीतराग है और चिदानन्द-ज्ञानानन्द है। चिद् अर्थात् ज्ञानानन्द है। वीतराग में त्रिकाल चारित्र कहा है और ज्ञान और आनन्द। ज्ञान और आनन्द-सुख लिया। और **शुद्ध स्वभाव...** अन्तर भगवान के इतने विशेषण दिये। वीतराग उत्कृष्ट चिदानन्द शुद्ध स्वभाव आत्मा, **उसका लोक...** आत्मा उसका लोक। **अर्थात् अवलोकन...** है न? आहाहा! सूक्ष्म बात बहुत, भगवान! ऐसा जो वीतराग चिदानन्द शुद्ध स्वभाव त्रिकाल, वह पर और लोक (अर्थात्) अवलोकन। किससे? **निर्विकल्पसमाधि में अनुभवना...** आहाहा! ऐसा भगवान परम वीतराग चिदानन्द शुद्ध स्वभाव जो अपना पूर्ण ध्रुव है, वह पर। और लोक—अवलोकन करना। उसका अवलोकन करना। अर्थात् **निर्विकल्पसमाधि में अनुभवना...** यह अवलोकन। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! मार्ग, बापू!

रागरहित शान्ति वीतरागी शान्ति द्वारा वह पर अर्थात् सर्वोत्कृष्ट चिदानन्द वीतराग, उसका निर्विकल्प समाधि में अवलोकन करना—देखना, उसका नाम परलोक है। आहाहा! व्याख्या अलग है, भाई! यह तो। आहाहा! समझ में आया? परलोक—दो शब्द। पर अर्थात् उत्कृष्ट वीतराग चिदानन्द शुद्ध स्वभाव। यह पर की व्याख्या हुई। अब लोक। उसे लोक्यन्ते—अवलोकन। अवलोकन का अर्थ कि रागरहित वीतरागी शान्ति द्वारा उसका अनुभव करना, उसे अवलोकन कहा जाता है। उसे परलोक कहते हैं। ऐसी व्याख्या कभी सुनी नहीं होगी।

यह तो परमात्मप्रकाश है। कहते हैं, तू तो परमात्मस्वरूप ही है। अब प्रकाश का अर्थ वह परमात्मस्वरूप जो त्रिकाल है, उसे पर कहते हैं और प्रकाश का अर्थ, उसका अवलोकन करना। अवलोकन का अर्थ रागरहित वीतरागी समाधि द्वारा उस परम उत्कृष्ट को अनुभव करना, इसका नाम परलोक कहते हैं। शब्द तो समझ में आये ऐसे हैं। सूक्ष्म भाषा! आहाहा! समझ में आया? तेरा परलोक तुझमें है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : यथार्थ अवलोकन निर्विकल्प समाधि में होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ ही दिखता है, उसके बिना तो अवलोकन होता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अकेले ज्ञान में जानना... जानना... जानना... इसका अर्थ यह है। समझ में आया?

भगवान पर (अर्थात्) सर्वोत्कृष्ट वीतराग चिदानन्द शुद्ध स्वभाव नित्यानन्द प्रभु, उसे लोक (अवलोकना)। वह तो पर कहा। अब उसे लोक—लोक्यंते—उसे लोक्यंते—अवलोक्यंते। अवलोकयंते अर्थात् रागरहित निर्विकल्प शान्ति द्वारा अनुभव करना, इसका नाम परलोक कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? कितनों तो कभी सुना न हो जिन्दगी में। आहाहा! कहो, सेठ! यह परलोक।

मुमुक्षु : करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करना, यह कहते हैं। यह परलोक है, उसे करना। आहाहा!

भगवान! पहले कहा न? पर अर्थात् उत्कृष्ट। क्या उत्कृष्ट? वीतराग चिदानन्द। अरागी स्वभाव भगवान ज्ञानानन्द शुद्ध स्वभाव, वह पर। और लोक—लोकयंते—अवलोकयंते। अवलोकयंते अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प को भी छोड़कर अन्दर निर्विकल्प द्वारा आत्मा को अनुभव करना, उसे अवलोकन—लोकयंते कहा जाता है। किसे? पर को। पर कौन? वीतराग शुद्ध चिदानन्द स्वभाव को। समझ में आया? ऐ... गिरधरभाई! बाप-दादा ने कभी ऐसा सुना न हो। नागरभाई और... वे तो स्थानकवासी थे न। यह तो दिगम्बर हो, उसने भी सुना नहीं, ठिकाना नहीं वहाँ (दूसरे ने तो कहाँ से सुना हो?) आहाहा! कहो, शिवलालभाई! इनके पिता तब कहते थे। (संवत्) २०१० के वर्ष में। वीरचन्दभाई! महाराज! देव-गुरु-शास्त्र तो शुद्ध है। तो शुद्ध, वह पर कहलाये? म्युनिसीपलटी के हॉल में व्याख्यान चलता था न? (संवत्) २०१० के वर्ष। २२ वर्ष हुए। तब मन्दिर नहीं था। अब दिगम्बर मन्दिर हुआ है। अब तो बड़ा मन्दिर है। बोटाद। यह तो २०१० के वर्ष की बात है। बाद में मन्दिर हुआ न? किस वर्ष हुआ? अब तो मन्दिर हुआ, विशाल प्रतिमा है, विशाल हॉल है। तुम्हारे २०१० में हुआ। परन्तु म्युनिसिपलटी में व्याख्यान चलता था। तब तो हॉल नहीं था न! हॉल बाद में बनाया। मन्दिर हुआ। यह सच्ची बात।

देव—सिद्ध परमात्मा, अरिहन्त परमात्मा, गुरु निर्ग्रन्थ मुनि वीतरागी, वे आत्मा

से पर कहलाये? वे तो अपने हैं। अरे! पर है, सुन तो सही। समझ में आया? और वास्तव में पर तो तेरी चीज़ है। प्रधान पर—उत्कृष्ट वीतराग चिदानन्दमूर्ति प्रभु... आहाहा! चैतन्यप्रतिमा वीतरागमूर्ति प्रभु चैतन्यप्रतिमा वीतराग चिदानन्द उत्कृष्ट शुद्ध स्वभाव, वह पर। उसे लोक—लोकयंते—अवलोकयंते—निर्विकल्प स्वभाव द्वारा अनुभव करने से, उसे लोक कहा जाता है। आहाहा! कहो, ऐसी बात है। पोपटभाई! तुम्हारे ढुंढिया में तो कभी सुनने को मिला न हो। नहीं था। बात सच्ची। आहाहा!

प्रभु! तू कहाँ है? कहते हैं कि तू कौन है? मैं विकल्प से पार हूँ। व्यवहार रत्नत्रय है, उससे पार—भिन्न हूँ। भिन्न कैसा हूँ? उत्कृष्ट वीतराग चिदानन्द शुद्ध स्वभाव मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया? यह तो है, परन्तु उसे जाना किसने? उसे जाना किसने कि जिससे उसे परलोक कहें? कि जिसने रागरहित निर्विकल्प अरागी शान्ति द्वारा... आहाहा! समाधि कहा है न? समाधि का अर्थ शान्ति है। वे बाबा समाधि चढ़ावे, वह यहाँ नहीं। वे लोग कहे न? बाबा समाधि, वह तो अज्ञानी। आहाहा! लोगस्स में नहीं आता? 'समाहिवरमुत्तमं दिंतु'। आहाहा! उन लोगों को आता है परन्तु उन लोगों को सामायिक के पाठ का परिचय नहीं। आहाहा!

भगवान, वाणी-मन-कर्म-शरीर-कुटुम्ब-परिवार से तो भिन्न है, कर्म से तो भिन्न भगवान है, परन्तु व्यवहारधर्म का जो विकल्प है, उससे भी भिन्न—पृथक् परमात्मा है। शुद्धचैतन्यस्वभाव को यहाँ पर कहा गया है। प्रधान अर्थात् मुख्यता। और उसे लोक—उसे निर्विकल्प शान्ति द्वारा अनुभव करना, उसका नाम पर को लोकयंते—अवलोकन किया, देखा, अनुभव किया, उसका नाम परलोक कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि यहाँ से मरकर परलोक में जाना है। कौन सा परलोक? वह तो स्वर्ग और वह। यह कहेंगे। स्वर्ग और मोक्ष, वह परलोक है परन्तु उसे कहनेवाले तो भगवान सर्वज्ञ हैं। सर्वज्ञ का धर्म। तो सर्वज्ञ का धर्म, वह मोक्ष का मार्ग प्रगट हो, उसमें राग बाकी रहे तो स्वर्ग मिले। तो वह भी भगवान के धर्म से ही मिलता है। समझ में आया? आहा! यह बाद में अन्त में कहेंगे। स्वर्ग और मोक्ष को भी परलोक कहते हैं। और उस स्वर्ग और मोक्ष को समझानेवाले सर्वज्ञ भगवान हैं। तो उन सर्वज्ञ भगवान का जो धर्म है, वह पर अर्थात् उत्कृष्ट आत्मा को जाननेवाली निर्विकल्प

समाधि, वह धर्म है। उस धर्म से मुक्ति होती है और उस धर्म में थोड़ा राग बाकी रह जाये, उससे स्वर्ग मिलता है। समझ में आया?

यह प्रश्न नहीं किया था? ॐकार का। कल, परसों किसी ने प्रश्न किया था। '**कामदंमोक्षदं चैव ॐकाराय नमोनमः**' इसमें '**कामदं**' है न?

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमोनमः॥

प्रश्न हुआ था। दो-तीन दिन पहले। प्रश्न हुआ था। यह क्या? यही कहते हैं, '**कामदंमोक्षदं**' काम के दम—देनेवाले और मोक्ष के देनेवाले। '**कामदंमोक्षदं**'। इसका अर्थ क्या? आहाहा! कि भगवान परमानन्दस्वरूप जो यह उत्कृष्ट कहा, उसके धर्म को कहनेवाले तो भगवान हैं। तेरी चीज़ ऐसी है और और उसे तू निर्विकल्प समाधि द्वारा जान। तो वह निर्विकल्प धर्म है, और उसका आश्रय आत्मा वह त्रिकाली वस्तु है। यह भगवान ने कहा है। और उस निर्विकल्प समाधि से मुक्ति होती है और पूर्ण वीतराग न हो और राग बाकी रह जाये, बीच में राग तो आता है, व्यवहारधर्म, उस राग का फल स्वर्ग है। वह '**कामदं**' है। '**कामदं**' काम का देनेवाला। '**मोक्षदं**' मोक्ष का देनेवाला। आहाहा! लोग अर्थ भी नहीं समझते, ऐसे के ऐसे पहाड़े बोल जाते हैं। शब्द क्या है? उसका अर्थ क्या है? भावार्थ क्या है? पहाड़े रट जाये, बस। गडिया को तुम्हारे क्या कहते हैं? पहाड़ा कहते हैं? पहाड़ा। आहाहा! देखो! है?

निर्विकल्पसमाधि में अनुभवना... आहाहा! वह परलोक है। एक शब्द हुआ। **अथवा जिसके परमात्मस्वरूप में या केवलज्ञान में जीवादि पदार्थ देखे जावें,... जीवादि पदार्थ देखे जावें, इसलिए उस परमात्मा का नाम परलोक है।** आहाहा! समझ में आया? **परमात्मस्वरूप में केवलज्ञान में जीवादि पदार्थ देखे जावें,...** परपदार्थ देखे जायें, इसलिए परलोक आत्मा को कहा जाता है। आहाहा! दूसरा अर्थ किया। अब तीसरा अर्थ। क्या कहा यह? पहले तो यह कहा कि सर्वोत्कृष्ट चिदानन्द वीतराग शुद्धात्मा को निर्विकल्प समाधि से अवलोकन—अनुभवना, इसलिए उसे हम परलोक कहते हैं। दूसरा, जो केवलज्ञान और केवलदर्शन हुए, उसमें नौ पदार्थ जो भिन्न चीज़ है, वह उसमें ज्ञात होते हैं। इसलिए भी उसे परलोक कहा जाता है।

तीसरा (अर्थ)। **अथवा व्यवहारनयकर स्वर्ग-मोक्ष को परलोक कहते हैं।** स्वर्ग और मोक्ष। स्वर्ग और मोक्ष का कारण भगवान का धर्म है। आहाहा! धर्म बिना स्वर्ग में जाये, वह तो अनन्त लोग गये, वह नहीं। ऐसा कहते हैं। परन्तु जिसने भगवान आत्मा का, शुद्ध चिदानन्द का अनुभव किया, धर्म का (अनुभव किया) और उसमें जो राग बाकी रहता है, वह स्वर्ग में जाता है तो उसे परलोक कहा जाता है। आहाहा! मोक्ष भी मिला, वह भगवान का धर्म। जो कहते हैं, वह आत्मा के आनन्द का धर्म। आहाहा! ऐसी गजब बातें। लोगों को कुद बाहर का करना हो तो ठीक पड़े। परन्तु उसमें बाहर का करने का है ही नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय की वांछा भी समकिती को नहीं होती। क्योंकि वह परिग्रह है। व्यवहार राग है, वह परिग्रह है। अपना मानना, वह तो परिग्रह है, मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम और शास्त्र का ज्ञान-शास्त्रज्ञान, उसकी पकड़ वह परिग्रह है। समझ में आया? क्योंकि वह तो विकल्प है, राग है। राग को अपना माने, वह परिग्रह हो गया। आहाहा! ज्ञानी को परिग्रह और पर की वांछा, यह दोनों नहीं हैं। यह आया न? भाई! '**अपरिग्गहो अणिच्छो**' समयसार में २१० गाथा। '**अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी**' आहाहा! शुभराग है, वह मेरा है—ऐसा ज्ञानी को परिग्रह नहीं है। पैसा-फैसा-धूल तो कहीं रह गयी। ऐ... सेठ! पैसा-धूल तुम्हारे कहीं रह गये।

यहाँ तो अन्दर में जो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का भाव, वह राग है। नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, वह भी राग है। शास्त्र का-पर का ज्ञान है न, वह भी राग है। और पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति का भाव है न? व्यवहार, वह राग है। तो धर्मी को उस राग का परिग्रह नहीं है। वह राग मेरा है, ऐसा नहीं। मेरा माने तो मिथ्यात्व का परिग्रह होता है। आहाहा! समझ में आया? अभ्यन्तर परिग्रह कहा न? चौदह अभ्यन्तर परिग्रह है और बाह्य दस परिग्रह है। चौबीस प्रकार के परिग्रह हैं। अभ्यन्तर में मिथ्यात्व परिग्रह है। पहला नम्बर इसका है। सूक्ष्म बात, बापू! राग का विकल्प, वह मेरा, यह मिथ्यात्व परिग्रह है। आहाहा! धर्मी को परिग्रह नहीं और इच्छा नहीं। आहाहा! भावना नहीं। भाव आता है, परन्तु भाव की भावना नहीं कि यह होओ और होओ और बारम्बार आओ। यह तो आस्रव है। समझ में आया? आता है। उसके काल में निर्बलता से शुभभाव आता है परन्तु उसकी भावना नहीं कि होओ, यह बारम्बार रहो। ऐसी भावना

सम्यग्दृष्टि को नहीं होती। आहाहा! शुभभाव की भावना हो कि बारम्बार रहना, तो वह तो मिथ्यादृष्टि हुआ, वह तो आस्रव की भावना करनेवाला हुआ। भगवान आनन्द का नाथ, उसकी एकाग्रता की भावना तो छोड़ दी। समझ में आया? भावना तो अपने परमानन्दस्वरूप में एकाग्र होना, वह भावना है। उस भावना को छोड़कर राग में एकाग्र हो कि यह मेरी चीज़ है, इससे मुझे लाभ होगा, वह तो मिथ्यात्व परिग्रह है। आहाहा! वह परिग्रह समकिती को नहीं होता। आहाहा! बहुत बड़ी शर्तें। शर्त... शर्त कहते हैं न? शर्त... शर्त... शर्त... ऐसा करना। शर्त... शर्त। शर्त अर्थात् तुम्हारी दूसरी भाषा क्या है? शर्त रखना कि यह ऐसा करना। इतनी शर्त है, भगवान कहते हैं कि राग को अपना माने, इस शर्त में मिथ्यात्व है। और सम्यग्दृष्टि राग को अपना मानता नहीं और राग की भावना करता नहीं, यह शर्त है। आहाहा!

मुमुक्षु : लोक में मानना कैसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : लोक में पूरी दुनिया अज्ञानी, ऐसा मानती है। वह यहाँ कहते हैं। आहाहा! लोक मचाये शोर। लोक को कहाँ भान है। यहाँ तो भगवान वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के धर्म की बात चलती है। समझ में आया? यह कहते हैं, आहाहा!

परलोक के तीन बोल लिये। **एक**—पर अर्थात् सर्वोत्कृष्ट चिदानन्द वीतराग आत्मा, उसका अवलोकन निर्विकल्प समाधि द्वारा, वह परलोक। **दूसरा**—परलोक, वह केवलज्ञान और केवलदर्शन में नौ तत्त्व पर जो वस्तु है, वह ज्ञात होती है, इस अपेक्षा से परलोक। परप्रकाशक हुआ न? **तीसरा**—स्वर्ग और मोक्ष परलोक। स्वर्ग और मोक्ष को कहनेवाला तो भगवान का धर्म है। अज्ञानी को वास्तविक स्वर्ग, मोक्ष की बात की खबर नहीं। सर्वज्ञ के अतिरिक्त तीन लोक के नाथ परमात्मा जिनेश्वरदेव ने जो स्वर्ग और मोक्ष की बात की, ऐसी दूसरे तीन काल में कहनेवाले नहीं हैं। और वह स्वर्ग और मोक्ष का जो मार्ग धर्म अन्दर है, वह धर्म सर्वज्ञ ने कहा। तीन लोक का नाथ तू है, उसकी प्रतीति-अनुभव कर, वह धर्म। और भगवान ने कहा कि जब उसमें पूर्णता न हो, तो राग बाकी रहेगा। राग आयेगा। भावना भले न हो, परन्तु राग आयेगा सही। उस राग का फल स्वर्ग है। अथवा चक्रवर्ती पद... समझ में आया? यह तीर्थंकर पद, वह सब राग के फल हैं। आहाहा! वासुदेव, बलदेव, वे सब पुण्य के फल हैं। परन्तु यह समकितसहित

की बात है। समकित के अतिरिक्त कोई तीर्थंकर नहीं हो सकता। सम्यग्दर्शन बिना बलदेव, वासुदेव भी नहीं हो सकता। आहाहा! चक्रवर्ती भी, पहले सम्यग्दृष्टि हुआ हो, फिर राग की भावना आदि हुई तो वह चक्रवर्ती होता है। समकिती भी चक्रवर्ती होता है, परन्तु राग की भावना नहीं। राग आया और राग का निदान करे, वह तो मिथ्यादृष्टि चक्रवर्ती होता है। परन्तु पहले सम्यग्दर्शन हुआ था। सम्यग्दर्शन बिना अकेले मिथ्यादृष्टि में चक्रवर्ती पद मिले, ऐसा तीन काल में नहीं होता। सम्यग्दर्शन बिना तीर्थंकर पद मिले, ऐसा तीन काल में नहीं होता। इसी प्रकार बलदेव, वासुदेव और इन्द्र के जो पद हैं, वे भी सम्यग्दर्शन बिना मिले, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह कहते हैं।

व्यवहारनयकर स्वर्ग-मोक्ष को परलोक कहते हैं। स्वर्ग और मोक्ष का कारण भगवान का धर्म है,... आहाहा! ऐसा आता है, मोक्ष अधिकार में आता है न? अष्टपाहुड में। मिथ्यादृष्टि तो स्वर्ग पाता है, परन्तु धर्मसहित पाता है, ऐसी गाथा है। आत्मज्ञान के भानसहित स्वर्गादि पाता है, यह बराबर है। उसका निश्चय और व्यवहार बराबर है। यह गाथा है। आचार्यों ने तो बहुत बात की है। ओहोहो! अखूट भण्डार! शास्त्र में अखूट भण्डार (भर दिया है)। ओहोहो! इतने शास्त्र कहे परन्तु बहुत चीज रह गयी। नहीं तो बहुत शास्त्र तो विच्छेद हो गये। आहाहा! स्वर्ग और मोक्ष का कारण तो भगवान का धर्म है। **इसलिए केवली भगवान को परलोक कहते हैं।** देखो! ठीक! **परमात्मा के समान अपना निज आत्मा है...** अब यहाँ आये वापस। आहाहा! **परमात्मा के समान अपना निज आत्मा है, वही परलोक है, वही उपादेय है।** वह आदरणीय है। व्यवहाररत्नत्रय विकल्प आदरणीय नहीं। क्या कहा? योगफल / तात्पर्य तो यह है। आहा! बारात घूमते-घूमते पूरे गाँव में घूमे परन्तु मण्डप में आवे बारात। मण्डप हो वहाँ बारात आती है। जान समझे? बारात। बारात कहते हैं। बारात भले गाँव में घूमे परन्तु घूमकर आवे तो मण्डप में न! समझ में आया? इसी प्रकार चाहे जो बात करे, परन्तु आवे अन्दर आत्मा की बात। आहाहा! अपना निज आत्मा, वही परलोक है। आहाहा! और वही आदरणीय है। उपादेय का अर्थ यह है। पूर्णानन्द का नाथ शुद्ध चैतन्य भगवान, वह सत्कार करनेयोग्य है, आदर करनेयोग्य है, ग्रहण करनेयोग्य है, उपादेय है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में उसका ध्येय बनाकर आदरणीय मानना। आहाहा! समझ में आया? ११० हुई। (अब) १११।

गाथा - १११

१११) सो पर वुच्चइ लोउ परु जसु मइ तित्थु वसेइ।
जहिँ मइ तहिँ गइ जीवह जि णियमेँ जेण हवेइ।।१११।।

सः परः उच्यते लोकः परः यस्य मतिः तत्र वसति।
यत्र मतिः तत्र गतिः जीवस्य एव नियमेन येन भवति।।१११।।

सो पर वुच्चइ लोउ परु स परः नियमेनोच्यते लोको जनः। कथंभूतो भण्यते। पर उत्कृष्टः। स कः। जसु मइ तित्थु वसेइ यस्य भव्यजनस्य मतिर्मनश्चित्तं तत्र निजपरमात्मस्वरूपे वसति विषयकषायविकल्पजालत्यागेन स्वसंवेदनसंवित्तिस्वरूपेण स्थिरीभवतीति। यस्य परमात्मतत्त्वे मतिस्तिष्ठति स कस्मात्परो भवतीति चेत् जहिं मइ तहिं जीवहं जि णियमें जेण हवेइ येन कारणेन यत्र स्वशुद्धात्मस्वरूपे मतिस्तत्रैव गतिः। कस्यैव। जीव-जीवस्यैव अथवा बहुवचनपक्षे जीवानामेव निश्चयेन भवतीति। अयमत्र भावार्थः। यद्यार्तरौद्राधीनतया स्वशुद्धात्मभावनाच्युतो भूत्वा परभावेन परिणमति तदा दीर्घसंसारी भवति, यदि पुनर्निश्चय-रत्नत्रयात्मके परमात्मतत्त्वे भावनां करोति तर्हि निर्वाणं प्राप्नोति इति ज्ञात्वा सर्वरागादि-विकल्पत्यागेन तत्रैव भावनां कर्तव्येति।।१११।।

आगे ऐसा कहते हैं, जिसका मन निज आत्मा में बस रहा है, वही ज्ञानी जीव परलोक है -

जिसकी बुद्धि शुद्धात्मा में वसे वही निश्चय परलोक।
क्योंकि जीव की जिसमें मति हो निश्चित उसमें ही गति हो।।१११।।

अन्वयार्थ :- [यस्य मतिः] जिस भव्य जीव की बुद्धि [तत्र] उस निज आत्मस्वरूप में [विसति] बस रही है, अर्थात् विषय-कषाय-विकल्प-जाल के त्याग से स्वसंवेदन-ज्ञानस्वरूपकर स्थिर हो रही है। [स] वह पुरुष [परः] निश्चयनयकर [परः लोकः] उत्कृष्ट जन [उच्यते] कहा जाता है। अर्थात् जिसकी बुद्धि निजस्वरूप में ठहर रही है, वह उत्तम जन है, [येन] क्योंकि [यत्र मतिः] जैसी बुद्धि होती है, [तत्र] वैसी [एव] ही [जीवस्य] जीव की [गतिः] गति [नियमेन] निश्चयनयकर [भवति] होती है, ऐसा जिनवरदेव ने कहा है। अर्थात् शुद्धात्मस्वरूप में जिस जीव की बुद्धि होवे, उसको वैसी ही गति होती

है, जिन जीवों का मन निज-वस्तु में है, उनको निज-पद की प्राप्ति होती है, इसमें संदेह नहीं है।

भावार्थ :- जो आर्तध्यान रौद्रध्यान की आधीनता से अपने शुद्धात्मा की भावना से रहित हुआ रागादिक परभावोंस्वरूप परिणमन करता है, तो वह दीर्घसंसारी होता है, और जो निश्चयरत्नत्रयरूप परमात्मतत्त्व में भावना करता है, तो वह मोक्ष पाता है। ऐसा जानकर सब रागादि विकल्पों को त्यागकर उस परमात्मतत्त्व में ही भावना करनी चाहिये।।१११।।

गाथा-१११ पर प्रवचन

आगे ऐसा कहते हैं, जिसका मन निज आत्मा में बस रहा है, वही ज्ञानी जीव परलोक है—लो। आहाहा! जिसकी ज्ञान की पर्याय अन्दर आत्मा में बसती है, वही परलोक है। क्योंकि आत्मा को परलोक कहा न? आनन्दकन्द प्रभु। निश्चय आत्मा ही उपादेय, वह परलोक है। जिसकी ज्ञान की पर्याय में आत्मा बसता है अथवा ज्ञान की पर्याय अन्तर में झुक गयी है, उसका नाम परमात्मा कहते हैं। **वही ज्ञानी जीव परलोक है**— लो। आहाहा! १११।

१११) सो पर वुच्चइ लोउ परु जसु मइ तित्थु वसेइ।
जहिँ मइ तहिँ गइ जीवह जि णियमेँ जेण हवेइ॥१११॥

आहाहा! भाषा बहुत सरस। गाथा एक के बाद एक... ओहो!

अन्वयार्थः—'यस्य मतिः' जिस भव्य जीव की बुद्धि... लोक में नहीं कहते? जैसी मति वैसी गति, ऐसा कहते हैं या नहीं? जैसी मति वैसी गति। आहाहा! **भव्य जीव की बुद्धि उस निज आत्मस्वरूप में बस रही है,...** मति ऐसी है। आहाहा! मति में भगवान पूर्णानन्द का नाथ समकिती की मति में बसता है। तो (जैसी) मति, वैसी गति। है? आहाहा! **विषय-कषाय-विकल्प-जाल के त्याग से...** आहाहा! विषय, कषाय अर्थात् विकल्प जाल, दया, दान, विकल्प आदि सब। उनके त्याग से **स्वसंवेदन-ज्ञानस्वरूपकर...** अपने स्वरूप का, स्व अर्थात् अपने से ग्रहण करके, स्वसंवेदन—स्व

अर्थात् अपना, सं अर्थात् प्रत्यक्ष। स्वसं—स्व—अपना, सं—प्रत्यक्ष वेदन। आहाहा! भगवान आत्मा जो ज्ञानस्वरूप है, उसका अपने से अपने को प्रत्यक्ष करके वेदना करना, उसे स्वसंवेदन कहा जाता है। आहाहा! शास्त्र की भाषा भी (समझ में नहीं आती)। शास्त्र के ज्ञान से वेदन नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। शास्त्र का ज्ञान, वह परचीज़ है। उससे आत्मा को नहीं जाना जा सकता। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि **विषय-कषाय-विकल्प-जाल के त्याग से स्वसंवेदन-ज्ञानस्वरूपकर स्थिर हो रही है।** मति। जिसकी मति अपने ज्ञानस्वरूप में स्वसंवेदन से बसी है। **वह पुरुष निश्चयनयकर उत्कृष्ट जन कहा जाता है।** उसे उत्तम पुरुष कहा जाता है। आहाहा! रामचन्द्रजी को पुरुषोत्तम पुरुष कहते थे न? रामचन्द्रजी को पुरुषोत्तम पुरुष कहते थे। समकिती थे, ज्ञानी थे। पुरुषोत्तम पुरुष। आहाहा! इसी प्रकार जिसकी मति सम्यग्ज्ञान त्रिकाल में बसती है अर्थात् स्वसंवेदन से अपने ज्ञान में भगवान बसता है अथवा भगवान आत्मा में स्वसंवेदन से बसता है, उसे **निश्चयनयकर उत्कृष्ट जन... 'परः लोकः'** अर्थात् उत्कृष्ट जन। आहाहा! उसे उत्कृष्ट जन कहा जाता है। उसे महापुरुष कहा जाता है। आहाहा! वह बड़े पुरुष हैं, ऐसा कहा जाता है। यह दुनिया में पैसा-बैसा, दो-पाँच, दस करोड़, पच्चीस करोड़ हो तो बड़े हैं, (ऐसा कहे)। वे सब भिखारी हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पाँच-पाँच करोड़ हो, उसे बड़ा कहते हैं न? भगवानदास सेठ बड़े हैं, शोभालाल बडे हैं, ऐसा कहे, वे सब भिखारी हैं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : मुम्बई में बड़े-बड़े हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका हेतु है। समझ में आया? ऐसा कि घाटकोपर (में) जन्मजयन्ती करनी है तो... ऐसा कहते हैं। वहाँ सुननेवाले बहुत हैं। स्थानकवासी बहुत आते हैं। घाटकोपर में चार-चार हजार महिलायें, हों! स्थानकवासी की आबादी बहुत है। पैंतीस हजार जैन की आबादी है। सब घर हैं। स्थानकवासी, श्वेताम्बर। लोगों को मेरे प्रति प्रेम है न। भले सम्प्रदाय छोड़ दिया। यहाँ देश में न आ सके, परन्तु परदेश में दिक्कत नहीं। क्या कहते हैं सुनो तो सही। मार्ग यह है। भगवान के नाम से कहते हैं...

वस्त्र का टुकड़ा नहीं, गहना चढ़ावे न? क्या कहलाता है? चाँदी के बनाकर आँगी रचे। मुकुट बनावे। यहाँ पालीताणा मुकुट है न? बड़ा तीन लाख का मुकुट है। भगवान को चढ़ाते हैं न, वह तीन लाख का मुकुट है। तब तीन लाख का, हों! हम गये तब। (संवत्) १९९५ में पहले गये थे न! १९९५ में अपने गये थे न, तब तो अपने साथ साकरचन्दभाई थे न! वे श्वेताम्बर के वह थे और यहाँ के माननेवाले। एक दिन वहाँ गये थे। महाराज दर्शन करने आये हैं परन्तु मुकुट नहीं। फिर मुकुट चढ़ाया। हमारे मुकुट के दर्शन नहीं करना। भगवान को मुकुट कैसा? आहाहा! वह तो वीतरागीबिम्ब। जैसे परमात्मा हो, वैसे होते हैं। यह निक्षेप है। आहाहा! यह शुभभाव का निमित्त है। शुभभाव करे उसे (निमित्त है)। इससे कहीं शुभभाव होता नहीं। उनके ऊपर तो चिड़िया भी बैठती है। यह चिड़िया। भगवान ऊपर खुल्ले हों तो बैठे। अपने तो यहाँ काँच बन्द कर देते हैं। अन्दर चिड़िया बैठ न जाये। वहाँ तो खुल्ला हो तो चिड़िया बैठे। उसे कहाँ (भान है)? जिसे शुभभाव हो, उसके निमित्त कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? वह भी नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, परलोक अर्थात् निज स्वरूप में स्थिर होना। आहाहा! **जिसकी बुद्धि निजस्वरूप में ठहर रही है, वही उत्तम जन है, क्योंकि जैसी बुद्धि होती है, वैसी ही जीव की गति निश्चयनयकर होती है...** लोग नहीं कहते? जैसी मति, वैसी गति। आहाहा! जिसकी मति में भगवान बसते हैं तो उनकी गति सिद्ध हो गयी। उसे सिद्धगति मिलती है। जिसकी मति में पुण्य बसता है, उसे तो बाहर के स्वर्ग आदि मिलते हैं। वह कहीं आत्मा नहीं है। धर्मी को स्वर्ग मिले परन्तु मति अन्दर आत्मा के ऊपर है। इससे उसे निर्मल परिणति सहित शुभराग रह जाये तो स्वर्ग में जायेगा, एकावतारी होगा। पंचम काल में तो केवलज्ञान है नहीं। तो आत्मा के आनन्द का आराधन करके... कुन्दकुन्दाचार्य आदि एक भव करके मोक्ष में जायेंगे। अभी स्वर्ग में है। कुन्दकुन्दाचार्य स्वर्ग में है। क्योंकि केवलज्ञान नहीं। अपनी मति तो स्वरूप में थी। संसार का किनारा जिन्हें निकट आ गया था। आहाहा! चौरासी के अवतार करते... करते... करते... संसार का किनारा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य को नजदीक आ गया। प्रवचनसार में है। जिसे स्याद्वाद अनन्त ज्ञानस्वरूप प्रगट हुआ है, ऐसे भगवान आत्मा का आराधन करके थोड़ा

विकल्प बाकी रह गया, स्वर्ग में गये। परन्तु आनन्द के भानसहित, अनुभवसहित गये। अज्ञानी स्वर्ग में जाता है, वह मिथ्यादृष्टि अनन्त बार जाता है, वह नहीं। आहाहा! जिसने आत्मा के आनन्द का अनुभव करके, राग बाकी रहा वह स्वर्ग में गया। तो वह विरल प्राणी है, ऐसा कहते हैं। मिथ्यात्व सहित स्वर्ग में जाता है, वह तो अनन्त बार गया। परन्तु आत्मज्ञान और अनुभव सहित स्वर्ग में जाता है, वह विरल प्राणी है। वहाँ से निकलकर केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष में जायेगा। आहाहा! समझ में आया?

श्रेणिक राजा अभी भले नरक में गये हैं परन्तु क्षायिक समकिती हैं। तीर्थंकर गोत्र समय-समय में बाँधते हैं। आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। सम्यग्दर्शन आत्म अनुभव है, चारित्र नहीं, व्रतादि नहीं, छठा गुणस्थान तो भविष्य में आयेगा, आहाहा! मुनि होकर जब तीर्थंकर होंगे तब। वहाँ से निकलकर यहाँ तीर्थंकर होंगे। पहले नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में हैं। ढाई हजार निकल गये। साढ़े इक्यासी (हजार) बाकी हैं। वहाँ से निकलकर यहाँ रानी के गर्भ में तीर्थंकर पद (प्रकृति) तो लेकर आयेंगे, तीन ज्ञानसहित, क्षायिक समकितसहित, तीन ज्ञानसहित माता के गर्भ में आयेंगे। भान है कि हम तो यह हैं। आहाहा! प्रसव हुआ तो इन्द्र, इन्द्राणी भी सेवा करने आये। लो, नरक में से आये तीर्थंकर। जिनके जन्म में इन्द्राणी आयेगी। समझ में आया? धन्य रत्नकूखधारिणी! इन्द्र-इन्द्राणी कहेंगे, हे माता! तीर्थंकर के आत्मा को—रत्न को कूख में धारण किया, धन्य माता तुझे! रत्नकूखधारिणी! आहाहा! भगवान को नमस्कार बाद में करते हैं, पहले तो तुमको नमस्कार करते हैं। समझ में आया? आहाहा! 'पुत्र तुम्हारा स्वामी हमारा, तारणतरण जहाज रे...' इन्द्र माता को कहता है। 'पुत्र तुम्हारा स्वामी हमारा, तारणतरण जहाज रे, माता यत्न करके रखना इसको' देव तो रखते हैं। इन्द्र एक देव रखते हैं। परन्त माता से कहते हैं, माता! 'यत्न करके रखना इसको, तुम पुत्र हम आधार रे...' यह तीर्थंकर होंगे, हमको उपदेश देंगे। यह तुम्हारा पुत्र हमको धर्म का आधार है। आहाहा! यह सब समकित सहित का पुण्य है, यहाँ कहना है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसकी लोगों को कीमत नहीं। और इसके बिना व्रत और तप को ले लिया—चारित्र। धूल भी नहीं। समझ में आया? जिसके पास व्रत और तप किंचित् नहीं थे, असंयमी थे। श्रेणिक। परन्तु

क्षायिक समकिती। अरे! मृत्यु के समय कदाचित् हीरा चूस लिया, इतना राग आ गया, परन्तु उनकी मृत्यु समकितसहित है। आहाहा! समझ में आया? पहले नरक में समकित सहित गये। आहाहा! वहाँ से निकलकर राग बाकी रहा न? तीर्थंकर (प्रकृति) का पुण्यबन्ध हो गया था। आहाहा!

माता के गर्भ में आने से पहले इन्द्र छह महीने पहले माता के पास आयेंगे। माता! तीर्थंकर का जीव आपके गर्भ में आनेवाला है। तो गर्भ साफ करने... आहाहा! बड़ा राजा आवे तो... नरक में से आवे तो भी? परन्तु भगवान है न! आहाहा! समझ में आया? इन्द्राणी आयी। माता का गर्भ साफ... साफ... साफ... समझ में आया? आहाहा! इस भव में केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। आहाहा! निश्चय से प्राप्त करेंगे और इस भव में मोक्ष जायेंगे। अपना आनन्द का आराधन करके मोक्ष प्राप्त करेंगे। कोई व्यवहार क्रिया से मोक्ष प्राप्त करेंगे, ऐसा नहीं है। उसे यहाँ उत्तम जन कहते हैं। लो!

निश्चयनयकर होती है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है अर्थात् शुद्धात्मस्वरूप में जिस जीव की बुद्धि होवे,... आहाहा! जिसकी बुद्धि शुद्धात्मस्वरूप में है, उसकी वैसी गति होगी। शुद्धात्मा की ही उसे प्राप्ति होगी। उसे पूर्णानन्द की प्राप्ति होगी। जैसी मति है, वैसी गति होगी। पाँच-पच्चीस स्त्री हो न? कलश ले चले। एक-दूसरे के साथ बात करती हो। परन्तु उनकी दृष्टि कहाँ होती है? कलश गिर न जाये। बात करे, हँसे। कैसे माँ? आज तुम्हारे कैसे हुआ? घर में क्या हुआ? (कलश) गिरता नहीं। इसी प्रकार धर्मी की दृष्टि द्रव्य के ऊपर है। समझ में आया? ... बात आवे, विकल्प आवे परन्तु दृष्टि वहाँ है। शुद्धात्मा चिदानन्द प्रभु (से) दृष्टि हटती नहीं। आहाहा! जैसी मति, वैसी गति है।

शुद्धात्मस्वरूप में जिस जीव की बुद्धि होवे, उसको वैसी ही गति होती है, जिन जीवों का मन निज-वस्तु में है,... देखा! आहाहा! राग में नहीं, एक समय की पर्याय में भी नहीं। वस्तु जो त्रिकाली है, उसमें जिसकी मति है, **उसको निज-पद की प्राप्ति होती है,...** अल्प काल में केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। आहाहा! **इसमें सन्देह नहीं है।** इसमें सन्देह करना नहीं है। जिसकी मति सम्यग्दर्शन से अन्तर में गयी है, उसे तो अल्प काल में केवलज्ञान होगा, होगा और होगा। दूज उगी, उसे पूर्णिमा होगी ही।

दूज। दूज कहते हैं न? दूज उगे, तेरह दिन में पूर्णिमा होगी ही। पूर्णिमा न हो, ऐसा नहीं होता। इसी प्रकार जिसे सम्यग्दर्शन की बुद्धि अन्दर में है, उसे केवलज्ञानरूपी पूर्णिमा प्रगट होगी, होगी और होगी ही। दूज उगे, उसे पूर्णिमा न हो—ऐसा बने कभी? तीज, चौथ को वापस अस्त हो जाये? तीज, चौथ के पश्चात् पूर्णिमा होगी, होगी और होगी। इसी प्रकार जिसकी मति द्रव्य के ऊपर है, वस्तु के ऊपर है। आहाहा! उसे केवलज्ञान की पर्याय की गति प्राप्त होगी, होगी और होगी ही। भले एक भव हो, दूसरा भव हो परन्तु उसे होगी ही। आहाहा! सब प्रताप शुद्धात्मा के ऊपर दृष्टि की बात है। अज्ञानी की मति तो निमित्त और राग के ऊपर और पर्याय के ऊपर है।

मुमुक्षु : शब्दों पर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शब्दों पर है, भाव के ऊपर नहीं। यह बात सच्ची। अन्दर भाव क्या है? ... बहिन माँ को कहते हैं। आहाहा! यह मार्ग, बापू! क्या कहें? भाई! आहाहा! भगवान के विरह में... समझ में आया? आहाहा! यह मार्ग कहाँ है? भाई! यह मार्ग अलौकिक चीज़ है। ऐसे का ऐसा मान बैठना कि हम समकिती हैं और धर्मी हैं। व्रती, बापू! सूक्ष्म बात, भाई! आहाहा!

भावार्थः—जो आर्तध्यान रौद्रध्यान की आधीनता से अपने शुद्धात्मा की भावना से रहित हुआ... है? आहाहा! जो कोई आर्तध्यान अर्थात् कि पुण्य परिणाम में एकाग्रता। रौद्रध्यान—पाप में एकाग्रता। (उसकी) **आधीनता से अपने शुद्धात्मा की भावना से रहित...** भगवान आत्मा आर्तध्यान और रौद्रध्यान के कारण से अन्तर की धर्मध्यान दशा से रहित है। आहाहा! **रागादिक परभावोंस्वरूप परिणमन करता है,...** आहाहा! शुभरागरूप परिणमन करता है... आहाहा! है? **तो वह दीर्घसंसारी होता है,...** आहाहा! है? **रागादिक परभावोंस्वरूप परिणमन करता है, तो वह दीर्घसंसारी होता है,...** क्या कहते हैं? भगवान भव और भव के भावरहित, ऐसे भगवान की श्रद्धा, ज्ञान की भावना छोड़कर, व्यवहाररत्नत्रय आदि के राग में रत है और राग की भावना करता है, वह दीर्घ संसारी है। अनन्त संसार में भटकेगा। आहाहा!

और जो निश्चयरत्नत्रयस्वरूप परमात्मतत्त्व में भावना करता है,... आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप पूर्ण प्रभु, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र निश्चय की भावना-

एकाग्रता करता है तो वह मोक्ष प्राप्त करता है। दो बातें हैं। एक ओर दीर्घ संसार तथा एक ओर मोक्ष। राग की भावना करनेवाला दीर्घ संसारी है। शुद्ध स्वभाव की भावना करनेवाला मोक्ष प्राप्त करता है। समझ में आया? शुभ—पुण्यभाव वह राग है न? यह कहते हैं कि उस राग की भावना करता है कि यह करनेयोग्य है और यह करना है, दीर्घ संसारी है। आहाहा! समझ में आया? और इस परमात्मतत्त्व की भावना करता है तो मोक्ष प्राप्त करता है। **ऐसा जानकर सब रागादि विकल्पों को त्यागकर...** आहाहा! व्यवहार के विकल्प भी दृष्टि में से छोड़कर **परमात्मतत्त्व में ही भावना करनी चाहिए।** लो, यह तात्पर्य। यह भगवान पूर्णानन्द की एकाग्रता—उस ओर की भावना करनी चाहिए कि जिससे अल्प काल में मुक्ति हो। यह सारांश है, लो, विशेष आयेगा.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ११२

११२) जहिं मइ तहिं गइ जीव तहुँ मरणु वि जेण लहेहि।
तें परबंभु मुएवि मइँ मा पर-दव्वि करेहि।।११२।।

यत्र मतिः तत्र गतिः जीव त्वं मरणमपि येन लभसे।
तेन परब्रह्म मुक्त्वा मतिं मा परद्रव्ये कार्षीः।।११२।।

जहिं मइ तहिं गइ जीव तुहुं मरणु वि जेण लहेहि यत्र मतिस्तत्र गतिः। हे जीव त्वं मरणेन कृत्वा येन कारणेन लभसे तें परबंभु मुएवि मइं मा परदव्वि करेहि तेन कारणेन परब्रह्मशब्दवाच्यं शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावं वीतरागसदानन्दैक-सुखामृतरसपरिणतं निजशुद्धात्मतत्त्वं मुक्त्वा मतिं चित्तं परद्रव्ये देहसंगादिषु मा कार्षीरिति तात्पर्यार्थः।।११२।। एवं सूत्रचतुष्टयेनान्तरस्थले परलोकशब्दव्युत्पत्त्या परलोकशब्दवाच्यस्य परमात्मनो व्याख्यानं गतम्।

आगे फिर इसी बात को दृढ़ करते हैं -

जिसमें मति होगी उसमें ही मरण बाद भी गति हो प्राप्त।
इसीलिए परब्रह्म छोड़कर परद्रव्यों में मति मत जोड़।।११२।।

अन्वयार्थ :- [जीव] हे जीव [यत्र मतिः] जहाँ तेरी बुद्धि है, [तत्र गतिः] वहीं पर गति है, उसको [येन] जिस कारण से [त्वं मृत्वा] तू मरकर [लभसे] पावेगा, [तेन] इसलिये तू [परब्रह्म] परब्रह्म को [मुक्तवा] छोड़कर [परद्रव्ये] परद्रव्य में [मतिं] बुद्धि को [मा कार्षीः] मत कर।

भावार्थ :- शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर टाँकी का-सा गढ़ा हुआ अघटितघाट, अमूर्तिक पदार्थ, ज्ञायकमात्र स्वभाव, वीतराग, सदा आनंदरूप, अद्वितीय अतीन्द्रिय सुखरूप, अमृत के रसकर तृप्त ऐसे निज शुद्धात्मतत्त्व को छोड़कर द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म में या देहादि परिग्रह में मन को मत लगा।।११२।।

वीर संवत् २५०२, भाद्र कृष्ण ३, शनिवार
दिनांक-११-०९-१९७६, गाथा-११२, ११३, प्रवचन-८७

परमात्मप्रकाश, ११२ गाथा। **आगे फिर इसी बात को दृढ़ करते हैं—** किस बात को? जहाँ मति है, वहाँ गति होगी। जिसमें तेरी बुद्धि है, उस ओर का तुझे फल होगा। यह विशेष कहते हैं। बहुत अलौकिक गाथा है।

११२) जहिँ मइ तहिँ गइ जीव तहुँ मरणु वि जेण लहेहि।
तेँ परबंभु मुएवि मइँ मा पर-दव्वि करेहि॥११२॥

अन्वयार्थः—हे जीव! जहाँ तेरी मति है, वहीं पर गति है,... आहाहा! जिसमें तेरी रुचि होगी, तत्प्रमाण तेरी गति होगी। आहाहा! क्योंकि भविष्य में आत्मा को अनन्त काल तो रहना है। आत्मा तो अनादि-अनन्त है। तो कहते हैं, कहाँ रहेगा? जिस ओर तेरी मति होगी, उस ओर देह छूटकर तेरी गति होगी। आहाहा! **हे जीव! जहाँ तेरी बुद्धि है, वहीं पर गति है, उसको जिस कारण तू मरकर पावेगा,...** देह छूटेगी तो जहाँ मति है, उस वस्तु को तू प्राप्त करेगा। समझ में आया? तो मति कहाँ करना? **इसलिए तू परब्रह्म को छोड़कर...** आहाहा! परमब्रह्म की टीका में व्याख्या करेंगे। परमब्रह्म भगवान आत्मा चैतन्यघन विज्ञानघन, ऐसे परमब्रह्म को छोड़कर **परद्रव्य में बुद्धि को मत कर।** आहाहा! शरीर, वाणी, मन और दया, दान, व्रत, भक्ति का भी भाव, वह सब परद्रव्य है। तेरी चीज़ में यदि मति होगी, परद्रव्य में नहीं हो तो तेरी मृत्यु के बाद तुझे तेरा आत्मा प्राप्त होगा। तू राग और पर में तेरी ऋद्धि और बुद्धि होगी तो मरकर तेरी दुर्गति—विकार में तेरी गति होगी। आहाहा! क्योंकि भविष्य में इसे अनन्त काल तो रहना है। आत्मा क्या मर जाता है? आहाहा! तो जिस ओर तेरी मति होगी, वह तेरी गति होगी। इसलिए यहाँ तो तेरी मति कहाँ करना, उसकी बात करते हैं।

परमब्रह्म—भगवान परमब्रह्म आत्मा, बहुत अलौकिक बात आयी है। उस परमब्रह्म को छोड़कर परद्रव्य रागादि में मति न कर। आहाहा! यह व्यवहाररत्नत्रय, पंच महाव्रत आदि का जो राग है, उस राग में मति न कर। देह छूटकर तुझे रहना तो है। यह देह छूटेगी तो तू साथ में छूट जायेगा? तो तुझे रहना तो है, तो कहाँ रहना है तुझे? परमब्रह्म

में मति कर तो तेरी गति वहाँ रहेगी। आहाहा! कैसा है परमब्रह्म भगवान आत्मा? परमब्रह्म अर्थात् यह आत्मा, हों! परमब्रह्म दूसरे भगवान हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! भगवान, वह परमब्रह्म नहीं, वे तो भगवान उनके परमब्रह्म हैं। अपना भगवान परमब्रह्म प्रभु, विशेषण देते हैं। अलौकिक विशेषण है। आहा! अमृत की रेलमछेल की है।

भावार्थः—शुद्धद्रव्यार्थिकनयकर... क्या कहते हैं? यह भगवान आत्मा शुद्ध द्रव्य की दृष्टि से देखो तो। कभी बहियों में आया नहीं होगा, सुनने को मिला नहीं होगा। शुद्ध द्रव्यार्थिकनय, यह क्या कहते हैं? ऐसा कहते हैं, भगवान! एक बार सुन तो सही। तेरी चीज़ जो है शुद्ध द्रव्य त्रिकाली। राग नहीं, एक समय की पर्याय भी नहीं। आहाहा! परमब्रह्म भगवान तेरी चीज़ शुद्ध द्रव्यार्थिक—शुद्ध-द्रव्य-अर्थिक। जिसका शुद्ध द्रव्य प्रयोजन है। जिस नय का शुद्ध द्रव्य प्रयोजन है। आहाहा! शुद्ध द्रव्य शब्द से त्रिकाली ज्ञायकभाव अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द प्रभु, आहाहा! वह शुद्ध-द्रव्य-अर्थिक—शुद्ध द्रव्य अर्थात् पदार्थ, जिसका प्रयोजन, अर्थ अर्थात् प्रयोजन, ऐसा नय। शुद्ध द्रव्य का प्रयोजन जिस नय का है, ऐसी दृष्टि से देखें तो।

टांकी का-सा गढ़ा हुआ अघटितघाट,... भगवान तो अघटित घाट है। गढ़े बिना का घाट है। आहाहा! ऐसी चीज़ अन्दर पड़ी है। आहाहा! टंकोत्कीर्ण। टांकी से—टांकी से खोदकर अन्दर की चीज़ निकालते हैं न! ऐसी चीज़ अन्दर में पड़ी है। पालीताणा में है न? अदबदनाथ। अदबद। पालीताणा में अदबद है। श्वेताम्बर का। पर्वत में से पत्थर उत्कीर्ण कर ऐसी प्रतिमा निकाली है। पत्थर में से ऐसे के ऐसे पर्वत में से। चारों ओर से निकाल डाला। एक मकान है। देखा है, सब देखा है। अन्तर में स्थिर है, उसे उत्कीर्ण कर रखा है। इसी प्रकार भगवान आत्मा राग और पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न भगवान टंकोत्कीर्ण ऐसी चीज़ अन्दर पड़ी है। आहाहा! टंकोत्कीर्ण। है?

टांकी का-सा गढ़ा हुआ अघटितघाट,... यही गढ़ा हुआ घाट है। दूसरे घड़ा आदि को घढ़ना पड़े। यह तो अघटित घाट है। भगवान अनन्त गुणस्वरूप अरूपी अनन्त गुण का पिण्ड अघट घाट, आहाहा! अमूर्तिक पदार्थ प्रभु है। उसमें कोई वर्ण, रंग, गन्ध, स्पर्श है नहीं। अमूर्तिक प्रभु अन्दर है। अरूपी पदार्थ, अमूर्तिक पदार्थ। आहाहा! ऐसी चीज़ जो अन्दर है। **ज्ञायकभाव स्वभाव...** पदार्थ की बात की परन्तु अब

उसका स्वभाव है कैसा ? ज्ञायकभाव स्वभाव। बस। जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... जिसका स्वभाव है। समझ में आया ? आहाहा! मति को कहाँ लगाना, यह बात करते हैं। समझ में आया ? अन्यत्र सर्वत्र से हटकर, दया, दान, व्रतादि के परिणाम भी विकार है, उससे रुचि को हटाकर, मति को हटाकर, भगवान अन्दर ज्ञायकभाव स्वभाव नित्यानन्द प्रभु पड़ा है, (वहाँ लगा)। आहाहा! ज्ञायकभाव शब्द है।

वीतराग... है। आहाहा! अन्दर प्रभु वीतराग आत्मा है। अभी, हों! समझ में आया ? ज्ञायकस्वभाव वीतराग। जिसमें देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भी राग नहीं। वह तो वीतरागमूर्ति प्रभु है। अन्तर में वीतरागस्वरूप अरूपी अमूर्त पदार्थ है। देह-वाणी-मन से भिन्न, पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न, ऐसा परमब्रह्म भगवान वीतरागस्वरूप है। आहाहा! परमब्रह्म की व्याख्या। **सदा आनन्दरूप...** है। आहाहा! वह तो त्रिकाली आनन्दरूप ही प्रभु है। अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु है। आहाहा! समझ में आया ? एक एक शब्द तो देखो! आहाहा!

भगवान आत्मा अन्दर ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, वह सदा आनन्दरूप है। त्रिकाल अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु है। आहाहा! यह दुनिया बाहर में आनन्द शोधती है न! स्त्री में, इज्जत में, कीर्ति में, शरीर में और भोग में, धूल में भी नहीं, सुन तो सही। समझ में आया ? प्रभु तो सदा आनन्दरूप आत्मा अन्दर है। आहाहा! समझ में आया ?

शकरकन्द का दृष्टान्त नहीं दिया था ? शकरकन्द... शकरकन्द। ऊपर की लाल छाल है। शकरकन्द—शकरिया। वह लाल छाल न देखो तो शकरकन्द—शक्कर की मिठास का पिण्ड है। इसलिए शकरकन्द कहते हैं। शक्कर का कन्द—मिठास का कन्द-शकरकन्द। उसी प्रकार आत्मा आनन्दकन्द है। आहाहा! पुण्य-पाप के विकल्प वह छाल है। आहाहा! शरीर, वाणी, मन तो पर है। समझ में आया ? आहाहा! अन्दर में वीतराग सदा आनन्दरूप है। आहा! प्रभु त्रिकाल अनाकुल आनन्दरूप है। प्रभु! वहाँ मति दे। ऐसा कहते हैं। मति वहाँ लगा। तेरा कल्याण होगा। इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?

अद्वितीय अतीन्द्रिय सुखरूप... आहाहा! यह आनन्द की व्याख्या विशेष की।

अतीन्द्रिय अद्वितीय अतीन्द्रिय सुख। उसकी तुलना में आवे, ऐसा सुख कहीं है नहीं। अद्वितीय है न? द्वितीय नहीं। अतीन्द्रिय सुखरूप भगवान आत्मा तो है। आहा! अरे! कैसे बैठे? एक समय की राग की पर्याय जो है अथवा उस राग को जाननेवाली जो एक समय की पर्याय है, उसके पीछे भगवान आत्मा विराजता है। आहाहा! अरे! इसे कहाँ खबर है? समझ में आया? आहाहा! अद्वितीय—अजोड़ अतीन्द्रिय सुखरूप। जिसके साथ सुख की तुलना दूसरे के साथ की जाये, ऐसी कोई दूसरी चीज़ है नहीं। अद्वितीय अजोड़ अतीन्द्रिय सुखरूप प्रभु तो है। आहाहा! वह भरपूर, भगवान आत्मा आनन्द से भरपूर पड़ा है। समझ में आया?

नारियल का दृष्टान्त नहीं दिया था? नारियल। वह जटा अलग है, काचली अलग है, काचली के ओर की लाल छाल (अलग है)। खोपरापाक बनावे, तब लाल छाल निकाल डालते हैं न! तो लाल छाल भिन्न चीज़ है, खोपरापाक भिन्न चीज़ है। अन्दर सेर, डेढ़ सेर का खोपरा है, वह तो मीठा, श्वेत / सफेद है। इसी प्रकार भगवान आत्मा यह शरीर जटा है, उससे भिन्न है। आठ कर्म जड़ काचली है, उससे भिन्न है और पुण्य-पाप, शुभाशुभभावरूपी छिलके से भिन्न है। फोतरा-छिलका। आहाहा!

मुमुक्षु : कब भिन्न है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। कब क्या? यह किसकी बात चलती है? त्रिकाली भिन्न है, उसकी दृष्टि नहीं। यह लगे दुनिया के डालचन्दजी और शोभालालजी और फलाना और ढींकणा मेरे। कहो, समझ में आया? आहाहा! ऐई! पोपटभाई! कहाँ गये? हसमुखभाई गये? ठीक। थोड़ा आवे। धन्धा करना हो न! आहाहा! अरे! प्रभु! तेरी चीज़ कहाँ है? आहाहा! अरे! जहाँ है, वहाँ मति को जोड़ दे। जहाँ तेरी चीज़ नहीं, वहाँ तूने मति को जोड़ दिया है। जहाँ तू नहीं, पुण्य और पाप, उसका फल शरीर, वाणी, स्त्री, कुटुम्ब, वे तो सब छूट जायेंगे। क्षेत्र, क्षेत्र सब छूट जायेगा। पचास-पच्चीस वर्ष एक मकान में रहे, वे छूट जायेंगे, वह कहीं तेरा मकान नहीं और मकान में तू नहीं। आहाहा! उस चीज़ से तो तू भिन्न है। अभी भी भिन्न है और छूटेगा तब भी बाहर भिन्न ही रहेगा। आहाहा! एक बार प्रभु ऐसा कर। जहाँ तेरी चीज़ अनाकुल आनन्द पड़ी है (वहाँ मति को जोड़ दे)। आहाहा!

अमृत के रसकर तृप्त... आहाहा! भाषा तो देखो! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अमृत के रस से तृप्त-तृप्त चीज़ पड़ी है। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! यह परमब्रह्म आत्मा की व्याख्या। भगवान! तू कैसी चीज़ है? आहाहा! अरे! बालक और युवक और वृद्ध, यह अवस्थायें तो जड़ की हैं। स्त्री, पुरुष के आकार, वे सब तो जड़ के आकार हैं। वे कहीं तेरे नहीं, तू उनमें नहीं। आहाहा! जिसमें तू है, वह तो अमृतरस का कूप है। आहाहा! **अमृत के रसकर तृप्त...** तृप्त... तृप्त। आहाहा! जैसे कोई अच्छा भोजन करके तृप्त होता है न? इसी प्रकार आत्मा अनादि से अमृतरस से तृप्त ही है। अरे! कैसे जँचे? आहाहा! एक सहज अनुकूल चीज़ मिले वहाँ प्रसन्न... प्रसन्न हो जाये। पाँच-दस लाख रुपये मिले या यह स्त्री ठीक मिले, लड़के अच्छे, वहाँ... आहाहा! अरे! तुझे क्या है? प्रभु! तू कहाँ का है, कहाँ बिक गया? आहाहा! समझ में आया? कहो, भगवानजीभाई! आहाहा!

प्रभु! तेरी मति कहाँ है? यदि राग और पर के ऊपर मति है तो उस संयोग में तुझे भविष्य में रहना पड़ेगा। तू भवभ्रमण में रहेगा। आहाहा! राग और पुण्यादि की मति जो है और उसके फल में यदि तेरी मति रहेगी तो वह संयोग तुझे छोड़ेंगे नहीं। उन संयोग में तुझे भटकना पड़ेगा। आहाहा! पाँच-पचास वर्ष जिस मकान में रहेग न? वह मकान मानो मेरा। वह मकान मेरा। वह खाट हो और गोदड़ा हो और गादी, ओढ़ने की रजाई... अरे! क्या है परन्तु? वह तो पर जड़ है। उसमें तू है? वे तेरे हैं? तुझमें से निकल जायेंगे? तेरी मृत्यु होगी, तब निकल जायेंगे, कुछ रहेगा नहीं। आहाहा! तेरी चीज़ होगी वह रहेगी, वह चीज़ नहीं रहे। यदि मति उसमें है तो अज्ञानभाव और मिथ्यात्वभाव साथ में रहेगा। आहाहा! समझ में आया? यह कहा न?

'**त्वं मृत्वा**' '**मृत्वा**' देह छोड़कर। तेरी मति जहाँ होगी, वह चीज़ तुझे मृत्यु के बाद मिलेगी। आहाहा! यदि मति पुण्य और पाप के भाव में, उनके फल में, शरीर में, मकान में (रहेगी), यह मकान मेरा, किसका मकान? वह तो जड़ की चीज़ है। आहाहा! और उस मकान के जो कोने में खाट हो और फिर ऊपर मच्छरदानी (रखी हो)। मच्छरदानी कहते हैं न? एकाकार हो जाता है। परन्तु क्या है? प्रभु! यह चीज़ कहीं तेरी है? तू उसमें है? आहाहा! सेठ! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी इसकी नहीं। वह तो राख है। राख आत्मा की है? आत्मा अमृतरस से तृप्त है, उसकी राख है? उसे आत्मा क्या चीज़ है, इसकी खबर नहीं, इसकी कीमत ही नहीं। दूसरे की कीमत करे। यह सोना ऐसा है और हीरा ऐसे हैं और धूल ऐसी है। एक-एक हीरा पचास हजार का और लाख-लाख का और दो लाख का, उसमें क्या है? 'परख्या माणेक मोती, परख्या हेम कपूर, परन्तु परख्यो न एक आतमा, वहाँ रहा दिग्मूढ।' खिलौने... कैलाशचन्दजी! भाई को तो खिलौने का (धन्धा) है न? आहाहा! जिस दुकान की गद्दी पर बैठे, बस, उस आकार हो जाये। उस क्षेत्राकार वृत्ति हो जाये। यह मकान और यह गादी और यह... यह... गल्ला, गल्ला क्या कहलाता है? गल्ला कहते हैं न पैसा रखने का? आहाहा! हमारे वहाँ था न? उस गल्ले में हम बैठते साथ में दुकान में। आहाहा! वह भी कहाँ चीज़? बापू! वह जगत की चीज़ श्मशान की हड्डियाँ हैं। हड्डियों में से फासफूस निकलती है? प्रकाश। लड़के मानो कोई व्यन्तर है। भूतड़ा-बूतड़ा कुछ नहीं। वह तो हड्डियों की फासफूस है। यह सब हड्डियों की फासफूस (चमक) है। आहाहा! प्रभु! तू उससे भिन्न है। तेरी मति वहाँ है, तू छोड़ दे। आहाहा! यह क्षेत्राकार, यह मित्राकार, यह स्त्रीकार, पुत्राकार, लक्ष्मीआकार... आहाहा! जिस मकान में पचास वर्ष, साठ वर्ष रहा हो, यह दीवार और यह और यह... बस, वह। परन्तु वह तू कहाँ है? यहाँ तो पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वहाँ मैं हूँ—ऐसा मान लिया। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह तो राग-पुण्य है, परवस्तु है। आहाहा! उसमें तू नहीं, वह तुझमें नहीं। तुझमें तो अमृतरस से तृप्त तेरी चीज़ है। आहाहा! तेरे अमृत के लिये तुझे परचीज़ की आवश्यकता नहीं। आहाहा! बाहर की मोह की मिठास। आहाहा!

कहते हैं, एक बार छोड़ न, प्रभु! तुझमें अमृतरस भरा है, नाथ! तुझे खबर नहीं। आहाहा! गुड़ का रवा नहीं होता? क्या कहते हैं? गुड़ की भेली, बड़ा रवा होता है, चार-चार मण का। जब धूप—गर्मी बहुत हो तो गलता है। उसमें से मिठास झरती है या काली जीरी निकलती है? आहाहा! भगवान! तू अमृत की गाँठ है। अमृत की... क्या कहलाता है? भेली नहीं, अपने कहते हैं न? रवो... रवो। भेली कहते हैं। वह तो

पच्चीस, पचास, सौ दो सौ, पाँच सौ, हजार (मण) होता है न? आहाहा! बड़ा गोदाम होता है न? मुम्बई में सब देखा है। माल लेने गये न वहाँ। आहाहा! बड़ा गोदाम होता है। एक बार एक मकान ऐसा देखा। केसर, भाई! केसर के डिब्बे। पूरा गोदाम केसर के डिब्बों से भरा हुआ। बड़ा गृहस्थ। बड़ा गोदाम। माल लेने गये थे। तब छोटी उम्र थी, २०-२१ वर्ष की उम्र। पाँच वर्ष धन्धा किया था। आहाहा! मात्र केसर के डिब्बों का बड़ा गोदाम। तब सस्ता था न? रुपये का रुपयाभार केसर। अब कुछ महँगा हो गया है। महँगा है न? डिब्बे के डिब्बे। हजारों, हों! बड़ा गोदाम। आहाहा! उसमें वह व्यापारी घुसे और उसे ऐसा लगे... आहाहा! परन्तु क्या है? यह मेरा माल और यह मेरा गोदाम और... आहाहा! ऐ... पोपटभाई! तुम्हारे टाईल्स। यह तो जिसे हो, उसकी बात है। आहाहा! संयोगी चीज़, बापू! वह तो संयोगी चीज़ है। उसके ऊपर तेरी वृत्ति हो गयी, निकलना कठिन पड़ेगा, प्रभु! आहाहा! समझ में आया?

एक बार अपने वहाँ राजकोट, नहीं? भाई! लीलाधरभाई के घर में। उसका मकान देखो तो सोपान-सीढ़ियाँ पॉलिस, लकड़ी पॉलिस। तुम्हारे नाम भी नहीं आते। टेबल-बेबल होती है न? चाय पीने की टेबल साफ हो। पॉलिस। उसके ऊपर कपड़ा। उसके ऊपर यह। दस-पन्द्रह लोग चाय पीने बैठे। ओहो! वहाँ भाई! मैं आहार लेने गया, तब मुझे ऐसा लगा, अरेरे! प्रभु! इसमें से इसे निकलना मुश्किल पड़ेगा। एक उसकी पॉलिस और एक अमेरली में पॉलिस। नानुभाई, नानचन्दभाई खारा। उनका मकान सब पॉलिस। पैसे थोड़े परन्तु पॉलिस बहुत। सब मकान साफ। पॉलिस... पॉलिस। लकड़ी, दरवाजे। दरवाजे होते हैं न? अरे! प्रभु! इसमें से निकलना मुश्किल पड़ेगा। तेरी दृष्टि वहाँ चिपट गयी है।

जहाँ मति, वहाँ गति है। भगवान! एक बार मति यहाँ तो ला, कहते हैं। आहाहा! कहाँ? जहाँ तू है वहाँ। तू कैसा है? यह कहते हैं। **अतीन्द्रिय सुखरूप अमृत के रस से तृप्त...** आहाहा! जैसे पेट भरकर चूरमा खाया हो, और तृप्त-तृप्त होते हैं न? उसी प्रकार अमृतरस से पेट—तेरा आत्मा भरपूर है। आहाहा! तेरा तो ज्ञायक शरीर है। आनन्द शरीर है, वह तेरी चीज़ है। यह परमब्रह्म की व्याख्या। तेरे आत्मा के परमार्थ स्वरूप की यह व्याख्या। **ऐसे निज शुद्धात्मतत्त्व को छोड़कर...** देखो! इस प्रकार का भगवान

आत्मा, निज शुद्धात्मा, अपना शुद्धात्मतत्त्व। आहाहा! उसे छोड़कर **द्रव्यकर्म...** में मति न कर। तेरे जड़ आठ कर्म हैं, वे तेरे नहीं, वहाँ से मति छोड़ दे।

भावकर्म... दया, दान के विकल्प हैं, वह भावकर्म। भावकर्म—पुण्य और पाप के भाव, वह भावकर्म। आहाहा! पंच महाव्रत के भाव, बारह व्रत के भाव, वह भावकर्म। वहाँ से मति छोड़ दे। आहाहा! यदि वहाँ मति रह गयी तो तुझे उस प्रकार का संयोगी विकार प्राप्त होगा। तू भविष्य में अनन्त काल दुःख में रहेगा। जहाँ मति है, वही संयोग मिलेगा, वहाँ तुझे अनन्त काल भविष्य में दुःख में रहना पड़ेगा। मृत्यु के पश्चात्। और यदि यहाँ मति होगी... आहाहा! यह व्यवहार विकल्प जो है, उसका भी संग छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया? देह संग आदि, है न? संस्कृत में यह है। **'देहसंगातिषु'।** संग है न? संस्कृत में है। **'देहसंगातिषु मा कार्षीरिति'** आहाहा! भगवान! राग और देह के संग में प्रीति न कर। आहाहा! तू हैरान होगा। प्रभु! तुझे भविष्य के काल में दुःख के पर्वत में रहना पड़ेगा। आहाहा! उस ओर से मति छोड़ दे। आहाहा!

अमृतरस से तृप्त, अद्वितीय अतीन्द्रिय सुख का सागर भगवान, ऐसे भगवान आत्मा को छोड़कर, निज शुद्धात्मा को छोड़कर **द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म...** आहाहा! द्रव्य अर्थात् जड़ ज्ञानावरणादि आठ कर्म है न? भावकर्म अर्थात् यह दया, दान, पुण्य, पाप के भाव, वे भावकर्म। नोकर्म—यह शरीर, वाणी वह नोकर्म। **देहादि परिग्रह...** आया न? यह आया, लो। वह **'देहसंगादिषु'** है न? वह यहाँ लिया। **देहादि परिग्रह में मन को मत लगा।** आहाहा! संस्कृत में यह है। **'देहसंगादिषु'।** देह, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पुण्य और पाप के भाव। आहाहा! वह परिग्रह है। उसमें मन को न लगा। वह परग्रिह परवस्तु है। आहाहा! और तेरे परमब्रह्म में मति लगा दे। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन का विषय बताते हैं। सम्यग्दर्शन की बुद्धि—दृष्टि त्रिकाल पर जाती है। ऐसा तृप्त... तृप्त भगवान आत्मा, वह आनन्द का रवा है। आहाहा! समझ में आया? आहा! उसमें एकाग्र होने से, जैसे रवा में से मिठास... मिठास गुड़ (झरता है)। रवा होता है न? उसी प्रकार भगवान अमृत के रस में मति लगाने से पर्याय में तुझे अमृत का प्रवाह बहेगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसी व्याख्या भारी कठिन पड़े। बाहर की बातें करे, यह करना, और यह करना। मर गया कर-करके, सुन न!

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान! एक बार शुद्ध द्रव्यस्वरूप टंकोत्कीर्ण **अघटित घाट,...** आहाहा! **अमूर्तिक पदार्थ, ज्ञायकमात्रस्वभाव, वीतराग, सदा आनन्दरूप...** विशेषण तो देखो! ओहोहो! शास्त्रकार को शब्द कम पड़ते हैं। भगवान पूर्णानन्द प्रभु की व्याख्या करने में शब्द कम पड़ते हैं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा... आहाहा! 'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब।'

'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब।'

वाणी जड़ है, यह (आत्मा) चैतन्य है। जड़ के साथ आत्मा की बात करना, जड़ द्वारा आत्मा की बात करना। दुश्मन द्वारा अपने गुणगान करवाना। आहाहा! यह वाणी जड़, शरीर जड़। भगवान चैतन्य की मूर्ति। वह कैसा है, यह वाणी द्वारा कहना। कितना कहे? आहाहा! समझ में आया? श्रीमद् ने अपूर्व अवसर में कहा है न?

'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में,
कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब।
उस स्वरूप को अन्य वाणी वह क्या कहे?

जो स्वरूप वीतराग की वाणी पूर्ण नहीं कह सकी, तो दूसरे की वाणी किस प्रकार कह सकेगी? आहाहा! 'अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब' उसका अनुभव करे, तब खबर पड़े कि वह क्या चीज़ है। आहाहा! 'अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब। अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा?' श्रीमद् गृहस्थाश्रम में भावना करते हैं। सम्यग्दृष्टि थे, आत्मज्ञानी थे। आहाहा! भव का छेद कर डाला था। अब हमको ऐसा अवसर कब मिलेगा? आहाहा! पूर्ण केवलज्ञान लेने के लिये। आहाहा! यह भावना लेकर गये। मति वहाँ थी तो गये, तो भविष्य में मनुष्य होकर केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष जायेंगे। भले गृहस्थाश्रम था। सम्यग्दर्शन था और अनुभव था। आहाहा! परमब्रह्म परमात्मा का अनुभव किया, आश्रय किया, तृप्त... तृप्त हुए, सत्कार किया, स्वीकार किया। आहाहा! जो अनादि से रागादि पर की क्रिया का स्वीकार था, वह तो मिथ्यात्व था। समझ में आया? आहाहा! ऐसे परमब्रह्म में प्रभु! एक बार मति जोड़ दे। आहाहा! उसकी रुचि कर और दूसरे सबसे रुचि छोड़। एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। समझ में आया? अपने स्वभाव की भी रुचि हो और रागादि पुण्य की भी रुचि हो, नहीं

रह सकती। प्रभु! एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। आहाहा! समझ में आया? सेठ! बात तो यह है। आहाहा!

निर्विकल्प आनन्द का नाथ प्रभु, अमृत से तृप्त-तृप्त प्रभु, अद्वितीय अतीन्द्रिय सुख का सागर, शान्ति का सरोवर, आहाहा! अनन्त शक्ति का संग्रहालय, गुण का गोदाम प्रभु, स्वभाव का सागर नाथ, उस चीज़ को देख, मति को वहाँ लगा। आहाहा! परन्तु अभी वस्तु क्या है, इसकी खबर नहीं होती। कहाँ मति करना और मोड़ना किस प्रकार, यह खबर नहीं। ऐसी चीज़ का माहात्म्य आये बिना मति उस ओर झुकेगी नहीं। बाहर के माहात्म्य में घुस गया है। थोड़ा पुण्य किया और ऐसा है और पुण्य से पद मिला, कोई स्वर्ग मिला और कोई करोड़पति, अरबपति हुआ। धूल में भी भान नहीं। राख है, प्रभु! एक बार सुन तो सही। आहाहा!

परद्रव्य से मति छोड़, यह कहा न? देखो! **देहादि परिग्रह में मन को मत लगा।** आहाहा! समझ में आया? चैतन्य भगवान वीतरागमूर्ति प्रभु विराजता है न, नाथ! आहाहा! तू, हों! उस वीतरागस्वभाव के प्रति प्रेम कर न, वहाँ मति को जोड़ दे न! तुझे मृत्यु के पश्चात्, तू परमात्मा होगा। आहाहा! देह छूटकर अदेही हो जायेगा, भले एकाध, दो, भव हों, परन्तु फिर वह अदेही है। आहाहा! समझ में आया? गजब परमात्मप्रकाश।

यह ११२ हुई। यहाँ स्वद्रव्य की व्याख्या की। अब परद्रव्य क्या है, ऐसा शिष्य प्रश्न करता है। परद्रव्य किसे कहते हैं? अब ११३।

गाथा - ११३

तदन्तरं किं तत् परद्रव्यमिति प्रश्ने प्रत्युतरं ददाति–

११३) जं णियदव्वहँ भिण्णु जडु तं परदव्वु वियाणि।
पुग्गलु धम्माधम्मु णहु कालु वि पंचमु जाणि।।११३।।

यत् निजद्रव्याद् भिन्नं जडं तत् परद्रव्यं जानीहि।
पुद्गलः धर्माधर्मः नभः कालं अपि पञ्चमं जानीहि।।११३।।

जमित्यादि। पदखण्डनारूपेण व्याख्यानं क्रियते। जं यत् णियदव्वहं निजद्रव्यात् भिण्णु भिन्नं पृथग्भूतं जडु जडं तं तत् परदव्वु वियाणि परद्रव्यं जानीहि। तच्च किम्। पुग्गलु धम्माधम्मु णहु पुद्गलधर्माधर्मनभोरूपं कालु वि कालमपि पंचमु जाणि पञ्चमं जानीहीति। अनन्तचतुष्टय–स्वरूपान्निजद्रव्याद्बाह्यं भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरूपं जीवसंबद्धं शेषं पुद्गलादिपञ्चभेदं यत्सर्वं तद्ज्ञेयमिति ।।११३।।

इस प्रकार पहले महाधिकार में चार दोहा–सूत्रोंकर अंतरस्थल में परलोक शब्द का अर्थ परमात्मा किया। आगे परलोक (परमात्मा) में ही मन लगा, परद्रव्य से ममता छोड़ ऐसा कहा गया था, उसमें शिष्य ने प्रश्न किया कि परद्रव्य क्या हैं? उसका समाधान श्रीगुरु करते हैं –

आत्म द्रव्य से भिन्न सभी है जड़ पदार्थ परद्रव्य स्वरूप।
धर्म–अधर्म तथा पुदगल आकाश काल ये द्रव्य सभी।।११३।।

अन्वयार्थ :– [यत्] जो [निजद्रव्याद्] आत्म–पदार्थ से [भिन्नं] जुदा [जडं] जड़ पदार्थ है, [तत्] उसे [परद्रव्यं] परद्रव्य [जानीहि] जानो, और वह परद्रव्य [पुद्गलः धर्माधर्मः नभः कालं अपि पंचमं] पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, और पाँचवाँ कालद्रव्य [जानीहि] ये सब परद्रव्य जानो।

भावार्थ :– द्रव्य छह हैं, उनमें से पाँच जड़ और जीव को चैतन्य जानो। पुद्गल धर्म, अधर्म, काल, आकाश ये सब जड़ हैं, इनको अपने से जुदा जानो और जीव भी अनंत हैं, उन सबको अपने से भिन्न जानो। अनंतचतुष्टयस्वरूप अपना आत्मा है, उसी को निज (अपना) जानो, और जीव के भावकर्मरूप रागादिक तथा द्रव्यकर्म, ज्ञानावरणादि

आठ कर्म, और शरीरादिक नोकर्म, और इनका संबंध अनादि से है, परंतु जीव से भिन्न है, इसलिये अपने मत मान। पुद्गलादि पाँच भेद जड़ पदार्थ सब हेय जान, अपना स्वरूप ही उपादेय है, उसी को आराधन कर।।११३।।

गाथा-११३ पर प्रवचन

---

११३) जं णियदव्वहँ भिण्णु जडु तं परदव्वु वियाणि।
पुग्गलु धम्माधम्मु णहु कालु वि पंचमु जाणि॥११३

आहाहा! **इस प्रकार पहले महाधिकार में चार दोहा-सूत्रोंकर अन्तरस्थल में परलोक शब्द का अर्थ परमात्मा किया। आगे परलोक (परमात्मा) में ही मन लगा,...** परमात्मा में मन लगा दे। वह परमात्मा तू, हों! **परद्रव्य से ममता छोड़, ऐसा कहा गया था, उसमें शिष्य ने प्रश्न किया कि परद्रव्य क्या हैं?** प्रभु! आपने स्वद्रव्य तो कहा, परन्तु परद्रव्य क्या है? दूसरी चीज़ है तो है कौन? **उसका समाधान श्रीगुरु करते हैं—**

अन्वयार्थः—जो आत्म-पदार्थ से (द्रव्य से) जुदा... भगवान आत्मा परमब्रह्म कहो, अमृत से तृप्त-तृप्त। आहाहा! जिसकी तृप्ति के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन, इन्द्राणी के भोग सड़े हुए कुत्ते और बिल्ली सड़ गयी हो, मुर्दा। ऐसी गन्ध लगे। समकिती को भोग की गन्ध (ऐसी लगे)। आहाहा! समझ में आया? वे स्वामीनारायण थे न? भाई! सहजानन्द ब्रह्मचारी थे। दृष्टि मिथ्या, तत्त्व नहीं था। ऐसे ब्रह्मचारी थे। फिर एक बार किसी का विवाह देखा। लग्न समझे? विवाह। और ऐसे भद्रिक ब्रह्मचारी। दृष्टि खोटी, लोग उन्हें परमात्मा माने। कोई व्यन्तर में से आये होंगे तो बैकुण्ठ में से आये, ऐसा माने। व्यन्तर का बैकुण्ठ जैसा दिखाव। वहाँ से आये और बैकुण्ठ में जायेंगे अर्थात् वहाँ जायेंगे। एक बार कोई विवाह था तो कहे, यह क्या है? तो कहे, मेरा विवाह करो न! ऐसा कहा। फिर तो नाम जहाँ आया वहाँ तीन दिन तक उल्टी। बोला गया होगा। वैसे तो ब्रह्मचारी व्यक्ति। परन्तु ऐसा बोला गया, उसका विवाह है तो मेरा विवाह करा दो न! ऐसा कहा न, आहाहा! वह स्त्री की ओर जो लक्ष्य गया न? गन्ध... तीन दिन तक उल्टी (हो)। उल्टी-उल्टी, वमन, उल्टी नहीं कहते? सुल्टी अर्थात् अन्दर जाये वह और उल्टी अर्थात् ऐसे निकले वह। उलट-सुलट चलता है। अन्दर में जाये वह

सुल्टी, बाहर निकले वह उल्टी। तीन दिन तक, हों! रात और दिन उल्टी। फिर शान्त पड़ गया। अरे! यह क्या हुआ? हमारे ब्रह्मचारी को यह क्या? यह क्या हुआ? समझ में आया?

इसी प्रकार धर्मात्मा को भोग सम्बन्धी की याद आवे तो अन्दर उल्टी हो जाती है अन्दर में। आहाहा! अरर्र! यह क्या? समझ में आया? जो प्रेम से—प्रीति से भोग लिये थे, वह उसे उल्टी जैसे लगते हैं। अरेरे! यह क्या? मेरे अमृत का नाथ, सागर के समक्ष यह चीज़ क्या? ओहोहो! समकिती को विषय की वासना आती है। छियानवें हजार स्त्रियाँ हों, समकिती है। परन्तु वह वासना काले नाग जैसी लगती है। आहाहा! काला नाग होता है न? फूंफकार मारता हुआ। उसी प्रकार ज्ञानी अमृत के रस के स्वादिया, निज स्वभाव में मति लगी है। आहाहा! समझ में आया? उसे यह सब विषय के स्वाद काले नाग जैसे लगते हैं। आहाहा! इसका नाम समकित है।

यह यहाँ शिष्य पूछता है। प्रभु! आपने निजद्रव्य की व्याख्या तो बहुत की। तो परद्रव्य क्या है कि जिससे हमारी मति उससे छुड़ाने की है? **आत्म-पदार्थ से जुदा जड़ पदार्थ हैं,...** पाठ में अकेले जड़ लिये हैं, परन्तु अन्य जीव भी पृथक् इसमें ले लेना। **उसे परद्रव्य जानो, और वह परद्रव्य पुद्गल,...** है? एक परमाणु से लेकर यह शरीर, वाणी, मन, पैसा, लक्ष्मी सब पुद्गल। आहाहा! यह मकान, श्मशान, लक्ष्मी, कीर्ति-इज्जत सब पुद्गल परमाणु पुद्गल जड़ है। आहाहा! उससे मति छोड़। इज्जत-कीर्ति वह भी परमाणु है न? इज्जत-महिमा करते हैं, (वह) परमाणु है। तुम ऐसे हो, ऐसे हो। वह परमाणु मिट्टी है। उससे मति छोड़। आहाहा! समझ में आया? यह अभिनन्दन नहीं देते। बड़े-बड़े पूंछड़े (पदवियाँ)। अभिनन्दन नहीं देते? मानपत्र, लो! आहाहा! मानपत्र। किसका मानपात्र? भगवान! तेरी चीज़ तो तेरे पास है, तेरा मानपत्र तो तेरे पास है। आहाहा! दुनिया मान दे और प्रसन्न हो, वह तो पुद्गल की पर्याय में तू प्रसन्न हुआ। समझ में आया? आहाहा! वह पुद्गल परद्रव्य है। दाल, भात, सब्जी, रोटी, पैसे, इज्जत, कीर्ति, मकान, प्रशंसा, निन्दा, वह सब पुद्गल है। आहाहा!

मुमुक्षु : इज्जत....

पूज्य गुरुदेवश्री : इज्जत-महिमा करते हैं न? शोभालाल सेठ ऐसे हैं। भगवानदास

शोभालाल। यह तुम्हारे घर की बात की। सेठ! भगवानदास शोभालाल सेठ पचास हजार देते हैं। ओहोहो! मानपत्र। यह तो एक दृष्टान्त। सबके लिये है न? आहाहा! हमारे कुंवरजीभाई थे न? हमारे भागीदार बुआ के पुत्र पुण्यशाली सही, बाकी तो समझने जैसा था। हमको तो तब लगता कि इसे सम्हालना पड़े। पच्चीस रुपये का वेतन है। ऐसा मस्तिष्क बिना ठिकाने का, पागल जैसा, हों! परन्तु पुण्य के कारण कमा खाते। दो-दो लाख की आमदनी, मर गया तब। (संवत्) २०२१ के वर्ष में गुजर गये। दो लाख की आमदनी। दस लाख रुपये तब थे, हों! अब तो लड़के बढ़ गये। वे दुकान में थे न? हमारी दुकान में। उन्हें एक बार रामजीभाई ने पूछा, कुंवरजीभाई! तुमको सेठ... सेठ कितनी बार कहे? हजार बार कहते होंगे? वह कहे, नहीं, पाँच सौ बार। जवाब देना आवे नहीं। आहाहा! वह मर गया बेचारा, हों! मैंने तो उसे (संवत्) १९६६ में कहा था, १९६६ के वर्ष, हों! १९७० में दीक्षा लेने से पहले। १९७० में दीक्षा ली थी। ६३ वर्ष हुए। उससे चार वर्ष पहले, ६७ वर्ष पहले। हमको तो भगत कहते थे न पहले से? दुकान में थे परन्तु लोग हमको भगत ही कहते थे। एक बार मैंने उनसे कहा, भाई! मेरी बीस वर्ष की उम्र, १९४६ में जन्म। ६६ की बात है। बीस वर्ष (उम्र) ६७ वर्ष पहले की बात है। दो दुकानों के तीस व्यक्ति थे। एक साथ जीमते थे। मैं दुकान में गया, भाई! मुझे ऐसा लगता है। कुंवरजीभाई मुझसे एक वर्ष बड़े थे। मुझे तो ऐसा लगता है, भाई! हम आर्य जैन मनुष्य हैं। इसलिए माँस-शराब तो है नहीं। इसलिए नरक में तो नहीं जाओगे, भाई! तथा देवलोक में जाने के मुझे तुम्हारे लक्षण लगते नहीं। दुकान पर बैठे थे। हमारे बड़े भाई भी बैठे थे। परन्तु वे तो सरल थे। हमारे बड़े भाई बहुत सरल थे। वे तो मनुष्य मरकर मनुष्य हुए होंगे। और यह तो मरकर ढोर (हुए होंगे)। १९६६ में कहा, भाई! मुझे तो ऐसा लगता है। देव के लक्षण नहीं, मनुष्य में जाओ ऐसे तुम्हारे लक्षण मुझे दिखते नहीं। तुम्हारे लिये एक ढोरगति रही, कहा। ऐई! बीस वर्ष की उम्र। ६७ वर्ष पहले की बात है। हमारे से एक वर्ष बड़े थे। बड़े भाई थे, वे चार वर्ष बड़े थे। हमारा सुनें। भगत है, भगत कहे वह सुनो। हमारी छाप पहले से ऐसी थी न! भगत है वह, भगत कहते वह सुनो। कोई निषेध नहीं करे। मुझे तो ऐसा लगता है, भाई! मरकर ढोर होओगे, भाई! वह मरते हुए, भाई! पागल हो गये। मरते हुए, मैंने किया... मैंने किया... मैंने किया... आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ठेठ तक। उठाकर रखे तो भी वह। बहुत पोषण किया हो न! और दुकान बढ़ते... बढ़ते... बढ़ते उसके मरण के समय दो लाख की आमदनी। एक वर्ष की दो लाख की आमदनी, हों! अब तो तीन लाख की आमदनी है। तीन लड़के हैं। बढ़ गयी, पैसे हैं। परन्तु उस समय इतनी थी तो मस्तिष्क फट गया। भाई! तुम किसलिए दुकान आते हो? नहीं। दुकान में पहले आऊँगा छह बजे। बड़ी दुकान, नौकर (थे)। नौकरों को जगाऊँगा। काम पहले लूँगा, मरूँगा तब तक काम लूँगा। अरे! परन्तु... वह मरते हुए... बापू! लड़के होशियार हैं। लड़के अच्छे हैं। तीन लड़के हैं न? अलग हो गये। बापूजी को महाराज कहते थे, ऐसा हो गया। तिर्यंच में—ढोर में गये होंगे। तीन लड़के, दस लाख की पूँजी, दो लाख की आमदनी, अब तो तीस लाख रुपये हैं। धूल में भी कुछ नहीं। ममता का पार नहीं होता।

यहाँ कहते हैं, देखो! आहाहा! यह पुद्गल है। इज्जत पुद्गल है। सेठ! भगवानदास शोभालाल बुन्देलखण्ड के बादशाह। पैसे दे, दान करे, वह भाषा तो परमाणु है। समयसार में यह आता है। निन्दा, प्रशंसा पुद्गल के परिणाम हैं। समयसार में पीछे आता है। यहाँ कहते हैं, पुद्गल की ममता छोड़। आहाहा! मानपत्र दे और प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये, दो हजार लोग इकट्ठे हुए हों।

धर्म... धर्म अर्थात् धर्मास्तिकाय, हों! एक पदार्थ है। धर्मास्तिकाय नाम का एक पदार्थ है। छह द्रव्य भगवान ने देखे हैं न। तो धर्म अर्थात् धर्मास्तिकाय पदार्थ लेना। अरूपी पूरे लोक प्रमाण है। उसकी ममता छोड़, वह परवस्तु है।

अधर्म... एक अधर्मास्तिकाय नाम का पदार्थ है। पूरे लोक प्रमाण अधर्मास्तिकाय है। जीव गति करे तो स्थिर होने में निमित्त है। गति करे तो गति में निमित्त धर्मास्तिकाय है। दोनों पदार्थ भगवान सर्वज्ञ ने देखे हैं। इसके अतिरिक्त कहीं नहीं है। सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह धर्मास्ति, अधर्मास्ति की बात कहीं तीन काल में किसी जगह नहीं है। दो अरूपी पदार्थ चौदह ब्रह्माण्ड में (व्याप्त) हैं, यहाँ भी है। समझ में आया? उसकी ममता छोड़। वह चीज़ पर है, तेरी नहीं। आहाहा!

आकाश... आकाश तेरी चीज़ नहीं। आहाहा!

पाँचवाँ कालद्रव्य... एक अरूपी कालद्रव्य है। असंख्य द्रव्य हैं। वह प्रदेश के ऊपर (रहते हैं)। जितने लोकाकाश के प्रदेश हैं, उसके एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु हैं, ऐसे असंख्य कालाणु हैं। अरूपी है। **यह सब परद्रव्य जानो।** आहाहा! वे सब परद्रव्य हैं।

भावार्थः—द्रव्य छह हैं,... अब स्पष्टीकरण करते हैं। **उनमें से पाँच जड़ और जीव को चैतन्य जानो।** वह पर चैतन्य भी तुझसे भिन्न है। आहाहा! भगवान का आत्मा, स्त्री का आत्मा, पुत्र का आत्मा सब तुझसे भिन्न है, वह तेरी चीज़ है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? **पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश ये सब जड़ हैं, इनको अपने से जुदा जानो और जीव भी अनन्त हैं,...** निगोद अनन्त है, सिद्ध अनन्त है। निगोद समझे? यह काई... काई। एक कणी में असंख्य शरीर हैं, एक शरीर में अनन्त जीव हैं। पूरा लोक भरा है, आहाहा! उसमें से कितने ही तो अभी त्रस हुए नहीं, इतने जीव पड़े हैं, प्रभु! आहाहा! तू तो निकलकर अनन्त काल में मनुष्य हुआ, उसमें करने का तो यह है। आहाहा! समझ में आया? वे अनन्त जीव हैं। **उन सबको अपने से भिन्न जानो।** अनन्त जीव हैं तो दया पालने के लिये हैं, ऐसा नहीं। ज्ञान में जाननेयोग्य है कि अनन्त हैं। बस। उन्हें जानो, ऐसा कहा। देखो! जानो कि है। परन्तु तुझसे भिन्न है। आहाहा! स्त्री का आत्मा, पुत्र का आत्मा कहाँ का कहाँ आया न... आहाहा!

पति-पत्नी का सम्बन्ध हो जाता है न? फिर किसी ने मुझसे पूछा था, (संवत्) १९८७ के वर्ष। चीतड़ हमारे कुंवरजीभाई का पुत्र मनसुख, उसका सम्बन्ध वहाँ किया था न। चीतड़ में। हिम्मतभाई की बहिन। हिम्मतभाई गये थे। हिम्मतभाई गये न? गये, गये। भाई छोड़ने गये थे। केशुभाई का पुत्र गया था। छोड़ने गये थे न? हिम्मतभाई की बहिन हमारे मनसुख के साथ है। कुंवरजीभाई का पुत्र। उसका विवाह किया १९८७ में। मेरा १९८६ का चातुर्मास अमरेली। मैं चीतड गया। चार कोस होता है। वहाँ हमारे आणंदजी था। उसने पूछा, महाराज! यह पति-पत्नी होते हैं, उन्हें पूर्व का कोई मेल होगा? ऐसा प्रश्न किया। १३ और ३२=४५ वर्ष हुए। मैंने कहा, भाई! कोई मेल नहीं। वह राजोमति और नेमिनाथ के नौ भव का मेल है न? इसलिए प्रश्न किया। कहा, भाई! स्त्री हो, वह बबूल में से आवे। बावळ-बबूल। और पुरुष हो वह चींटी में से आवे और

यहाँ हो जाये पति-पत्नी। उसमें कहाँ कुछ भी मेल है। आहाहा! कार्तिक कृष्ण १, चीतड गये थे। १९८७ के वर्ष। तब यह प्रश्न किया। हमारे कुंवरजीभाई गुजर गये, भाई भी गुजर गये, आणंदजी भी गुजर गया। उसके भागीदार थे। आहाहा! बापू! स्त्री मरकर कहीं चींटी में से आयी हो, पति मरकर कहीं थोर में से आया हो। थोर समझे? थोरी। उसमें से आया हो। उसमें कहाँ सम्बन्ध? कौन आत्मा? कौन तेरा? उसे सम्बन्ध कहाँ? आहाहा! यह तो नेमिनाथ और राजुल नौ भव साथ में थे, वह अलग बात। कहीं सबको साथ में है, ऐसा है?

यहाँ कहते हैं, वह आत्मा तुझसे भिन्न है। यह मेरी स्त्री है और यह मेरा पुत्र है, यह मति छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया? लड़के अच्छे हुए हैं, कमाऊ हुए हैं, कर्मी हुए हैं, ऐसा कहे। कर्मी हुए हैं अर्थात् कर्म करनेवाले। कर्मी नहीं कहते? तुम्हारे क्या कहते हैं? कर्मी अर्थात् यह कमाऊ। भाषा में थोड़ा अन्तर है। हमारे कर्मी कहते हैं, कर्मी जगा है, कमाऊ जगा है। पाँच-पाँच लाख पैदा करता है और ऐसे धूल है। क्या है? आत्मा तेरा है? वह तो पर है। आहाहा! छोड़ दे पर की ममता। **उन सबको अपने से भिन्न जानो।**

अनन्त चतुष्टयस्वरूप अपना आत्मा है,... आहाहा! थोड़ा शब्द फिर से लिये। अनन्त चतुष्टयस्वरूप-भगवान जो अन्दर है, वह तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त सत्ता, ऐसा स्वरूप है। अनन्त वीर्य। आहाहा! जो यह भगवान आत्मा है, उसमें तो अनन्त ज्ञान है। ज्ञान की मर्यादा नहीं, इतना अन्दर में ज्ञान है। आनन्द अनन्त है। दर्शन अनन्त है, वीर्य-पुरुषार्थ अनन्त है। आत्मा की वीर्यशक्ति। आहाहा! वह **अनन्त चतुष्टयस्वरूप अपना आत्मा है,...** आहा! **उसी को निज (अपना) जानो,...** उसे तू निज—मेरा जान। आहाहा! मेरा द्रव्यस्वभाव वह मैं निज हूँ। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय। समझ में आया? यहाँ तो सम्यग्दर्शन अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा है, अपने को सम्यग्दर्शन तो है, अब व्रत ले लो। धूल भी नहीं। सुन न! मर जायेगा कहीं का कहीं। यह तो निज स्वरूप अपना आत्मा, उसे तू जान।

और जीव के भावकर्मरूप रागादिक... देखो! राग अर्थात् पुण्य-पाप भाव, शुभ-अशुभभाव **तथा द्रव्यकर्म, ज्ञानावरणादि आठ कर्म, और शरीरादिक नोकर्म,**

और इनका सम्बन्ध अनादि से है,... सम्बन्ध अनादि से है। **परन्तु जीव से भिन्न हैं,...** आहाहा! पुण्य के परिणाम शुभभाव का सम्बन्ध भी अनादि से है। जड़कर्म का अनादि से है, शरीर का अनादि से है। आहाहा! **जीव से भिन्न हैं, इसलिए अपने मत मान।** आहाहा! **पुद्गलादि पाँच भेद जड़ पदार्थ सब हेय जान,...** आहाहा! परमाणुमात्र, इज्जत-कीर्ति के परमाणु, वे सब भिन्न जान।

अपना स्वरूप ही उपादेय है,... लो, अन्तिम योगफल। भगवान जो अपना स्वरूप पहले कहा, अद्वितीय, अतीन्द्रिय सुख, अमृत से भरपूर प्रभु, वह मेरी चीज़ है। आहाहा! अरे! परन्तु कहाँ बैठे? माप करना आवे नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी चीज़ है, वह तेरी है। **अपना स्वरूप ही उपादेय है,...** चिदानन्द भगवान अमृत के रस का कन्द प्रभु, वही आराधनेयोग्य है। वह माननेयोग्य है, वह जाननेयोग्य है, उसमें स्थिर होनेयोग्य है। यह मार्ग है, भाई! समझ में आया? **उपादेय है, उसी को आराधन कर।** आहाहा! उसकी सेवना कर, उसे सेवन कर। आहाहा! वर्तमान मति की पर्याय को, वर्तमान मतिज्ञान की पर्याय को त्रिकाली भगवान में जोड़ दे। आहा! वहाँ सगाई कर दे। तेरे केवलज्ञानरूपी विवाह हो जायेगा। समझ में आया? आहाहा! यह आनन्दघनजी में आता है। 'समकित साथे सगाई कीधी, सपरिवार सु गाढी।' आनन्दघनजी में आता है न? श्वेताम्बर में एक हो गये हैं। 'समकित साथ सगाई कीधी।' श्रद्धा के साथ पूरे आत्मा की सगाई की। 'सपरिवार सु गाढी।' अनन्त गुण के साथ सगाई—सम्बन्ध किया। आहाहा! यह कन्या के साथ सगाई करते हैं न? तिलक किया और यह किया और फिर नारियल दे, धूल में। यहाँ तो आनन्दघनजी कहते हैं, 'समकित साथे सगाई कीधी।' त्रिकाली आनन्द के नाथ की समकित के साथ सगाई की। 'सपरिवार सु गाढी।' आहाहा! उस आत्मा को उपादेय जान और बाकी सब चीज़ को हेय जान। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ११४

अथ वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरन्तर्मुहूर्तेनापि कर्मजालं दहतीति ध्यानसामर्थ्यं दर्शयति–

११४) जइ णिविसद्धु वि कु वि करइ परमप्पइ अणुराउ।
अग्गि–कणी जिम कट्ठ–गिरि डहइ असेसु वि पाउ।।११४।।

यदि निमिषार्धमपि कोऽपि करोति परमात्मनि अनुरागम्।
अग्निकणिका यथा काष्ठगिरिं दहति अशेषमपि पापम्।।११४।।

जइ इत्यादि। जइ णिविसद्धु वि यदि निमिषार्धमपि कु वि करइ कोऽपि कश्चित् करोति। किं करोति। परमप्पइ अणुराउ परमात्मन्यनुरागम्। तदा किं करोति। अग्गिकणी जिम कट्ठगिरी अग्निकणिका यथा काष्ठगिरिं दहति तथा डहइ असेसुं वि पाउ दहत्यशेष पापमिति। तथाहि–ऋद्धिगौरवरसगौरवकवित्ववादित्वगमकत्ववाग्मित्वचतुर्विधशब्दगौरवस्वरूप–प्रभृतिसमस्तविकल्पजालत्यागरूपेण महावातेन प्रज्वलिता निजशुद्धात्मतत्त्वध्यानाग्निकणिका १स्तोकाग्निकेन्धनराशिमिवान्तर्मुहूर्तेनापि चिरसंचितकर्मराशिं दहतीति। अत्रैवंविधं शुद्धात्मध्यान–सामर्थ्यं ज्ञात्वा तदेव निरन्तरं भावनीयमिति भावार्थः।।११४।।

आगे एक अन्तमुहूर्त में कर्म–जाल को वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूप अग्नि भस्म कर डालती है ऐसी समाधि की सामर्थ्य है, वही दिखाते हैं –

यदि कोई निज परमात्मा से अर्ध निमिष भी प्रीति करें।
जैसे अग्नि दहे ईधन गिरि त्यों वह पाप दहे सब ही।।११४।।

अन्वयार्थ :– [यदि] जो [निमिषार्धमपि] आधे निमेषमात्र भी [कोऽपि] कोई [परमात्मनि] परमात्मा में [अनुरागम्] प्रीति को [करोति] करे तो [यथा] जैसे [अग्निकणिका] अग्नि की कणी [काष्ठगिरिं] काठ के पहाड़ को [दहति] भस्म करती है, उसी तरह [अशेषम् अपि पापम्] सब ही पापों को भस्म कर डाले।

भावार्थ :– ऋद्धि का गर्व, रसायन का गर्व अर्थात् पारा वगैरह आदि धातुओं के भस्म करने का मद, अथवा नौ रस के जानने का गर्व, कवि–कला का मद, वाद में जीतने का मद, शास्त्र की टीका बनाने का मद, शास्त्र के व्याख्यान करने का मद, ये चार तरह का शब्द–गौरव–स्वरूप इत्यादि अनेक विकल्प–जालों का त्यागरूप प्रचंड

पवन उससे प्रज्वलित हुई (दहकती हुई) जो निज शुद्धात्मतत्त्व के ध्यानरूप अग्नि की कणी है, जैसे वह अग्नि की कणी काठ के पर्वत को भस्म कर देती है, उसी तरह यह समस्त पापों को भस्म कर डालती है, अर्थात् जन्म-जन्म के इकट्ठे किये हुए कर्मों को आधे निमेष में नष्ट कर देती है, ऐसी शुद्ध आत्म-ध्यान की सामर्थ्य जानकर उसी ध्यान की ही भावना सदा करनी चाहिये।।११४।।

वीर संवत् २५०२, भाद्र कृष्ण ४, रविवार
दिनांक-१२-०९-१९७६, गाथा-११४, ११५, प्रवचन-८८

परमात्मप्रकाश, ११४ गाथा। **आगे एक अन्तर्मुहुर्त में कर्म-जाल को वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूप अग्नि भस्म कर डालती है...** आहाहा! **ऐसी समाधि की सामर्थ्य है,...** समाधि का अर्थ भगवान पूर्णानन्द आनन्दरस सुखस्वरूप ध्रुव में विकल्प से रहित होकर, निर्विकल्प शान्ति में अन्दर रहना, इसका नाम समाधि है। आहाहा! प्रथम सम्यग्दर्शन भी अन्तर्मुख शुद्ध उपयोग की दशा में प्राप्त होता है। प्रथम में प्रथम धर्म, जन्म-मरण की गाँठ गलाने की चीज़, वह प्रथम अन्तर्ध्यान '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' द्रव्यसंग्रह की ४७वीं गाथा है। निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग, दोनों अन्दर ध्यान में प्राप्त होते हैं। आहाहा! शुद्ध चिदानन्द अद्वितीय अतीन्द्रिय सुख की खान आत्मा, आहाहा! उस ओर के झुकाव से अन्तर में एकाग्रतारूप जो ध्यान होता है, उसमें सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि विशेष यदि अन्तर में समाधि लग जाये... अन्तर आनन्द की खान प्रभु, सुख का सागर... आहाहा! अनन्त शक्ति का संग्रहालय, अनन्त शक्ति का संग्रह का आलय— भगवान स्थान है। अनन्त-अनन्त ज्ञान और आनन्द के गुणों का गोदाम है। आहाहा! अनन्त स्वभाव का सागर है। प्रभु शान्ति का सरोवर है। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर में शान्ति का सरोवर है। उस ओर झुकने से एक अन्तर्मुहूर्त भी अन्दर लगनी लग जाये... आहाहा! तो जैसे काष्ट का बड़ा गिरि—पर्वत हो, एक अग्नि का कण लगने से पूरे लकड़ी के पर्वत को भस्म कर डालता है। अग्नि का कण। लाखों, करोड़ों मण घास हो, एक अग्नि का तिनका, एक दियासलाई, भस्म कर डालती है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा में... आहाहा! बात ऐसी आयी है, प्रभु! उसने अनन्त बार जगत की जंजाल के विकल्प किये। यहाँ कहेंगे अभी दूसरी बार। आहाहा! परन्तु आत्मा अन्दर जो चीज़ है, उसकी भेंट करने की इसने दरकार नहीं की। समझ में आया? यह कहते हैं। गाथा।

११४) जइ णिविसद्धु वि कु वि करइ परमप्पइ अणुराउ।
अग्गि-कणी जिम कट्ठ-गिरि डहइ असेसु वि पाउ॥११४॥

यदि निमिषार्धमपि कोऽपि करोति परमात्मनि अनुरागम्।
अग्निकणिका यथा काष्ठगिरिं दहति अशेषमपि पापम्॥११४॥

यह मूल श्लोक की संस्कृत छाया है। नीचे अर्थ।

अन्वयार्थः—जो आधे निमेषमात्र... आहाहा! आँख मींचकर उघाड़े, उसे निमेष कहते हैं। उसमें आधा निमेषमात्र। आहाहा! **कोई परमात्मा में प्रीति को...** परमात्मा स्वयं स्वरूप भगवान परमात्मस्वरूप ही है। आहाहा! अपना परमेश्वरस्वरूप, अपना परमात्मस्वरूप, अपना भगवानस्वरूप, वह पूर्णानन्द का नाथ परमात्मा वह शक्ति-स्वभावरूप है। समझ में आया? उस परमात्मा में प्रीति को लगा दे। आहाहा! शुभराग का एक कण है, उसकी जिसे प्रीति है, उसे भगवान परमात्मा के प्रति द्वेष है। कैलाशचन्दजी! ऐसी बात है, भगवान! आहाहा! अशुभराग की तो बात क्या करना? शुभराग जो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, वाँचन, उस शुभराग के प्रति प्रेम है, प्रीति है, उसे भगवान परमात्मस्वरूप के प्रति क्रोध और द्वेष है। आहाहा! ऐसी बात है। अरेरे! इसने कभी आत्मा की दया नहीं की। अपनी दया कैसी होती है, वह इसने कभी नहीं की। आहा!

यहाँ कहते हैं कि परमात्मस्वरूप, भगवानस्वरूप अपना परमेश्वरस्वरूप है। आहाहा! शक्तिरूप, स्वभावरूप, गुणरूप परमात्मा वह आत्मा है। वह अप्पा सो परमअप्पा। आत्मा, वही परमात्मा है। आहाहा! अभी, हों! आहाहा! उस परमात्मा के प्रति '**अनुरागम्**' **प्रीति को करे...** है? आहाहा! प्रीति का अर्थ उस ओर का झुकाव करे? यहाँ प्रीति का अर्थ राग नहीं। परमात्मस्वरूप जो अपना, एक समय में भगवानस्वरूप ही आत्मा त्रिकाल है। सभी आत्मा साधर्मीरूप से, भगवानरूप से तो साधर्मी हैं। आहाहा! पर्याय

में भूल है तो जिसकी पर्यायभूल निकल गयी, वह अपने परमात्मा में यदि लगन लगी तो दूसरे सब आत्मा परमात्मा हैं, ऐसी दृष्टि से देखता है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि उस परमात्मा के प्रति '**अनुरागम्**' अनुराग का अर्थ शुद्ध चैतन्यघन, विज्ञानपिण्ड आनन्दकन्द, सुखकन्द... आहाहा! वह '**अनुरागम्**' उसे अनुसरकर एकाग्र होना, उसे अनुसरकर लीन होना, उसका नाम अनुराग कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? **करे तो जैसे अग्नि की कणी...** अग्नि की कणी, एक दियासलाई ले, बस। ओहोहो! '**काष्ठगिरिं**' **काठ के पहाड़ को...** लकड़ी का बड़ा पहाड़ हो, लाख मण, करोड़ मण का। आहाहा! **भस्म करती है,...** अग्नि की कणी भी करोड़ मण लकड़ी का पर्वत—पहाड़ हो तो भी वह अग्नि भस्म कर डालती है। आहाहा! **उसी तरह सब ही पापों को भस्म कर डाले।** आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, उसका जिसे प्रेम लगा, उस ओर झुकाव हुआ, शुद्ध परमात्म-सन्मुख हुआ, विकल्प से विमुख हुआ, अनादि से स्वभाव से विमुख है और विकल्प के सन्मुख है। आहाहा! वह संसार है। समझ में आया? शुभ आदि जो विकल्प है, उसके सन्मुख है और परमात्म चिदानन्द प्रभु रागरहित वीतरागस्वरूप से विमुख है, वह भटकने का संसार है। आहाहा! परन्तु एक बार कहते हैं कि राग की सन्मुखता छोड़ दे, तीन लोक का नाथ परमात्मा परमेश्वर तू है, उसका अनुसरण कर। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! यहाँ तो।

यह परमात्मप्रकाश शास्त्र है न! तो तू परमात्मस्वरूप ही है। परमात्मस्वरूप है, वह लीनता होने से पर्याय में ऐनलार्ज होने से (पर्याय में) परमात्मा होता है। वस्तु स्वभाव से तो परमात्मा है तो उसकी लीनता से पर्याय में ऐनलार्ज होकर परमात्मा होता है। आहाहा! समझ में आया? परमात्मा कहीं बाहर से नहीं आता। केवलज्ञान आदि जो परमात्मदशा अन्दर में पड़ी है। पूर्णानन्द का नाथ है। आहाहा!

मुमुक्षु : कितना समय लगता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर्मुहूर्त। आहाहा! अन्तर्मुहूर्त भी नहीं, यहाँ तो निमेष का भी आधा निमेष (कहा है)। है? '**णिविसद्ध**' पाठ ऐसा है, '**णिविसद्ध**'। निमेष कहते है उसका आधा भाग। आहाहा! भगवान तीन लोक का नाथ परमेश्वर पूर्ण शक्ति का ईश्वर परमात्मा स्वयं। आहाहा! केवलज्ञान में जो केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, ऐसी-ऐसी

अनन्त केवलज्ञान की पर्याय का पिण्ड एक ज्ञानगुण है। आहाहा! भगवान अरिहन्त को जो अनन्त वीर्य प्रगट हुआ, ऐसा वीर्य भी अनन्त-अनन्त वीर्य की शक्ति अन्दर वीर्य में है। आहाहा! ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड अन्दर वीर्य है। आहाहा! अरे! उसे कभी माहात्म्य आया नहीं, पर का माहात्म्य कभी छोड़ा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, एक कण। काष्ट गिरि शब्द पड़ा है। ओहोहो! लकड़ी का बड़ा पर्वत। जला दे। परन्तु किस प्रकार होता है? टीकाकर जरा अधिक स्पष्ट करते हैं।

भावार्थ :- ऋद्धि का गर्व,... छोड़ दे। आहाहा! बाहर की अनेक ऋद्धियों का गर्व—अभिमान छोड़ दे। वरना परमात्मा की प्राप्ति नहीं होगी। आहाहा! समझ में आया? **ऋद्धि का गर्व, रसायन का गर्व...** यह रस-रस उत्पन्न करता है न? पारा आदि का। पारा का रस बनाते हैं न? रस। **पारा वगैरह आदि धातुओं के भस्म करने का मद,...** हमको यह बराबर आता है, ऐसा आता है, ऐसा अज्ञानी मूढ़ अभिमान (करता है)। पारा आदि धातु का रसायन हमको आता है। अरे! प्रभु! यह क्या...? वह तो अज्ञान है। आहाहा! उसका गर्व छोड़ दे।

अथवा... इस रस का दूसरा अर्थ करते हैं। **नौ रस के जानने का गर्व...** वीररस, शृंगाररस, वीभत्सरस, करुणारस... आहाहा! अद्भुतरस, वीभत्स रस वे सब नौ रस हैं, उनका गर्व छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया? नौ रस हैं। पारा आदि रसायन का गर्व अथवा नव रस, इन दोनों का एक ही अर्थ है, भाई! यह रसायन में डाला है। आहाहा! इस रसायन का गर्व छोड़ और नौ रस का गर्व छोड़। नव रस आते हैं न? ऋद्धिगारव, सातागारव, करुणा, वीभत्स, भयानक, रौद्र, शान्तरस। कषाय की किंचित् मन्दता हुई, उसका गर्व। मर जायेगा, बापू! समझ में आया? वह गर्व छोड़ दे। तब अन्दर जा सकेगा। आहाहा! तीन लोक के नाथ की भेंट करनी है। एक राजकुमार के दीवानखाने में जाना हो तो तैयारी करके जाते हैं, कपड़ा-बपड़ा। तो यह तो तीन लोक का नाथ परमेश्वर, साक्षात् परमेश्वरस्वरूप परमात्मा! आहा! उसकी भेंट करने, बापू! उसकी तैयारी कितनी चाहिए। आहाहा! अरे! अनन्त काल में इसने यह किया नहीं। किया वह सब व्यर्थ। राग और पुण्य की क्रिया करके मर गया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

एक स्तुति में आता है। 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल।' 'प्रभु तुम जाणग रीति...' केवलज्ञानी परमात्मा को कहते हैं, प्रभु! तुम तुम्हारे केवलज्ञान में 'प्रभु तुम जागण रीति, सौ जग देखता हो लाल, निज सत्ताअे शुद्ध सहुने पेखता हो लाल...' प्रभु! हमारी निज सत्ता शुद्ध आनन्दकन्द है, ऐसा आप देखते हो। आहाहा! आत्मा क्या है? कि निज सत्ता से शुद्ध—पवित्र है, उसे आप आत्मा देखते हो। विकल्प आदि है, वह तो अनात्मा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

नव रस के जानने का गर्व, कवि-कला का मद,... कविकला का मद। कवि बनने का, शीघ्र कवि होते हैं न? शीघ्रकवि—आशुकवि। है न, देखे हैं, बहुत देखे हैं, हमारे पास आते हैं। उसमें क्या हुआ है? धूल। आहाहा!

मुमुक्षु : महाराज! यह नव रस में मन्द कषाय..?

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्द कषाय। शान्तरस में मन्द कषाय है। सबमें मन्द कषाय नहीं। नव में शान्तरस में मन्द कषाय। दूसरे में तो अभिमान अशुभभाव है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, रसायन का गर्व छोड़। यह सोने को ऐसा मार सकते हैं, भस्म ऐसे कर सकते हैं। हीरा की भस्म करते हैं न? हीरा, माणेक, मोती की भस्म होती है न? आहाहा! समझ में आया? चक्रवर्ती की एक दासी होती है। चक्रवर्ती की दासी। एक हीरा करोड़ रुपये का, ऐसी बड़ी कीमत का... ऐसे (मुट्ठी में लेकर) करके (चूरा कर डालती है)। उसकी दास, हों! और उस हीरे का चूरा करके चक्रवर्ती को तिलक करे। परन्तु क्या हुआ इसमें? आहाहा! दासी, हों! उसकी रानी नहीं, दासी। चक्रवर्ती की दासी। आहाहा! गद्दी पर जब बैठता है, तब करोड़ रुपये का, अरब रुपये का एक हीरा, ऐसे अंगुली में लेकर (चूरा कर डाले)। तिलक करे, तिलक। उसमें क्या हुआ? वह गर्व छोड़ दे कि मेरी ऐसी शक्ति है और मैं ऐसा करता हूँ। वह शक्ति तेरी नहीं। तेरी तो आनन्दकन्द शक्ति है। आहाहा!

अरे रे! सत्य बात सुनने को न मिले, वह कब जाये अन्दर? कहाँ जाये? आहाहा! अरे रे! चौरासी के अवतार कर-करके मर गया है वह। नरक और निगोद के, हों! आहा! निगोद के तो एक श्वास में अठारह भव, भाई! भगवान ने कहे। एक श्वास में

अठारह भव, ऐसा अनन्त बार (हुआ)। एक श्वास ऐसा अनन्त श्वास में अनन्त... अनन्त भव किये। आहाहा! भगवान अनादि काल का जीव है न, प्रभु! वह परिभ्रमण राग और पुण्य के प्रेम के मिथ्यात्वभाव में इसने यह अनन्त काल व्यतीत किया। एक बार कहते हैं, प्रभु! यह भव जो है, वह अनन्त भव के अभाव करने का यह भव अवसर है। श्रीमद् कहते हैं, भाई! श्रीमद् में आता है, यह भव अनन्त भव का अभाव करने के लिये यह भव है। आहाहा! बापू! तुझे कीमत नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, उस कवि—कला का मद छोड़ दे। नहीं तो अन्दर नहीं जा सकेगा, ऐसा कहते हैं। हम कवि, हम होशियार, हमको जानपना बहुत, शीघ्र कविता बना देते हैं। उसमें क्या है? वह तो अज्ञान है। आहाहा! कविता बनावे। यह संस्कृत के प्रोफेसर हैं। पण्डितजी! अपने घर में ले न! यह तो दृष्टान्त। हम प्रोफेसर। यह आयेगा, देखो! **वाद में जीतने का मद,...** यह चार होकर एक कहेंगे। कवि-कला का मद, वाद में जीतने का मद। चर्चा करते-करते अपनी अधिकता बतलाने का मद। आहाहा! वाद शब्द से बात करते-करते अपनी अधिकाई बतलाने का मद। दूसरों को हीन करने का और अपने को अधिक (स्थापित करने का)। आहाहा! ऐसा वार्तालापी। उसका उसे गर्व। आहाहा! भगवान तो वीतरागस्वरूप प्रभु अन्दर है, वहाँ जा नहीं सकता, ऐसे गर्व के कारण। समझ में आया?

शास्त्र की टीका बनाने का मद,... आहाहा! शास्त्र की टीका बनाने का मद। हमको टीका आती है, ऐसी टीका कर देते हैं। भगवान! वह तो अक्षर की कला है। टीका तो अक्षर की रचना है। उसमें तेरा विकल्प हो तो वह तो राग है। आहाहा! समझ में आया? वह शास्त्र की टीका करने का मद। **शास्त्र के व्याख्यान करने का मद,...** हम एक घण्टे, दो घण्टे ऐसे भाषण कर सकते हैं कि लोगों को हिला डालते हैं। अरे! भगवान! भाषण बोलना, वह तेरी शक्ति कहाँ है? आहाहा! शास्त्र का व्याख्यान करने का गर्व। उसकी हलक-झलक करे अन्दर। देशी हो न? देशी। 'भक्तामर प्रणत मौलिमणिप्रभानां...' ऐसा करे। क्या है परन्तु? प्रभु! वह तो शब्द है। आहाहा! उसकी रचना और उसकी देशी हमको आती है। ऐसा बाहर में दिखाव (करे)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह झूठी बात है। अन्दर गर्व है। ऐ... देवानुप्रिया! देवानुप्रिया समझते हो? शास्त्र में ऐसी भाषा आती है। मनुष्यभव है, वह देव को वल्लभ है। यह मनुष्यदेह देव को वल्लभ है। तो ऐसा कहते हैं, देवानुप्रिया! देव को प्रिय। देव मनुष्यपना माँगते हैं। श्वेताम्बर में ऐसा बहुत आता है। देवानुप्रिया। नौकर हो तो ऐसा कहे, देवानुप्रिय! यह काम करोगे? यह तो मार्ग, बापू मिठास का!... आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **शास्त्र के व्याख्यान करने का मद,...** आहाहा! बहुत विचिक्षणता से शास्त्र कहने की हमारी शक्ति है। भगवान! यह भाषा तो जड़ की है, प्रभु! आहाहा! भाषा की जड़ की पर्याय आत्मा कर सकता है? भाषा जो उठती है, वह तो जड़ की पर्याय है। वह परमाणु में उस क्षण में भाषा की पर्याय होने का जन्मक्षण है। परमाणुओं में भाषा होने का जन्म अर्थात् उत्पत्ति का काल है तो वह भाषा होती है। आहाहा! स्वकाल है। वैसे तो छहों द्रव्य में, भगवान त्रिलोकनाथ प्रवचनसार १०२ गाथा में ऐसा कहते हैं, छहों द्रव्य में जो समय-समय में पर्याय होती है, उसकी उत्पत्ति का वह काल है। पर से नहीं। निश्चय से तो द्रव्य-गुण से भी नहीं। आहाहा! एक-एक भाषा की पर्याय, परमाणु की पर्याय, आत्मा की पर्याय, निगोद के जीव की पर्याय या सिद्ध की केवलज्ञान की पर्याय... आहाहा! उस-उस समय में उत्पन्न होने का उसका क्षण अर्थात् काल है। आहाहा! समझ में आया? तुझे किसका करना है? भाषा करनी है? भाषा का ऐसा-वैसा अभिमान करना है? कहाँ जाना है तुझे? आहाहा! संसार में जाना है?

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार यह गर्व छोड़। आहाहा! भगवान के पास अन्दर जाना है। तीन लोक का नाथ परमात्मा जागृतस्वरूप विराजता है। जागृतस्वरूप अर्थात् ज्ञायकभाव। चैतन्यज्योति जलहल सूर्य भगवान पूर्णानन्द चैतन्यज्योति जलहल ज्योति से विराजमान आत्मा भगवान है आत्मा। आहाहा! प्रभु! तुझे उसमें जाना हो, उसके सन्मुख जाना हो तो यह सब विकल्प के गर्व छोड़ना पड़ेंगे। इसके बिना अन्दर नहीं जाया जा सकेगा। आहाहा! समझ में आया? वह तुम्हारे आता है न? घेलाशा का। चिमनभाई! तुम्हारे घेलाशा थे न? दरबार में गये थे। बनिया थे। उनके परिवारी। घेलाशा 'बरवाळा'। दशाश्रीमाली बनिया था परन्तु कड़क राजपूत जैसा। घेलाशा कहते। दीवान में जाये तो ऐसे कपड़ा बाँधे न? ऐसे बैठे। यहाँ बाँधकर बैठे। वह और कमर

बाँधे नहीं, ऐसे बैठकर ऐसे बाँधे। उसे आदत थी। यहाँ बाँधे। एक छोर यहाँ डाले। उसे आदत थी। दूसरा उघाड़ डाले, एकदम। दीवान में। वापस दूसरी बार करे। इतना सब हुआ, फिर एक बार दरबार ने हुकम किया कि इसकी आँख में मिर्च भरो। आँख में मिर्च भरी। घेलाशा बनिया था। उसके परिवारी। इन चिमनभाई के दादा। परदादा। उनके यह कुटुम्बी हैं। बरवाळा। बनिया था परन्तु राजपूत जमींदार, महा कड़क। उसकी आँख भी कड़क। उसे इतना अधिक गर्व कि कोर्ट में भी ऐसे बैठे। कौन इनकार करता है? अन्त में उसे कैद में डाल दिया। यह संसार दशा। आहाहा!

मुमुक्षु : अभिमान....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिमान। यह तो ... वह तो बनिया दशाश्रीमाली, परन्तु राजपूत जैसी अभिमान शक्ति थी। शरीर भी ऐसा। यह गढ़ बनाया है न? बरवाळा में गढ़ बनाया है। स्वयं का गढ़। किसका गर्व? बापू! आहाहा!

कहते हैं, शास्त्र बनाने का मद। यह चार प्रकार के शब्द का (मद)। है न? चार शब्द आये न? कवि—कला, वाद, शास्त्र और व्याख्यान। ये चार शब्द आये। इन शब्द का गर्व और ऊपर कहे वे—रसायन और ऋद्धि का गर्व। **इत्यादि अनेक विकल्प-जालों का त्यागरूप...** आहाहा! प्रभु! यह विकल्प का जाल छोड़ दे, नाथ! हम ऐसे हैं और हम ऐसे हैं और हमको ऐसा आता है, हम ऐसा समझे हैं। बाहर की चीज़ का जानपना करके अभिमान (किया)। शास्त्र के ज्ञान का अभिमान करे, वह अज्ञान है। वह शास्त्र का ज्ञान नहीं, वह कहाँ ज्ञान है? समझ में आया? आहाहा! भगवान की वाणी सुनकर जो ज्ञान हुआ, वह अपनी पर्याय से अपने से हुआ है, तथापि वह ज्ञान नहीं। आहाहा! क्योंकि वाणी निमित्त है और अपनी ज्ञान की क्षयोपशम पर्याय उत्पन्न हुई, वह ज्ञान नहीं, अज्ञान है। परलक्षी ज्ञान, वह अज्ञान है। आहाहा! निज भगवान चिदानन्द प्रभु, ज्ञान की खान, आनन्द का सागर, शान्ति का सरोवर प्रभु, उसमें डुबकी मार, जा अन्दर। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : जब तक रीति की खबर न पड़े, तब तक कैसे करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करना। आहार-बाहार न करना। यह सब करते हैं।

तम्बाकू में कितने वर्ष बिताये हैं ? सेठ ! इतने पैसे हुए। करोड़ रुपये के ऊपर तो कितने पैसे हुए हैं। कितने तो कितने करोड़ कहते थे, हों ! एक व्यक्ति कहता था कि छह करोड़, दस करोड़, ऐसा कोई कहता था। चाहे जितने हों, यह दोनों सेठिया रहे। एक व्यक्ति कहता था। तुम्हारे गाँव में बहुत परिचयवाला व्यक्ति था। उसी और उसी में रुके हुए। वहाँ के वहाँ।

मुमुक्षु : इसकी बात सुनने....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल बात (सुनना), वह भी अभी राग है। वह राग की प्रसन्नता है, प्रभु ! बुन्देलखण्ड के बादशाह कहलाते हैं, दोनों व्यक्ति। छोटे-बड़े सेठ हैं। है नरम, हों ! उन्हें गर्व नहीं। परन्तु उसमें रुक गये। कमाना... कमाना... कमाना। ऐई ! वैसे नरम व्यक्ति, हों ! आहाहा ! दोनों भाई। यहाँ तो बाहर में रुकना, वह महा अभिमान अज्ञान है, ऐसा कहते हैं। सेठ ! आहाहा ! टीकाकार ने स्पष्टीकरण किया है।

यह **चार तरह का शब्द-गौरव-स्वरूप इत्यादि...** पहले कहे वे आदि। **अनेक विकल्प-जालों का त्यागरूप प्रचण्ड पवन...** आहाहा ! जैसे अग्नि हो और पवन हो तो अग्नि बराबर प्रज्वलित होती है। नहीं कहते ? आग वहाँ वा। अग्नि लगे और उसमें यदि पवन आवे तो बहुत प्रज्वलित हो। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, अपने में एकाग्र होनेरूप जो अग्नि है, उसमें पर का त्यागरूप पवन है। विकल्प के त्यागरूपी पवन है। अन्तर में एकाग्रतारूपी अग्नि है। आहाहा ! अरे ! भगवान ! तूने तेरी चीज़ की महिमा नहीं की। प्रभु ! आहाहा ! बहुत किया। धूलधाणी। साधुपना भी अनन्त बार पालन किया। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, वह सब राग है। वह तो राग है। समझ में आया ? आहाहा !

अनेक विकल्प-जालों का त्यागरूप प्रचण्ड पवन... देखो ! आहाहा ! यह विकल्प का त्याग, वह प्रचण्ड पवन। आहाहा ! **उससे प्रज्वलित हुई (दहकती हुई) जो निज शुद्धात्मतत्त्व के ध्यानरूप अग्नि की कणी है,...** आहाहा ! पर के त्यागरूपी पवन और अन्तर में एकाग्रतारूपी अग्नि। आहाहा ! निज शुद्धात्मतत्त्व की, हों ! भगवान केवली और तीर्थंकर की नहीं। यह भगवान और तीर्थंकर का विचार और ध्यान, वह तो राग है। आहाहा ! पंच परमेष्ठी का स्मरण, पंच परमेष्ठी की भक्ति, वह तो सब राग है। निज

शुद्धात्मतत्त्व, यह शब्द लिया है। आहाहा! अपना प्रभु। आहाहा! **निज शुद्धात्मतत्त्व के ध्यानरूप अग्नि...** अन्दर में एकाग्रता, लगनी। आहाहा! बहुत प्रयत्न चाहिए, भाई! यह कहीं बातों से वडा हो, ऐसा नहीं है। बातों से वडा समझते हो? हमारे काठियावाड में (कहते हैं), बातें करने से वडा हो? यह वडा बनाते हैं न? भुजिया। भाषा में अन्तर हो। वडा, वडा नहीं होता? भुजिया। बात करने से भुजिया हो जायेगा? आहाहा!

कहते हैं, निज शुद्धात्मतत्त्व। भगवान को ध्यान में विषय बनाकर, ध्यान में ध्येय बनाकर, वस्तु जो भगवान पूर्ण स्वरूप एक-एक शक्ति, ऐसी अनन्त शक्ति और एक-एक शक्ति में अनन्त शक्ति, ऐसा भगवान अनन्त शक्ति का सागर, अनन्त शक्ति के समुदाय का पर्वत है। उसमें एकाग्रता। ध्यान अर्थात् अन्दर एकाग्रता। आहाहा! **अग्नि की कणी है,...** अन्दर में ध्यान लगाना। वह विकल्प से नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अभी इसके ख्याल में यह मार्ग की रीति—पद्धति न आवे, वह मार्ग किस प्रकार (ग्रहण) करे?

अरेरे! मनुष्यदेह चला जाता है। जो-जो समय, मिनिट जाते हैं, वे मृत्यु के समीप जाते हैं। मृत्यु का समय निश्चित है। उस समय से जितने मिनिट... मिनिट जाते हैं, वे मृत्यु के समीप जाते हैं। यह मानो कि मैं बड़ा होकर आगे बढ़ता हूँ। माँ माने कि पुत्र बड़ा होता है। प्रभु कहते हैं कि वह मृत्यु के समीप जाता है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! अरेरे! जिस दुकान, जिस मकान में बैठा हो, वहाँ वह दुकान और मकान की क्षेत्राकारवृत्ति (हो जाती है)। बस, आहाहा! यह गल्ला, क्या कहलाता है यह? गल्ला। गल्ला बड़ा हो। हमारे वहाँ पालेज में दुकान में बड़ा गल्ला रखते हैं। वह तो बड़े पैसेवाले हुए हैं न! बड़ा गल्ला और बड़ी वह रखे। एक दिन में पाँच-पाँच हजार रुपये आवे। उगाही डाले न वे लोग। दस-दस लाख की उगाही डालते हैं। पालेज। बड़ा गल्ला होता है। आहाहा! उस गल्ले को देखकर ज्ञान में आकृति गल्लारूप हो जाये। यह मकान और स्त्री और परिवार और शरीर के सम्बन्धी, वे कहीं आत्मा के सम्बन्धी नहीं हैं। आत्मा को खबर भी कहाँ है? शरीर के सम्बन्धी। स्त्री, पुत्र, परिवार, माँ-बाप सब शरीर के सम्बन्धी। उनके ऊपर (लक्ष्य करे) तो आकृति उनके रूप हो जाये। वह मैं हूँ। आहाहा! जिस मकान में रहा हो, दो-पाँच-दस लाख के मकान में।

आहाहा! उसमें से निकलना भारी कठिन, बापू! गत वर्ष हम मुम्बई में जिस मकान में थे न? आमोद के रमणिकभाई थे। सत्तर लाख का मकान। एक मकान सत्तर लाख का। उसमें से निकलना कठिन पड़े लोगों को। आहाहा! उसकी वृत्ति हो जाये कि यह स्तम्भ और यह... यह। इस ओर खिड़की और इसकी ओर हवा आवे। अरे! क्या है? बापू! उस संयोगी चीज़ के आकार तेरी वृत्ति हो, बापू! तू घाता गया है। समझ में आया? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : .... प्रतीति में आता है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे आना चाहिए या नहीं? आहाहा! सुननेवाले को आना चाहिए न, यहाँ तो कहते हैं। आहाहा!

समस्त पापों को भस्म कर डालती है,... आहाहा! है? **जैसे अग्नि की कणी काठ के पर्वत को भस्म कर देती है,...** आहा! यह मकान। परन्तु क्या है? यह तो जगत की धूल का श्मशान का मकान है। श्मशान में जैसे हड्डियों में फासफूस नहीं होती? बालक ऐसा माने कि भूतड़ा होता है। परन्तु वह तो हड्डियों में चमक होती है। हड्डियाँ पड़ी हो न? उसी प्रकार यह सब बाहर की हड्डियों की चमक है। उसमें कहाँ आत्मा था? वह तो परचीज़ है। आहाहा! बाहर का आकर्षण जगत को—जीव को चुका देता है। बाहर की सुन्दरता और आकर्षण में इसका आत्मा वहाँ खिंच जाता है। उसे—विकल्प को छोड़, प्रभु! आहाहा! तेरा कल्याण करना हो, हित करना हो तो। बाकी तो अनन्त काल से भटकता है। आहाहा! उसमें भी त्रस की स्थिति दो हजार सागर की है। त्रस में दो हजार सागर रहे। उसमें दो हजार सागर पूरा होगा तो निगोद में चला जायेगा। बापू! उसमें कुछ तेरा वहाँ चले, ऐसा नहीं है। आहाहा!

उसी तरह यह समस्त पापों को भस्म कर डालती है,... आहाहा! **अर्थात् जन्म-जन्म के इकट्ठे किये हुए कर्मों को आधे निमेष में नष्ट कर देती है,...** आहाहा! यह वस्तु इतनी है महाप्रभु कि जिसके सन्मुख होने से एक क्षणमात्र में कर्म का गंज हो, वह जलकर भस्म हो जाता है, ऐसी उसमें ताकत है। इसे विश्वास कहाँ है? विश्वास कहाँ है इसे? क्योंकि अनादि काल की एक समय की पर्याय की लीनता है। प्रगटरूप से व्यक्तरूप से जो पर्याय—अवस्था है, उसमें उसकी अनादि की लीनता है। परन्तु एक

समय की पर्याय के पीछे महाप्रभु विराजता है, उसकी इसने कीमत नहीं की। पर्याय की कीमत की। नौ पूर्व पढ़ा, ग्यारह अंग पढ़ा। आहाहा!

मुमुक्षु : महाप्रभु चैतन्य का वैष्णव में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ आत्मा में आवे। महाप्रभु, चैतन्य महाप्रभु है। गीता में आता है न? उसकी एक टीका महाप्रभु में की है। खबर है। यह तो महाप्रभु स्वयं भगवान महाप्रभु है। अरे! इसमें अनन्त ईश्वरता पड़ी है। इसमें एक प्रभुता नाम का गुण है, प्रभुता नाम की एक शक्ति है, जो अखण्ड प्रताप से स्वतन्त्ररूप से शोभती है, ऐसा यह भगवान है। आहाहा! अरे! परन्तु विश्वास कहाँ है? आहाहा! पर्याय का विश्वास, राग का विश्वास, एक दवा खाये कुनेन की तो बुखार मिट जायेगा, ऐसा उसका विश्वास। आहाहा! पानी डालूँगा तो प्यास मिट जायेगी, पेट में आहार डालूँगा तो भूख मिट जायेगी, उसका सब विश्वास है। आहाहा! एक समय में परमात्मा पूर्णानन्द प्रभु, उस ओर का विश्वास करके, आहाहा! भगवान को भरोसे में लेकर, भगवान का भरोसा लेकर भगवान की ओर जा। आहाहा! यह तो परमात्मप्रकाश है न! तू परमात्मा ही है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

ऐसी शुद्ध आत्म-ध्यान की सामर्थ्य जानकर... देखो! **ऐसी शुद्ध आत्म-ध्यान की सामर्थ्य जानकर उसी ध्यान की ही भावना सदा करनी चाहिए।** लो। आहाहा! जिसे आत्मा का हित करना है... आहाहा! तब हमारे कमाना कब? सदा (लिखा है)। यही करना। अरे! सुन न अब, कौन कमाता था? **ऐसी शुद्ध आत्म-ध्यान सामर्थ्य जानकर...** कैसी? एक क्षण में ध्यान लगाकर अनन्त काल के कर्म हैं, वे भस्म हो जाते हैं। आहाहा! कर्म तो असंख्य काल के ही होते हैं, परन्तु शास्त्र ऐसा बोले। अनन्त काल के उपार्जित कर्म—ऐसा बोले। नियमसार में पाठ है। वरना कर्म है, वे तो असंख्य वर्ष के ही (होते हैं)। सत्तर कोड़ाकोड़ी के ही कर्म होते हैं, विशेष नहीं। परन्तु परम्परा से चले आते हैं, इसलिए ऐसा कहा जाता है। नियमसार में है कि अनन्त काल से उपार्जित कर्म। ऐसा। यह भगवान आत्मा अपने भरोसे भगवान को चढ़कर... आहाहा! विश्वास से जहाज चलते हैं। अन्दर का पूर्णानन्द के नाथ का विश्वास आने पर उसे मोक्ष की गति प्रगट होती है। मोक्ष का मार्ग। आहाहा!

जहाँ मति, वहाँ गति। यह तो श्लोक में आ गया है। जहाँ मति, वैसी गति। यदि तेरी मति राग के प्रेम में हो तो तेरी गति नरक और निगोद। आहाहा! और तेरी मति परमात्मा के प्रति हो... आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, मति वहाँ लग गयी... आहाहा! तो मति, वैसी गति। देह छूटकर तेरी सिद्धगति हो जायेगी। क्यों? कि भगवान तो अनादि-अनन्त आत्मा है। अब जिसकी मति जहाँ है, वह वहाँ रहेगा। राग के, पुण्य के प्रेम की मति है तो वहाँ रहकर भविष्यकाल में दुःखी होगा। और इस ओर मति गुलांट खायेगी.... आहाहा! पलटा मारेगी तो भविष्य में वह निर्मल परिणति में ही रहेगा। और पूर्ण परिणति होकर उसे सिद्धपद (प्राप्त) होगा। आहाहा! समझ में आया? आत्मधर्म की बातें बहुत सूक्ष्म, बापू! भगवान ने तो आत्मा का धर्म कहा है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसी शुद्ध आत्म-ध्यान की सामर्थ्य जानकर उसी ध्यान की ही... ऐसा शब्द लेते हैं। आहाहा! तो टीकाकार को कोई ऐसा कहे कि तुम तो ऐसा कहते हो तो यह विकल्प क्यों उठाते हो? यह क्यों लिखते हो? अरे! सुन तो सही! समझ में आया? कुतर्की। पाठ तो ऐसा लिया, **ध्यान की ही भावना....** भावना कहते हो तो तुमने शास्त्र क्यों बनाया? अरे! सुन तो सही अब। सिद्धान्त क्या है, वह समझाते हैं। विकल्प उठता है, भाषा होती है, उससे क्या? समझ में आया? यह शास्त्र में आया था न? वाणी को गोपने से इतना लाभ होता है। सम्प्रदाय में यह प्रश्न हुआ था। महाराज! वाणी गोपने से लाभ होता है तो आचार्य वाणी किसलिए करते हैं? यह तेरा कुतर्क है, तुझे खबर नहीं। उस समय उसकी दृष्टि और सिद्धान्त क्या है, उसके ऊपर दृष्टि है। वाणी वाणी के कारण से निकलती है। आहाहा! जो उन्हें सिद्ध करना है, वह बात क्या है, उस बात पर लक्ष्य न लेकर, वचन को मौन करने से यह लाभ है, तो तुम क्यों वचन बोलते हो? (ऐसा कहे तो तू) कुतर्की है। सुनने के योग्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वीछिया में एक महिला थी न... लो, यह ११४ गाथा हुई।

ओहोहो! एक में पूरा है। बारह अंग का सार यह है। बारह अंग पढ़-पढ़कर भी करनेयोग्य तो स्वरूप में एकाग्रता करना, वह है। बारह अंग में भी यह कहा है। तेरी चीज़ की अनुभूति कर। आहाहा! भगवान आनन्द के नाथ को अनुसरकर तू हो। अनु अर्थात् अनुसरकर, भूति—होओ। राग को अनुसरकर होता है, वह तो अनन्त काल से

हुआ। वह तो नरक और निगोद का कारण है। यह कहते हैं न? 'एकबार वंदे जो कोई, नरक पशु गति न होई।' सम्मेदशिखर की (महिमा में आता है)। एक बार वंदे, उसमें क्या हुआ? क्योंकि नरक, पशु (न हो)। वर्तमान शुभभाव हो तो नरक, पशु में न जाये। भले स्वर्ग में जाये, परन्तु बाद में नरक और निगोद में जायेगा। समझ में आया? तत्त्व की कुछ खबर नहीं।

श्रेणिक राजा अभी नरक में नारकीरूप से है। क्षायिक समकित। समय-समय में तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। नरक में! आहाहा! बाहर का संयोग... समझ में आया? पीड़ा के संयोग। जितना राग है, उतना वहाँ परसन्मुख लक्ष्य जाता है, वह दुःख है। अन्तर में सुख की गटागटी होती है। यह आया न? 'चिनमूरति दृगधारी की मोहे रीति लगत है अटापटी।' नरक के दुःख बाहर से भोगे परन्तु अन्दर सुख की गटागटी। आहाहा! मार्ग बहुत अलग, बापू! आहाहा! दृष्टि अन्दर है, पूर्णानन्द के नाथ का स्वीकार है। पर्यायबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! वह भी नहीं। मैं तो त्रिकाली पूर्णानन्द का नाथ हूँ, ऐसी अन्तर्दृष्टि में विश्वास अनुभव में आ गया। गृहस्थाश्रम में रहे थे, राजकुटुम्ब में रहे थे। हजारों रानियाँ (थीं)। परन्तु अन्दर में निर्लेप। जैसे नारियल को गोला अन्दर काचली में पृथक् रहता है। आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार लगन तो लगा दे। आहाहा! ऐसा कहते हैं, कि **ध्यान की ही भावना सदा करनी चाहिए।** उस ओर की दृष्टि सदा रखनी चाहिए, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ११४ हुई। ११५।

गाथा - ११५

अथ हे जीव चिन्ताजालं मुक्त्वा शुद्धात्मस्वरूपं निरन्तरं पश्येति निरूपयति –

११५) मेल्लिवि सयल अवक्खडी जिय णिच्चिंतउ होइ।
चित्तु णिवेसहि परमपए देउ णिरंजणु जोइ।।११५।।

मुक्त्वा सकलां चिन्तां जीव निश्चिन्तः भूत्वा।
चित्तं निवेशय परमपदे देवं निरञ्जनं पश्य।।११५।।

मेल्लिवि इत्यादि। मेल्लिवि मुक्त्वा सयल समस्तं अवक्खडी देशभाषया चिन्तां जिय हे जीव णिच्चिंतउ होइ निश्चिन्तो भूत्वा। किं कुरु। चित्तु णिवेसहि चित्तं निवेशय धारय। क्व। परमपए निजपरमात्मपदे। पश्चात् किं कुरु। देउ णिरंजणु जोइ देवं निरञ्जनं पश्येति। तद्यथा। हे जीव दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षास्वरूपपापध्यानादि समस्तचिन्ताजालं मुक्त्वा निश्चिन्तो भूत्वा चित्तं परमात्मस्वरूपे स्थिरं कुरू, तदनन्तरं भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्माञ्जनरहितं देवं परमाराध्यं निजशुद्धात्मानं ध्यायेति भावार्थः। अपध्यानलक्षणं कथ्यते – 'बन्धवधच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः। आर्तध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः।।'।।११५।।

आगे हे जीव, चिंताओं को छोड़कर शुद्धात्मस्वरूप को निरंतर देख, ऐसा कहते हैं –

हे आत्मन् सब चिन्ता तजकर हो जाओ बिलकुल निश्चिन्त।
जोड़ो अपना चित्त परमपद में तुम निर्मल देव लखो।।११५।।

अन्वयार्थ :– [हे जीव] हे जीव [सकलां] समस्त [चिन्तां] चिंताओं को [मुक्त्वा] छोड़कर [निश्चिन्तः भूत्वा] निश्चित होकर तू [चित्तं] अपने मन को [परमपदे] परमपद में [निवेशय] धारण कर, और [निरंजनं देवं] निरंजनदेव को [पश्य] देख।

भावार्थ :– हे हंस, (जीव) देखे सुने और भोगे हुए भोगों की वांछारूप खोटे ध्यान आदि सब चिंताओं को छोड़कर अत्यंत निश्चिंत होकर अपने चित्त को परमात्मस्वरूप में स्थिर कर। उसके बाद भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्मरूप अंजन से रहित जो निरंजनदेव परम आराधने योग्य अपना शुद्धात्मा है, उसका ध्यान कर। पहले यह कहा था कि खोटे

ध्यान को छोड़, सो खोटे ध्यान का नाम शास्त्र में अपध्यान कहा है। अपध्यान का लक्षण कहते हैं। 'बंधवधेत्यादि' उसका अर्थ ऐसा है कि निर्मल बुद्धिवाले पुरुष जिन-शासन में उसको अपध्यान कहते हैं, जो द्वेष से पर के मारने का बाँधने का अथवा छेदने का चिंतवन करे, और रागभाव से परस्त्री आदि का चिंतवन करे। उस अपध्यान के दो भेद हैं, एक आर्त दूसरा रौद्र। सो ये दोनों ही नरक, निगोद के कारण हैं, इसलिये विवेकियों को त्यागने योग्य हैं।।११५।।

गाथा-११५ पर प्रवचन

११५। **आगे हे जीव! चिन्ताओं को छोड़कर...** योगीन्द्रदेव कहते हैं। मुनि हैं, भावलिंगी सन्त हैं, आनन्दकन्द में झूलते हैं। जरा विकल्प आया है तो शास्त्ररचना हो गयी है। हो गयी, उन्होंने बनाया नहीं। आहाहा! क्योंकि शास्त्र का एक अक्षर अनन्त परमाणु की रचना है। तो अनन्त परमाणु की पर्याय हो, उसमें आत्मा क्या करे? एक 'क' में अनन्त परमाणु का स्कन्ध है। क, वह परमाणु की पर्याय है, आत्मा की नहीं। आत्मा से बनती नहीं। आहाहा! समझ में आया? तो कहते हैं कि उस चिन्ता को छोड़कर **शुद्धात्मस्वरूप को निरन्तर देख,...** मति को वहाँ लगा दे। फिर भले विकल्प हो, दूसरा सब हो। आहाहा!

११५) मेल्लिवि सयल अवक्खडी जिय णिच्चिंतउ होइ।
चित्तु णिवेसहि परमपए देउ णिरंजणु जोइ॥११५॥

अन्वयार्थः—हे जीव समस्त चिन्ताओं को छोड़कर निश्चित होकर... 'निश्चिन्तः भूत्वा' निश्चित होकर तू अपने मन को... 'परमपदे' परमात्मा भगवान निजस्वरूप **परमपद में धारण कर...** आहाहा! सिद्ध और परमात्मा, वे नहीं, यहाँ तो यह परमपद स्वयं। आहाहा! एक समय की पर्याय व्यक्त है। द्रव्यस्वभाव, उस पर्याय की अपेक्षा से अव्यक्त है। पर्याय में द्रव्य आया नहीं। इस अपेक्षा से अव्यक्त है। परन्तु द्रव्य, द्रव्यरूप से व्यक्त अर्थात् प्रगट है। अरे! यह क्या? समझ में आया? और ज्ञान की एक समय की पर्याय में द्रव्य का ज्ञान होता है, परन्तु पर्याय में द्रव्य नहीं आता। पर्याय में पूर्णानन्द का नाथ, उसकी जितनी शक्ति—सत्त्व है, उसका ज्ञान पर्याय में आता है। द्रव्यस्वभाव की

जितनी शक्ति है, उतना ज्ञान आता है। परन्तु उस ज्ञान की पर्याय में वह द्रव्य आया नहीं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, मति को **परमपद में धारण कर,...** आहाहा! तेरी पर्याय में पूरा भगवान तुझे दिखाई देगा। आहाहा! तथापि वह पर्याय में द्रव्य नहीं आता। परमपद है, वह पर्याय में नहीं आता। परन्तु परमपद का स्वरूप का जो ज्ञान, वह ज्ञान यहाँ आयेगा, पूरा-पूरा ज्ञान पर्याय में आयेगा। आहा! समझ में आया? **और निरंजनदेव को देख।** आहाहा! अनावरणी चीज़ भगवान, निर्लेप चीज़, जिसे निमित्त, आवरण भी नहीं। आवरण तो वर्तमान पर्याय के साथ निमित्त सम्बन्ध है। द्रव्य में आवरण है नहीं। आहाहा! निरावरण परमात्मा वहाँ विराजता है। आहा!

यह बर्फ की शिला नहीं होती? मुम्बई में। बर्फ... बर्फ की शिला पच्चीस-पच्चीस मण की ट्रक में खुल्ली ले जाते हैं। मुम्बई जायें, वहाँ बहुत देखी है। पच्चीस-पच्चीस मण की शिला। आहाहा! अकेला बर्फ का पिण्ड। इसी प्रकार भगवान अकेला शान्ति का पिण्ड बड़ा बर्फ है। शान्तरस का पिण्ड है। अरे! परन्तु कैसे (जँचे)? कभी इसने विचार भी नहीं किया। वह शिला तो बर्फ की है। पूरी शीतल... शीतल... शीतल... परन्तु वह तो जड़ है। भगवान शीतल शान्तरस मूल प्रभु पूरा। आहाहा! वहाँ मति को धारण कर। समझ में आया?

निरंजनदेव को देख। आहाहा!

भावार्थः-**हे हंस...** शब्द ऐसा लिया है। स्वयं डाला है। हंस है प्रभु! आहाहा! हंस की चोंच में खटास होती है। दूध और पानी इकट्ठे करके दे, उसमें चोंच डाले तो दूध का मावा हो जाता है और पानी निकल जाता है। इसी प्रकार भगवान! तेरी परिणति में ऐसी सामर्थ्य है कि वह परिणति अन्दर ढली तो मावा हो जाये और रागादि जल भिन्न हो जाये। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, भाद्र कृष्ण ५, सोमवार
दिनांक-१३-०९-१९७६, गाथा-११५, ११६, प्रवचन-८९

परमात्मप्रकाश ११५ गाथा। भावार्थ :- **हे हंस....** जीव को हंस कहकर बुलाया है। जैसे हंस दूध और पानी इकट्ठे हों, उन्हें पृथक् कर डालता है और दूध पीता है। दूध और जल एक स्थान में हो तो दूध का मावा करके खा जाता है और पानी पृथक् पड़ जाता है। इसी प्रकार हे जीव! **देखे, सुने और भोगे हुए भोगों की वांछारूप खोटे ध्यान आदि सब चिन्ताओं को छोड़कर अत्यन्त निश्चिन्त होकर अपने चित्त को परमात्मस्वरूप में स्थिर कर।** आहाहा! यह तो सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की प्रथम पद्धति यह है। इसके बिना व्रत और तप जो करते हैं, वे सब निरर्थक चार गति में भटकने की वस्तु है। पहले सम्यग्दर्शन चौथा गुणस्थान... आहाहा! किस प्रकार प्राप्त हो, यह बात चलती है।

अपने चित्त को परमात्मस्वरूप में स्थिर कर। आहाहा! शुद्ध चैतन्यघन अद्वितीय अतीन्द्रिय सुखरूप प्रभु, उसमें ध्यान करके वहाँ स्थिर हो। आहाहा! समझ में आया? प्रथम में प्रथम यह कर्तव्य है। वह कोई व्रत, तप और नियम करने से यह प्रगट हो, वह चीज़ नहीं। यह सब क्रिया तो विकल्प, राग है। समझ में आया? भगवान परमात्मस्वरूप शुद्ध चैतन्य आनन्ददल का ध्यान, ध्येय बनाकर उसमें लीन होना, वह परमात्मा—आत्मा की प्राप्ति का उपाय है। यह बात है, भाई! आहा! समझ में आया? **परमात्मस्वरूप में स्थिर कर।**

उसके बाद भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्मरूप अंजन से रहित... तेरा भगवान तो अन्दर निरंजनस्वरूप है। निरंजन अर्थात् जड़कर्म से रहित। पहले भावकर्म लिया है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, वह भावकर्म-राग है। आहाहा! उस राग को छोड़कर तथा द्रव्यकर्म और नोकर्म—शरीर, वह अंजन है—मैल है। आहाहा! यह पर्याय में जितने दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव उत्पन्न होते हैं, वे सब मैल हैं, अंजन है। उस अंजन से रहित भगवान निरंजन है। आहाहा! समझ में आया? क्या भगवान? यह भगवान। भगवान तो निर्मल हो गये, उसमें क्या? आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान की बात नहीं, यह स्वभगवान की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा की बात है। यह भगवानभाई की अन्दर की बात है। आहाहा!

कहते हैं कि... है न? **निरंजनदेव परम आराधनेयोग्य...** देखो! **अपना शुद्धात्मा है,...** आहाहा! भगवान निरंजन पुण्य और पाप के अंजन अर्थात् मैल; कर्म और शरीररूपी अंजन से भिन्न है। आहाहा! भगवान सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की चीज़ जो है, वह तो परमात्मा निरंजन आनन्दकन्द प्रभु है। आहाहा! वह शुद्धात्मा है, **उसका ध्यान कर।** है? वह भगवान नहीं। भगवान साक्षात् परमात्मा आत्मा है। वह कैसे बैठे? विश्वास नहीं। कभी सुना नहीं और सुना हो तो विश्वास बैठता नहीं। आहाहा! सुना ही नहीं। अभी तो सुनने को ही मिलता नहीं। अभी तो यह व्रत करो, अपवास करो और प्रतिमा धारण करो। धूल है सब, वह तो राग है।

मुमुक्षु : करना या नहीं करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करना। वह करना तो जहर है। राग की क्रिया वह तो जहर की क्रिया है। यह तो अमृत सागर की क्रिया है। यह बात लेते हैं, लो, भगवानदास और सागर के निवासी हैं। यह भगवान अनन्त आनन्दसागर आत्मा है। चाहे तो शास्त्र के पठन हो, या चाहे वह नौ तत्त्व के भेदसहित उनका ज्ञान किया हो, परन्तु वह कोई सम्यग्ज्ञान नहीं है। आहाहा! चार अनुयोग पढ़ा हो, करोड़ों-अरबों श्लोक (कण्ठस्थ हों), वह कोई सम्यग्ज्ञान नहीं। भगवान पुण्य-पाप के अंजन से रहित, ऐसे परमात्मा का ध्यान करके एकाग्र हो, उसका नाम सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया? यह कहा न?

भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म... नोकर्म अर्थात् शरीर, वाणी। द्रव्यकर्म अर्थात् आठ जड़ कर्म। भावकर्म अर्थात् दया, दानादि विकल्प। हिंसा, झूठ, चोरी आदि के विकल्प। उस **अंजन से रहित निरंजनदेव...** भगवान निरंजनदेव अन्दर आत्मा है। आहाहा! ऐसा देव **परम आराधनेयोग्य...** आराधनेयोग्य है। आहाहा! अन्तर्मुख होकर उसकी सेवा करनेयोग्य है। आहाहा! गजब बातें, भाई! अभी तो सम्यग्दर्शन कैसे हो, उसकी बात है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन बिना आठ और दस और ग्यारह प्रतिमा ले ली। एक बिना के शून्य हैं सब। वहाँ तो मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? भगवान

निरंजनदेव परमात्मा, ऐसा जो तेरा शुद्धात्मा, उस ओर सन्मुख होकर ध्यान लगाकर अन्दर में स्थिर हो। तो उसे सम्यग्दर्शन होगा। आहाहा! समझ में आया? है? **उसका ध्यान कर।**

पहले यह कहा था कि खोटे ध्यान को छोड़, सो खोटे ध्यान का नाम शास्त्र में अपध्यान कहा है। अपध्यान का लक्षण कहते हैं। 'बंधवधेत्यादि' उसका अर्थ ऐसा है कि निर्मल बुद्धिवाले पुरुष जिन-शासन में उसको अपध्यान कहते हैं, जो द्वेष से मारने का, बाँधने का अथवा छेदने का चिन्तवन करे, और रागभाव से परस्त्री आदि का चिन्तवन करे। अरे! रागभाव से महाव्रत के परिणाम आदर करे। वे सब अपध्यान हैं। आहाहा! समझ में आया? राग का होना, वही अपध्यान है। अपध्यान अर्थात् बुरा ध्यान। आहाहा!

मुमुक्षु : आर्त, रौद्र दोनों आ गये?

पूज्य गुरुदेवश्री : आर्त, रौद्रध्यान आ गये। यह पंच महाव्रत के भाव, बारह व्रत के भाव, वह राग है, वह आर्तध्यान है। लोगों को कहीं सत्य की खबर नहीं है। आहाहा! वह आर्तध्यान है। आत्मा की शान्ति आर्त अर्थात् पीड़ित होती है। समझ में आया? जैसे तिल घानी में पिलता है, उसी प्रकार भगवान चैतन्य भावप्राण अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन और अनन्त वीर्य, ऐसे जो अपने शक्तिरूप भावप्राण है, यह राग होने पर उस भावप्राण की हिंसा होती है।

पुरुषार्थसिद्धि उपाय में तो अमृतचन्द्राचार्यदेव ने यह कहा कि राग का होना, वही हिंसा है। पर की हिंसा कौन कर सकता है? आहाहा! पुरुषार्थसिद्धि उपाय। इन्हें कण्ठस्थ है। हिंसा। आहाहा! राग का उत्पन्न होना... आहाहा! यह निरंजनदेव परमात्मा की अन्दर हिंसा होती है। वहाँ शान्ति का घात होता है। यह गजब बात, मार्ग, प्रभु! वीतरागमार्ग ऐसी चीज़ है। आहाहा!

उस अपध्यान के दो भेद हैं, एक आर्त और दूसरा रौद्र। सो ये दोनों ही नरक, निगोद के कारण हैं,... आहाहा! समझ में आया? और धर्मध्यान उसे कहते हैं, आनन्दस्वरूप में लीनता होना, वह धर्मध्यान है। आहाहा! धर्म अर्थात् वस्तु का स्वभाव, आनन्द और ज्ञान वस्तु का स्वभाव। वस्तु सहावो धम्मो। वह वस्तु का जो स्वभाव

आनन्द और शुद्ध चैतन्यघन है, उसमें एकाग्रता होना, उसका नाम निश्चय—सच्चा धर्मध्यान कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए विवेकियों को त्यागनेयोग्य हैं।** आहाहा! शुभ-अशुभभाव का ध्यान धर्मी को त्यागनेयोग्य है। गजब बात, भाई! समझ में आया? अन्तर भगवान चैतन्यबिम्ब प्रभु, उसके दर्शन करना हो तो—उसकी प्रतीति करना हो तो, उस शुद्ध चैतन्य भगवान में एकाग्र हो तो उसके दर्शन होते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले तो अन्दर कचरा साफ करना पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कचरा-बचरा क्या? राग है, वह कचरा है। राग है, उसकी मान्यता—राग मेरी चीज़ है, वही मिथ्यात्व का कचरा है। आहाहा! राग की क्रिया से मुझे लाभ होगा, यही मिथ्यात्व का बड़ा कचरा है, यहाँ तो यह कहते हैं। आहाहा! क्या हो? दुनिया अनादि से लुट गयी है और मानती है कि हम कुछ धर्म करते हैं। क्या हो? आहाहा!

यहाँ आचार्य यह कहते हैं, विवेकियों को तो यह विकल्प, जो रागादि है, वह त्यागनेयोग्य है। आहाहा!

यह ११५ हुई। अब ११६।

गाथा - ११६

अथ शिवशब्दवाच्ये निजशुद्धात्मनि ध्याते यत्सुखं भवति तत्सूत्रत्रयेण प्रतिपादयति –

११६) जं सिव-दंसणि परम-सुहु पावहि झाणु करंतु।
तं सुहु भुवणि वि अत्थि णवि मेल्लिवि देउ अणंतु।।११६।।

यत् शिवदर्शने परमसुखं प्राप्नोषि ध्यानं कुर्वन्।
तत् सुखं भुवनेऽपि अस्ति नैव मुक्त्वा देवं अनन्तम्।।११६।।

जमित्यादि। पदखण्डनारूपेण व्याख्यानं क्रियते–जं यत् सिवदंसणि स्वशुद्धात्मदर्शने परमसुहु परमसुखं पावहि प्राप्नोषि हे प्रभाकरभट्ट। किं कुर्वन् सन्। झाणु करंतु ध्यानं कुर्वन् सन् तं सुहु तत्पूर्वोक्तसुखं भुवणि वि भुवनेऽपि अत्थि णवि अस्ति नैव। किं कृत्वा। मेल्लिवि मुक्त्वा। कम्। देउ देवम्। कथंभूतम्। अणंतु अनन्तशब्दवाच्यपरमात्मपदार्थमिति। तथाहिशिव–शब्देनात्र विशुद्धज्ञानस्वभावो निजशुद्धात्मा ज्ञातव्यः तस्य दर्शनमवलोकनमनुभवनं तस्मिन् शिवदर्शने परमसुखं निजशुद्धात्मभावनोत्पन्नवीतरागपरमाह्लादरूपं लभसे। किं कुर्वन् सन्। वीतरागनिर्विकल्पत्रिगुप्तिसमाधिं कुर्वन्। इत्थंभूतं सुखं अनन्तशब्दवाच्यो योऽसौ परमात्मपदार्थस्तं मुक्त्वा त्रिभुवनेऽपि नास्तीति। अयमत्रार्थः। शिवशब्दवाच्यो योऽसौ निजपरमात्मा स एव रागद्वेषमोहपरिहारेण ध्यातः सन्ननाकुलत्वलक्षणं परमसुखं ददाति नान्यः कोऽपि शिवनामेति पुरुषः।।११६।।

आगे शिव शब्द से कहे गये निज शुद्ध आत्मा के ध्यान करने पर जो सुख होता है, उस सुख को तीन दोहा–सूत्रों में वर्णन करते हैं –

ध्यान दशा में शिव दर्शन में जैसा उत्तम सुख होता।
शुद्धातम के बिन वैसा सुख तीन लोक में नहिं मिलता।।११६।।

अन्वयार्थ :– [यत्] जो [ध्यानं कुर्वन्] ध्यान करता हुआ [शिवदर्शने परमसुखं] निज शुद्धात्मा के अवलोकन में अत्यंत सुख [प्राप्नोषि] हे प्रभाकर, तू पा सकता है, [तत् सुखं] वह सुख [भुवने अपि] तीन लोक में भी [अनन्तम् देवं मुक्त्वा] परमात्म द्रव्य के सिवाय [नैव अस्ति] नहीं है।

भावार्थ :– शिव नाम कल्याण का है, सो कल्याणरूप ज्ञानस्वभाव निज शुद्धात्मा को जानो, उसका जो दर्शन अर्थात् अनुभव उसमें सुख होता है, वह सुख

परमात्मा को छोड़ तीन लोक में नहीं है। वह सुख क्या है? जो निर्विकल्प वीतराग परम आनंदरूप शुद्धात्मभाव है, वही सुखी है। क्या करता हुआ यह सुख पाता है कि तीन गुप्तिरूप परमसमाधि में आरूढ़ हुआ सता ध्यानी पुरुष ही उस सुख को पाता है। अनंत गुणरूप आत्म-तत्त्व के बिना वह सुख तीनों लोक के स्वामी इन्द्रादि को भी नहीं है। इस कारण सारांश यह निकला कि शिव नामवाला जो निज शुद्धात्मा है, वही राग-द्वेष मोह के त्यागकर ध्यान किया गया आकुलता रहित परम सुख को देता है। संसारी जीवों के जो इन्द्रियजनित सुख है, वह आकुलतारूप है, और आत्मीक अतीन्द्रियसुख आकुलता रहित है, सो सुख ध्यान से ही मिलता है, दूसरा कोई शिव या ब्रह्मा या विष्णु नाम का पुरुष देनेवाला नहीं है। आत्मा का ही नाम शिव है, विष्णु है, ब्रह्मा है।।११६।।

गाथा-११६ पर प्रवचन

आगे शिव शब्द से कहे गये निज शुद्ध आत्मा के... लो, ठीक! शिव का ध्यान। यह शिव अर्थात् क्या? वह शिव-शंकर नहीं, वह महादेव नहीं। महादेव यह आत्मा है। शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु, निराकुल शान्ति का रसकन्द, उस निज शुद्धात्मा को यहाँ शिव कहा जाता है। है? आहाहा! **शिव शब्द से कहे गये निज शुद्ध आत्मा...** भगवान निर्मल शुद्ध पवित्र का पिण्ड, वह तो प्रभु है। आहाहा! दया, दान, भक्ति के विकल्प का भी जिसमें अभाव है। आहाहा! ऐसा अपना निरंजन शुद्धात्मा को शिव कहते हैं। यह दुनिया उन शंकर को शिव कहती है, वह नहीं। समझ में आया?

णमोत्थुणं में आता है, परन्तु परिचय नहीं न। '**शिवमलयमरुयमणंत**' आता है न? यह उसमें भी है, परन्तु इन लोगों को सामायिक का परिचय नहीं। सामायिक है अपने दिगम्बर में। उसमें णमोत्थुणं आता है। '**नमोत्थुणं, अरिहंताणं, भगवंताणं, आईगराणं, तित्थयराणं**' यह श्वेताम्बर में उसका परिचय अधिक है, अपने दिगम्बर में नहीं। सामायिक करे, तब बोले यह। पहली सामायिक करे न? तब पहले णमो अरिहंताणं, पश्चात् तिक्खुत्तो पश्चात् अन्त में णमोत्थुणं आता है। नमोस्तु! '**अरिहंताणं, भगवंताणं, आईगराणं, तित्थयराणं**' धर्म की आदि करनेवाले भगवान तीर्थंकर। अरिहंताणं, जिन्होंने विकाररूपी अरि अर्थात् दुश्मन को टाला है। '**भगवंताणं**' जो भगवानस्वरूप है, ऐसा

पाठ है। तीर्थ के करनेवाले हैं। उसमें अन्त में आया है। '**शिवमलयमरुयमणंतमक्खय-मव्वाबाहमपुणरावित्ति**' आता है या नहीं? टोळिया! किया था? यह तो किया ही होगा न। यह सामायिक में पाठ आता है न? णमो अरिहंताणं, इच्छामि पडिक्कमा, तस्सउत्तरी, लोगस्स, करेमिभंते और णमोत्थुणं। ऐसे सामायिक करे तब आठ पाठ बोले। किया है या नहीं तुमने? तुम्हारे नहीं होगा, दिगम्बर में नहीं। श्वेताम्बर को हमेशा होता है। अपने दिगम्बर में यह पाठ है, परन्तु इसका परिचय नहीं। है, यहाँ सामायिक का पाठ है। अपने पास प्रकाशित है। आहाहा! तुमने तो यह किया था। हिम्मतभाई के साथ करते थे, ऐसा कहते हैं। हमारे पण्डितजी के साथ वहाँ वढवाण में करते थे। आहाहा! पहाड़े थे सब। आहाहा!

शिव शब्द से कहे गये... वहाँ '**शिवमलयम्**' है न? '**शिवमलयमरुयम**' ऐ... गिरधरभाई! यह तो तुमको कण्ठस्थ होगा। नहीं? सामायिक की है या नहीं? यह तो की होगी न? खोटी सामायिक, हों!

मुमुक्षु : इसीलिए तो यहाँ आते रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची। यह सब स्थानकवासी है न! स्थानकवासी हैं, स्थानकवासी के सेठिया हैं, प्रमुख हैं। वढवाण के। और ऐसे कार्यकर्ता। गिरधरभाई। पीछे उस ओर बैठे हैं न? वे। वहाँ के सेठिया हैं। दरियापरी सेठिया है और गाँव में कार्यकर्ता है। यह सब लौकिक कार्य करे। क्या कहलाता है? वह गाँधी की लाईन के। छोड़कर यहाँ आ गये हैं। बहुत मेहनत तो की थी। पहले नहीं? वह लेकर। पैसा-पैसा खर्चा किये थे। आहाहा! ऐसे तो प्रेम है न पहले से। आहाहा! नागरभाई की दूसरी लाईन। यह तो भाग्यशाली। आहाहा! बापू! यह मार्ग, भाई! अरे! जन्म-मरण में गोते खाता प्रभु दुःख के समुद्र में गहरा घुस गया है, प्रभु! इसे खबर नहीं। राग के परिणाम में गहरा उतरा है, वह दुःख में उतरा है। आहाहा! भगवान आत्मा तो राग से भिन्न भगवान सुख का सागर है। आहाहा! यह कहते हैं। बहुत सरस गाथा है। देखो!

निज शुद्ध आत्मा के ध्यान करने पर जो सुख होता है, उस सुख को तीन दोहा-सूत्रों में वर्णन करते हैं—सुख तो अपने आनन्द का ध्यान करने से सुख होता है। बाहर में कहीं सुख नहीं है। आहाहा! इन्द्रिय के भोगादि के सुख हैं, वह तो जहर है। आहाहा!

परन्तु भगवान की भक्ति और पूजा का भाव, वह भी दुःख है, ऐसा कहते हैं। राग है न! सुख तो भगवान आत्मा में अन्दर में है। आत्मा में है। आहाहा! **सुख होता है, उस सुख को तीन दोहा-सूत्रों में वर्णन करते हैं—**

११६) जं सिव-दंसणि परम-सुहु पावहि झाणु करंतु।
तं सुहु भुवणि वि अत्थि णवि मेल्लिवि देउ अणंतु॥११६॥

आहाहा! **अन्वयार्थः—जो ध्यान करता हुआ... 'शिवदर्शने परमसुखं'** आहाहा! **'निज शुद्धात्मा के अवलोकन में अत्यन्त सुख...** है। **'शिवदर्शने'** यह शब्द पड़ा है। शिव अर्थात् निरुपद्रव आनन्दरूप प्रभु आत्मा। उसके दर्शन से **'परमसुखं'** उसके दर्शन होने से परमसुख होता है। आहाहा! है? **'शिवदर्शने परमसुखं'** आहाहा! शिव का अर्थ किया—निज शुद्धात्मा। शिव का अर्थ निज शुद्धात्मा। **'दर्शने'** अवलोकन में **'परमसुखं'** का अर्थ अत्यन्त सुख। तीनों शब्द का अर्थ भिन्न-भिन्न है। **'शिव'** अर्थात् निज शुद्धात्मा। **'दर्शनें'** उसका अवलोकन। **'परमसुखं'** अत्यन्त सुख। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु के दर्शन से, देखने से, प्रतीति करने से, अनुभव करने से उसे सुख प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शन में आत्मा का सुख होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसे सम्यग्दर्शन... सम्यग्दर्शन (करे)। भगवान की श्रद्धा (सम्यग्दर्शन), ऐसा नहीं। आहाहा!

आनन्दस्वरूप शिवस्वरूप प्रभु, उसमें सन्मुख होकर, उसे ध्यान में लेकर, ध्येय बनाकर जो अनुभव में आता है, आत्मा के दर्शन हुए तो वहाँ सुख होता है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन में अतीन्द्रिय सुख का स्वाद आता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जिसमें शिव के दर्शन हुए। अपना आत्मा सुखरूप, उसके दर्शन हुए। शिव का अर्थ ऐसा है कि—उपद्रव रहित। किसी भी प्रकार का उपद्रव अन्तर में नहीं है। ऐसा आनन्दकन्द प्रभु, चैतन्य की मूर्ति परमात्मा शुद्ध आत्मा अपना स्वरूप, उसके दर्शन अर्थात् सन्मुख होकर उसके दर्शन हुए और प्रतीति हुई, वहाँ सुख उत्पन्न होता है। आहाहा! यह कभी किया नहीं। बाकी सब कर-करके मर गया अनन्त बार। समझ में आया? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' यह। यह पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, यह सब दुःखरूप राग है। आहाहा! कहाँ से जँचे? माँगीलालजी! आहाहा!

एक शब्द में तो गजब किया है न! **'शिवदर्शने परमसुखं'** आहाहा! शिव अर्थात् निज शुद्धात्मा पूर्ण स्वरूप, उसके दर्शन अर्थात् अनुभव से, उसे अनुभव करके प्रतीति करने से उसका ज्ञान करके अनुभव करने से, उसे सुख होता है। आहाहा! वह सुख, अरबोंपति, करोड़ोंपति, चक्रवर्ती को वह सुख नहीं। छियानवें हजार स्त्रियाँ, सोलह हजार देव जिसकी सेवा में तैनात। सोलह हजार देव। उस चक्रवर्ती को यह सुख नहीं। यह सम्यग्दर्शन प्राप्त करे तो उसे यह सुख होता है। आहाहा! समझ में आया? आहाह! दर्शन का अर्थ क्या किया? अवलोकन। अपने शुद्धस्वरूप-सन्मुख दृष्टि करके उसे देखना। आहाहा! यह बाहर में ऐसा का ऐसा अनादि काल से मर गया। शरीर कुछ ठीक हो, यह हड्डियाँ, उसमें सुख मानता है। मूढ़ है। आहाहा! पैसा कुछ पाँच-पचास लाख, करोड़, दो करोड़ मिले हों। दो करोड़ तो यहाँ है, परन्तु पच्चीस-पच्चीस करोड़वाले अभी हैं। अभी कोई कहता था न? पच्चीस करोड़ है। भाई नहीं थे? चिमनभाई का सेठ। वहाँ मुम्बई। वैष्णव है। किस गाँव के? पच्चीस करोड़ हैं। धूल में अंक तेरे। कंकड़ है, धूल है। वहाँ कहाँ सुख था? वह तो दुःख में निमित्त है। आहाहा! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : पैसेवाले....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पैसेवाले बैठे हैं। तुम सुखी नहीं दिखते? हैरान, हैरान है। सेठ! अपने घर की बात लो न! जहाँ-तहाँ भटका-भटक किया करते हैं—यह करो और यह करो और यह करना है। सब राग के विकल्प का जाल है। आहाहा! वह तो अशुभ विकल्प है, परन्तु यहाँ तो शुभ विकल्प हो तो भी दुःख है। आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव दुःखरूप है। दुनिया को कहाँ भान है कि क्या चीज़ है यह? बन्धन होता है। बन्धन कोई धर्म से होगा? वह भाव अधर्म है। आहाहा!

एक बार कहा था न? (संवत्) १९८५ में बोटाद में। १९८५ के वर्ष। पचास में तीन वर्ष कम। बड़ी सभा थी। पहले से प्रतिष्ठा थी न! बड़ी सभा। १५०० व्यक्ति सभा में। उपाश्रय छोटा पड़े, फिर लोग गली में खड़े रहें। जाली होती है न? जाली। व्याख्यान देते हो तब (खुल्ली रखे)। १९८५ का पौष महीना था। पन्द्रह और बत्तीस। दो शब्द ऐसे कहे थे। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव धर्म नहीं, वह अधर्म है। हाय.. हाय..! चिल्लाहट मचा गये। धर्म नहीं कहा, फिर धर्म नहीं अर्थात् अधर्म है,

ऐसा कहा था। पुण्य है, राग है, वह धर्म नहीं, अधर्म है। आहाहा! धर्म तो आत्मा में वीतरागभाव उत्पन्न हो, वह धर्म है। दो बातें की थीं। एक बात यह कही थी। दूसरी बात (कही थी), पंच महाव्रत के परिणाम, वे आस्रव हैं। सभा तो सुने। हमारी तो प्रतिष्ठा थी। साठ वर्ष पहले से हमारी तो प्रतिष्ठा है न? दो वर्ष की दीक्षा के बाद एकदम लोगों को बहुत प्रेम था। (संवत्) १९७० में दीक्षा है। १९७१ से कहते थे, कानजीस्वामी वांचन करे, कानजीमुनि वांचन करे बारम्बार (कहते)।

हमारे गुरु थे, बहुत भद्रिक थे। कषाय मन्द। दृष्टि खोटी। तत्त्व तो था नहीं। फिर कहे, भाई! कानजी! तू वाँचन कर, लोग बहुत कहते हैं। महाराज! मैं वाँचन करने नहीं निकला, हों! मुझे वाँचने का नहीं कहना। हमारे गुरु बहुत शान्त थे। हीराजी महाराज मारवाड़ के थे। दीक्षा यहाँ ली थी। गरीब व्यक्ति थे, परन्तु बहुत खानदानी। वस्तु की तो खबर थी ही नहीं। दृष्टि मो मिथ्यात्व थी। कषाय मन्द, ब्रह्मचर्य, हजारों की सभा हो परन्तु ऊँची नजर न करे। भाई! भगवान ऐसा कहते हैं, ऐसा बोले। परन्तु वस्तु की दृष्टि विपरीत, वह पर की दया पालना, यह धर्म—ऐसा कहे। देखे थे तुमने? नहीं देखे होंगे। (संवत्) १९७४ में गुजर गये। हार्टफेल रास्ते में जंगल में, खेराळी, कांप के पास। कांप के वे हैं न? उनके नीचे जलाये थे। हम आये थे न! दूसरे दिन आये थे। आहाहा! ऐसा कहे, कानजी! यह लोग बहुत कहते हैं कि कानजीमुनि वाँचें। महाराज! मैं कोई वाँचने के लिये निकला हूँ? मैं तो मेरे आत्मा के लिये निकला हूँ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वाँचने में विकल्प आवे, वह उपाधि कौन करे? ऐसा लगा। फिर सिर पर आ गया। गुरु गुजर गये, फिर सिर पर आया, सब इकट्ठे होकर कहे, अब आपको ही वाँचना पड़ेगा। कोई वाँचनेवाला दूसरा है नहीं। यह वाँचने में भी विकल्प है न? ऐई! भगवान! आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरों का कल्याण होता है...

पूज्य गुरुदेवश्री : कल्याण-फल्याण होता है स्वयं से। आहाहा! उसे निमित्त कहा जाता है स्वयं से करे तब। यही कहते हैं न? क्या कहा?

जो ध्यान करता हुआ निज शुद्धात्मा के अवलोकन में अत्यन्त सुख हे प्रभाकर,

तू पा सकता है,... शिष्य को कहते हैं। लो, गुरु शिष्य को कहते हैं। दिगम्बर गुरु हैं। योगीन्द्रदेव भावलिंगी सन्त, जिन्हें क्षण में छठवाँ, क्षण में सातवाँ आता है। क्षण में छठवाँ और क्षण में सप्तम। और सच्चे साधु हों, उन्हें एक मिनिट निद्रा नहीं आती। सच्चा साधु हो, उसे एक मिनिट की निद्रा नहीं होती। पौन सेकेण्ड के अन्दर निद्रा होती है। सच्चे साधु की बात है। अभी तो कहाँ (कोई साधु है)! समझ में आया? पौन सेकेण्ड की निद्रा।

मुमुक्षु : चौथे काल की बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों काल में यह बात है। यह तो कहा था, नहीं? चौथे काल में आटा, शक्कर और घी का हलुवा होता है। और पाँचवें काल में? कैलाशचन्दजी को पूछो, लो! घी डालने से हलुवा होता है या पेशाब डालने से? पाँचवाँ काल है न? अरे भगवान! पाँचवाँ काल हो या चौथा काल हो, हलुवा तो जिन तीन चीज़ों से बनता है, उनसे ही बनेगा। आहाहा! इसी प्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन, जो यथार्थ मोक्षमार्ग है, उससे आत्मा की प्राप्ति होती है। बाकी सब... आहाहा! पूरे संसार का अभाव करना, यह बात कोई साधारण होगी? चौरासी के अनन्त काल से अवतार करता है। आहाहा! जिसके अवतार में, जिसके जन्म-मरण में... कहा था न एकबार... उसकी माता ने रुदन किये हैं, प्रभु वहाँ ऐसा कहते हैं, तेरी मृत्यु में तेरी माँ ने जो रुदन किये, उन रुदन के आँसुओं को यदि इकट्ठे करें तो अनन्त स्वयंभूरमण समुद्र भर जायें। आहाहा! ऐसी अनन्त मातायें की, भाई! अनादि काल—आदि बिना का काल। आहाहा! भव... भव... भव... भव... भव... भव... भव... भव... ऐसे अनन्त काल ले जाओ तो सब भव... भव... भव... भव में है। आहाहा! कहीं अन्त है? आहाहा! यह भव से रहित होना, वह चीज़ कोई अलौकिक है। आहाहा! यहाँ यह कहते हैं।

हे प्रभाकर भट्ट... तू आत्मा आनन्दमूर्ति का ध्यान कर, अन्तर में जा। तुझे सुख होगा। उस सुख को **तू पा सकता है,...** आहाहा! **वह सुख तीन लोक में भी...** आहाहा! ऐसा आनन्द सम्यग्दर्शन होने पर... आहाहा! वह आनन्द आता है, वह ऐसा है कि '**अनन्तम् देवं मुक्त्वा**' अनन्त अर्थात् यहाँ परमात्मा। यहाँ परमात्मा को अनन्त कहा है। आत्मा को अनन्त कहा है। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... शक्ति का

संग्रह—पिण्ड प्रभु है। आहाहा! अनन्त परमात्मा देव। '**अनन्तम् देवं**' अर्थात् **परमात्म द्रव्य के सिवाय... 'मुक्त्वा'** है? '**अनन्तम् देवं मुक्त्वा**' अनन्त अर्थात् परमात्मा देव को छोड़कर, '**नैव अस्ति**' तीन काल में कहीं सुख है नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

पच्चीस वर्ष का जवान शरीर हो, खाया-पिया ठीक हो, दो-पाँच करोड़ रुपये हों, आहाहा! वह राजा एक आया था न? समाचारपत्र में आया था। वह राजा नहीं? एक घण्टे में डेढ़ लाख की आमदनी है। अभी एक राजा है। देश छोटा है परन्तु उसमें पेट्रोल बहुत निकला। पेट्रोल के कुँए बहुत निकले। सुना था। देश छोटा है। पेट्रोल के कुँए। एक घण्टे की डेढ़ लाख की आमदनी है। एक दिन की छत्तीस लाख की। और फिर प्रायः वही थी, विवाह किया था पहले, तो पहली रात्रि में एक करोड़ रुपये खर्च किये थे। जिसे सुहागरात कहते हैं न? अखबार में आया था। धूल में भी नहीं। बिजली की बत्ती और फलाणा, ढींकणा किया होगा। एक करोड़ रुपये एक रात्रि में। पहली रात्रि में, विवाह किया, उस पहली रात्रि में एक करोड़ (खर्च किये)। मरकर नरक में जाना है। आहाहा! ऐसा सुना है कि उसका दूसरा कुटुम्बी है, उसने मार डाला। वह स्वयं अब गद्दी पर बैठा है। बड़ा रजाा है और इसलिए कुटुम्ब के दूसरे एक व्यक्ति ने उसे मार डाला। आहाहा! मूल तो वापस नरक में जानेवाले हैं सब। नीचे नरक में पार्लियामेन्ट भरती है। आहाहा! समझ में आया? वहाँ नरक में पापियों की पार्लियामेन्ट भरती है। आहाहा! असंख्य अरब वर्ष का आयुष्य। भगवान! आहाहा! जिसके एक क्षण का वेदन... आहाहा! जिसके दुःख का पार नहीं।

पहले नरक का अग्नि का एक राई जितना तिनका यहाँ लावे तो आसपास के दस योजन के लोग जलकर राख हो जाये। भगवान परमात्मा ऐसा कहते हैं। भाई! जहाँ तू पहली नरक में रहा, वहाँ रजकण के अग्नि की उष्णता, वहाँ तू सागरोपम (काल) रहा, असंख्य अरब वर्ष रहा। आहाहा! एक कण यदि यहाँ मनुष्यक्षेत्र में लावे तो दस योजन के आसपास के लोग जल जाये, मर जाये, इतनी वेदना। भूल गया, बापू! तुझे वेदना का पार नहीं, भाई! अनन्त आनन्द का नाथ उल्टा पड़ा, अनन्त दुःख को वेदता है वह। समझ में आया? तुझे यदि सुख चाहिए और दुःख से मुक्त होना हो तो प्रभु! तू आनन्द का नाथ प्रभु है, वहाँ अन्दर जा न! आहाहा! जहाँ स्वयं ज्योति सुखधाम। स्वयं

ज्योति और आनन्द का धाम, यह तो है। आहाहा! यह बैकुण्ठ है, वहाँ मोक्ष है। आहाहा! समझ में आया? वह परमानन्द का नाथ अन्दर विराजता है, प्रभु! तुझे तेरी खबर नहीं। आहाहा! यह प्रभाकर भट्ट को कहते हैं।

हे प्रभाकर भट्ट... अन्तर के दर्शन से तू अत्यन्त सुख पा सकता है। इसके अतिरिक्त कहीं सुख नहीं है। आहाहा! शरीर मक्खन जैसा हो, पच्चीस-तीस वर्ष की उम्र हो, अरबोंपति हो। वह रात्रि में विवाह किया हो, कन्या भी बहुत रूपवान और सुन्दर हो। आहाहा! अखबार में एक आया है न? अभी आया था। एक कन्या थी। सोलह वर्ष की उम्र से बाईस वर्ष में ५५२ सगाई की हुई। अखबार में आया था अभी। रूपवान बहुत होगी। यह धूल हड्डियाँ। ५५२ तो सगाई की ओर कितने कहे? ५२ या इतने पति किये। विवाह किये। आहाहा! शरीर-बरीर ठीक होगा, यह चमड़ी व्यवस्थित (होगी)। ऐसा सब। आहाहा! मरकर सब नरक में जानेवाले हैं। अखबार में आया था, अपने, हों! अपने जैन में बड़े सामने आते हैं न? वीरवाणी। वीरवाणी आती है न? तुम्हारे जयपुर से। उसमें पहले लेख आते हैं। देश-परदेश की बातें आती हैं। पन्द्रह-बीस वाक्य एक पृष्ठ में लिखे। आहाहा! एक कन्या का नाम दिया है। अपने को कुछ नाम नहीं आता। सोलह वर्ष से बाईस वर्ष में, छह वर्ष में ५५२ तो सगाई की। क्योंकि जो देखे, उसे मन हो जाये उसके साथ विवाह करने का। वह पैसा-बैसा (दे)। आहाहा! ५२ या इतने तो पति किये। एक-दूसरे को खबर न पड़ने दे। अरर्र! यह संसार। नरक के कीड़े हैं। चमड़ी, हड्डियाँ, माँस,... आहाहा! वहाँ सुख नहीं, प्रभु! तू कहाँ जाता है कहाँ? आहाहा! तेरा सुख तो प्रभु तुझमें पड़ा है, नाथ! तुझे खबर नहीं, भाई! तू भगवान है, परमेश्वर है। आहाहा! परम सुखानन्द से भरपूर है। आहाहा!

अपने अभी नहीं आया था? द्रव्यार्थिकनय का नहीं आया था? ११२ में आया था। ११२ गाथा, नहीं? **शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर टांकी का-सा गढ़ा हुआ अघटितघाट...** तू है। तू अमूर्तिक पदार्थ है, प्रभु! **ज्ञायकभाव स्वभाव,...** तेरा, **वीतराग...** स्वरूप तेरा। आहाहा! **सदा आनन्दरूप...** है। ११२ गाथा। आहाहा! सदा आनन्दरूप। **अद्वितीय अतीन्द्रिय सुखरूप, अमृत के रसकर तृप्त...** अमृत के रस से भगवान आत्मा तृप्त-तृप्त भरा पड़ा है। आहाहा! अरे! अमृत के रस को चाटने तो जा एक बार! ऐसा कहते हैं। अनुभव तो कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, मूलचन्दभाई!

मुमुक्षु : भान नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भान नहीं होता। लड़का कुछ अच्छा हुआ हो और दो-पाँच-दस लाख पैदा करे तो ओहोहो! हम सुखी हैं। धूल भी नहीं। पागल के गाँव हैं सब। आहाहा!

यहाँ प्रभु कहते हैं—गुरु कहते हैं, देखो! योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त आत्मध्यानी मुनि शिष्य को कहते हैं कि हे प्रभाकर भट्ट! आहाहा! इसमें यह आया, देखो ने! **ऐसे निज शुद्धात्मतत्त्व को छोड़कर द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म में या देहादि परिग्रह में मन को मत लगा।** यह मेरे हैं, यह छोड़ दे। रागादि परिणाम मेरे हैं, यह छोड़ दे। प्रभु! तू तो आनन्द का नाथ है न, नाथ! तेरा वीतरागस्वरूप है। परन्तु उसे माप करना कैसे आवे? आहाहा!

'**अनन्तम् देवं मुक्त्वा**' वर्तमान। **परमात्म द्रव्य के सिवाय...** अनन्त की व्याख्या की। अनन्त देव अर्थात् परमात्म देव। ऐसे द्रव्य के अतिरिक्त कहीं सुख नहीं है।

भावार्थः—शिव नाम कल्याण का है,... शिव की व्याख्या (की) कल्याण। **कल्याणस्वरूप ज्ञानस्वभाव निज शुद्धात्मा को जानो...** आहाहा! अरिहन्ता मंगलं, नहीं आता? उत्तम, शरण। चार आते हैं न? यहाँ कहते हैं। **कल्याणस्वरूप ज्ञानस्वभाव निज शुद्धात्मा...** कल्याणस्वरूप है। आहाहा! कल्याण शब्द से आनन्दस्वरूप है। **उसका जो दर्शन अर्थात् अनुभव उसमें सुख होता है,...** आहाहा! परमात्मा शुद्ध चैतन्यघन के अन्तर दर्शन से तुझे सुख होगा। अनुभव से सुख होगा। सम्यग्दर्शन में अनुभव है। आत्मा आनन्द का अनुभव, उसका नाम सम्यग्दर्शन। उस अनुभव में तुझे सुख होगा। आहाहा! मूल बात को छोड़कर सब बातें कर दी है। वर बिना की बारात जोड़ दी है। हमारे काठियावाड़ में कहते हैं, वर बिना की जान। वर... वर—दूल्हा। उसके बिना बारात जोड़ दी। इसी प्रकार आत्मा क्या चीज़ है, उसके भान बिना व्रत, तप और भक्ति, पूजा की और बड़े शृंगार (किये)। आहाहा! धूल भी है नहीं, कहते हैं।

मुमुक्षु : ... दिखता है न ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या दिखता है? अज्ञान दिखता है। आहाहा! जिसमें सुख न मिले, वह चीज़ तो दुःखरूप है। गजब बात, बापू! भगवान का स्मरण करना, भगवान

की भक्ति का भाव, वह दुःखरूप। कौन माने यह? सेठ! ऐसी बात है। आता है, ज्ञानी को भाव आता है, परन्तु है दुःखरूप। जब तक वीतरागता न हो, तब तक आत्मा के भान सहित ऐसा भक्ति का, पूजा का राग आता है, परन्तु है तो दुःखरूप। समझ में आया? है तो बन्ध का कारण। आहाहा! आत्मा का निश्चय अनुभव है, वहाँ पूर्ण दशा न हो, तब वह व्यवहार आता है, परन्तु है तो दुःखरूप, है तो हेय। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का। लोगों ने नोंच डाला है।

हम वह दृष्टान्त देते हैं न? गुड़ का रवा होता है न? रवा—भेली बड़ी चार-चार मण की। तळाई, तळाई कहते हैं न? क्या कहते हैं? रजाई। सोने की रजाई। रजाई होती है न? गद्दी। गद्दी नहीं कहते? क्या कहते हैं तुम्हारे? गद्दा नहीं, गद्दा और गोदड़ा नहीं। बड़ी रजाई। हमारे तळाई कहते हैं। पच्चीस-पचास पड़ी हो। गड़ के पच्चीस-पचास रवा हों, उनके साथ रजाई रखी हों। उसमें पानी निकले न? रवा में से गुड़ का पानी निकले न? तो रजाई डूब जाये। रुई की, रुई की होती है न। सोने का गद्दा लो, गोदड़ा लो। वह डूबे फिर उसे सुखाने डाली हो, वहाँ उस गुड़ का स्वाद लेने के लिये कुत्ते इकट्ठे आवें। फाड़ डाले। सोने की चीज़ है, वह गुड़ के स्वाद के लिये फाड़कर तोड़ डाले। शास्त्र में यह दृष्टान्त है। सुखशैय्या। आत्मा आनन्दस्वरूप की सुखशैय्या है, परन्तु उसमें नहीं जाकर पुण्य-पाप के गोदड़ा गुड़वाले मानकर स्वाद लेने जाता है। कुत्ता। एक कुत्ता ऐसे खींचे, दूसरा कुत्ता ऐसे खींचे। सोने की शैय्या तोड़ डाले। समझ में आया?

उसी प्रकार एक पुण्य से धर्म मनावे और दूसरा पाप से सुख मनावे। वे सब कुत्ते हैं। सोने की शैय्या को तोड़ डाला। आहाहा! बात ऐसी है। यह तो हम सम्प्रदाय में कहते थे। यह बात तो सम्प्रदाय में कहते थे। (संवत्) १९७४ से व्याख्यान चलता है। १९७४ से। २६ और ३२=५८ वर्ष हुए। ऐसा ही चलता है। सवेरे हमेशा सम्प्रदाय में चलता था। लोगों को बहुत प्रेम था न! आहाहा! कहा, यह गदेला नोंच डाला। गदेला नहीं कहते? क्या कहते हैं? रजाई। ओढ़ने की नहीं। तुम्हारे क्या कहते हैं? तळाई नहीं होती? गादला। गादला कहते हैं? गद्दी वह सोने की। वह गद्दी। ऊपर ओढ़ने की होती है वह नहीं, हों! ओछाड़ तो बिछावे, यह तो पूरी गद्दी हो। मण, दो मण रुई की। फिर गुड़ से भींग गयी हो, उसे कुत्ते खाने को आवें। अरे! भगवान!

सिद्धान्त यह कि आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु है, उसे पुण्य-पाप के प्रेम में आत्मा की शैय्या तोड़ डाली है। दया से व्रत होता है और व्रत से धर्म होता है, यह कहते हैं, कुत्ते हैं, उस मिथ्यादृष्टि ने सत् को तोड़ डाला। यह ठाणांग में आता है। श्वेताम्बर में ठाणांग सूत्र है न?

मुमुक्षु : बहुत कड़क लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कड़क क्या है? दुःख की शैय्या है। आहाहा! चमड़ी उतारकर नमक छिड़के और पीड़ा हो, उससे अनन्त गुणी पीड़ा राग में है। आकुलता। राग अर्थात् आकुलता। चाहे तो व्यवहाररत्नत्रय का राग हो। प्रभु! वह आकुलता है। प्रभु! अनाकुल तो आनन्द का नाथ प्रभु है। आहाहा!

उसका जो दर्शन अर्थात् अनुभव उसमें सुख होता है, वह सुख परमात्मा को छोड़ तीन लोक में नहीं है। यह सुख क्या है? आहाहा! अब देखो! कहते हैं। **जो निर्विकल्प वीतराग परम आनन्दरूप शुद्धात्मभाव है,...** आहाहा! अपने में अभेद। विकल्प को छोड़कर, स्वरूप में अभेद वीतराग परमानन्दरूप। आहाहा! **वीतराग परम आनन्दरूप शुद्धात्मभाव है, वह सुख है। वही सुखी है।** आहाहा! समझ में आया? कहते हैं न? 'सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन दुःखिया रे। एक सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन दुःखिया रे...' यह सन्त अर्थात् अन्तर आनन्द में जिसने अन्तर अनुभव करके आनन्द प्रगट किया है। वह सन्त सुखी है। चाहे तो समकिती गृहस्थाश्रम में हो, परन्तु समकित अपेक्षा से वह सन्त और सुखी है। आहाहा! समझ में आया? बाकी दुरिजन दुःखिया। चाहे तो मुनि हुआ हो और राग से धर्म माने, वह दुरिजन है, दुःखी है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! है?

निर्विकल्प वीतराग परम आनन्दरूप शुद्धात्मभाव है, वही सुखी है। आहाहा! **क्या करता हुआ यह सुख पाता है कि तीन गुप्तिरूप परमसमाधि में आरूढ़ हुआ...** आहाहा! मन, वचन और काया से हटकर, भगवान चैतन्यमूर्ति में प्रवेश करता है। आहाहा! भगवान के महल में जिसने प्रवेश किया। समझ में आया? **तीन गुप्तिरूप परमसमाधि में आरूढ़ हुआ सता...** अन्तर के आनन्द में मन, वचन और काया के विकल्प को छोड़कर, अयोगी भगवान परमात्मस्वरूप में प्रवेश कर। आहाहा! आरूढ़ हुआ,

स्वरूप में आरूढ़ हुआ। जो अनादि से राग में आरूढ़ था। आहाहा! घुड़सवार होता है न? घुड़सवार। घोड़े पर आरूढ़ होता है न? इसी प्रकार अनादि से पुण्य और पाप के राग में अज्ञानी आरूढ़ था। आहाहा! वह दु:ख में आरूढ़ था। वह सुख में आरूढ़ हुआ। आत्मतत्त्व की समाधि में आरूढ़ हुआ। **वह सुख हुआ संता...** होता हुआ। संता अर्थात् हुआ, होता हुआ। **ध्यानी पुरुष ही सुख को पाता है।** आहाहा! सम्यग्दर्शन से लेकर सब आत्मा का ध्यान है। समझ में आया? आहाहा!

४७ गाथा में कहा है। द्रव्यसंग्रह है न? द्रव्यसंग्रह। द्रव्यसंग्रह है न? उसकी ४७वीं गाथा है। उसमें कहा है, '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' यह नेमिचन्द्रसिद्धान्त चक्रवर्ती (सिद्धान्तिदेव) ने बनाया है। द्रव्यसंग्रह है न? नेमिचन्द्रसिद्धान्त चक्रवर्ती। उसकी ४७ गाथा है। यहाँ है? नहीं होगी। ४७ गाथा है। पहले से वाँचन किया है न, इसलिए वहाँ लाईन भी की है। देखो!

दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।
तह्मा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह॥४७॥

क्योंकि मुनि नियम से ध्यान द्वारा दोनों प्रकार के मोक्ष के कारणों को प्राप्त करते हैं। विशेष :— क्योंकि निश्चयरत्नत्रयस्वरूप निश्चय-मोक्षहेतु... अन्तर आनन्द की दृष्टि और रमणता, वह निश्चय मोक्षकारण, वह ध्यान में प्राप्त होता है। अन्दर में लीन हो तब। आहाहा! समझ में आया? **निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारत्नत्रयात्मक व्यवहारमोक्षहेतु अर्थात् व्यवहारमोक्षमार्ग जिसका साध्य-साधकभावरूप से पहले कथन किया है, वे दोनों प्रकार के मोक्षमार्गों को निर्विकार स्वसंवेदनरूप परमध्यान द्वारा मुनि प्राप्त करते हैं।** अन्दर आत्मा के ध्यान में जो निश्चय हुआ, सम्यग्दर्शन, ज्ञान वह निश्चयमोक्षमार्ग और अभी राग बाकी रहा, उसे आरोप देकर व्यवहारमोक्षमार्ग कहा। आरोप करके। राग बाकी है वही। परन्तु वे दोनों ध्यान में होते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह द्रव्यसंग्रह है, नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती। गोम्मटसार के कर्ता और इसके कर्ता हैं। गोम्मटसार बनाया है न? जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड। वे नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती।

अनन्त गुणरूप आत्म-तत्त्व के बिना... अनन्त शब्द था न? अनन्त है न?

११६। **'मेल्लिवि देउ अणंतु' 'देउ अणंतु'** देव अनन्त, ऐसा। यह अनन्तरूपी गुण का पिण्ड प्रभु आत्मा देव है। उसका अर्थ करते हैं। **अनन्त गुणरूप आत्म-तत्त्व के बिना वह सुख तीनों लोक के स्वामी इन्द्रादि को भी नहीं है।** आहाहा! करोड़ों अप्सरायें, दो-दो सागर के आयुष्य की स्थिति। आहाहा! और उसकी स्थिति में तो बहुत इन्द्राणियाँ मर जाती है। क्योंकि दो सागर की स्थिति और उसका ५५ पल्योपम का लम्बा (आयुष्य)। तो ऐसी तो कई इन्द्राणियाँ मर जाती हैं, उसकी जिन्दगी में आवे और जावे, आवे और जावे। नयी। और यह तो दो सागर। एक सागरोपम में दस कोड़ाकोड़ा पल्योपम (जाते हैं)। ऐसे बीस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का आयुष्य वहाँ है। उसके अन्दर ५५ पल्योपमवाली तो कितनी ही मरकर उपजती है। आहाहा! परन्तु कहते हैं कि उसे सुख नहीं, ऐसा यह सुख है। आहाहा! है ?

अनन्त गुणरूप आत्म-तत्त्व के बिना वह सुख तीनों लोक के स्वामी इन्द्रादि को भी नहीं है। आहाहा! तो और इन सेठियों को कहाँ से आया? ऐसा कहते हैं। इन्द्रादिक को नहीं तो और यह तुम्हारे धूल के धनी को कहाँ से आया? ऐ... सेठ! यहाँ तो यह है, भगवान! इन्द्रादि का नाम दिया। इन्द्रों को हजार वर्ष में कण्ठ में से अमृत झरे। उसे यह आहार नहीं होता। एक-एक हजार वर्ष में। तैंतीस हजार वर्ष। इतने हजार वर्ष में कण्ठ में से अमृत झरे। ऐसे परमाणु। उसे भी कहते हैं कि सुख नहीं, ऐसा आत्मा में सुख है। आहाहा! भाई! उसकी रुचि कर। उसका ज्ञान कर, उसमें जा। यह वस्तु करनेयोग्य है, बापू! आहाहा! मूल भगवान आत्मा को छोड़कर सब बात। यह करो, यह करो, यह करो, यह करो। परन्तु क्या करे? वह तो सब राग की क्रिया है। आहा!

यहाँ कहते हैं, आहा! **इस कारण साराँश यह निकला कि शिव नामवाला जो निज शुद्धात्मा है,...** है न? **वही राग-द्वेष-मोह के त्यागकर ध्यान किया गया आकुलता रहित परम सुख को देता है।** लो। **संसारी जीवों के जो इन्द्रियजनित सुख है, वह आकुलतारूप है, और आत्मीक अतीन्द्रियसुख आकुलता रहित है, सो सुख ध्यान से ही मिलता है, दूसरा कोई शिव या ब्रह्मा या विष्णु नाम का पुरुष देनेवाला नहीं है।** भगवान आत्मा स्वयं सुख का देनेवाला है, दूसरा कोई शिव नहीं। **आत्मा का ही नाम शिव है, विष्णु है, ब्रह्मा है।** दूसरा कोई नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ११७

अथ –

११७) जं मुणि लहइ अणंत-सुहु णिय-अप्पा झायंतु।
तं सुहु इंदु वि णवि लहइ देविहिं कोडि रमंतु।।११७।।

यत् मुनिः लभते अनन्तसुखं निजात्मानं ध्यायन्।
तत् सुखं इन्द्रोऽपि नैव लभते देवीनां कोटिं रम्यमाणः।।११७।।

जमित्यादि। जं यत् मुणि मुनिस्तपोधनः लहइ लभते अणंतसुहु अनन्तसुखम्। किं कुर्वन् सन्। णियअप्पा ज्ञायंतु निजात्मानं ध्यायन् सन् तं सुहु तत्पूर्वोक्तं सुखं इंदु वि णवि लहइ इन्द्रोऽपि नैव लभते। किं कुर्वन् सन्। देविहिं कोडि रमंतु देवीनां कोटिं रमयन् अनुभवन्निति। अयमत्र तात्पर्यार्थः। बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहरहितः स्वशुद्धात्मतत्त्वभावनोत्पन्नवीतराग-परमानन्दसहितो मुनिर्यत्सुखं लभते तद्देवेन्द्रादयोऽपि न लभन्त इति। तथा चोक्तम् – 'दह्यमाने जगत्यस्मिन्महता मोहवह्निना। विमुक्तविषयासंगाः सुखायन्ते तपोधनाः'।।११७।।

आगे कहते हैं कि जो सुख आत्मा को ध्यावने से महामुनि पाते हैं, वह सुख इन्द्रादि देवों को दुर्लभ है –

आत्मध्यान में लीन मुनीश्वर जो अनन्त सुख पाते हैं।
कोटि देवियों में रमकर भी सुपरपति प्राप्त न कर सकते।।११७।।

अन्वयार्थ :– [निजात्मनं ध्यायन्] अपनी आत्मा को ध्यावता [मुनिः] परम तपोधन (मुनि) [यत् अनन्तसुखं] जो अनंत सुख [लभते] पाता है, [तत् सुखं] उस सुख को [इन्द्रः अपि] इन्द्र भी [देवीनां कोटिं रम्यमाणः] करोड़ देवियों के साथ रमता हुआ [नैव] नहीं [लभते] पाता।

भावार्थ :– बाह्य और अंतरंग परिग्रह से रहित निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ जो वीतराग परमानंद सहित महामुनि जो सुख पाता है, उस सुख को इन्द्रादि भी नहीं पाते। जगत् में सुखी साधु ही हैं, अन्य कोई नहीं। यही कथन अन्य शास्त्रों में भी कहा है – 'दह्यमाने इत्यादि' इसका अर्थ ऐसा है कि महामोहरूपी अग्नि से जलते हुए इस जगत् में देव, मनुष्य, तिर्यञ्च, नारकी सभी दुःखी हैं, और जिनके तप ही धन

है, तथा सब विषयों का संबंध जिन्होंने छोड़ दिया है, ऐसा साधु मुनि जगत् में सुखी हैं।।११७।।

वीर संवत् २५०२, भाद्र कृष्ण ६, मंगलवार
दिनांक-१४-०९-१९७६, गाथा-११७, ११८, प्रवचन-९०

परमात्मप्रकाश, ११७ गाथा। **आगे कहते हैं कि जो सुख आत्मा को ध्यावने से महामुनि पाते हैं, वह सुख इन्द्रादि देवों को दुर्लभ है—**

११७) जं मुणि लहइ अणंत-सुहु णिय-अप्पा झायंतु।
तं सुहु इंदु वि णवि लहइ देविहिँ कोडि रमंतु॥११७॥

अन्वयार्थः—'निजात्मनं ध्यायन्' अपनी आत्मा को ध्यावता... भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप का ध्यान करने से। ध्यावता अर्थात् अन्दर ध्यान करने से। **परम तपोधन (मुनि) जो अनन्त सुख पाता है,...** मुनि उसे कहते हैं कि जिसे अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान में अनन्त आनन्द पर्याय में अनुभव में आया हो। आहाहा! समझ में आया? मुनि की प्रधानता से कथन है।

सम्यग्दृष्टि को भी आनन्द का अंश आता है। धर्म की शुरुआत करनेवाला सम्यग्दृष्टि अभी हो तो भी उसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद तो आता है, परन्तु थोड़ा। मुनि जो है, उन्हें तो अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द आता है। सच्चे मुनि। समझ में आया? यह पंच महाव्रत या नग्नपना, वह कोई मुनिपना नहीं है। नग्नपना, वह तो अजीवतत्त्व है। महाव्रतादि हैं, वे आस्रवतत्त्व है। भगवान आत्मा, वह ज्ञायक आनन्दतत्त्व है। आहाहा! दूसरे प्रकार से कहें तो भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है और पंच महाव्रत आदि परिणाम दुःखस्वरूप है। और अजीव, वह जड़स्वरूप है। समझ में आया?

मुनि परम तपोधन, जिन्हें तीन कषाय का अभाव हुआ है और जितनी उन्हें आनन्द की लहर अन्दर में आती है। आहाहा! वह निजात्मा का ध्यान करने से अनन्त सुख पाते हैं। आहाहा! वह अनन्त सुख। आनन्द और सुख आत्मा का धर्म है—त्रिकाली स्वभाव है। वत्थु सहावो धम्मो। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द, उसका

धर्म अर्थात् त्रिकाली स्वभाव, उसके आश्रय से जो अन्तर में अनन्त आनन्द पर्याय में वस्तु का स्वभाव प्रगट हो, उसका नाम अनन्त सुख और उसका नाम मुनि कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

जो द्रव्य अर्थात् वस्तु और गुण अर्थात् शक्ति, उसमें अनन्त आनन्द है। आहाहा! वह तो अनन्त आनन्द का सागर आत्मा है। उस आनन्द का ध्यान करने से अथवा आनन्द में एकाग्र होने से मुनि को जितना आनन्द आता है, वह अनन्त आनन्द है। आहाहा! समझ में आया? **उस सुख को इन्द्र भी करोड़ देवियों के साथ रमता हुआ...** आहाहा! मनुष्यणी तो अनाज का पिण्ड है। अनाज ले तो शरीर ठीक रहे, दो-चार दिन न ले तो शरीर ऐसा हो जाये। और इन्द्र की इन्द्राणियाँ अनाज का पिण्ड नहीं, उन्हें तो अमृत का स्वाद आता है। जड़ का, जड़ का। भोजन में कण्ठ में से अमृत झरता है आहार का। आहाहा! उसके शरीर के साथ जो भोग है, वह भी जहर है, दुःख है। आहाहा! करोड़ों अप्सराओं के साथ। यहाँ देवी लिया है। आहाहा! यहाँ तो दो-चार दिन अपवास हो अथवा आहार न लिया हो, बुखार आया हो तो शरीर (ऐसा ढीला हो जाता है)। वह तो जड़—माँस, हड्डियों की चीज़ है। परन्तु देवी का तो वैक्रियिकशरीर है। उसे हड्डियाँ-माँस नहीं। ऐसी करोड़ों अप्सराओं के साथ रमता है, वह तो दुःख है। आहाहा! और इस आत्मा के साथ रमता है, उसे सुख है। आहाहा! समझ में आया? मुद्दे की रकम की बात की है। भाई! धर्म.. धर्म। परन्तु क्या धर्म?

धर्म, वह आत्मा का आनन्द त्रिकाली स्वभाव, वह धर्म वस्तु है। त्रिकाली। उसमें से एकाग्र होकर अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना, उसका नाम धर्म है। आहाहा! यह धर्म की व्याख्या ऐसी। समझ में आया? अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द का वेदन अन्दर आना, जो अनादि से राग और द्वेष की आकुलता का वेदन जो है, उसे छोड़कर अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन, सुख का सागर भगवान, जिसने राग की एकता तोड़ डाली है और जिसने निज सुख का खजाना खोल दिया है। आहाहा! धर्मी जीव ने अपने निज सुख का खजाना खोल दिया है। अज्ञानी को राग की एकता पुण्य, दया, दान, व्रतादि मेरी चीज़ है, ऐसा मानकर खजाना बन्द कर दिया है, ताला लगाया है। आहाहा! क्या कहते हैं, सेठ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चाबी है। आहाहा! भगवान अनन्त आनन्द जिसका धर्म अर्थात् स्वभाव है। भगवान सच्चिदानन्द। सत् अर्थात् शाश्वत् चिद्-ज्ञान और आनन्दस्वरूप वह तो है। आहाहा! वह अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द तो जिसमें भरे ही पड़े हैं, आहाहा! उसमें एकाग्र होकर, पर्याय में वर्तमान अवस्था में—वर्तमान दशा में अतीन्द्रिय आनन्द का अनन्त उग्र अनुभव होना, उसका नाम मुनिपना और चारित्र है। आहाहा! व्याख्या भी कभी सुनी न हो। यह पंच महाव्रत पालो और अट्ठाईस मूलगुण पालो। वह तो सब आस्रव और दुःख है। समझ में आया?

जैसे स्त्री की ओर तथा लक्ष्मी की ओर लक्ष्य जाने से राग और दुःख है, वैसे पंच महाव्रत की ओर विकल्प में जाये तो वह भी दुःख है। आहाहा! गजब बात, नाथ! तेरे शैली तो देख! परमात्मप्रकाश में तो ऐसे खोल दिया है।

भाई! तू परमात्मा है। परमस्वरूप है। अन्तर में अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय सुखस्वरूप प्रभु तू है, भाई! तेरी तुझे खबर नहीं। तेरी क्या कीमत है और तुझमें क्या भरा है, उसकी तुझे खबर नहीं। आहाहा! भगवान आचार्य योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त, जो अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द के वेदन के भोग में हैं। आहाहा! वे मुनि। वे मुनि कहते हैं कि अरे! प्रभु! जिसे मुनिपना प्राप्त हो, उसे अन्तर में स्वरूपाचरणचारित्र—स्वरूप में चरना, वह चारित्र (होता है)। है अपने...

मुमुक्षु : अतीन्द्रिय आनन्द का और मुनिपने का अविनाभावी सम्बन्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अविनाभावी सम्बन्ध है, भाई! बात सच्ची। सेठ! बराबर है। मुनिपना कहो या अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद कहो। दोनों एक ही बात है। सच्ची बात की, सेठ! आहाहा! और सम्यग्दर्शन में भी यह है। अतीन्द्रिय आनन्द का आंशिक आनन्द, वह समकित बिना होता नहीं और आनन्द बिना समकित होता नहीं। आहाहा! यहाँ तो मुनि की बात विशेष ली है न! अनन्त आनन्द लेना है न, बहुत आनन्द। आहाहा!

समयसार में कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने पाँचवीं गाथा में कहा, मैं मेरे वैभव से समयसार कहूँगा। वीतरागी मुनि परमात्मपद में झूलनेवाले। आहाहा! पंचम काल के प्राणी

छद्मस्थ थे, केवलज्ञानी नहीं थे। यह कहते हैं कि मैं मेरे निज वैभव (से कहूँगा) तो निज वैभव क्या? यह शरीर, लक्ष्मी-धूल वह निज है? वह तो जड़ का वैभव है और अन्दर में पुण्य के भाव हैं, वह निज वैभव है? वह तो विभावभाव है। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम, पाँच समिति, गुप्ति, व्यवहार के भाव, वह तो सब रागभाव, दुःखभाव है। वह निज वैभव नहीं। आहाहा!

निज वैभव, मेरा आनन्द का सागर प्रभु, आनन्द का पर्वत, उसमें मैं एकाग्र होता हूँ तो अन्तर में आनन्द का झरना झरता है, ऐसा कहते हैं। वह मुनिपना किसे कहना! आहाहा! समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द... एक बार बताया था। पाँचवीं गाथा में। अतीन्द्रिय आनन्द का झरना झरता है। पर्वत में से पानी झरे न? पानी। उसी प्रकार अतीन्द्रिय आनन्द का फब्बारा अन्दर में से फूटता है। आहाहा! वह हमारा अतीन्द्रिय आनन्द का वैभव, उसकी मोहरछाप यह है। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, वह हमारी मोहरछाप है। आहाहा! वह हमारा निज वैभव है। कहो, सेठ! यह सब बाहर के वैभव के सेठिया है न, यह सब।

मुमुक्षु : पहले बाहर में मिले, फिर अन्दर मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी मिले नहीं बाहर। यहाँ तो वह तो है नहीं परन्तु पहले पंच महाव्रतादि मिले और फिर सुख मिले, वह भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? मार्ग प्रभु! तेरा भिन्न है। अभी तो बाह्य क्रियाकाण्ड में सब मनवा दिया है। जहाँ दुःख है। वह तो सब राग की क्रिया है।

यहाँ तो परमात्मा योगीन्द्रदेव कहते हैं, अनन्त सुख। भाषा ऐसी है न? अनन्त सुख है न? सम्यग्दृष्टि को आनन्द आता है, परन्तु अनन्त नहीं। इतना अनन्त नहीं। आहाहा! मुनि को तो अनन्त आनन्द आता है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द। आहाहा! क्या कहलाती है वह तुम्हारी? चूसते हैं नहीं? कुल्फी। क्या कहलाती है वह कुल्फी नहीं कुछ तुम्हारी? कुल्फी कहते हैं। वह हमने पहले देखी थी। भरूच माल लेने जाते थे न। कुल्फी चूसते हैं न? ठण्डी... ठण्डी। इसी प्रकार भगवान कुल्फी—आनन्द की कुल्फी है। सन्त उसे चूसते हैं। आहाहा! फब्बारा में से जैसे दबावे और पानी झरकर निकलता है, वैसे भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें एकाग्र होने से

अतीन्द्रिय आनन्द, फब्बारा फूटे, वैसे अन्दर से अतीन्द्रिय आनन्द फूटता है। आहाहा! वे मुनि सुखी हैं। बाकी दुरिजन दुखिया। समझ में आया? वह पुण्य और पाप में सुख माननेवाल दु:खी प्राणी हैं। आहाहा! मूलचन्दभाई! कहो, यह लड़के पके बड़े और अमेरिका जाये और दस, पन्द्रह हजार वेतन मिले, हम सुखी हैं। धूल भी नहीं।

मुमुक्षु : एक अपेक्षा से सुखी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक अपेक्षा से दु:खी है। समझ में आया? वहाँ कहाँ सुख था? आहाहा! अरबोंपति अभी अमेरिकावाले सब चिल्लाहट मचाते हैं कि हमको कहीं सुख नहीं, कहीं शान्ति नहीं। बड़े पचास-पचास मंजिल के मकान और क्या कहलाती है तुम्हारी? लिफ्ट। ऊपर ले जाये। धूल भी नहीं वहाँ सुन न! वह तो सब आकुलता है।

प्रभु! आनन्द का नाथ प्रभु! यहाँ आचार्यदेव योगीन्द्रदेव तो बहुत स्पष्ट करते हैं। खुल्ली बात करते हैं। प्रभु! मुनिपना तो उसे कहते हैं, आहाहा! स्वरूपे चरणं चारित्रं। अपने है न वहाँ? स्वाध्यायमन्दिर में। उस ओर है। एक ओर—सर्व गुणांश, वह समकित है। इस ओर है—स्वरूपे चरणं चारित्रं। दोनों ओर में दो हैं। मुद्दे की रकम। सर्व गुणांश, वह समकित। आत्मा में जितने अनन्त गुण हैं, आकाश सर्वव्यापक है, कहीं अन्त नहीं, उसके जो प्रदेश हैं, यहाँ इतने में असंख्य प्रदेश हैं, ऐसे... ऐसे... ऐसे... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... चलते जाते हैं, उसके प्रदेश की जो संख्या है, उससे अनन्त गुणे तो एक जीव में गुण है। आहाहा! समझ में आया? वे जितने अनन्त गुण हैं, वे सब द्रव्यस्वरूप हैं। उस द्रव्य की जहाँ अन्तर दृष्टि हुई तो जितने गुण हैं, उनका व्यक्त अंश एक समय की पर्याय में, अनन्त गुण का व्यक्त अंश वेदन में आता है। आहाहा! उसे तो अभी सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? और पंचम गुणस्थान में जो सच्चे प्रतिमाधारी हैं, उन्हें तो अनन्त गुण जो चौथे में है, उसमें से विशेष आनन्द की धारा आती है। उसे पंचम गुणस्थान कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : व्रत धारण करे, उसे पंच महाव्रत नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्रत कहाँ थे? अभी सम्यग्दर्शन बिना? इसके लिये तो बात चलती है। स्वरूपे चरणं चारित्रं। तो स्वरूप क्या है, वह तो दृष्टि में—अनुभव में आया नहीं, तो चरना कहाँ? समझ में आया? स्वरूपं चरणं चारित्तं, यह प्रवचनसार की (सातवीं) गाथा है। स्वरूपे चरणं चारित्तं। प्रवचनसार। तो स्वरूप क्या है आत्मा का? स्व-रूप, स्व-रूप। अपना रूप तो ज्ञान, आनन्द और शान्ति का स्वरूप है। आहा! उस आनन्द का पहले सम्यग्दर्शन में अनुभव होता है कि यह आत्मा ऐसा है, पश्चात् स्वरूप में चरना—स्वरूपे चरणं चारित्तं। आहाहा! यह व्याख्या भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की है। यह व्याख्या मुनि यहाँ करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अनन्त सुख। स्वरूप में स्वरूप जो सुखरूप है, उसकी सम्यग्दर्शन में प्रतीति आयी है और आंशिक आनन्द और सर्व गुण की व्यक्तता आंशिक आयी, परन्तु मुनिपना तो... ओहोहो! सर्वार्थसिद्धि के देव एकभवतारी हैं, वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। जितने देव सर्वार्थसिद्धि में हैं—संख्यात हैं, सबको एक भव करके मोक्ष में जाना है। समकिती हैं, कितने ही क्षायिक समकिती हैं। उन्हें सुख का अंश है। सुख का अंश उन्हें है, उनकी अपेक्षा तो मुनिपना में अनन्त सुख बढ़ गया है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह मुनिपना, हों! यह वस्त्र बदलकर (छोड़कर) नग्न हुए और पंच महाव्रत पालन किये, वह मुनिपना नहीं। आहाहा! मार्ग तो यह है, भाई! जैनदर्शन का मर्म—स्वरूप तो यह है। आहाहा!

यह श्लोक हमारे स्थानकवासी में आता था। 'नवि सोहि देवता देवलोए...' यह भी गाना बोले, समझे नहीं कुछ। 'नवि सोहि सेठ सेनापति, नवि सोहि...' देव सुखी नहीं, राजा सुखी नहीं, सेनापति सुखी नहीं। 'अेगंत सुखी मुनि वीतरागी।' ऐसा आता था, परन्तु समझे नहीं कुछ। अर्थ आवे नहीं। सुखी अर्थात् यह बाहर से निवृत्ति हो, वह सुखी। ऐसा।

मुमुक्षु : मुनि की महिमा गाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु मुनि कैसे, उसकी फिर (खबर नहीं होती)। सुखी क्या? यह स्त्री, पुत्र छोड़कर बैठे और त्यागी हुए, वे सुखी, ऐसा। अरे! सुन न! क्या कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी सुखी नहीं। समकित का त्याग किया। समकित का त्याग किया। मैंने पर का त्याग किया, ऐसे भाव में समकित का त्याग किया। आहाहा! यहाँ तो मिथ्यात्व का त्याग तब होता है, जब अनन्त धर्मस्वरूप वत्थु सहावो धम्मो। वस्तु जो भगवान आत्मा, उसका स्वभाव त्रिकाली अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय सुख, अतीन्द्रिय शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, उसमें लीनता होना, स्वरूप में लीनता—चरना, उसका नाम चारित्र है। स्वरूप की दृष्टि की अभी खबर नहीं और उसे चारित्र कहाँ से आया? यहाँ तो भगवान की बात है, बापू! यहाँ कहीं कोई वाडा-पक्ष की बात नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

योगीन्द्रदेव क्या पुकार करते हैं? अनन्त सुख शब्द प्रयोग किया है। है? **परम तपोधन (मुनि)...** तपोधन मुनि। जंगल में बसनेवाले और आत्मा के आनन्द में बसनेवाले। आहाहा! जिन्हें तपरूपी धन है। अर्थात्? निर्विकारी आनन्दरूपी धन जिसके पास है। आहाहा! लो, सेठ! यह तुम्हारे धन के धूल के साथ यह कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जंगल में रहे तो क्या है? इस आत्मा के जंगल में रहे तो खबर पड़े। आहा! जंगल में तो बाघ और दूसरे जानवर भी बहुत रहते हैं। यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। बापू! क्या हो? तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव... स्वरूप जो आनन्द का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द से भरचक भरपूर प्रभु, उसमें चरना, स्वरूपे चरणं चारित्तं। उस स्वरूप की अभी जिसे दृष्टि हुई नहीं, वह चरे कहाँ से? यह ढोर चरने जाते हैं या नहीं? पशु। घास होवे तो चरे या ढ़ेले को चरे? धूल को? एकदम हरी घास होती है न? इसी प्रकार भगवान अतीन्द्रिय आनन्द से अन्दर हरा-भरा भरपूर है। उसे अन्दर में आनन्द का वेदन, अनन्त सुख होता है, वह सुख इन्द्रों को नहीं, ऐसा कहते हैं। करोड़ों इन्द्राणी के साथ भोग लेनेवाला रागी प्राणी दु:खी है। आहाहा! वह जहर का प्याला पीता है। समझ में आया? वह सविकल्प जहर पानी पीता है। यह निर्विकल्प आनन्द मुनि पीते हैं। आहाहा! निर्विकल्प रस पीजिये, ऐसा आता है। यह विकल्परस है, वह तो दु:ख है। समझ में आया? मार्ग सूक्ष्म, बापू! दुनिया ने बाहर से कल्पित किया है, वह तो सब

अधर्म है। धर्म तो उसे कहते हैं कि जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता हो। आहाहा! क्योंकि धर्म, वह वस्तु का स्वभाव है। अतीन्द्रिय आनन्द, वह वस्तु का स्वभाव है। तो वस्तु के स्वभाव में से अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होता है। आहाहा!

यहाँ तो योगीन्द्रदेव, मुनि की व्याख्या करते हैं। **अपनी आत्मा को ध्यावता परम तपोधन (मुनि) जो अनन्त सुख पाता है, उस सुख को इन्द्र भी करोड़ देवियों के साथ रमता हुआ नहीं पाता।** कहाँ उसकी बात और कहाँ यह बात। वह तो जहर है और यह तो सुख है। आहाहा! कोई कहता है कि सिद्ध का सुख कैसा? कि इन्द्र का सुख जो है, उससे अनन्त गुणा। इन्द्र का सुख तो राग है, उससे अनन्तगुणा कहाँ से आया? उसके साथ गुणाकार कहाँ हुआ? यह मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है। सब शास्त्र में है। तुम ऐसा कहते हो कि सिद्ध में कितना सुख है? कि यह इन्द्र का सुख, यह राजा-चक्रवर्ती भोगता है, उससे अनन्तगुणा। तो इन्द्रिय का सुख तो राग, दुःख है। उससे अनन्तगुणा? क्या कहता है तू? समझ में आया? जाति ही अलग है। वह तो राग है और यह तो वीतरागभाव आनन्द का नाथ है। आहाहा! उस जाति का गुणाकार तू कहाँ से लाया? समझ में आया?

यहाँ यह तो कहते हैं, करोड़ों देवियों के साथ रमता है, वह तो राग है। आहाहा! भगवान की शान्ति का तो वहाँ खून होता है। आहाहा! अपनी शान्ति की तो वहाँ भोग में हिंसा होती है। करोड़ों इन्द्राणियों के साथ। आहाहा! प्रभु! तुझे यह क्या है? कहते हैं। आहाहा! तेरे आनन्द के नाथ की हिंसा होती है। आहाहा! और यह तो आनन्द का जीवन होता है। आहाहा! समझ में आया? भाई! मार्ग, बापू, अलग है, भाई! यह पंचम काल में सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनवर का मार्ग समझना वह बहुत मुश्किल है। अपनी कल्पना से माने, अनादि से माना है।

भावार्थः—बाह्य और अन्तरंग परिग्रह से रहित... मुनिपना लेना है न? बाह्य में वस्त्र का धागा नहीं, अन्तरंग में राग का अंश नहीं। आहाहा! बाह्य—अभ्यन्तर परिग्रह से रहित। मात्र (बाह्य) परिग्रह से रहित, ऐसा नहीं। अन्दर में भी राग के भाव से रहित। मिथ्यात्व और राग जो अभ्यन्तर परिग्रह है, उससे भी रहित। मिथ्यात्व से रहित। पुण्य में धर्म माननेवाले तो मिथ्यादृष्टि हैं। तो मिथ्यात्व का परिग्रह उसे छूटा नहीं है। आहाहा!

समझ में आया? आहाहा! यह देखो न हार्ट की पीड़ा होती है। बेचारे अमरचन्दभाई सुनने के लिये आये थे। अब उसे बेचारे को अन्दर कितना होता है हार्ट का। डॉक्टर कहे, बाहर नहीं निकलना। लो। अन्दर कुछ होता होगा। मूल तो बहुत पसीना हो जाये न तो यह रक्त है, वह जम जाये। जम जाये तो श्वास न ले सके। दल जम जाये। बर्फ जमे वैसे रक्त... रक्त है न? खून। जाड़ा हो जाता है। उसे पसीना बहुत होता है। पसीना होता है तो रक्त जाड़ा हो जाता है। जाड़ा समझे? फिर श्वास नहीं ले सकता और उलझन... उलझन... उलझन। आहाहा! ऐसी राग-द्वेष की इसे उलझन होना चाहिए। राग और द्वेष महा दुःखरूप दशा है, भगवान!

आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु, सच्चिदानन्द प्रभु... यह आया था न? पहले आया। सदा आनन्दस्वरूप, अद्वितीय अतीन्द्रिय सुखरूप। यह सब अपने आया था। आहाहा! ऐसा भगवान **बाह्य और अन्तरंग परिग्रह से रहित...** अभ्यन्तर में मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूपी परिग्रह से रहित। बाह्य में वस्त्र, पात्र और स्त्री, परिवार से रहित **निज शुद्धात्मा की भावना...** ओहो! अकेली मक्खन बात है। निज भगवान। परमात्मा त्रिलोकनाथ, वह भी नहीं। उनका ध्यान करने से तो राग होता है। समझ में आया? पंच परमेष्ठी का स्मरण करने से भी राग होता है। आहाहा! निज शुद्धात्मा। अपना निज शुद्धात्मा पवित्र पुंज प्रभु। आहाहा! (उसकी) भावना—उसकी एकाग्रता से **उत्पन्न हुआ वीतराग परमानन्द सहित...** देखो! आहाहा! वीतराग परमानन्द है। अज्ञानी ने राग को आनन्द माना है, सुख माना है। आहाहा! समझ में आया?

वीतराग परमानन्द सहित महामुनि जो सुख पाता है,... आहाहा! मिथ्यात्व, राग-द्वेष और बाह्य परिग्रह रहित धर्मात्मा अन्तर में जो सुख पाता है, **उस सुख को इन्द्रादि भी नहीं पाते।** इन्द्र आदि अर्थात् बड़े करोड़पति सेठिया और चक्रवर्ती उस सुख को नहीं पाते। उन्हें वहाँ सुख नहीं है। आहाहा! **जगत में सुखी साधु ही हैं,...** जिसने आनन्ददशा प्रगट की है, वे जगत में सुखी हैं। आहाहा! सुखी ही हैं। ऐसा वापस। है? **जगत में सुखी साधु ही हैं,...** एकान्त कर दिया। आहाहा! निज स्वरूप अन्तर में वीतरागभाव से साधते हैं, वे एक साधु जगत में सुखी हैं। **अन्य कोई नहीं।** लो! है? आहाहा!

यही कथन अन्य शास्त्रों में भी कहा है—'दह्यमाने इत्यादि'... श्लोक है। **इसका अर्थ ऐसा है कि महामोहरूपी अग्नि से जलते हुए...** आहाहा! भ्रमणा—पुण्य में धर्म है, पाप में मजा है, ऐसी महामोहरूपी अग्नि जहाँ जलती है। आहाहा! उस **महामोहरूपी अग्नि से जलते हुए इस जगत में देव, मनुष्य, तिर्यंच, नारकी सभी दुःखी हैं,...** राजा दुःखी, सेठिया दुःखी, देव दुःखी, अरबोंपति दुःखी, आहाहा! इन्द्र दुःखी, अप्सरायें दुःखी। आहाहा! दुःखी के बड़े समुद्र भरे हैं। **और जिनके तप ही धन है,...** अतीन्द्रिय आनन्दरूपी दशा, वह धन है। आहाहा! तप अर्थात् इच्छानिरोध (इच्छा) रहित आनन्द की दशा। तप्यन्ते इति तपः। जैसे स्वर्ण को गेरु लगाने से ओपता है, उसी प्रकार भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द की परिणति से शोभता है, उसे यहाँ तप कहते हैं। समझ में आया? दीक्षा कहो, तप कहो, चारित्र कहो। दीक्षा कहते हैं न? दीक्षाकल्याणक नहीं कहते? दीक्षाकल्याणक कहो या तपकल्याणक कहो। अन्दर में चारित्र की दशा, वह तपकल्याणक है, वह तप है। आहाहा!

तथा सब विषयों का सम्बन्ध जिन्होंने छोड़ दिया है... परसन्मुख के ध्येय का सब विषय छोड़ दिया है। आहाहा! भगवान की वाणी और भगवान की ओर का लक्ष्य भी जिसने छोड़ दिया है। वह भी विषय है। आहाहा! जगत को कठिन पड़े। समझ में आया? सब पर विषय छोड़ दिया है और स्व विषय में लीन हुए हैं। आहाहा! समझ में आया? समयसार ३१ गाथा में यह कहा है कि जड़ इन्द्रिया, भावेन्द्रिय—एक-एक इन्द्रियों के विषय को देखे, वह और जगत की सभी चीज़ें। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देव, गुरु, शास्त्र, समवसरण, दिव्यध्वनि, वाणी इन सबको इन्द्रिय कहा गया है। आहाहा! तीनों इन्द्रियों को जीत ले, उनके ऊपर से लक्ष्य छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। ३१ गाथा में आया है। जड़इन्द्रिय, भावेन्द्रिय अर्थात् एक-एक विषय को देखनेवाला खण्ड-खण्ड बताता है वह, और जो सभी पर चीज़ें हैं, उन्हें इन्द्रिय कहा जाता है। **'जो इंदिये जिणित्ता'।** उन तीनों को जीतकर जो स्वभाव को भिन्न करके अन्तर में रमता है, उन्हें जितेन्द्रिय साधु कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहा न? **सब विषयों का...** यह विषय है। देव-गुरु-शास्त्र, वीतराग की वाणी और वीतराग का समवसरण भी इन्द्रिय का विषय है। यह गजब बात है! समयसार

३१ गाथा में कहा है। '**जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणिद आदं**'। जो कोई तीन इन्द्रिय—जड़, भाव और उसका विषय का लक्ष्य छोड़ दे और '**णाणसहावाधियं मुणिद आदं**' ज्ञानस्वभाव से भिन्न आत्मा पूर्णानन्द है... आहाहा! उसमें जो रमते हैं, उन्हें जितेन्द्रिय सन्त कहा जाता है। समझ में आया? कान को जीते-अन्दर भूंगली डाल दे, वह नहीं। आँख को जीतने के लिये आँख को फोड़ डाले। सूरदास थे न? सूरदास। अन्यमति में सूरदास हुए न? उन्होंने आँख फोड़ डाली थी। आँख फोड़ने से क्या हुआ? समझ में आया? वे सूरदास एक बार वेश्या के घर गये थे। सर्प था। एक सर्प लटकता था, उसे पकड़कर गये, खबर नहीं रही। इतनी गृद्धि थी। सूरदास में कथा आती है। सब देखा हे न? बहुत पद (देखे हैं)। छोटी उम्र से सब देखा है। दुकान पर सब शास्त्र बहुत पढ़ते थे। कबीर के और यह सब हमारे भेंट आते थे। छोटी उम्र में हम पत्र मंगवाते थे। एक जैन समाचार है। अहमदाबाद। वाडीलाल मोतीलाल। स्थानकवासी में बड़ा पत्रकार। जैन समाचार। वह दुकान पर मँगाते थे। (संवत्) १९६५-६६ के वर्ष। उसमें एक बार कबीर के पद भेंट आये थे। कबीर... कबीर है न? उसके। सब पढ़े थे दुकान पर। गप्प ही गप्प है। वीतराग के अतिरिक्त कहीं सच्ची बात नहीं है। समझ में आया? और कितने ही कहते हैं कि कबीर के हैं ऐसे बनारसीदास के हैं। ऐसा कहते हैं। अभी आया था। कबीर कहाँ और बनारसीदास कहाँ? बनारसीदास तो समकिती-ज्ञानी थे। उनकी वाणी तो देखो! नाटक समयसार। दिया है न? आहाहा! वाणी तो समकिती की हो या मुनि की हो या केवली की हो, वाणी में अन्तर है? चारित्र में अन्तर हो। चौथे (गुणस्थान) में स्वरूप में इतनी रमणता नहीं हो, परन्तु वस्तु की स्थिति तो एक ही है। जैसा समकित तिर्यंच का, वैसा समकित सिद्ध का। समकित में अन्तर है? आहाहा! कबीर को बनारसीदास के साथ जोड़ देते हैं। बनारसीदास में ऐसा। अरे! सुन तो सही, प्रभु! बनारसीदास क्या कहते हैं? आहाहा!

वे तो कहते हैं, मोक्ष अधिकार का ४०वाँ पद। सच्चे मुनि, जिन्हें अनन्त आनन्द का स्वाद आता है, उन्हें छठवें गुणस्थान में महाव्रत का विकल्प उठता है, वह संसार है, जगपंथ है। आहाहा! समझ में आया? बताया था। नाटक समयसार। यह नाटक समयसार। समझ में आया? मोक्ष अधिकार का ४०वाँ बोल। ५२-५३ बोल है, उनमें

४०वाँ बोल (पद) यह है। जगपंथ। आहाहा! वीतराग ऐसा कहते हैं, उन्होंने यह कहा। जो भाव संसार में प्रवेश करता है, उस भाव को पुण्य कैसे कहा जाये? वह पुण्यभाव तो संसार में प्रवेश कराता है। आहाहा! महाव्रत के परिणाम हैं, वे आस्रव हैं, विकल्प है। आहाहा! जो तत्त्वार्थसूत्र में आस्रव अधिकार में आते हैं। छठे अध्याय में। व्रत, अव्रत दोनों आस्रव है। पुण्य और पाप दोनों आस्रव हैं। लोगों को वाँचन नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वहाँ है, तत्त्वार्थसूत्र में। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **सब विषयों का सम्बन्ध जिन्होंने छोड़ दिया है,...** आहाहा! पर का लक्ष्य ही छोड़ दिया है, इस ओर का, ऐसा कहते हैं। और इस ओर स्वविषय आत्मा को बनाया है। भगवान पूर्णानन्द को विषय बनाया। परविषय का लक्ष्य छोड़ दिया। आहाहा! **ऐसा साधु मुनि जगत में सुखी हैं।** बहुत सरस बात आयी। आहाहा! समझ में आया?

जंगल में बसते हों, बहुत तेज धूप पड़ती हो, नग्न शरीर हो। आहाहा! परन्तु अन्तर में आनन्द का झरना झरता है, तो वह सुखी है। और यह सब बाग-बगीचा और बड़े चालीस-चालीस लाख के बँगले। है न? सेठ को चालीस लाख का है। साहूजी को दिल्ली में और उसे गोवा में चालीस लाख का है। उसमें धूल में भी नहीं। आहाहा! वहाँ तो कषाय की होली सुलगती है। राग के मोह का दावानल है। भगवान जंगल में सन्त रहते हैं, वे तो आत्मा में रहते हैं। अन्तर आनन्द में—अतीन्द्रिय आनन्द में रहते हैं। आहाहा! वे जगत में सुखी हैं। लो, बहुत सरस अधिकार है।

गाथा - ११८

११८) अप्पा-दंसणि जिणवरहँ जं सुहु होइ अणंतु।
तं सुहु लहइ विराउ जिउ जाणंतउ सिउ संतु।।११८।।

आत्मदर्शने जिनवराणां यत् सुखं भवति अनन्तम्।
तत् सुखं लभते विरागः जीवः जानन् शिवं शान्तम्।।११८।।

अप्पा इत्यादि। अप्पादंसणि निजशुद्धात्मदर्शने जिणवरहं छद्मस्थावस्थायां जिनवराणां जं सुहु होइ अणंतु यत्सुखं भवत्यनन्तं तं सुहु तत्पूर्वोक्तसुखं लहइ लभते। कोऽसौ। विराउ जिउ वीतरागभावनापरिणतो जीवः किं कुर्वन् सन्। जाणंतउ जानन्ननुभवन् सन्। कम्। सिउ शिवशब्दवाच्यं निजशुद्धात्मस्वभावम्। कथंभूतम्। संतु शान्तं रागादिविभावरहितमिति। अयमत्र भावार्थः। दीक्षाकाले शिवशब्दवाच्यस्वशुद्धात्मानुभवने यत्सुखं भवति जिनवराणां वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरतो जीवस्तत्सुखं लभत इति।।११८।।

आगे ऐसा कहते हैं कि वैरागी मुनि ही निज आत्मा को जानते हुए निर्विकल्प सुख को पाते हैं -

भगवन्तों को जो अनन्त सुख आत्मदर्श में मिलता है।
वही विरागी जीव प्राप्त करते शिव-शान्त निजात्म लखें।।११८।।

अन्वयार्थ :- [आत्म दर्शने] निज शुद्धात्मा के दर्शन में [यत् अनन्तम् सुखं] जो अनंत अद्भुत सुख [जिनवराणां] मुनि-अवस्था में जिनेश्वरदेवों के [भवति] होता है, [तत् सुखं] वह सुख [विरागः जीवः] वीतरागभावना को परिणत हुआ मुनिराज [शिवं शांतं जानन्] निज शुद्धात्मस्वभाव को तथा रागादि रहित शांत भाव को जानता हुआ [लभते] पाता है।

भावार्थ :- निज शुद्धात्मा के दर्शन में जो अनंत अद्भुत सुख मुनि-अवस्था में जिनेश्वरदेवों के होता है, वह सुख वीतरागभावना को परिणत हुआ मुनिराज निज शुद्धात्मस्वभाव को तथा रागादि रहित शांत भाव को जानता हुआ पाता है। दीक्षा के समय तीर्थंकरदेव निज शुद्ध आत्मा को अनुभवते हुए जो निर्विकल्प सुख पाते हैं, वही सुख रागादि रहित निर्विकल्पसमाधि में लीन विरक्त मुनि पाते हैं।।११८।।

गाथा-११८ पर प्रवचन

आगे ऐसा कहते हैं कि वैरागी मुनि... वैरागी अर्थात् राग से भिन्न पड़कर निजानन्द में रमते हैं, वह **मुनि ही निज आत्मा को जानते हुए निर्विकल्प सुख को पाता है—** लो। ११८।

११८) अप्पा-दंसणि जिणवरहँ जं सुहु होइ अणंतु।
तं सुहु लहइ विराउ जिउ जाणंतउ सिउ संतु॥११८॥

ओहोहो! तीर्थंकर का दृष्टान्त दिया है। ११८

अन्वयार्थः—निज शुद्धात्मा के दर्शन में जो अनन्त अद्भुत सुख मुनि-अवस्था में जिनेश्वरदेवों के... मुनि अवस्था की बात है, हों! केवलज्ञान की नहीं। केवलज्ञान के सुख की तो बात ही क्या! जिनवरदेव जब दीक्षित होते हैं... आहाहा! सोलहवें, सत्रहवें, अठारहवें तीर्थंकर, चक्रवर्ती। चक्रवर्ती है न? तीर्थंकर हैं, चक्रवर्ती हैं और कामदेव हैं। उनके तीन पदवी है। सोलह, सत्रह, अठारह—तीर्थंकर हैं, चक्रवर्ती हैं, कामदेव हैं। ढाई द्वीप में उनके जैसा किसी का रूप नहीं। सुन्दर रूप, सुन्दर रूप। आहाहा! वे जब दीक्षित होते हैं, समकित सहित तो हैं ही। तीन ज्ञानसहित। आहाहा! इन्द्र पालकी में से उतारे। इतना सुन्दर रूप... आहाहा! णमो सिद्धाणं। बस, इतना (बोले)। पाँच नवकार न बोले। णमो सिद्धाणं। बस, ऐसा कहकर दीक्षित होते हैं। आहाहा!

शान्तिनाथ जब दीक्षित होते हैं न? छियानवें हजार स्त्रियाँ (थीं)। जब दीक्षित होते हैं, स्त्रियाँ चोटियाँ (सिर के बाल) खींचती हैं। अरे! प्रभु! कहाँ जाते हो? अरे! स्त्रियों! मैं तुम्हारे लिये रहता था? मेरा राग था मेरे पास, इसलिए मैं रहता था। मेरा राग मर गया है, अब तुम क्या उसको जीवित करोगे। समझ में आया? मुझमें राग था, तो तुम्हारे प्रति मेरा लक्ष्य जाता था। तुम्हार कारण से नहीं, मेरे राग के कारण से। अब तुम चोटियाँ खींचो या मर जाओ, तो क्या हमारे में अब राग उत्पन्न होगा? मर गया, वह जीवित होगा? चले जाओ। हम तो वनवास में आनन्द के झरने में जाते हैं। आहाहा! अन्दर में तल खोजने। अन्दर पूर्णानन्द परमात्मा तल में है। वहाँ हम जाते हैं। आहाहा!

कहते हैं, जो जिनवर दीक्षित होते हैं। जिनवर का दृष्टान्त दिया है। है न? **मुनि अवस्था में जिनवरदेवों के...** मुनि अवस्था में। आहाहा! इन्द्र साथ में खड़े हों। इन्द्र खड़े होते हैं। पालकी में बैठाकर ले जाते हैं न? इन्द्र जहाँ नीचे उतारते हैं, वहाँ प्रभु वस्त्र छोड़ते हैं। नमः सिद्धः। नमः सिद्धः बस, इतना बोलकर अन्दर स्वरूप में उतर जाते हैं। वह चारित्र है। आहाहा! दीक्षित होने के समय जो आनन्द जिनवर को आता है... आहाहा! वह तुम्हारे सुख-बुख, करोड़पति के तो कहीं धूल में चले गये।

मुमुक्षु : रुपयों का करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : रखना या डाल देना? ऐसा कहते हैं। रखे कौन और डाल कौन दे? उसकी ममता छोड़ दे। आहाहा! प्रभु! तू तीन लोक का नाथ आनन्द का कन्द है न? सुखकन्द मनोहर, नहीं आता? सुखकन्द मनोहर। आहाहा! मधुर मीठा। अपने आ गया है। समयसार में। मधुर मीठा आनन्द जिसका स्वाद है। आहाहा! जिसके स्वाद के समक्ष जगत के इन्द्रों का सुख है नहीं। जहरीला स्वाद दिखता है उसे। ओहोहो! समकिती को अपने आनन्द के स्वाद के समक्ष, विषय की वासना होती है परन्तु जहरीले स्वाद की भाँति दुःख लगता है। आहाहा! समझ में आया? अपने अतीन्द्रिय आनन्द के सुख के स्वाद के समक्ष इन्द्र के इन्द्राणी के भोग का भाव भी जहर जैसा दिखता है। आता है, जब तक चारित्र न हो, वहाँ तक समकिती को वासना आती है, परन्तु वह दुःख है। अरे! दुःख है। आहा! अन्तर में पुरुषार्थ की कमी है तो छोड़ नहीं सकता। परन्तु लगता है दुःख। आहाहा! समझ में आया? अज्ञानी को उसमें सुख दिखता है। दृष्टि मिथ्यात्व है। आहाहा! पर में—विषय में भोग में पैसे में सुख दिखता है। है दुःख, उसे सुख मानता है तो मिथ्यात्व है। आहाहा! अपनी चीज़ के अतिरिक्त सभी चीज़ों में जरा सा आकर्षण यदि हो जाये, मनोरम देखकर अन्दर आकर्षण हो जाये तो वह तो दुःख है। दुःख में मजा मानता है। आहाहा! मिथ्यात्व है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि को अपने आनन्द का सुख का अनुभव भासित हुआ है, उसके समक्ष जब चारित्र नहीं तो विषयवासना आती है परन्तु काले नाग की भाँति डंस दिखता है। आहाहा! अरे! यह जहरीला, यह कहाँ आया? समझ में आया? अज्ञानी उसमें मजा

मानता है। इतना अन्तर है। समझ में आया? लो, वह रानी याद आयी। जयपुर की रानी। कितने निकले? चार करोड़ निकले। मानो सुखी हैं। धूल भी नहीं। अभी दुःखी, हैरान मरकर, अभी दुःखी और वापस मरकर जायेंगे नीचे नरक में। समझ में आया? यह चार करोड़ उसके पास हैं न! बाबूभाई गये थे न, तब सरकार ने झबेरी रूप से रोके थे। उसके पास कितनी पूँजी है। चार करोड़ रुपये। सरकार ने उसे लाख रुपये दिये। आधा प्रतिशत। आहाहा! वह मानो वह रानी सुखी होगी। चार करोड़ के जेवरात निकले।

मुमुक्षु : परख का ज्ञान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परख का ज्ञान! वह तो पुण्य के कारण मिला है। इसने कैसे रोका? दूसरे जवेरी तो बहुत थे। इसका इतना पुण्य था तो हुआ, उसमें है क्या? एक लाख रुपये मिले, वहाँ जवेरी। यह पुण्य की बातें हैं। आहाहा!

यहाँ तो पवित्रता की प्रतिष्ठा को प्रतिष्ठा कहते हैं। आहाहा! यह परख है, भगवान! बापू! आहाहा! अरेरे! चौरासी के अवतार में अनन्त-अनन्त अवतार करके (मर गया)। बापू! चौरासी (लाख) योनियाँ हैं न? चौरासी लाख। एक-एक योनि में अनन्त अवतार किये। आहाहा! भूल गया परन्तु भगवान। आहाहा! जैसे माता के गर्भ में से जब पहले आया होगा, पहला जन्म... इसकी माता ने देखा होगा कि लड़का है। कुछ भान नहीं होता। आहाहा! पहले दिन से जन्म के समय। चूहे जितना हो इतना... भूल गया सब। आहाहा! तेरी दशा तो देख, भाई! आहाहा! जन्मा तो स्वयं बैठ न सके। इसलिए इसकी माँ ले जरा ऐसे। आहाहा! वह दशा याद तो करे। भाई! तू कहाँ रहा? कैसे दुःख में? और उस समय उसे दुःख इतना हो। बालकरूप से दुःख है। 'बालपन खेल में खोया, जवानी स्त्री मोह्या, वृद्धपन देखकर रोया।' यह हमारे आता था। पालेज में रहते थे न? वे रोजा करे न? रोजा। मुसलमान। वहाँ पालेज में मुसलमान के घर बहुत हैं। हम तो बाहर खाट डालकर सो रहे हों। एक मुसलमान सवेरे चार बजे निकले। यह बोले। 'बालपन खेल में खोया, जवानी स्त्री मोह्या, वृद्धपन देखकर रोया।' आहाहा! परन्तु आत्मा कौन है? उसकी (पहिचान) की नहीं। अरेरे!

यहाँ कहते हैं, जिनवरदेव को जो सुख होता है... आहाहा! वापस किसमें? मुनि अवस्था में, हों! कोई कहे, केवली का सुख। उसकी तो बात दूसरी। '**जिनवराणां' मुनि**

अवस्था में जिनेश्वरदेवों के होता है, वह सुख वीतरागभाव को परिणत हुआ मुनिराज... ऐसा ही सुख मुनि को होता है। ऐसा कहते हैं। सच्चे मुनि, जिसे भगवान मुनि कहते हैं... आहाहा! बापू! यह नमूना मिलना कठिन है। आहाहा! **मुनि अवस्था में जिनेश्वरदेवों के होता है, वह सुख वीतरागभाव को परिणत हुआ मुनिराज...** आहाहा! वे तो राग से रहित भगवान वीतरागभाव की परिणति में स्थित हैं। आहाहा! वीतरागभाव की भावना में पड़े हैं, वे तो। ओहोहो! मुनिराज।

'शिवं शांतं जानन्' निज शुद्धात्मस्वभाव को तथा रागादि रहित शान्त भाव को... दो के अर्थ किये। शिव और शान्त। शिव का अर्थ किया निज शुद्धात्मस्वभाव और शान्त का अर्थ किया रागादि रहित। ऐसे रहित, ऐसे सहित। आनन्दसहित, राग से रहित शान्त। आहाहा! समझ में आया? शब्द के अन्दर, एक-एक शब्द में वाच्य है, ऐसा जानना चाहिए न! **'शिवं शांतं जानन्'** शिव अर्थात् निज स्वभाव का शिवस्वरूप, उसे जाना और शान्त अर्थात् रागादि रहित शान्तभाव को जाना। आहाहा! मुनिराज शुद्ध स्वभाव को जाने **तथा रागादि रहित शान्त भाव को जानता हुआ पाता है।** सुख। वह मुनि को अनन्त आनन्द आता है। आहाहा! इसका नाम मुनि। इसका नाम णमो लोए सव्व साहूणं। समझ में आया?

बापू! मुनिपना अर्थात् परमेश्वरपद, भाई! पाँच परमेष्ठी है न? पाँच परमेष्ठी है न? आहाहा! योगीन्द्रदेव कहते हैं, स्वयं मुनि है, आचार्य है, जो जिनवरदेव ने दीक्षा काल में चारित्र के उच्चारण काल में, मैं चारित्र अंगीकार करता हूँ, आहाहा! तो स्वरूप में रमने में जो आनन्द मुनिदशा में तीर्थंकरों को आता है, ऐसा आनन्द मुनिराज को आता है। ऐसा कहते हैं। सच्चे मुनि हों, उन्हें तो ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द आता है। समझ में आया? आहाहा! धन्य अवतार!

श्रीमद् भी कहते हैं न? 'दर्शनमोह व्यतीत हो उपजा बोध जो' दर्शनमोह नाश होकर समकित हुआ। अब फिर स्वरूप में बाह्याभ्यन्तर त्याग करके निर्ग्रन्थपना— मुनिपना... आहाहा! भाव.. मुँडभाव, नग्नभाव सहित। आहाहा! अन्तर में वह दशा कब आवेगी, ऐसी भावना भाते हैं। समकिती है न! ऐसी चारित्र दशा। धन्य अवतार! धन्य काल! वह अवसर आना महा अमूल्य अवसर है। वह उसके काल की कीमत

हुई। उसकी चीज़ की—आत्मा की कीमत हुई। परीक्षा की आत्मा की। आहाहा! दुनिया की परीक्षा की थी परन्तु यह तो आत्मा की परीक्षा करके आनन्द प्रगट किया। समझ में आया? आहाहा!

भावार्थः—दीक्षा के समय तीर्थंकरदेव निज शुद्ध आत्मा को अनुभवते हुए... आहाहा! निज आत्मा शुद्ध पवित्र का आनन्द का अनुभव करते हुए, **जो निर्विकल्प सुख पाते हैं,...** आहाहा! **वही सुख रागादि रहित निर्विकल्प समाधि में लीन विरक्त मुनि पाते हैं...** आहाहा! राग से तो विरक्त है। आहाहा! स्वभाव में रक्त है। राग से विरक्त है, स्वभाव में रक्त है। आनन्द... आनन्द... आनन्द... अतीन्द्रिय आनन्द। जैसा तीर्थंकर को दीक्षा के समय आनन्द आता है, ऐसा मुनि को मुनिदशा में आनन्द आता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

निर्विकल्प समाधि में लीन विरक्त मुनि... राग के विकल्प से भी अन्दर विरक्त है। आहाहा! वह विरक्त है। स्त्री, कुटुम्ब से विरक्त वह तो सदा ही विरक्त है ही। पर का त्याग-ग्रहण आत्मा में है ही कहाँ? आहाहा! वह तो राग से विरक्त। राग में रक्त था, वह राग से विरक्त (हुआ)। स्वभाव में विरक्त था, वह स्वभाव में रक्त (हुआ)। (विशेष कहेंगे....)

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ११९

अथ कामक्रोधादिपरिहारेण शिवशब्दवाच्यः परमात्मा दृश्यत इत्यभिप्रायं मनसि संप्रधार्य सूत्रमिदं कथयन्ति –

११९) जोइय णिय-मणि णिम्मलए पर दीसइ सिउ संतु।
अंबरि णिम्मलि घण-रहिए भाणु जि जेम फुरंतु।।११९।।

योगिन् निजमनसि निर्मले परं दृश्यते शिवः शान्तः।
अम्बरे निर्मले घनरहिते भानुः इव यथा स्फुरन्।।११९।।

जोइय इत्यादि। जोइय हे योगिन् णियमणि निजमनसि। कथंभूते। णिम्मलए निर्मले परं नियमेन दीसइ दृश्यते। कोऽसौ। कर्मतापन्नः सिउ शिवशब्दवाच्यो निजपरमात्मा। कथंभूतः। संतु शान्तः रागादिरहितः। दृष्टान्तमाह। अम्बरे आकाशे। कथंभूते। णिम्मलि निर्मले। पुनरपि कथंभूते। घणरहिए घनरहिते। क इव। भाणु जि भानुरिव यथा। किं कुर्वन्। फुरंतु स्फुरन् प्रकाशमान इति। अयमत्र तात्पर्यार्थः। यथा घनघटाटोपविघटने सति निर्मलाकाशे दिनकरः प्रकाशते तथा शुद्धात्मानुभूतिप्रतिपक्षभूतानां कामक्रोधादिविकल्परुपघनानां विनाशे सति निर्मलचित्ताकाशे केवलज्ञानाद्यनन्तगुणकरकलितः निजशुद्धात्मादित्यः प्रकाशं करोतीति।।११९।।

आगे काम क्रोधादि के त्यागने से शिव शब्द से कहा गया परमात्मा दीख जाता है, ऐसा अभिप्राय मन में रखकर यह गाथा-सूत्र कहते हैं –

हे योगी! ज्यों मेघ रहित निर्मल नभ में रवि दिखता है।
त्यों शिव शान्त आत्मा निश्चित निर्मल मन में दिखता है।।११९।।

अन्वयार्थ :- [योगिन्] हे योगी, [निर्मले निजमनसि] निर्मल अपने मन में [शिवः शांतः] निज परमात्मा रागादि रहित [परं] नियम से [दृश्यते] दिखता है, [यथा] जैसे [धनरहिते निर्मले] बादल रहित निर्मल [अंबरे] आकाश में [भानुः इव] सूर्य के समान [स्फुरन्] भासमान (प्रकाशमान) है।

भावार्थ :- जैसे मेघमाला के आडंबर से सूर्य नहीं भासता-दिखता और मेघ के आडंबर के दूर होने पर निर्मल आकाश में सूर्य स्पष्ट दिखता है, उसी तरह शुद्ध आत्मा की अनुभूति के शत्रु जो काम-क्रोधादि विकल्परूप मेघ हैं, उनके नाश होने पर निर्मल

मनरूपी आकाश में केवलज्ञानादि अनंतगुणरूप किरणोंकर सहित निज शुद्धात्मारूपी सूर्य प्रकाश करता है।।११९।।

वीर संवत् २५०२, भाद्र कृष्ण ७, बुधववार
दिनांक-१५-०९-१९७६, गाथा-११९, १२०, प्रवचन-९१

परमात्मप्रकाश। **आगे काम क्रोधादिक के त्यागने से...** काम शब्द से राग और क्रोध शब्द से द्वेष। यह **त्यागने से शिव शब्द से कहा गया...** शिव शब्द से अपना परमात्मस्वरूप। अन्दर परमात्मस्वरूप निरुद्रव कल्याणमूर्ति प्रभु, वह **काम क्रोधादिक के त्यागने से शिव शब्द से कहा गया परमात्मा दीख जाता है,...** आहा! यह गाथा कहते हैं। **ऐसा अभिप्राय मन में रखकर यह गाथा-सूत्र कहते हैं—**

११९) जोइय णिय-मणि णिम्मलए पर दीसइ सिउ संतु।
अंबरि णिम्मलि घण-रहिए भाणु जि जेम फुरंतु॥११९॥

अन्वयार्थ :—हे योगी... योगीन्द्रदेव मुनि दिगम्बर सन्त भावलिंगी, आनन्द में झूलनेवाले, अपने शिष्य को लक्ष्य कर यह शास्त्र बनाया है। प्रभाकर भट्ट थे। उनसे (कहते हैं कि) **हे योगी! 'निर्मले निजमनसि' निर्मल अपने मन में...** राग की रुचि से रहित अपने मन में। आहाहा! शुभाशुभभाव हो, व्यवहाररत्नत्रय का भी राग हो, परन्तु उस राग की रुचि छोड़कर, आहा...! **निर्मल अपने मन में...** अपनी ज्ञान की निर्मल परिणति में **'शिवः शांतः'** शिव अर्थात् निज परमात्मा और शान्त अर्थात् रागादि रहित। आहाहा! बात बहुत अलौकिक है! वह **नियम से दिखता है,...** आहाहा! जिसे पुण्य, दया, दान, व्रतादि के भाव राग है, उसका प्रेम छूट गया है, उसकी रुचि छूट गयी है, उसे निर्मल परमात्मा दिखता है। आहाहा! समझ में आया? यह बहुत अलौकिक बात है। परमात्मप्रकाश की गाथा। आहाहा! **निज परमात्मा रागादि रहित...** हों! सर्वज्ञ वीतराग, वे तो पर परमात्मा। अपना परमात्मा अन्दर एक समय की राग की दशा के पीछे पूरा परमात्मस्वरूप पड़ा है। किसे दिखता है? किसे ज्ञात होता है? किसी प्रतीति में आ सकता है? कि जिसे राग का प्रेम छूट गया हो और निर्मल मन हुआ हो। आहाहा! समझ में आया?

निर्मल अपने मन में निज परमात्मा रागादि रहित नियम से दिखता है,... 'परं' अर्थात् नियम, निश्चित दिखता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसे राग का प्रेम—रुचि छूट गयी है, उसे राग का त्याग हुआ। उसे निज परमात्मा अन्तर में दिखता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में श्रद्धा में आता है, ज्ञान में ज्ञात होता है, स्वरूप में स्थिरता होती है। आहाहा! समझ में आया? कठिन, भाई! लोगों ने बाहर से माना है, उन्हें यह ऐसा लगे, यह तो निश्चय, निश्चय, निश्चय। परन्तु निश्चय, वह यही सत्य है। भाई! प्रभु! तू सहजानन्दमूर्ति है। सच्चिदानन्द प्रभु है। सत्-शाश्वत्, चिद्—ज्ञान और आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

यह आत्मा किसे दिखता है? कि जिसके मन में मिथ्यात्व परिणाम का तो त्याग हो, परन्तु जिसे राग के प्रेम का त्याग हो। आहाहा! तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव जिनवरदेव, आत्मा कैसे भासित हो, वह बात करते हैं। आहाहा! अर्थात् सम्यग्दर्शन कैसे हो, यह बात करते हैं। कहो, सेठ! आहाहा! जिसके मन में पुण्य और पाप के राग भाव हैं, उसकी रुचि छूट जाती है और निर्मल मन-ज्ञान होता है, वह ज्ञान में अपना परमात्मा (दिखता है)। परमात्मस्वरूप ही आत्मा भगवान है। अनन्त गुण के किरणसहित, अभी लेंगे। दृष्टान्त देंगे।

जैसे बादल रहित निर्मल आकाश में सूर्य के समान भासमान (प्रकाशमान) है। बादल न हो तो सूर्य प्रकाशमान दिखता है। हजार किरणें। हजार किरण है न। यह बादल न हो तो सूर्य हजार किरणों से प्रकाशमान दिखता है। ऐसा भगवान, उसमें अनन्त गुण की किरणें हैं। वह तो हजार किरण है। यह तो अनन्त गुण की किरण। ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसे अनन्त गुण हैं। उन गुण का गोदाम आत्मा है। अरे! इसे खबर कहाँ है? प्रभु! आहाहा! समझ में आया? उस गुण का धारक प्रभु अनन्त गुण के किरणरूप, उस राग की प्रीति छोड़कर, अन्तर में देखे तो उसे जैसे सूर्य प्रकाशमान दिखता है, वैसे दिखता है, आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : अन्तर में देखे अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर में अन्तर्मुख देखे। ऐसा। अन्तर्मुख। राग का प्रेम

छोड़कर, बहिर् दृष्टि का प्रेम छोड़कर अन्तर वस्तु है, वहाँ देखे तो आत्मा दिखता है, ऐसा कहते हैं। अन्तर्मुख का अर्थ अन्तरात्मा।

मुमुक्षु : विकल्प की भूमिका में....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प की भूमिका में नहीं दिखता, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। यहाँ देखने का काल लेना है। जब सम्यग्दर्शन में प्रथम अनुभव होता है, तब तो विकल्प की रुचि छूटकर निर्विकल्प सन्मुख ढल जाता है, तब वह प्रकाशमान भगवान प्रतीति में आता है। सूक्ष्म बात, भाई! समझ में आया? यह लोग कहते हैं न, व्यवहार करते-करते होगा। यहाँ तो कहते हैं, राग—व्यवहार, वह विकार है। उसकी रुचि छोड़े तो निर्मल मन होगा। प्रेम रहे तो मन मलिन है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सन्मुख, अन्तर। पूर्णानन्द का नाथ अन्तरात्मा है न? यह तो अन्तरात्मा है न? बहिरात्मा तो पुण्य-पाप को अपना मानता है, वह बहिरात्मा है। व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प हैं, उन्हें अपना माने तो वह बहिरात्मा है, वह तो बहिरात्मा है। अन्तरात्मा, जिसमें राग-विकल्प है नहीं, ऐसा मन निर्मल हो तो आत्मा दिखता है।

मुमुक्षु : सभी पर्याय जानी, बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानी है कहाँ? यह जानना कहलाये? उसे जाना तो तब कहलाता है कि राग का प्रेम छूटकर, वह राग मैल है, चाहे तो पंच महाव्रत आदि का शुभराग हो, वह शुभराग भी मैल है। उस मैल का प्रेम छूटकर ज्ञान की परिणति निर्मल हो, उस ज्ञान द्वारा अन्दर आत्मा भगवान चिदानन्द प्रभु सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, वह आत्मा। अज्ञानी ने कहा, वह नहीं। आत्मा... आत्मा तो सर्वज्ञ सिवाय अज्ञानी बहुत कहते हैं। वेदान्त आदि, परन्तु वह नहीं, उसे आत्मा की खबर नहीं।

मुमुक्षु : .... भगवान ने कहा हुआ ऐसा आत्मा...

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान ने कहा ऐसा यहाँ आत्मा, यहाँ परमात्मा ने कहा ऐसा। अन्यत्र ऐसा नहीं। वेदान्त या दूसरे आत्मा... आत्मा करते हैं, परन्तु उन्हें आत्मा की खबर नहीं। समझ में आया? आहाहा! उसमें भी सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव ने,

जिन्हें एक समय में तीन काल—तीन लोक और अपने द्रव्य-गुण पूर्ण जान लिये, उन्होंने दिव्यध्वनि द्वारा कहा कि यह आत्मा आनन्दकन्द प्रभु है। सच्चिदानन्द प्रभु। सत् अर्थात् शाश्वत्, चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द अर्थात् सुख, ऐसा आत्मा। तेरी चीज़ ऐसी है, भगवान ऐसा कहते हैं। कभी सुना न हो। भटक मरा चार गति में। समझ में आया?

मुमुक्षु : आपने अभी कहा, वह जान लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जाना हुआ नहीं कहलाता। अन्तर में जाकर आत्मा का स्पर्श करे, रागरहित होकर अन्दर में निर्मलदशा को प्राप्त करके अन्दर ज्ञाता की सम्हाल ले। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! चौरासी के अवतार में जन्म-मरण कर-करके मर गया है। भगवान तीन लोक के नाथ को माने, तो भी कहते हैं कि राग है। आहाहा! सर्वज्ञ जिनवर सौ इन्द्र के पूजनीक परमात्मा, परन्तु वे परद्रव्य हैं न, भाई! परद्रव्य को माने तो राग-शुभराग है। अपने आत्मा को रागरहित माने तो निर्मल आत्मा भास्यमान होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! समझ में आया? बनारसीदास कहते हैं, शीके चढ़े। शीके अर्थात् यह... क्या कहलाता है? डोली... डोली। डोली में चढ़कर भगवान वहाँ शत्रुंजय पर होंगे। कुछ सम्मेदशिखर जाये। भगवान वहाँ होंगे। भगवान तो यहाँ हैं। वह शुभभाव हो, तब ऐसी भक्ति होती है।

मुमुक्षु : यह भगवान भी वहाँ जाये तब दिखाई दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ भगवान दिखते नहीं, भगवान तो यहाँ (अन्दर आत्मा में) जाये तब दिखते हैं। सम्मेदशिखर में भगवान हैं। कितनों को ऐसा कहे, सम्मेदशिखर के दर्शन करे, बस, जाओ। अरे! वहाँ की वनस्पति भी अल्पभवि है। धूल भी नहीं, सुन न! ऐसे के ऐसे। आहाहा!

यहाँ एक बार कहा था न? एक बार यहाँ महावीरकीर्ति आये थे। महावीरकीर्ति, नहीं? आये थे, चार दिन रहे थे। फिर एक दिन हम आहार करके घूमते थे। कमरा है। उसमें कमरा है। प्रवचनमण्डप है, उसमें उतरे थे। हम घूमते-घूमते बैठे। उन्होंने प्रश्न निकाला, मेरे पास एक सम्मेदशिखर का... जैसे श्वेताम्बर में शत्रुंजय माहात्म्य की

पुस्तक है। श्वेताम्बर। शत्रुंजय है न, उसके शत्रुंजय माहात्म्य की पुस्तक है। वह सब देखा है। ऐसी एक सम्मेदशिखर के माहात्म्य की पुस्तक मेरे पास है। उन्होंने— महावीरकीर्ति ने कहा। यह शत्रुंजय माहात्म्य है न? श्वेताम्बर में एक पुस्तक है। शत्रुंजय माहात्म्य। इतना माहात्म्य गाया है कि ऊपर से आकर चाहे जो साधु हो, उसे आहार दे तो... गप्प ही गप्प है। वे कहें, मेरे पास है। मैंने कहा, उसमें क्या लिखा है? सम्मेदशिखर के दर्शन करें तो ४९ भव में मुक्ति होती है। कहा, वह वीतराग की वाणी नहीं। वीतराग की वाणी, पर के दर्शन से संसार कट जाये, वह वीतराग की वाणी नहीं। अपने स्वभाव के आश्रय से भवकटी होती है, दूसरे से नहीं होती। वीतराग की वाणी नहीं, वह वीतराग की पुस्तक नहीं। फिर तो वे जरा बदल गये। भाषा बदल गयी। नहीं, नहीं। मेरा भाव तो... परन्तु यह क्या कहा? सम्मेदशिखर के दर्शन से ४९ भव में संसारपरित—नाश हो जायेगा?

निज आनन्द का नाथ प्रभु सच्चिदानन्द परमात्मा, केवलज्ञानी परमात्मा ने आत्मा देखा है, सत्-शाश्वत्, ज्ञान, आनन्द का भण्डार आत्मा है। अनन्त गुण का भण्डार आत्मा है। प्रत्येक आत्मा। उस ओर दृष्टि करके मलिनता छोड़कर, निर्मल से देखे तो उसके संसार का अभाव हो जाये। समझ में आया? बाकी देव-गुरु-शास्त्र को माने, शत्रुंजय लाख बार (जाये), वह लोग कहते हैं न, ऋषभेदव भगवान पूर्व में ९९ बार आये थे। पूर्व में ९९ बार ऋषभजिन... गायन आता है। पश्चात् ९९ यात्रा करे। ९९ लाख कर न। परसन्मुख का शुभराग है, इतना है। समझ में आया? ऐई! यह आत्मा शत्रुंजय है। जो विकार का नाश करनेवाला भगवान त्रिलोकनाथ चिदानन्द प्रभु आत्मा, उसे मन में से मलिनता छोड़कर निर्मल से देखे तो दिखता है। आहाहा! कहो, सेठ! उसमें है या नहीं? परमात्मप्रकाश पुस्तक वहाँ रखी है या नहीं? रखी है, वाँचन नहीं किया।

मुमुक्षु : वाँचे परन्तु समझ में नहीं आये तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वाँचे तो सही पहले, फिर समझने की (बात)। वाँचे, फिर क्या नहीं समझ में आया यह बाद में। वाँचन चाहिए न, भाई! शास्त्र का वाँचन चाहिए। सत्शास्त्र अध्यात्मशास्त्र का वाँचन चाहिए। बारम्बार हमेशा दो घण्टे तो हमेशा चाहिए। जैसे भोजन बिना नहीं चलता, इसी प्रकार तत्त्व के अभ्यास बिना नहीं

चलता। ऐसा होना चाहिए। उसकी रट लगनी चाहिए। व्यसन होना चाहिए। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, दृष्टान्त देते हैं। **जैसे बादल रहित निर्मल आकाश में सूर्य के समान भासमान (प्रकाशमान) है।** बादल न हो तो सूर्य प्रकाशमान दिखता है। इसी प्रकार आत्मा में पुण्य-पाप का प्रेम न हो, पुण्य-पाप की रुचि छूट जाये तो भगवान दिखता है। उसमें बादल न हो तो दिखता है, यहाँ पुण्य-पाप का प्रेम छूट जाये तो दिखता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग बेचारों ने अभी तो कितनों ने सुना न हो। कुछ खबर नहीं होती। वाडा में पड़े, वह मूढ़ जैसी जिन्दगी व्यतीत करते हैं और जाये नरक और निगोद। आहाहा! वीतराग तीन लोक के नाथ परमेश्वर भव के अभाव की बात करते हैं। आहाहा! है?

भावार्थः—जैसे मेघमाला के आडम्बर से... बादल... बादल। बादल कहते हैं न? बादल की माला बहुत होती है न? घन। **मेघमाला के आडम्बर से...** इतने बादल हैं, आडम्बर-बहुत हैं। **सूर्य नहीं भासता-सूर्य नहीं दिखता और मेघ के आडम्बर के दूर होने पर निर्मल आकाश में सूर्य स्पष्ट दिखता है,...** आहाहा! यह तो दृष्टान्त हुआ। **उसी तरह शुद्ध आत्मा की अनुभूति के शत्रु...** आहाहा! सम्यग्दर्शन हुआ वह शुद्ध अनुभूति है। वह सम्यग्दर्शन... सम्यग्दर्शन साधारण करे, हमको भगवान की श्रद्धा है, ऐसा नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु आत्मा अन्दर है। जिसका सर्वज्ञ तो गुण है। क्या? आत्मा में अनन्त गुण हैं, उनमें सर्वज्ञ नाम का एक गुण है। अन्दर में सर्वज्ञशक्ति है। आहाहा! सर्वदर्शी शक्ति, सर्वज्ञान शक्ति, ईश्वर शक्ति, कर्ता, कर्म, करण (आदि) षट्कारक है न? वह षट्कारक की शक्ति अन्दर में है। आहाहा! उस शक्ति का पिण्ड प्रभु आत्मा है। वह आत्मा किसे कहते हैं, उसका लोगों को ख्याल नहीं। आत्मा अर्थात् ठीक। यह हिले-चले वह आत्मा। अरे! सुन न! तुझे भान नहीं होता। चौरासी के अवतार करके अनादि से मर गया है। यह आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु अन्दर है। चैतन्यसूर्य, नूर का पूर, चैतन्य के तेज का पूर प्रभु आत्मा है। भगवान क्या कहते हैं, इसकी खबर नहीं होती। दया पालो, व्रत करो। अब मर गया करके, सुन न! वह तो सब राग की क्रिया है। वहाँ धर्म कहाँ आया? आहाहा!

उसी तरह शुद्ध आत्मा की अनुभूति... भाषा देखो! आहाहा! वह पुण्य के भाव भी अनुभूति से विरुद्ध शत्रु है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा परमेश्वर जिनेश्वरदेव ने कहा, वह आत्मा, हों! अज्ञानी आत्मा कहते हैं, वह (आत्मा) नहीं। वास्तव में तो आत्मा का स्वरूप श्वेताम्बर ने कहा, वैसा भी आत्मा का स्वरूप नहीं है। सर्वज्ञ ने कहा, वह दिगम्बर में यथार्थस्वरूप है। समझ में आया? उसमें भी आत्मा की बहुत गड़बड़ है। प्रदेश में गड़बड़ है, गुण में गड़बड़ है। बहुत गड़बड़ है। खबर है, हमने तो सब देखा है। यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ दिगम्बर धर्म में जो भगवान ने कहा, दिगम्बर सन्त वह कहते हैं। समझ में आया? यह वह सन्त कहते हैं, देखो! योगीन्द्रदेव कहते हैं। दिगम्बर सन्त वनवासी। आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... अतीन्द्रिय आनन्द में झूलनेवाले कहते हैं, **शुद्ध आत्मा की अनुभूति के शत्रु जो काम-क्रोधादि विकल्परूप मेघ...** देखो! रागादि के विकल्प का मेघ—बादल-बादल। आहाहा! समझ में आया? निश्चय से तो गुणी जो आत्मा भगवान है, उसमें अनन्त गुण है, वह गुण-गुणी का भेद करना, वह भी एक विकल्प है, राग है। आहाहा! उस राग से रहित होकर अभेद आत्मा का अनुभव करना। समझ में आया? उसे यहाँ अनुभूति कहते हैं। शुद्ध आत्मा की अनुभूति, शुद्ध आत्मा का अनुभव। आहाहा!

अनुभव चिन्तामणि रत्न, अनुभव है रसकूप;
अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।

नाटक समयसार में यह श्लोक है। समझ में आया? नाटक समयसार तो हमने (संवत्) १९७८ के वर्ष में देखा है। १९७८-७८। कितने वर्ष हुए? ५४ वर्ष पहले। सम्प्रदाय में थे, तब बहुत चर्चा करते थे। लोगों को कुछ बेचारों को खबर नहीं। एक घण्टा मिले, उसमें सामायिक की और प्रौषध किये और माना। धूल भी सामायिक नहीं। तुझे सामायिक कैसी? अभी सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ तुझे सामायिक कहाँ से आयी? और सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है और किस प्रकार प्राप्त होता है, उसकी खबर नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो अनुभूति। भगवानआत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, उसकी अनुभूति। स्वभाव को अनुसरकर परिणति में अनुभूति होना, वह अनुभूति सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है। समझ में आया? अनुभूति के शत्रु रागादि। काम अर्थात् राग और क्रोध

अर्थात् द्वेष। राग-द्वेष के विकल्परूपी मेघ। आहाहा! **उनके नाश होने पर...** अन्दर निर्विकल्प दृष्टि प्रगट करके राग का नाश होता है। आहाहा! विकल्परूप मेघ है। आहाहा! चैतन्यप्रकाश का सूर्य प्रभु, वह विकल्प के जाल में दिखता नहीं। विकल्प के जाल में दिखता नहीं। आहाहा! लो, यहाँ तो व्यवहाररत्नत्रय के भाव हैं, वह विकल्प है। आहाहा! उस विकल्प के जाल में निर्विकल्प परमात्मा नहीं दिखता। तो विकल्प के जाल को छोड़कर अपने भगवान आत्मा की अनुभूति करना, आहाहा! उसमें आत्मा प्रकाशमान दिखता है। उसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

शुद्ध आत्मा की अनुभूति... ऐसा क्यों कहा? अशुद्ध भी है न? रागादि अशुद्ध है, परन्तु वह नहीं। वही तो शुद्ध आत्मा त्रिकाल। पवित्र भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप अन्दर विराजता है। आहाहा! माप करना कैसे आवे? समझे? हम यह दृष्टान्त देते हैं न? रविवार का दिन था। लड़के को अवकाश था। तो इसके पिताजी पचास हाथ आलपाक ले आये। आलपाक कहते हैं न? कपड़ा। बढ़िया कपड़ा। आलपाक ऊँचा कपड़ा आता है। आलपाक नहीं समझते? आलपाक है न? पुरानी फैशन का। अभी नाम क्या है? रेशमी नहीं। आलपाक का रेशम जैसा कपड़ा आता है। यहाँ कहते हैं, पचास हाथ कपड़ा ले आये। पिताजी ने लड़के को कहा, देखो! पचास हाथ लाये हैं। सब लड़कों के कोट बनाने हैं। सर्दी है तो लड़का फुरसत में था और उसने नापा। (वह कहे), पिताजी! तुम्हारी बात झूठी है। यह तो सौ हाथ है। पिताजी कहते हैं, तेरे हाथ मापने के काम में नहीं आते। हमारे व्यापार के काम में जो हाथ हमारे है, वे काम आते हैं, तेरे हाथ काम नहीं आते। इसी प्रकार यहाँ भगवान कहते हैं, यहाँ तेरे कुतर्क काम नहीं आते। यहाँ तो सुबुद्धि अन्दर में काम आती है। अन्दर का माप करने के लिये सुबुद्धि चाहिए। कुबुद्धि—कुतर्क से और अज्ञान से, राग से प्राप्त नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? संसार में ऐसा होता है।

मखमल लो। मखमल आती है न? मखमल का कोट बनाने के लिये पचास हाथ ले आवे। विवाह हो तो लड़कों को सबको मखमल के कोट बनवाने हैं। पचास हाथ ले आये। उसका हाथ तो इतना छोटा होता है। सौ हाथ हो गये। पिताजी! यह तो

सौ हाथ है। तुम पचास हाथ कहते थे न! तुझे खबर नहीं, भाई! तेरे माप काम नहीं आते। इसी प्रकार भगवान की ज्ञान की वाणी के अतिरिक्त, अज्ञानी की वाणी यहाँ काम नहीं करती। समझ में आया? तथा कुतर्क और राग भी वहाँ काम नहीं करते। इसके माप के लिये तो निर्मल परिणति चाहिए। आहाहा! रागरहित निर्मलदशा इसके माप के लिये, आत्मा ऐसा है, ऐसे प्रमाण के लिये निर्मलदशा चाहिए। आहाहा! अब ऐसी बातें। समाज बेचारा कहाँ नीचे, उसे ऐसी बातें, बापू! मार्ग तो यह है, भाई!

जन्म-मरण का अन्त लाने की चीज़ (यह है)। नहीं तो निगोद में और नरक में गया है। आहाहा! तेरे दुःख तूने भोगे परन्तु देखनेवाले रो पड़े। इतने तुझे दुःख थे। भाई! तुझे खबर नहीं। अनन्त काल... अनन्त काल... ओहोहो! माता के गर्भ में सवा नौ महीने लटके। राजकुमार हो तो भी। आहाहा! श्वास लेने का स्थान नहीं। आहाहा! ऐसा अनन्त बार (हुआ)। आहाहा! शास्त्र तो यहाँ तक कहते हैं कि माता के गर्भ में किसी समय उत्कृष्ट रहे तो बारह वर्ष तक रहे। ऐसा शास्त्र में पाठ है। छोड... छोड कहते हैं इसे। यहाँ तो सवा नौ महीने में जन्म हो जाये। न हो तो बारह वर्ष तक गर्भ में रहे, ऐसा शास्त्र में पाठ है। बारह वर्ष जन्म ही न हो। गर्भ की स्थिति शास्त्र में चली है। बारह वर्ष रहे और तुरन्त बारह वर्ष में मर जाये, फिर से वहीं का वहीं बारह वर्ष आवे। ऐसे २४ वर्ष की स्थिति सिद्धान्त में गिनी हैं। गर्भ में रहने की उत्कृष्ट स्थिति चौबीस वर्ष। एक में बारह वर्ष पश्चात् दूसरी बारह वर्ष। आहाहा! यह किस प्रकार व्यतीत किये होंगे? मुँह बन्द। नाक में से श्वास किस प्रकार लेता होगा? आहाहा! आँख खुले नहीं। भूल गया परन्तु ....। यह पीड़ा माता के गर्भ में अनन्त बार (सहन की है)। एक बार बारह वर्ष, दूसरी बार बारह वर्ष। गर्भ की कायस्थिति भगवान ने कही है। ऐसे अनन्त बार चौबीस वर्ष गया है। आहाहा! अनादि काल में अनन्त बार चौबीस वर्ष—दो-दो भव अनन्त बार किये हैं। अनन्त काल गया। अनादि का है। आहाहा! भव के दुःख बिना का काल कब गया? भव... भव... भव... भव... भव... दुःख... दुःख... दुःख... दुःख... अनादि का चलता है। उसका नाश करने का उपाय तो यह एक है। आहाहा!

शुद्ध आत्मा की अनुभूति के शत्रु राग-द्वेषादि विकल्प मेघ। **उनके नाश होने पर...** आहाहा! **निर्मल मनरूपी आकाश में...** देखो! निर्मल ज्ञानरूपी परिणति, वह मन

कहलाता है। निर्मल ज्ञानरूपी दशा में—आकाश में **केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप किरणोंकर...** देखो! सूर्य है, उसे हजार किरण है। यह सूर्य है, उसे हजार किरण है। भगवान आत्मा तो **केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप किरणोंकर...** आहाहा! अनन्त गुण की किरणों से सहित भगवान अन्दर विराजता है। कहीं आत्मा की खबर नहीं होती, आत्मा क्या है? मर गया अनन्त काल में भटक-भटक कर। आहाहा!

अभी तो जैन में जन्मे हों, उन्हें पर की श्रद्धा अभी। महापाप महामिथ्यात्व। शंकर को मानना और ढींकना को मानना और उसको मानना। कैसी कहलाती है? अम्बाजी, साईंबाबा। मूर्खता का कहीं पार है! सब महापाप के सेवन करनेवाले हैं। उन्हें माने वह महापाप। बहुत पाप उपार्जन (करे), पुण्य हो वह जल जाये। आहाहा! साईंबाबा और वह अभी दूसरा कौन सा है? रजनीश। रजनीश... रजनीश। हैदरशाह। यह तो सब पाप के पोटले बाँधनेवाले हैं। हैदरशाही को हमारे मानते थे न? हमारे दुकान में कुंवरजीभाई माननेवाले, हमारे भाई तो न माने। हम दो भागीदार थे, फिर बहियों में लिखे। पहले लिखे न? हैदरशाही हाजरा-हजूर। हमारे पालेज में दुकान थी। खुशालभाई कहे, हमारे यह नहीं होता। हम बहियों में यह नहीं लिखेंगे। फिर निकाल दिया। हैदरशाही। तुम्हारा पिता था न, हैदरशाही को रोटियाँ नहीं मिलती थीं। हैदरशाही नहीं था तब? उसका पिता जादवजी, साधारण फेरी करते, लो। यह गांडाभाई के पिता। फूलचन्द थे, वे फेरी करते थे। अब उनका लड़का अभी है। फावाभाई का। सूरत में साठ लाख। उसमें क्या है? वह तो पुण्य हो तो आवे, न हो, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? हैदरशाह देता है? हैदरशाही के पास रोटियाँ भी नहीं थीं।

मुमुक्षु : हैदरशाही कौन?

पूज्य गुरुदेवश्री : हैदरशाही एक फकीर थे। हमारे कुंवरजीभाई परिवारी है न, वे सब हैदरशाही को माननेवाले। अब छोड़ दिया। एक फकीर थे। वह फकीर बेचारा नरकगामी होगा, माँस खानेवाला। यहाँ पालीताणा में है। है न वहाँ, हम एक बार गये थे। वहाँ विवाह था। वहाँ पालीताणा में हैदरशाही में मैंने आहार किया था। क्योंकि विवाह था और मैं साथ में गया था। कहा, देखो! मैं रात्रि में आहार नहीं करूँगा। तुम्हारी बारात... जान समझे न? बारात। बारात के सामने आयेंगे, देरी लगेगी, मैं रात्रि

में आहार नहीं करूँगा। मुझे रात्रि में आहार का त्याग है। यह तो (संवत्) १९६९ की बात है। १९७० में दीक्षा है। उसके एक वर्ष पहले (की बात है)। उस हैदरशाही में हम उतरे थे। हमारे हरगोविन्दभाई का विवाह था। कुंवरजीभाई के भाई, उनके विवाह में मैं साथ में गया था। दुकान छोड़कर... वहाँ देरी हो उन लोगों को। कहा, मैं रात्रि में आहार नहीं लूँगा और पानी नहीं। फिर वहीं के वहीं लड्डू थे, खाकर चोविहार कर लिया। हम हैदरशाही के उसमें ही बैठे थे। उसमें मूढ बड़े। वह मरकर कहाँ गया होगा बेचारा। भटकता होगा कहीं नरक और पशु में। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा तीन लोक का नाथ तीर्थंकर को माने तो वह शुभराग है। और उस राग में धर्म माने तो मिथ्यात्व है। ऐई! ऐसी बात है, भाई! वस्तु तो यह है। यह तो यहाँ कहते हैं। जिसे राग का प्रेम है, उसे आत्मा का प्रेम नहीं होता। मलिन चित्त में निर्मल आत्मा नहीं दिखता। आहाहा! अरे! यह बात, बापू! अनन्त काल में चौरासी के अवतार में मर गया। सम्प्रदाय में तो यह बातें भी नहीं। यह क्रिया करो और यह करो और यह करो, बस। आहाहा! स्थानकवासी में यह, यह व्रत करो और सामायिक करो और प्रौषध करो। अज्ञान है, सब राग। इन श्वेताम्बर में यात्रा करो, शत्रुंजय की और सम्मेदशिखर की। दिगम्बर में वस्त्र घटा दो न यह।

मुमुक्षु : परिपाटी....

पूज्य गुरुदेवश्री : परिपाटी ऐसी चली है। नहीं, सौ वर्ष पहले तो अच्छा था। दो सौ वर्ष में सब बदल गया। दो सौ वर्ष पहले तो बहुत... निकलते हैं। दो सौ वर्ष पहले। यह टोडरमलजी, बनारसीदास, उस समय तो बहुत प्रचार था। बनारसीदास नाटक समयसार में तो ऐसा लिखा है, घर-घर समयसार कथा बखाणी, ऐसा लिखा है। समयसार नाटक घर-घर में। बनारसीदास बहुत जोरदार पुरुष हो गये हैं। पहले शृंगारी थे, व्यभिचारी। बाद में उन्हें आत्मज्ञान हुआ।

मुमुक्षु : शृंगाररस प्रिय था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शृंगाररस। पुस्तक बनायी थी। सैकड़ों पुस्तक (गीत) बनायी। फिर यह जहाँ भान हुआ, पश्चात् वह पुस्तक गंगा में डाल दी। सब गंगा में

(डाल दिये)। विकथा है, पाप। आहाहा! आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु... (पद) बनाया न? 'चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो', चेतनरूप—मैं तो चैतन्यरूप ज्ञायकभाव। 'चेतनरूप अनूप...' मेरी चीज़ को किसी की उपमा नहीं। 'चेतनरूप अनूप अमूरत' अमूरत। मूर्त—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, उसमें है ही नहीं। वह तो भगवान चैतन्य अरूपी आत्मा है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो। मोह महातम आतम अंग कियो परसंग महातम घेरो, ज्ञानकला उपजी अब मौकूं, कहुँ गुण नाटक आगम केरो।' अब मैं नाटक समयसार कहूँगा। 'मोह महातम...' प्रभु ऐसा था, मोह के माहात्म्य के कारण पर की प्रीति की। राग के प्रेम और प्रीति में चला गया। आहाहा! ऐसे भगवान को मैं भूल गया। 'मोह महातम आतमअंग कियो परसंग' मैंने राग का संग किया। 'महातम घेरो' अज्ञानरूपी का अन्दर घेरा डाला है।

अब, 'ज्ञानकला उपजी अब मौकूं, कहुं गुण नाटक आगम केरो।' आहाहा! 'कहूं गुण नाटक आगम केरो, तासु प्रसाद सधे शिव मारग।' उस प्रसाद से शिवमार्ग—अन्तर के आनन्द का मार्ग सधेगा। 'वेगे मिटे घट वास बसेरो...' घट अर्थात् शरीर में बसना मिट जायेगा। मैं परमात्मा सिद्धपद को प्राप्त होऊँगा। मैं समयसार नाटक कहूँगा। जिसमें शरीररहित हुआ जाये, वह बात है हमारे पास तो। समझ में आया? आहाहा!

मरते हुए सहज रोग आया। थोड़ बोल सकते थे। लोगों ने वहम डाला—वहम किया कि पण्डितजी का मन—जीव कहीं रुक गया है, इसलिए निकलता नहीं। अटका है, ऐसा लोग बोले। स्वयं सुने, बोल सकते नहीं। इन पण्डितजी का जीव क्यों निकलता नहीं? रोग बहुत आ गया, जीव नहीं निकलता था, देह नहीं छूटती थी तो कहीं जीव अटक गया है। स्वयं बोल सकते नहीं। फिर स्लेट मँगायी। स्लेट समझे? पाटी। 'ज्ञान कुतक्का हाथ, मारे मोह ना।' मैंने ज्ञान कुतक हाथ में लिया है। क्या कहलाता है? बरछी। बरछी होती है न? 'ज्ञान कुतक्का हाथ, मारि अरि मोहना' मोह—अरि को मैंने मार दिया है। 'चले बनारसीदास, फेर नहिं आवना।' ऐसे संयोग में अब मैं अवतरित नहीं होऊँगा। ऐसे संयोग कैसे? भान बिना के बैठे हैं। गृहस्थाश्रम में आत्मा के भानसहित देह छूट गया। स्वर्ग में चले गये। आहाहा! समझ में आया? उसमें क्या? आत्मज्ञान है, वह तो अलौकिक चीज़ है। सम्यग्दर्शन अर्थात् जन्म-मरण के अन्त। आहाहा!

यहाँ शुद्ध आत्मा की अनुभूति... आहाहा! उसके शत्रु जो काम, क्रोधादि विकल्प-मेघ। आहाहा! चाहे तो वह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के विकल्प हों, परन्तु वह अनुभूति के शत्रु हैं। आहाहा! समझ में आया? यह मेघ **उनके नाश होने पर निर्मल मनरूपी आकाश में...** ज्ञान की निर्मल परिणति में **केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप...** अनन्त गुण आत्मा में हैं। आहाहा! यह कहा था न? आकाश के जितने अनन्त प्रदेश हैं, आहाहा! छह महीने आठ समय में ६०८ जीव मुक्ति पाते हैं। सिद्ध... सिद्ध... सिद्ध (होते हैं)। छह महीने और आठ समय। बहुत थोड़ा समय। 'क' बोलने में असंख्य समय जाते हैं। छह महीने और आठ समय में भगवान केवली ने सिद्धान्त लिखा है कि ६०८ जीव मोक्ष में जाते हैं। छह महीने और आठ समय में मनुष्यक्षेत्र में से ४५ लाख योजन में से ६०८ मुक्ति को प्राप्त होते हैं। तो अभी तक कितने सिद्ध हुए? अनन्त काल हुआ न! इस अनन्त काल के सिद्ध की संख्या से लहसुन का इतना एक टुकड़ा लो, उसमें असंख्य शरीर हैं और एक शरीर में उन सिद्ध से अनन्तगुणे जीव हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : अनन्त काल बाद भी....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा अनादि से है, उसमें नया कहाँ है? अनन्त काल जायेगा तो भी सिद्ध की संख्या से अनन्त गुणे जीव एक शरीर में रहेंगे। आहा! ऐसे-ऐसे तो असंख्य शरीर लोक में पड़े हैं। सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! यहाँ निगोद पड़े हैं। असंख्य शरीर निगोदिया यहाँ पड़े हैं, हों! यहाँ यह खाली दिखता है, परन्तु यहाँ भरे हैं। निगोद के जीव हैं। आहाहा! यहाँ तो इतने में असंख्य शरीर हैं। ऐसे पूरे लोक में (भरे हैं)। एक शरीर में सिद्ध से अनन्तगुणे जीव। उन जीवों से अनन्त गुणे परमाणु हैं। एक जीव के सामने अनन्त परमाणु हैं, ऐसे अनन्त जीव से अनन्तगुणे परमाणु हैं—पुद्गल। और पुद्गल से अनन्तगुणे तीन काल के समय हैं। भूतकाल और भविष्यकाल। एक समय अर्थात् एक सेकेण्ड में असंख्य समय जाते हैं। ऐसे तीन काल के समय। वह परमाणु की संख्या से अनन्तगुणे हैं। और उनसे अनन्तगुणे आकाश के प्रदेश हैं। सर्वव्यापक आकाश है न? अनन्तगुणे प्रदेश हैं। उससे अनन्तगुणे एक जीव में गुण हैं। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं, देखो!

मनरूपी आकाश में केवलज्ञानादि अनन्तगुणरूप किरणोंकर... आहाहा! अरे..!

उसने आत्मा सुना नहीं। खबर नहीं, क्या चीज़ है। मर गया कर-करके बाहर में। धर्म के नाम से भी बाह्य की क्रियाकाण्ड करके मर गया अनन्त बार। उसमें क्या? मिथ्यात्वसहित कोई पापानुबन्धी पुण्य बाँधे। आहाहा!

मुमुक्षु : समझने को मिला।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए कहते हैं न कि अब शीघ्र समझ लो, नहीं तो देह छूट जायेगी। उसकी अवधि है वही रहेगी, एक समय नहीं बढ़ेगी। जो देह की स्थिति छूटने का काल है, उतना ही काल है। भगवान ने देखा है कि इस समय में देह छूटेगी। जितने समय जाते हैं, वे उसके समीप जाते हैं। मृत्यु के समीप जाते हैं। आहाहा!

एक व्यक्ति का नहीं कहा था? बेचारे का मलकापुर। मलकापुर नहीं? एक जवान लड़का था। २८ वर्ष का। मित्र साथ में था २८ वर्ष का। जवान लड़का। कुछ नहीं, रोग नहीं, नख में नहीं। बातें करते थे। वह यहाँ अपने कहते थे। कौन लड़का? मलकापुर का। वह कोई कहता था। यहाँ कहता था। यहाँ तो बहुत आते हैं न! एक व्यक्ति कहे, वह मेरे साथ बैठा था। बात करते थे। कोई रोग नहीं। बस, इतना हुआ। देह छूट गयी। २८ वर्ष का जवान। फू... इतना हुआ, बस। मैं तो देखता रह गया, अरे! यह क्या हुआ? मुर्दा। क्षण में देह की स्थिति पूरी होने में क्या है? आहा! ग्रास खाते-खाते ऐसे देह छूट जाये। देहस्थिति बहुतों की छूट गयी। बहुतों की छूटती है। अपने वहाँ राजकोट में नहीं? भाई! वह था। लड्डू बाँधते-बाँधते देह छूट गयी। आहाहा! श्वास कब रुक जाये? आहाहा!

भगवान! तेरी अनुभूति करने की चीज़ ऐसी है न, नाथ! आहाहा! भगवान अनन्तगुणरूप **किरणोंकर सहित निज शुद्धात्मारूपी सूर्य प्रकाश करता है।** अन्दर। परन्तु पुण्य-पाप का प्रेम छोड़कर, व्यवहार क्रियाकाण्ड का भी प्रेम / रुचि छोड़कर, उस ओर की दिशा बदल करके, आहाहा! अन्तर में निर्मल मतिज्ञान से देखे तो अनन्त गुणरूप किरणों से सूर्य प्रकाशमान है। आहाहा! चैतन्यसूर्य भगवान अन्दर कैसे बैठे? बीड़ी बिना चले नहीं। दो बीड़ी, सिगरेट पीवे तो भाई को पाखाने में दस्त उतरे। यह सिगरेट पीते हैं न? भाई! ऐसे पीवे। दो अँगुली के बीच में। कोई ऐसे करे और कोई ऐसे करे। और उसमें भी... वे अंग्रेज लोग तो सदा इतनी बड़ी मुँह में रखे। मुँह में

रखकर बातें करे। मूर्ख ऐसे। बीड़ी हो सफेद लम्बी। सिगरेट। बहुत देखा। अपने तो अंग्रेज थे न। आहाहा! ऐसे अपलक्षण हों, उसे कहना कि तीन लोक का नाथ आत्मा तू है, प्रभु! आहाहा! किस माप से माप निकाले? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : आप तो सबकी नकल उतारते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमने तो सब देखा है न! हमने तो जिन्दगी में बीड़ी पी नहीं, हों! पूरी जिन्दगी में नहीं। एक बार जरा विद्यालय में पढ़ने जाते थे, दूसरा लड़का पीता था। वह तो दस-बारह वर्ष की उम्र की बात है। ७५ वर्ष पहले। तो ऐसे सहज (देखा) क्या है? फिर कभी जिन्दगी में बीड़ी पी नहीं। छींकणी किसी बार सुंघी हो। छींकणी आती है न? किसी समय। जुकाम आदि होवे तो। बन्धन नहीं। किसी समय जुकाम होवे तब। वह भी थोड़ी। आहाहा!

यहाँ तो तीन लोक का नाथ परमात्मा सच्चिदानन्द प्रभु सर्वज्ञ परमेश्वर ने—केवली ने देखा। ऐसा आत्मा अन्दर विराजता है, नाथ! तू उस ओर नजर तो कर। आहाहा! उसे पीठ देकर बैठा है। पीठ समझे? पुठ देकर। राग के प्रेमी उसे (आत्मा को) पीठ देकर बैठे हैं। आहाहा! भगवान आत्मा, राग का प्रेम छोड़, प्रभु! एक बार तेरी अनुभूति कर। तेरे जन्म-मरण मिट जायेंगे। तेरा भवभ्रमण टल जायेगा। आहाहा! तुझे परमात्मा सिद्धपद प्राप्त होगा। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो यह बात है। यह सब पैसेवाले की बातें करते हैं परन्तु वह तो दूसरे का मान उतारने के लिये जरा। उसमें धूल में भी कुछ नहीं। आहाहा!

यह ११९ गाथा हुई। १२०।

गाथा - १२०

अथ यथा मलिने दर्पणे रूपं न दृश्यते तथा रागादिमलिनचित्ते शुद्धात्मस्वरूपं न दृश्यत इति निरूपयति –

१२०) राएँ रंगिए हियवडए देउ ण दीसइ संतु।
दप्पणि मइलए बिंबु जिम एहउ जाणि णिभंतु।।१२०।।

रागेन रञ्जिते हृदये देवः न दृश्यते शान्तः।
दर्पणे मलिने बिम्बं यथा एतत् जानीहि निर्भ्रान्तम्।।१२०।।

राएं इत्यादि। राएं रंगिए हियवडए रागेन रञ्जिते हृदये देउ ण दीसइ देवो न दृश्यते।किंविशिष्टः संतु शान्तो रागादिरहितः। दृष्टांतमाह। दप्पणि मइलए दर्पणे मलिने बिंबु जिम बिम्बं यथा एहउ एतत् जाणि जानीहि हे प्रभाकरभट्ट णिभंतु निर्भ्रान्तं यथा भवतीति। अयमत्राभिप्रायः। यथा मेघपटलप्रच्छादितो विद्यमानोऽपि सहस्त्रकरो न दृश्यते तथा केवलज्ञानकिरणैर्लोकालोकप्रकाशकोऽपि कामक्रोधादिविकल्पमेघप्रच्छादितः सन् देहमध्ये शक्तिरूपेण विद्यमानोऽपि निजशुद्धात्मा दिनकरो न दृश्यते इति।।१२०।।

आगे जैसे मैले दर्पण में रूप नहीं दीखता, उसी तरह रागादिकर मलिन चित्त में शुद्धआत्मस्वरूप नहीं दिखता, ऐसा कहते हैं –

जैसे मलिन मुकुर में रूप न दिखता, वैसे शाश्वत् देव–
दिखे नहीं त्यों राग रंग में रंगे हृदय में निःसन्देह।।१२०।।

अन्वयार्थ :– [रागेन रंजिते] रागकरके रंजित [हृदये] मन में [शांतः देवः] रागादि रहित आत्म देव [न दृश्यते] नहीं दीखता, [यथा] जैसे कि [मलिने दर्पणे] मैले दर्पण में [बिंबं] मुख नहीं भासता [एतत्] यह बात हे प्रभाकर भट्ट, तू [निर्भ्रान्तम्] संदेह रहित [जानीहि] जान।

भावार्थ :– ऐसा श्री योगीन्द्राचार्य ने उपदेश दिया है कि जैसे सहस्त्र किरणों से शोभित सूर्य आकाश में प्रत्यक्ष दिखता है, लेकिन मेघसमूहकर ढँका हुआ नहीं दिखता, उसी तरह केवलज्ञानादि अनंतगुणरूप किरणोंकर लोक–अलोक का प्रकाशनेवाला भी इस देह (घट) के बीच में शक्तिरूप से विद्यमान निज शुद्धात्मस्वरूप (परमज्योति

चिद्रूप) सूर्य काम-क्रोधादि राग-द्वेष भावोंस्वरूप विकल्प-जालरूप मेघ से ढँका हुआ नहीं दिखता।।१२०।।

गाथा-१२० पर प्रवचन

आगे जैसे मैले दर्पण में रूप नहीं दिखता,... दर्पण होता है न? दर्पण। मलिन होता है, उसमें मुख नहीं दिखता। **रूप नहीं दिखता, उसी तरह रागादिकर मलिन चित्त में शुद्ध आत्मस्वरूप नहीं दिखता...** आहाहा! दूसरा दृष्टान्त दिया। पहले में मेघ का दिया, अब यहाँ मलिन दर्पण का दिया। आहाहा! १२०।

१२०) राएँ रंगिए हियवडए देउ ण दीसइ संतु।
दप्पणि मइलए बिंबु जिम एहउ जाणि णिभंतु॥१२०॥

आहाहा! **अन्वयार्थः—रागकरके रंजित मन में...** '**हृदये**' जिसे राग का प्रेम है। चाहे तो शुभराग हो। आहाहा! उसके मन में '**शांतः देवः**' रागादि रहित आत्मदेव। शान्त अर्थात् रागादि रहित। ऐसा, विकल्प रहित शान्त... शान्त... अकषाय स्वभाव। आहाहा! ऐसे **रागादि रहित आत्म देव नहीं दीखता...** है? '**शांतः देवः**' कौन? यह देव, हों! '**शांतः देवः**' अकषायरस उपशमरस का कन्द प्रभु आत्मा है। आहाहा! राग है, वह मलिन है और रागरहित परमात्मा अन्दर आत्मा, वह तो निर्मल भगवान आत्मा है। शान्त... शान्त... शान्त... आहाहा! भजन में नहीं आता? 'उपशमरस वरसे रे प्रभु तारा नयनमां, उपशमरस वरसे रे प्रभु तारा नयनमां' यह उपशमरस का कन्द प्रभु आत्मा है। आहाहा! अरे! कभी सुना नहीं। ढोर की तरह अवतार। समझ में आया? आहाहा!

'मनुष्या स्वरूपे मृगा चरंति।' ऐसा आता है। मनुष्य के रूप में मृग—हिरण है। आहाहा! जिसे आत्मा की खोज नहीं। वह आत्मा अन्दर रागरहित है, उसका नाम खोज कहलाती है। समझ में आया? श्रद्धा में भी यह नहीं। श्रद्धा में ऐसा है कि राग करो, व्यवहार करो, उससे होता है। मिथ्याश्रद्धा है। प्ररूपणा मिथ्या है, वह धर्मकथा नहीं, वह तो विकथा है।

मुमुक्षु : बाप-दादा ने....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाप-दादा साफा बाँधते थे। अब तुम साफा छोड़कर टोपी पहनते हो, वह कैसे करने लगा? नहीं? मांगीलाल! तुम यह टोपी पहनने लगे। अब बहुतों ने टोपी निकाल डाली है। बाप-दादा करे, इसलिए करना, ऐसा कुछ है? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि, '**रागेन रंजिते**' है न? राग से रंजित जिसका हृदय है। आहाहा! भगवान वीतरागमूर्ति आनन्द का नाथ प्रभु अन्दर है। आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर जो वीतराग होते हैं, वे कहाँ से हुए? बाहर से चीज़ आती है? अन्दर में वीतरागता है, उसमें से वीतरागता आयी है। आहाहा! समझ में आया? अनन्त आनन्द प्रभु को प्रगट हुआ। वह अनन्त आनन्द कहाँ से आया? बाहर से आया है? अनन्त आनन्द का कन्द प्रभु है, उसमें से अनन्त आनन्द का प्रवाह आया है। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा को राग से रंजित है, वे ऐसे आत्मा को देख नहीं सकते। '**शांतः देवः**' ऐसा शब्द लिया है। आहाहा! यह आत्मा, हों! '**शांतः देवः**' अकषाय शान्तदेव प्रभु! आहाहा! दिव्यशक्ति जिसकी। शान्त... शान्त... शान्त उपशमरस है। आहाहा! ऐसा '**शांतः देवः**' दिखता नहीं। **जैसे कि मैले दर्पण में मुख नहीं भासता, यह बात हे प्रभाकर भट्ट! तू सन्देह रहित जान।** गुरु शिष्य को (कहते हैं), निःसन्देह जान। मलिन दर्पण में मुख नहीं दिखता, इसी प्रकार मलिन परिणाम में आत्मा नहीं दिखता। आहाहा! निःसन्देह जान। सन्देह छोड़ दे कि ऐसा होगा? व्यवहार करूँगा शुभराग, तो उससे होगा। यह छोड़ दे। यह मिथ्याभ्रान्ति छोड़ दे। निःसन्देह तुझे राग से रहित स्वरूप प्राप्त होगा। आहाहा! बातें बड़ी। परमात्मप्रकाश ने तो गजब काम किया है!

भावार्थः—ऐसा श्री योगीन्द्राचार्य ने उपदेश दिया है... है? **जैसे सहस्त्र किरणों से शोभित सूर्य आकाश में प्रत्यक्ष दिखता है,...** हजार किरणों से शोभित सूर्य आकाश में दिखता है। **लेकिन मेघसमूहकर ढँका हुआ नहीं दिखता...** समझ में आया? **उसी तरह केवलज्ञानादि अनन्तगुणरूप किरणोंकर लोक-अलोक का प्रकाशनेवाला...** भगवान तो लोकालोक को जानने की शक्तिवाला आत्मा तो है। आहाहा! **इस देह (घट) के बीच में...** इस देह के बीच भगवान अन्दर विराजता है। कैसे जँचे? आहाहा! समझ में आया? शकरकन्द का दृष्टान्त नहीं दिया था? शकरकन्द। शकरकन्द। उसकी

लाल छाल है, उसके अतिरिक्त तो शकरकन्द ही है। शक्कर की मिठास का पिण्ड है। शक्कर। यह बाफकर खाते हैं न? वह लाल छाल है, उससे भिन्न जो वस्तु है, वह शकरकन्द है। शक्कर अर्थात् चीनी की मिठास का पिण्ड है। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा, एक-एक शकरकन्द ऐसा है, वैसे एक-एक आत्मा ऐसा है। पुण्य-पाप के विकल्प की छाल न देखो और अन्तर में देखो तो आनन्द का कन्द प्रभु है वह तो। आहाहा! अरे! इसे कैसे खबर पड़े? समझ में आया? कहो, भगवानजीभाई! यह तुम्हारे करोड़पति की कीमत कुछ नहीं रही। परन्तु हम करोड़पति तो हैं, ऐसा? आहाहा!

यहाँ तो आत्मा की कीमत से कीमत है, धूल की कोई कीमत नहीं। करोड़ोंपति, अरबोंपति सब भिखारी हैं। निजलक्ष्मी की खबर नहीं और परलक्ष्मी के प्रेमी, वे सब भिखारी हैं। ऐ... पोपटभाई! भिखारी? पोपटभाई भी ऐसे? यह सब करोड़पति हैं। ये दो करोड़ और वह करोड़ और यह करोड़ और ऐसे सेठिया हैं। आहाहा! धूल में भी नहीं अब वहाँ। महाआनन्द का नाथ अन्दर विराजता है, उसकी तो तुझे खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? भैंस का स्वामी पाड़ा होता है। उसी प्रकार करोड़पति पैसे जड़, उसका पति वह जड़ है। ऐई! कैलाशचन्दजी! हमारे पास तो यह है, भगवान! करोड़पति कहते हैं न? अथवा पत्नी का पति अथवा नरपति, नरपति। मनुष्य का पति? भैंस का पति भैंसा होता है, वैसे जड़ का पति जड़ होता है। आहाहा! अन्तर में स्वस्वामीसम्बन्धरूपी लक्ष्मी पड़ी है, स्वस्वामी का सम्बन्ध वह आत्मा है। आहाहा! समकिती तो राग का भी स्वामी नहीं, पर का तो स्वामी नहीं ही। आहाहा! समझ में आया? समकिती भले गृहस्थाश्रम में हो। वह राग का स्वामी नहीं है। समझ में आया? अपनी शुद्ध चैतन्यमूर्ति का वह स्वामी है। आहाहा! अरेरे!

इस देह (घट) के बीच में शक्तिरूप से विद्यमान निज शुद्धात्मस्वरूप... देखो! भगवान शक्तिरूप से है, व्यक्तता केवलज्ञान में होगी, तब होगी। शक्तिरूप से अन्दर परमात्मा विराजते हैं, फिर उसका ऐनलार्ज होता है, तब केवलज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **शक्तिरूप से विद्यमान...** विद्यमान अर्थात् शक्तिरूप है, ऐसा। **निज शुद्धात्मस्वरूप (परमज्योति चिद्रूप) सूर्य काम-क्रोधादि राग-द्वेष भावोंस्वरूप विकल्प-जलरूप मेघ से ढंका हुआ नहीं दिखता।** आहाहा! उसे तो इस

दर्पण में मलिनता है, इसलिए नहीं दिखता। सूर्य को बदल हो तो नहीं दिखता; इसी प्रकार भगवान विकल्प के जाल में रुकने से वह नहीं दिखता। आहाहा! समझ में आया? यह तो सूक्ष्म बात है, बापू! अपूर्व बात है। पूर्व में कभी नहीं किया। इसलिए जरा समझने में भी कठिन पड़ती है। करना तो कठिन है, परन्तु क्या कहते हैं यह? ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान। कौन सा ज्ञान? यह शास्त्र का ज्ञान? बाहर का ज्ञान? यह ज्ञानस्वरूपी प्रभु है, उसका ज्ञान। समझ में आया? इस ज्ञान में भगवान अनन्तगुणकर विराजमान सूर्य प्रकाशमान दिखता है, उसका नाम सम्यग्दर्शन और अनुभूति कहलाती है। जन्म-मरण का अन्त लाने की यह चीज़ है, बाकी सब थोथा है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १२१

अथानन्तरं विषयासक्तानां परमात्मा न दृश्यत इति दर्शयति –

१२१) जसु हरिणच्छी हियवडए तसु णवि बंभु वियारि।
ऐक्कहिं केम समंति वढ बे खंडा पडियारि।।१२१।।

यस्य हरिणाक्षी हृदये तस्य नैव ब्रह्म विचारय।
एकस्मिन् कथं समायातौ वत्स द्वौ खंडौ प्रत्याकारे (?)।।१२१।।

जसु इत्यादि। जसु यस्य पुरुषस्य हरिणच्छि हरिणाक्षी स्त्री हियवडए हृदये वसतीति क्रियाध्याहारः, तसु तस्य णवि नैवास्ति। कोऽसौ। बंभु ब्रह्मशब्दवाच्यो निजपरमात्मा वियारी एवं विचारय त्वं हे प्रभाकरभट्ट। अत्रार्थे दृष्टांतमाह। एक्कहिं केम एकस्मिन् कथं समंति सम्यग्मिमाते सम्यगवकाशं कथं लभेते वढ बत बे खंडा द्वो खड्गौ असी। क्वाधिकरणभूते। पडियारी प्रतिकारे (?) कोशशब्दवाच्ये इति। तथाहि। वीतरागनिर्विकल्पपरमसमाधि–संजातानाकुलत्वलक्षणपरमानन्दसुखामृतप्रतिबन्धकैराकुलत्वोत्पादकैः स्त्रीरूपावलोकनचिन्तादि–समुत्पन्नहावभावविभ्रमविलासविकल्पजालैर्मूर्च्छिते वासिते रञ्जिते परिणते चित्ते त्वेकस्मिन् प्रतिहारे (?) खड्गद्वयवत्परमब्रह्मशब्दवाच्यनिजशुद्धात्मा कथमवकाशं लभते न कथमपीति भावार्थः। हावभावविभ्रमविलासलक्षणं कथ्यते। 'हावो मुखविकारः स्याद्भावश्चित्तोत्थ उच्यते। विलासो नेत्रजो ज्ञेयो विभ्रमो भ्रूयुगान्तयोः।।'।।१२१।।

आगे जो विषयों में लीन हैं, उनको परमात्मा का दर्शन नहीं होता, ऐसा दिखलाते हैं –

नारी जिसके उर में बसती उसे ब्रह्म नहिं दिख सकता।
एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकें–यह सोचो।।१२१।।

अन्वयार्थ :– [यस्य हृदये] जिस पुरुष के चित्त में [हरियाक्षी] मृग के समान नेत्रवाली स्त्री [वसति] बस रही है [तस्य] उसके [ब्रह्म] अपना शुद्धात्मा [नैव] नहीं है, अर्थात् उसके शुद्धात्मा का विचार नहीं होता, ऐसा हे प्रभाकर भट्ट, तू अपने मन में [विचारय] विचार कर। बड़े बत खेद की बात है कि [इकस्मिन्] एक [प्रतिकारे] म्यान में [द्वौ खड्गो] दो तलवारें [कथं समायातौ] कैसे आ सकती हैं? कभी नहीं समा सकतीं।

भावार्थ :– वीतरागनिर्विकल्पसमाधिकर उत्पन्न हुआ अनाकुलतारूप परम आनंद अतीन्द्रिय–सुखरूप अमृत है, उसके रोकनेवाले तथा आकुलता को उत्पन्न करनेवाले जो स्त्रीरूप के देखने की अभिलाषादि से उत्पन्न हुए हाव (सुख–विकार) भाव अर्थात् चित्तका विकार, विभ्रम अर्थात् मुँह का टेढ़ा करना, विलास अर्थात् नेत्रों के कटाक्ष इन स्वरूप विकल्पजालोंकर, मूर्छित रंजित परिणाम चित्त में ब्रह्म का (निज शुद्धात्माका) रहना कैसे हो सकता है ? जैसे कि एक म्यान में दो तलवारें कैसे आ सकती हैं ? नहीं आ सकतीं। उसी तरह एक चित्त में ब्रह्म–विद्या और विषय–विनोद ये दोनों नहीं समा सकते। जहाँ ब्रह्म–विचार हे, वहाँ विषय–विकार नहीं है, जहाँ विषय–विकार हैं वहाँ ब्रह्म–विचार नहीं है। इन दोनों में आपस में विरोध है। हाव भाव विभ्रम विलास इन चारों का लक्षण दूसरी जगह भी कहा है। 'हावो मुखविकारः' इत्यादि, उसका अर्थ ऊपर कर चुके हैं, इससे दूसरी बार नहीं करा।।१२१।।

वीर संवत् २५०२, भाद्र कृष्ण ९, शुक्रवार
दिनांक-१७-०९-१९७६, गाथा-१२१, १२२, प्रवचन-९२

परमात्मप्रकाश, १२१ गाथा। **आगे जो विषयों में लीन है, उनको परमात्मा का दर्शन नहीं होता,...** परमात्मा अर्थात् यह आत्मा, हों! जिसके हृदय में विषय के प्रेम की रुचि है, उसे आत्मा के दर्शन नहीं होते। ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? १२१।

१२१) जसु हरिणच्छी हियवडए तसु णवि बंभु वियारि।
ऐक्कहिँ केम समंति वढ बे खंडा पडियारि॥१२१॥

अन्वयार्थः—जिस पुरुष के चित्त में मृग के समान नेत्रवाली स्त्री बस रही है... आहाहा! जिसके चित्त में मृगांक्षी स्त्री बस रही है, उसे भगवान परमात्मा के दर्शन कैसे होंगे? यह आत्मा, हों! आहाहा! ऐसा कहते हैं कि जिसे सुन्दर स्त्री देखकर आकर्षण हो जाता है, और उस विकल्प के जाल में पड़ता है, उसे निर्विकल्प परमात्मा अपना स्वरूप कैसे नजर में आवे? आहाहा! समझ में आया? ब्रह्मविद्या और विषयविनोद एक स्थान में किस प्रकार रहे? ब्रह्मविद्या अर्थात् भगवान आत्मा के आनन्द की

विद्या—आत्मज्ञान और विषयविनोद। एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकतीं। आहाहा! समझ में आया?

जिस पुरुष के चित्त में... हृदय है न? **'यस्य हृदये हरियाक्षी' मृग के समान नेत्रवाली स्त्री बस रही है, उसके अपना शुद्धात्मा नहीं है, अर्थात् उसके शुद्धात्मा का विचार नहीं होता,...** आहाहा! स्त्री के सुन्दर वेश आदि को देखकर जिसे अन्तर रुचि और रस पड़ता है, उसे भगवान अन्दर दर्शन नहीं देता। उसे आत्मा का दर्शन नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? **उसके शुद्धात्मा का विचार नहीं होता, ऐसा हे प्रभाकर भट्ट! तू अपने में विचार कर।** आहाहा!

बड़े खेद की बात है... आचार्य कहते हैं। आहाहा! **एक म्यान में दो तलवारें कैसे आ सकती हैं?** म्यान एक और तलवारें दो, किस प्रकार रहे? आहाहा! जिसे स्त्री के विषय का अन्दर प्रेम है, आसक्ति अलग चीज़ है। यह तो प्रेम—रुचि की बात है। समझ में आया? आसक्ति तो समकिती को भी होती है। वह आसक्ति अलग और रुचि अलग (वस्तु है)। समझ में आया? आहाहा! भरत चक्रवर्ती। ९६ हजार स्त्रियाँ थीं, परन्तु मन में उनकी रुचि का प्रेम नहीं है। रुचि का प्रेम नहीं। रुचि नहीं, रुचि नहीं, रुचि नहीं। आहाहा! आसक्ति हो। अव्रत भाव, परन्तु अन्दर उसकी रुचि नहीं, प्रेम नहीं होता। आहाहा! **हे प्रभाकर भट्ट! तू अपने मन में विचार कर। बड़े खेद की बात है एक म्यान में दो तलवारें कैसे आ सकती हैं? कभी नहीं समा सकती।** आहाहा! अब विस्तार करते हैं।

भावार्थः—वीतरागनिर्विकल्प (परम) समाधिकर उत्पन्न हुआ... आहाहा! अन्तर में आनन्दस्वरूप भगवान उत्पन्न होता है। आहाहा! रागरहित निर्विकल्प अभेद और परम शान्तिकर **उत्पन्न हुआ अनाकुलतारूप परम आनन्द...** आहाहा! **अतीन्द्रिय-सुखरूप अमृत है,...** अपना अतीन्द्रिय आनन्द के अमृतरूपी स्वाद आया। आहाहा! **उसके रोकनेवाले...** ऐसे आनन्द के अमृत के स्वाद को रोकनेवाले... आहाहा! **आकुलता को उत्पन्न करनेवाले जो स्त्रीरूप के देखने की अभिलाषा से उत्पन्न हुआ...** सुन्दर स्त्री देखने की अभिलाषा। आहाहा! यह बात है, हों! प्रेम से देखने की इच्छा। आहाहा! तो भगवान आनन्द के नाथ का उसे प्रेम रहा नहीं। विषय छोड़ता है, इसलिए स्त्री की रुचि

चली गयी, ऐसा नहीं है। प्रेम जहाँ है, राग का रस है, वह परविषय में रस है, रुचि है, उसका विषय का रस गया नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? स्त्री का त्याग किया हो, बालब्रह्मचारी हो परन्तु अन्दर में राग का प्रेम, रुचि है तो अन्दर में परविषय का प्रेम, रुचि है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है। आहाहा!

श्रीमद् राजचनद्र १६ वर्ष में मोक्षमाळा में कहते हैं न?

जो नव वाड विशुद्ध से, धरे शील सुखदायी,
भव उसका लव फिर रहे, तत्त्ववचन यह भाई।

श्रीमद् राजचन्द्र हो गये हैं। सोलह वर्ष की उम्र। शरीर की उम्र है न? आत्मा तो अनादि अनन्त है। आहाहा! जवाहरात का बड़ा लाखों का व्यापार था। आहा! कहा नहीं था एक बार? मोती की बात नहीं की थी? धन्धा किया था। साधारण मोती का धन्धा किया था। उसमें ऊँचे मोती की पुड़िया उस मोतीवाले ने दे दी। ऊँचे मोती। जिसमें लाखों रुपये कमायी बढ़ जाये, ऐसे। दुकान से घर गये। अरे! यह नहीं। वह व्यक्ति अभी आयेगा। यह सौदा नहीं किया। हमारे तो सादे मोती का सौदा था। धन्धे में समकिती को नीति कितनी है! समझ में आया? समकिती का व्यवहार भी अलग हो जाता है। आहाहा! मूलचन्दभाई! लाखों रुपये की आमदनी जिसमें—पुड़िया में। ऐसे देखा कि अरे! यह मोती का सौदा तो किया नहीं। मैंने तो सादे मोती का (सौदा किया है)। वह आया एकदम, जिसने पुड़िया दी थी न? समझ में आया? मोती का धन्धा किया था। बड़ा व्यापारी था। जिसके साथ सौदा किया था, वह मोती यह नहीं। साधारण मोती का था और उसने ऊँचे मोती की पुड़िया दे दी, श्रीमद् को। दुकान में आकर देखते हैं, अरे! अभी वह व्यक्ति आयेगा। आया, भाई! अपने यह मोती का सौदा नहीं किया था। अरे! बापू! यह रहे मोती। भाई! और वह प्रसन्न हो गया। यह वह दैवीपुरुष है! कौन है यह? जिसे हाथ में मैंने (पुड़िया) दी, वह कहते हैं कि यह सौदा अपना नहीं। तुम ले जाओ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चे धर्मात्मा हों, वे ऐसा करते थे। बाकी तो सब समझने जैसा करे। खबर है। पचा ले। लाखों रुपये के मिले हों, पचा डाले। नीति, धर्मीजीव की

नीति भी अलौकिक होती है। समझ में आया? वह तो प्रसन्न हो गया। पुड़िया जहाँ दी, लाओ बापू! अपने जो मोती दूसरे थे, वे लाओ। लो, भाई! यह लो। यह वह दैवीपुरुष है! कौन है यह! जिसे मैंने मेरे हाथ से दिये। इन्होंने नहीं लिये थे, मैंने पुड़िया दी थी। यह कहे, यह नहीं, यह नहीं। धर्मात्मा का नैतिक जीवन भी अलग होता है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, वीतराग निर्विकल्प परमशान्ति अन्दर में... आहाहा! रागरहित होकर अन्तर में जाने से आत्मा का अनुभव—अमृत का स्वाद आना, उसे रोकनेवाले। आहाहा! **आकुलता को उत्पन्न करनेवाले जो स्त्रीरूप के देखने की अभिलाषादि से... देखने की अभिलाषादि से उत्पन्न हुए हाव (मुख-विकार) भाव...** शब्द ऐसे हैं, परन्तु वास्तव में तो हाव (-भाव) सामने स्त्री के लेना। उत्पन्न हुए, वास्तव में तो उत्पन्न क्या हुए? **विकल्पजालोंकर मूर्छित...** यहाँ लेना। यह चार शब्द है। मूर्छित, वासित, रंजित और परिणत। चार शब्द है। क्या कहा?

जिसे स्त्री को देखने की अभिलाषा है, रुचि है, रस है, प्रेम है... आहाहा! वह सूरदास का नहीं आता? सूरदास। अन्यमत में सूरदास हैं न? सूरदास भगत हो गये। उन्हें इतनी गृद्धि थी कि वेश्या के यहाँ गये। रास्ता नहीं था। बड़ा मंजिलबद्ध मकान था। वहाँ सर्प लटकता था। वह मानो की रस्सी है। पकड़कर अन्दर गये। गृद्धि में कुछ खबर नहीं रही। फिर उन्हें लगा, अरेरे! यह क्या हुआ? फिर तो उन्होंने आँख फोड़ डाली। ऐसा कि यह देखने में... आँख फोड़ने से क्या होगा? अन्दर में रुचि छोड़ना चाहिए। आँख फोड़ने से (क्या होगा)? वह तो भले आँख ऐसी की ऐसी है। अन्दर का जो रस, प्रेम उत्पन्न होता है, उसे छोड़ना है। आह्लाद, सुन्दर स्त्री को देखकर अन्दर वीर्य में उल्लसित प्रेम, आकर्षित हो जाता है, उस रुचि का नाश करना है। आँख फोड़ने से क्या है? आहाहा! समझ में आया? इसने आँख फोड़ डाली। सूरदास था।

मुमुक्षु : राग की आँख तो खुल्ली रही।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह राग तो रह गया। आँख फोड़ने से क्या है? वह तो मिट्टी-धूल है।

स्त्रीरूप के देखने की अभिलाषादि से उत्पन्न हुए हाव (मुख-विकार)... स्त्री

का मुखविकार, हों! स्त्री का मुखविकार देखने से जो विकल्प का जाल उत्पन्न होता है, उसे नहीं करना। ज्ञानी को ऐसा होता नहीं। आहाहा! आसक्ति अलग चीज़ है, और उसका रस अलग चीज़ है। क्षायिक समकिती हो, स्त्री के रस की रुचि छूट गयी हो, तो भी विषय होते हैं, आसक्ति होती है। उस जाति की अस्थिरता हो जाती है, परन्तु दुःखरूप लगती है। और यह तो उसमें रस ही आवे। आहाहा! सब हाव, भाव देखकर आत्मा विकल्प के जाल में पड़ जाता है। आहाहा!

हाव (मुख विकार), भाव अर्थात् चित्त का विकार,... सामने के, हों! स्त्री के चित्त का विकार देखे न! शरीर के अन्दर वह। **विभ्रम अर्थात् मुँह का टेढ़ा करना,...** मुख जरा टेढ़ा करके सामनेवाले को प्रेम में डालना। **विलास अर्थात् नेत्रों के कटाक्ष...** आँख के कटाक्ष करना। स्त्री, हों! **इन स्वरूप विकल्पजालोंकर...** ऐसे जो उसके विकल्प, राग उत्पन्न होना, उसमें **मूर्छित... विकल्पजालोंकर मूर्छित...** हुआ अज्ञानी। आहाहा! उसे अन्दर भगवान किस प्रकार दिखाई दे? समझ में आया? आहाहा! यह चार शब्द हैं। **विकल्पजालोंकर मूर्छित...** 'एक' शब्द पड़ा रहा है। वहाँ वासित चाहिए। मूर्छित और रंजित के बीच वासित चाहिए। वासित। संस्कृत में चार (शब्द) हैं। मूर्छित, वासित। उसमें राग में रंग गया। अकेले रस में वास हो गया। आहाहा! रंजित- राग में रंजित हो गया। परिणत—राग में परिणत हो गया। आहाहा! समझ में आया? संस्कृत में चार बोल हैं। अर्थ में एक बोल पड़ा रहा है। आहाहा!

विकल्पजालोंकर... विकल्प का जाल। जैसे मकड़ी होती है न? मकड़ी नहीं होती? क्या कहते हैं? मकड़ी। उसमें से लार निकलती है। शास्त्र में यह दृष्टान्त है कि मनुष्य है, उसे दो पैर हैं। स्त्री से विवाह करे तो चार पैरवाला हुआ—ढोर हुआ। और उसका पुत्र हो तो छह पैर हुए, तो भंवरा हुआ। भंवरा समझते हो? उसे छह पैर होते हैं। और पुत्र की स्त्री हुई तो आठ पैर हुए। मकड़ी को आठ पैर होते हैं, वह मकड़ी फिर लार निकालती है। मुझे स्त्री का ऐसा करना है, पुत्र का ऐसा करना है, व्यवस्थित ऐसा करूँ। अरेरे! मर गया। आहाहा! ऐसा दृष्टान्त आता है, हों! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि अज्ञानी पर में **रंजित परिणत चित्त में...** जिसका ऐसा चित्त है। आहाहा! उसमें **ब्रह्म का (निज शुद्धात्मा का) रहना कैसे हो सकता है?** भगवान

आनन्दस्वरूप उसे किस प्रकार दृष्टि में आवे? अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ सम्यग्दर्शन में जो अनुभव में आता है, वह ऐसे विकल्पजालवाले को कैसे अनुभव में आवे? आहा! समझ में आया? आत्मार्थी को तो बड़ी हो, वह माता; अपने जितनी हो वह बहिन; अपने से छोटी हो वह पुत्री (समान है)। माता, बहिन, पुत्री सब है। आहाहा! उसे मातारूप से देखता है, बहिनरूप से देखता है, पुत्रीरूप से देखता है। उसे स्त्री का रागरस नहीं आता। आहाहा!

ऐसा चित्त, **विकल्पजालोंकर मूर्छित, वासित, रंजित, परिणत चित्त में ब्रह्म का रहना कैसे हो सकता है? जैसे कि एक म्यान में दो तलवारें कैसे आ सकती है?** आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा का रस और स्त्री के विषय का रस, एक समय में दो नहीं रह सकते। आहाहा!

३१वीं गाथा में कहा है। विषय शब्द से... समयसार में ३१ में लिया है। यह जड़ इन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इन्द्रिय के विषय। आहाहा! वहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र भी इन्द्रिय का विषय है। पर है न। तीनों की रुचि छोड़कर,.. आहाहा! अन्तर में जा, तुझे आत्मा का अनुभव होगा। आहाहा! समझ में आया? उसने इन्द्रिय को जीता। परलक्षी वाणी, पर भगवान, जड़ इन्द्रिय सबका लक्ष्य छोड़कर, उसने इन्द्रिय को जीता। **'जं इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।'** इन्द्रिय के विषय की रुचि छोड़कर। आहाहा! भगवान की वाणी की रुचि छोड़ी। परवस्तु है। भाई! मार्ग बहुत ऐसा है, बापू! आहाहा! ३१ गाथा में कहा है। **'जं इंदिये जिणित्ता'** इन्द्रियों को जीतकर अर्थात् वीतराग और वीतराग की वाणी, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार वह सब विषय है। इन्द्रिय का विषय है। तो इन्द्रिय के विषय को जीतकर अर्थात् उस ओर का लक्ष्य छोड़कर, आहाहा! **'णाणसहावाधियं मुणदि आदं'** भगवान आत्मा को ज्ञानस्वभाव से, पर से अधिक अर्थात् भिन्न—पृथक् अनुभव करे, उसे जितेन्द्रिय समकिती कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

देखो! वहाँ ऐसा लिया। भगवान की वाणी, भगवान, स्त्री, कुटुम्ब, वे सब इन्द्रिय का विषय है, ऐसा लिया है। आहाहा! सबकी रुचि छोड़कर। आहाहा! ऐसी बात है। वाणी सुनता है तो उसमें विकल्प आता है। भगवान के दर्शन करने से भी

विकल्प आता है, राग है। आहाहा! समझ में आया? यह विषय शब्द से, अपना स्वविषय सिवाय परवस्तु। स्वविषय जो आनन्द का नाथ प्रभु, ब्रह्मविद्या आत्मज्ञान, जिसमें स्वविषय आत्मा आया, इसके अतिरिक्त सब परविषय है, उसकी रुचि छोड़कर अपने आनन्द का अनुभव कर, तुझे समकित होगा। तुझे शान्ति मिलेगी। आहाहा! ऐसी बातें लोगों को कठिन पड़े। वह व्यवहार भी उड़ाया। ले! आहाहा!

पहले आ गया है, अभी आयेगा। व्यवहार क्रियाकाण्ड का जिसे रस है न, उस रागी को आत्मा प्राप्त नहीं होता। यह बाद में आयेगा। १२२ में आयेगा। आहाहा! **एक चित्त में ब्रह्म-विद्या और विषय-विनोद ये दोनों नहीं समा सकते।** आहाहा! जिसे परविषय का रस-प्रेम है, रस का अर्थ यह कि उस ज्ञेय में एकाकार हो जाता है। रस की व्याख्या है न? ३८ गाथा में। आहाहा! जिस ओर लक्ष्य है, वहाँ एकाकार हो जाता है। तो पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर जो एकाकार है, उसे विषय का विनोद है। विनोद अन्दर आता है, उसे रस पड़ता है। उसे ब्रह्म विद्या नहीं होती। उसे आत्मज्ञान नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! **दोनों नहीं समा सकते।**

जहाँ ब्रह्म-विचार है,... ब्रह्म अर्थात् भगवान आत्मा के आनन्द का अन्दर ज्ञान है, आहाहा! **वहाँ विषय-विकार नहीं है,...** आहाहा! दशा बदल गयी न! व्यवहार का विषय, उसमें पर सन्मुख लक्ष्य है और निश्चय का विषय स्व के ऊपर आश्रय है। जिसकी दशा में सम्यग्दर्शन हुआ, उसकी दशा में दिशा स्व के ऊपर है, और व्यवहार रागादि है, उसका लक्ष्य पर के ऊपर है। तो वह दशा रागी है, दशा राग की है तो दिशा पर के ऊपर है। और जहाँ सम्यग्दर्शन की दशा अरागी है तो उसकी दशा स्व के ऊपर है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! अभी मार्ग बहुत गोपन कर डाला। सत्य था न, परम सत्य परमात्मा का (उसे) नोंच डोला। आहाहा! तीन लोक का नाथ अन्दर विराजता है। आहाहा! समझ में आया?

निमित्त चीज़ है, वह तो इसकी नहीं। निमित्त शब्द से देव-गुरु-शास्त्र भी इसके नहीं। स्त्री, पुत्र तो कहीं रह गये। और राग भी जिसमें नहीं। निमित्त की रुचि नहीं, राग की रुचि नहीं। एक समय की पर्याय की रुचि नहीं। आहाहा! समझ में आया? परमानन्द प्रभु वीतरागस्वरूप अनाकुल आनन्द का अमृत का कन्द प्रभु, वह तो अरागी,

सम्यग्दर्शन का विषय है। समझ में आया? वह रागरहित दृष्टि का विषय है। वह रागरहित दृष्टि में रागसहित दृष्टि, एक समय में दो किस प्रकार रहे? पर में भी रस है और अपने में भी रस आ जाये, ऐसा नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? जिसे दूधपाक का स्वाद आया,... दूधपाक समझे? तुम्हारे खीर कहते हैं। हमारे यहाँ दूधपाक दो प्रकार के हैं। खीर उसे कहते हैं कि सेर दूध में नवटांक चावल डाले, उसे खीर कहा लाता है। और सेर दूध में रुपयाभार चावल डाले, उसे दूधपाक कहा जाता है। तुम्हारे अकेली खीर कहते हैं, हमारे यहाँ दो भाग करते हैं। एक सेर दूध हो और पाँच रुपयाभार चावल डाले, उसे खीर कहा जाता है। क्योंकि वह बहुत कढ़ा हुआ नहीं होता। और एक सेर दूध में एक रुपयाभार चावल डाले, और औटाते हैं तो उसका दूधपाक होता है। दूध का पाक। जिसे दूधपाक का स्वाद आया, उसे लाल ज्वार के छिलके... फोतरा समझे? छिलका, उसका स्वाद नहीं आता। आहाहा! ज्वार दो प्रकार की होती है। एक सफेद ज्वार... ज्वार समझते हो? और एक लाल ज्वार। हमारे तो सब अनुभव हो गया है न!

एक बार हम (संवत्) १९७६ में विठ्ठलगढ़ गये थे। विरमगाम के पास विठ्ठलगढ़ है। कोई बनिये का घर नहीं था तो हम तो चाहे जहाँ भिक्षा ले लेवें। ऐसा मिला, लाल ज्वार की रोटी। कुछ मीठी नहीं होती। परन्तु गाँव में (क्या मिले)? १९७६ की बात है। १९७६ के वर्ष में विरमगाम गये थे न। चार ठाणा गये थे। वहाँ मिले थे। लाल ज्वार की रोटियाँ। रोटला समझे न? रोटी। दाल, भात, सब्जी वहाँ कहाँ थे। छाछ और रोटियाँ। आहाहा! जिसे दूधपाक का स्वाद आया, उसे यह लाल ज्वार की रोटियों का स्वाद मीठा नहीं लगता।

इसी प्रकार जिसे आत्मा का—सम्यग्दर्शन का स्वाद आया, उसे विषय के रस का स्वाद सच्चा नहीं लगता। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! विषय छोड़कर बैठे, इसलिए विषयरुचि चली गयी, ऐसा नहीं है। जिसे राग की रुचि है, उसे विषय की रुचि है। क्योंकि राग पर चीज़ है और पर विषय की रुचि है। उसे स्वविषय की रुचि नहीं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ यह कहते हैं।

ब्रह्म-विचार है, वहाँ विषय-विकार नहीं है,... एक म्यान में दो तलवार नहीं रह

सकती। **जहाँ विषय-विकार है, वहाँ ब्रह्म-विचार नहीं है।** आहाहा! ज्ञानी को भी राग आता है, परन्तु राग की रुचि नहीं, रस नहीं। आहाहा!

नोआखली न? नोआखली नहीं? नोआखली देश है, वहाँ गाँधी गये थे। नोआखली में मुसलमान लोग हिन्दू को, माता-बहिन को नग्न करके खड़े रखे। माता की चालीस वर्ष की उम्र हो, लड़के की बीस वर्ष की हो। दोनों को नग्न करके इकट्ठे करे। वे मुसलमान। लड़के को तो आँसू की धारा बहती जाये अन्दर से। अरर! यह जनेता, मेरी माँ। अरेरे! यह क्या करते हैं? वे मुसलमान ऐसा करे। फिर गाँधी गये थे न? गाँधी, नोआखली गये थे। आहाहा! मुसलमान ऐसा जोर करते। नग्न करके दोनों को भिड़े। अरर! लड़के को तो ऐसा हो, अरेरे! यह जमीन मार्ग दे तो मैं उसमें समा जाऊँ। माता, जननी के साथ यह क्या? यह नग्नपना हो उसके पास? विषय तो किसका, परन्तु नग्नपना माता के पास—जननी के पास हो? उसे जैसे अन्दर रस उड़ गया होता है... समझ में आया? इसी प्रकार धर्मी को पर के विषय का रस अन्दर उड़ गया है। आहाहा!

ऐसा कहते हैं कि जिसे जिसे विषय का रस है, उसे ब्रह्म का रस नहीं। ब्रह्म अर्थात् आत्मा। आत्मा के आनन्द का रस है, उसे विषय का रस नहीं होता। आहाहा! विषय का रस नहीं होता, हों! विषय होते हैं। रुचि नहीं। बात इतनी है। ऐसे तो आजीवन ब्रह्मचर्य अनन्त बार पालन किया, परन्तु उसे राग की रुचि है तो विषय की रुचि है। आहाहा! क्योंकि राग का फल तो संयोग मिलेगा। यह पुण्य का फल। जिसे राग में प्रेम है... अपने स्वाध्यायमन्दिर में एक तख्ती है, जिसे पुण्य का प्रेम है, उसे जड़ का प्रेम है। है न? इस ओर है। कोने में चौका है। पुण्य की रुचि है, उसे जड़ की रुचि है। भाषा समझ में आती है? कुछ गुजराती आ जाती है। पुण्य की रुचि है, उसे जड़ की रुचि है। अपने स्वाध्यायमन्दिर में चौका है। इस ओर कौने में है। आहाहा! क्योंकि पुण्यभाव वह राग है, अचेतन है, जड़ है। आहाहा! उसका जिसे प्रेम और रस है, उसे जड़ का रस है। आहाहा! भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, जिसके अंश में, एक समय के स्वाद के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन भी सड़े हुए कुत्ता और बिल्ली जैसे लगें। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, जिसके चित्त में स्त्री का रस-प्रेम पड़ा है, और विकल्प का

जाल है... आहाहा! उसमें निर्विकल्प भगवान कैसे दृष्टि में आवे? समझ में आया? आहाहा! यह तो भाई, धर्म की रीति है। बापू! यह कहीं... आहाहा! बालक होता है न? बालक। गर्मी के दिन हों, ज्येष्ठ महीना। फिर उसे दूध पिलाया हो। उसमें अधिक पिलाया हो तो पतले दस्त हो जाते हैं। शेरणुं—पतले दस्त होते हैं। बारह महीने का बालक हो। पतले दस्त ऐसे ठण्डा लगे, ठण्डा। देखा है? उसे चाटता है। बालक है न? उसे कहाँ खबर है, उसे दूध बहुत पिलाया हो। एक बार एक पिलाया हो, दूसरी बार उसकी बड़ी माँ ने पिलाया हो। उसे खबर न हो कि पिलाया है। पतले दस्त हो जाते हैं। आहाहा! वह खिचड़ी में ऐसा होता है न? खिचड़ी बनाते हैं न? खिचड़ी कहते हैं न? घर में दो-चार महिलायें हों। पहली ने नमक डाला हो, दूसरी आयी, उसे ऐसा कि नहीं डाला होगा, इसलिए वह डाले। एकदम खारी हो जाये। ऐसी खारी खिचड़ी होती है। किसने बनाया है? भूल हो गयी लगती है अपने। महिलायें विचारे कि अपने में से किसी की भूल हो गयी है। बोलना नहीं अभी। पोपटभाई! यह सब तुम्हारे खेल। इसी प्रकार उसका डबल दूध पिलाया तो पतले दस्त हो गये। ठण्डा लगे तो चाटे। उसी प्रकार यह अज्ञानी विषय के रस को चाटता है, उसे आत्मा का रस उत्पन्न नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

यह परमात्मप्रकाश है। परमात्मा अपना आनन्दस्वरूप भगवान दृष्टि में कब आता है? कि ऐसा विकल्पजाल छोड़कर, शुभ का भी विकल्पजाल छोड़कर। आहाहा! यह तो निर्विकल्प परमानन्द प्रभु है। ऐसी चीज़ को जानने में राग का विकल्प उसके साथ काम नहीं करता। आहाहा! **इन दोनों में आपस में विरोध है।** ब्रह्म-विचार और विषय विकार। **हाव, भाव, विभ्रम विलास इन चारों का लक्षण दूसरी जगह भी कहा है। 'हावो मुखविकारो' इत्यादि, उसका अर्थ ऊपर कर चुके हैं, इससे दूसरी बार नहीं करा।** अब १२२।

गाथा - १२२

अथ रागादिरहिते निजमनसि परमात्मा निवसतीति दर्शयति –

१२२) णिय-मणि णिम्मलि णाणियहँ णिवसइ देउ अणाइ।
हंसा सरवरि लीणु जिम महु एहउ पडिहाइ।।१२२।।

निजमनसि निर्मले ज्ञानिनां निवसति देवः अनादिः।
हंसः सरोवरे लीनः यथा मम ईदृशः प्रतिभाति।।१२२।।

णियमणि इत्यादि। णियमणि निजमनसि। किंविशिष्टे। णिम्मलि निर्मले रागादिमलरहिते। केषां मनसि। णाणियहं ज्ञानिनां णिवसइ निवसति। कोऽसौ। देउ देवः आराध्यः किंविशिष्टः। अणाइ अनादिः। क इव कुत्र। हंसा सरवरि लीणु जिम हंसः सरोवरे लीनो यथा हे प्रभाकरभट्ट महु एहउ पडिहाइ ममैवं प्रतिभातीति। तथाहि। पूर्वसूत्रकथितेन चित्ताकुलत्वोत्पादकेन स्त्रीरूपावलोकनसेवनचिन्तादिसमुत्पन्नेन रागादिकल्लोलमालाजालेन रहिते निजशुद्धात्मद्रव्य-सम्यक्श्रद्धानसहजसमुत्पन्नवीतरागपरमसुखसुधारसस्वरूपेण निर्मलनीरेण पूर्णे वीतराग-स्वसंवेदनजनितमानससरोवरे परमात्मा लीनस्तिष्ठति। कथंभूतः। निर्मलगुण-सादृश्येन हंस इव हंसपक्षी इव। कुत्र प्रसिद्धः। सरोवरे। हंस इवेत्यभिप्रायो भगवतां श्रीयोगीन्द्रदेवानाम्।।१२२।।

आगे रागादि रहित निज मन में परमात्मा निवास करता है, ऐसा दिखाते हैं –

जैसे हंस बसे सरवर में त्यों ही ज्ञानी के उर में।
शाश्वत देव वास करता है-ऐसा मुझको भासित हो।।१२२।।

अन्वयार्थ :- [ज्ञानिनां] ज्ञानियों के [निर्मले] रागादि मल रहित [निजमनसि] निज मन में [अनादिः देवः] अनादि देव आराधने योग्य शुद्धात्मा [निवसति] निवास कर रहा है, [यथा] जैसे [सरोवरे] मानस सरोवर में [लीनः हंसः] लीन हुआ हंस बसता है। सो हे प्रभाकर भट्ट [मम] मुझे [एवं] ऐसा [प्रतिभाति] मालूम पड़ता है। ऐसा वचन श्री योगीन्द्रदेव ने प्रभाकरभट्ट से कहा।

भावार्थ :- पहले दोहे में जो कहा था कि चित्त की आकुलता के उपजानेवाले स्त्रीरूप का देखना सेवना चिंतादिकों से उत्पन्न हुए रागादितरंगों के समूह हैं, उनकर रहित निज शुद्धात्मद्रव्य का सम्यक् श्रद्धान स्वाभाविक ज्ञान उससे वीतराग परमसुखरूप

अमृतरस उस स्वरूप निर्मल नीर से भरे हुए ज्ञानियों के मानससरोवर में परमात्मादेवरूपी हंस निरंतर रहता है। वह आत्मदेव निर्मल गुणों की उज्ज्वलताकर हंस के समान है। जैसे हंसों का निवास-स्थान मानसरोवर है, वैसे ब्रह्म का निवास-स्थान ज्ञानियों का निर्मल चित्त है। ऐसा श्रीयोगीन्द्रदेव का अभिप्राय है।।१२२।।

गाथा-१२२ पर प्रवचन

आगे रागादि रहित निज मन में परमात्मा निवास करता है, ऐसा दिखाते हैं— आहाहा! जिसे राग का रस नहीं और राग की रुचि नहीं, उसका आत्मा में आत्मा-परमात्मा का पता लगता है। आहाहा! यह कहते हैं, हों! बहुत सरस बात है। परमात्मा अर्थात् अपना आत्मा, हों! यहाँ परमात्मा वह नहीं। **रागादि रहित निज मन में परमात्मा निवास करता है,...** परमात्मा अर्थात् अपना आत्मा, हों!

१२२) णिय-मणि णिम्मलि णाणियहँ णिवसइ देउ अणाइ।
हंसा सरवरि लीणु जिम महु एहउ पडिहाइ॥१२२॥

अन्वयार्थः—ज्ञानियों के रागादि मल रहित... आहाहा! दृष्टि में से राग को निकालकर अपने शुद्ध चैतन्य के प्रति दृष्टि गयी। **रागादि मल रहित निज में अनादि देव...** आहाहा! यह अनादि देव यह भगवान आत्मा। यह अनादि देव है। आहाहा! बाद की गाथा में कहेंगे। मूर्ति-बूर्ति में देव-भगवान नहीं है, भगवान यहाँ है। आगे की १२३वीं गाथा में कहेंगे। वह तो शुभभाव हो तब दर्शन करने का भाव (होता है), इतना। परन्तु वहाँ देव ही मान ले और उनकी भक्ति से कल्याण हो जायेगा, परमात्मा वहाँ नहीं, परमात्मा तो यहाँ है। देह देवालय में परमात्मा नहीं। ऐई!

यह तो कल आ गया, नहीं? योगसार में (कि) तनमन्दिर में देव जिन। लोग मन्दिर देव देखंत। मन्दिर में भगवान है, ऐसा लोग देखते हैं। वहाँ तो प्रतिमा है, वह तो स्थापना निक्षेप है। देव तो यहाँ है। आहाहा! 'राजा भिक्षार्थे भ्रमे, ऐसी जन को टेव।' माँगे जहाँ हो वहाँ। भगवान भगवान देना। भगवान वहाँ है? शत्रुंजय है भगवान? शत्रुंजय है? सम्मेदशिखर में है? मन्दिर में है? यह कहेंगे। वह शुभभाव होता है, परन्तु

वह शुभभाव—पुण्य है। परन्तु उससे कल्याण हो जायेगा और उससे आत्मा का भान होगा, ऐसी बात नहीं है। आहाहा! भारी काम, भाई! खींचतान हो गयी। उन स्थानकवासी में मूर्ति उत्थापित कर दी। तब इन लोगों ने मूर्ति में धर्म मनवा दिया। समझ में आया? स्थानकवासी है न वह? उन्होंने मूर्ति उड़ा दी। नहीं। तब यह लोग मूर्ति पर मुकुट और यह और यह... फूल की माला और हार और...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसेवाले हों तो भगवान को क्या है? भगवान के पास पैसे हैं? बहुत पैसेवाले हों तो चढ़ावे। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। बिल्कुल नहीं। कुछ नहीं होता। कल एक व्यक्ति आया था। दो-तीन लोग दिगम्बर थे न? गये होंगे। ऐसा कि महाराज! यह आरती का बोला जाता है, यह दिगम्बर में रिवाज नहीं है। यह पैसे की आरती बोली जाती है न? कहा, यह तो पैसे का मोह उतारने के लिये है। बाकी भगवान की आरती चाहे जो उतार सकता है। यह तो बड़ा दिन हो तो खास-खास आरती के पैसे बोले जाते हैं। कल एक आया था। जानेवाले थे। वृद्ध थे, बुजुर्ग। मैंने कहा, बात सच्ची, सब ख्याल है। आरती के पैसे बड़े दिन में बोले जाते हैं कि पच्चीस मण, पचास मण। वह तो जरा राग घटाने की बात है। बाकी तो चाहे जो व्यक्ति पैसा दिये बिना भी उतार सकता है। शुभभाव है न। यहाँ तो कहते हैं, वहाँ देवालय में देव नहीं, देव तो यहाँ है। आहाहा! यह कहेंगे अभी।

अनादि देव आराधने योग्य शुद्धात्मा... है। आहाहा! अरे! अनादि देव शक्ति अनन्त आनन्द का नाथ प्रभु, वह देव शुद्धात्मा वह तेरा देव है, वह आराधनेयोग्य है, वह सेवन करनेयोग्य है, उसके सन्मुख होकर लीन होनेयोग्य है। आहाहा! **शुद्धात्मा निवास कर रहा है,...** आहाहा! **जैसे मानस सरोवर में,...** मानस सरोवर है न? ढाई द्वीप के बाहर एक सरोवर है। **लीन हुआ हंस...** हंस वहाँ मोती का चारा चरता है। मानस सरोवर में सच्चे मोती होते हैं और वह हंस मोती का चारा चरता है। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा हंस बसता है। **हे प्रभाकर भट्ट! मुझे ऐसा मालूम पड़ता है।** आहाहा!

क्या कहते हैं? कि भगवान आत्मा राग रहित होकर अन्दर देव का आराधन करे तो भगवान वहाँ मालूम पड़ता है, ऐसा मुझे दिखता है। आहाहा! परमात्मा यहाँ अन्दर है। आहाहा! समझ में आया? वह व्यवहार है, ऐसा आता है। देवदर्शन आता है परन्तु वह व्यवहार है। उससे ऐसा मान ले कि धर्म हो गया, ऐसा नहीं। यहाँ तो यह बात है। समझ में आया? बाहर में बस, एक शत्रुंजय यात्रा करना या सम्मेदशिखर में बारह महीने में एक यात्रा करना, अपना कल्याण हो जायेगा। एक बार वंदे जो कोई... आता है? यह तो जिसे भगवान के प्रति प्रेम है और करे तो उसे पुण्यबन्ध होता है। उस भव में वह नरक में या तिर्यंच में नहीं जायेगा, इतनी बात है। परन्तु उससे उसका स्वर्ग में, नरक में जाना रुक जायेगा (ऐसा नहीं है)। चार गति खड़ी है। आहाहा! बापू! आहाहा!

तीन लोक का नाथ हंस तो अन्दर विराजता है। आहाहा! यह आता है, भजन में एक आता है। पहले वाँचन किया हुआ न बहुत। 'हंसलो नानो ने देवळ जूनुं रे थयुं' यह देवळ—शरीर। 'जूनुं रे थयुं रे देवळ जूनुं थयुं, मारो हंसलो नानो ने देवळ जूनुं तो थयुं।' राग नहीं गया और शरीर जीर्ण हो गया। राग को जीर्ण किया नहीं और शरीर जीर्ण हो गया। नब्बे, सौ, पचास। आहाहा! परन्तु महाप्रभु अन्दर हंस विराजता है, जिसे राग और भगवान आत्मा को भिन्न करने की ताकत रखता है, उसे पर की आवश्यकता नहीं। आहाहा! जैसे हंस दूध और पानी में चोंच डालता है तो दूध की पपड़ी हो जाती है, पानी निकल जाता है। उसी प्रकार भगवान हंस, अपने आनन्दस्वरूप में एकाग्र होता है तो रागरूप पानी पृथक् पड़ जाता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं यह। लोग कहे, यह निश्चय है, निश्चय है, ऐसा कहकर (निकाल डाली)। परन्तु निश्चय अर्थात् परमसत्य यह है। व्यवहार तो उपचार है, बीच में आता है। आता है। वह तो उपचार है। आहाहा! 'जहाँ जहाँ जो जो योग्य है, वहाँ समझना वही।' यह श्रीमद् का वाक्य है। आहाहा!

मानस सरोवर में लीन हुआ हंस बसता है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मानस सरोवर में हंस होते हैं न? वह ज्वार, बाजरा नहीं खाता। वह हंस तो मानस सरोवर के मोती चुगता है। इसी प्रकार ज्ञानी राग को नहीं भोगता निश्चय से, आहाहा! वह तो बाजरा, ज्वार है। आत्मा के आनन्द को अनुभव करता है। आहाहा! भारी बातें ऐसी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न, यह तो खबर है। आहाहा! बहुत वाँचा है। छोटी उम्र से हम तो दुकान पर बहुत वाँचते थे। पिताजी की दुकान थी। (संवत्) १९५९ में दुकान पर गये थे। पिताजी चार वर्ष रहे। १९६३ में गुजर गये। फिर १९६३ से १९६८ तक भागीदार के साथ मैंने दुकान चलायी थी। पाँच वर्ष, हों! निवृत्ति थी। पुस्तक मँगाते थे। शास्त्र वांचते। छोटी उम्र से बहुत वाँचते। बहुत देखा। कबीर के और सबके ग्रन्थ बहुत देखे हैं। पहला 'अध्यात्म कल्पद्रुम' हाथ में आया था। पहला-पहला। अध्यात्म कल्पद्रुम श्वेताम्बर में एक ग्रन्थ है। वह देखा परन्तु यह चीज़ नहीं। समझ में आया?

समयसार, दिगम्बर आदि शास्त्रों में है, वह चीज़ कहीं नहीं है। वह चीज़ तो... आहाहा! समयसार (संवत्) १९७८ में हाथ में आया... भाई! सेठ! एक दामोदर सेठ थे, पैसेवाले। तब दस लाख, सत्तर वर्ष पहले। चालीस हजार की आमदनी थी। घर का एक गाँव था। गाँव के जमींदार थे। बनिया थे परन्तु जमींदार थे। कहा, सेठ! यह पुस्तक अशरीरी (होने के लिये) है। जिसे शरीर रहित होना हो तो उसके लिये यह समयसार है। १९७८। भाई! कैलाशचन्दजी! २२ और ३२, ५४ वर्ष हुए। आहाहा!

समयसार अद्वितीय चक्षु, अजोड़ चक्षु। जिसकी एक-एक गाथा में अन्दर से आत्मा को भणकार उठा दे। तीन लोक का नाथ भगवान तू अल्पज्ञ नहीं, सर्वज्ञस्वभावी है न! आहाहा! राग तो नहीं, निमित्त तो नहीं, परन्तु तू अल्पज्ञ भी नहीं। आहाहा! अकेला ज्ञानस्वभाव, ज्ञ—स्वभाव, ज्ञ—स्वभाव, ज्ञ—स्वभाव... स्वभाव। आत्मा स्वभाववान और ज्ञ—स्वभाव। ज्ञ—स्वभाव अर्थात् सर्वज्ञस्वभाव। ज्ञ अर्थात् पूर्ण ज्ञ—स्वभाव। ऐसी तेरी चीज़ है न! आहाहा! वहाँ किसकी दृष्टि जाये? कि जिसे राग का रस न हो, उसकी दृष्टि वहाँ जाये, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कैलाशचन्दजी! साठ वर्ष में यह सुना नहीं। एक बालक कहता था, तुम्हारी बात करता था। एक बात कहता था कि भाई कहते थे कि हमारे साठ वर्ष पानी में गये। एक कहता था। वहाँ होगा न वह। वहाँ उतरे हैं? ठीक। तो भी भाग्यशाली, भाई!

मुमुक्षु : समझ में नहीं आया?

गुरुदेवश्री : नहीं समझ में आया? यह कैलाशचन्दजी सुनने के बाद वहाँ कहते

थे कि हमारे साठ वर्ष पानी में गये। यह सब बहिन का प्रताप, हों! हमारी माँ का। वह यहाँ खींच-खींचकर लावे। आहाहा! वह तो होता है न! आहाहा! पुत्र की व्याख्या नहीं? पुत्र उसे कहते हैं कि पिताजी को धर्म प्राप्त करावे, वह पुत्र। ऐसी बात है। पवित्रता प्राप्त करावे, उसे पुत्र कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! अरेरे! भवभ्रमण टाले वह चीज़ लेनी चाहिए। बाकी सब ठीक है। होता है, पुण्य होता है, भाव होता है।

यहाँ यह कहते हैं, **मालूम पड़ता है। ऐसा वचन श्री योगीन्द्रदेव ने प्रभाकर भट्ट को कहा।**

भावार्थः—पहले दोहे में जो कहा था कि चित्त की आकुलता के उपजानेवाले स्त्रीरूप का देखना सेवना चिन्तादिकों से उत्पन्न हुए रागादिक तरंगों के समूह हैं, उनकर रहित निज शुद्धात्मद्रव्य का सम्यक् श्रद्धान... आहाहा! बहुत धीरज चाहिए, भाई! भगवान पूर्णानन्द शुद्धात्मा। आहाहा! उस ओर झुकना और राग के रस की रुचि छोड़ देना, वह कुछ साधारण बात है! अनन्त पुरुषार्थ है। आहाहा! और करने का हो तो यही करना है, बाकी सब तो ठीक है। समझ में आया? आहाहा! **देखना सेवना चिन्तादिकों से उत्पन्न हुए रागादिक तरंगों के समूह हैं, उनकर रहित निज शुद्धात्मद्रव्य का सम्यक् श्रद्धान...** शुद्धात्मद्रव्य भगवान पूर्णानन्द का (श्रद्धान)। देखो! शुद्धात्मद्रव्य अर्थात् अपना त्रिकाल स्वभाव। उसका सम्यक् श्रद्धान। स्व—भाविकज्ञान। स्वभाविकज्ञान वह आत्मा का ज्ञान, बाहर का नहीं। आहाहा! बड़े-बड़े कवि हो जाये और बड़े शास्त्र के ज्ञाता होकर भाषण दे सके, वह चीज़ नहीं, बापू! यहाँ तो कहते हैं, स्वाभाविकज्ञान। है? **स्वाभाविक ज्ञान...** स्वयं ज्ञाता, आनन्द का नाथ, उसका ज्ञान। आहाहा! ज्ञान का ज्ञान। ज्ञानस्वरूप भगवान का ज्ञान। आहाहा! समझ में आया? शान्तिभाई! यह अभी वहाँ पैसे में रचपच गये हैं। नहीं? परन्तु अब कहते हैं कि छोड़ना है। ऐसा कहते थे। छोड़े तब... परन्तु कहते थे। वैसे तो प्रेम था न! पहले से प्रेम तो है। यह देश में थे, तब प्रेम बहुत था।

मुमुक्षु : छोड़ने का भाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव है। करने का यह है, बापू! रोटियाँ मिलती हो, फिर विशेष का क्या काम है? श्रीमद् तो ऐसा कहते हैं। श्रीमद् राजचन्द्र। मुमुक्षु जीव को

मुश्किल से आजीविका मिलती हो तो विशेष तृष्णा नहीं करना। आजीविका मिलती हो तो बस है। यह करनेयोग्य है। आहाहा! अरेरे! चौरासी के अवतार में भटककर दुःखी है। बापू! दुनिया भले इसे दे कि तुम बादशाह हो और सेठिया हो और... चाहे जो कहे दुनिया। दुनिया की रिपोर्ट वहाँ काम नहीं आती। आहाहा! प्रभु ऐसा कहते हैं कि यह आत्मा समकिती-ज्ञानी है। आहाहा! 'लही भव्यता मोटुं मान, कोण अभव्य त्रिभुवन अपमान।' तीन लोक का नाथ ऐसा कहे कि यह पात्रजीव है, अब इसे किसका मान लेना है? समझ में आया? यह आनन्दघनजी का वचन है। 'लही भव्यता मोटुं मान,' तीन लोक के नाथ वाणी में ऐसा कहते हैं कि यह पात्र जीव, अच्छा जीव है... इत्यादि... इत्यादि। समझ में आया? 'कोण अभव्य त्रिभुवन अपमान।' सर्वज्ञ ऐसा कहे कि यह जीव योग्य नहीं। अब इसे किसका अपमान लेना है? तीन लोक के नाथ से अपमान आया। आहाहा! आनन्दघनजी कहते हैं, श्वेताम्बर में हुए हैं न। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त पुरुषार्थ है।

मुमुक्षु : ....कर सकता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मेंढ़क समकित का पुरुषार्थ करता है। आत्मा है या नहीं? वह मेंढ़क कहाँ है। आत्मा, एक चींटी में भी आत्मा है, परन्तु उसे समकित नहीं होता। क्योंकि मन नहीं है। आत्मा है या नहीं? शास्त्र तो यहाँ तक कहते हैं, अँगुल के असंख्यवें भाग का तन्दुल मच्छ होता है। तन्दुल अर्थात् चावल जितना भी नहीं। चावल का छोटा टुकड़ा हो, ऐसा शरीर होता है। उसे भी समकित होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। हजार योजन का मच्छ होता है। उसे तन्दुल मच्छ कहते हैं। तन्दुल अर्थात् चावल। चावल जितनी शरीर की अवगाहना। इतनी छोटी है। तन्दुल तो भाषा ली है। बाकी तन्दुल में भी अन्तिम टुकड़ा हो, उतना उसका शरीर होता है। परन्तु संज्ञी होता है, मनवाला होता है। आहाहा! वह भी सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है। उसमें क्या है? आहाहा! आठ वर्ष की बालिका हो। स्त्री का शरीर हो। शरीर कहाँ आत्मा है? आहाहा! शरीर, मन और राग से दृष्टि हटाकर भगवान पूर्णानन्द के नाथ हंस पर दृष्टि लगा सकता है। समझ में आया? आहाहा!

वीतराग परमसुखरूप अमृतरस... आहाहा! है? **शुद्धात्मद्रव्य का सम्यक् श्रद्धान...** भावार्थ की तीसरी लाईन। **स्वाभाविक ज्ञान...** स्वाभाविक ज्ञान अर्थात् आत्मा का ज्ञान। आहाहा! दो। तीसरा, **उससे वीतराग परमसुखरूप अमृतरस...** आहाहा! अन्तर में रागरहित परमसुखरूप अमृतरस। **उस स्वरूप निर्मल नीर से भरे हुए ज्ञानियों के मानस सरोवर में...** आहाहा! मानस सरोवर अन्दर ज्ञानसरोवर। आहाहा! **परमात्मादेवरूपी हंस निरन्तर रहता है।** वहाँ परमात्मादेवरूपी हंस अन्दर रहता है। आहाहा! है या नहीं? सेठ! कौन सी गाथा है? १२२ का भावार्थ। भावार्थ की अन्तिम तीन-चार लाईन। आहाहा!

एक तो निज शुद्धात्मद्रव्य का सम्यक् श्रद्धान। स्वाभाविक अन्तर का ज्ञान। शास्त्रज्ञान या बाहर के ज्ञान की बात नहीं। आहाहा! तिर्यंच-पशु होता है। उसे नौ तत्त्व के नाम भी न आते हों। परन्तु अन्तर आनन्द के नाथ को पकड़ ले, उसे नौ तत्त्व का ज्ञान हो गया, जाओ! आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है।

ज्ञानियों के मानस सरोवर में परमात्मादेवरूपी हंस निरन्तर रहता है। आहाहा! अनन्त गुण का सागर भगवान, ज्ञानियों के ज्ञान में निरन्तर आत्मा—हंस बसता है। आहाहा! **यह आत्मदेव निर्मल गुणों की उज्ज्वलताकर हंस के समान है।** लो। यह भगवान आत्मा वीतराग अमृत के रस का पिण्ड प्रभु, यह आत्मदेव। देव कहते हैं। भगवान आत्मा यहाँ बारम्बार कहा जाये न, इसलिए एक व्यक्ति वहाँ जाकर कहे, वहाँ तो भगवान आत्मा कहते हैं। अरे! अभी भगवान आत्मा होगा? भगवान तो त्रिकाल भगवान आत्मा है, भाई! वहाँ हिन्दुस्तान में यहाँ की बात गयी थी। कोई कहता था। भगवान कहा तो तुरन्त छोड़ दिया। भगवान अभी नहीं होता। अभी तो यह करो, बस। व्रत पालन करो, भक्ति करो, पूजा करो। बाद में भगवान हुआ जायेगा। परन्तु भगवान हो वह होगा? तू भगवान है या नहीं? हो, वह ऐनलार्ज होगा या नहीं हो, उसका ऐनलार्ज होगा? आहाहा! भगवान आत्मा, यहाँ तो परमात्मा पुकार करते हैं। आहाहा!

एक बार नहीं कहा था? १९६४ के वर्ष की बात है, संवत् १९६४। माल लेने वड़ोदरा गये थे। पालेज से वडोदरा नजदीक है। सयाजी गायकवाड का। गये थे तो रात्रि में नाटक देखने गये। अनुसूया का नाटक। बड़ा नाटक। (संवत्) १९६४ की बात है।

स्त्री थी, वह स्वर्ग में जा रही थी। वहाँ से इनकार किया कि तुझे पुत्र नहीं तो तुझे स्वर्ग नहीं मिलेगा। उन लोगों में कहते हैं न? नहीं मिलेगा। क्या करना? स्त्री को विवाह किये बिना, पुत्र हुए बिना मुक्ति नहीं होगी। स्वर्ग नहीं मिलेगा। वापस मुड़ी, क्या करना? बड़ा नाटक था। १९६४ की बात है। १८ वर्ष की उम्र थी। तब कहे, नीचे जा। जो हो उसके साथ विवाह कर। नीचे एक अन्ध ब्राह्मण था (उसके साथ) विवाह किया। उसे हुआ पुत्र। नाटक था न? कोई पुत्र ले आये। तब महिला ऐसा कहती थी, निर्विकल्पोसि। बेटा! तू निर्विकल्पोसि, शुद्धोसि, बुद्धोसि, निर्विकल्पोसि। परम आनन्द (है), ऐसा कुछ कहती थी। उस नाटक में ऐसा कहते थे। यहाँ अब बाहर में भी नहीं कहते। समझ में आया? हरखचन्दभाई! समझ में आया? नाटक में वह बाई ऐसा कहती थी। अपने आता है, अपने समयसार में आता है। समयसार में बन्ध अधिकार और सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में दो में पीछे आता है। यही शब्द, हों! यह शब्द वहाँ नाटक में सुने थे। निर्विकल्पोसि, शुद्धोसि, बुद्धोसि, निर्विकल्पोसि, उदासीनोसि। रागादि सबसे तेरी चीज़ उदास है। आहाहा! ऐ... नाटक में ऐसा (आता था)। अभी तो नाटक में कुकर्म कर डाले। फिल्मों स्त्री ऐसे देखे और ऐसे देखे। अरे! बाहर में ऐसे... क्या कहलाता है? फोटो रखे। अहमदाबाद और मुम्बई और... अरे! नैतिक जीवन घट गये। आहाहा! नैतिक जीवन ऐसा होता है? बाहर में ऐसा? सज्जन किसे कहते हैं? आहाहा!

पहले तो ऐसा था कि ससुर बाहर बैठा हो तो बहुत पापड़ नहीं खाती। पापड़ समझे न? पापड़। खड़ खड़ होता है? यह सब हमने देखा है। पिताजी बाहर बैठे हैं। दूध में डुबोकर फिर खाये। खड़ खड़ (न हो)। लड़का उठाये नहीं। पिताजी बैठे हो और लड़का हुआ हो तो उठावे नहीं। बापूजी बैठे हैं, अपने नहीं लिया जाता। आहाहा! इतनी मर्यादा थी।

मुमुक्षु : मर्यादा थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : मर्यादा थी। अब तो तुम्हारा ठिकाने बिना का सब हो गया। आहाहा! आर्यता किसे कहें, बापू! आहाहा! आर्यकुल में जन्म हुआ, उसकी आर्यता की नैतिकता कैसी होती है!

यहाँ कहते हैं, ओहो! **आत्मदेव निर्मल गुणों की उज्ज्वलताकर हंस के समान**

है। आहाहा! वह बाई गाती थी। निर्विकल्पोसि, उदासीनोसि, बुद्धोसि। प्रभु! पुत्र! ऐसा कहकर बुलाती थी। आहाहा! अरे! यहाँ धर्म के उपदेश में कभी (ऐसा न कहे कि) वीतराग निर्विकल्प मूर्ति तू है। यह करो, यह करो। व्रत करो और तप करो और अपवास करो और यह नहीं खाना... ऐसी बातें तो अनन्त बार कीं, सुन न! अभव्य ने भी यह तो किया है। आहाहा! यहाँ तो **आत्मदेव निर्मल गुणों की उज्ज्वलताकर हंस के समान है।** आहाहा! है? **जैसे हंसों का निवास-स्थान मान सरोवर है।** आहाहा! मानसरोवर में हंस रहते हैं। **वैसे ब्रह्म का निवास...** आहाहा! आत्मा आनन्द का निवास **ज्ञानियों का निर्मल चित्त है।** आहाहा! रागरहित सम्यग्ज्ञान में वह हंस रहता है। आहाहा! सम्यग्ज्ञान में उसका भास होता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! यह तो। अमरचन्दभाई को बेचारे को ऐसा हो गया, नहीं तो बहुत रस था। ऐसा सुनकर तो दोपहर में कितनी बार आवे। आहाहा! आज महाराज बहुत बात आयी। बहुत रस (आया)। अभी हार्ट का दर्द बहुत सुनते हैं।

जैसे हंसों का निवास-स्थान मानसरोवर है, वैसे ब्रह्म का निवास-स्थान ज्ञानियों का निर्मल चित्त है। ऐसा योगीन्द्रदेव का अभिप्राय है। मुनि दिगम्बर सन्त हैं, उनका यह अभिप्राय है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १२३

उक्तं च –

१२३) देउ ण देउले णवि सिलए णवि लिप्पइ णवि चित्ति।
अखउ णिरंजणु णाणमउ सिउ संठिउ सम–चित्ति।।१२३।।

देवः न देवकुले नैव शिलायां नैव लेप्ये नैव चित्रे।
अक्षयः निरञ्जनः ज्ञानमयः शिवः संस्थितः समचित्ते।।१२३।।

देउ इत्यादि। देउ देवः परमाराध्यःण नास्ति कस्मिन् कस्मिन् नास्ति। देउले देवकुले देवतागृहे णवि सिलए नैव शिलाप्रतिमायां, णवि लिप्पइ नैव लेपप्रितामायां, णवि चित्ति नैव चित्रप्रतिमायाम्। तर्हि क्व तिष्ठति। निश्चयेन अखउ अक्षयः णिरंजणु कर्माञ्जनरहितः। पुनरपि किंविशिष्टः। णाणमउ ज्ञानमयः केवलज्ञानेन निर्वृत्तः सिउ शिवशब्द वाच्यो निजपरमात्मा। एवंगुणविशिष्टः परमात्मा देव इति। संठिउ संस्थितः समचित्ति समभावे समभावपरिणतमनसि इति। तद्यथा। यद्यपि व्यवहारेण धर्मवर्तनानिमित्तं स्थापनारूपेण पूर्वोक्तगुणलक्षणो देवो देवगृहादौ तिष्ठति तथापिनिश्चयेन शत्रुमित्रसुखदुःखजीवितमरणादिसमतारूपे वीतरागसहजानन्दैकरूपपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभूतिरूपाभेदरत्नत्रयात्मकसमचिते शिवशब्दवाच्यः परमात्मा तिष्ठतीति भावार्थः।। तथा चोक्तं समचित्तपरिणतश्रमणलक्षणम्–'समसत्तुबंधुवग्गो समसुहदुक्खो पसंसणिंदसमो। समलोहकंचणो वि य जीविदमरणे समो समणो।।'।।१२३।। इत्येकत्रिंशत्सूत्रैश्चूलिकास्थलं गतम्।

आगे इसी बात को दृढ़ करते हैं –

देव नहीं रहते मन्दिर में नहिं पाषाण बिम्ब में है।
शाश्वत् ज्ञानमयी निर्मल शिव समता रस भीगे चित् में।।१२३।।

अन्वयार्थ :– [देवः] आत्मदेव [देवकुले] देवालय में (मंदिर में) [न] नहीं है, [शिलायां नैव] पाषाण की प्रतिमा में भी नहीं है, [लेपे नैव] लेप में भी नहीं है, [चित्रे नैव] चित्राम की मूर्ति में भी नहीं है। लेप और चित्राम की मूर्ति लौकिकजन बनाते हैं, पंडितजन तो धातु पाषाण की ही प्रतिमा मानते हैं, सो लौकिक दृष्टांत के लिये दोहा में लेप चित्राम का भी नाम आ गया। वह देव किसी जगह नहीं रहता। वह देव [अक्षयः] अविनाशी है, [निरंजनः] कर्माञ्जन से रहित है, [ज्ञानमयः] केवलज्ञानकर पूर्ण है,

[शिवः] ऐसा निज परमात्मा [समचित्ते संस्थितः] समभाव में तिष्ठ रहा है, अर्थात् समभाव को परिणत हुए साधुओं के मन में विराज रहा है, अन्य जगह नहीं है।

भावार्थ :– यद्यपि व्यवहारनयकर धर्म की प्रवृत्ति के लिये स्थापनारूप अरहंतदेव देवालय में तिष्ठते हैं, धातु पाषाण की प्रतिमा को देव कहते हैं तो भी निश्चयनयकर शत्रु मित्र सुख–दुःख जीवित–मरण जिसके समान हैं, तथा वीतराग सहजानंदस्वरूप परमात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान ज्ञान चारित्ररूप अभेद रत्नत्रय में लीन ऐसे ज्ञानियों के सम चित्त में परमात्मा तिष्ठता है। ऐसा ही अन्य जगह भी समचित्त को परिणत हुए मुनियों का लक्षण कहा है। 'समस्तु' इत्यादि। इसका अर्थ ऐसा है कि जिसके सब दुःख समान हैं, शत्रु–मित्रों का वर्ग समान हैं, प्रशंसा निंदा समान हैं, पत्थर और सोना समान है, और जीवन–मरण जिसके समान हैं, ऐसा समभाव का धारण करनेवाला मुनि होता है। अर्थात् ऐसे समभाव के धारक शांतचित्त योगीश्वरों के चित्त में चिदानंददेव तिष्ठता है।।१२३।।

वीर संवत् २५०२, भाद्र कृष्ण १०, शनिवार
दिनांक-१८-०९-१९७६, गाथा-१२३, प्रवचन-९३

यह परमात्मप्रकाश १२३ गाथा है न? **आगे इसी बात को दृढ़ करते हैं—** गाथा।

१२३) देउ ण देउले णवि सिलए णवि लिप्पइ णवि चित्ति।
अखउ णिरंजणु णाणमउ सिउ संठिउ सम-चित्ति॥१२३॥

अन्वयार्थः—आत्मदेव देवालय में (मन्दिर में) नहीं है,... यह भगवान आत्मा जो है, वह कहीं देवालय में नहीं। देवालय में तो व्यवहार निक्षेप-प्रतिमा है। आहाहा! **आत्मदेव... 'देवकुले' नहीं है,... 'शिलायां नैव' पाषाण की प्रतिमा में भी नहीं है,...** यह आत्मदेव वहाँ कहाँ है? आहाहा! और **लेप में भी नहीं है, चित्राम की मूर्ति में भी नहीं है। लेप और चित्राम की मूर्ति लौकिकजन बनाते हैं,...** जैनधर्म में यह व्यवहार नहीं है। **पण्डितजन तो धातु पाषाण की ही प्रतिमा मानते हैं,...** समझ में आया? चित्राम और यह कागज नहीं, यह इनकार करते हैं। फोटो भी नहीं। यह चित्राम है। धातु की, पाषाण प्रतिमा या पत्थर। है? **धातु पाषाण की ही प्रतिमा मानते हैं,...**

जैनदर्शन में व्यवहार होवे तो यह धातु पाषाण की प्रतिमा है। यह व्यवहार है। शुभभाव में निमित्त है, पुण्यबन्ध का कारण है। वह व्यवहार आता है, परन्तु परमार्थ से देव वहाँ नहीं हैं; देव तो यहाँ है। आहाहा!

मुमुक्षु : दो देव हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह व्यवहारदेव, यह निश्चयदेव। समझ में आया? यह तो वहाँ तक आता है न? मोक्षपाहुड़ में, ददाति, वह देवः। ऐसा पाठ आता है। देव देते हैं। क्या? धर्म, अर्थ और काम और मोक्ष। ऐसा पाठ है। अष्टपाहुड़ में है। अर्थात् सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो मार्ग कहा, तत्प्रमाण जिसे अनुभव होता है, तो उसे मोक्ष भी मिलता है और जरा भक्ति आदि का राग रह गया हो तो उससे लक्ष्मी और विषय भी मिलते हैं। ऐसा अष्टपाहुड़ में पाठ है। अष्टपाहुड़ यहाँ है न? उसमें ऐसा है। ददाति, वह देवः, बोधपाहुड में है। देव तो यह है। परन्तु व्यवहारदेव (वहाँ है)। आहाहा! है?

लेप और चित्राम की मूर्ति लौकिकजन बनाते हैं,... आहाहा! **पण्डितजन तो धातु पाषाण की ही प्रतिमा मानते हैं,...** अर्थात् जैनदर्शन में चित्राम और फोटो भी मान्य नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? व्यवहार में वह मान्य नहीं। धातु की (पाषाण की मान्य है)। यह देखो न! कल चोरी हो गयी न? अजमेर में। अजमेर में बड़ी चोरी हो गयी है। अजमेर में। हजार तोले की... चाँदी के मन्दिर में। भागचन्दजी हैं न? दुकान बन्द रखी थी। अभिषेक दो-चार दिन पहले हुआ था न? सब प्रतिमाओं का। कोई अन्दर घुस गया और देख लिया। नाम ऐसा आता है कि कोई सरदार घुसा था। अब वह हजार तोले की चाँदी की, पच्चीस सेर की (थी) पच्चीस सेर। लगभग सोलह हजार, बीस हजार की मूर्ति। तीन छत्र, एक मूर्ति ले गये। वास्तव में तो वह धातु और चाँदी अभी... सादी प्रतिमा हो। बात ऐसी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह ठीक नहीं। अभी इस काल के लिये ठीक नहीं। चाँदी की प्रतिमा या वह सब चाँदी के... क्या कहलाते हैं? चँवर। लोगों को चोरने का मन हो जाता है। पीतल, परन्तु किसी समय पीतल सोने का मानकर ले जाते हैं। पीतल को ले जाते हैं, खबर है।

यहाँ तो दो पाठ कहना है। **लेप और चित्राम की मूर्ति लौकिकजन बनाते हैं, ज्ञानीजन (पण्डितजन) तो धातु पाषाण की ही प्रतिमा मानते हैं, सो लौकिक दृष्टान्त के लिये दोहा में लेप चित्राम का भी नाम आ गया।** वास्तव में तो यह कुछ जैनदर्शन में होती नहीं। **वह देव किसी जगह नहीं रहता।** आत्मदेव कहाँ रहता है ? आहाहा! यह भगवान **अविनाशी...** आत्मा अन्दर है। **अविनाशी है, कर्मांजन से रहित है,...** आहाहा! अभी, हों! यहाँ। परन्तु किसे ? जिसकी निर्विकल्प दृष्टि में समभाव में दिखता है, उसे। आहाहा! समझ में आया ? आयेगा, देखो! **कर्मांजन से रहित है,... 'ज्ञानमयः' केवलज्ञानकर...** अर्थात् केवलज्ञानपर्याय, वह नहीं। केवल ज्ञान—अकेला ज्ञानमय भगवान आत्मा है। ज्ञानमय विग्रह—ज्ञानमय आत्मा का शरीर है। आहाहा! अकेला प्रज्ञाब्रह्म। वह ज्ञानमय परिपूर्ण है। ऐसा निज परमात्मा '**शिवः**', वह आत्मा '**शिवः**' है।

'**समचित्ते संस्थितः**' अब क्या कहते हैं ? कहाँ रहता है वह ? कि जिसका वीतरागी परिणमन हुआ—समचित्त, उसमें दिखता है, वहाँ रहता है। आहाहा! समझ में आया ? है ? '**समचित्ते संस्थितः**' आहाहा! **समभाव में तिष्ठ रहा है अर्थात् समभाव को परिणत हुए साधुओं के मन में विराज रहा है,...** आहाहा! जिसकी निर्विकल्प वीतरागीदशा हुई, ऐसी वीतरागदशा में ऐसा आत्मदेव संस्थित है। आहाहा! समझ में आया ? देव तो है, परन्तु वह देव किसे है ? जिसकी दृष्टि राग से हटकर वीतरागीदशा की दशा में समचित्त जहाँ समभाव हुआ (उसके लिये देव है)। 'राग आग दाह दहै सदा, तातैं समामृत सेईये' राग है, वह तो दाह-अग्नि है। चाहे तो शुभराग हो। आहाहा! यहाँ तो समामृत। समभाव पर्याय में प्रगट करके वीतरागभाव में वह आत्मा संस्थित है। वहाँ दिखता है। आहाहा! समझ में आया ?

भावार्थः—यद्यपि व्यवहारनयकर धर्म की प्रवृत्ति के लिये... बाहर की। धर्म शब्द से पुण्य, शुभभाव। **स्थापनारूप अरहंतदेव देवालय में तिष्ठते हैं,...** स्थापनारूप अरिहन्तदेव देवालय में विराजते हैं। **धातु पाषाण की प्रतिमा को देव कहते हैं...** वह दो निकाल दिये। चित्राम (और) लेप। **धातु पाषाण की प्रतिमा को देव कहते हैं तो भी...** वह व्यवहार देव है। शुभभाव में, भक्ति में, पूजन में शुभभाव में दिखता है। वह शुभभाव है। उसे देखने में पुण्य है, व्यवहार है। जब तक वीतरागता न हो, तब तक

ज्ञानी को भी निश्चय भान होने पर भी ऐसा व्यवहार पूजा, भक्ति का शुभभाव आता है। समझ में आया? वह व्यवहार है और व्यवहार, वह बन्ध का कारण है, परन्तु आये बिना रहता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। वापस वहाँ धर्म मान ले। समझ में आया?

श्वेताम्बर में तो ऐसा कहते हैं, एक देवचन्दजी है। 'आस्रव चार घटे अने संवर वधे...' ऐसा पाठ है। भगवान के दर्शन और पूजा से आस्रवभाव घटे, संवर बढ़े। वहाँ संवर-फंवर कैसा? यह देवचन्दजी कहते हैं। फिर ले गये, बहुत खींचकर कहीं ले गये। एक ने उड़ा दिया और एक ने खींचकर... आहाहा! एक ने उड़ा दिया।

मैंने एक बार पहले कहा था। (संवत्) १९८२ के वर्ष। १९८२ का चातुर्मास वढवाण में था। १९८२, पचास वर्ष हुए। रात्रि में बैठे थे। थे उसमें भी हमारी बात लोग शान्ति से सुनते थे। देखो! भाई! यह स्थानकवासी और मन्दिरमार्गी में ऐसा हुआ है कि दो मित्र थे। एक मित्र ने सौ रुपये दिये थे। उस लड़के के पिता को। सौ रुपये दिये थे। सौ सच्चे थे। परन्तु सौ के ऊपर दो शून्य चढ़ाकर माँगे। तेरे पिता को एक हजार मेरे पिता ने दिये हैं। वह कहे, मुझमें होंगे तो मैं देखूँगा। बहियाँ देखी। सौ तो है। परन्तु सौ स्वीकार करूँगा तो हजार माँगेगा। इसलिए सौ से भी इनकार किया, वह भी है नहीं। वह भाई नहीं तुम्हारा? वडवावाला मणिभाई... मणिभाई। मणिभाई थे। तुम वहाँ उस समय थे? रात्रि में बैठे थे। (संवत्) १९८२ के वर्ष, चातुर्मास वढवाण था न! तीनों उपाश्रय के लोग आते थे। बाहर जगह में। बाहर... कैसे? ठाकरशीभाई धर्मशाला। है न, वहाँ रहे थे। तीनों उपाश्रय के लोग आते थे। हम किसी सम्प्रदाय के नहीं थे। तीनों आते थे। दरियापरी, सुन्दरवोरा और डोसा वल्लभदास। पचास वर्ष पहले की बात है, हों! १९८२ के वर्ष।

यहाँ तो कहते हैं, आहाहा! किसके मन में रहता है? आहाहा! यह व्यवहार प्रतिमा है सही। समझ में आया? परन्तु उस प्रतिमा के ऊपर लेप और गहने और ऐसा बहुत चढ़ा दिया। सौ के ऊपर वापस हजार माँगे। सौ सच्चे थे। दो शून्य चढ़ाकर माँगे। फिर देखा कि सौ तो है। परन्तु यदि हाँ कहूँगा तो हजार माँगता है। है ही नहीं। ऐसा कहा, श्वेताम्बर मन्दिरमार्गी ने भगवान की प्रतिमा पर आँगी और यह चढ़ा दिया। दो शून्य चढ़ा दिये।

मुमुक्षु : मालामाल हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : मालामाल वहाँ कहाँ? वह तो वीतरागमूर्ति है। शुभभाव का निमित्त है। उसके ऊपर कुछ होता नहीं। जैसे वीतराग होते हैं (वैसी प्रतिमा होती है)। दर्पण में सामने जैसी चीज़ हो, वैसी दर्पण में दिखती है या दूसरी दिखती है? उसी प्रकार भगवान जैसे थे, वैसी प्रतिमा होनी चाहिए। समझ में आया? यहाँ तो पक्ष की बात नहीं, यहाँ तो सत्य क्या है? समझ में आया? उसी प्रकार एक व्यक्ति ने उड़ा दी। वह है ही नहीं। एक व्यक्ति ने शून्य चढ़ा दिया—मुकुट और यह और यह... ऐसा हो गया है, कहा। पचास वर्ष पहले कहा था। उसमें कहा था, हमारे ऊपर भरोसा बहुत न! यह महाराज कुछ कहते होंगे, ऐसा करके... फिर खबर पड़ी कि यह तो महाराज की श्रद्धा दूसरी है। मार्ग तो ऐसा है, भाई!

निक्षेपव्यवहार आता है और व्यवहार से ऐसा भी कहा जाता है कि 'जिनप्रतिमा जिनसारखी, वन्दे बनारासी तांहि, लेश दूषण होय तो वंदाय नहिं', ऐसा पाठ है। बनारसीदास में है। बनारसी विलास ग्रन्थ है न! सब देखे हैं। वीतराग प्रतिमा। जैसे दर्पण में जैसा मनुष्य सामने हो, वैसा दिखता है कि बाहर में ऐसा है और अन्दर में गहने दिखते हैं और कपड़े दिखते हैं, वैसा उसमें दिखता है? इसी प्रकार वीतराग जैसे हैं, वैसा प्रतिबिम्ब होना चाहिए। समझ में आया? वस्त्र नहीं, आंगी नहीं। वे तो इत्र लगाते हैं। इत्र करके ऊपर कपड़ा चिपकाते हैं। अरे! यह वह कहीं... भाई! मार्ग ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वीतराग की मूर्ति ही नहीं। आहाहा! यह वीतराग की मूर्ति, यहाँ कहते हैं, धातु पाषाण की होती है। चित्रामण की और फोटो आदि नहीं होते।

तो भी निश्चयनयकर... तो भगवान यहाँ विराजते हैं, कहते हैं। किसे? जिसे समभाव दशा प्रगट हुई है, उस समभाव में भगवान विराजते हैं। समझ में आया? साधु सन्त, विशेष साधु की बात ली है। साधु वीतरागी मूर्ति होते हैं। साधु तो अन्दर वीतराग दशा, आनन्द की लहरें उठती हों। आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... महाव्रत के विकल्प आते हैं, वे भी उन्हें दुःखरूप लगते हैं। यह मुनिपना, बापू! मुनि अर्थात् धन्य अवतार! जिसने अवतार सफल (किये)। उन मुनि के अन्तर में समभाव—राग से भिन्न

पड़कर, वीतरागी समामृत परिणाम प्रगट हुए हैं, उन परिणाम में वह आत्मा विराजता है। देवालय में नहीं। समझ में आया? है? देखो!

तो भी निश्चयनयकर शत्रु-मित्र... ऊपर जिसे अन्तर में समभाव है। है? **सुख-दुःख...** संयोग। अनुकूल या प्रतिकूल में समभाव, वीतराग... वीतराग... वीतराग। आहाहा! आत्मावलोकन ग्रन्थ है न? उसमें ऐसा लिया है, मुनि तो वीतराग का ही उपदेश दे। मुहु... मुहु ऐसा पाठ है। वीतराग... वीतराग। राग से भिन्न पड़कर वीतरागता प्रगट करो। यह मुनि। राग से लाभ और व्यवहार से लाभ, यह प्ररूपणा मिथ्यादृष्टि की है, मुनि की नहीं। आत्मावलोकन है। दीपचन्दजी कृत है। दीपचन्दजी है न? अनुभवप्रकाश और चिद्विलास (बनाये) उनका है। है, सब ग्रन्थ यहाँ हैं। उनमें ऐसा है। उसमें कड़ी-श्लोक है। मुनि है, वह मुहु... मुहु, बारम्बार वीतरागभाव का ही उपदेश दे। निमित्त और राग से हटकर स्वभाव में आ जा, ऐसा उपदेश दे। समझ में आया? उन्होंने ऐसी बात ली है। बहुत सरस। दीपचन्दजी ने चिद्विलास, अनुभवप्रकाश बहुत सरस बनाया है। एक अध्यात्म पंचसंग्रह है। अध्यात्म पंचसंग्रह एक पुस्तक बनायी है। सब यहाँ हैं। सब देखे हैं न! आहाहा!

कहते हैं कि देव किसमें विराजता है? **शत्रु-मित्र, सुख-दुःख, जीवित मरण जिसके समान हैं,...** जीवन हो तो ठीक, देह छूट जाये तो ठीक। आहाहा! जिसे अन्दर में वीतरागता वर्तती है। **जिसके समान है, तथा वीतराग सहजानन्दस्वरूप...** देखो, दशा! है? १२३ पहली, हों! पहली १२३ है न अन्दर? आया है? **वीतराग सहजानन्दस्वरूप एकरूप...** ऐसा चाहिए। वहाँ रूप है न? वीतराग सहजानन्द एकरूप। 'एक' डालना चाहिए। एकरूप, संस्कृत में ऐसा है। '**वीतरागसहजानन्दैकरूप-परमात्मतत्त्व**' आहाहा! क्या कहते हैं?

भगवान अन्दर वीतराग सहज आनन्द, स्वाभाविक आनन्द एकरूप। जिसमें भेद नहीं। ध्रुव.. ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव एकरूप। ऐसे परमात्मतत्त्व का सम्यक्श्रद्धान, ऐसे परमात्मतत्त्व का सम्यक्श्रद्धान, ऐसे परमात्मतत्त्व का सम्यक्ज्ञान, ऐसे परमात्मतत्त्व का चारित्ररूपस्थिरता-अन्दर रमणता। आनन्द में रमना, वह चारित्र। **अभेद रत्नत्रय में लीन ऐसे ज्ञानियों के सम चित्त में परमात्मा तिष्ठता है।** आहाहा! समझ में आया? जीवत्व, मरण, सुख, दुःख, आहाहा! शत्रु-मित्र। सबमें जिसे तीन कषाय का अभाव हो गया है,

वीतरागदशा प्रगट हुई है। ऐसी वीतराग सहजानन्द। आहाहा! सहजानन्द एकरूप परमात्मतत्त्व का श्रद्धान जिसे अन्दर प्रगट हुआ है। ज्ञान और चारित्र अभेद रत्नत्रय में लीन है, ऐसे ज्ञानियों के समचित्त में परमात्मा विराजते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! मुनि की व्याख्या की है। मुनि कैसे होते हैं? आहाहा! वे तो वीतराग सहजानन्द एकरूप परमात्मतत्त्व का सम्यक् श्रद्धान। त्रिकाल वस्तु का श्रद्धान, त्रिकाली वस्तु का ज्ञान और त्रिकाली वस्तु में स्थिरता। यह तीनों अभेद रत्नत्रय में। **निश्चय अभेदरत्नत्रय में लीन ऐसे ज्ञानियों के...** आहाहा! **सम चित्त में...** वीतरागी परिणाम में वह परमात्मा **तिष्ठता है।** आहाहा! समझ में आया?

वीतरागी परिणाम प्रगट हुए हैं और वह वीतरागी परिणाम इसके आश्रय से प्रगट हुए हैं। तो उस वीतरागी परिणाम में परमात्मा स्थित है। आहा! देहदेवालय में नहीं। आहाहा! समझ में आया? श्रीमद् में भी आता है न? चैतन्यप्रतिमा हो, चैतन्यप्रतिमा हो। आता है न? आहाहा! विकल्प जो दया, दान, व्रतादि के हैं, वह तो राग है। उससे रहित होकर, वीतरागी परिणाम में... कैसे वीतरागी परिणाम? ऐसे परमात्मतत्त्व की सम्यक्श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र, ऐसे समभाव में भगवान विराजता है। आहाहा! समभाव में आत्मा का अनुभव होता है। आहाहा! गजब बात, भाई!

ऐसा ही अन्य जगह भी समचित्त को परिणत हुए मुनियों का लक्षण कहा है। प्रवचनसार। प्रवचनसार, अध्याय तीसरा, गाथा-२४१। अन्दर संस्कृत में है। यह तब लिख लिया था। उसमें लिखा है। प्रवचनसार अध्याय तीसरा, चरणानुयोग, गाथा-२४१ में। **जिसके सुख-दुःख समान हैं,...** अनुकूल-प्रतिकूल संयोग में जिसे वीतरागता ही है। आहाहा! **शत्रु-मित्रों का वर्ग समान है,...** वापस वर्ग लिया। शत्रु भी बहुत और मित्र भी बहुत। वर्ग है न, वर्ग? वर्ग अर्थात् बहुत। यह ऐकड़िया का वर्ग न, नहीं कहते? पहला वर्ग, दूसरा वर्ग, तीसरा वर्ग। उसमें एक नहीं होता, बहुत होते हैं। इसी प्रकार शत्रु भी बहुत होते हैं, मित्र भी बहुत होते हैं। दोनों में समान है। ज्ञेय है, जाननेयोग्य है। कोई शत्रु-मित्र है नहीं। आहाहा! ऐसी समभाव वीतराग परिणति में वीतराग परमानन्दस्वरूप तिष्ठ रहा है। अपनी ऐसी वीतरागी परिणति में—पर्याय में वीतरागस्वरूप भगवान तिष्ठ रहा है। आहाहा! समझ में आया? वह राग से ज्ञात नहीं होता, ऐसा कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय से भगवान ज्ञात नहीं होता। आहाहा!

निश्चयरत्नत्रय वीतरागी परिणति, जिसमें विकल्प को अवकाश नहीं। आहाहा! ऐसी वीतराग परिणतिवन्त मुनि को यह परमात्मा तिष्ठ रहा है। समझ में आया? बाहर में यह प्रतिमा होती है। शुभभाव। अशुभ से बचने और कुस्थान से, उल्टे स्थान से बचने के लिये शुभभाव होता है। वह संवर, निर्जरा नहीं, धर्म नहीं। परन्तु ऐसा शुभभाव आवे, वह व्यवहार है। निश्चय की ऐसी दृष्टि अनुभव हुआ तो उसे ऐसा व्यवहार होता है। परन्तु वह व्यवहार पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! चाहे तो लाख मन्दिर बनावे और करोड़-अरब रुपये खर्च करे और हमेशा चौबीस घण्टे भगवान के पास बैठा रहे, वह शुभभाव है। पर का आश्रय हुआ न? शुद्धभाव में तो स्व का आश्रय है, शुभभाव में पर का आश्रय है। गुलाँट है। आहाहा!

प्रतिमा नहीं ही—ऐसा मानना, वह भी विरोध है और प्रतिमा के दर्शन से धर्म होता है, यह भी विरोध है। कहो, पोपटभाई! यह सब स्थानकवासी थे। यह तो थे की बात है न! स्थानक तो यह है, कहते हैं। परमात्मा में वास करे, वह स्थानकवासी है। आहाहा! वीतरागमार्ग में तो सत्य हो, वह चलेगा। उल्टा एक क्षण भी नहीं चलेगा। ऐसा मार्ग वीतराग का। तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव ने फरमाया। आहाहा!

प्रशंसा निन्दा समान है,... मुनि की वीतरागदशा में प्रशंसा-निन्दा (समान है)। लाख प्रशंसा करो तो भी समभाव है। बड़े-बड़े अभिनन्दन दे कि तुम ऐसे हो। क्या है? वह तो जड़ है, जड़ की पर्याय है। समभाव जिसे वर्तता है। निन्दा करोड़ हो जगत में, तो भी जिसे अन्तर में समभाव है। किसी के साथ विरोध नहीं। आहाहा! **पत्थर और सोना समान है,...** आहाहा! जंगल में गये हों और जरा पानी से दस्त साफ करने गये हों और उसमें नीचे हीरा का चरु दिखाई दे। करोड़ हीरे भरे हों, ऐसा चरु। वह सोना और पत्थर समान है। आहाहा! ऐसा नहीं होता कि, लाओ थोड़ा ले लेवें, अपने मन्दिर में काम आयेंगे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु एकान्त में उठा ले जाये तो कौन वहाँ था? यह आता है। साधुपना तो कहाँ है। यह तो कोई गृहस्थ हो, लो न! परन्तु जिसे समभाव प्रगट हुआ है। आहाहा! वह तो ऐसा चरु देखे तो भी, वह पत्थर जगत की चीज़ धूल है। और पत्थर

देखे, कंकड़, संगमरमर इत्यादि। आहाहा! समभाव है। आहाहा!

और जीवन-मरण जिसके समान हैं, ऐसा समभाव का धारण करनेवाला मुनि होता है। आहाहा! ऐसे मुनि के ज्ञान में यह भगवान तिष्ठता है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि दृष्टि में आवे तो तिष्ठता कहलाये न? वस्तु समभाव में, समभावी चीज़ दृष्टि में तो आयी नहीं, तो विराजता है कहाँ आया? यह विराजता है, ऐसा आया कहाँ से? क्या कहा यह, समझ में आया? वीतरागी परिणति में वीतरागमूर्ति आत्मा-परमात्मा-आत्मा दृष्टि में और ज्ञान में आया तो वहाँ आत्मा समभाव में है, ऐसा कहा जाता है। परन्तु जिसे समभाव ही हुआ नहीं और समभाव में परमात्मा है, वह दृष्टि में आया नहीं, समभाव बिना, तो उसके आत्मा में यह देव है, ऐसा है ही नहीं। उसके आत्मा में तो राग है। आहाहा! पुण्य के परिणाम हैं। उसमें उसकी यदि रुचि है तो उसके आत्मा में तो राग है। राग में आत्मा ज्ञात नहीं होता। आहाहा! राग में तो परद्रव्य ज्ञात होते हैं। समझ में आया? वीतराग... ओहो! गजब बात है!

वीतराग सम परिणाम। शत्रु-मित्र, जन्म-मरण, निन्दा-प्रशंसा, सुख-दुःख, सब में जिसे ज्ञाता-दृष्टापना प्रगट हुआ है। ऐसे वीतरागी मुनि के चित्त में—ज्ञान में भगवान तिष्ठ रहा है। समझ में आया? **अर्थात् ऐसे समभाव के धारक शान्तचित्त योगीश्वरों के चित्त में...** देखो! ऐसे समभाव के धारक। आहाहा! सम्यग्दर्शन, अनुभवसहित तीनों लिये हैं न? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र अभेद रत्नत्रय। ऐसे वीतरागी परिणाम में भगवान वीतरागस्वरूप परमात्मस्वरूप वीतराग परिणाम में तिष्ठ रहा है। उसके द्वारा दिखता है तो वहाँ रहा है। आहाहा! वह राग से नहीं दिखता। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे समभाव के धारक शान्तचित्त योगीश्वरों के... योगी—स्वरूप में जुड़ान हो गया है। आनन्द के नाथ में। आहाहा! लीन... लीन। शान्तचित्त। **योगीश्वरों के चित्त में शान्तदेव (चिदानन्द देव) तिष्ठता है।** आहाहा! उनके सम्यग्ज्ञान में, वीतरागभाव में चिदानन्ददेव तिष्ठता है। आहाहा! चिदानन्द देव है भगवान। आहाहा! चैतन्यमूर्ति प्रभु है। चैतन्य प्रतिमा वीतरागमूर्ति है। आहाहा! वह समभाव में दिखता है। तो समभाव में परमात्मा तिष्ठता है, ऐसा है। देहदेवालय में नहीं। देहदेवालय में तो मूर्ति—प्रतिमा है। आहाहा! समझ में आया? यह १२३ हुई। अब दो श्लोक विशेष हैं।

गाथा - १२३ *२

अथ स्थलखंख्याबाह्यं प्रक्षेपकद्वयं कथ्यते –

१२३) मणु मिलियउ परमेसरहँ परमेसरु वि मणस्स।
बीहि वि समरसि हूवाहँ पुज्ज चडावउँ कस्स।।१२३-२।।

मनः मिलितं परमेश्वरस्य परमेश्वरः अपि मनसः।
द्वयोरपि समरसीभूतयोः पूजां समारोपयामि कस्य।।१२३-२।।

मणु इत्यादि। मणु मनो विकल्परूपं मिलियउ मिलितं तन्मयं जातम्। कस्य संबन्धित्वेन। परमेसरहं १परमेश्वरस्य परमेसरु वि मणस्स परमेश्वरोऽपि मनः संबन्धित्वेन लीनो जातः बीहि वि समरसिहूवाहं एवं द्वयोरपि समरसीभूतयोः पुज्ज पूजां चडावउं समारोपयामि। कस्स कस्य निश्चयनयेन न कस्यापीति। अयमत्र भावार्थः। यद्यपि व्यवहारनयेन गृहस्थावस्थायां विषयकषाय-दुर्ध्यानवञ्चनार्थं धर्मवर्धनार्थं च पूजाभिषेकदानादिव्यवहारोऽस्ति तथापि वीतरागनिर्विकल्प-समाधिरतानां तत्काले बहिरङ्गव्यापाराभावात् स्वयमेव नास्तीति।।१२३-२।।

इस प्रकार इकतीस दोहा-सूत्रों का-चूलिका स्थल कहा। चूलिका नाम अंत का है, सो पहले स्थल का अंत यहाँ तक हुआ। आगे स्थल की संख्या से सिवाय दो प्रक्षेपक दोहा कहते हैं –

लीन हुआ मन परमेश्वर में परमेश्वर मन में बसते।
जब दोनों ही समरस हो गए पूजा को क्या शेष रहे।।१२३-२।।

अन्वयार्थ :- [मनः] विकल्परूप मन [परमेश्वरस्य मिलितं] भगवान् आत्माराम से मिल गया-तन्मयी हो गया [परमेश्वरः अपि] और परमेश्वर भी [मनसः] मन से मिल गया तो [द्वयोः अपि] दोनों ही को [समरसीभूतयोः] समरस (आपस में एकमएक) होने पर [कस्य] किसकी अब मैं [पूजं समारोपयामि] पूजा करूँ। अर्थात् निश्चयनयकर किसी को पूजना, सामग्री चढ़ाना नहीं रहा।

भावार्थ :- जब तक मन भगवान से नहीं मिला था, तब तक पूजा करता था, और जब मन प्रभु से मिल गया, तब पूजा का प्रयोजन नहीं है। यद्यपि व्यवहारनयकर

* पाठान्तर :- परमेश्वरस्य = परमोश्वरस्य परमात्मा

गृहस्थ-अवस्था में विषय कषायरूप खोटे ध्यान को हटाने के लिये और धर्म को बढ़ाने के लिये पूजा, अभिषेक, दान आदि का व्यवहार है, तो भी वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में लीन हुए योगीश्वरों को उस समय में बाह्य व्यापार का अभाव होने से स्वयं ही द्रव्य-पूजा का प्रसंग नहीं आता, भाव-पूजा में ही तन्मय हैं ।।१२३-२।।

गाथा-१२३ *२ पर प्रवचन

इस प्रकार इकतीस दोहा-सूत्रों का-चूलिका स्थल कहा। चूलिका नाम अन्त का है, सो पहले स्थल का अन्त यहाँ तक हुआ। आगे स्थल की संख्या से सिवाय दो प्रक्षेपक दोहा कहते हैं— दो विशेष प्रक्षेपक। आहाहा! वीतराग परिणाम में वीतरागी परमात्मा स्थित है, ऐसा कहते हैं। राग परिणाम में परद्रव्य स्थित है। आहाहा! चाहे तो तीन लोक के नाथ की भक्ति हो, तो शुभराग है। शुभराग में परद्रव्य स्थित है। आहाहा! और शुद्धभाव में भगवान स्थित है। समझ में आया? शुद्धभाव, उपयोगशुद्ध—शुद्धउपयोग। शुभ है, वह अशुद्धउपयोग है। शुभभाव जो भगवान की भक्ति आदि का है, वह अशुद्ध उपयोग है। अशुद्ध उपयोग में परद्रव्य तिष्ठ रहा है। तथा शुभ-अशुभ से रहित शुद्ध उपयोग में भगवान तिष्ठ रहा है। आहाहा! समझ में आया?

परमात्मप्रकाश, योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त वनवासी थे। १३०० वर्ष पहले हुए। कुन्दकुन्दाचार्य के बाद। कुन्दकुन्दाचार्य की छाप इसमें है। बाद के मुनियों ने कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक और शास्त्रों का आधार बहुत लिया है। बाद के मुनियों ने। ऐसी कुन्दकुन्दाचार्य की स्थिति! ओहो! इसलिए तीसरे नम्बर में आये न! 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुन्दकुन्दर्यो'। देखो! गौतम और कुन्दकुन्दाचार्य के बीच तो बहुत मुनि हुए। 'मंगल कुन्दकुन्दाचार्य, जैन धर्मोस्तु मंगलं।' वीतरागीभाव धर्म, वह मांगलिक है। राग, वह मांगलिक नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है। वाद-विवाद करे तो कहीं पार आवे, ऐसा नहीं है। बनारसीदास नाटक समयसार में कहते हैं, 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा, वाद-विवाद करे सो अन्धा।' समयसार नाटक दिया है न? उसमें यह है। आहाहा! 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा।' सहजात्मस्वरूप परमात्मस्वरूप, उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह सहज का धन्धा है। वाद-विवाद करे कि नहीं,

व्यवहार आता है और व्यवहार से होता है। यह सब वाद-विवाद छोड़। आहाहा! समझ में आया? दूसरा श्लोक। १२३ का दूसरा।

१२३) मणु मिलियउ परमेसरहँ परमेसरु वि मणस्स।
बीहि वि समरसि हूवाहँ पुज्ज चडावउँ कस्स॥१२३-२॥

आहाहा! **अन्वयार्थः—विकल्परूप मन...** आहाहा! **'परमेश्वरस्य मिलितं' भगवान आत्माराम से मिल गया...** आहाहा! जो विकल्प परसन्मुख था, उसे छोड़कर निर्मल परिणति आत्मा के साथ एक हो गयी। आहाहा! मेरा मन अर्थात् वीतराग परिणति आत्मा के साथ मिल गयी। आहाहा! विकल्परूपी मन भगवान आत्माराम में मिल गया। **'परमेश्वरस्य मिलितं'** आहाहा! रागरहित वीतराग परिणति परमेश्वर भगवान आत्मा में मिल गयी। आहाहा! है? **और परमेश्वर भी मन से मिल गया...** आहाहा! शुद्ध परिणति भगवान में मिल गयी और भगवान शुद्ध परिणति में मिल गया। आहाहा! अब किसे चढ़ाऊँ पूजा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **परमेश्वर भी मन से मिल गया...**

'द्वयोः अपि' दोनों ही को समरस (आपस में एकमेक) होने पर किसकी अब मैं पूजा करूँ। पूज्य और पूजक भाव दोनों एक हो गये अन्दर में। आहाहा! परम वीतरागभाव से द्रव्य में भाव मिल गया और भगवान भी परम वीतरागभाव में आ गया। आहाहा! समझ में आया? शुद्धभाव में आत्मा मिल गया और आत्मा शुद्धभाव में आ गया। आहाहा! परस्पर एक हो गये तो किसकी पूजा करूँ? आहाहा! पूज्य भगवान आत्मा अपनी पूजनीक वीतराग परिणति में आ गया। आहाहा! क्या कहा? वीतरागी पर्याय में भगवान पूर्णानन्द है, ऐसा ज्ञान आ गया। यह हुआ उसमें यह आ गया। आहाहा! समझ में आया? चीज़ परिणति में नहीं आती। परन्तु चीज़—वस्तु है, उसका ज्ञान परिणति में आता है। तो भगवान परिणति में आ गया, परिणति वहाँ ढल गयी। आहाहा! कठिन बातें, बापू! चौथे काल की होगी यह सब? यह पंचम काल के साधु हैं और पाँचवें कालवाले को कहते हैं। आहाहा!

विकल्परूपी मन अर्थात् उसका विकल्प टल गया, ऐसा, हों! **'परमेश्वरस्य मिलितं'** निर्विकल्पदशा हो गयी। आहाहा! और परमेश्वर निर्विकल्प में आ गया। आहाहा! निर्विकल्पदशा में भगवान का भान हुआ। आहाहा! जब शुद्ध उपयोग होता है, पुण्य-

पाप से रहित, तो शुद्ध उपयोग में आत्मा भासित होता है। यह शुद्ध उपयोग द्रव्य में मिल गया अर्थात् एकत्व हुआ। मिल गया इसका अर्थ शुद्ध उपयोग है, वह द्रव्य के साथ एकत्व नहीं होता। शुद्ध उपयोग तो शुद्ध में रहता है परन्तु शुद्ध उपयोग में पूरा आत्मा ख्याल में आ गया तो शुद्ध उपयोग उसमें मिल गया और आत्मा उसमें ख्याल में आ गया तो आत्मा शुद्ध उपयोग में आ गया, ऐसा। आ गया का अर्थ (यह कि) शुद्ध उपयोग में उसका ज्ञान हुआ। आहाहा!

शुभ-अशुभ उपयोग जो है, हिंसा, झूठ, चोरी, विषयवासना, वह अशुभउपयोग। और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह शुभ। दोनों मिलकर अशुद्ध, दोनों मिलकर अशुद्ध। और वह अशुद्ध छोड़कर वीतरागी परिणति शुद्ध उपयोग होता है, वह शुद्ध उपयोग आत्मा के साथ एकाकार (हो गया)। क्योंकि वहाँ झुक गया न? शुभ की दिशा तो पर के ऊपर थी और शुद्ध की दिशा अन्तर में हुई। आहाहा! ऐसा मार्ग। यह हो...हा धमाधम करे, उसे जँचना कठिन। ऐई! रथयात्रा और अमुक और हो...हा। अजमेर में अभी बहुत खेद है। सब दुकानें बन्द कर दीं। बड़ी प्रतिमा गयी, हजार तोला चाँदी की और तीन छत्र गये। लोगों को बहुत ऐसा हुआ तो त्रास हो गया है। दुकानें बन्द कर दीं। बाहर की चीज़ ऐसी है, भाई! आत्मा की कोई चोरी कर जाये? आहाहा!

सूरदास में आता है। सूरदास है न? सूरदास अन्धे हो गये हैं न? अन्यमति में आता है। उसकी लोग बात करे। कृष्ण थे, वे दूर चले गये, भाग गये। उसके हाथ में से। सूरदास कहते हैं कि तुम दूर जाओ परन्तु मेरे हृदय में से दूर नहीं जाओ। अन्य (मत) में बात आती है। आँख बन्द और ऐसे हाथ पकड़कर बैठे थे। वह हाथ छोड़कर चले गये। भगवान! तुम शरीर से दूर गये, हमारे ज्ञान में तुम दूर नहीं, अन्दर नजदीक ही हो। आहाहा! इसी प्रकार धर्मी के हृदय में तीर्थंकर विराजते हैं। आहाहा! उत्तराध्ययन में एक आता है। बहुश्रुत अध्ययन आता है। तब सब सभा में कहते न। ऐसा कि बहुश्रुत ज्ञानी के ज्ञान में परमात्मा विराजते हैं। वह सब वाणी निकलती है, वह परमात्मा कहते हैं, वही निकलती है। ऐसा आता है। समझ में आया? आहाहा!

मेरा वीतरागीभाव स्वभाव-सन्मुख हो गया और मेरा स्वभाव वीतरागभाव में आ गया, अब मैं किसकी पूजा करूँ? कहो, सेठ!

मुमुक्षु : पूजा नहीं करने का आया सही।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हो तो पूजा करने को निवृत्त कौन है? यह तो उसमें रह नहीं सके, तब आता है। इसमें आ जाने के बाद बाहर की पूजा कहाँ रही? लक्ष्य ही बाहर का रहा नहीं। आहाहा! वह तो अन्दर में स्थिर नहीं रह सके तो अशुभ टालने के लिये शुभभाव आते हैं। भक्ति, दान, दया, भाव, अहिंसा, सत्य, अचौर्यभाव, वे सब शुभभाव हैं। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, ये पाँच महाव्रत, वह शुभभाव है। और वीतराग की दशा अन्दर प्रगट हो, वह शुद्धभाव है। वह परम अहिंसा है। आहाहा! राग की उत्पत्ति न होना और भगवान वीतरागमूर्ति प्रभु के आश्रय से वीतरागी परिणति उत्पन्न हो, वह अहिंसा परम धर्म है। आहाहा! पर को नहीं मारने का शुभभाव, वह व्यवहार पुण्य है। निश्चय से तो हिंसा है। कठिन बात है, भाई! पण्डितजी! आहाहा!

किसकी अब मैं पूजा करूँ। अर्थात् निश्चयनयकर किसी को पूजना, सामग्री चढ़ाना नहीं रहा। आहा! अपनी निर्मल परिणतिरूपी सामग्री उसमें चढ़ा दी। आहाहा! वीतराग अकषाय शान्तमूर्ति प्रभु, पूर्ण केवलज्ञान की मूर्ति विराजता है। आया न? उसमें आया था, ज्ञानमय। एक ज्ञानमय। ज्ञान... ज्ञान... समझण का पिण्ड वह है। यह जो दृष्टि में वीतरागी परिणति में आ गया, वीतरागी परिणति उस ओर झुक गयी, अब किसकी पूजा करूँ? आहाहा! पूजा करनेवाला मेरे ज्ञान में आ गया और ज्ञान की परिणति में वह ज्ञात हो गया। आहाहा! मार्ग ऐसा है। सत्य बात निश्चय की लोगों को कठिन पड़े न, इसलिए उड़ा दी। और व्यवहार सीधा-सट्ट (लगता है)। व्यवहार करूँगा, फिर निश्चय होगा। धूल भी नहीं होगा। सुन न! धूल भी नहीं होगा अर्थात्? अच्छा पुण्य भी नहीं बँधेगा। समकिती को तीर्थंकर गोत्र बँधता है। मिथ्यादृष्टि को तीर्थंकरगोत्र नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? जिसे वीतरागभाव रुचा है, परिणमा है, उसे राग की रुचि नहीं होती। तथापि उसे राग आवे तो वह तीर्थंकरगोत्र बाँधे। या बलदेव हो, इन्द्र हो। '**कामदं मोक्षदं चैव**' आया न? '**ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः**' ॐकार भावस्वरूप स्वयं। ॐकार शब्द के दो प्रकार। एक आत्मिक, एक पुद्गल को। आता है न? ॐकार प्रणवमन्त्र में। इसमें भी है।

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः॥१॥

ॐकार शब्द विशद् याकै उभयरूप, एक आत्मिक भाव एक पुद्गल को। ॐ ऐसा विकल्प उठता है, वह पुद्गल का है और आत्मा वस्तु है, वह मूल में है। आहाहा! ॐकार शब्द विशद। विशद्—विशाल। याकै उभयरूप, एक आत्मिक। आत्मा स्वयं ॐ स्वरूप है। भावस्वरूप, हों! आहाहा! एक उभयरूप, एक पुद्गल को शुद्धता स्वभाव लिये, ... उठ्यो राय चिदानन्द, अशुद्ध विभाव ले प्रभाव जड़... शुद्धता जहाँ अन्दर प्रगट हो वहाँ जड़ता का नाश हो जाता है। आहाहा! अशुद्धता टल जाती है। है न? 'त्रिभुवन त्रिकाल तातैं व्यय, ध्रुव, उत्पाद, ज्ञाता को सुहात बात नहीं, लाख कळको, बनारसीदास जिनके हृदय ॐकार भाव, जैसो प्रकाश शशिपक्ष के शुकल को।' चन्द्र। दूज, तीज... 'निर्मल ज्ञानप्रकाश प्रपंच नरलोक, तामैं शुद्ध ज्ञानप्रधान कर...' तब प्रकाशित किया था। अपने ॐ कार छपाया है न? स्वाध्यायमन्दिर में। (संवत्) १९९५। ॐ। इटली का पत्थर है वह। यहाँ का जो संगमरमर साधारण है। इटली का ऊँचा आता है। ॐ है न ऊपर? वह इटली का पत्थर है। (संवत्) १९९५ का फाल्गुन महीना। तब यह बनाया। यहाँ तो पहले से चलता है न, भाई!

अर्थात् शुद्धनिश्चयनयकर किसी को पूजना, सामग्री चढ़ाना नहीं रहा। आहाहा!

भावार्थः—जब तक मन भगवान से नहीं मिला था, आहाहा! **तब तक पूजा करता था,...** तब शुभभाव होता था। आहाहा! **और जब मन प्रभु से मिल गया, तब पूजा का प्रयोजन नहीं है।** अन्दर में पूज्य की पूजा हो गयी। पूज्य ऐसा भगवान परमात्मा अपना निज स्वरूप, उसकी वीतरागी पर्याय से पूजा हो गयी, अब किसकी पूजा करूँ? आहाहा! करने का हो तो यह है, बाकी सब हो, व्यवहार आता है परन्तु बन्ध का कारण है। आता है, हों! व्यवहार। निश्चय हुआ तो व्यवहार (आता है)।

पूर्ण वीतराग होने के बाद व्यवहार नहीं आता। समझ में आया? केवलज्ञानी को कोई व्यवहार नहीं। अकेले आनन्दकन्द, बस। वे किसी की पूजा नहीं करते, किसी को वन्दन नहीं करते। यह आया था। कहीं अभी दूसरे में आया था। ऐसा कि केवली छद्मस्थ का विनय करे, यह श्वेताम्बर कहते हैं। अभी अखबार में आया था। बात

सच्ची। श्रीमद् को उस समय थोड़ी छाप रह गयी। केवलज्ञानी गुरु छद्मस्थ का (विनय) करे। छद्मस्थ गुरु हो तो केवलज्ञानी विनय करे। यह आत्मसिद्धि में आता है। 'गुरु रहे छद्मस्थ पण विनय करे भगवान।' ऐसा नहीं होता। आत्मसिद्धि में आता है। सब खबर है। हमने तो दूसरा अर्थ किया था। १९९५ में आत्मसिद्धि के अर्थ किये थे न! गाँधीजी राजकोट में व्याख्यान में आये थे। विनय का अर्थ क्या? कि पूर्व में गुरु का विनय किया था, वह केवलज्ञान में—ज्ञान में आया। यह विनय। वर्तमान केवली दूसरा किसका विनय करे? पूर्णानन्द वीतरागदशा। आहाहा! वन्द्य-वन्दक भाव छठवें गुणस्थान तक होता है। विकल्प है वहाँ। फिर वन्द्य-वन्दक भाव होता ही नहीं। सातवें से (ऊपर नहीं होता)। यह आया था। श्वेताम्बर में यह बात है। केवली विनय करे (छद्मस्थ का)। दशवैकालिक में है। '....' यह पाठ भी कण्ठस्थ है। दशवैकालिक के नौंवे अध्ययन में है। अनन्त ज्ञान प्राप्त हो, परन्तु छद्मस्थ गुरु का विनय नहीं छोड़ते। झूठ है। केवलज्ञानी परमात्मदशा किसका विनय करे?

तीर्थंकर तो जब छद्मस्थ (दशा में) दीक्षित होते हैं, तब भी णमो सिद्धाणं (बोलते हैं), बस। पाँच को नहीं। णमो सिद्धाणं करके अन्तर चारित्र में उतर जाते हैं। आहाहा! यह सब क्षत्रिय होते हैं। तीर्थंकर बनिये नहीं होते। माँगीलालजी! बनिया मोक्ष जाते हैं, केवल (ज्ञान) प्राप्त करके, परन्तु तीर्थंकर नहीं होते। तीर्थंकर तो क्षत्रिय, उनके शरीर और उनका ललाट और उनका पराक्रम और उनका ज्ञान अलौकिक होता है। अनन्त तीर्थंकर हुए—वे सब क्षत्रिय थे। आहाहा!

यद्यपि व्यवहारनयकर गृहस्थ अवस्था में विषय कषायरूप खोटे ध्यान को हटाने के लिये... गृहस्थाश्रम में पूजा होती है न? **धर्म को बढ़ाने के लिये...** (धर्म अर्थात्) पुण्य। **पूजा, अभिषेक, दान आदि का व्यवहार है,...** है? पीछे है। **व्यवहारनयकर गृहस्थ अवस्था में विषय कषायरूप खोटे ध्यान को हटाने के लिये...** समकिती को भी **धर्म को बढ़ाने के लिये...** शुभभाव अशुभ को टालने के लिये **पूजा, अभिषेक, दान आदि का व्यवहार है,...** ऐसा व्यवहार है, परन्तु व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा नहीं है। व्यवहार आता है अन्दर।

मुमुक्षु : व्यवहार साधन और निश्चय साध्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह साधन-फाधन आरोप से कथन है। यह तो कहा न? मोक्षमार्ग दो प्रकार के हैं। सच्चा दर्शन, सम्यग्दर्शन को—निश्चय को सत्य कहा। और व्यवहार समकित तो राग को व्यवहार समकित कहते हैं। वह तो आरोप से कथन है। आहाहा! ऐसे सर्वत्र लक्षण जानना, ऐसा मोक्षमार्गप्रकाशक में सातवें अध्याय में लिखा है। सर्वत्र निश्चय-व्यवहार का ऐसा लक्षण है। आहाहा! अपने आत्मा में अपने शुद्ध स्वरूप की प्रतीति, ज्ञान, अनुभव होना, वह निश्चय सम्यग्दर्शन और साथ में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प होना, उसे व्यवहार आरोप करके (कहा है)। है तो राग, परन्तु इस निश्चय का सहचर देखकर उपचार से व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया? मोक्षमार्गप्रकाशक में है। नहीं यहाँ?

मोक्षमार्ग कहीं दो नहीं है। परन्तु मोक्षमार्ग का कथन दो प्रकार से है। वहाँ सच्चे मोक्षमार्ग का निरूपण, वह निश्चय मोक्षमार्ग है। जहाँ मोक्षमार्ग तो नहीं, परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त है, सहचारी है, उपचार से मोक्षमार्ग कहते हैं। वह व्यवहार मोक्षमार्ग राग का कारण। कारण कि निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा लक्षण है। साधक कहा, वहाँ भी व्यवहार से साधक है। है तो बाधक, परन्तु वहाँ निश्चय साधक का आरोप देकर व्यवहार (कहा)। यह बहुत सरस है। यह सातवाँ अध्याय है। क्योंकि निश्चय व्यवहार का सर्वत्र ऐसा लक्षण है। बहुत सरस! यह तो जब पहले (संवत्) १९८२ के वर्ष में देखा था, १९८२-८२, फिर १९८४ के वर्ष में लिख लिया। हम पुस्तक नहीं रखते थे न! लोग बेचारे तो बहुत देते थे। १९८४ के वर्ष में यह सातवाँ अध्याय लिख लिया। शीशपेन से लिखा हुआ रखा है। शीशपेन समझे? यह बहुत सरस। पेन से लिखा हुआ रखा है। १९८४ के वर्ष। १६ और ३२=४८ वर्ष हुए। यहाँ बगसरा है, बगसरा। वहाँ लिखा। बहुत सरस! ओहोहो! बात वह बात! आहाहा! व्यवहार है, परन्तु वह उपचार से कथन है। वह वास्तविक तत्त्व है नहीं। आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ व्यवहार आता है, परन्तु उस व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा नहीं है। व्यवहार जाननेयोग्य बीच में आता है। **तो भी वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में लीन हुए योगीश्वरों को उस समय में बाह्य व्यापार का अभाव होने से स्वयं ही द्रव्य-पूजा का प्रसंग नहीं आता,...** अन्दर ध्यान में स्थित हैं, उन्हें द्रव्य-पूजा का प्रसंग नहीं

है। वह भावपूजा में ही तन्मय है। आहाहा! यह स्पष्टीकरण टीकाकार ने किया है, हों! समझ में आया? '**निजशुद्धात्मद्रव्ये स्थापयति यः स एव मोक्षं लभते**' यह तो अभी अन्तिम श्लोक है। यह न? १२३ आयी है न? आहाहा! है, है। '**पूजाभिषेकदानादि-व्यवहारोऽस्ति**' संस्कृत में है। फिर १२३ गाथा अभी एक है। यह तीसरा प्रक्षेपक है। **स्वयं ही द्रव्य-पूजा का प्रसंग नहीं आता, भावपूजा में ही तन्मय है।** भावपूजा भगवान वीतराग परिणति से वीतरागमूर्ति प्रभु में लीन हो जाये, वह भावपूजा है। ऐसे धर्मात्मा को अन्दर स्थिर न हो सके, तब व्यवहार पूजा आती है। उसे व्यवहार कहा, हों! अज्ञानी को तो व्यवहार भी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो है ही कहाँ? व्यवहार का नकार करते हैं न! ४१३ गाथा, समयसार। वह तो व्यवहारमूढ़ है। अनादिरूढ़ व्यवहारमूढ़। समझ में आया? निश्चय अनारूढ़। ऐसे तीन शब्द हैं। ४१३, समयसार। जिसे आत्मा का ज्ञान, सम्यक् अनुभव नहीं, वह तो व्यवहारमूढ़ है। अनादिरूढ़ है। वह व्यवहार अनादिरूढ़ क्रिया है, वह आत्मा की क्रिया कहाँ है। और निश्चय में अनारूढ़ है, स्वरूप में अन्दर आरूढ़ नहीं। अकेला व्यवहार में आरूढ़ है। वह तो अनादि मूढ़ जीव है। आहाहा! विशेष १२३ में लेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, आसोज शुक्ल ११, रविवार
दिनांक-०३-१०-१९७६, गाथा-१२३ (२-३), (दूसरा अध्याय) १, प्रवचन-९४

परमात्मप्रकाश १२३ का दूसरा। चल तो गयी है, नहीं? फिर से लेते हैं।

१२३) मणु मिलियउ परमेसरहँ परमेसरु वि मणस्स।
बीहि वि समरसि हूवाहँ पुज्ज चडावउँ कस्स॥१२३-२॥

आहाहा! क्या कहते हैं? मन अर्थात् विकल्परूप भाव, '**परमेश्वरस्य मिलितं**' **भगवान आत्माराम से मिल गया**—अर्थात् आनन्द ज्ञानस्वरूप में पर्याय एकाकार हो गयी। विकल्प जो मन है, वह रहा नहीं। उसका नाम भावपूजा है। आहाहा! भगवान आत्मा। परमेश्वर कहा न? परम ईश्वर। भगवान की व्याख्या अभी आयी थी एक जगह। वैसे तो भग का अर्थ ज्ञानादि लक्ष्मी होता है न? भग अर्थात् योनि में उत्पन्न न होना, वह भगवान। भग अर्थात् योनि, उत्पत्ति में नहीं आना, इसका नाम भगवान। चौरासी लाख की योनि में उत्पन्न नहीं होना, उसे भगवान कहा जाता है। ऐसा यह भगवान परमेश्वर... आहाहा! उसमें मन मिल गया। अर्थात् कि मन मर गया। अर्थात् कि विकल्प छूट गया और अन्तर ज्ञानानन्द में एकाकार हुआ। अब कहते हैं, मैं किसकी पूजा करूँ? आहाहा! समझ में आया?

परमेश्वर भी मन से मिल गया... निर्विकल्पदशा होने पर परमेश्वर मिला और परमेश्वर निर्विकल्पदशा में आया। आहाहा! सेठ! अन्त में करने का यह है। समझ में आया? आहाहा! भगवान परमज्योति चैतन्यज्योति आनन्द का धाम, उसमें मन को मारकर अर्थात् अन्दर में जाने से मन रहता नहीं। इसलिए मन को डर है न? आता है न यह? कि जो अन्दर में जायेगा तो मन मर जायेगा। इसलिए बाहर रहूँ, यह ठीक है तो मेरा—मन का अस्तित्व तो रहेगा। मन है, वह यदि अन्दर में जायेगा तो मन को मार डालेगा यह तो। इसलिए बाहर भ्रमूँ तो मन टिक सकता है। आहाहा!

भगवान चैतन्यधातु सर्वज्ञस्वभावी परमेश्वर में मन की परिणति अर्थात् राग बिना की निर्मल परिणति उसमें मिल गयी और परमेश्वर परिणति में आ गया। आहाहा! लो, यह पूजा! ऐई! देवीलालजी! यह देव की पूजा। आहाहा! भगवान पूर्णानन्दस्वरूप अस्तिरूप से परमेश्वर ही आत्मा है। परम ईश्वर के स्वभाव का सम्पन्न, वह आत्मा।

उस आत्मा में निर्मल परिणति रागरहित, मनरहित अन्दर में परिणति एकाकार हुई... आहाहा! वहाँ ध्याता, ध्यान और ध्येय के भेद भी नहीं रहे। आहाहा!

दोनों ही को समरस होने पर... देखो! '**समरसीभूतयोः**' दोनों वीतरागभावरूप हो गये। राग था, उसे छोड़कर अन्दर में दृष्टि करके स्थिर हुआ तो समरस हुआ, वीतरागभाव प्रगट हुआ। आहाहा! **(आपस में एकमएक) होने पर... 'कस्य पूजां समारोपयामि' किसकी अब मैं पूजा करूँ...** सामग्री चढ़ाकर किसे करूँ? भगवान तो पूजा में आ गये। आहाहा! **निश्चयनयकर किसी को पूजना, सामग्री चढ़ाना नहीं रहा।** बाहर की सामग्री वह तो है, परन्तु वह विकल्प होता है, अन्दर में निर्विकल्प ध्यान में रह नहीं सकता, तब उसे विकल्प / शुभराग आवे, तब बाहर की पूजा करने में आवे, ऐसा कहा जाता है। परन्तु अन्दर में जहाँ आत्मा देखनेवाले को देखा, जाननेवाले को जाना, स्थिर होनेवाले में स्थिर हुआ। स्थिर वस्तु चारित्र वस्तु है आत्मा में, उसमें स्थिर हुआ, वह निर्विकल्प आनन्द है। लो, यह मार्ग है! ऐसा मार्ग भारी कठिन। क्या हो? यह कहेंगे।

भावार्थः—जब तक मन भगवान से नहीं मिला था, तब तक पूजा करता था,... सम्यग्दर्शनसहित की बात है, हों! यहाँ। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञायकभाव, जिसमें पर्याय का भेद भी नहीं, ऐसा जो भगवान त्रिकाली आत्मा, उसमें जिसकी परिणति लीन हो गयी, फिर किसकी पूजा करना? कहते हैं। **भगवान से नहीं मिला था, तब तक पूजा करता था,...** यह समकिती की बात है, हों! यहाँ। सम्यग्दृष्टि ने अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप में अनुभव में प्रतीति की है, उसमें स्थिर नहीं रह सके, इसलिए विकल्प से व्यवहार पूजा करने में आता है। वह भी गृहस्थाश्रम के लिये कहेंगे, मुनि को नहीं। समझ में आया? आहाहा! **जब मन प्रभु से मिल गया, तब पूजा का प्रयोजन नहीं है।** आहाहा!

अन्यमत में आता है एक। यह सूरदास आते हैं न सूरदास? अन्यमत में। वे श्रीकृष्ण से मिले थे, श्रीकृष्ण से। श्रीकृष्ण... स्वयं सूरदास है। श्रीकृष्ण हाथ पकड़कर खड़े हैं। हाथ छुड़ाकर कृष्ण चले गये। तो सूरदास कहते हैं कि प्रभु! तुम बाहर की नजर से तो छूट गये, परन्तु मेरे अन्दर में से तुम नहीं छूटोगे। मेरे भगवान आत्मा में मैं लीन होता हूँ। वहाँ से कृष्ण तुम दूर नहीं जा सकोगे। कर्म कृषे सो कृष्ण कहिये। यह अज्ञान और राग-द्वेष को कृषकर नाश करे, उसे कृष्ण कहते हैं। ऐसा भगवान आत्मा

अपने स्वरूप में राग-द्वेष को कृष अर्थात् नाश करके स्थिर होता है, वह कहाँ जायेगा? वह भगवान दूर कहाँ से रहेगा? आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई!

जब मन प्रभु से मिल गया, तब पूजा का प्रयोजन नहीं है। यद्यपि व्यवहारनयकर... भाषा ऐसी है। सम्यग्दृष्टि की बात है, हों! **गृहस्थ अवस्था में...** मुनि की यहाँ बात ली ही नहीं। **गृहस्थ अवस्था में विषय कषायरूप खोटे ध्यान को हटाने के लिये...** परसन्मुख के झुकाव का आर्तध्यान **हटाने के लिये और धर्म को बढ़ाने के लिये...** धर्म अर्थात् शुभ में आते हैं तो शुद्धता थोड़ी बढ़ती है। अशुभ में शुद्धता अल्प है और शुभकाल में शुद्धता थोड़ी अशुभ गया उतनी बढ़ती है। उसे धर्म की वृद्धि, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? शुभभाव है, वह है तो राग, परन्तु उस पूजा के काल में, शुभभाव में अशुभ का नाश होता है और अशुभ टलता है, इतनी शुद्धि बढ़ती है। उस **धर्म को बढ़ाने के लिये पूजा...** गृहस्थाश्रम में पूजा होती है। भगवान की पूजा। **अभिषेक, दान आदि का व्यवहार है,...** समकिती को विकल्प आता है। मुनि को आहार देना इत्यादि।

तो भी वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में लीन हुए... ऐसा होने पर भी गृहस्थाश्रम में विकल्प को छोड़कर... आहाहा! **वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में लीन हुए...** रागरहित वीतरागी परिणति 'राग दाह दहे सदा...' 'राग आग दाह दहे सदा, ताते समामृत सेईये।' रागरूपी अग्नि का दाह। वह आत्मा को जलाता है, उसमें आत्मा की शान्ति जलती है। आहाहा! इसलिए 'राग आग दाह दहे सदा, ताते समामृत सेईये।' यह समरसी भाव कहा न? मार्ग बहुत अलौकिक है, भाई यह तो! बाहर से प्राप्त हो, यह ऐसी चीज़ नहीं है। परन्तु वस्तु अन्तर में है न? अन्तरात्मा है न? आहाहा! अन्तर आत्मा, उसमें अन्तर में एकाकार होना, वह अन्तरात्मा की धर्मदशा है। आहाहा!

योगीश्वरों को उस समय में बाह्य व्यापार का अभाव होने से... मुनियों को तो बाहर के व्यापार का तो अभाव होता है। कब? अन्दर में ध्यान में—आनन्द में आवे तब। आहाहा! **स्वयं ही द्रव्य-पूजा का प्रसंग नहीं आता,...** मुनि को स्वयं द्रव्य-पूजा आदि का विकल्प नहीं होता। **भावपूजा में ही तन्मय हैं।** आहाहा! जिन्हें मैं आत्मा हूँ, मैं अनुभव करता हूँ—ऐसा भी विकल्प नहीं। यह दशा—वीतरागभाव, उसे भगवान मोक्ष का मार्ग कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह १२३ का दूसरा (श्लोक) हुआ।

गाथा - १२३ *३

१२३-३) जेण णिरंजणि मणु धरिउ विषय-कसायहिँ जंतु।
मोक्खहँ कारणु एत्तडउ अण्णु ण तनु ण मंतु।।१२३-३।।

येन निरञ्जने मनः धृतं विषयकषायेषु गच्छत्।
मोक्षस्य कारणं एतावदेव अन्यः न तन्त्रं न मन्त्रः।।१२३-३।।

जेण इत्यादि। येन येन पुरुषेण कर्तृभूतेन णिरंजणि कर्माञ्जनरहिते परमात्मनि मणु मनः धरिउ धृतम्। किं कुर्वत् सत्। विसयकसायहिं जंतु विषयकषायेषु गच्छत् सत्। विसयकसायहिं तृतीयान्तं पदं सप्तम्यन्तं कथं जातमिति चेत्। परिहारमाह। प्राकृते क्वचित्कारक-व्यभिचारो भवति लिङ्गव्यभिचारश्च। इदं सर्वत्र ज्ञातव्यम्। मोक्खहं कारणु मोक्षस्य कारणं एत्तडउ एतावदेव। विषयकषायरतचित्तस्य व्यावर्तनेन स्वात्मनि स्थापनं अण्णु ण अन्यत् किमपि न मोक्षकारणम्। अन्यत् किम्। तन्तु तन्त्रं शास्त्रमौषधं वा मंतु मन्त्राक्षरं चेति। तथाहि। शुद्धात्मतत्त्वभावनाप्रतिकूलेषु विषयकषायेषु गच्छत् सत् मनो वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदन-ज्ञानबलेन व्यावर्त्य निजशुद्धात्मद्रव्ये स्थापयति यः स एव मोक्षं लभते नान्यो मन्त्रतन्त्रादि-बलिष्ठोऽपीति भावार्थः।।१२३-३।।

एवं परमात्मप्रकाशवृत्तौ प्रक्षेपकत्रयं विहाय त्र्यधिकविंशत्युत्तरशतदोहकसूत्रैस्त्रि-विधात्मप्रतिपादकनामा प्रथममहाधिकारः समाप्तः।।१।।

आगे इसी कथन को दृढ़ करते हैं -

चित्त हटाकर विषय-कषायों से निज में एकाग्र किया।
मात्र यही है मुक्ति मार्ग, कुछ अन्य मन्त्र तन्त्रादिक ना।।१२३-३।।

अन्वयार्थ :- [येन] जिस पुरुष ने [विषयकषायेषु गच्छत्] विषय कषायों में जाता हुआ [मनः] मन [निरंजने धृतं] कर्मरूपी अंजन से रहित भगवान् में रक्खा [एतावदेव] और ये ही [मोक्षस्य कारणं] मोक्ष के कारण हैं, [अन्यः] दूसरा कोई भी [तन्त्रं न] तंत्र नहीं हैं, [मन्त्रः न] और न मंत्र है। तंत्र नाम शास्त्र व औषध का है, मंत्र नाम मंत्राक्षरों का है। विषय कषायादि पर पदार्थों से मन को रोककर परमात्मा में मन को लगाना, यही मोक्ष का कारण है।

भावार्थ :- जो कोई निकट-संसारी जीव शुद्धात्मतत्त्व की भावना से उलटे

विषय कषायों में जाते हुए मन को वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से पीछे हटाकर निज शुद्धात्मद्रव्य में स्थापन करता है, वही मोक्ष को पाता है, दूसरा कोई मंत्र-तंत्रादि चतुर होने पर भी मोक्ष नहीं पाता।।१२३-३।।

इस तरह परमात्मप्रकाश की टीका में तीन क्षेपकों के सिवाय एक सौ तेईस दोहा-सूत्रों में बहिरात्मा अंतरात्मारूप परमात्मारूप तीन प्रकार से आत्मा को कहनेवाला पहला महाधिकार पूर्ण किया।।१।।

।। इति प्रथम महाधिकार ।।

गाथा-१२३ *३ पर प्रवचन

आगे इसी कथन को दृढ़ करते हैं—तीसरी।

१२३-३) जेण णिरंजणि मणु धरिउ विषय-कसायहिँ जंतु।
मोक्खहँ कारणु एत्तडउ अण्णु ण तनु ण मंतु॥१२३-३॥

अन्वयार्थः—जिस पुरुष ने विषय कषायों में जाता हुआ मन... विषय शब्द से पाँच इन्द्रिय के ओर की झुकाववाली दशा—भाव, वह सब विषय है। आहाहा! भगवान और भगवान की वाणी सुनना, वह भी कान का विषय है।

मुमुक्षु : (समयसार) ३१वीं गाथा में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्रिय का विषय, वह इन्द्रिय है। आहाहा!

वीतरागबिम्ब चैतन्य प्रतिमा प्रभु, उसकी अन्तर में एकाग्रता करने से वीतरागभाव होता है। बाहर के भगवान की पूजा करने से तो विकल्प—शुभराग आता है। वह अशुभराग टालने के लिये, स्वरूप में स्थिर न हो सके इसलिए होता है। वह व्यवहार है।

मन कर्मरूपी अंजन से रहित भगवान में रक्खा... आहाहा! राग के मैलरहित अपना मन अर्थात् ज्ञान की परिणति, पर्याय को अपने में जोड़ दी। आहाहा! **और ये ही मोक्ष के कारण हैं,...** आहाहा! मोक्ष का कारण यह एक। आनन्दमूर्ति प्रभु में एकाग्रता, रागरहित होकर एकाग्रता करना, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? व्यवहार मोक्षमार्ग कहेंगे आगे। अभी तुरन्त। परन्तु वह राग है। मोक्षमार्ग तो वास्तव में

तो यह एक ही है। यह गाथा अब शुरु करनेवाले हैं न मोक्षमार्ग की? इसलिए यहाँ गाथा का उपोद्घात लिया है। आहाहा! क्योंकि मोक्ष का अधिकार आयेगा। मोक्षमार्ग दूसरा अधिकार। पहले अधिकार की यह अन्तिम गाथा है।

मन को **कर्मरूपी अंजन से रहित भगवान में रक्खा...** आहाहा! **और ये ही मोक्ष के कारण हैं,...** राग के विकल्प से रहित भगवान आत्मा में निर्विकल्प स्थिरता प्रगट करना, वही एक मोक्ष का मार्ग है। यह निश्चय लोगों को ऐसा लगता है न! एकान्त निश्चय कहते हैं, एकान्त। परन्तु उस एकान्त निश्चयनय से एकान्त ही है यह। आहाहा! इसकी श्रद्धा, ज्ञान में तो यह निर्णय करे कि वस्तु तो यह है। आनन्दकन्द भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, सत्—है, ज्ञान और आनन्दरूपी स्वभाववाला तत्त्व, उसमें मन को जोड़ देना अर्थात् कि रागरहित होकर स्थिरता करना... ऐसा। आहाहा! यह मोक्ष का कारण है। देखो! बाद में आयेगा, हों! मोक्ष के दो कारण। निश्चय और व्यवहार। बाद की गाथा आयेगी उसमें। यह व्यवहार तो विकल्प है, और उपचार से कहने में आया है। वास्तव में तो मोक्ष का कारण यह एक ही है। '**एताव**' ऐसा है न? '**एतावदेव**' '**एतावदेव**' इतना ही मोक्ष का मार्ग है। ऐसा। **और ये ही मोक्ष के कारण हैं,...** '**एतावदेव**' भगवान आत्मा ज्ञानस्वभावी समरसी प्रभु, उसमें एकाग्रता करना, स्वआश्रय करना, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? ऐसा मार्ग अर्थात्.....

सम्यग्ज्ञान दीपिका में तो बारम्बार यही लिया है। धर्मदास क्षुल्लक (ने), स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमय स्वभाव, वह वस्तु। स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य। अपना निज स्वरूप त्रिकाल शुद्ध, वह स्वानुभवगम्य, अन्तर अनुभवगम्य है। विकल्प से गम्य हो नहीं सकता। आहाहा! व्यवहार से गम्य नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमय स्वभाव, सम्यग्ज्ञानमय स्वभाव, वह वस्तु। उसे ध्यान में लेकर एकाग्रता करना। आहाहा! ऐसी बातें। उसका नाम '**एतावदेव**' मोक्ष का कारण है न? '**एतावदेव**' '**एतावदेव**' **ये ही...** यह तो निश्चय कहा। कथंचित् यह और कथंचित् यह, ऐसा नहीं कहा। है? '**एतावदेव**' है न? '**एव**' अर्थात् निश्चय। इतना ही मोक्ष का मार्ग अकेला है। आहाहा! है या नहीं? क्या है? '**एतावदेव**' इतना ही, यही। आहाहा! मन को अन्दर में जोड़ देना अर्थात् निर्विकल्प होना, **ये ही मोक्ष के**

कारण हैं,... देखो! मूल श्लोक है। '**एतावदेव**' इतना ही, इतना ही। **ये ही...** मोक्ष का मार्ग एक है। व्यवहावर-ब्यवहार मोक्ष का मार्ग, वह मोक्ष का मार्ग है ही नहीं। आहाहा!

'**अन्यः**' **दूसरा कोई भी तन्त्र नहीं है,...** लो ठीक! यह अनेकान्त कहा। इसका नाम अनेकान्त है। निश्चय से भी होता है और व्यवहार से भी होता है, यह अनेकान्त है, ऐसा कहते हैं, ऐसा नहीं है। स्वभाव के आश्रय से ही होता है, अन्य आश्रय से नहीं होता, इसका नाम अनेकान्त है। आहाहा! समझ में आया? देखो न! अन्तिम गाथा योगफल में (यह ली है)। '**एतावदेव**' इतना ही मोक्ष का कारण। आहाहा! स्वस्वभाव का आश्रय लेकर दशा हो, इतना ही मोक्ष का मार्ग और वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? अन्य कोई भी नहीं। ठीक! **दूसरा कोई भी तन्त्र नहीं है, और न मन्त्र है।** आहाहा! तन्त्र अर्थात् शास्त्र और औषध। शास्त्र से भी धर्म—मोक्षमार्ग नहीं होता, ऐसा कहते हैं। है न? अन्य **दूसरा कोई भी तन्त्र नहीं है, और न मन्त्र है।** शास्त्र भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मोक्ष के मार्ग में शास्त्र भी कारण नहीं। शास्त्र तो परवस्तु है।

औषध कारण नहीं। कोई औषध होती है न! ऐसी औषध लगावे तो ऐसा हो जाये, पैर में अमुक चुपड़े तो पानी में आदमी चले। ऐसी कोई औषधि हो तो मोक्ष हो जाये, ऐसी औषधि है नहीं। आहाहा! **मन्त्र नाम मन्त्राक्षरों का है।** क्या कहते हैं यह? णमो अरिहंताणं—पंच णमोकार गिनना, वह भी मोक्ष का मार्ग नहीं। मन्त्राक्षर मोक्ष का मार्ग नहीं। लो! द्रव्यसंग्रह में आता है न? द्रव्यसंग्रह में नहीं? पैंतीस अक्षर। ॐ और नमः और अमुक शब्द आते हैं। शास्त्र भी मोक्ष का कारण नहीं और यह व्यवहार कहा न सब मन्त्र का? मन्त्राक्षरो। ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... पंच परमेष्ठी, यह सब मन्त्राक्षर मोक्ष का मार्ग नहीं है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है, भाई!

परमात्मप्रकाश है न यह? परमात्मस्वरूप पूर्ण। शक्ति से, स्वभाव से तो परमात्मा ही है। उसका स्वभाव, स्व-भाव वह परिपूर्ण शुद्ध चैतन्यघन है। अनादि-अनन्त नित्य आनन्दरस आत्मा है। ज्ञानानन्दस्वभावी वस्तु प्रभु, उसमें एकाग्रता होना, उसमें सन्मुख होकर लीन होना, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। यह विवाद है अभी कि व्यवहार भी

मोक्ष का कारण। व्यवहार करते-करते होगा। और व्यवहार से किसी को होता है। यह तो और अभी ऐसा आया है। जगनमोहनलालजी ऐसा डालते हैं। व्यवहार का किसी को होता है। परन्तु यह सिद्धान्त कहाँ रहा?

मुमुक्षु : किसी को होता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसको? किसी को हो, किसी को न हो। व्यवहार से....

मुमुक्षु : नियम नहीं रहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नियम तो रहा नहीं। सत् का सिद्धान्त रहा नहीं।

भगवान आत्मा उस व्यवहार के मन्त्राक्षर से भी प्राप्त हो, ऐसा नहीं है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। उन पंच परमेष्ठी की भक्ति और पंच परमेष्ठी का स्मरण और जाप, वह मोक्ष का मार्ग नहीं। आहाहा! यह नवकार का माहात्म्य आता है न? नहीं आता बहुत जगह? ऐसे नवकार गिने तो ऐसा हुआ, ऐसा हुआ। वह तो सब बाहर की बातें हैं। वह तो बाहर का चमत्कार है। आहाहा! वह तो पुण्य की बातें हैं। एकदम हो जाये। सीताजी को अग्नि में डाला था तो अग्नि पानी हो गयी। लो! कल्प फूल हुआ। कमल का फूल हो गया। वह तो बाहर की बातें हैं। समझ में आया? वे मुनि नहीं? मानतुंग आचार्य, ४८ ताले तोड़ डाले। भक्तामर प्रणत... वह ताले की बात नहीं। यह तो अन्दर के राग की एकता का ताला तोड़ डाला जिसने। आहाहा! भगवान आत्मा के अन्तर घर में जाकर शुद्ध चैतन्य में जहाँ अन्दर बसता है, तब राग के ताले टूट जाते हैं। यह बात है। आहाहा!

यह कहा न ऊपर, देखो न! **मन कर्मरूपी अंजन से रहित...** देखा न! रागरूपी मैल से रहित। **भगवान में रक्खा और ये ही मोक्ष के कारण हैं,...** आहाहा! यह तो धीर का, शान्ति का काम है। यह कहीं बाहर में फुदक्के मारे, बड़े रथ निकाले, क्या कहलाता है? हाथी-हाथी। गजरथ। हाथी लाये थे कितने ही। हमारे वहाँ हुआ था न हाथी नहीं? जयपुर में इक्कीस हाथी। शोभायात्रा निकली थी। भाई पूनमचन्द गोदिका। पहले में अठारह थे और दूसरे में इक्कीस थे। इक्कीस हाथी ऐसे। और चालीस हजार लोग शोभायात्रा में। साधु भी देखने निकले थे। एक वे प्रायः वहाँ थे। नहीं?

मुमुक्षु : इस ओर.... इनकार करे....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... एक साधु थे न? देशभूषण, देशभूषण, देखने निकले थे। हाथी है क्या, ओहोहो! यह तो बाहर की बातें, बापू! वह तो उस काल में परमाणु की परिणति ऐसी होनी है तो होती है। बहुत तो भाव कहना हो तो उसे शुभराग होता है। आहाहा! वह कहीं धर्म की विशेषता नहीं। वह तो पुण्य का फल है। पुण्य होता है। तब वे लोग कहते हैं न कि भाई! पुण्य को निषेध करते हैं और वापस पुण्य के फल भोगते हैं, ऐसा कहते हैं। ऐसा कि देखो! ऐसे मकान बड़े बादशाही मकान और यह हाथी ऐसे निकले, विशाल शोभायात्रा निकले, ऐसा कहते हैं। पुण्य के फल भोगते हैं और पुण्य का निषेध करते हैं, ऐसा कहते हैं। कौन भोगे? भगवान! आहाहा! आनन्द का नाथ प्रभु जहाँ आनन्द से विराजता है, वहाँ पुण्य के फल का कहाँ प्रयोजन है? आहाहा! समझ में आया? उसके पुण्य के फल में लक्ष्य जाना, वह तो विकल्प-राग है। आहाहा!

यहाँ तो दो बातें सिद्ध करनी है कि मोक्ष का कारण यह एक ही है और शास्त्र और मन्त्र नहीं, ऐसा। आहाहा! इसका नाम सम्यक् एकान्त मोक्ष का मार्ग कहा जाता है। व्यवहार भी मोक्षमार्ग और निश्चय भी मोक्षमार्ग, ऐसा नहीं है। **विषय-कषायादि परपदार्थों से मन को रोककर...** विषय-कषाय शब्द से लोग ऐसा समझे कि यह विषय अर्थात् भोग और बाहर के यह, विषय शब्द से परपदार्थ का लक्ष्य, वह सब विषय है। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रियस्वरूप है। उसे इन्द्रिय के विषय की ओर से दूर करके... आहाहा! यह भगवान की वाणी भी इन्द्रिय है। उससे दूर करके। भगवान वाणी में ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान ऐसा कहते हैं कि मेरे सन्मुख देखने से तुझे राग होगा, भाई! आहाहा! तेरे सन्मुख देखने से तुझे वीतरागता होगी। आहाहा! कहो, समझ में आया? तब लोग ऐसा कहते हैं कि परन्तु पाप में पड़े-फड़े हैं, उन्हें ऐसी बात हो? उन्हें पहली पुण्य की तो करो। अब वह तो अनन्त बार किया है, अब है क्या? ऐसा वे कहते हैं। पाप में गले तक पड़े हों, उन्हें निर्विकल्प और वीतराग की पर्याय की बात करना। उन्हें पुण्य में तो पहले लाओ। लो! कौन लावे? अनन्त बार पुण्य में तो आ गया है। आहाहा! निगोद के जीव को भी क्षण में पुण्य और क्षण में पाप, क्षण में पुण्य और क्षण में पाप होते हैं। ओहोहो! नित्य निगोद। अनन्त जीव कभी त्रस नहीं हो। ऐसा जो निगोद का फल, उसमें

अनन्त जीव क्षण में पुण्य और क्षण में पाप, शुभ और अशुभ हुआ ही करता है। क्योंकि वस्तु स्वभाव का भान नहीं, वहाँ कर्म का चक्र पुण्य और पाप हुआ ही करते हैं। वह कर्मचक्र है। समझ में आया? एकेन्द्रिय जीव को। आहाहा! जो निगोद के जीव अनन्त... आहाहा! एक शरीर के अनन्तवें भाग में मोक्ष गये और अनन्तवें भाग ही मोक्ष रहेंगे, बस। असंख्यवाँ भाग कभी नहीं होगा। आहाहा! अरे! बाहर आया न, प्रभु! तू इतने दूर अब। बाहर से निकलकर अब करनेयोग्य तो यह है, कहते हैं। समझ में आया? लक्ष्य में जरा विचार करे तो खबर पड़े। ऐसे का ऐसे नहीं। निगोद के अनन्त जीव... आहाहा! एक स्पर्शेन्द्रिय के अतिरिक्त जिन्हें रसनेन्द्रिय भी मिली नहीं। आहाहा! जीभ। ऐसे अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त जीव... यह तो वीतराग की बातें भारी सूक्ष्म, भाई! आहाहा!

यह 'कर्म कलंक प्रचुरा भाव कलंक पहुरा' गोम्मटसार में है न! आहाहा! अरे! इसे विचार भी कहाँ है बेचारे को? मन भी कहाँ है। स्पर्शन इन्द्रिय। वह भी इसे खबर कहाँ है कि यह स्पर्शन इन्द्रिय है और इसे जानता हूँ। यह भी कहाँ है? है सही। आहाहा! अँगुल के असंख्य भाग में ऐसे अनन्त जीवों के थोक पड़े हैं। उसमें से निकलकर सर्व अवसर आ गया अब। आहाहा! तो कर ले न यह। जिससे छुटकारा हो राग से, वह करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव जिनेश्वरदेव की दिव्यध्वनि में इन्द्र और गणधरों के बीच में यह वाणी आयी। अरे! सन्त... आहाहा!

उसमें तो नहीं कहा, भाई! अष्टपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य ने। ऐ महायश! द्रव्यलिंगी साधु को (कहते हैं), हे महायश! अब यह कर न, बापू! ऐसे द्रव्यलिंग अनन्त बार धारण किये। आत्मा के ज्ञान बिना पंच महाव्रत और नग्नपना किया, बापू! भाई! वह मोक्ष का मार्ग नहीं। हे महायश! हे मुनि! ऐसी भाषा बहुत प्रयोग की है। भावपाहुड़ में। आहाहा! भाई! तूने स्त्री-पुत्र छोड़े, दुकान-धन्धा छोड़ा। नग्न होकर रहा। पंच महाव्रत (लिये), बापू! परन्तु उससे क्या हुआ? भाई! आहाहा! निगोद के जीव को निकलना— त्रस होना मुश्किल, प्रभु! तुझे अब मोक्ष करना हो तो सरल है, कहते हैं। आहाहा! क्योंकि चीज़ हाथ आ गयी। आहाहा! चैतन्यस्वभाव का भरपूर समुद्र, ऐसा जो भगवानस्वरूप प्रभु का, वह तुझे अब प्रतीति में आया तो अब उसमें स्थिर हो जा।

आहाहा! ऐसी बात है, भाई! समझ में आया?

विषय-कषायादि परपदार्थों से मन को रोककर परमात्मा में मन को लगाना,... आहाहा! परमात्मा अर्थात् यह परमात्मा, हों! परम आत्मा, परमस्वरूप। यह त्रिकाली स्वरूप, वही परमात्मा है और वह परमस्वरूप है। पर्याय तो अपरमस्वरूप है। भगवान पूर्णानन्दस्वरूप वीतरागस्वभाव से भरपूर तत्त्व, शान्तरस का कन्द, उसमें पर से छूटकर वहाँ रोक। वहाँ अनादि से रुक गया है। अब यहाँ रोक, ऐसा कहते हैं। राग में रुका हुआ तो अनादि से है। नौवें ग्रैवेयक में गया नग्न दिगम्बर मुनि होकर, वह भी राग में रुका हुआ था। आहाहा! अब तुझे रोकना, अटकना तो आता है। राग में अटकना आता है, इसलिए यहाँ अटक। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अन्तिम गाथा है न? '**एतावदेव**' मोक्ष कारण। आहाहा!

यह बाहर के ठाठ दिखते हैं न? शरीर, पैसा और इज्जत कीर्ति। लड़के कुछ कमाऊ हो न, स्त्री ठीक हो न, अरे! प्रभु परन्तु कौन? बापू! वह कोई चीज़ तेरी कहाँ है? वह तुझमें कहाँ है? तू उसमें कहाँ है? ऐसी चीज़ के माहात्म्य में, आकर्षण में रुककर अन्दर में चैतन्य का माहात्म्य इसे नहीं आया। आहाहा! समझ में आया? एक दिन में... भाई थे न? कल्याणजीभाई नहीं भाई? पोरबन्दर। कल्याणजी गोविन्दजी न? कल्याणजी गोविन्दजी नहीं थे एक? गृहस्थ। हमारा चातुर्मास था तब। पैसे दस-बीस लाख थे। उसमें दस लाख गये। उसमें चातुर्मास में उन्हें धन्धा करने जाना पड़ा। फिर तो वह चातुर्मास तो दूसरे चातुर्मास में। धन्धा करते हुए एक दिन में एक बार लाख पैदा किये। कल्याणजीभाई थे। एक दिन के लाख रुपये। क्योंकि वे बीस लाख थे। दस लाख गये तो वे इकट्ठे करना वापस। ... मार डाले। एक दिन में एक लाख पैदा किये। उस दिन हार्टफेल (हो गया)। भाई साथ में थे। वे नहीं पोरबन्दरवाले? लक्ष्मीदास। यह मगनभाई को नहीं कहा था? मगनभाई न! कहाँ गये? मगनभाई थे न? गये? यहाँ बैठे थे। मेहमान आये हैं न वे कुण्डलावाले नहीं? यह उन्हें तब लक्ष्मीचन्दभाई ने कहा था एक बार। राजकोट में सदर में। मगनभाई कहे, मैं जाता हूँ शेयर बाजार। जाओ धन्धा करना अमुक। अमुक करना। किया और पैसे भी थोड़े पैदा हुए। मगनभाई की बात है। वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। परन्तु सुन न, भगवान! यहाँ जा न अन्दर। आहाहा! शेयर बाजार तो यहाँ अन्दर है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मन को बाहर से तो रोक दे एकदम अब। चाहे तो भगवान का स्मरण हो। आहाहा! रोक दे। आहाहा! **यही मोक्ष का कारण है।** परमात्मा में मन को लगाना, वही मोक्ष का कारण है। आहाहा!

भावार्थः—जो कोई निकट-संसारी जीव शुद्धात्मतत्त्व की भावना से उल्टे विषय कषायों में जाते हुए मन को... आहाहा! निकट संसारी, जिसे संसार किनारा आ गया है अब। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य के लिए अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है, नहीं? जिन्हें संसार का किनारा नजदीक है, ऐसे जो कुन्दकुन्दाचार्य। आहाहा! वे कहते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य समकित थे या नहीं, वह किस प्रकार खबर पड़े? यह चेतनजी को कहा था। कहो, अरे..! भगवान! प्रभु! तू यह क्या करता है? भाई!

मुमुक्षु : महाविदेहक्षेत्र में गये थे, यह कपोलकल्पित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो और बाद में। महाविदेह में गये थे, यह तो कपोलकल्पित है। यह और अलग बात है। यह उसे नहीं बैठे। परन्तु वे समकिती थे या नहीं, यह हम किस प्रकार निर्णय करें? पूछा था। भगवान! अरेरे! अमृतचन्द्राचार्य तो पुकार करते हैं कि जिन्हें संसार का किनारा आ गया है। समाप्त। एक पैर रखे इतनी देर है। गुलाँट खाकर मोक्ष हो जायेगा। आहाहा! जिन्हें अनेकान्त विद्या प्रगट हुई है। है न? प्रवचनसार में शुरुआत में।

पंच महाव्रतधारी मुनि हैं। वे ऐसा कहते हैं, हजार वर्ष पहले हुए मुनि के लिये। दिमाग में आ गयी बात? कि हाँ, आ गयी बात। आहाहा! वे मुनि थे, धर्मात्मा थे, भगवान थे, भगवान होने का अब निकट था उनको। आहाहा! अरे रे! ऐसे मुनि के लिये ऐसा कि ग्यारह अंग का पठन होता है ज्ञान में। इसलिए ऐसे ज्ञानवाले को समकिती थे, ऐसा कैसे कहना? ऐसा कहे। कहा था न एक बार? खबर है। प्रभु... प्रभु... प्रभु..! भगवान! तेरी माहात्म्यदशा तुझे नहीं आयी, बापू! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, वह कुन्दकुन्दाचार्य की शैली, इसमें बहुत आ गयी है। भाई ने पहले लिखा है। कुन्दकुन्दाचार्य की पद्धति को बहुतों ने अपने में अपनायी है। कुन्दकुन्दाचार्य की शैली। इसमें लिखा है। पहले लिखा है।

जो कोई निकट—संसारी जीव... आहाहा! **शुद्धात्मतत्त्व की भावना से उल्टे...**

शुद्ध भगवान आत्मा पवित्र का पिण्ड प्रभु, उसकी भावना अर्थात् एकाग्रता। भाव की भावना, त्रिकाल स्वभावभाव ऐसा भगवान, उसकी भावना अर्थात् एकाग्रता। आहाहा! उससे **उल्टे विषय-कषायों में जाते हुए मन को वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से...** आहाहा! क्या कहते हैं?

वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से... इतने विशेषण दिये। आहाहा! रागरहित वीतरागी अभेद स्वसंवेदनज्ञान। स्व अर्थात् अपना प्रत्यक्ष ज्ञान। आहाहा! बाहर के विकल्प को रोककर और **मन को वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से...** देखो! यह बल। आत्मा का यह पुरुषार्थ। आहाहा! क्रम से हो, उसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा? कहते हैं। यह क्रम से हो, उसमें ही यह पुरुषार्थ आया। ऐसा कहते हैं न? क्रमबद्ध में कहाँ पुरुषार्थ रहा? अरे! भगवान! सुन न, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रम की वृत्ति में महान पुरुषार्थ रहा है। जिसने क्रमबद्धपर्याय का निर्णय किया, उसका निर्णय ज्ञायक पर जाता है। वह ज्ञायक का निर्णय किया, उसे क्रमबद्ध होता है, उसका जाननेवाला रहता है। आहाहा! ऐसी बातें बहुत परन्तु (कठिन पड़े)।

वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान... देखा! शास्त्रज्ञान भी नहीं, ऐसा कहा न? इसलिए उसको शास्त्र ना किया न पहले? शास्त्र नहीं और शास्त्र का ज्ञान भी नहीं। वह परलक्ष्यीज्ञान, वह नहीं। आहाहा! **वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से...** आहाहा! **पीछे हटाकर...** मन को पर से हटाकर, परन्तु **स्वसंवेदनज्ञान के बल से हटाकर...** आहाहा! पर की ओर के झुकाव को स्व सन्मुख के बल द्वारा रोक दे, कहते हैं। समझ में आया? भारी सूक्ष्म ऐसा मार्ग। मार्ग तो ऐसा है, भाई! यह ज्ञान में उसका पहला यह स्वीकार तो करे। भले विकल्प से करे कि वस्तु तो यह है। उसमें प्रतीति, ज्ञान और स्थिर होना, वह निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान कहा जाता है। शास्त्रज्ञान निकाल दिया, दूसरा सब निकाल दिया, देखा!

वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान... आहाहा! अरे! आठ वर्ष की बालिका भी

सम्यग्दर्शन प्राप्त करती है। समझ में आया? वस्तु तो पूर्ण स्वभाव से भरपूर पड़ी ही है। आहाहा! जिसमें वर्तमान एक समय की पर्याय का भी जिसमें अभाव है। उसे पर्याय में निर्णय कर। पर्याय का जिसमें अभाव है, उसका पर्याय में निर्णय कर। समझ में आया? ऐसा है, बापू! यह हो-हा होती है, ऐसी यह बात नहीं है। लोग अधिक भराये (इकट्ठे हुए) और हो.. हा... बड़े रथ निकाले, पाँच लाख खर्च किये, मन्दिर बनाये, मानस्तम्भ बनाये। वह क्या है? भाई!

मुमुक्षु : .... है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने किया है? भाव हो शुभ। बाकी हुआ है तो उससे वहाँ। रामजीभाई की देखरेख के नीचे हुआ था यह सब।

मुमुक्षु : वजुभाई थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वजुभाई तो कारीगर... क्या कहलाते हैं वे? इंजीनियर कहलाते हैं। आहाहा! प्रभु! प्रभु! जिसे विकल्प उठाना भी नुकसानकारक है। आहाहा!

ऐसा भगवान ज्ञानस्वभाव में स्वसंवेदनज्ञान के बल से। ऐसा कहा न? स्वसंवेदन। स्व अर्थात् अपना संवेदन प्रत्यक्ष। ऐसे ज्ञान के बल से। आहाहा! **पीछे हटाकर...** मन और राग से हटकर **निज शुद्धात्मद्रव्य में स्थापन करता है,...** आहाहा! भगवान नहीं वापस। यह निज शुद्धात्म, इसलिए कहा। अपना जो शुद्धात्मा भगवान पूर्ण उसमें स्थापन कर। **वही मोक्ष को पाता है,...** लो! वही मोक्ष को पाता है। परन्तु लोग ऐसा कहते हैं कि अभी मोक्ष नहीं है और इतनी बड़ी बातें! परन्तु सुन न, भगवान! मोक्ष के लिये मोक्ष की तैयारी हो गयी है। होने की तैयारी है, मोक्ष के सन्मुख ही है। समझ में आया? एकाध भव हो। धर्मशाला में जैसे मनुष्य रुकता है। सवेरा हो तो धर्मशाला छोड़े और रास्ता पार करे। आहाहा! मोक्ष के मार्ग में ही है, प्रभु! तेरा स्वरूप ही मोक्ष है। उसकी दृष्टि-प्रतीति मोक्ष का मार्ग है। वह पर्याय के मोक्ष का मार्ग। समझ में आया? शक्तिरूप मोक्ष तो त्रिकाल है। अर्थात्? स्वभाव में सत्त्व स्वभावरूप जो है, वह तो मोक्ष ही है, मुक्त ही है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह अबन्ध ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अबद्धस्वरूप ही है, वह तो। ऐसे अबद्धस्पृष्ट को अनुभव में लेना, उसका नाम जैनशासन है। आहाहा! क्या हो? भाई! चौरासी के अवतार में भटकते हुए (कचूमर निकल गया)। ऐसा मार्ग है। यह नियमसार में तो कहा है कि ऐसे मार्ग की कोई निन्दा करे, लो, यह तो निश्चयाभासी है, यह निश्चयवाले। व्यवहार तो मानो कुछ है ही नहीं। ऐसी जो निन्दा करे तो उसके सामने देखना नहीं, (और मार्ग की) अभक्ति करना नहीं। अरेरे! ऐसा मार्ग है और यह लोग निन्दा करते हैं वे तो करें ऐसा, भाई! तू वीतरागस्वभाव के प्रति अभक्ति नहीं करना। आहाहा! 'अेकलो जाने रे...' आता है न कुछ, नहीं? वह किसी का। 'अेकलो जाने...' उसमें आता है। लौकिक में है।

मुमुक्षु : रविन्द्रनाथ टैगोर में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रविन्द्रनाथ टैगोर में आता है न? अकेला जा। यहाँ अकेला जा, अकेला। यह राग की द्वैतता छोड़कर... आहाहा! अकेला भगवान निर्विकल्प सम्यग्ज्ञान में स्थिर हो। आहाहा! अन्यत्र कहीं शान्ति नहीं है।

वही मोक्ष को पाता है, दूसरा कोई मन्त्र-तन्त्रादि चतुर होने पर भी... लो, ठीक! उन तन्त्र-मन्त्र का स्पष्टीकरण किया। कोई मन्त्र में होशियार, तन्त्र में होशियार। वकालत में होशियार वह तो कुछ बिना ठिकाने का। यह तो धर्म के नाम के मन्त्र और तन्त्र। आहाहा! **कोई मन्त्र-तन्त्रादि चतुर होने पर भी मोक्ष नहीं पाता।** आहाहा! मोक्ष का मार्ग तो यह एक है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।'

यह पहला अधिकार पूरा हुआ।

इस तरह परमात्मप्रकाश की टीका में तीन क्षेपकों के सिवाय... तीन क्षेपक। तीन गाथा अधिक। **एक सौ तेईस दोहा-सूत्रों में बहिरात्मा, अन्तरात्मारूप, परमात्मारूप तीन प्रकार से आत्मा को कहनेवाला पहला महाअधिकार पूर्ण हुआ।** पहला अधिकार पूरा हुआ। अब दूसरा अधिकार। आहाहा!

दूसरा दोहा अधिकार प्रारम्भ करते हैं। उसमें भी पहले दस दोहों तक मोक्ष की मुख्यता से व्याख्यान करते हैं। प्रभाकर भट्ट शिष्य, गुरु को पूछता है, प्रभु ! मुझे मोक्ष और मोक्ष का फल तथा मोक्ष का कारण बताओ। आहाहा! देखो! ऐसा कुछ पूछा नहीं

कि अमुक करो और शास्त्र जानना। मोक्ष, मोक्ष का फल तथा मोक्ष का कारण। तीन बात शिष्य ने पूछी है।

१२७) सिरिगुरु अक्खहि मोक्खु महु मोक्खहँ कारणु तत्थु।
मोक्खहँ केरउ अण्णु फलु जेँ जाणउँ परमत्थु॥१॥

अन्वयार्थ :- हे श्रीगुरु, मुझे मोक्ष सत्यार्थ मोक्ष का कारण,... देखो न! '**तथ्यम्**' है न? '**तथ्यम्**' अर्थात् कि वह आता है न? सत्यार्थ, वह मोक्षमार्ग है। छहढाला में। दूसरा असत्यार्थ है, दूसरा असत्यार्थ है। तो यहाँ तो सत्यार्थ पूछा है। देखा! '**तथ्य**' है न? **सत्यार्थ मोक्ष का मार्ग, और मोक्ष का फल...** आहाहा! **कृपाकर कहो... 'आख्याहि' जिससे कि मैं परमार्थ को जानू।** आहाहा! प्रभु! मुझे मोक्ष बताओ न! आहाहा! मोक्ष का मार्ग कहो न, भाई!

भावार्थ :- प्रभाकर भट्ट, श्री योगीन्द्रदेव से विनती करके,... विनती करता है, प्रार्थना करता है। **मोक्ष, मोक्ष का कारण और मोक्ष का फल इन तीनों को पूछते हैं।** लो! इसका उत्तर आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

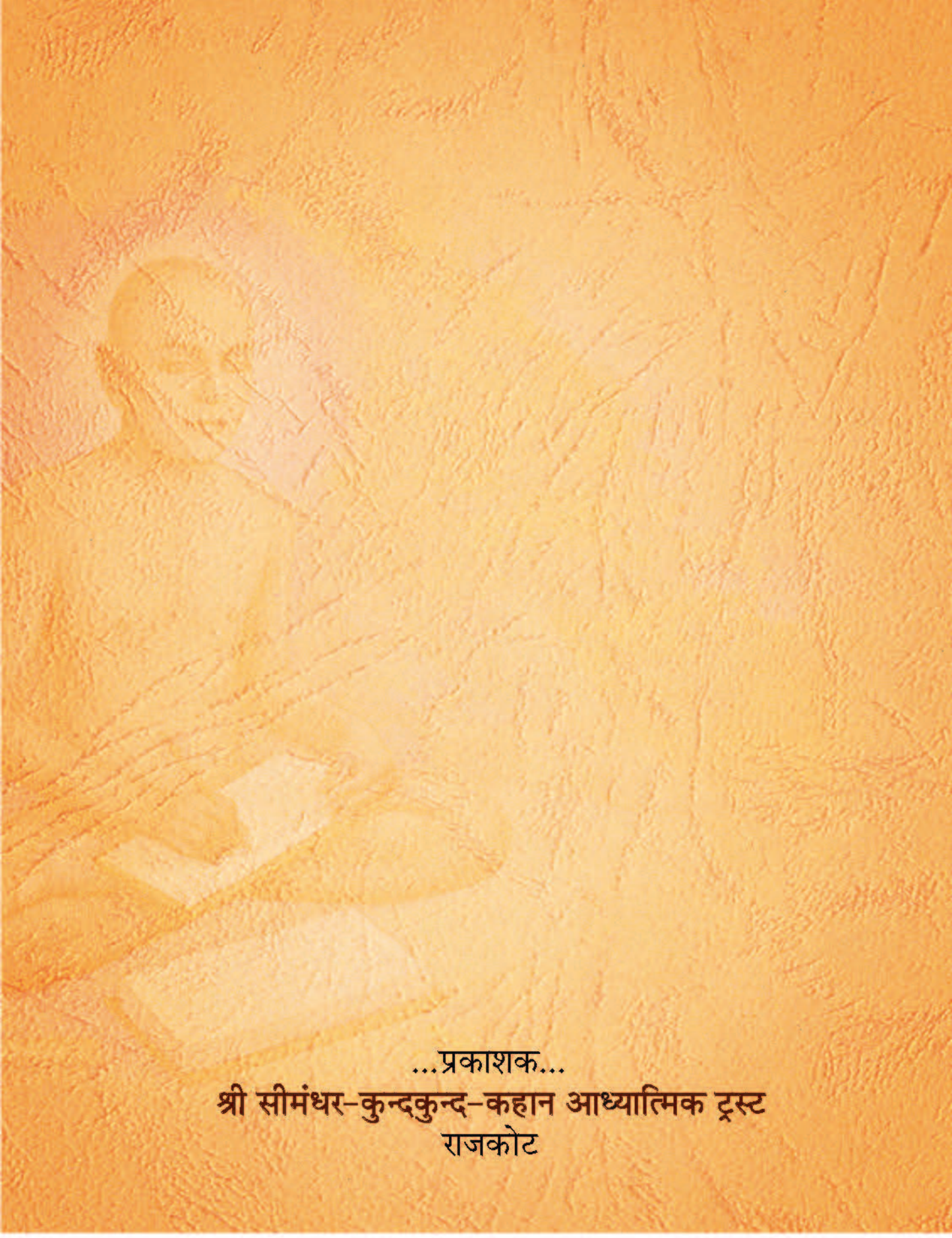

...प्रकाशक...
श्री सीमंधर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट
राजकोट